




# केशव का आचार्यत्व

डा० विजयपालसिंह

एम० ए० (हिन्दी, सस्कृत), पी-एच० डी०, डी० लिट्०

प्रोफेसर एव ग्रन्थसहि हिन्दी विभाग

श्री वेङ्कटेश्वर विद्याविद्यालय, तिरुपति

राजपाल एण्ड सन्ज, दिल्ली 

माय घोम रूपये

प्रथम संस्करण १९६८

© डा विजयपालसिंह

दुध गांधी प्रतिष्ठान प्रथम दिल्ली ३२

KE-HAV KA ACHARYATVA by Dr. V. JayPal Singh  
₹ 20.00

स्नेहमयी मा  
श्रीमती चम्पादेवी जी  
को  
सादर, सभक्ति समर्पित



## भूमिका

भारतीय सद्भाषितक ममीक्षा रीतिवालीन आचायत्व और काव्य स मेरा सम्बन्ध रहा है। इनके पुनर्मूल्यांकन और पुनस्थापना म मेरी रुचि और धनकी सम्भावनाया म मेरी आस्था रही है। इस दिना म हानि वाल गोष-काय स मैं किसी न किसी रूप म बौद्धिक या भावात्मक तादात्म्य का अनुभव करता हू। डा० विजय पालसिन् के प्रस्तुत गोषकाय के साथ मा मैं नती प्रकार के सम्बन्ध का अनुभव किया। काव्य के जीवन काव्य और आचायत्व का स्पण करत हुए कुछ प्रयत्न हो चुके थ। धन प्रयत्ना न काव्य और उनक साहित्य पर छाया हुए कुहास की बहूत कुछ समाप्त भी किया। इन प्रबन्धा के अनन्तर एक एस विगिष्ट अध्यायन की प्रतीक्षा की जा रही थी जो काव्य के आचायत्व का पूण विलेपण और मूल्यांकन प्रस्तुत कर सक। प्रस्तुत ग्रन्थ इस आवश्यकता की पूर्ति के रूप म महत्त्वपूर्ण है।

इस गोष प्रबन्ध स मेरा कोई औपचारिक या प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं रहा तथापि विषय के निर्धारण उसकी रूपरखा के निश्चय और गोष विधि के सम्बन्ध मे लेखक न मुझसे विचार विमण अवश्य किया था। इसम सदेह नहीं कि ग्रन्थ का जो प्रारूप मेरी दृष्टि म था उसका परिपालन ग्रन्थ म हुआ है। इसके अतिरिक्त भी आवश्यक विस्तृति लेखक न का है। विषय और पद्धति की दृष्टि स जो ममप्रता प्रस्तुत ग्रन्थ म खिललाई पडनी है उसस लेखक की निष्ठा और अनुमधित्ता ही सिद्ध हाती है।

भारतीय काव्यशास्त्र की समृद्ध परम्परा को हिन्दी म व्यवस्थित रूप से अवतरित करन का विगद प्रयत्न काव्य न किया था। काव्यशास्त्र की धारा का बहु-विध शृंगार काव्य के पूव हो चुका था। अनक सम्प्रदाय स्वाकृत और तिरस्कृत हो चुके थ। प्रत्यक सिद्धान्त निम्पण और विलेपण की दृष्टि से चरम पर पहुच गया था। सम स देह नहीं कि रम और ध्वनि सिद्धातों को सर्वांगिय विस्तार और महत्त्व प्राप्त हुआ किन्तु अलकार रीति और वक्राक्ति के सिद्धाता न भी किसी प्रकार की होनता का अनुभव नहीं किया। रम और नायिका भेद का भक्ति-परक सस्कार चगाली बध्णव आचार्यों के द्वारा मम्पन हुआ। इस सस्कार न लक्ष्य साहित्य के मृजन की प्ररणा दी। इन लक्षणा की सरचना म हिन्दी की सर्वांगियानिनी समुण काव्य धारा प्रवाहित हुई। काव्य का परिवर्ण भक्ति-मस्वृत लक्षण और लक्ष्य साहित्य की प्रक्रियाया स पुष्ट था। काव्य प्रवृत्ति अलकारवादी होने हुए भी इस परिवर्ण स अपन आचायत्व को अछूता न रख सक। अपन इन्हीं सस्कारा और प्रभावा का छाया म के सर्वांग निरूपक आचाय धन गए। काव्य के व्यक्तित्व के इस वगिष्टय का विकास और स्वरूप प्रस्तुत प्रबन्ध म वज्ञानिक रूप स स्पष्ट किया गया है। 'रसिकप्रिया'



## भूमिका

भारतीय सद्भावितक समीक्षा रीतिकालीन आचायत्व और काव्य से मेरा सम्बन्ध रहा है। इनके पुनर्मूल्यांकन और पुनःस्थापना में मेरा रुचि और इनकी सम्भावनाओं में मेरी आस्था रही है। इन दिनों में हानि वाले गोघ-काव्य में किसी न किसी रूप में बौद्धिक या भावात्मक तादात्म्य का अनुभव करता हूँ। डा० विजय पालसिंह के प्रस्तुत गोघकाव्य के साथ भा. मैन स्त्री प्रकार के सम्बन्ध का अनुभव किया। काव्य के जीवन काव्य और आचायत्व का स्पष्ट करत हुए कुछ प्रयत्न हो चुके थे। इन प्रयत्नों में काव्य और उनके माहित्य पर छाये हुए कुहासे को बहुत कुछ समाप्त भा किया। इन प्रबंधों के अनन्तर एक एस विगिण्ट अध्ययन की प्रतीक्षा की जा रही थी जो काव्य के आचायत्व का पूर्ण विद्वानपण और मूल्यांकन प्रस्तुत कर सकें। प्रस्तुत ग्रन्थ इस आवश्यकता की पूर्ति के रूप में महत्त्वपूर्ण है।

इस गोघ प्रबंध से मेरा कोई औपचारिक या प्रत्यक्ष सम्बन्ध तो नहीं रहा, तथापि विषय के निर्धारण उसकी रूपरेखा के निश्चय और गोघ विधि के सम्बन्ध में लखक ने मुझसे विचार विमर्श अवश्य किया था। इसमें सन्देह नहीं कि ग्रन्थ का जो आरूप मेरी दृष्टि में था उसका परिपालन ग्रन्थ में हुआ है। इसके अतिरिक्त भी आवश्यक विस्तृति लखक ने की है। विषय और पद्धति की दृष्टि से जो समग्रता प्रस्तुत ग्रन्थ में निम्नलाई पढ़नी है उससे लखक की निष्ठा और अनुमतिमा ही सिद्ध होती है।

भारतीय काव्यशास्त्र का समृद्ध परम्परा को हिन्दी में व्यवस्थित रूप से अवतरित करने का विगिण्ट प्रयत्न काव्य ने किया था। काव्यशास्त्र की धारा का बहु-विध शृंगार काव्य के पूर्व हो चुका था। अनेक सम्प्रदाय स्वावृत्त और तिरस्वृत्त हो चुके थे। प्रत्येक सिद्धांत निरूपण और विमर्श की दृष्टि से चरम पर पहुँच गया था। इसमें सन्देह नहीं कि रस और ध्वनि सिद्धान्तों को सर्वांगीय विस्तार और महत्त्व प्राप्त हुआ किन्तु अलंकार रीति और वक्रोक्ति के सिद्धांतों में भी किसी प्रकार की हीनता का अनुभव नहीं किया। रस और नायिका भेद का भक्ति-परक सस्वार बंगाली बंधुव आचार्यों के द्वारा सम्पन्न हुआ। इस सस्वार ने लक्ष्य साहित्य के मृजन की प्रेरणा दी। इन लक्षणों की संरचना में हिन्दी की सर्वांगीयता सगुण काव्य धारा प्रवाहित हुई। काव्य का परिवर्ण भक्ति-मस्वृत्त लक्षण और लक्ष्य साहित्य की प्रशिक्षणाओं से पुष्ट था। काव्य प्रवृत्त अलंकारवादी होते हुए भी इस परिवर्ण से घन आचायत्व को अछूना न रस सकें। घन इन्हीं सस्वारा और प्रभावा की छाया में वे सर्वांगी निरूपण आचाय बन गए। काव्य के व्यक्तित्व के इस विगिण्ट का विकास और स्वरूप प्रस्तुत प्रबंध में काननिक रूप से स्पष्ट किया गया है। 'रसिकप्रिया'



कृष्णधारा की काव्यशास्त्रीय और कामशास्त्रीय भक्ति पद्धति की परम्परा से आती है। शृंगार और नायिका भेद की भक्ति पद्धति का परम्परा म जयदेव विद्यापति सूरदास और नन्ददास का साहित्य आता है। कणाव ने इसी परम्परा का अनुसरण करके रसिकप्रिया का प्रणयन किया। इसमें कणाव की राधा व प्रति भक्ति भावना का भी आभास मिलता है और कृष्ण की रस पुरण व रूप म प्रतिष्ठा भी मिलती है। इस योजना म कणाव शृंगार की रसराज मानन और सिद्ध करनवाले आचार्यों की परम्परा म भी स्थान बना लेत हैं।

कविप्रिया म आचायत्व कविगिता व रूप म प्रकट हुआ है। लेकिन न यह सिद्ध किया है कि कणाव की अलंकारवादिता व अतिरिक्त समग्र काव्य-सामग्री का सङ्गठन-सर्वेक्षण भी हुआ है और एतक आधार पर उनका कवि शिक्षक रूप गौरव प्राप्त करता है। रामचन्द्रिका का प्रणयन उस परम्परा म हुआ है जिसम लक्षण निरूपण दिव्य नायक व चरित्र के उदाहरणा स पुष्ट किया गया है। लक्षण वचन से निरूपण पर लक्षणा से अनुप्राणित उदाहरणों को महाकाव्य व रूप म संयोजित करके कणाव ने आचायत्व-सम्बन्धी एक नवीन प्रयोग किया। इस रूप म कणाव का महत्त्वानन लक्षक ने किया है। इस प्रकार कणाव व आचायत्व सम्बन्धी ग्रन्थों की परम्परा का पथवेक्षण करके कणाव की कृतिया का मौलिक रूप से स्थान निर्धारित किया गया है।

यहाँ तक काव्यशास्त्रीय सिद्धान्तों व निरूपण का प्रश्न है लक्षक ने तुलनात्मक पद्धति स निष्पन्न निकालत हैं। पहल कणाव की सिद्धान्त दृष्टि को स्वच्छ रूप स प्रस्तुत किया गया है। फिर सस्कृत व आचार्यों से तुलना करके स्रोत का निर्धारण किया गया है। स्रोत निर्धारण का काय पर्याप्त बोध और मनोयोग की अपेक्षा रखता है। प्रस्तुत प्रबंध का यह भाग अत्यन्त महत्त्वपूर्ण है। कणाव की कृतिया और उनका सिद्धान्त का साथ ही परम्परा व सन्दर्भ म देखा गया है। समग्र रूप म परम्परा को रखकर ही कणाव का सद्धान्तिक समाप्ता सम्बन्धा निष्पन्न देकर लक्षक न इतिहास एक अनुसंधान की विधि का परिपालन किया है।

सिद्धान्त निरूपण व साय-भाय यह भी आवश्यक होता है कि पूर्ववर्ती और परवर्ती परम्पराका को आदान और प्रदान व रूप म उपस्थापित किया जाए। प्रान्त म काव्यशास्त्र व कणाव-पूर्व दिनाम-सूत्रा का उचित रूप स कणाव व साथ सम्बद्ध करके दिया गया है। प्रान्त काया भाग मुझे विशेष पसन्द आया है। सामान्य रूप स यह मानना रहा है कि कणाव व परवर्ती आचार्यों न कणाव व आचायत्व को अपना उदात्त नहीं बनाया। पर यह पूरा सत्य नहीं है। कणाव की रसिकप्रिया और कविप्रिया का प्रणाला पर कुछ कृतिया लिखा गई और सामान्य रूप स भी कणाव का प्रभाव रहा। लक्षक न कणाव स प्रभावित परवर्ती परम्परा की खोज और प्रतिष्ठा की है। यदि प्रभाव खट रूप म भा प्राप्त होता है तो भी उसका आनन्द अनुसंधान का अनिवार्य भाग है। खट प्रभावा का निवारण लक्षक न तथ्यपरक पद्धति स किया है। प्रान्त काय भाग का बहिष्कृत एतक स्पष्ट हो जाता है।

मुझे प्रसन्नता है कि कंगव के आचार्यत्व का अध्ययन जितनी विवाद पीठिका पर होना चाहिए था वह प्रस्तुत प्रबंध में हुआ है। कंगव-सम्बन्धी कारणों इस अध्ययन के लिए एक बौद्धिक परिप्रेक्ष्य प्रदान करता है। अनैक भ्रान्तियों का निवारण भी प्रस्तुत ग्रन्थ करता है। कंगव की स्थिति को स्पष्ट करने के लिए आचार्यत्व और काव्यशास्त्रीय परम्परा का उचित अवगाहन भी किया गया है। इस रूप में प्रस्तुत प्रबंध भावी शोध के लिए प्रेरक बन सकता है।

डा० विजयपालसिंह हिन्दी-संस्कृत के गम्भीर विद्वान और हिन्दी के वरिष्ठ प्राध्यापक हैं। उन्होंने अपने गहन अध्ययन के द्वारा रीतिकाल के मर्मों में अपना विनिष्ट स्थान बना लिया है। मुझे विश्वास है कि प्रस्तुत शोध प्रबंध से रीतिकाल सम्बन्धी ज्ञान भण्डार की शोध होगी और हिन्दी-साहित्य के शोधार्थी अध्येता इस महत्त्वपूर्ण ग्रन्थ का स्वागत करेंगे।

दिल्ली विश्वविद्यालय  
शिवरात्रि, २०२३ वि०  
१ मार्च, १९६७ ई०

—नगेन्द्र



## प्रस्तावना

प्रस्तुत प्रबंध मेरे डी० लिट० की उपाधि के लिए स्वीकृत शोध प्रबंध का यत्किञ्चिन् परिवर्तित मुद्रित स्वरूप है। हिन्दी साहित्य का मध्ययुग साहित्यिक चर्चा की दृष्टि से अत्यंत महत्त्वपूर्ण रहा है। इस युग के कलाकारों ने कविता के साथ साथ आचार्य की भी पदवी प्राप्त की। उनमें आचार्य केशव का स्थान सर्वोपरि है। केशव के कवि व्यक्तित्व और आचार्य व्यक्तित्व हिन्दी साहित्य में अपना विशिष्ट स्थान रखते रहे हैं। उनका कवि व्यक्तित्व को उनका आचार्य व्यक्तित्व की सापेक्षता में समझने पर ही केशव के प्रति न्याय किया जा सकता है यह मरा निश्चित धारणा है। केशव हिन्दी समीक्षा के लिए बहुपठित एवं बहुचर्चित आचार्य रहे हैं। केशवदान पर आचार्य केशवदास, 'केशव और उनका साहित्य' तथा 'केशवदास जीवना कला और कृतित्व नामक तीन शोध प्रबंध प्रकाशित हो चुके हैं। द्वितीय युगीन नतिकला एवं आदर्श से अस्पाधिक प्रभावित होकर आचार्य केशवदास की जा अनुदार आलोचना हुई उसका निष्पक्ष रूप से विचार करना ही उक्त शोध प्रबंधों का मूल उद्देश्य रहा है।

जहां तक केशव के भावपक्ष का सम्बंध है इस कवि को हृदयहीन कह दिया गया। कला की दृष्टि से प्रयत्न की सघनता और असंगतियां का बीड़ा उनको उपक्षित करती रही। इन्हीं कारणों से वे 'बटिन काव्य के प्रथम बने हुए अनेक सहृदय आलोचकों को डराते रहे। अलंकारवाद के समर्थक हान के नाते रसवादी आलोचकों को उनमें रसविरोध ही दिखलाई दिया। 'शास्त्रीय सद्भाषित' समीक्षा के सम्बंध में उनकी धारणाओं को भ्रान्त बहकर टाल दिया गया। रातिकाल का प्रारम्भ चिन्तामणि से मानकर हिन्दी साहित्य के इतिहासकारों ने उद्दयुगप्रवृत्त ज्ञान के गौरव से भी उचित कर दिया। इस प्रकार नतिकाल के इस प्रबल अंधवाद पर सभी प्रकार के प्रहार हुए। उनके प्रबंधों में केशव के साहित्यिक उन्माद का पुनर्मूल्यांकन करने का प्रयत्न किया। उनमें केशव के जीवन कृतियां समकालीन परिस्थितियों जीवन दर्शन एवं आदान प्रदान के साथ साथ कवित्व की ही प्राथमिकता दी गई है। आचार्यत्व का स्थान नगण्य है। केशव के सर्वांगीण चित्रण एवं विषयों की विविधमुखी व्यापकता के कारण इन शोध प्रबंधों में आचार्यत्व की प्राथमिकता देते हुए काव्यशास्त्र जैसे गहन विषयों को लेकर तलस्पर्शी अध्ययन करना सम्भव भी न था।

रीतिवादी आचार्यत्व पर इस युग में डा० रसाल डा० नगद डा० भारद्वाज मिश्र तथा डा० भामुप्रकाश जैसे विद्वानों ने अध्ययन प्रस्तुत किया है। इनमें समस्त रीतिकाल का मूल्यांकन ही प्रायःसिद्ध है। डा० नगद जी ने 'महाकवि' के की पृष्ठभूमि में संस्कृत और रातिकालीन काव्यशास्त्रीय परम्परा का विश्लेषणात्मक पथवेक्षण

किया है। उक्त ग्रन्थों में केवल के आचार्यत्व का सामान्य परिचय दिया गया है। इस प्रकार रीतिकाल के किसी भी आचार्य का गुढ़ आचार्यत्व की दृष्टि से अध्ययन नहीं किया गया है। देव भिलारीदास भतिराम का भी समग्र रूप से अध्ययन हुआ है। गुढ़ आचार्यत्व की दृष्टि से नहीं। इन सभी के सिद्धान्तिक पक्ष का अध्ययन अपेक्षित है। केवल के आचार्यत्व के सम्बन्ध में और फलतः कवित्व के सम्बन्ध में भी समीक्षा के प्रायः भ्रान्त निष्णय ही प्रस्तुत किये हैं। अध्ययन की गहराई में न जाने के कारण केवल की जसी उल्टी सीधी आलोचना हुई है वसी किसी आचार्य की नहीं।

केवल के जिस पक्ष में अधिक सम्भारता लाई जा सकती है वह आचार्यत्व का क्षेत्र है। यह क्षेत्र काव्यशास्त्रीय सस्पण से विकसित हुआ। भक्ति साहित्य में शाली और तत्सम्बन्धी शास्त्र की उपेक्षा हुई थी अतः इसकी प्रतिक्रिया काव्यशास्त्रीय पुनरुद्धान् गिल्प एवं शिक्षण विधान की पुनः स्थापना के रूप में हुई। इसके अग्रदूत केवल बने। यह पक्ष एक पूर्वाग्रह मुक्त विश्लेषणात्मक वनानिव एवं अनुसंधानात्मक अध्ययन की प्रतीक्षा कर रहा था। इसी आवश्यकता की पूर्ति स्वरूप मरा यह विनम्र प्रयास 'गोघ प्रबन्ध' के रूप में विद्वानों के समक्ष प्रस्तुत है।

केवल सर्वोपरि निरूपण आचार्य हैं। अतः उनके आचार्यत्व का क्षेत्र भी कम विस्तृत नहीं है। संस्कृत के आचार्यों में केवल की मायतामो के सोता का अन्वेषण विषय को और भी विस्तृत कर देता है। यह भी आवश्यक समझा गया है कि रीतिकाल के ग्रन्थ आचार्यों से भी यत्र-तत्र तुलना की जाए। इस प्रकार केवल की पूर्ववर्ती एवं परवर्ती काव्यशास्त्रीय परम्परा के बीच केवल की स्थिति को देखने के प्रयास में विस्तार बल तो गया है पर केवल के ऐतिहासिक मूल्यांकन के लिए यह सब परमावश्यक भी है। रीतिकाल के ग्रन्थ आचार्यों के सोता में अधिष्ठाण कविध्य नहीं मिलता। मम्मट विनयनाथ अल्पयदीक्षित जयदेव भानुदत्त जैसे परवर्ती आचार्यों में अधिकांश रीतिकालीन लक्षणकारों के सिद्धान्त सूत्र मिल जाते हैं। परन्तु केवल के सिद्धान्त सूत्रों के सोते काव्यशास्त्र के अत्यन्त प्राचीन आचार्य भामह तक पहुँचते हैं। इस प्रकार सोतावपण भी एक दीर्घ प्रक्रिया बन गई है। पर यह प्रयत्न किया गया है कि सोतावपण में सत्य की भवहेतुता और विकास की कड़ियों की खोज में प्रमाद न हो।

प्रस्तुत 'गोघ प्रबन्ध' नौ प्रकाशों में विभाजित किया गया है। अध्ययन की सुविधा और वनानिक प्रक्रिया का ध्यान में रखते हुए विषयों का वर्गीकरण इस प्रकार किया गया है कि विस्तार एवं अध्ययन में एक सौपानिक क्रम एवं व्यवस्था रहे तथा 'गोघ' की गरिमा भी बनी रहे। प्रथम प्रकाश पृष्ठभूमि का है और अंतिम उद्गार का। मध्यवर्ती मात्र प्रकाशों में केवल के आचार्यत्व का अन्तरंग अध्ययन है त्रिंशत् उनमें द्वारा विरचित सभी प्रमुख वाक्यों की परम्परा और केवलीय चिन्तन के विस्तार के माध्यम विचार विवचन है। केवल के द्वारा प्रतिष्ठित लक्षणा का स्पष्ट निरूपण विस्तार का पृष्ठभूमि प्रस्तुत करता है। आचार्यत्व के रूप निरूपण में निरूपण भाव से भ्रान्तियाँ उपमाओं और प्रभावों की ओर संकेत करते हुए लक्षणा एवं उदाहरणों का संग्रहना या विमर्शना पर भी विचार किया गया है। उदाहरण

भाग यदि आचाय का स्वरचित ग्रन्थ होता है तो उसकी लक्षणानुकूलता कभी-कभी यत्नता, सौन्दर्य वृत्ति और रुचि व द्वारा बाधित हो जाती है। ग्रन्थ लक्ष्य ग्रन्थ से उदाहरण का चयन अपेक्षाकृत निष्पक्ष और शुद्ध होता है। कर्णव का उदाहरण भाग इन दोषों से प्रायः बचा हुआ है। उदाहरणों को लक्षणानुकूल बनाने के प्रयत्न में कर्णव ने हृदयहीन होन व सम्भावित आक्षेपों की भी चिन्ता नहीं की है फिर भी यत्र तत्र त्रुटि का रह जाना स्वाभाविक ही है। किसी भी आचाय व लक्षण और उदाहरणों की संगति अध्ययन का अनिवार्य भाग है। अतः इस प्रबन्ध में इस संगति को विस्तार से देयन की चेष्टा की गई है। कहीं-कहीं लक्षण व पूरक व रूप में उदाहरण हैं। जो बात लक्षण कथन में छूट गई है उसकी पूर्ति उदाहरण से हो जाती है। इस संगति निरूपण में इस प्रकार के आवेपण का भी ध्यान रखा गया है। उदाहरणों का भावपक्ष अथवा कलापक्ष से सत्यतः बचा गया है। यहाँ प्रकाश ग्रन्थ से प्रबन्ध में निहित अध्ययन का संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत है।

प्रथम प्रकाश पृष्ठभूमि का है। इसमें आचाय आचाय कर्म का स्वरूप और विकास शास्त्र और आचायत्व व परिप्रेक्ष्य में काव्यशास्त्र और आचायत्व व सत्रहवीं शताब्दी में संस्कृत काव्यशास्त्र एवं तन्निहित आचायत्व आदि ऐसे सम्बद्ध विषयों पर विचार किया गया है जो कर्णव जैसे किसी भी आचाय व आचायत्व व एक वानिक अध्ययन व लिए सबसे अपेक्षित हैं। इस विचार विमर्श से कर्णव के आचायत्व व विषय एवं समीक्षागत अध्ययन के लिए एक अभीष्ट पृष्ठभूमि का निर्माण किया गया है। द्वितीय प्रकाश में कर्णव के आचायत्व व क्षेत्र पर एक विहंगम दृष्टि डाली गई है। पृष्ठभूमि व रूप में तत्कालीन परिचय आचाय कर्णव के व्यक्तित्व उनकी सहायक दृष्टि अनुबन्ध चतुष्टय तथा निरूपण पद्धति आदि पर विचार किया गया है। तदुपरांत कर्णव की आचायत्व सम्बन्धी कृतियाँ रसिकप्रिया कविप्रिया एवं छन्दमाला पर विचार किया गया है। आचाय कर्णव की रस अलंकार एवं छन्द सम्बन्धी प्रवृत्तियों पर क्षेत्र विस्तार एवं क्षेत्र-सन्तोच की दृष्टि से विचार किया गया है। अतः में कहा गया है कि कर्णव के आचायत्व का क्षेत्र चाह सम्पूर्ण काव्याग और काव्यशास्त्रीय परम्पराओं को लेकर न चला हो परन्तु रीतिकाल व सदाभ में वह सबसे पूरा है। तृतीय प्रकाश में रसविवेचन है। इसमें रसिकप्रिया के प्रतिपाद्य रस व स्वरूप और उससे सम्बद्ध बातों का यथासाध्य गम्भीर अध्ययन प्रस्तुत किया गया है। रसिकप्रिया नवरस ग्रन्थ नहीं रसरत्न शृंगार का ग्रन्थ है जो विगिष्ट दृष्टि सम्पन्न है। नायक नायिका भेद इसी रसरत्न शृंगार से सम्बद्ध तथा उसका ही एक विवक्षित उपाग है। अतः अगले चतुर्थ प्रकाश में उसका ही अध्ययन है। पंचम प्रकाश में अलंकार निरूपण शीघ्र से केशव के विगिष्ट अलंकारों का शास्त्रीय परीक्षण प्रस्तुत किया गया है। षष्ठ प्रकाश में छन्द निरूपण है। इसमें हिन्दी के प्रथम छन्द शास्त्री आचाय कर्णव व ऐतिहासिक महत्त्व तथा उनका योगदान का विवेचन एवं विवेचन है। सप्तम प्रकाश का शीघ्र है ग्रन्थ काव्याग। इसमें वे काव्याग रखे गए हैं जो महत्त्वपूर्ण होते हुए भी कर्णव द्वारा विस्तार से निरूपित नहीं हुए हैं अथवा जिनका

आपेक्षक महत्त्व पूर्व प्रकाशों के विषयों के समकक्ष नहीं है। कविशिक्षा को भी एक काव्याग स्वीकार किया गया है। केशव के समय तक सस्कृत का काव्यागस्त तथा हिन्दी के नवोदित काव्यागस्त में कविशिक्षा एक काव्याग का रूप ग्रहण कर चुकी थी। केशव ने इस अपना एक उद्देश्य बनाया था। अतः इस प्रकार में चार विषयों का अध्ययन किया गया है—दोष वृत्तियाँ चित्रकाव्य एवं कविशिक्षा। अष्टम प्रकार कादान प्रदान का है। तुलना पूर्ववर्ती सस्कृत आचार्यों एवं परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों से की गई है। पूर्ववर्ती सस्कृत आचार्यों की तुलना से प्राप्त समानताओं अथवा विषमताओं से स्रोत समथन एवं सण्टन सम्बन्धी निष्कर्ष निकाले गए हैं। परवर्ती आचार्यों का साथ मिलनवाली समानताओं एवं विषमताओं का आधार पर आशय केवल की भावी प्रभाव परम्परा का स्पष्ट किया गया है। यह परम्परा कभी स्रोतगत हुई तो कभी आकस्मिक भी। इन निष्कर्षों का प्राप्ति साधन का अधिक से अधिक बनानिक बनाने में प्रयत्नशील रही है। अन्तिम एवं नवम प्रकार उपसंहार है। इस प्रकार में सस्कृत काव्यागस्त्रीय सम्प्रदायों का परिप्रक्षय में केवल के सिद्धान्तों पर विचार करते हुए अततो गतवा समस्त अध्ययन की परिधि में केवल के आचायत्व का मूल्यांकन किया गया है।

जन्म तक पद्धति का प्रश्न है वह विनियोगात्मक एवं विवेचनात्मक ही रही है। तुलना का अपना स्वतंत्र महत्त्व भी है। पर उससे विनियोग क्रम में सहायता और पुष्टि भी मिलती रही है। विश्लेषण और विवेचन स्वाभाविक रूप से निष्कर्ष देते रहे हैं। यथास्थान तुलनात्मक तालिकाओं का समावेश करके निष्कर्ष निकाल गए हैं। कहीं-कहीं ऐतिहासिक पद्धति को भी ग्रहण किया है और काव्यागस्त्रीय दृष्टि पर विशेषतः विचार गया है। साथ ही काव्यागस्त का संक्षिप्त विकासक्रम प्रस्तुत किया गया है। केवल द्वारा प्रतिष्ठित प्रतिपादित सिद्धान्त विदुषों का विकास भी आर्कषित करता रहा है। इस प्रकार एक स्वस्थ काव्यागस्त्रीय समीक्षण भूमि पर स्थित होकर केवल का आचायत्व का तटस्थ रूप से मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

धन में मैं उन सभी विद्वानों का प्रति अपना आभार प्रकट करता हूँ जिनसे मैंने प्रत्यक्ष एवं अप्रत्यक्ष रूप से प्रकाश पाया है। विशेष रूप से मैं गुह्वर प्रोफेसर जगन्नाथ जी तिवारी तथा श्रद्धा दा० हरवंगलानजी गर्मा का अत्यन्त आभारी हूँ जिनका स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एवं सत्परामर्श से ही यह गोघ प्रवचन पूरा हो सका। डा० मोमप्रकाशजी तथा डा० प्रमस्वरूप गुप्त ने मेरा बहुमुखी सहायता की है परन्तु उन्हें धन्यवाद देना आत्मीयता का अनुकूलन न होगा। श्रद्धा दा० नगेन्द्र जी ने धन्यवाद भूमिका निम्नकर कृपा जो गौरव बढ़ाया है तदर्थ मैं उनका प्रति हार्दिक कृतज्ञता ज्ञापित करता हूँ। मिश्रवर विनयाधजी ने इस धन्यवाद को सत्य प्रमाणित किया है धन्यवाद भी माधुवा का पात्र है।

—विजयपालसिंह

प्रापसर एवं अध्यक्ष

हिन्दी विभाग

श्रीबंकेटर विरविद्यालय

पिठपति (धन्य)

राजकी सुवर २४

११ फरवरी १९६०

## विषयानुक्रमणिका

प्रथम प्रकाश पृष्ठभूमि

१७-८३

आचाय निरुक्ति और अर्थ विकास १७ शास्त्र और आचाय २१ काव्यशास्त्र और आचाय २८ सप्तहवीं गती में संस्कृत काव्यशास्त्र और आचायत्व ४६, हिन्दी काव्यशास्त्र तथा आचायत्व का स्वरूप (सप्तहवीं गताब्दी तथा उसके पश्चात्) ४६ राज्याश्रय और काव्यशास्त्र ५३ उद्देश्य ५७ कवि आचाय लक्ष्य और लक्षण ६२, शास्त्रीय आघार ७० नायिका भेद तथा रस निरूपक आचार्यों का आघार ७२ अलंकार निरूपक आचार्यों का आघार ७३ हिन्दी के आचार्यों का वर्गीकरण ७७, रीतिवादीन आचायत्व का मूल्यांकन ८०,

द्वितीय प्रकाश केशव के आचायत्व का क्षेत्र

८४-१४१

प्रस्तावना ८४, तत्त्वानुगत अभिरुचि ८४ आचाय कविवर का व्यक्तित्व ८८ आचाय कविवर मद्भारितक दृष्टि ९५ अनुवच चतुष्टय ९६, निरूपण पद्धति ९७ केशव की आचायत्व सम्बन्धी कृतिया ९७ (अ) रसिकप्रिया ९९ (आ) कविप्रिया १०२, (इ) छन्दमाला १०४ आचायत्व का क्षेत्र विस्तार विहंगम दृष्टि १०६ प्रस्तावना भाग १०७ रस—(रसिकप्रिया) १०८ विषय अनुक्रम १११, रससम्बन्ध आचायत्व का क्षेत्र विभाजन ११६, केशव का अलंकार-सम्बन्धी आचायत्व (कविप्रिया) १२१, विस्तार की प्रवृत्ति १३०, क्षेत्र मन्वीच १३४, गणना और लक्षण १३५, छन्द शास्त्रीय आचायत्व छन्दमाला १३६, प्रस्तावना (छन्दमाला) १३७, प्रथम खण्ड वार्णिक छन्द १४७, खण्ड दो मासिक छन्द १४०, निष्कर्ष १४१,

तृतीय प्रकाश केशव का रस विवेचन

१४२-१६१

केशव का रस विवेचन १४२ भाव १५६ भावा के प्रकार १६० विभाव १६३, अनुभाव १७० सार्विकभाव १७२ म्यापीभाव १७३, व्यभिचारीभाव १७४, अर्थ रस एवं उनका अन्तर्भाव १७८, निष्कर्ष १६०,

चतुर्थ प्रकाश नायक-नायिका भेद

१६२-२४५

प्रस्तावना १६२, लक्षण एवं स्वरूप २०१ नायक २०२ विविध आचार्यों द्वारा गृहीत नायक गुण २०५ अनुकूल नायक २०६, दक्षिण नायक २०७ गठ नायक २०७ पृष्ठ नायक २०८ नायिका भेद २०९ जात्यनुसार नायिकाएँ २१६ कर्मानुसार नायिकाएँ २२२ नायिकाओं का अष्टविध वर्गीकरण २३३



वियोग व अनुसार नायिकाए २३८ गुणानुसार नायिका भेद २४१ अग्रमण  
नारिया २४३ उपसहार २४४

### पचम प्रकाश अलकार विवेचन

२४६ ३०४

काव्य का अलकारवाद २४६ काव्य मे अलकारा का स्थान २४६ रसो की रस  
वदलकार व रूप म स्वीकृति २४७ अलकार निरूपण म प्राचीन आचार्यों का  
आधार परिग्रहण २४८ अलकार गद की व्यापक परिधि २४८ सामान्य और  
विशिष्ट अलकार २४९ स्वभावोक्ति २५० त्रिभावना २५१ हेतु २५२ त्रिरोध  
या त्रिरोधाभास २५७ विशेष २६ उत्प्रेक्षा २६३ आक्षेप २६ गणना २६६  
आगी २७० प्रेमालकार २७१ रस २७२ सूक्ष्म २७४ लेश २७५ निदाना  
२७५ ऊर्जालकार २७५ रसवद् अलकार २७६ अर्थांतर मास २८० व्यतिरेक  
२८२ अपह्लाति २८२ उक्ति २८३ व्याजस्तुति-व्याजनिदा २८६, अमित  
२८६ पर्यायोक्ति २८७ युक्त २८८ समाहित २८९ सुसिद्ध प्रसिद्ध एव विपरीत  
२९० रूपक २९१ दीपक २९४ प्रहेलिका २९८ परिवृत्त २९८, उपमा ३०  
यमक २ निष्पय ३०२

### षष्ठ प्रकाश छन्द निरूपण

३०५ ३३६

मध्यम सामग्री ३०५, कतिपय सामान्य तथ्य ३५ काव्य का छन्द निरूपण  
३६ वाणिक वृत्त ३०८ मात्रिक वृत्त ३२५ गुण विचार ३३३  
निष्पय ३३५

### सप्तम प्रकाश अर्थ काव्याग

३३७ ३७५

दोष निरूपण ३३७ वृत्ति विवेचन ३४२ ससृष्ट काव्यशास्त्र मे वृत्ति निरूपण  
३४३ नाट्य वृत्तिया ३४५ काव्य वृत्तिया ३४६ काव्यवृत्तिया मे नाट्यवृत्तिया  
३४८ काव्य का वृत्ति निरूपण ३५० वृत्तियों की विविध रससम्बद्धता  
३५२ उदाहरण का सामञ्जस्य ३५६, चित्रकाव्य ३६१ कविगिषा ३६३  
काव्य और कविगिषा ३६७ कवि समय ३६८ नखगिषा वणन ३६६  
मत्स्या निरूपण ७१ ऋतुवणन (वारहमिह) ३७१ सामान्यालकार ३८२  
वर्णनकार ३७३ वर्णनकार ३७३ भूधा और राग्यो ३७३

### अष्टम प्रकाश काव्य का आदान प्रदान

३७६ ४४७

मान ३७६ रतिक्रिया ३७६ नाट्यशास्त्र २७६ काव्यप्रकाश ३७६ और  
साहित्यप्रण ८७ मरुत्वतीकुत्र-कण्ठाभरण ३७८ रसाणवमुधाकर ७६  
अनगरण ३८० कामसूत्र ८१ कविप्रिया ३८२ चन्द्रालोक वृत्तरत्नाकर  
८ दत्तमाना ६० काव्य और परवर्ती आचार्य प्रभाव प्रदान २६२  
रम-पुरण ६४ रम-आत्र ६८ शृंगार का रमराजत्व ६८ रसा का  
परस्पर सम्बन्ध ४०। प्रच्छन्नप्रकाश ४०२ रस और वृत्तिया ४०३,

नायिका भेद ४०५ रमदोष ४०७, दूती सखी प्रकरण ४०८, दपति घेप्टा, मिलन-स्थान शृंगार की विस्तृति ४११ मान मानमोचन ४१३ रसावयव ४१४, रसिकप्रिया रूप-दान ४२० निष्कप ४२२ अलंकार-क्षत्र ४२२, उदाहरण परम्परा ४२३ अलंकार के महत्त्व की घोषणा ४२५ अलंकारों की सख्या ४२६ (क) दण्डी के अनुसृत अलंकारों की तुलनात्मक तालिका ४२७, (ख) दण्डी के प्राय अनुसृत अलंकारों की तुलनात्मक तालिका ४२८ (ग) दण्डी से भिन्न अलंकारों की तुलनात्मक तालिका ४२९ (घ) नवीन अलंकारों की तुलनात्मक तालिका ४३० अलंकार निरूपण की पद्धति ४३१, चित्रालंकार— कविगिरी का भाग ४३७ निष्कप ४४१ दोष निरूपण ४४१ कविगिरी सामान्यालंकार ४४२ काव्यसम्बन्धी विचार ४४६

### नवम प्रकाश उपसंहार

४४८-४६७

वाचस्पत्ययन काव्यशास्त्रीय सम्प्रदाय एवं काव्य ४४८ सम्बन्धजिज्ञासा ४४८, मन्वृत्त व वाचस्पत्ययन सम्प्रदाय ४४३ रम सम्प्रदाय एवं काव्य ४४९ अलंकार सम्प्रदाय और केशव ४५३ शैलि सम्प्रदाय और केशवदास ४५५, ध्वनि सम्प्रदाय और काव्यदास ४५६ वक्रोक्ति-सम्प्रदाय और काव्य ४५७, निष्कप ४५८, मूल्यावन ४५८,

परिशिष्ट-१

४६८

परिशिष्ट-२

४७५



आचाय निरुक्ति और अर्थ विकास

पाणिनि न आचाय गण का युत्पत्त्यथक विश्लेषण इस प्रकार दिया है आ+चर+ष्यत् । चर धातु गा—उपसर्ग म युक्त होकर जञ्—प्यन् प्रत्यय ग्रहण करता है तब आचाय गण युत्पन्न होता है । आ—उपसर्ग दाशनिक और नाम विज्ञान की पारिभाषिक गणदावली की सरचरता का एक प्रमुख उपसर्ग रहा है । भारतीय मस्तिष्क गत्यात्मक परिवर्तन क्रिया से प्रभावित रहा है । व्याकरण और दर्शन के क्षेत्रों में यह प्रवृत्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है । पूर्व प्रत्ययों या उपसर्गों से क्रिया में अन्तर्निहित सम्भावित गति ही प्रकट नहीं होती उभवा णिगा भी मिनती है । इस दृष्टि से उपसर्ग क्रिया तथा उनसे युत्पन्न नामों का सहकारी होता है । उपसर्गों में अथना एक विशिष्ट अर्थ होना है जो क्रिया में वातु के साथ सम्बद्ध हा जाता है । इसीलिए इह उपसर्ग कहा गया है उप( ओर या ऊपर ) +सर्ग ( =प्रवाहित ) । प्रातिशाख्या तथा पाणिनि म भा उपसर्ग की स्वतन्त्र अर्थवत्ता का समर्थन मिलता है । इनसे गत्यात्मक (Motional) तथा भावात्मक (Emotional) अर्थ धातु को प्राप्त होत हैं । इनसे कान का बाध नहीं दग या णिगा का बाध हाता है । आ—उपसर्ग तीव्र तथा सांख्य अग्रगति से सम्बन्धित है । अग्र गति का उद्देश्य सामीप्य होता है । क्वा-क्वहीं गति इससे योग से उलट भी जाती है पर इन उन्नतन का उद्देश्य भी प्रयोक्ता की अर गति को मिद्ध करना ही है । आ—प्रत्यय में अद्ययात्रिक (Quasi mechanical) गति का भाव और निहित है । साथ ही ग्रहण का भाव भी

१ पाणिनि अष्टाध्यायी ६।२।२५

Betty Heimann *The Significance of Prefixes in Sanskrit Philosophical Terminology* (1951)

३ भट्ट हरि वाक्यपनीय पुण्यराज का टीका, कारिका १६०

४ धातु निरुक्ति १।६ टुगभाष्य—आर्यातुम् उपगृह्य अर्वावशात् इम तस्य इवो सूत्रनि श्लेषमगा । तथा पुण्यराज टीका (वाक्यपनीय) कारिका १६

शब्दार्थ प्रातिशाख्य १।१।१

५ अष्टाध्यायी १।४।१६

७ आ Used (as a prefix to verbs and nouns) (a) it expresses the senses of near near to towards from all sides all around (b) with verbs of motion taking carrying it shows the reverse of action as गम् to go 'आ गम् to come 'दा to give 'आ दा to take 'नी to carry 'अ नी to bring ' (V S Apte *Skt Eng Dictionary* Vol 1)

सस व्यक्त होता है।<sup>१</sup> दार्शनिक क्षत्र में आन्तरिक प्रेरणा से बल ग्रहण करके परमस्व की ओर अग्रसर होना स्वसंसाधित होता है। वेदांत के आत्मबल आत्मतन आत्मयजम पारिभाषिक शब्दों में आत्म उपसर्ग से यही भाव व्यक्त होता है। धार्मिक अनुष्ठान तथा प्रक्रियाओं में मीमांसा दत्तांत की अपेक्षा अधिक सम्बद्ध रहा। स्वक्षत्र के पारिभाषिक शब्द अथवा अति (पंचम प्रमाण) में भी अथ की ओर (आ) गति (पद) ही स्पष्ट है। साध्य में उपादान (=उप+आ+दान) पारिभाषिक शब्द है जिसका कोशाय प्राति या पकडना है। दार्शनिक अथ हाता है वहिगत इत्या की आत्मोमुख करना। योग के प्रत्याहार (प्रति+आ+हार) का भी यही भाव है। इसमें भी आत्म उपसर्ग अतमुक्त गति का साधक है।<sup>२</sup> आत्म का अथ भी विश्राम की ओर आना ही है। इस प्रकार आत्म उपसर्ग (उद्गम) की ओर अतमुक्त या आन्तरिक प्रेरणा से प्रेरित होकर अग्रगति की ओर सक्त करता है। आ-जीवन जिस शब्दों से समग्रता या पूणता का भाव भी प्रकट होता है। यह एक अथगर्भित उपसर्ग है जिसमें विगत और विक्रम के बीज अतनिहित हैं।— अथ प्रत्यय सबध सूचक है।

चर—भी विभिन्न अर्थों में युक्त है। चरना स्वघातु का मूल अर्थ है। कम कुछ विनाश न चर—तथा कृ का मूलगत साम्य भी माना है।<sup>३</sup> इसलिए जहाँ चलना प्रसारित होना व्यवहार करना जम अथ इस घातु से सबद्ध रहे वहाँ किसी निश्चित आचार श्रम या मिद्धांत का पालन या सम्पादन करने का अर्थ भी इसमें प्राप्त रहा।<sup>४</sup> किन्ती विशेष काय में व्यस्त रहना भी इसी भाव का समर्थन करता है।<sup>५</sup> धार्मिक क्षत्र में स्व अथ के साथ एक वगिष्ठय आया यनानुष्ठान में व्यस्त। इसका प्रेरणाधक रूप चारपति होना है चरने के लिए प्रेरित करना भोजना पथ प्रदान करना आदि। स्व घातु के अर्थों की इस सूची से स्पष्ट होता है कि इसमें भी अथ विकास

१ Betty Heimann पृ ७

२ आ-वत् चतु (जिनकी आवे पीछ की ओर मुड़ गये हैं) का उप० ४।१

३ As to the etymology it seems that its root K<sup>et</sup>—derived in Indo Iranian consequent on the second palatalisation to produce two roots on the one hand intransitive चर to move to go and on the other a transitive चृ to do make (T Burrow *The Sanskrit Language* London p 324)

४ To move one's self go walk move stir roam about wander to spread e diffused (as fire) to move or travel through pervade go along follow to behave conduct one's self act live treat (Sir Monier Williams *Skt Eng Dictionary*)

५ to practise perform observe (Apte *Skt Eng Dictionary*)

६ To be engaged be busy with (वत्)

७ अथ १ १७१२ अथ २ १७१७ आ

८ (1) To cause to move or go (2) to send direct move (3) to

की सम्भावनाएँ थीं। प्रेरणायक रूप में विशेष रूप में 'अध्यापक' वाला अर्थ के बीच निहित हैं। एक आचार्य का विकास यदि बौद्धिक उपलब्धियाँ या वाय-मम्पादन में नीलता है तो दूसरी ओर आनुष्ठानिक धर्माचार से। ब्राह्मण-ग्रन्थों में चाय 'गुरु' भी मिलता है।<sup>१</sup> आ उपमग से युक्त हाकर यही आचार्य हा गया। इससे आचार्य तथा आचरण जम 'गुरु' भी 'युत्पन्न' हान हैं।

धर्म के क्षेत्र में आचार्य का एक विविष्ट रूपाय हो गया। 'गास्त्र' विहित धर्म जीवन में आचार्य है। यही आचार्य प्रथम धर्म है। उस धर्म में सलग्न या उमका पावन' आचार्य है।<sup>२</sup> आ उपमग न गति को अयोमुख कर दिया आचार्य धर्म के विधिवत् पावन न अयापन' घ सम्भव है। जा इस अर्थ की उपलब्धि के लिए अनुष्ठान करना है वही आचार्य है।<sup>३</sup> धर्मगास्त्र न आचार्य के अनुमरण से अभिषिक्त पत्र प्राप्ति का विधान किया 'मत्तान' अक्षय धर्म' आयु' प्राप्त हात हैं और बुर लक्षण आचार्य-माम में नष्ट हा जात हैं। 'धर्मगास्त्रीय' निष्ठा से आचार्य और आचार्य की प्रतिष्ठा बनी और लाकप्रियता की सम्भावना हुई। 'धर्म' प्रकार के आचार्य को करान वाला भी धीरे धीरे आचार्य बना। इसका बीच इसमें प्रेरणायक रूप में था। धर्म के क्षेत्र में आचार्य का अर्थ हुआ 'गास्त्रविहित' आप्तानुमाप्ति धर्माचार्य का पावन करने और करान वाला तथा अर्थ की प्राप्ति के लिए उचित अनुष्ठान वाय में सलग्न या उमका करान वाला। धर्मानुष्ठान करान के उपलक्ष्य में आचार्य को प्रभूत दर्शना का उल्लेख एतरय न कुछ उद्धरणों में स्पष्टतः मिलता है।<sup>४</sup> इसमें पालन करना अथवा सम्पादन कराना अर्थ ही व्याप्त है।

आचार्य का तत्त्वाय होता है वह जिसका अर्थ गमन हो अथवा सवत्र गमन हो। बौद्धिक क्षेत्र में आचार्य का अर्थ हाता है वह जिसके लिए समस्त बौद्धिक क्षेत्र गम्य हा। रहस्यमय ज्ञान स्तरों का स्वयं करन की गति भी आचार्य में होती है। एतरय ब्राह्मण के अनुसार समग्र रूपण दृष्टि से परे के पया पर अग्रसर हान वाला आचार्य या बुद्धिमान् होत हैं।<sup>५</sup> 'धर्म' प्रकार आचरण की अपेक्षा यहा ज्ञान क्षेत्र के जान

drive away (4) to cause to perform or practise (5) to cause to copulate (Apte Skt Eng Dictionary)

१ William Dwight Whitney *Roots verbs forms and primary derivatives of the Skt Language* (American Oriental Society 1945)

२ 'गुरु' प्रथमा धर्म - तन्मार्गिन् सुखुक् (भवन्तरणोपनिषद्, ४।१)

आचार्य' न प्रथ । (भगवद्गीतापनिषद् १६।१०)

३ आचार्य' ज्ञाना प्रथ (लमड) (भवन्तरणोपनिषद् ४।२)

४ आचार्य' उच्यते (लमड) (२।१)

५ धर्म' लक्ष्मण' हायु (३।१)

६ आचार्य' लक्ष्मण' (वहा)

७ आचार्य' लक्ष्मण' 'गुरु' लक्ष्मण' रत्नादिषु भवेत्तथा इति धर्मशास्त्रिको (३।६।३)

आचार्य' लक्ष्मण' 'गुरु' लक्ष्मण' सुखुक् द्विष्य धर्म, चतुष्पात् अथरिभिन (३।६।२)

८ आचार्य' लक्ष्मण' लक्ष्मण' सुखुक् । (स्त ५।१६।१)

अनजान पथा पर यात्रा करने का भाव मुख्य है। उपनिषत्वा न अनुमान आचार्यवात् पुरुष ही जानता है। अथान वह सर्वोच्च गृह्य प्रकट ज्ञान का अधिष्ठान है। गार्ग्य व गहन अर्थों का सम्राहक निर्वाचक और तन्नुसार आचरण करने वाला ही आचार्य है। कुछ अर्थ सर्वोच्च भी ज्ञान व क्षमता हुआ। बल्कि भक्तों की मत्स्य यात्रा करने यात्रा ही आचार्य है। एक दिग्वा का उद्घाटन हुआ जो किसी विधि विज्ञान का स्थापक हा वही आचार्य है। इस प्रकार गार्ग्यगत अर्थों का सम्राहक उनका यात्रायाता अथवा किसी विधि गार्गीय सिद्धांत का उनायक पोषक अथवा स्थापक आचार्य कहा जाता है।

स्पष्ट ज्ञानापत्ति व पश्चान उसका सामाजिक पक्ष सामन आता है। ज्ञान का आदान प्रदान आचार्य का एक अनिवार्य सामाजिक दायित्व हा जा ॥ है। यह प १ इतना प्रबल हुआ कि आचार्य अध्यापक व पयाया म ही परिगणित हान लगा। जिसको गार्ग्य का साग सम्पूर्ण और स्पष्ट ज्ञान हो वही अध्यापक हा सकता है। म गार्ग्य और उसके अर्थ तथा उनकी उपलब्धि व माध्यम व रूप म आचार्य प्रतिष्ठित हो गया। आचार्य व माध्यम म ही अभीष्ट विद्या की प्राप्ति होती है (एतन्म) वह (विद्यार्थी व द्वारा) गम्य है। विद्यार्थी का आचार्य व पास जाकर उनका सामीप्य लाभ करके यथाशक्ति वदान करने हा जीवन म प्रविष्ट होना चाहिए। जो ब्राह्मण अपन सामीप्य स गिष्य को वर का साग मत्स्य अध्यापन कराता है वहा आचार्य है। म प्रकार विद्यार्थी का आचार्य व पास जाना चाहिए। आचार्य व पास जाकर ही अभ्युत्थ व लिए आवश्यक विद्या की प्राप्ति हाता है। अन आचार्य अभ्युत्थ प्राप्त कराने वाला भी है। आचार्य विद्यार्थी को अनुगाहित करता है। आचार्य देव है। आचार्य व लिए कुछ गुण और आर्गों

१ आचार्यान पुत्रा वेत्त तस्य दान्ता ॥१६॥

२ आचिनानि इ शास्त्रांशान आचार स्थापय यधि ।

स्वयंचरते यन्मार्त्तमाचार्य उच्यते ॥ (श्यापनिषत् ४)

३ ननुव्याख्यातृणां साव । (अमरकारां जिनय का वचना श्लोक ७)

४ One who propounds a particular doctrine (Apte *Practical Skt English Dictionary*)

५ उपनिषत्प्रव्यापकत्वप्राप्त्याहक। गुण ।

आचार्य शिष्यक गानानुवन सागार्ग्यत्वम् ॥

(शास्त्रीयत्वा नामान्ता उपकारि पू १६६ प १ पद्य १)

६ आचार्य एव विचार्यता ना नठ प्रापयति ॥ दान्ता ४।

७ अध्यापक ३।१।

८ आचार्यो ज्ञानेन य यथा वदति ॥ दान्ता ८।१६।

९ उपनिषत् व शिष्य वदन्व्यापकत्वम् ।

सुक्ता व मत्स्य वदन्व्यापकत्वम् । (मनु १०६) तथा उपनिषत्प्रव्यापकत्वम् । (मनु १०६) तथा उपनिषत्प्रव्यापकत्वम् । (मनु १०६)

१० आचार्योऽनुव्यापकत्वम् । (मनु १०६)

११ आचार्योऽनुव्यापकत्वम् ॥ १०६।१६

१२ आचार्यत्वा भव । (व्या)

का भी विधान किया गया। आचार्य को बड़े विद्वान् विष्णु भक्त तथा गतमत्सर हाना चाहिए।<sup>१</sup> चाक न आचार्य के गुण पर प्रकाश डालना है। इन गुणों के आधार पर आचार्य का परीक्षण किया जा सकता है। स्पष्ट ज्ञान उत्तरता तथा गिष्य-वत्सलता अपने काय के त्रिण अर्पित उपकरणों में सम्पन्न तथा अपने काय में मिद्धि और लाघव न युक्त ज्ञान-ज्ञान में मग्न मन में निदम और निरभिमान और अक्षोप दूसरों के स्वभाव और दूसरों के अपने प्रति दृष्टिकोण में सुविन शास्त्र के गुरु और अथ स पूण अवगत इन गुणों में युक्त ही आचार्य होता है।<sup>२</sup> इन गुण-गणन में आचार्य की प्रकृति उसकी मन्त्रता विद्यायिषया के प्रति स्वयं व्यवहार और शास्त्र के प्रति स्वकी गति मति पर विशेष रूप से प्रकाश डाला गया है। आचार्य गिष्य की समस्त तनिदा में सुपरिचित ही नहीं होता यह उनका कथन भी करता है।<sup>३</sup> आचार्य और गिष्य में अन्तर्-व्यतिरेक इनके संबंध की घनिष्टता का स्पष्ट किया है। एक स्थान पर इन घनिष्ठ सम्बन्ध का बाधक और विच्छेदक धन माना गया है आचार्य को धन उत्तर उनके माय अपने सम्बन्ध का विच्छेद मत करो।<sup>४</sup> विगिष्ट या सवृचित अथ में धार्मिक अध्यापन जा यनोपवीत दे वनाध्ययन में दीक्षित कर वहा आचार्य है।<sup>५</sup> निष्कपत यह कहा जा सकता है कि आचार्य गुरु एक विमृष्ट धर्म में तथा विगिष्ट एवं सामान्य अर्थों में युक्त होकर प्रयुक्त होता रहा। आध्यात्मिक चिन्तन प्रमाचार एवं अनुष्ठान—आचार्य के धर्म में प्रयुक्त होता हुआ यह गुरु अन्तर्-अध्यापकवाची बन गया—यह उत्तर के विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। शास्त्र में ही स्वयं का गुरु सम्बन्ध रहा। लोक और परलोक का ज्ञान वाणी कही ना आचार्य गुरु। इन्हीं कारणों से आचार्य को स्वत्व मिला। विद्या के लिए आचार्य के समीप जाना चाहिए (आचार्य) आचार्य ज्ञान ज्ञान में समथ-मग्न हाना चाहिए (उप-देवक) तथा अपने विषय का परिपूर्ण ज्ञान हाना चाहिए (उप-अधि-धाय)। इस प्रकार बौद्धिक व्यापार के सहायक सचायक सपाठक और आदान प्रदान के माध्यम के रूप में आचार्य की प्रतिष्ठा हुई।

### शास्त्र और आचार्य

भारतीय मन्त्रिक और चिन्तन की एक मूल विनियोगिता है गत्यात्मकता। भारत की जनवायु और प्राकृतिक ऋतु चक्र की त्वरित परिवर्तनशीलता न उसकी

- १ आचार्य वरम पन्ना पिपुभना विमसर ।
- २ पराजितान्तर परिहृयकमागं नृप स्वियं पुत्रि विमन्त्रनुपकरणं न देविधोपपन्न गृहनिधं प्र-प-अन्तुध-अधिपन्नम-उत्तमकापनं न-प-विष्यं न्तमन्त्रापव शाश्वतममथ । न-व-गुणा । परकं गुरुक-व-म में उदन ।
- ३ आचार्यनु न गति कता । (गण्डा ४।४।१)
- ४ आचार्य हा वै वनसि । (देहा ७।१५।१)
- ५ आचार्यस्य मिय धामात् न प्रत्यान्त ना व्यव-गम्भी ॥ त्रि०१।१।११
- ६ Apte Practical Sanskrit English Dictionary



मानसिक प्रक्रिया को गत्यात्मक बना दिया है। ज्ञान विज्ञान के क्षेत्रों में यह गत्यात्मक प्रवृत्ति विशेष रूप से द्रष्टव्य है। ज्ञान विज्ञान की अनेक शाखाएँ हैं— दशम व्याकरण छन्द काव्य आदि। वद विद्या व ग्राह्यान् बोध स सबधित छ वेदांगों की अभिमृष्टि चिन्तन की गत्यात्मकता का प्रतीक है। अधिकांश विद्वानों का मत है कि य छ पृथक् ग्रन्थ नहीं हैं य तो विषय हैं जो बहिर्य अध्ययन व अभिन्न अंग थे। इनका ज्ञान य व भिन्न रूपा व पूण अध्ययन व लिए आवश्यक था। य वेदांग १० ६ ० ई० पू० व बीच स्थित थे।<sup>१</sup> इनमें छन्दशास्त्र शिक्षा (ध्वनिशास्त्र) व्याकरण निघण्टु— व विषय थे जिनका व्यक्त अव्यक्त रूप से काव्य और काव्य शास्त्र से सम्बन्ध है। य सभी अपने-आप में शास्त्र हैं। व्याचार्य की बहिर्यज्ञान में हा सम्पन्न नहीं होना चाहिए उह इन सभी शास्त्रों का ज्ञान हाता भा अनिवाय है। यह शास्त्र परम्परा गतिशील रही। प्रत्येक दिशा में पूण व्यवस्थित तथा मुनिचित्त बहानिक नियमों का अभिमृष्टि और प्रतिष्ठा होती रही है। कभी बुद्धिवादी जिज्ञासुओं की पशुवृत्ति अथवा किसी विशिष्ट प्रवृत्ति या सिद्धांत व पापण या समर्थन व लिए उन नियमों का समय-समय पर विस्तृत व्याख्यान अन्वेषण अथवा प्रत्याख्यान भी होता रहा। इस गभार्य बौद्धिक शास्त्रीय प्रक्रिया व फलस्वरूप विज्ञान गतिमान रहा चिन्तन की नवीन शाखाओं और दृष्टियों का उदघाटन हुआ बहानिक अनुसंधान में एक मजीब स्वस्थ नरतय बना रहा। सिद्धान्तों की स्पष्टता और सुव्यवस्था व लिए उदाहरण तथा प्रत्युदाहरण का साज और व्यवस्था भी शास्त्र का एक अंग बन गया। फल बौद्धिक साधना व साध प्रतिभा उद्भावनाओं का योग हुआ कभी उदाहरण योज गए कभी उनका सजन किया गया। बुद्धि और प्रतिभा व इन योग न शास्त्र का ज्ञान और जीवन से सम्बद्ध कर लिया। हम जटिल शास्त्रीय ऊहापोह में मौलिक योगदान करने वाला (उद्भावक) उनका व्याख्यान विस्तार करने वाला (शाखाता) उसमें विन और उसका मागपाग दात करने वाला—य सभी व्याचार्य व कम-क्षेत्र में आ गए। इन समस्त रूपों का परम्परा पर सतप में विचार कर उना समाचीन हागा।

ज्ञान व विभिन्न क्षेत्रों में शास्त्रों का प्रणयन हुआ। शास्त्र का ज्ञान और उसका दासित्व ज्ञान विज्ञान है। हम ज्ञान का सम्बन्ध ज्ञान धातु से है। निदान ग्रन्थ ही

१ छ वेदांगों का मूल— अमर काविरा काव्य (मामवर्त मन्वीन) में हुआ है (Maxmuller Hist of Ancient Skt Lit London 1860 p 112 113) मुम्बई - ६ ११ में आ वेदांग का जवाह (Winternitz Hist of Indian Lit Vol I p 26) Calcutta 19 6) गजरा व लिए वेदांग अध्ययन आवश्यक बताया गया है। (श्रीगुरु पृ २१ १११) अथर्ववेद धर्मशास्त्र में आ वेदांग का उल्लेख हुआ है (१११ १२० १ २५ ४ १) आ वेदांगों का बौद्धिक ज्ञान की रक्षा वेदांगों में प्रतिष्ठित है।

२ अथर्ववेद शास्त्रों का उल्लेख शास्त्रों में है। (श्रीगुरु पृ १११ १२० १ २५ ४ १)

३ अथर्ववेद शास्त्रों का उल्लेख शास्त्रों में है। (श्रीगुरु पृ १११ १२० १ २५ ४ १)

४ अथर्ववेद शास्त्रों का उल्लेख शास्त्रों में है। (श्रीगुरु पृ १११ १२० १ २५ ४ १)

'शास्त्र हैं।' जा ग्रय किसी विशिष्ट जीवन गति के सम्बन्ध में आना दें, वे ही शास्त्र हैं।' जिस विषय से उस शास्त्र का सम्बन्ध होता है वह शास्त्र के साथ बहुधा संयुक्त हो जाता है।' आचार्य दही ने शास्त्र का (सम्भवतः उनका तात्पर्य काव्य शास्त्र से ही है) महत्त्व बड़ी दृढ़ता से प्रतिपादित किया है। शास्त्र से अनभिन्न गुण दोष विवेक से ग्रहण ही रहता है। ज्ञान के विविध क्षेत्रों में शास्त्र की रचना हुई है। शास्त्र का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्र के विद्यार्थियों या जिज्ञासुओं की युत्पत्ति ही है। ज्ञान के आदान प्रदान में माध्यम आचार्य का जो महत्त्व था वही शास्त्र ग्रन्थों को प्राप्त हुआ। शास्त्र की अनुना धार्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्र में अत्यन्त मानी गई। शास्त्र के प्रति विश्वास आस्तिकता का ही एक भाग बन गया।

शास्त्र के क्षेत्र में आचार्य का रूप उद्भावक का ही नहीं था उसका व्याख्यान भी शास्त्र के अन्तर्गत ही आता है। उदाहरण के लिए पाणिनि व्याकरण के क्षेत्र का उद्भावक आचार्य कहा जा सकता है। पर वातिकार कात्यायन या महाभाष्यकार पतञ्जलि को भी आचार्य की कोटि में ही रखा जाता है। कात्यायन ने शास्त्र की ही रचना की। महाभाष्यकार ने वातिको पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि सिद्ध शास्त्र में सिद्ध शब्द शुभ है। प्रायः इस शास्त्र का आरम्भ किया जाता है। इसमें शास्त्रों की सफाई निश्चित मी हो जाती है। पतञ्जलि ने इस शास्त्र की रचना का कारण भी लिखा है। कात्यायन के समय में पूर्व उपनयनोपरांत ब्राह्मण का सप्रथम व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। तत्पश्चात् वेदाध्ययन आरम्भ होता था। कात्यायन और पतञ्जलि के समय में प्रथम उलटा पहलू बंद ही पढ़ाया जाता था और व्याकरण के प्रति उत्साहितता बर्तते जाने लगे थे। विद्यार्थियों का तब यह था कि शास्त्र हमें बंद से और लौकिक शास्त्र प्रयोग व्यवहार से सीख लेते हैं। अतः व्याकरण का अध्ययन व्यर्थ है। कात्यायन ने एक विशिष्ट और विकसित शास्त्र के प्रति यह उदासीनतामय भावित देखी और उन्होंने (आचार्य कात्यायन ने) शास्त्र का सृजन किया इसमें व्याकरण के महत्त्व का विशेष रूप में प्रतिपादन किया। व्याकरण

१ निदेशग्रन्थया शास्त्रे । अमरकोश

२ निदेश आद्या शास्त्रेन शास्त्रेन । तामलिगापुरात्मन् पूना १९४१ पृ० २१३

३ The word शास्त्र is often found + ifc after the word denoting the subject of the book or is applied collectively to the whole department of knowledge काव्यशास्त्र a poetical work or poetry in general (Skt Eng Dictionary, Sir Monier Williams)

४ गुणोपाशास्त्रस्य कथं विभक्तं नर । किमर्थमाधिकारान्ति रूपमेषां पल्लवितु । अतः प्रत्यय व्युत्पत्तिभिः भावय मृत्य । वाचं विचित्रमाशाशा निबन्धु त्रिधाविधम् ॥ (शब्दी)

५ R G Bhandarkar *Collected Works Vol I (Poona) 1933* Page 138

६ नागार्जुनी मन् न यदा 'शास्त्र' का शब्द व्यवहार में उपयोग की गई थी ही मात्र है। पर शास्त्र का इस प्रकार का अर्थमात्र यदा उचित नहीं होता। पतञ्जलि ने इस शब्द का प्रयोग सर्व व्याकरण शास्त्र के लिए ही किया है। (बह्वा)



शास्त्र है।<sup>१</sup> जा यह किसी विविष्ट जीवन-गति के सम्बन्ध में ग्रन्थ है, वे ही शास्त्र हैं।<sup>२</sup> जिस विषय से उस शास्त्र का सम्बन्ध होता है वह शास्त्र के साथ बहुधा संयुक्त हो जाता है।<sup>३</sup> आचार्य बड़ी ने शास्त्र का (सम्भवतः उनका तात्पर्य काव्य शास्त्र से ही है) महत्त्व बड़ी दृढ़ता से प्रतिपादित किया है। शास्त्र से अनभिन्न गुण-दोष विवेक से ग्रन्थ ही रहता है। ग्रन्थ के विविध क्षेत्रों में शास्त्र की रचना हुई है। शास्त्र का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों के विद्यार्थियों या जिज्ञासुओं की व्युत्पत्ति है।<sup>४</sup> ज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम आचार्य का जो महत्त्व था वही शास्त्र ग्रन्थों को प्राप्त हुआ। शास्त्र की अनुना धार्मिक तथा दार्शनिक क्षेत्रों में अत्यन्त मानी गई। शास्त्र के प्रति विश्वास आस्तिकता का ही एक भाग बन गया।

शास्त्र के क्षेत्र में आचार्य का रूप उद्भावक का ही नहीं था उसका व्याख्यान भी शास्त्र के अंतर्गत ही आता है। उदाहरण के लिए पाणिनि व्याकरण के क्षेत्र का उद्भावक आचार्य कहा जा सकता है। पर वार्तिककार कात्यायन या महाभाष्यकार पतञ्जलि को भी आचार्य की कोटि में ही रखा जाता है। कात्यायन ने शास्त्र की ही रचना की। महाभाष्यकार ने वार्तिकों पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि सिद्ध शास्त्र में सिद्ध शास्त्र शुभ है। प्रायः इस शास्त्र का आरम्भ किया जाता है। इस शास्त्र की सफलता निश्चित ही होती है। पतञ्जलि ने इस शास्त्र की रचना का कारण भी लिखा है। कात्यायन के समय में पूर्व उपनयनोपरांत ब्राह्मणों का सबसे प्रथम व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। तत्पश्चात् वेदाध्ययन आरम्भ होता था। कात्यायन और पतञ्जलि के समय में क्रम उलटा पहला वेद ही पढ़ाया जाता था और व्याकरण के प्रति उन्मीलनता बढ़ती जान लगी थी। विद्यार्थियों का तब यह था कि शास्त्र हम वेद से और लौकिक शास्त्र प्रयोग व्यवहार में सीख लते हैं। अतः व्याकरण का अध्ययन व्यर्थ है। कात्यायन ने एक विविष्ट और विकसित शास्त्र के प्रति यह उदात्ततामय शान्ति देखी और उन्होंने (आचार्य कात्यायन ने) शास्त्र का मूल्य किया। इस व्याकरण के महत्त्व का विचार रूप से प्रतिपादन किया।<sup>५</sup> व्याकरण

१ निदेशग्रन्थो शास्त्रं अमरकोश

२ निदेश भाषा शासन शास्त्रेऽनेन शास्त्रम् । नामलिङ्गानुशासनम् पूना १९४१ पृ० २१३

३ The word शास्त्र is often found used after the word denoting the subject of the book or is applied collectively to the whole department of knowledge काव्यशास्त्र a poetical work or poetry in general (Skt Eng Dictionary, Sir Monier Williams)

४ सुउत्पादनशास्त्रं कथं विभक्तं नर । विमर्शमधिकारान्ति रूपमेदावलम्बितु । अतः प्रकृत्या व्युत्पत्तिमभिमतं भाष्यं सूत्रम् । काव्या विविधभागानां निबन्धेषु विद्यार्थिभिः ॥ (शरणा)

५ R G Bhandarkar Collected Works Vol I (Poona) 1933 Page 138

६ नागादा भू न यदा 'शास्त्र' का शब्द व्याकरण के उपयोग की कारणा ही माना है। पर 'शास्त्र' का इस प्रकार का अर्थ है कि यदा उचित नहीं होता। पतञ्जलि ने इस शास्त्र का प्रयोग यदा व्याकरण शास्त्र के लिए ही किया है। (वहा)

मानसिक प्रक्रिया को गत्यात्मक बना दिया है। ज्ञान विद्या के द्वारा म यह ग सामक प्रवृत्ति विषय रूप में द्रष्टव्य है। ज्ञान विद्या की धारक विद्या है ज्ञान व्याकरण छत्र काव्य आदि। वह विद्या के द्वारा वायु वायु म गवधिग र यथा' का अभिगृहीत चित्त की गत्यात्मकता की प्रतीक है। अधिकांश विद्या का मत है कि यह एक गृह्य ग्रथ नहीं है य तो विषय है जो कश्चि अमयत व धर्मिता धर्म ध। इत्या आ वर क भिन्न रूपा व पूण अच्ययत व तित सावन्दन ॥१॥ व वसाग १००० ६००० पू व धीच स्थित ध।' इनम छत्रास्त्र विद्या (व्यतिगाम्य) व्याकरण विषय— व विषय ध जिनका व्यक्त अदत्त रूप म काव्य और काव्य आस्त्र म गम्य ध है। य सभी अमन प्राप्त म आस्त्र हैं। साधाम को यी कथा म हा मम्यत गहा हाता आहिए उह इन सभी आस्त्रों का ज्ञान जाना भी अनिवाय है। यह आस्त्र परम्परा गतिगीत रही। प्रत्येक विद्या म पूण व्यवस्थित तथा मुनि वन वगातिक विद्या का अभिगृहीत और प्रतिष्ठा होती रही है। कभी बुद्धिवादी जिज्ञासुओं की परिगृहीत अथवा किंगी विगिष्ट प्रवृत्ति या मिद्धात व पाषण या ममधन व तित उन विद्या का ममय-ममय पर विस्तृत आश्रयन अशास्त्रन अथवा प्रयास्यात भी होना रहा। इन गभाय बौद्धिक आस्त्रीय प्रक्रिया के फलस्वरूप विद्या गतिमान रण चिन्ता की नयीन विद्याओं और दृष्टियों का उदघाटन हुआ। वगातिक अनुसंधान म एक गत्राव स्वस्य नग्नय बना रहा। मिद्धाता की स्पष्टता और सुरोधता व तित उपाहरणा तथा प्रत्युदाहरणों की राज और व्यवस्था भी आस्त्र का एक अम बन गया। जवन बौद्धिक साधना के साथ प्रतिभा उदभावनाओं का योग हुआ। कभी उपाहरण मोत्र गए कभी उनका सजन किया गया। बुद्धि और प्रतिभा व इन योग न आस्त्र का सोर और जीवन से सम्बद्ध कर दिया। हम जतिन आस्त्रीय उपायो म मोविन योगदान करने वाला (उत्भावक) उनका आश्रयन विस्तार करने वाला (व्याख्याता) उसम विन और उसका भागोपाग दान करने वाला—य सभी धाराय व कर्म-आत्र म आ गए। इन समस्त रूपों की परम्परा पर साप म विचार कर ता समीचीन होगा।

ज्ञान के विभिन्न क्षेत्रों में आस्त्रों का प्रणयन हुआ। आस्त्र का अत्र और उमका दायित्व वन्त विद्या है। हम आत्र का सम्बन्ध आस धातु से है। विद्या अथ ही

१ छ वेत्ता का सर्वप्रथम उल्लेख पार्विश शब्द (मासेर न संस्कृत) में हुआ है (Maxmuller Hist of Ancient Skt Lit London 1860 p 112 113) अत्र - पत्तिप में भी वेत्ता की उवाह (Winternitz Hist of Indian Lit Vol I p 269 Calcutta 1926) राजा के लिए वेत्ता अर्थात् आश्रयक बताया गया है। (कोश ध अत्र २॥ ११।१६) आश्रयन धाम्त्र मं टा वाय वेत्ता का उल्लेख है (११। १२० २१ तथा ४। ११)। आश्रयक भारतीय बौद्धिक ज्ञान की गतिविधि वेत्ता म प्रतिबिम्बित है।

मन्मथूर द्विष्टा आश्रय रवे सरज्ज विष्णु पृ १ ६ विररिस्टा द्विष्टी आश्रय इति यत वि रचर नि १ १ १ २६८

विष्णु इति वया विष्टिकल स्ट। जे वन ट फानदिक आश्रयवशा म आश्रय विष्टा अमरिचन १६२६ पृ २४

शास्त्र है।<sup>१</sup> जा ग्रंथ किसी विविष्ट जीवन गति के सम्बन्ध में आता है, वे ही शास्त्र हैं।<sup>२</sup> जिस विषय से उस शास्त्र का सम्बन्ध होता है वह शास्त्र के साथ बहुधा संयुक्त हो जाता है।<sup>३</sup> आचार्य दंडी ने शास्त्र का (सम्भवतः उनका तात्पर्य काव्य शास्त्र से ही है) महत्त्व बड़ी दृढ़ता से प्रतिपादित किया है। शास्त्र से अनभिन्न गुण-दोष विवेक से ग्रन्थ ही रहता है। ज्ञान के विविध क्षेत्रों में शास्त्र की रचना हुई है। शास्त्र का उद्देश्य विभिन्न क्षेत्रों में विद्यार्थियों या जिज्ञासुओं की व्युत्पत्ति ही है।<sup>४</sup> ज्ञान के आदान-प्रदान के माध्यम आचार्य का जो महत्त्व था वही शास्त्र ग्रंथों को प्राप्त हुआ। शास्त्र की अनुशासक तथा दार्शनिक क्षमता अत्यन्त मानी गई। शास्त्र के प्रति विश्वास आस्तिकता का ही एक भाग बन गया।

शास्त्र के क्षेत्र में आचार्य का रूप उद्भावक का ही नहीं था उसका व्याख्यान भी शास्त्र के अन्तर्गत ही आता है। उदाहरण के लिए पाणिनि व्याकरण के क्षेत्र का उद्भावक आचार्य कहा जा सकता है। पर वातिकार कात्यायन या महाभाष्यकार पतञ्जलि को भी आचार्य की कोटि में ही रखा जाता है। कात्यायन ने शास्त्र की ही रचना की। महाभाष्यकार ने वातिकार पर टिप्पणी करते हुए लिखा है कि सिद्ध शास्त्र में सिद्ध शब्द शुभ है। प्रायः इस शास्त्र से शास्त्र का आरम्भ किया जाता है। इसमें शास्त्रों की सफ़रता निश्चित-ही हो जाती है। पतञ्जलि ने इस शास्त्र की रचना का कारण भी लिखा है। कात्यायन के समय में पूर्व उपनयनोपरांत ब्राह्मण का सर्वप्रथम व्याकरण की शिक्षा दी जाती थी। तदनुसार वेदाध्ययन आरम्भ होता था। कात्यायन और पतञ्जलि के समय में प्रथम उलटा पहलू बढ़ ही पड़ाया जाता था और व्याकरण के प्रति उत्साहीनता बढ़ता जान लगी थी। विद्यार्थियों का तब यह था कि शास्त्र हम वेद से और लौकिक शब्द प्रयोग व्यवहार से सीख लते हैं। अतः व्याकरण का अध्ययन व्यर्थ है। कात्यायन ने एक विविष्ट और विकसित शास्त्र के प्रति यह उत्साहीनतामय प्रतिपत्ति रखी और उन्होंने (आचार्य कात्यायन ने) शास्त्र का सृजन किया इसमें व्याकरण के महत्त्व का विशेष रूप से प्रतिपादन किया।<sup>५</sup> व्याकरण

१ निदेशग्रन्थया शास्त्रम् । अमरकोश

२ निदेश आशा शास्त्रेण शास्त्रम् । नामलिङ्गानुशासनम् पूना १९४१ पृ० २१३

३ The word शास्त्र is often found +ish after the word denoting the subject of the book or is applied collectively to the whole department of knowledge काव्यशास्त्र a poetical work or poetry in general (*Skt Eng Dictionary*, Sir Monier Williams)

४ गुणोपाशास्त्रम् च य विभन्ते नर । किमन्याधिकारान्ति रूपमेवावलम्ब्यु । अतः प्रज्ञा व्युत्पत्तिमिच्छन्तः सूर्य । वाचा विविधमज्ञाया निवन्धु शिष्यादिन् ॥ (दण्ड)

५ R G Bhandarkar *Collected Works* Vol I (Poona) 1933 Page 138

६ नागाजी भट्ट ने कहा 'शास्त्र का अर्थ व्याकरण के उपयोग की दृष्टि से ही माना है। पर शास्त्र का इस प्रकार का अर्थनक्वच स्या उचित नहीं प्रोक्तम्। पतञ्जलि ने इस शब्द का प्रयोग स्या व्याकरण शास्त्र के लिए ही किया है। (वद)

व महत्त्व और उपयोग की स्थापना व्याकरण में उन्मादीर विद्यार्थियों को प्राणित करने के लिए की। प्राण्य के निष्पन्न नियमों को जिज्ञासुओं के लिए के लिए मर्म सुगम बनाना भी प्राण्य भाग्य गया। कात्यायन का मुख्य कार्य पाणिनि नियमों का सम्पादन और मरमाकरण ही था। साथ ही कात्यायन का उन्मादीर को प्राण्य भाग्य भी दा स्थला पर पतञ्जलि के बड़ा है। कात्यायन का कार्य है किमीक गिज्ञाता के अनुसार कथन करना। कात्यायन करने वाले का कार्य अभीष्ट गिज्ञाता-सूत्रों का स्पष्टीकरण परिवर्द्धन कथवा उनका अनुमोक्षण करना जाता है। कात्यायन के म उन्मादीर को अनुत्तर भी बड़ा गया है। कात्यायन के मया यदुक्त कम स्थला पर किया है कि पाणिनि के सूत्रों के पूरक कथन किए हैं। इन प्रकार कात्यायन की सुविधा के लिए पाणिनि के सूत्रों का माय विगोचरण करने वाला कहीं कहीं पूरक कथन कहकर उनको और अधिक स्पष्ट करने वाला कात्यायन भी पतञ्जलि के द्वारा आचार्य नाम के अमिहित किया गया। पूरक कथन भी पाणिनि के सूत्रों की मूल आत्मा का पहचान करने के लिए किए हैं। कात्यायन की रचना को प्राण्य न भी स्वीकार किया है।

कात्यायन के प्रथो तथा पाणिनि के प्रथो का व्याख्यान पतञ्जलि ने किया। पतञ्जलि के महाभाष्य में याक्यास्याम का अन्वय स्थला पर प्रयोग मिलता है। व्याख्यान के अतिरिक्त प्रत्याख्यान का भी कुछ स्थला पर प्रयोग मिलता है। पतञ्जलि ने कात्यायन कर्ता के कार्य का भी स्पष्टीकरण किया है। व्याख्यान का कार्य कथन सूत्रों का मयाजक प्राण्य में विनियमन करना नहीं है वरन् उनका काम उदाहरण प्रत्युदाहरण देना दा लो के समझाना और उनका उपयोग करना है। एक प्रकार से पतञ्जलि का कार्य वातिक का और अधिक विस्तार के साथ समझाना ही था। उदाहरण और प्रत्युदाहरणों का युक्त योजना स्पष्टीकरण और विगोचरण करना व्याख्यान आचार्य के मून आचार्य पतञ्जलि ने स्वीकार किए हैं। साथ ही पूरक नियम उन्मादीर भी उनका कार्य है (दृष्टि)। पूरक नियम भी किमी मौनिक उन्भावना की दृष्टि में नहीं अभीष्ट सूत्रों के स्पष्ट और निष्पन्न तत्त्वा का प्रकाशित करने की दृष्टि में किए जाते हैं। पतञ्जलि का मुख्य काम कात्यायन का मण्डन करना नहीं था। कम दृष्टि से कात्यायन भी पतञ्जलि के समकक्ष है। उसने किया है कि ये पूरक नियम पाणिनि के नियमों का उत्तमन नहीं करने। कम प्रकार कात्यायन व्याख्यान आचार्य के अर्थ है

१ प्रयाजन्मन्वायथत् । आहास्त्रिन् मवन्पन्गरवाचत् ॥ I p 22 a (b)

तथा

एव तथा वात् अनुपमत् सख्यत् वत्त नि । नत्त वात्पयमधिकत्वा अन्वत्तत् इति । एव एव न्यायाय । शिकारा अनुवर्तेर्त्तान् ॥ (III p 58a)

Prof Kielhorn Ind Anti Vol V p 247 Notes

२ महाभाष्य I p 13a I p 47 I p 49 III 67a आचार्य स्थला पर इनका प्रयोग मिलता है।

३ न क्वलानि चवत्पत्तिन् यात्पयान वद्धि आत् पञ्जलि । कि नहि । उदाहरण प्रत्युदाहरण वाक्यावाहार शब्देन समुचित व्याख्यान भवत् । (I p 189)

४ वातिक मून ५३१६

श्रीर तत्सम्बन्धी रचना करन वाना भी आचाय सनक हाता है । छ बदागों म दहा सिद्धांत काय कर रहा था ।

व्युत्पत्ति की दृष्टि से इसका वि नपण दम प्रकार हागा वि+आ+ह्या । इसका तात्पर्य होता है विस्तृत स्पष्टीकरण । आ+ह्या का जो अर्थ है उसका निषध करन क लिए 'वि' पूव प्रत्यय प्रयुक्त नहीं हुआ है । प्रत्युत वह अर्थ क विगिष्टय की वृद्धि करता है । आ स यह अर्थ है कि अभीष्ट सिद्धांत क पाम सभी सम्भव मागों श्रीर दृष्टिकोण स पहुचना । 'शास्त्र क इस व्याख्यान नामक अनिवाद्य अंग की रचना श्रीर उसका विधान करना आचाय का एक प्रमुख काय है । इसीलिए अमरकोश न कहा मत्र व्याख्यादाचाय ।'

किमी शास्त्र विषय की व्याख्या श्रीर उसका विगिणीकरण क लिए उपयुक्त उदाहरणा को व्याख्याकरण न काय स भी ग्रहण किया ह । पतञ्जलि न स्वय का य गनी म लिखे अनेक उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । वररुचि रचित का य की आर पतञ्जलि न मकेत किया है । वररुचि का कुछ विगान् कात्यायन म अभेद मानत ह । अलकृत गनी म त्रिव अनेक पद्या या पद्यागा का पतञ्जलि न उदाहरण प्रत्युदाहरणा क रूप म उपयोग किया ह । य पद्या पतञ्जलि रचित भी हा सकत है श्रीर पतञ्जलि स पूव वर्नी किमी अर्थ कवि क भा । पर दम सम्बन्ध म निश्चयपूर्वक कुछ गहीं कहा जा सकता । प्रयुक्त उदाहरणा का रचना एक सुनिश्चित छंद विधान क अनुसार हुई है ।' इस प्रकार उपयुक्त उदाहरणा की योज अथवा रचना कयाकरण आचार्यों की परम्परा म आरम्भ स ही मिनती है । स्पष्टीकरण श्रीर विगिणीकरण क लिए उदाहरणा का संयोजन अनिवाय जाना है ।

व्याख्या की परम्परा म ही यह तत्व नही मिलता दान क दान म भी तका प्रचलन रहा । जमिनी क पूव मीमामा सूत्र दान क अथ म वही स्थान रखत है जा प्राकरण क क्षत म पाणिनि क सूत्र रखत है । पूव मीमामा सूत्रा के स्पष्टी करण श्रीर विगिणीकरण क लिए गरर न लगभग २००० उदाहरण लिए हैं । गरर भाष्य का दम अथ म वही मत्त्व है जो पतञ्जलि क महाभाष्य का । गरर क द्वारा पयुक्त उदाहरणा क तीन मुख्य अान हैं श्रुति स्मृति तथा लोका ।' अनेक उदाहरण

१. इसका Is detailed explanation here the prefix वि does not negate but specifies the meaning of आ- The approach (आ) is traced in all its possibilities (Betty Heimann *The Significance of Prefixes in Skt Philosophical Terminology* p 66)

० विनाय का, ब्रह्मरा, श्लोक ७

३ वररुचि कथ्यम् । मन्त्रभाष्य ६। १०१

४ समापन शास्त्री, वास्तव संग्रह भूमिका, प० १

५ Kishorn न २१० पारा का छ ७ आरि य विषय में विवरण दिया ह (*Indian Antiquity*, Vol XIV p 3266 Vol XV p 22) इनके अनुसार अथा—४०

अथा के मन्त्र—० गानि मं २० पत्र आ ० ।

६ Citations in *Sabar Bhashya* by Damodar Vishnu Garge



मद्य म है। कुछ पद्य या काव्य म भी है। स्वयं गबर १ उदाहरण देने क अगले काय क विषय म संवत् किया है।<sup>१</sup> कुछ काव्य क उदाहरणों क शीर्ष क सम्बन्ध म कुछ पना नहीं बनता है। हो सकता है इनम स कुछ गबर क स्वर्गिय उदाहरण ही हों। इस प्रकार दगा क क्षम म भी उदाहरणों की संयोजना गार्सन और प्राचायन की अनिवाय परम्परा है।

प्राख्यात प्राचास्यात उदाहरण प्रत्युदाहरण गार्सन क अभिनय धम बन गए। प्राचीन साहित्य म स्वाध्याय क विषयो म व्याख्यान क माप इनका स्थान मिसता रहा। इतिहास पुराण आदि एक प्रकार स धम गान क दृष्ट विषया का स्पष्ट करन वाली उदाहरण-परम्परा म ही घात है। गतपथ ब्राह्मण न १० विषयों की सूची दी है। इनम ४ वदों क अनिर्दिष्ट छ विषय इस प्रकार हैं अनुगामनाति विद्या वाकावाक्य निहाम पुराण नारायणा। अनुगतानानि स तात्पर्य विभिन्न क्षत्रा म विवर्गित गार्सना स है। वाकावाक्य छंद व्याकरण जस विषयो स सम्बद्ध है। अंतिम तीन उदाहरण व्याख्यान परम्परा क विषय हैं। छांदाग्य १६ विषया की सूची गना है।<sup>२</sup> ४ वद वद वः (वाकरण) पितृय राति दव वाकोवाक्य एवायन दवविद्या ब्रह्मविद्या भूत विद्या क्षत्रविद्या न प्रविद्या सपविद्या दवजन विद्या इतिगत तथा पुराण। बह्ना रण्यक की सूची इस प्रकार है ४ वद इतिहास पुराण विद्या उपनिषद् सूत्राणि अनुयाख्यानाति तथा प्राख्यानानि। इस सूची म सूत्रो—सम्भवन धमसूत्रा की जहा स्थान मित्ना है वहा प्राख्यान तथा अनुव्याख्या का भी स्थान मित्ना है। त्रिना पन गार्सना स अलगत हुए सूत्रा का निम्नम जान सम्भव नहीं है। मडकोपनिषद् न परा अंपरा जान भय का बाट लिया और अंपरा म ४ वद तथा छ वेत्तों का सम्मिलित किया। इस प्रकार इस उपनिषद न कवन वैदिक साहित्य का लिया और स्पष्टीकरण तथा विगदीकरण करन वाल माध्यमा इतिहास पुराण व्याख्या आदि को छोड लिया। कौटिल्य न चार विद्याओं का विधान किया।<sup>३</sup> प्राचीनकी (इसम साख्य योग तथा वाकायत आत है) त्रयी (वः अथववद इतिहास) वार्ता (कृषि पशु पानन वाणिज्य तथा दण्ड नीति)। इतिहास वद क अंतगत पुराण इतिवत्त प्रास्या उदाहरण धम गार्सन तथा अथगार्सन रख गए है। इस प्रकार कौटिल्य न पुरानी परम्परा क अनुसार गार्सन और उसक विगदीकरण क माध्यमो प्रास्या उदाहरण पुराण आदि को विषय सूची म रखा। प्राख्यायिका वस्तुतः किमी गार्सनीय तत्त्व की व्याख्या म प्रयुक्त कथाए

(Poona 1952) Introduction

१ चरित्री ग्ल ४। १। ४। १। २। ४ = प्रांति

शनपथ ११। १।

दा १२७ ७। १।

४ उदाहरणक १४

५ मन्वापिषद् १। १। १।

६ Dr H L Hartmann का The Poona Orientalist Vol XV Nos 1 to 4 म १० ४७ पर उद्धरण।

ही हो सकती थीं। 'निहाम' का वद व माय 'तना' आव'यक समझा गया कि 'म पचम वद ही कह लिया गया।' कौटिल्य ने 'म वद की छ' गास्त्राण गिनाकर जम छ दगागा की परम्परा का निवाट किया हा। पुराण म प्राचीनता का भाव निहित है। गम्भवत भौगिक परम्परा स चने धान वाल अनक आस्यान उपास्यान वदिव साहित्य तथा गाम्त्रा व स्पष्टीकरण व दिये अग्रस्तुत मामगी की नाति अपना लिए गए। ब्राह्मण ग्रथा और मूत्र-बद्ध 'गास्त्रा व साथ 'म मामगी का सयोग हाता गया। पुराण उगाहरण आति की परम्परा इतनी बलवती हुई कि महाकाव्य व लिए इमन स्वतंत्र भूमि प्रस्तुत का। य व' गिना व माध्यम बन।' य अत्र उमक विगणीकरण व साधन मात्र नहीं रह उमक प्रचार व भी माध्यम हो गए। 'स माध्यम स ही वद गिधा समाज व सभा बगों की सम्पत्ति बन सकी। 'म मत्रका यही मार निकाला जा सकता है कि व' गास्त्र व साथ व्याख्यान-उगाहरण-परम्परा अविच्छिन्न रूप म सम्बद्ध रही और 'म परम्परा का विविध स्राता और कल्पना स समृद्ध और उपयुक्त बनाना भी प्राचाय का काय था।

'म परम्परा म काव्यगास्त्र का क्या स्थान है ? 'मका स्पष्ट और उपयुक्त उत्तर राजाखर ने काव्यमीमामा म दिया है। राजाखर व अनुसार वाङ्मय को दो भागा म विभक्त किया जा सकता है गाम्त्र और काय गास्त्र का प्रकार का हो सकता है अपौरुष्य तथा पौरुष्य। वद (४) उपवद (४) तथा वदाग (६) अपौरुष्य गाम्त्र हैं। राजाखर व अनुसार काय गास्त्र सातवा दगाग है। पौरुष्य गास्त्र म पुराण आवातिकी पूव भीमामा उत्तर भीमामा स्मृति १४ या १८ विद्याए आती हैं। इम प्रकार छ'दगास्त्र यदि छ वदागो म था ता काय गास्त्र सातवा वदाग है। यदि वदाग है ता इमकी उत्पत्ति अपौरुष्य होनी चाहिए। कायमीमामा व आदग की िव्य परंपरा इस प्रकार वताई गई। पहन गिव न इम काय विद्या का उप'ग अपन चौमठ गिप्यो का दिया प्रथम गिप्य स्वयभू ब्रह्मा'व न अपनी च्छा स उत्पन (प्रयोजि) द्वितीय बार अपन गिप्या का यह उप'ग दिया। 'नम एक कायपुरुष भा था। काव्यपुरुष का यह आ'ग मिला कि भू भुव तथा स्वग म 'मका प्रसार करो। काव्यपुरुष न समस्त विषय को 'म भागा म विभक्त करक अपन महत्साध आदि िव्य सनातका को 'मका उप'ग लिया। गिप्यों न १८ भागो म विभक्त विषय का घनग घनग ग्रथा व द्वारा प्रचार किया।' इसी विभाजन की काव्य

१ छान्दाग्य ७।७ मुक्तनिपात ३।७

२ Maxmuller Hilbert Lectures p 154

३ महाभारत १।२६७

४ इमन दूसर आयाय का नाम 'शास्त्राणि' है। इमी-आधार पर य सूचना भी गई है।

५ मत्र करिरहरन महशान 'वनानामीर' अतिकमुक्तिभ गीतिनिगय सुवखनाभ 'जानुमा नि' प्रचला यना यम'ति विष विराग' शस्त्रव' ५ शप वागत्र पुलम्य, औपम्यनीपकाया अ'गिय पाराग' प्र'र'नपसु थ्य 'मवावकारिक बुवर वैना'क का'द'न रूपकनिष्पगाय मान स'धिकारि'र्द 'रि'र'र'र'र'र' पाथिवरण विषय गुणीपागनिवमुप'सु आप नपा'कं व'म'न' — इति। (काव्यमीमांसा, प्र'ग' आयाय 'गास्त्रम'ग' )।

घनकार क पन्नात् साहित्य दस्त मिलता है। साहित्य की उत्पत्ति व धीरे-धीरे नामहू क साचार्यो गहिनो काश्य म मिसा है।<sup>1</sup> इसका तात्पर्य है कि दशमय साहित्य ही वाच्य है। साचाय गुणक त इगका घोर स्पष्ट करत हुए निगा गन् घोर घष गी साभागात्रिनो स्थितिया का साहित्य ही वाच्य है।<sup>2</sup> कुनक न इग साहित्य का घषन वाच्य तघण म गमाविष्ट किया।<sup>3</sup> राजगगर (नवम गी) त साहित्य विना का निर्दोष किया है। रयक (११वीं घनी) ने घषन घष का नाम साहित्य मीमागा तथा विचवनाय (१४वीं गनी) त घषन घष का नाम साहित्य स्पष्ट रगा। साहित्य क प्रयोग न घस्तुत घनकार क घनानिहित घष का ही घोर स्पष्ट किया। गन् घोर जय की नियमानुन स्थिति पर बर्याकरण का साक्ष्य साचायिग ना तथा इनकी गुन्तर मनोहासिणी स्थिति पर घनकार साक्ष्य। साहित्य दस्त म कवि की भाषा क दानो घष दस्त घोर घष गना हा घानित है पर उग घष म नही जिनम वय्याकरण क भाषा क साचाय। साचाय की घनकृत स्थिति ही यही घमिने है। साहित्य क घतगत नाटक भी गमाविष्ट है रयक क साहित्य मीमागा घष म वाच्यशास्त्र तथा नाटक दोना का विवचन है। भनृहरि क प्रमिद्ध साक्ष्य म साहित्य दस्त सम्भवत विस्तृत घष म ही प्रमुक्त हुआ है। कुछ काग म भी साहित्य का यही घष दिया गया है।<sup>4</sup>

पीछे वाच्य शास्त्र गन् इस विद्या क लिए प्रमुक्त हान सगा। शास्त्र की व्युत्पत्ति पर पीछे विचार किया जा चुका ह। इसक घष की दो ि गाल हैं सागत करने वानी पुस्तके ही शास्त्र हैं; दूसरी िगा है गू तत्व क विवेचन विनपण घोर प्रतिपादन की। इनम स प्रथम घष म शास्त्र गन् का प्रयोग भोज (११वीं घती) न किया।<sup>5</sup> इसक अनुसार विधि निषेधमय अनुशासनघष ही शास्त्र हैं। विधि निषध पान क छ सोनो का भोज न उल्लख किया है वाच्य शास्त्र इतिहाम वाच्य शास्त्र वाच्यतिहाम तथा शास्त्रतिहाम।<sup>6</sup> चाहे वाच्यशास्त्र का विधि निषधमय

- १ काव्यनिकार १।१६
- साहित्यमनयो साभाशालिता प्रनिकायसी।
- अनूनानतिरिक्तावमनाहारिण्यवस्थिति ॥ बक्रोतिजाविन १।१७
- ३ वहा १।७
- ४ परमा साहित्यविद्या इति यायावग्य। काव्यमीमागा १ ४
- ५ साहित्यमगानकनाविहीन साचायगु पुद्दविषाणडान ॥
- ६ प्रकृतिवात् (वगला शास्त्रकोरा) साहित्य (साहित्य + य - भावे श्वाप्ति) म ममग जिलना, शास्त्रास्त्र वाच्यशास्त्र स कधावराय एकत्रियान्वयित्व।
- ७ सामान्य शास्त्र।
- ८ सामनाय शास्त्र
- ९ यन्विबो च निषधे त व्युत्पत्तेरेवकारण।
- तन्ध्येय विरनेन लोकथाना प्रवन्त ॥ सरस्वतीकवटाभरण २।१ ८
- १ काव्य शास्त्रेतिहासी त वाच्यशास्त्र तदव त।
- काव्येतिहाम शास्त्रेतिहामस्तन्पि पदविन ॥ वना १। ६

अथ कुछ विद्वानों को माय न हा पर वाय व साय शास्त्र दा द क मयोग म  
 न्स विद्या की प्रतिष्ठा म अवश्य वृद्धि हुई। शास्त्र की गरिमा और शास्त्र सुनभ  
 मूहम विवचना इसम आन लगी। इस प्रकार वाय और अलवार व वेद पर  
 एक मुनिदिक्षत शास्त्र विवसित हुआ। याकरण वनात आदि का शास्त्र के रूप  
 म जो प्रतिष्ठा प्राप्त थी वही प्रतिष्ठा अलवार क्षत्र व मूढय आचार्यों की  
 वनानिक उपनिधिया मूहम विवेचन और तकपूण सयोजन व फलस्वरूप अलवार  
 शास्त्र को भी प्राप्त हुई।<sup>१</sup> अथ नान क्षत्रो म जिस प्रकार शास्त्रीय उदभावनाओ  
 व्याख्याओ तथा समीक्षाओ का नकर गाला प्रगाखाए फली उसी प्रकार इन क्षत्र  
 म भी पयाप्त विकास हुआ। भरत स लकर जगनाथ तक संस्कृत काव्यशास्त्र की  
 जो वनानिक लपला घिया हृद् व उनततम शास्त्रों की पवित म वायशास्त्र को  
 प्रतिष्ठित करने म समथ हैं। काव्यशास्त्र की एक दीध परम्परा है।

वद म साहित्य शास्त्र क बीज प्राप्त नही होते। पर वेद को देवों का अमर  
 काव्य अवश्य कहा गया है।<sup>२</sup> अर्पोरुपय वद क आदि निर्माता को भी अनेक स्थानो  
 पर कवि कहा गया है। वस्तुत वद म वायगत ममस्त सो दय उपकरण प्रयुक्त  
 हुए हैं। वदा म प्रयुक्त अलवारों पर गाथकाय भी हुआ है।<sup>३</sup> सबम मुख्य अलवार  
 उपमा है। एम प्रकार क सक्डा म त्र पाए जात हैं जिनम साहित्यशास्त्र व मौलिक  
 तत्त्वा का सुंदर समावग हुआ है। वदा म मम्बद्ध विषयो को छ वगों (वनागों) म  
 विभाजित किया गया गिशा कप व्याकरण निरुक्ति छत् और ज्योतिष। इनम  
 साहित्य नहीं है। पर छदशास्त्र का अवश्य रखा गया। एमस छद विचार की  
 प्राचीनता स्पष्ट हो जाती है। कुछ विद्वान् छद ग स्त्र का वाय शास्त्र स भिन्न  
 समझत हैं।<sup>४</sup> इस वदाग की वलिक मत्रा म प्रयुक्त छत् वोन और वि लेपण क लिए  
 आवश्यकता थी। पर वद क सौन्दर्योपकरण व तात्त्विक विलपण क लिए कभी  
 वदाग का विकास नहीं हुआ। कुछ विद्वान् छत् शास्त्र क गणित विधान को काव्य क  
 व्याकरण स, तथा उसक प्रभाव बाल भग को वायशास्त्र स सम्बद्ध करने क पय  
 में है।<sup>५</sup> उपनिषदों म ती काव्योपकरणो विनापत अलवारा का प्रयोग विषय क  
 स्पष्टीकरण क लिए बहुत बढ़ गया। आत्म-परमात्म तत्त्व का बोध तुननात्मक

१ मशिव लक्ष्मीधर कने, अण्णार मन्त्रा, उन्नेन १९४० की भूमिका (१)

२ परय दवय काव्य न ममार न जीवति अथ०० १०।८।३०

३ विराय रूप स द्रष्टव्य 'Abel Bergaigne Syntax of the Vedic Compari  
 son (ABOR9 Vol XVI, p p 232-36) Some observations on the figures  
 of speech in the Rgved'; (ABOR9 Vol XVIII pp 61-63 and pp 256-  
 288 Translated by Venkat Subbiah) Rgvedic Similes H P Velankar  
 (Similes of the वाग्जव JBBRAS Vol 14 1938) तथा Similes of the Atris  
 (JBBRS Vol 16 pp 1-42 आदि) ४ आचार्य विश्वेश्वर-काण्णवारा भूमिका ३

५ C M Gaylay Methods for Literary Criticism pp 245-246

६ २।० भगीरथ मिश्र, हिता काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० ४

७ जेस द्वादाय ६।८।२, काण्णक उप० १।१।३

अनकारा व माध्यम से ही सम्भव था। पुराण महाकाव्य तो अनकारो से मन्त्रण। पीछे व महत्त्व का न्य साहित्य में छन्द अनकार का प्रमुखा हाता म्। न्य प्रकार काव्य में उपकरण की महता बढ़ता म्। काव्य उत्तरात्तर नात्रिय हाता म्। उपाहरणा व रूप में उमकी जा परम्परा मिनी है वर काव्य का पीपनाीन म्पिा वी क्षीर भी दाध कर देता है। पतत्रनि न काव्य गनी में तिम धार पद्या उपा हरणवत् प्रमुक्ता रिण है। वविधा व म्प्य ध में भी पात्रनि ने वनिपय उपाग रिण है। पात्रनि ने छन्दाम्प का स्पष्ट उत्पत्त किता है। उपाता पद्या की रचना मुनिचित का प नियमा म सुक्त जा पदती है। हा मता है कि पात्रनि व ममय या उत्तम पूव का र्ग द्य प्रकार का नाम्प रहा हा। जिन उपाहरण है मदी रचना एक मुनिचिता छन्द विधा व अनुकार म् है। वन्दि या महाकाव्यो में प्रमुक्ता गला म रचित पद्या व स्थान पर न्य प्रकार का छन्दावत् अन्तु काव्यांगा का पतत्रनि द्वारा प्रमुक्ता होना काव्याम्प व त्रिहाग का दृष्टि म धन धाय म एक महत्त्वपूण घटा है। वकी रचा व व व्याकरण व उपाहरणा वी धारा व निण ही नही हई होगी। पतत्रनि न द्य वाय धारा का स्वीकार रिया यह भी धन ध प म महत्त्वपूण बात है।

उक्त विवचन से स्पष्ट हो जाता है कि छन्द अनकार धारि काव्य उपागत का प्रयोग उत्तरात्तर वन्ता गया। वन्दि साहित्य की परम्परा में प्रमुखा धार्थिक वण्य विपदा की र्गी। अत एव उपकरण म सुक्त गनी का विवचन गीण रहा। पुगाण भी न्भी परम्परा व विणोकरण धय है। मनाकाव्यो म भा धार्थिक तत्व मुख्य हूण। पर एक लौकिक का व की गमी परम्परा भी धन र्गी थी जिनम काव्योपकरण का समकारी प्रयोग ही मुग्य हाता जा रहा था। नरी सूचना पतत्रनि व उपाहरणा म प्राप्त हो जाती है। यद पुराण नाम्प की धारा म काव्योपकरण का प्रयोग स्वाभाविक था जिनका त्थय तोत्य विधा उनता गही था जितना विपय का स्पष्टाकरण। नर प्रयोग म दृष्टि कलात्मक गनी मी त्य व म्पान की नही

१ छन्दावत् कवय युवनि। महाभाष्य १।१।३

महाभाष्य १।१।३

३ कालिदान *Indian Antiquity* Vol XIV p 3266 Vol XV p 279

४ The richness and elaboration of metre in striking contrast to the comparative freedom of Vedic and epic literature must certainly have arisen from poetical use if cannot have been invented for grammatical memorial verses for which a simple metre might better suffice Brajnath Puri *India in the June of Patanjali* (Bombay 1957 p 213)

५ The Prime purpose of a figure of speech is to familiarise the unfamiliar The poet speaks of certain experiences which are originally personal But as the criterion of art is universality he tries to familiarise to us his personal experiences Thereby he removes the

थी वौद्विक उपयागिता की थी। जब इनके प्रयोग का लक्ष्य सौंदर्य विधान होने लगा तभी इन सौन्दर्योपकरणों का व्याख्या समीक्षा अप्रतिष्ठित होनी लगी। साथ ही इन उपकरणों की व्यवस्था अपने आपमें यथेष्ट अव्यवस्था रूप में लक्ष्य बनने लगी। इस वस्तुस्थिति से अलंकार के पारिभाषिक शास्त्र की आवश्यकता और सम्भावना हो गई। इनके वार्तनिक नियमों का आरम्भ इसी स्थिति में हुआ।

सम्भवतः यास्क और पाणिनि के पूर्व ही इस शास्त्र का आरम्भिक सूत्रपात हुआ गया होगा। यास्क ने अपने पूर्ववर्ती आचार्य गार्ग्य के मत का उल्लेख करके उपमा का लक्षण दिया है—यद अतत तत्सदृशं तदासा वम इति गार्ग्य। ऊपर में मिन होने पर भी जो उसके सङ्ग हो वही उपमान का विषय है। आगे यास्क ने इस आचार्य का मत लेकर अपनी व्याख्या प्रस्तुत की है। इसमें पूर्वाचार्य के सूत्र का विंगतीकरण ही हुआ है। फिर ऋग्वेद से एक उदाहरण अपने मत के पापण और स्पष्टीकरण में दिया है। निरुक्तकार ने उपमा के भेदों का भी उल्लेख किया है—वर्णोपमा भूतोपमा रूपोपमा मिथोपमा और लुप्तोपमा आदि। इस प्रकार यास्क ने काव्यशास्त्र के सभी तत्त्वों का प्रस्तुत किया—पूर्वाचार्य के मत का उद्धरण उसकी व्याख्या उदाहरण तथा वर्गीकरण। यद्यपि यास्क ने ब्रह्म उपमा पर विचार किया पर लक्षण में काव्यशास्त्र का रूप निर्धारित कर दिया। याकरण भी छे वदागो में एक है। पाणिनि ने अपने में पूर्व के व्याकरण आचार्यों का उल्लेख किया है पर उनके ग्रंथ आज उपलब्ध नहीं हैं। उद्दान उपमा आदि का कुछ विवचन किया या नहीं कुछ नहीं कहा जा सकता। पर पाणिनि ने उपमा का विंगद निरूपण किया है। पाणिनि ने उपमान उपमय सामान्य धर्म वाचक शब्द आदि का उल्लेख किया है। उपमा के श्रोता तथा श्रोतों के भेदों का भी पूर्ण निरूपण पाणिनि ने किया है। इस प्रकार काव्यशास्त्र के सूत्र सूत्र चाहें वदा में न मिलते हैं पर वदागो में उनकी स्पष्ट स्थिति मिलती है। पाणिनि के पश्चात् तो काव्यशास्त्र की अविच्छिन्न परम्परा चलती रही।

भरतमुनि ने पारिभाषिक दृष्टि से काव्यशास्त्र की रचना तो नहीं की पर

element of strangeness from his vision For this purpose the figure of speech becomes a potent vehicle and has been used as such from ancient times P S Sastri *Figures of Speech in Rgveda* (ABOR 9, Vol XXVIII 1947 p 34)

- १ निरुक्त तृतीय अर्थार्थ, तृतीय पाठ ११३ ३१८८ आदि
- २ उपायमा वा गुणन प्रत्यात्तनेन वा कनोयाम वा अपर्यायत वा उपमिमीने । (वन्ने)
- ३ तन्वृत्तन तरपरा वनगू ररानामि शयिरभ्यधीता ।  
इयं तं अग्ने नव्यमीमनीषा युक्त्वा रथे न शुरयन्मिरगे ॥ ऋ० १०।४।६
- ४ तुन्वाथेऽनुलापमान्यां तृतीयान्यतरन्याम् । अष्टान्यायी २। १३२  
उपमानानि सामान्यवचन । अध्या० २।१।१५  
उपमित न्यायानि सामान्याप्रयोगे । अध्या २।१।१६
- ५ अध्या० १।१।११६ १।१।११५, २।१।१० ३।१।११ ३।१।१४

रूपवाक्य का एक गौणयोग शास्त्र रचा। काव्य के विभिन्न घटकों और उपकरणों पर भ्रम न प्राप्तिक रूप में लिखा। रम निष्पन्न में आचार्य ने विचार रचित सा।<sup>१</sup> भाव विभाषण अनुभाव मन्त्रों का प्रति पर भा विचार में लिखा। दाग गुण रम आदि पर भी नामा र विचार मिलता है।<sup>१</sup> भ्रम मूर्ति की शास्त्रानुसार रूप की प्रतिष्ठा इस बात में प्रकट होती है कि इनका नाम पुराणों में पौराणिक विषयों में सम्बद्ध करके लिया गया है।<sup>१</sup> काव्यशास्त्र में भरत मन्त्र की पुराण कथा की धार निष्पन्न भी किया है। शास्त्र के रूप में उनकी प्रतिष्ठा इसमें प्रकट होती है कि नाट्यशास्त्र की पंचम वेद माना गया। पटमाहारीगहिता कथया द्वापराहारीगहिता के नाम में भी इनको अभिहित किया गया।<sup>१</sup> इसपर वृत्ति परम्परा के अनुसार इस गहिता कहा गया। भरत और भामह के बीच एक मघावा नामक आचार्य का उल्लेख यत्र तत्र मिलता है पर उनकी कोई रचना उपलब्ध नहीं है। भामह ने इस आचार्य के द्वारा निरूपित सात उपमा-दोषों के सम्बन्ध में चर्चा की है। साथ ही यथामन्त्र तथा उत्प्रेक्षा के सम्बन्ध में भी इनको उद्धृत किया गया है।<sup>१</sup> टीका में इस आचार्य का नामोल्लेख किया है। मघावी के दोष विभाग-सम्बन्धी सिद्धांतों की चर्चा भी उत्तरकालीन साहित्य में मिलती है। आचार्य मघावी के सिद्धांतों की सूचना और उनपर हाने वाली उत्तरकालीन चर्चा से मघावी के आचार्यत्व का मूल्यांकन किया जा सकता है। राजगल्लर ने उनको जन्माघ प्रतिभावान और कवि लिखा है।<sup>१</sup> उनके पदवाच भामह और भामह के पञ्चात् का शास्त्र और तत्सम्बन्धी आचार्यों की एक दीर्घ परम्परा आती है।<sup>१</sup> यह परम्परा लगभग २००० वर्ष की है। मरुत के अतिरिक्त नाक भाषाशास्त्र में भी इनकी कुछ परम्परा चली पर विधित। पालि में भी कुछ वाक्य यथो की रचना हुई।<sup>१</sup> छन्दशास्त्र पर अतोन्वय (=वृत्तान्वय) नामक प्रसिद्ध ग्रंथ

१ नाट्यशास्त्रम् अध्याय ६

२ वहां अध्याय १७

३ भरतपुराण ०४।०७ ३

४ विजयश्रीय १२८

५ शारदालनय ने इन दोनों संस्करणों का उल्लेख किया है। भावप्रकाशन

६ काव्यालंकार २।३६ ४ ८८

७ काव्यालंकार ११। ४ की टीका

८ नमिसाधु रत्न काव्यालंकार टीका २।२

९ काव्यमीमांसा, पृ ११ १२

१० आचार्यों की मरुत मूर्ति इन प्रकार की जा सकती है भामह (छठी शती) श्लेष (सातवी शती) बामन उद्ध (आठवा शती) रुद्र (नववी शती) आनन्दवन (नववी शती का मन्त्र) अभिनव गुप्त (१ वा शता) राजशरर (१ वा शता), कुन्तक (११ वी शती) धनजय (११वी शती १) वैमन्दि (११वी शती) भाज (११वा शती) मम्मट (११वी १२वी शती) रुच्यक (१२वा शती) विश्वनाथ (१४वी शती) जयन्त भानु (१४वी शती) रूपगोरवामी (१५ १६वी शती) अथर्वनीलित (१६ १७वी शती) पत्तिराज जगन्नाथ (१७वी शती)।

११ भरतसिद्ध उपाध्याय—पालि साहित्य का इतिहास पृ ५८४

मिलता है—चयिना स्वविर मघ रविलत (१२वीं गती)। इस ग्रंथ पर एक टीका कवनत्यजातिका भा मिलती है।<sup>१</sup> मघ रविलत की एक और रचना मुवाघालकार भी है। एम प्रकार छत्र और अलकारशास्त्र की परम्परा पालि म टूटत टूटत बच जाती है। प्राकृत और अपभ्रंश म शास्त्र की परम्परा अधिक बलवती तो नहीं टूड, फिर भी हमचंद्र का छंदांनुगामन काव्यानुगामन प्राकृत पमल वणरत्नाकर जम ग्रंथ हमारा ध्यान आकषित करत है। हिन्दी म भी काव्यशास्त्र क आचार्यों की एक नीध परम्परा मिलती ह। परिमाण की दृष्टि स भी यह शास्त्र शाखा अत्यंत समृद्ध है। अब तक १००० म ऊपर ससृष्ट क काव्यशास्त्र-ग्रंथों की खोज हो चुकी है। एनम म बहून म प्रकाशित हा चुक हैं और कुछ प्राचीन ग्रंथ मग्रहालयों म अप्रकाशित पव हैं।<sup>१</sup> हिन्दी म भी मकडा ग्रंथ मिलत हैं।

काव्यशास्त्र का ऊपर जा एतिहासिक विकास क्रम लिया गया है उस विषय गत विकास का आभास भी मिन जाता है। यास्क और पाणिनि न उपमा का जो विश्लेषण प्रस्तुत किया है वह अथ शास्त्रों क अग क रूप म है स्वतंत्र नहीं। भरत न नाट्यशास्त्र म काव्यशास्त्र क अंतगत आन वाले विषयों पर प्रासंगिक रूप म लिखा। नाटकों म प्रयुक्त एम व्यभिचारी भाव सात्त्विक भाव रसों क वण रसों क त्वता आदि पर विस्तृत विचार किया गया है बिभाव अनुभाव आदि का निरूपण भी वचानिक है। अलकार निरूपण काव्य-दोष गुण तथा एनक रस-मथ्यत्व पर साम्राय रूप म लिखा गया है।<sup>१</sup> इस प्रकार भरत म भी काव्यशास्त्र अपना स्वतंत्र अस्तित्व नहीं ग्रहण कर पाया।<sup>१</sup> सम्भवत मघावी या मघाविन्द्र न अलकारशास्त्र को स्वतंत्र रूप एना आरम्भ किया। पर एनका शास्त्र स्वतंत्र रूप म प्राप्त नहीं है कवन इनक तीन सिद्धान्तों की खचा आग क आचार्यों म मिनती है उपमा दापों पर तथा उत्प्रेक्षा और ययामस्य पर लिखत हुए मामह न तथा गत्र विभाग क स्वध म नमि साधु न एनक नाम और सिद्धान्त का उल्लेख किया है। एन सिद्धान्तों स किमी नाट्यशास्त्र म स्वतंत्र काव्यशास्त्र की स्थिति की सूचना मिलती है। नाट्य और पुराण स स्वतंत्र हाकर काव्यशास्त्र को पीछे स्पष्टत स्वतंत्र सत्ता प्राप्त होने लगी।

१ भरतसिंह उपायाय—वाचि माहितय का इतिहास पृ० ६१६

० अर्थां तथा आचार्यों का सूची क निष्क द्रष्टव्य हा मगारथ मिथ, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० ४१ ४७ तथा हिन्दी माहितय का बहू रतिहास (नाम्य समा, काशी), पृष्ठ माग, तृतीय स्कंध तीय, अनुध पवन तथा पृष्ठ अयाय।

० मन्थशिव एन० कत्रे—अलकार मज्ञा की भूमिका, पृ १

४ नाट्यशास्त्रन्, अध्याय ६-अयाय ७

५ वडा अयाय १७

६ मुद विमानों क अनुमार आनपुराण का माहितय भाग काव्यशास्त्र का सबसे प्राचीन रूप है। इम्मं काव्य क अलकार रस रति गुण पाप आर ध्वनि इत्यादि पर विचार मिलता ह। पर अब यह सिद्ध हा चुका ह कि एन बहून काल की रचना ह। (पृ० की० काण—माहितयपर की भूमिका पृ० )

७ इनका बालन ऊपर एतिहासिक परम्परा में लिया जा चुका ह।



भामहू दधी तथा वामन प्रभृति आचार्यों न नाटय को छोटकर दण का पागो को ता हूण शास्त्र रचना की है। अर्थात्तयोपत नाटय ग गाय मयत्त काव्यमना नगणा वन नाटय ने सावकार काव्य को गम किया। ये दोनों ही शास्त्र माहि य और अलकार आरम्भिक काव्यशास्त्रों व दह आधार वन। लक्षणा की परिणति अलकारों म हा गई। इसस इस शास्त्र का बल मित। इग परिवर्तन व कारण काय्य वना अपन स्वतन्त्र अस्तित्व मिद्ध कर सकी और नाट्यशास्त्र-प्रथिन विगणनाए अलकारों म समाविष्ट हो गद। भरत ने निर्दोष श्रययुक्त गुणों म सम्पन्न अलकारों तथा सगणों से युक्त होना आवश्यक बताया है। अलकार बवल चार मान गए।<sup>१</sup> उपमा व पाच भूत और स्वीकृत किए।<sup>२</sup> पर लक्षणा की सख्या ३६ है। इनका स्वरूप-वर्णन ता है पर परिभाषाए नही हैं। भामहू ४ अलकार बताते हैं पर ३ गुणों की चचा नही करत। इसस प्रकट होता है कि गणों का अलकारों म अतभाव हा गया। महाकाव्य<sup>३</sup> आख्यायिका तथा बया का अन्तर तथा काय्य व उपयोग<sup>४</sup> पर भामहू न स्वतन्त्र रूप स लिखकर अलकार शास्त्र की सुदृष्ट भूमिका प्रस्तुत की। भामहू न अलकारों की प्रतिष्ठा बहुत दृढता के साथ की।<sup>५</sup> साथ ही काव्य का वर्गीकरण भी दृष्टा—महाकाव्य नाटक आख्यायिका बया तथा मुक्तक। इस प्रकार नाटक को काय्य व अलकार रखा गया। आगे भी कुछ आचाय एस हए जो नाट्यशास्त्र और काव्य शास्त्र की मिली जुनी परम्परा का प्रतिनिधित्व करत हैं दण्डपकवार अन्तजय रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाटयदपण)। दण्डी ने कायादण व प्रस्तावना परिच्छेद<sup>६</sup> म का ११ लक्षण उमका वर्गीकरण भाषा व आधार पर साहित्य का चतुर्विध विभाजन काय्य गुण तथा उत्तम कवि व साधनों का उल्लेख किया है। आग के परिच्छेद<sup>७</sup> म अलकारों का विस्तृत विवचन किया गया है। अलकारों व माय दोषों का निरूपण करक का य व निर्दोष होने पर दधी ने बहुत बल दिया। अलकारशास्त्र अपन चरम पर उद्भूट व कायावकार सारसग्रह म पहुचा। भामहू ने ४० दण्डी ने ५ तथा उद्भूट ने ४१ अलकारों क निणय निरूपण म शास्त्र की रचना की है। उद्भूट ने दण्डी का अनुसरण उनना नहीं किया जितना भामहू का। भामहू उद्भूट और रदट की त्रयी न अलकार-सप्रदाय की भरत व परचात स्थापना की। इ-ही-क उद्योग का फल था कि का य

१ उपमा रूपक चव दीपक यमक यथा।

अलकारास्तु विज्ञेयारचत्वारो नाटकाः ॥१७॥४३

२ नाट्यशास्त्र १७।५ ५५

३ काव्यालकार १।१६

४ वही १। ५ ३

५ वही १।१

६ न कान्तमपि निभू य विभानि वनितासुरम ॥१॥ १३

७ सुगवधा-भिनयाथ तयैवारयायिकाकये।

अनिवद्ध व काव्याणि तेषुन पचोच्यते ॥ १।१८

८ तान्धमपि नापद्य काये दुष्ट कथचन।

स्यापु सुन्दरमपि विवत्रैणनेन दुभगम् ॥ कायाशा १।७

शास्त्र अपनो स्वतंत्र स्थिति प्राप्त कर सका। इन्होंने रस का जपना नहीं की। रसवत, प्रिय ऊर्जस्वित और समाहित—एक चार प्रकार के श्लकारों को रसबलकार माना गया और इन्हीं रस का अन्तर्भाव कर दिया गया।<sup>१</sup>

दशमी न गुणा का निरूपण और दापा का निराकरण अत्यन्त दृढ़ता से करके रीति सम्प्रदाय का बोजबपन किया। इसका पन्थवन वामन ने करके रीति सम्प्रदाय का स्थापना की। रीति की परिभाषा की गई।<sup>२</sup> विंगप पद रचना ही रीति है। माधुर्याणि गुणा के समावगम पद रचना विंगिष्ट होती है।<sup>३</sup> यही रीति काव्य की आत्मा है। इस प्रकार रीति और गुण का घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ गया। इस सम्प्रदाय ने श्लकार और रीति का तुलनात्मक निरूपण करके काव्य गोमा के उत्पात्क गुणों को श्लकारों का विंगप महत्त्व दिया।

वक्रांति सम्प्रदाय ने रीति के स्थान पर वक्रोक्ति की स्थापना की। यह एक प्रकार से गुणा की स्थापना के प्रति अनकार की उत्पत्ति और प्रबल प्रतिक्रिया ही कही जा सकती है। श्रुतजन इस सम्प्रदाय की स्थापना की। इसका बीज भी भामह और दशमी<sup>४</sup> के द्वारा वक्रांति के महत्त्व की स्वीकृति में ही है। रीतिकार वामन ने भी माधुर्यालक्षणा वक्रोक्ति<sup>५</sup> लिखकर वक्रोक्ति का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। पर यह महत्त्वात् एक श्लकार के रूप में भी वक्रोक्ति को मिली। वक्रोक्तिश्रीवित्तकार ने रीति का परिमार्जित रूप भी वक्रोक्ति के साथ समाविष्ट कर दिया।

रससंप्रदाय की सुदृढ़ स्थापना भरतमुनि ही कर चुके थे। पर नाट्य के क्षेत्र में यह स्थापना थी। भरत का विभावानुभाव-वर्णमिचारिसंयोगाद्रसनिष्पत्ति<sup>६</sup> सूत्र इस संप्रदाय का आधारभूत सिद्धांत था। रस सूत्र के आधार पर चार आचार्यों ने विद्वन्नायक-साध्या करके रस सम्प्रदाय की काव्यक्षत्रीय स्थापना की। महृ लोलनट, गुरुव भट्टनायक, अभिनवगुप्त। इसकी स्थापना में अभिनवभारती टीका का प्रमुख हाम रहा।

आनंदवदन ने एक प्रबल ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना की।<sup>७</sup> वयाकरणों,

१ रसवत्प्राप्तमप्यष्ट। सारात्परं यथा। भामह, काव्यालकार १६

२ भूय रसवत्प्राप्ति कस्तुन्यपि रसास्थिति। रसवत्प्राप्ति १११

३ विंगिष्ट पदरचनारिषि। काव्यालकार सूत्र १११७

विशेषा गुणात्मा। दशमी १११८

४ रसवत्प्राप्ति काव्यरसः। बड़ा ११। १६

५ काव्यगोमायो कथामो रसा गुणा। दशमी ३११७

६ श्लकारेण प्रबल गुणात्पय गामा का अतिरिद्धि करके बाल ६—

रसवत्प्राप्तिरसवत्प्राप्ति। बड़ा ३११७

७ रसात्पय वक्रातिरसयोर्विभावयोरे।

यनात्पय वक्रिना काव्य मात्प्राप्त्यात्पय विना। काव्यालकार ११८५

८ रसि न रसा रसमात्प्राप्ति-वक्रातिरसि वाट रसयत्। काव्यालकार ११३

९ काव्यलकार सूत्र १। १। १८ का वसि

१० रसात्प्राप्ति न रसि का काव्य का अर्थमा भी बड़ा आर रस सिद्धान्त को प्राचीन भी।

भामह दही तथा वामन प्रभृति आचार्यों ने नाट्य को छोड़कर गण कायामो को लत हुए शास्त्र रचना की है। अर्थोत्तयोपत नाट्य गणाय समुक्त काव्य बना नगणावित नाट्य न सालकार काव्य को जन्म दिया। ये दोनों ही गणाय माहित्य और अलकार आरम्भिक काव्यशास्त्रों के दृष्ट आधार बन। लक्षणा की परिणति अन्वकारा में हो गई। इससे हम शास्त्र को बल मिला। हम परिवर्तन के कारण काय चचा अपना स्वतंत्र अस्तित्व सिद्ध कर सकी और नाट्यशास्त्र-प्रथित विगपताए अन्वकारो में समाविष्ट हो गई। भरत ने निर्दोष त्रययुक्त गुणो में सम्पन्न अलकारा तथा लक्षणा से युक्त होना आवश्यक बताया है। अन्वकार कवन चार माने गए।<sup>१</sup> उपमा के पाच भन् और स्वीकृत किए।<sup>२</sup> पर लक्षणा की संख्या ३६ है। उनका स्वरूप-वर्णन तो है पर परिभाषण नहीं हैं। भामह ४० अन्वकार बताते हैं पर लक्षणा की चचा नहीं करते। इससे प्रकट होता है कि लक्षणा का अन्वकारा में अन्तर्भाव ही गया। महाकाव्य<sup>३</sup> आख्यायिका तथा कथा का अन्तर तथा काव्य के उपयोग<sup>४</sup> पर भामह ने स्वतंत्र रूप से निरूत्तर अन्वकार शास्त्र की सुदृष्ट भूमिका प्रस्तुत की। भामह ने अन्वकारा की प्रतिष्ठा बन्त दृष्टा के साथ की।<sup>५</sup> माय ही काव्य का वर्गीकरण भी हुआ—महाकाव्य न नाटक आख्यायिका कथा तथा मुक्तक। इस प्रकार नाटक का काव्य के अन्तर्गत रखा गया। आगे भी कुछ आचार्य एम हुए जो नाट्यशास्त्र और काव्यशास्त्र की मिनो-जुनी परम्परा का प्रतिनिधित्व करते हैं दम्पककार धनजय रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्यरूपण)। दण्डी ने काव्याङ्ग के प्रस्तावना परिच्छेद में काव्य लक्षण उनका वर्गीकरण भाषा के आधार पर माहित्य का चतुर्विध विभाजन काव्य गुण तथा उनमें कवि के माधनो का उत्तम किष्ठा है। आगे के परिच्छेदों में अन्वकारों का विस्तृत विवरण किया गया है। अलकारो के माय दोषों का निरूपण करके काय के निर्दोष हान पर दही ने खूब बल दिया। अन्वकारशास्त्र अपने चरम पर उद्भूत के कायालकार मारमग्रह में पड़चा। भामह ने ४० दण्डी ने ५ तथा उद्भूत ने ४१ अन्वकारा के निषेध निरूपण में गान्य की रचना की है। उद्भूत ने दण्डी का अनुसरण करना नहीं किया जितना भामह का। भामह उद्भूत और छट्ट की तथी ने अन्वकार-मप्रणय का भरत के पञ्चात् स्थापना की। वहींके उद्योग का फल का वि काय

- १ उपमा रूपके चव पाचक यन्त्र यथा।  
अन्वकारान्नु विनियोजकवरा नाटकाश्रया ॥१७६
- २ नाट्यशास्त्र १७।६ ५५
- ३ काव्यशास्त्र १।१६
- ४ बडा १।१५ ३
- ५ बडा १।१
- ६ न के अन्वकार निभू ६ विनिय विनियुक्तान् १। १३
- ७ मगवन्तमनस्य त्रैवाण्यविवाक्ये।  
कनेरद न कान्य त्पुन पवनान् ॥ १।१०
- ८ काव्यशास्त्र नाट्यशास्त्र ६५ कथयते।  
मन्तु सुन्दरानि विनियोजन तुम्हा ॥ काव्यशास्त्र, १।७

शास्त्र ग्रन्थना स्वतंत्र स्थिति प्राप्त कर सका। ऋहाने रम्य का उपेक्षा नहीं की। रमयन प्रेम अत्रस्थित और समाहित—एन चार प्रकार के अन्तकारों को रमयनकार माना गया और ऋहाम रम का अन्तभाव कर दिया गया।<sup>१</sup>

दण्डी ने गुणा का निरूपण और दोषों का निराकरण अत्यन्त दृढ़ता से करके रीति सम्प्रदाय का बीजबतन किया। इसका पन्चबन वामन ने करके रीति सम्प्रदाय की स्थापना की। रीति की परिभाषा की गई।<sup>२</sup> विंगण पर रचना ही रीति है। माधुयादि गुणा के समावेश में पर रचना विधिष्ठ है।<sup>३</sup> यही रीति काव्य की आत्मा है। इस प्रकार रीति और गुण का घनिष्ठ सम्बन्ध हुआ गया। इस सम्प्रदाय ने अन्तकार और रीति का तुलनात्मक निरूपण करके काव्य गोभा के उत्पादक गुणों को, अन्तकारों को विंगण महत्त्व दिया।

व्यक्ति सम्प्रदाय ने रीति के स्थान पर वशोक्ति का स्थापना की। यह एक प्रकार से गुणों का स्थापना के प्रति अन्तकार की उदात्त और प्रबल प्रतिक्रिया ही कही जा सकती है। कु तक ने इस सम्प्रदाय की स्थापना की। कमका बीज भी भामह और ऋहो<sup>४</sup> के द्वारा वशोक्ति के महत्त्व की स्वावृत्ति में ही है। रीतिकार वामन ने भी सादृश्यात्पणना वशोक्ति<sup>५</sup> लिखकर वशोक्ति का काव्य में महत्त्वपूर्ण स्थान माना है। पर यह महत्ता एक अन्तकार के रूप में भी वशोक्ति को मिली। वशोक्तिशोचिन कार ने रीति का परिमार्जित रूप भी वशोक्ति के माध्यम से समाविष्ट कर दिया।

रमयनप्रदाय की सुदृढ़ स्थापना भरतमुनि ही कर चुके थे। पर नाट्य के क्षेत्र में यह स्थापना थी। भरत का विभावानुभावव्यभिचारिमयोगाद्रसनिष्पत्ति सूत्र इस सम्प्रदाय का आधारभूत सिद्धान्त था। इस सूत्र के आधार पर चार आचार्यों ने विद्वत्साधु व्याख्या करके रमयनप्रदाय की वाच्यक्षेत्रीय स्थापना की भट्ट साहय, गुरु, भट्टनायक अभिनवगुप्त। इसका स्थापना में अभिनवभास्ती टीका का प्रमुख हाथ रहा।

आनन्दवदन ने एक प्रबल ध्वनि-सम्प्रदाय की स्थापना की।<sup>६</sup> वयाकरणों,

१ रघुवत्सिंहानुष्टम्भशास्त्ररत्नसंघात भाष्ये कालान्तकार २१६  
मधुः रमयनवाचि रघुव्यापि रमयिथि । रम्यः, काव्यात् १११

२ विशिष्य पर्यन्तारानि । काव्यप्रकाश सूत्र १। १७

३ विशिष्य गुणात्मा । वृत्ति १। १०८

४ शिवाभावा काव्यरत्न । वृत्ति १। १६

५ काव्यगोभाया कलाया धना गुणा । ५६१। १२१

६ अन्तकार वशो गुणनय शास्त्रा की अतिरिद्धि कर्म बाल ६—

न लक्ष्यन्तस्वकारा । यद्वा ३। ११२

७ मया मन्त्र बहतिरुपायो विभाष्ये ।

दनात्पदो बनिना वाय वात्तनात्पदना विना ॥ काव्यप्रकाश २। २५

८ मि न रम्य स्वरात्तत्त्व्यर्थात्तत्त्वित्वात् काल मया ॥ काव्यात् १। १७

९ काव्यप्रकाश सूत्र । ४। १० काव्ये

१० पञ्चानकार ने रीति को काव्य की अन्तमा भी कहा और इस सिद्धान्त को प्राचीन भी।

साहित्यिको वदार्थियो मीमांसको नयायिको आदि ने इस सम्प्रदाय का विरोध किया । पर यह सम्प्रदाय इतना समन्वयकारी सू म वचनानिव और वापक था कि यह चमकता ही गया । अभिनवगुप्त की टीका लोचन ने इसको और मुदृढ किया । पीछे मम्मटाचार्य ने अनेक विरोधी तर्कों का निराकरण करत हुए ध्वनि सिद्धांत को पूण और पुष्ट समर्थन दिया । इस प्रकार कायगास्त्र का विषय सम्प्रदाय की सीमाओ म निबद्ध होता गया । आचार्यों का वर्गीकरण भी सम्प्रदायो व अनुसार हो गया । जो आचार्य किसी सम्प्रदाय विगप स सम्बद्ध नही थे उहाने समस्त कायगाओ पर विस्तृत विवेचन किया । एव आचार्यों म राजाश्वर मम्मट और विन्वनाथ का नाम विशेष रूप स लिया जाता है । इहाने सम्प्रदाय की कारा स मुक्त होकर कायगास्त्र का साग विस्तार किया । राजाश्वर ने तो जैसे एव कायगास्त्रीय विन्वकोण की रचना का ।<sup>१</sup> यदि हम परम्परा को कविगिशा स सम्प्रदाय कहा जाए ता अत्युक्ति न होगी । कविगिशा सम्प्रदाय म प्राग चलकर धमद्र अरिगिह अमरचर आदि इना परम्परा म प्राप्त है ।

राजाश्वर न कविगिशा व उलय स हम गास्त्र की सीमाओ को अत्यंत विस्तृत कर दिया । हमके १८ विभाग किए कविरहस्य उक्ति रीति अनुप्रास यमक चित्रकाय रूप स्वभावोक्ति उपमा अनिगयाक्ति अथ रूप गत्यार्थालंकार विनाद नाटय रम दोष गुण तथा प्रीपनिपत्तिक विषय । गास्त्र की दिय उत्पत्ति बनाकर राजाश्वर न कायगास्त्र को अपौरुषय गास्त्र परम्परा म रचना चाहा । कई विषय ता स्वतन्त्र अनकारों स सम्बन्धित हैं । इसत प्रतीत हाता है कि राजाश्वर न अनकारा पर बन लिया । साथ ही भाषा पर पृथक् स विचार करके कायपुरूप को सरचना म विभिन्न प्रचलित भाषाओ का स्थान निर्धारित किया गत्यय मन्वृत प्राकृत अपभ्रंश पगाची तथा मित्र भाषाओ का उल्लेख है ।<sup>१</sup> इसक साथ छन्दोगान्ध तथा प्रानोत्तर प्रहृनिका आदि कायरूपों की भी चर्चा की और रस को उमकी आत्मा कहा ।<sup>१</sup> काय और काव्यगास्त्र व विनाट पक्ष का महत्व दकर जावन व साथ साहित्य का सम्बद्ध करन का प्रयत्न किया । वाक्यलि व रूप म यह

काव्यपरम्परान्वेदिनि विषय समान्तर पूर । ध्वन्यालोक १।१

१ इसका विस्तृत विषय काव्या म दत्त दास पक्ष हो जानी है । काव्यनामाया व प्रथम अन्वय मे हा १८ विभागों मे विषय का बाटा गया है । एनका मन्त्र व अमरक गिशा ने अन्वय दिया । विन्व हम प्रकाठ नत्र कविहस्य मन्त्राव समानासीत् औक्तिवमुक्तिगम रीति विन्व मन्त्राने अनुप्रासिक प्रचना या यनकारे निर विभाग शब्दरत्नपराय वाग्मय पुनरव्य अन्वयनकारेण अरिह परागरे अन्वयवमुनध्य एवंग वारिक कुबेर वैनातिक अन्वय मन्त्रिका नाने रम्य प्रकाठ नन्विकरे तय विन्वगु विन्व गीपान्तरि मुन्व अन्वय ३ कव्या एत । एतन् एवन्वृक स्वगाग्नाणि विन्वगुम् ।

रामदेव उ श्या मन्त्र मुन्व एवन्वृक अन्वयग पराव पी ठरा मित्र मन्त्राने दय उगरे अन्वय वा न । काव्यनामा, अन्वय ३

१ उक्ति मन्त्र चर कव्य एव अन्वय गीपान्तरि दन्वय प्रानात्यन्त्रिकात्क न वन्वयि अन्वयनाम्परावत् स्वरान्तरान् । इदम्

राजकाय जीवन का भी अग्न बदनता गया और अग्न अश्रय व माग का प्रगस्त करता गया । उसम मन्त्रह नही कि कविगिष्ठा-सम्प्रदाय का राजकीय क्षेत्र म तथा गिष्ट उच्च वर्गों म विशेष लोकप्रियता प्राप्त होनी गई । कविगिष्ठा क सम्प्रदाय की इस लोकप्रियता और समक अतगत हुए कायशास्त्रीय विस्तार न एक प्रकार स उदभावक आचार्यों क सम्प्रदाय और विगिष्ट मिद्धाता का अभिभूत कर लिया । ध्वनि और रस सम्प्रदाय न भी अय सम्प्रदाय को बहुत दुबल कर लिया था । उपरिष्ठ सम्प्रदाय ने एक प्रकार स अतकार सम्प्रदाय क माय समभौता करके एक मोर्चा बनाया । याख्याता आचार्यों क माध्यम स कायशास्त्राय सम्प्रदाय न फिर प्रतियोगी की । याख्याता आचार्यों ने अग्नता समथन किना सम्प्रदाय विगप का दिया । वम इनकी प्रवृत्ति प्राय समस्त कायागा क विनपण की रही । मम्मट रम्यक विनवनाथ हमचन्द्र जयदेव अल्पयदीक्षित आदि आचार्यों न ध्वनि सम्प्रदाय का समथन दिया । रम सम्प्रदाय को गारदातनय गिम भूपाल भानुत्त रूपगोस्वामी आदि का समथन प्राप्त हुआ । जयदेव जगन्नाथ विनवन्व भट्ट आदि ने अलकार क महत्व की स्थापना की । इस प्रकार सम्प्रदायों की प्रतिप्रिया न कायशास्त्र की परम्परा को आग वनाया और उसको समृद्ध भी किया । कविगिष्ठा सम्प्रदाय न विगप लोकप्रियता प्राप्त की । वन याख्याता आचार्यों न भी कविगिष्ठा-काय को प्रच्छन्न रूप स सम्पन्न किया ।

कायशास्त्र न तस्वत अनेक शास्त्रा म मामग्री ला । तव और छन्दशास्त्र न इमक रूप को प्रभावित किया । मन अग्न पारिभाषिक ग द भी भिन भिन शास्त्रा म गिण । तव स कायशास्त्र न यह गतावली ना प्रतिभा वि भावना वि छेत् या विच्छिन्ति परिवर (परि=round about) सा हित्य रूपक वनि आत्ति । कुछ विवरणात्मक पारिभाषिक गता का आविष्कार हुआ अग्न नुति निदा प्रगमा अतिगद-उक्ति पय आय उक्ति आत्ति । म प्रकार एक मिनी-जुली पारिभाषिक गतावनी का नकर कायशास्त्र का रूप गडा हुआ । मकी स्थिति का सुदृत् करने क निण अय शास्त्रा या विद्याभा की आवयवता प्राय सभी आचार्यों न स्वीकार की है । भामह न काय माधन य बताए हैं गत् छत् कोप प्रतिपादित अध ऐतिहासिक कयाण साक-व्यवहार युक्ति और कलाए ।<sup>१</sup> दरी न म प्रकार की सूची ता नहीं थी पर प्रतिभा (प्रगा) क माय विगुद्ध नागाधित शास्त्र ज्ञान का आवयक बताया है ।<sup>२</sup> वामन क अनुमार लोक-व्यवहार विद्या (१४ या १८) प्रवीण (=काय ज्ञान काव्यता की सदा पद निवाचन का कोशल आत्ति) काय क आवयक माधन मान है ।<sup>३</sup> इस प्रकार इस शास्त्र का विद्या और वदागा का परम्परा<sup>४</sup> म बल प्राप्त

१ शम्भुदत्त-भिषानाथ इतिहासाश्रया कथा ।

साकी युक्ति कलाश्चरि मन्त्रव्या काव्यवर्गो ॥ काव्यालङ्कार म् २१६

२ काव्यालङ्कार २१०३

३ लोका विद्या प्रकीर्णक काव्यागानि । १३११

४ इसका सर्वेक्षण पीढ़ हा जुका है ।

करते रहते का आदेश आचार्यों ने दिया। हट्ट ने 'युत्पत्ति' व अतगत छंद व्याकरण बना 'नेकस्थिति' पद तथा पदार्थों का विगिष्ट नाम एव उचित अनुचित परिचय को रखा है।<sup>१</sup> यही नहीं हम जगत के सभी वाच्य तथा वाचक काव्याग है।<sup>२</sup> राजासर ने बारह स्यात गिनाए हैं वद स्मृति इतिहास पुराण प्रमाणविद्या (तक शास्त्र और मीमांसा) राजसिद्धांतप्रयी (अथशास्त्र नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र) नेक विरचना (अथकविद्या का वाच्य) प्रकीर्णक (६४ बनाए आयुर्वेद ज्योतिष वृक्ष शास्त्र अथव गज उभय आदि) उचित संयोग योक्तृ संयोग उत्पाद्यसंयोग तथा मयाग विकार।<sup>३</sup> इस प्रकार समस्त भारतीय ज्ञान परम्परा का काव्य के साधना में सम्मिलित कर लिया गया। इसमें जहाँ काव्यशास्त्र की सीमाएँ बहुत अधिक विस्तृत हुई वहाँ कविगिणा के आचार्यों का दावित्व भी बहुत अधिक बढ़ गया। इसीलिए काव्यशास्त्र के आचार्यों का महापक शास्त्रों की भी व्यक्त अत्यंत रूप से अपनाना पड़ा। भामह ने सम्भवत एक छान्दशास्त्र की भी रचना की थी। अभिनवगुप्त के ४१ ग्रंथा<sup>४</sup> में विविध विषयों का स्पष्ट किया है। शमद्र के नाम से भी ग्रंथों की एक सूची मिलती है। इन ग्रंथों में गृह्यसामजरी चतुर्विधसंग्रह देगोपत्तय वात्स्यायन सूत्र आदि हैं। इन काव्यशास्त्र में संवर्धित अथ रचनाओं की सृष्टि का उद्देश्य स्पष्ट है। इनके अनिश्चित हमारे द्वारा मिट्ट हेम (याकरण) काव्यानुशासन छान्दानुशासन तथा दशानाममाला (काव्यग्रंथ) लिख गए। वाग्भट ने छान्दोग्यशासन तथा अष्टांगहृदय<sup>५</sup> (आयुर्वेद ग्रंथ) की रचना की। अण्णयदीर्घित ने काव्यशास्त्र के साथ साथ दार्शनिक ग्रंथों का भी रचना की।

काव्यशास्त्र के सिद्धांतों के उद्भावक या आविष्कृत ही काव्यशास्त्र के क्षय में आचार्य नहीं कहें गए अतिसुटीका और व्याख्यान करने वाले आचार्य हुए। काव्य-टीका और व्याख्यान की परम्परा भी काव्यशास्त्र में आरम्भ से ही मिलती है। भरत मुनि के छंद टीकाकारों का उत्पन्न मगीतरत्नाकर में मिलता है। अभिनवगुप्त ने तीन टीकाकारों का उल्लेख और किया है। पर इन तीनों टीकाकारों में से केवल अभिनवगुप्त की टीका उपलब्ध है। अन्य प्रमुख आचार्यों की टीका या व्याख्याकारों सहित सूची इस प्रकार है

(१) भामह उद्भूत भामहविवरण' (अप्राप्य)

१ अथ काव्यावधार ११०

विष्णुसंस्कृतसंस्कृत एव वाच्ये न वाचकं वाचकः ।

न भवति दशकालेन न ह्येव ललाटश्लेषः ॥ वही १११६

३ काव्यशास्त्रात् विष्णुसंस्कृतसंस्कृतस्य ११५४ पृ ८५

४ अथ काव्यशास्त्रं नदी है पर आचार्यशास्त्रों के टीकाकारों का उल्लेख से इसका उल्लेख मिलता है। [१] विष्णुसंस्कृत ११६

५ अथ काव्यशास्त्रं अथ काव्यशास्त्रं—काव्यशास्त्रं भूमिका १०५

६ अथ काव्यशास्त्रं अथ काव्यशास्त्रं—अथ काव्यशास्त्रं काव्यशास्त्रं काव्यशास्त्रं १०५

७ अथ काव्यशास्त्रं अथ काव्यशास्त्रं—अथ काव्यशास्त्रं काव्यशास्त्रं १०५

८ अथ काव्यशास्त्रं अथ काव्यशास्त्रं १०५

- (२) दरदी प्रेमचन्द्र तकवागीन तरुण वाचस्पति हृदयगमा टीका (लखक का नाम अज्ञात) हरिनाथ की माजन टीका कृष्णकिंकर तकवागीन विरचित काव्यतरुव विवक कौमुदी टीका वाणिधन की श्रुतानुपालिनी टीका मलिनाथ की वमल्यविधायिनी टीका ।
- (३) उद्भट प्रतिहारदुराज राजानक तिनक ।
- (४) वामन सहदेव ।
- (५) रुद्रट वरनभदेव (अप्राप्य) नमिसायु आगाधर ।
- (६) आनन्दधन अभिनवगुप्त की लाचन चन्द्रिका टीका (नरक का नाम अज्ञात) ।
- (७) मम्मट माणिक्यचन्द्र कत मवत सवम प्रसिद्ध । वम मम्मट पर ७५ टीकाए लिखी गः ।<sup>१</sup>
- (८) स्य्यक समुद्रवध अयरथ अनक विद्याधर ।
- (९) जयदेव प्रधातन भट्टाचाय (गरदागम) वलनाथ पायगुण्डे (रामा टीका) विद्वन्वर पन्ति (मुधा याराकाणम)

यह सूची पूरा नहीं है पर हम बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि आचार्यों पर टीका और व्याख्या लिखन वान भी आचाय हुए । ज्ञान जो काय किया उससे काव्यशास्त्र का मुकुट प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई और शास्त्र का विकास विस्तार भी हुआ । साथ ही शास्त्र के सिद्धांतों का अधिक स्पष्टीकरण भी हुआ ।

एसे आचाय भी मिलते हैं जिन्होंने अपने सिद्धांत सूत्रों पर स्वयं ही वृत्ति या टीका लिखी है । एसे आचार्यों के ग्रन्थों के तीन भाग हो सकते हैं सूत्र वृत्ति और उदाहरण । वामन ने अपने ग्रन्थ के सूत्र और वृत्ति दाना भागों की रचना स्वयं की है ।<sup>१</sup> इसीलिए हम ग्रन्थ का नाम काव्यान्वकारसूत्रवृत्ति है । उन्होंने अपना वृत्ति को कविप्रिया नाम दिया है । उदाहरण वाले भाग में कुछ उदाहरण वामन वृत्त भी हैं पर अधिकांश ग्रन्थों के हैं ।<sup>२</sup> अमरकान्त उत्तररामचरित काव्यधरी किराना जनीय कुमारसम्भव माननीमाधव मृच्छकटिक मधुदूत रघुवंग विद्यमावगीय वणीमहार अभिनानाकान्त गिणुपालवध हृषचरित आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों में उदाहरण समूहान्त हैं ।<sup>३</sup> काव्यान्वकार ने सूत्र+वृत्ति+उदाहरण की पद्धति का कारिका+वृत्ति+उदाहरण की पद्धति में बतलाया । कारिका और वृत्ति दाना भागों के रचयिता स्वयं आनन्दवदन ही हैं । उदाहरणों में से कुछ उदाहरण उन्होंने स्वरचित

१ काव्य विवेक का काव्यान्वकार भूतिका ७२

२ प्रथम पं. जयानि (मनन कवि) द्वारा ।



कर्म रत्न का आद्य आचार्यो न स्यात् । इत् न व्युत्पत्ति क अतगत छन्द व्याकरण कला त्रीकम्यनि पद तथा पदार्थो का विगिष्ट नाम एव उचित अनुचित परिधान को रखा है ।<sup>१</sup> यहाँ नही हम जगन क सभी काय तथा वाचक काव्याग १ ।<sup>२</sup> राजगणर न बारह यात गिनाए हैं वद स्मृति "तिहास पुराण प्रमाणविद्या (तक गास्त्र घोर सीमागा) राजमिद्वान्तवयी (अयगास्त्र नाट्यगास्त्र घोर कामगास्त्र) त्रिक विरचना (अय कवियों का काय) प्रकीणक (६४ बनाए द्रायुर्वेद ज्योतिष वृष गास्त्र अन्व गज नक्षण आदि) उचित सयोग योक्तृ सयोग उत्पाद्यमयोग तथा मयाग विकार ।<sup>३</sup> हम प्रकार समस्त भारतीय ज्ञान परम्परा का काव्य क साधना म सम्मिलित कर दिया गया । "सम जहा कायगास्त्र की सीमाग बहुत अधिक विस्तृत हुआ कविगिणा क आचार्यो का दायित्व भी बहुत अधिक बन गया । इसीलिए काव्यगास्त्र क आचार्यो का सहायक गास्त्रों का भी व्यक्त अयत्त रूप स अपनाता पडा । भास न सम्भवत एक छन्दगास्त्र की भी रचना की था । अभिनवगुप्त क ४१ प्रथो म त्रिविध विषया का स्वग किया है । क्षमा क नाम स भी प्रथा की एक सूची मिनती है । इन तथा म उहकथामजरी चतुर्वगसग्रह दगापण वात्स्यायन सूत्र आदि हैं । इनम काव्यगास्त्र म मवधित अय रचनाआ की मूर्ष्टि का उच्य स्पष्ट है । इनक अनिरिक्त हृमचण द्वारा मिद्ध हृम (व्याकरण) काव्यानुगासन छदानुगामन तथा णानाममाला (कोशग्रथ) तिव गए । वाग्भट न छानुगामन तथा अष्टागहृदय (द्रायुर्वेद ग्रथ) का रचना की । अल्पमीमित न काव्यगास्त्र क साय-साय दानिक ग्रथा का भा रचना का ।

काव्यगास्त्र क सिद्धाता क उद्भावक या आविष्कर्ता ही काव्यगास्त्र क क्षम म आचाय नही कह गए अपितु टीका घोर व्याख्यान करन वाल भी आचाय हुए । काव्य-टीका घोर व्याख्यान का परम्परा ना कायगास्त्र म आरम्भ स ही मिलता है । भरत मुनि क छ टीकाकारा का उत्तम मगातरलाकर म मिनता है । अभिनवगुप्त न तीन टीका कारा का उत्तम और किया है । पर इन ती टीकाकारा म स कवल अभिनवगुप्त की टीका उपनय है । अन्य प्रमुख आचार्यो की टीका या व्याख्याकारा सहित सूची हम प्रकार है

(१) भासह उद्भूत भासहविवरण (अप्राप्य)

१ काव्य व्याकरण ११०

विराट्कालकालम्बुन इह काव्य न वाचक ताव ।

न मन्त्रि सवाव्यन म प्रव्य त्वाप्येषा ॥ वग ११११

३ काव्यगास्त्रा विचार गणना परिषद् १९५४ पृ २५

४ इदं तावद्वर्णा दे पर आका गास्त्र क टीकाकार मारु भ के उत्तर स इसका मसन लिखत है । १६१ लिखत मारु पृ ६

५ सूची क लिखत आचार्य विवरण—काव्यगास्त्रा भूमिका पृ ५

६ काव्य विन्दु इत अय क काय कायम का अनय पृथक मजान ह ।

७ काव्य गास्त्रा न मगात्र नान्यक अभिनवगुप्त और कांधर ।

८ काव्य गास्त्रा इय ।

- (२) दशदी प्रेमचन्द्र तकवागीश, तरुण वाचस्पति हृदयगमा टीका (लेखक का नाम अज्ञात) हरिनाथ की माजन टीका कृष्णकिंकर तकवागीश विरचित काव्यतरुव विवक कौमुदी टीका वादिघन की श्रुतानुपालिनी टीका मल्लिनाथ की वमत्यविधायिनी टीका ।
- (३) उद्भट प्रतिहारे दुराज राजानक तिलक ।
- (४) वामन सहदेव ।
- (५) रुद्र वल्लभदेव (अप्राप्य) नमिसाधु आणाधर ।
- (६) आनन्दयधन अभिनवगुप्त की लोचन चंद्रिका टीका (लेखक का नाम अज्ञात) ।
- (७) मम्मट मानिक्यचन्द्र वृत्त सबत सबसे प्रसिद्ध । वम मम्मट पर ७५ टीकाएँ लिखी गई ।<sup>१</sup>
- (८) स्यूरु समुद्रबध जयरथ अलक विद्याधर ।
- (९) जयदेव प्रद्योतन भट्टाचार्य (गरदागम) बटनाथ पापगुण्ड ( रामा टीका ) विश्वदखर पण्डित ( मुधा मारावाणम )

यह सूची पूरा नहीं है पर हम बात का प्रमाण प्रस्तुत करती है कि आचार्यों पर टीका और व्याख्या लिखने वाले भी आचार्य हुए । उन्होंने जो काव्य किया उससे काव्यशास्त्र का सुदृढ़ प्रतिष्ठा भी प्राप्त हुई और शास्त्र का विकास विस्तार भी हुआ । साथ ही शास्त्र के विद्वानता का अधिक स्पष्टीकरण भी हुआ ।

एक आचार्य भी मिलते हैं जिन्होंने अपने सिद्धांत सूत्रों पर स्वयं ही वृत्ति या टीका लिखी है । एक आचार्यों के ग्रन्थों के तीन भाग हो सकते हैं सूत्र वृत्ति और उदाहरण । वामन ने अपने ग्रन्थ के सूत्र और वृत्ति दोनों भागों की रचना स्वयं की है ।<sup>२</sup> इसीलिए इस ग्रन्थ का नाम काव्यालकारसूत्रवृत्ति है । उन्होंने अपनी वृत्ति को कविप्रिया नाम दिया है । उदाहरण वाले भाग में कुछ उदाहरण वामन वृत्त भी हैं पर अधिकांश ग्रन्थों के<sup>३</sup> । अमरकान्तक उत्तररामचरित कादम्बरी किराता जनीय कुमारसम्भव, भालतीमाषव मृच्छकटिक मधुसूत रघुवज विप्रमोक्षणीय बणीमहार अभिमानगाकुतल त्रिगुपालवध ह्यचरित आदि प्रसिद्ध ग्रन्थों से उदाहरण संगृहीत हैं । काव्यालकार के सूत्र + वृत्ति + उदाहरण की पद्धति को कारिका + वृत्ति + उदाहरण की पद्धति में बदला । कारिका और वृत्ति दोनों भागों के रचयिता स्वयं आनन्दवदन ही हैं । उदाहरणों में से कुछ उदाहरण उन्होंने स्वविरचित

१ आचार्य विश्वेश्वर काव्यप्रकाश भूमिका ७०

२ प्रथम अध्याय ज्योतिषमन्त्रन कविप्रिया ।

काव्यालकारसूत्राणां श्लेषा वर्तमानाः । काव्यालकारसूत्रवृत्ति प्रथमं रथापना

३ अभिनवगुप्त ११५ परकाव्यरघुवजने । पृष्ठा ४१ । ३

४ ए० सु० नैकी, काव्यशास्त्र में इन दोनों भागों का जो भिन्न-भिन्न व्यक्तियों की रचना प्रकृत करने का प्रमाण दिया है । पर अधिकांश जिनके नाम मत्त सुसंयुक्त नहीं हैं ।

विषमबाण लीला और अजुनचरित आदि ग्रंथों से दिए हैं परन्तु अधिकांश उदाहरण दूसरे से ही हैं। मुकुन्दभट्ट ने अपने अभिधावर्तिमातृका ग्रंथ में कारिकाएँ और उनको वृत्ति स्वयं लिखा है। कुतक के अश्लेषजीवित ग्रंथ में भी कारिका वृत्ति और उदाहरण तीन भाग हैं। कारिका और वृत्ति कुतक की ही रचनाएँ हैं। उदाहरण स्वर्चित नहीं प्रसिद्ध काव्यग्रंथों में मन्वित हैं। मम्मट का काव्यप्रकाश मम्मट और अलङ्कार की सम्मिलित रचना है।<sup>१</sup> इस ग्रंथ में भी तीन भाग हैं कारिका वृत्ति और उदाहरण। उदाहरण सभा अथ प्रसिद्ध काव्यग्रंथों के हैं। कुछ विद्वान् कारिका और वृत्ति का दा भिन्न व्यक्तियों की रचना मानते हैं। कारिका भाग को भरतमुनि की रचना माना जाता है। पर अजुन दाना में अश्लेष ही स्थापित हो गया है। रामचन्द्र गुणचन्द्र ने नाट्यदपण की रचना भी कारिका और वृत्ति की गती में की है। रचयिताओं ने वृत्ति स्वयं भाषी है। जयदेव ने वृत्ति की परम्परा का नहीं अपनाया। उदाहरण स्वर्चित लिए। अनुष्टुप् श्लोक के पूर्वाह्न में अश्लेष ने नक्षत्र तथा गणपति में उदाहरण की याचना करके जयदेव ने एक नवान् गणों का सूत्रपात किया। आगे यह ग्रंथ बहुत लोकप्रिय हुआ। विद्वान् कविराज ने साहित्यदपण में मम्मट का कविगिष्ठा तथा विद्वान् की गती की अपनाया। साहित्यदपण के पष्ठ परिच्छेद में नाट्यशास्त्र सम्बन्धी विवरण दिया है काव्य और नाट्यशास्त्र की सम्मिलित परम्परा का पुनर्जीवित करने की चप्टा की। विद्वान् म शास्त्रीय और कवि मुनभ प्रतिभा का सामंजस्य मिलता है। इसका परिणाम यह हुआ कि मुदर उदाहरणों के उपयोग में इस ग्रंथ की रोचकता अधिक बढ़ गई है।<sup>२</sup> विद्वान् म उदाहरणों में सुन्दरता लाने की प्रवृत्ति प्रबल हानी दागता है। गान्धर्व और नपथकाय में पद्या का उदाहरणवत् उद्धृत किया है। इस प्रकार विद्वान् का काव्यशास्त्र का परम्परा एक भोज होती है। नया भोज दान में जयदेव का भाग हाथ में। रस निरूपण के साथ नायक-नायिका भेद का निरूपण भी किया गया है। गारदातनय ने अपने भावप्रकाश के दस अधिकारों में से दस में नायक और नायिका भेद का निरूपण किया है।<sup>३</sup> साथ ही नाट्य पर भी विचार किया है। इस प्रकार रस नायिका निरूपण और नाट्य की सम्मिलित परम्परा फिर म चलने लगी। भानुजित का रसमजगी तथा रसतरंगिणी भा रस और नायिका निरूपण के ग्रंथ हैं। गान्धर्व का प्रतिभा के साथ काव्य प्रतिभा का समावेश भानुजित में ना दागता है। भानुजित भा सहृदय कवि या गान्धर्वीरपति नामक गान्धर्वीय का रचना जयदेव के गान्धर्वीय का गणों पर की।

जयदेव विद्वान् गारदातनय तथा भानुजित ने काव्यशास्त्र का काव्य प्रतिभा में रचित किया और उदाहरण-नोटव पर श्रान्त विषय रूप में किया जान

१ काव्यप्रकाश काव्यशास्त्र भूषण ५

२६१ पृ ७

३ जयदेव उदाहरण मन्वित गणों में ५ ७६

४ साहित्यशास्त्र में जय उदाहरण

५ काव्यशास्त्र काव्यशास्त्र ४५

लगा। स्वरचित उदाहरणों की भी लाकप्रियता हान लगी। इसका कारण यह था कि य आचार्य स्वयं कवि भी थे। विष्णुनाथ ने कई काव्य नाटकों की भी रचना की थी।<sup>१</sup> जयदेव और भानुदत्त तो अपने गीतिकाव्य के लिए प्रसिद्ध हैं ही। जयदेव के चंद्रालोक की कई टीकाएँ इन्हें और 'म' ग्रंथ के अनुकरण पर आचार्यों ने ग्रंथों की रचना की।<sup>२</sup> काव्य प्रतिभा के अतिरिक्त भक्ति और 'द' गानों की धाराएँ भी १५-१६वीं शताब्दी में काव्यशास्त्र को प्रक्षालित करने लगीं। भक्ति-सम्पृक्त काव्यशास्त्र की परम्परा का मूलपात करने में स्वर्णेश्वरामी का प्रमुख हाथ माना जा सकता है। स्वर्णेश्वरामी के तीन ग्रंथ अलंकारशास्त्र की दृष्टि में महत्वपूर्ण हैं भक्तिरामामृतमिषु उज्ज्वल नीलमणि तथा नाटक चंद्रिका। ये श्री चतुर्थ के विषय में प्रथम दो ग्रंथों में रम्य विवचन हैं। भक्तिराम का स्थापना स्तन सुदृढ़ रूप से ग्रंथ किसी आचार्य ने नहीं की। उज्ज्वलनीलमणि भक्तिरामामृतमिषु का पूरक ग्रंथ है जिसमें 'मधुर रम का मूल में विवचन है। इनके भतीजे जीवगोस्वामी ने उक्त दोनों ग्रंथों पर 'म' दुर्गममगमती तथा लावनरोचनी नामक टीकाएँ लिखकर भक्तिपरक काव्यशास्त्र की परम्परा को परिपुष्ट किया। आगे विभिन्न सम्प्रदायों में इस परम्परा का अनुसरण किया गया। अल्पयदीक्षित जैसे दार्शनिक ने भी काव्यशास्त्र पर लिखा। इन्होंने 'म' भक्ति रामानुज-द'गान म-व' द'गान पर अनेक ग्रंथों की रचना की।<sup>३</sup> ये भी परिमाण की दृष्टि से भक्ति की ओर ही भुज हुए थे। अल्पयदीक्षित के साथ ही काव्यशास्त्र की परम्परा मन्त्रहवीं शताब्दी में प्रविष्ट होती है।<sup>४</sup> अंत में काव्यशास्त्रों का कुछ समय तक ये समकालीन भी रहें थे।<sup>५</sup> काव्यशास्त्रों के इस विषय विकास के मक्षिप्त सर्वेक्षण में यह स्पष्ट हो जाता है कि कुछ आचार्य ऐसे थे जिन्होंने भौतिक काव्य सिद्धांतों की उद्भावना की। एम आचार्यों के द्वारा किसी सम्प्रदाय की प्रतिष्ठा अथवा उसका प्रवर्धन हुआ। कुछ अन्य आचार्यों ने मूल सिद्धांतों का प्रकाश में आने में प्रयत्न करने अथवा तुलनात्मक दृष्टि में सामान्य रत्न और उदाहरण आदि से सम्पृक्त काव्यिक विस्तार करने का कार्य किया। उद्भावक आचार्यों के साथ अमर भाष्यकार टीकाकार या व्याख्याता आचार्यों की परम्परा भी लगी हुई है। राजेश्वर ने कविगिष्ठा की

१ साहित्यशास्त्र में इन रूतियों का उल्लेख है राजेश्वरनाथ कुवलयानन्द (प्राच्य) प्रभाषणी परिणय (नाटिका), रत्नकला (नाटिका) नगमिभक्ति, प्रशान्तिरत्नकला।

२ चौधपुर-भारत चन्द्रमणि प्रथम ने 'चन्द्रालोक' के आधार पर 'मायाभूषण' नामक अनुवाद ग्रंथ रचा। अन्य गीतिकाव्य कवियों ने भी इनका अनुसरण किया। अल्पयदीक्षित के कुवलयानन्द का रचना भी इसीपर आधारित है। शैली में काव्य की अपना शक्ति है।

३ इनकी सूची के लिए देखिए—डॉ० भानुशंकर श्याम कुवलयानन्द, भूमिका पृ० २३ (बनारस १९५६)

४ 'म' प्रकार अल्पयदीक्षित का रचना कााल मंगलेश्वर पर १५४६ तथा १६२३ ई० के बीच जन्यता है। अंत में ही को सोलहवीं शताब्दी के अन्तिम चरण में रचना समगत न होगी।<sup>५</sup> (वही पृ० २)

५ 'काव्यशास्त्र' की काव्य-संस्करण अनुमानत १६५० विजया और मृगु-संस्करण १६८० विजयी के समकालीन थे और उनका साहित्य।

म काय करन वाल विद्वाना क त्रिण हाता था ।'

एन आचार्यों न काव्यशास्त्र को शास्त्र का रूप देने की बड़ी साधना की । साथ ही काव्यशास्त्र का शास्त्र का प्रतिष्ठा देने का भी प्रयत्न किया । शास्त्र के प्रायः कारिया की चर्चा पहले भी होती रही थी । यास्काचार्य न अनधिकारी के हाथ में पनी हुई विद्या के विनाप का विवरण दिया है । भामह न भा एव प्रकार से अकवि को शास्त्र ज्ञान के लिए अनधिकारी ठहराया है ।' सूत्र भी गुरु के माध्यम से शास्त्र ज्ञान अर्जित कर सकता है पर अकवि नहीं । आचार्य वामन न कवि के भी दो भूत किए हैं अरोचकी (=वित्रेकी) तथा सतृणाम्यवहारी (=अविवकी) । इनमें स विवकी ही काव्यशास्त्र का अधिकारी हो सकता है ।' इस प्रकार काव्यशास्त्र का सम्बन्ध एक विगिष्ट वग से कर दिया गया है । कवि ही उसका अधिकारी है । कवि को उसकी आवश्यकता के सम्बन्ध में भी आशङ्क किया गया है । सन्तोष काय का रचयिता ममाज में निश्च माना जाता है । यह एक साहित्यिक पाप है ।' काय की विफलता के कारण भी दोष ही है । सन्तोष काय रचना से बचने के लिए 'गुण' के सम्बन्ध में निश्चात ज्ञान के लिए शास्त्र नितात आवश्यक है । इस प्रकार कवि के लिए काव्यशास्त्र अपरिहार्य कर दिया गया । वामन न शास्त्र ज्ञान के लिए गुरुत्वा का विधान भी किया । इस प्रकार काव्यशास्त्र और आचार्य' को वह प्रतिष्ठा प्राप्त हुई जो प्रायः दार्शनिक या धार्मिक क्षेत्रों में इनको प्राप्त थी । हिन्दी तक आते आते काव्यशास्त्र और आचार्य की पूण प्रतिष्ठा हो चुकी थी ।

### सत्रहवीं शती में संस्कृत काव्यशास्त्र और आचार्यत्व

१६वीं तथा १७वीं शती के संस्कृत काव्यशास्त्र के क्षेत्र में य आचार्य प्रमुख रूप से आते हैं रूपगोस्वामी (१५-१६वीं शती) भानुदत्त (१६वीं शती का मध्य भाग) कविवर मित्र (१६वीं शती का उत्तरार्द्ध) कवि कण पूर (१६वीं शती) अण्णय दीक्षित (१६-१७वीं शती) पन्तिराज जगन्नाथ (१७वीं शती) । प्रायः इन सभी का हिन्दी के रीतिकालीन आचार्यों पर प्रभाव पडा था । रूपगोस्वामी के भक्ति-रसाभूतमिथु तथा उल्लसनीलमणि भक्तिपरक साहित्य तथा भक्तिपरक साहित्य

शास्त्र का प्रभावित करत रह। भानुज की रममजरी क प्रभाव म रीतिवादीन आचार्यों का नायिका निरूपण प्रभावित रहा। क।य मिथ का प्रभाव शास्त्र-वद्वत अन्तकाराचार्यों पर रहा। मयम अधिक प्रभात अल्पयदीपिन का ही पडा। पत्निराज ममकालीन हान क कारण तथा कुछ दुःख हान क कारण अधिक प्रभावित न कर सक। इन मौलिक ग्रथकारों क अतिरिक्त तीन प्रसिद्ध टीकाकारों को भी नये मुताया जा सकता गीबिन्द टक्कुर नागग मट्ट तथा बधनाथ।

रूपगोवाभी न भक्तिरम का सम्यक परिचान और विवचन करक एक महत्वपूर्ण यागदान किया। भक्तिरमामृतमिथु क पूव पश्चिम, उत्तर तथा दक्षिण नामक चार विभाग ह। विभागों को त्हरियों म विभाजित किया गया है। पूव विभाग म भक्ति का सामान्य उमण निरूपित किया गया है। दक्षिण विभाग म य काव्याम है विभाव अनुभाव नातिक्र भाव व्यभिचारी भाव तथा स्थायी भाव। भक्ति-सम्बध म ही इनका विवचन किया गया है। पश्चिम विभाग म शात भक्तिरम प्रीत भक्तिरम प्रेयाभक्तिरम वलम भक्तिरम तथा मधुर भक्तिरम आदि भक्ति भेदा का निरूपण किया गया है। उत्तर विभाग म हास्य प्रस्तुत, वीर, कछण, रोद्र, गोभक्त और मनानक रमों का विवरण तथा रम विरोधाविराध भाति का वर्णन है। उ-वल्लनीरमणि म मधुर शृंगार की व्याख्या है। इस ग्रथ की रूप रखा और रमका उद्देश्य शुद्ध काव्यशास्त्रीय नहीं है। रमम भक्ति का काव्यशास्त्रीय निरूपण ही अभिप्रेत है। गाय ही भक्ति माहित्य क रचयिताया क लिए यह रम गिमा ग्रथ भी है। भक्ति दान की काव्यशास्त्रीय रखाया म प्रस्तुत करन का यह प्रयत्न अपन आपम महत्वपूर्ण है। हिंदी क तथा अय क्षेत्रों क कृष्णभक्ति माहित्य पर जयदेव तथा रूपगोवाभा का सम्मिलित प्रभाव माना जा सकता है।

भानुज का शरणाह और निजामशाह का मरक्षण मिता था। सुखुन कायशास्त्र म रनका महत्वपूर्ण स्थान है। रनक प्रकाशित ग्रथ है—गीतगंगा काव्यगातिका रम-मजरी तथा रसनरगिणी। अग्रकाशित ग्रथ य मान जात है कुमाग्रभागवाय अन्तकार निरक तथा शृंगारदीपिका। य विरह (मिथिना) क रहन वात तथा गणवदर क पुत्र य। रममजरी की लोकप्रियता रम बात म प्रमाणित होती है कि इसपर ११ टीकाए उपलब्ध हो चुका है। रम और नायिका न पर मुकवि मरमता और कविगिटा की दृष्टि म तिसी हुई यह कृति आग क हिंदी रीत्याचार्यों को बहुत प्रभावित करती रही। रमम वाह मौलिक चिंतन रतना न हा पर मरम मुवाध गनी अनुकरणीय रही। रम अनुकरण क अय कारण नी है। नायक-नायिका निरूपण नाटयशास्त्र काव्य-शास्त्र और वागशास्त्र क अतगत हुआ था। अरन का निरूपण तो मौलिक है अतजय

१ J B Chaudhary Muslim Patronage and Contribution to Skt Learning Introducing India Part II Calcutta 1949

२ रममजरी का अन्वित रवाक—

ताना तस्य गणेश्वर कविबुलानकारचूडामणि।

दसो यस्य विरहभूम्यमणिकम्लाक्ष्मीनीरिणः॥

३ आचार्य विरवेरवर का प्रकाश, भूमिका, १० १०

मागरनदी तथा रामचन्द्र गुणचन्द्र का विवरण का यथास्वरुप का अनुकरण मात्र है। काव्यशास्त्र सध्वधी तथा म नायिका निरूपण या तो शृंगार व अनगन दृष्टा या स्वतंत्र रूप स। स्वतंत्र रूप स नायिका निरूपण भानुदत्त तथा रूपभास्वामी न किया। तीसरा ग्रथ अक्रूर गार्ह प्रणीत शृंगारमञ्जरी है। इस विषय का स्वतंत्र निरूपण पहले पहल भानुदत्त न किया। हिन्दी व रीतिकालीन आचाय नायक नायिका भेद व वर्णनपत्र म भानुमिश्र म प्राय प्रभावित हैं और नक्षत्रपत्र म रूप गाम्वासी स।<sup>१</sup> भानुदत्त ने नायिका निरूपण को एक स्वतंत्र रूप प्रदान किया। रीतिकालीन आचार्यों ने इस प्रेरणा विषय तथा गता दिए।

अल्पयतीक्षित में भी मौलिकता का अभाव है<sup>२</sup> फिर भी इनके कुवलयानन्द का महत्त्वपूर्ण स्थान है। अल्पयदीक्षित ने कुवलयानन्द तथा चित्रमीमांसा में कुछ मौलिकता ज्ञान का प्रयत्न भी किया है पर उनकी सभी मौलिक उदभावनाओं का पहिलराज ने आगे चलकर सवय खंडन किया है। अतः मौलिकता आच्छादित हो जाती है। एतना हीन हुए भी अल्पयदीक्षित के ग्रंथों का दा कारणों से कम महत्त्व नहीं है—प्रथम तो उनके कुवलयानन्द में उनके समय तक उदभावित समस्त अंतकारों का साधारण परिचय मिल जाता है दूसरे उनका उत्तम स्थान स्थान पर रमगगाधर अलकार बीस्तुभ तथा उद्योत में मिलने के कारण इन ग्रंथों के अद्ययता के लिए दीक्षित के विचारा का जानना जरूरी हो जाता है। इस प्रकार कुवलयानन्द का अलकार कोण का स्थिति प्राप्त हो गई थी। सभी अंतकारों का एक समग्र खोज हिन्दी के अलकाराचार्यों का कुवलयानन्द में मिला। सभी ग्रंथों में अधिक यही ग्रंथ रीत्याचार्यों का अनुकरणीय रहा। अल्पयतीक्षित ने सबसे अधिक अलकारों की संख्या भी दी भरत ने ४ भामह ने ३८ दंडी ने ५ उल्भट ने ४० वामन ने ३३ रदट ने ५२ भोजराज ने ७२ मम्मट ने ६७ स्यफ ने ८१ जयदेव ने १ विन्वनाथ ने ८२ अल्पयतीक्षित ने १२४ और पहिलराज ने ७१ अलकार माने। रीतिकालीन आचार्यों की प्रवृत्ति भी विस्तार की धार थी। यह भी एक कारण हो सकता है कि अल्पयदानिन का अनुकरण तदाधिन दृष्टा। य किना बाद से सर्वोच्चत आचाय भी नहीं थे। इसी प्रकार रीतिक आचार्यों को भी किसी बाद अथवा संप्रदाय का समर्थक बनना युक्तियुक्त नहीं होगा। यह यदि हम अंतकारवादी मानेंगे तो इस दृष्टि से नहीं कि ये भामह दंडी एवं उल्भट के समान अथवा आचार्यों का अंतर्भाव अलकार में

१ इनमें भामह के सरस्वतीकण्ठभरण तथा शृंगारप्रकारा तथा विश्वनाथ का साहित्यरत्नय विराय उल्लेख है।

२ रीतिमाहय का बहू उल्लेख पाठ भाग पृ १३६

अल्पयदानिन का रचना काल के चण्डीनाक के अधर पर हुआ है। लच्छण चण्डीनाक के ह तथा उल्भटों के अथवा भी है। अतः में कवन २४ अंतकार लिखे जा चण्डीनाक में नहीं लिखे।

४ टी० भास्वामी का हिन्दी कुवलयानन्द (वतारम १९५६) पृ १

५ रीतिमाहय का बहू उल्लेख पाठ भाग पृ ८८

करण के समथक हैं अपितु इसनिए मानेंगे कि इन्होंने जयदेव एव अप्पयदीक्षित के समान अलंकार का विस्तृत निरूपण प्रस्तुत कर प्रवारातर स अलंकारवाद की ओर अपनी प्रवृत्ति दिखाई है।<sup>१</sup> अप्पयदीक्षित की त्रोकप्रियता उनपर हुई टीकाओं से मिद्ध हानी है। दस टीकाओं का पता चल चुका है गगाधर वाजपेयी की रमिकरजनी वद्यनाथ वृत अलंकारचन्द्रिका आगाधर की अलंकारदीपिका नागाजीमट्ट की अलंकारमुषा तथा विपमपद व्याख्यान पटपानन्द 'यायवागी' भट्टाचाय की कायमजरी मयुरानाथ की कुवलयानन्द टीका कुरवीरगम की कुवलयानन्द टिप्पण, देवदत्त की लघ्वलंकारचन्द्रिका बेंगल सूरि की मुधरजनी।

पठितराज जगनाथ प्रतिभांगाली कवि और विलक्षण पठित थे। इन्होंने रस गगाधर में उगाहरण स्वरचित ही दिए हैं।<sup>२</sup> विचारा में पर्याप्त मौलिकता है। स्वरचित उदाहरण देने की पद्धति का अनुकरण सभी रीतिकालीन आचार्यों ने किया है। रसगगाधर पर नागेगभट्ट की गुरममप्रवाणिका टीका प्रसिद्ध है। पठितराज ने ध्वनि सिद्धांत का पूण समथन किया। रीतिकालीन आचाय भी ध्वनि सिद्धांत का प्रमी था। पठितराज में विवरणप्रियता भी मिलती है। नेप आचाय सामांय हैं।

इस प्रकार १६वीं तथा १७वीं शती में बवल एक ही मौलिक विचारक पठितराज मिलते हैं। इनके साथ भी कवि प्रतिभा सलग थी। णप आचाय कवि गिशा के उद्देश्य में सरम गली में तथा कोपकार की भाति प्राचीन काव्यशास्त्र की उदरणी कर रहे थे। टीकाकार भी काव्यशास्त्र में उन्नयन और विकास में योग द रह थे। इसी वातावरण की छाया हिंदी के रीतिकालीन आचायत्व पर पड रही थी। सप्रह नियोजन वर्गीकरण टीका तथा सुबोध कविगिशा प्रथ रचना ही णम काल के आचायत्व की सीमाएं बन गए।

## हिंदी काव्यशास्त्र तथा आचायत्व का स्वरूप

(सत्रहवीं शताब्दी तथा उसके पश्चात)

सस्वृत काव्यशास्त्र की सुदीध परम्परा और उसमें सम्बद्ध आचार्यों की विविध काटियों का सर्वेक्षण ऊपर प्रस्तुत किया गया है। सस्वृत की यह परम्परा किसी न किसी रूप में १८वीं शताब्दी तक चलती रही। इस परम्परा में साथ-साथ हम श्रोत से नि गृत सस्वृत काव्यशास्त्र के पृष्ठाधार पर अवलंबित पर अपनी निजी भाषा तथा मुगीन परिवेण भी सीमाओं से निवद्ध और प्रभाविन, हिंदी काव्यशास्त्र की परम्परा भी धनी। सामांय रूप से १६वीं शती में ही इसका मूलपात हो गया था

१ हिन्दी भाषिय का बहन् इतिहास—पृष्ठ भाग, पृ० २८६

२ निमाय नूननमुगाहरणानुरूप।

काव्य मयत्र निहित न पररय द्विचिन्त्।

किं मव्यत गुणनमा मनसाधि गथ।

कम्पूरिका जननि शक्तिमृता गृणेय ॥



श्रीर सत्रहवीं तथा अठारहवीं गती में प्रबल श्रीर पुष्ट होती हुई यह परम्परा १८वीं गती तक चली आई। एकाध देगी भाषा ही तनी दीघ काव्यशास्त्र की परम्परा का गव कर सकती है। यद्यपि हिंदी के आचाय का उपजीव्य सस्कृत काव्य शास्त्र ही था तथापि उसकी अपनी विचित्रताएँ और विनेपताएँ भी थीं। उसके एक और अपनी निजी सीमाओं के भीतर काय करना था और युग की प्रवृत्ति और माग को सतुष्ट करना था। आचायत्व का रूप इन तत्त्वों के आधार पर निर्धारित हुआ।

सस्कृत भाषा के प्रति देगी भाषा की मृदु प्राप्ति हुई। अपने समय में प्राकृत और अपभ्रंश न साहित्य के क्षेत्र में सस्कृत के समान ही लोकप्रियता और प्रनिष्ठा प्राप्त की। प्रेम काव्य गीत रचना मुक्तक रचना और चरित काव्य के क्षेत्र में प्राक्ता और अपभ्रंश की उपयुक्तता दृष्टास स्वीकार की गई। यदि हम सस्कृत साहित्य की और दृष्टि फेरें तो देखेंगे कि आठवीं गतादी के बाद का सस्कृत साहित्य उत्तरोत्तर पडितों की चीज बनता गया। इस साहित्य में लोक जीवन से हटे हुए एक कल्पित जीवन और कल्पित मसार का आभास मिलता है।<sup>१</sup> अपभ्रंश की विकसित परम्परा में अद्भुत रहमान स्वयंभू तथा विद्यापति ने भाषा को दृष्टास पकड़ा। स्वयंभू ने देगी भाषा उभय तज्जन कहकर उसकी जीवनाभा की घोषणा की। विद्यापति ने दक्षिण गणना सब जनमिटठ<sup>२</sup> कहकर उसका माधुय में अपना विश्वास प्रकट किया। स्वयंभू ने अपनी भाषा नीति के सम्बन्ध में कहा—

सामान्य भास छुट्टा मा विहडड, छुट्टा आगम जति विधि घटडड।

छुट्टा हाति सुहाइय—वपणाइ गामेल्ल भास परिहरणाइ।

एहु सज्जन लोचउ किउ विणउ ज अरुहु पदरिसिउ अप्पणउ।<sup>३</sup>

इस प्रकार सामान्य भाषा के ग्राम्य रूप को स्वयंभू अपनाना चाहता है। उस भाषा परम्परा का कवि यद्यपि काव्यशास्त्र से यत्किंचित् परिचित था फिर भी चाहे अपनी विनय भावना से ही हो काव्यशास्त्र के प्रयोग के प्रति उदासीनता प्रकट करता है। स्वयंभू ने निश्चय किया कि न तो मैं व्याकरण का पडित हूँ न वृत्ति सूत्र ही जानता हूँ न विगल को जानता हूँ और न भामह-दंडी के अलंकार विधान को ही जानता हूँ—

वापरण क्याइ ण जानियउ नहिं वित्ति सुत्त वक्काणियउ।

णा निमुणियउ पाँव महाय कथ्य णउ भरहु ण लवलणु छुट्टु सव्यु।

णउ बुजिउ विगल पणारु णउ भामह दण्डिय सकारु।<sup>४</sup>

तुम्हारा तक आन प्राप्त हम साक्षात्भाषा का स्वरूप और उसकी प्राप्ति विगल

१ डॉ. इज्जतीसाल विवेक हिन्दी साहित्य की मुद्रिका पृ. १०

२ इसका रूपान्तर राजक की न इस प्रकार दिया है—

सामान्य भास का ना नाक दा आगम जति किहु गणउं।

दा काँउ सुमदित बनार आनण भास परिहरणाइ।

दा सज्जन लोचउ के विनक का अरुहु प्रणउ अप्पणक॥

हो गए। इस श्रांति ने जहाँ शास्त्रीय सस्कृत भाषा के प्रासाद को ढगमगा दिया, और भाषा को ठग भूमि पर प्रतिष्ठित किया वहाँ शास्त्रीयकाव्य नियोजन के स्थान पर लोकप्रवृत्ति में पुष्ट काव्य की स्थापना हुई। का भासा का सस्कृत प्रेम चाहिए साच' कहकर तुलसी ने भाव की प्रतिष्ठा की, इससे काव्य रूप से सम्बद्ध शास्त्र की अपेक्षा हुई। उन्होंने रघुनाथ गायत्री को भाषा निबद्ध किया। उन्होंने अपनी भाषा भणिति की मफलता के लिए शिव पावती से प्राथना की—

सपेनेहु साचेहु मोहि पर, जो हरगौरि पसाउ ।

तो पुर होउ कहेउ सच, भाषा भनिति प्रभाउ ।<sup>१</sup>

साथ ही स्वयम्भू के समान तुलसी ने भी काव्यशास्त्र के विधि विधान की ओर अपेक्षा भाव प्रदर्शित किया—

कवि न होउ नहि बचन प्रबोद्ध । सकल जसा सब विद्या हीनु ।

धाखर अरथ अनकृति नाना । छंद प्रबध अनेक विधाना ।

भाव भद रस भेद अपारा । कवित दोष गुन बिबिध प्रकारा ।

कवित बिबेक एक नहि सोरे । सत्य कहउ लिखि कागद कोरे ॥

इसका तात्पर्य यह नहीं कि तुलसी इस सब शास्त्रीय विधान से सामान्यतः भी परिचित नहीं थे या इस विधान का प्रयोग उन्होंने नहीं किया, इसका तात्पर्य यही है कि इन सभी काव्यांगों के शास्त्रीय सविधान को भाव की अपेक्षा कम महत्त्व देना था। वस मानस रूपक में उनकी स्थिति भी बताई गई है— उपमा बीच विलास मनारम पुरइति सधन चारु चौपाई छंद सोरठा सुंदर दोहा अरथ अनूप सुभाव सुभासा धुनि अवरवे कवित गुन जाती, नवरस जपतप जोग विरागा। इस सूची में प्रायः सभी काव्यांग आ जाते हैं। स्वयम्भू ने भी इनके प्रयोग की बात कही है।<sup>१</sup> 'मह काव्य' के क्षेत्र में भाषा और महाकाव्य की इस लोक भूमिका पर काव्य भुङ्गला रहे थे वे काव्य कवियों के उन आभिजात्य वर्ग के प्रतिनिधि थे जो सस्कृत भाषा और उसके काव्यशास्त्र के समर्थक थे। पर युग की प्रवृत्ति के दबाव की विवशता थी कि काव्य को भी भाषा अपनावनी पड़ी पर काव्यशास्त्र को दृढ़ता से पकड़े रखा। यह महाकाव्य या प्रबध के क्षेत्र की स्थिति थी।

जहाँ तब मुक्तक और गीता का प्रश्न था उनकी भी भाषा और भाव शकलता की ओर प्रवृत्ति स्वाभाविक थी। एक ओर सांध्य भाषा सिद्ध सवित थी।

१ कालकाण्ड, दादा १५

२ बही, पृष्ठ ८६ पं. बीच

३ गन्धर्व पण्डितों का रूपान्तर राहुल जी ने इस प्रकार किया है—  
प्रधर-बाम जलाय मगोहर सुभनकार छन्द मन्वोपर ।  
गीत समाम प्रवाह कविन, मस्कृत प्राकृत पुलिनाकृत ।

—द्विती काव्यधारा, पृ० २८

४ भाषा बालि न जानही, किन्हे कुल पं. दाम ।

१ भाषा कविता करी, अ-मति येमवनाम ॥ —कविप्रिया

इसके साथ काव्यशास्त्र का सम्बद्ध होना किसी दृष्टि से सम्भव नहीं था। अलंकारों के स्थान पर आध्यात्मिक सन्तों से युक्त शब्द प्रतीकों का प्रयोग होता था। उनकी व्याख्या के लिए अलंकारशास्त्र की ओर जाना आवश्यक नहीं था। इस परम्परा में आगे निगुणियों के गीत-सवद-दोहरा की परम्परा आती है। यह भी प्रतीक विधान पर आधारित धारा थी।

उक्त विवेचन से यह स्पष्ट हो जाता है कि हिन्दी या दगी भाषा की आरम्भिक परिस्थिति में काव्यशास्त्र को विकास के लिए उपयुक्त वातावरण प्राप्त नहीं हुआ। एक प्रकार से उच्च वर्गीय काव्य साधना के प्रति एक प्रतिश्रिया भी परिलक्षित की जा सकती है। पर रूपगोस्वामी के सूक्ष्म रस और नायक-नायिका विवेचन ने काव्यशास्त्र के भक्ति रजित रूप की सुदृढ़ परम्परा का सूत्रपात कर दिया था। भक्ति के स्वरो ने काव्यशास्त्र की दिशा दृष्टि में तो परिवर्तन उपस्थित किया, पर उस दशक व्यापी भक्ति आन्दोलन से सम्बद्ध करके उस गति दी। जयदेव की वाणी भी इस परम्परा में गृहीत हुई। विद्यापति और चण्डीदास ने काव्यशास्त्र तो नहीं लिखा पर मधुर भाव नायिका निरूपण की साहित्य में स्थान प्रदान किया। सिद्ध नाथ सत परम्परा की काव्यशास्त्र की ओर बतती हुई उपेक्षा को एक प्रकार से लजकारा। भक्ति से सम्बद्ध होने से काव्यशास्त्र में कुछ विनोयताएं आ गई थी काव्यशास्त्र अलंकारों के विधान की अपेक्षा रस-मयोजन की ओर विनोय रूप से झुका भक्ति भावना की प्रबलता ने शास्त्रीय आचार्यत्व की अपेक्षा उदाहरणों की रचना की ओर विनोय ध्यान दिया अर्थात् शुद्ध शास्त्रीय विचारधारा का प्रायः अन्त हो गया उदाहरणों में राधा-कृष्ण अथवा इष्टदेव का विनोय रूप से प्रवर्णन हो गया राधा-गोपी कृष्ण के त्रिकोण पर आधारित मधुर भाव सवलित लीला काव्य में नायिका निरूपण प्रधान होता गया जिसका कामशास्त्र ने विनोय रूप से पोषण किया और रस रीति को समझने के माध्यम स्वरूप अव्यक्त रूप से काव्यशास्त्र को बल मिला। कृपाराम की हिततरंगिणी मूर की साहित्यसहरी तथा नन्ददास की रसमञ्जरी तथा रहीम की बरक नायिकाभेद जैसी रचनाओं में भक्ति आधारित काव्यशास्त्र का रूप दीक्षता है। हिततरंगिणी में हिन शब्द मह प्रकट करता है कि य राधावल्लभ सम्प्रदाय के थे। नन्ददास ने स्पष्ट रूप से रसमञ्जरी का उद्देश्य प्रेम रीति-परिचय बताया है बिना जाने यह भद सब प्रेम न परच होय। गोपी ने अपने 'रामभूषण' में अपनी रामभक्ति-भावना और अन्तकार निरूपण की शक्ति का समर्थन किया है। मोहनलाल मिश्र के 'शृंगारलागर' का उद्देश्य भी भक्तिमूलक था। मूर की साहित्यसहरी उद्देश्यतः शास्त्रीय अर्थ नहीं है उसमें भक्ति ही उद्भवित है। इन प्रकार मधुर भक्ति शास्त्र में काव्यशास्त्र का प्रवर्णन हुआ गया था। आगे के साहित्य पर उस परम्परा का प्रभाव अवश्य हुआ पडा कि राधाकृष्ण का शृंगारिक

१ रसमञ्जरी-सम्प्रदाय-विद्वान् एवं अर्थान्

रूप रीतिकालीन कविता द्वारा रचित उदाहरणों में श्रोत प्रीत रहा। भक्त्याश्रित काव्यशास्त्र की इस परिस्थिति में कवि न स्वतंत्र काव्यशिक्षा की दृष्टि से काव्यशास्त्र की पुनः प्रतिष्ठा की। यही हिंदी के काव्यशास्त्र का सूत्रपात था। आग भक्ति और काव्यशास्त्र की परम्परा चली तो अवश्य पर शिथिल रूप में। भक्ति का स्थान शृंगार में लिमा और काव्यशास्त्र के प्रति कवि और आचार्य विरोध उद्बुद्ध हो गए। भक्ति ने काव्य के साथ संगीत का संयोग करके काव्यशास्त्र को सीमित कर लिया था। मुक्तकों के उदय ने इस फिर बल प्रदान किया।

### राज्याश्रय और काव्यशास्त्र

जिस प्रकार भक्ति का आश्रय ने काव्यशास्त्र को प्रभावित करना आरम्भ किया उसी प्रकार १७वीं शती के ससृष्ट और हिंदी काव्यशास्त्र को राज्याश्रय की प्रवृत्ति ने भी प्रभावित किया। अत्यंत प्राचीन काल से शास्त्र को राज्याश्रय मिलता रहा था। उपनिषद् युग में जनक आदि के दरवार में दार्शनिक विद्वान् रहते थे और सत्यानुसंधान के लिए शास्त्राश्रय करते रहते थे। वैदिक सूक्तियों में अतिशयोक्तिपूर्ण नारासिंघों तथा प्रशस्तियों का उल्लेख भी मिलता है।<sup>१</sup> ऋग्वेद में भी प्रथयदाता प्रभुषा की प्रशंसा और कुशल प्रशंसित गायका को दिए जाने वाले पुष्कल पारितोषिकों का वर्णन करने वाली शान-स्तुतियाँ पाई जाती हैं। देवताओं की विजयों की प्रशस्तियाँ तो मिलती ही हैं।<sup>२</sup> पुरुखा<sup>३</sup> और नहुष जैसे कुछ राजाओं की चर्चा भी है। इन वर्णनों में कहीं-कहीं प्रलङ्घित गली का प्रयोग है। पतञ्जलि द्वारा प्रयुक्त श्लोकी अथवा श्लोकांगों को उद्धृत करके कीच ने शृंगार प्रशस्ति, वरुणा सुभाषित आदि काव्यरूपों के बीजों तथा उनके अक्षुरण को सिद्ध किया है।<sup>४</sup> प्रशस्ति की स्थिति राज्याश्रय का प्रमाणित करती है। सुप्रसिद्ध ससृष्ट कवियों के सरक्षण का श्रय बहुत कुछ राजाओं को ही था।<sup>५</sup> वाण के आश्रयदाता रूप और अनेक कवियों और आचार्यों के आश्रयदाता भोज को नहीं भुलाया जा सकता।

मध्यकाल में राज्याश्रय का निविध रूप हो गया मुस्लिम शासकों का राज्याश्रय तथा हिंदू सामन्तों का आश्रय। शासनीय समस्याओं से बहुत कुछ मुक्त होकर तथा अवकाश प्राप्त हिंदू राजाओं तथा सामन्तों ने शास्त्र और काव्य के सरक्षण सृजन एवं पुनरुत्थान में सक्रिय रचि ली। भाषा ही नहीं, ससृष्ट कवियों और काव्यशास्त्र के आचार्यों का भी मुस्लिम बादशाहों का आश्रय प्राप्त हुआ। प्रमुख

१ Macdonell and Keith *Vedic Index* I p 443

२ २२ की शब्दर विज्ञान, अ. ७।११४, २।१६।६

३ यजु. १।२

४ अ. ८।८।३ १।१० १।११ ७।६।५ १०।१०।१२ ८।२।१०४

५ कीच, हिन्दी अनुव. पृ. १८

६ राजाश्रय ने, काव्यशास्त्रों में पुनः प्रसिद्ध आश्रयदाता राजाओं का उल्लेख किया है—  
वामदेव, मानव इति, सू. ४ सामन्तक आदि।

आश्रयदाता और आश्रित संस्कृत कवि ये हैं —

भानुकर (भानुत्त)	गेरगाह निजामगाह
गोविन्दमठ	अकबर
पन्निराज जगन्नाथ	गाहजहा आसफ्खा
हरिनारायण मिश्र	गाहजहा
वगीधर मिश्र	मुमताज महल गाहजहा
चतुर्भञ्ज	गायस्ताया (औरगज़ब)
लक्ष्मीपति	मुहम्मदगाह
उपरराज	मुहम्मद बगदा (गुजरात)
महल	होगग गौरी अयवा अलपया (मालवा)

उक्त सूची में स १ ३ ६ ७ तथा ९ न संस्कृत में काव्यशास्त्रीय रचनाएँ कीं। काव्य और काव्यशास्त्र के अतिरिक्त ज्योतिष संगीत व्याकरण दान कोष शक्ति शास्त्रीय विषयों पर मुस्लिम नामका के संरक्षण में रचनाएँ हुई। ये विद्याएँ भी काव्य के लिए सहायक अभ्यस्तुत सामग्री प्रस्तुत करती थीं। नाममाला साहित्य (काव्यशास्त्र) विशेष रूप से काव्य और काव्यशास्त्र के लिए आवश्यक था। नददास ने भी नाम माना की रचना की थी। हिन्दी में आरम्भ से ही छन्दबद्ध नाममालाशा की परम्परा मिलती है। यह परम्परा हम सूची से स्पष्ट हो जाती है—

छात्रिकवारी	अमीरखुमरा
अनकायमजरी	नददास
मानमजरी	नददाम

१. डॉ. सूरी J B Chaudhari Muslim Patronage and Contribution to Sanskrit Learning (Introducing India Part II Calcutta 1949 p 83) के आधार पर है।

२. इनका अकबरिय कालिदास भी कहा जाता था। 'नद' पर १६। शती — उक्त शरी — पर गुरु के पर-अदानी में उपलब्ध है।

३. 'आनन्दविलस' — रचना हमका प्रमाण है। 'विषय रत्न को नाममा में इन विद्याएँ हैं —  
 तिल्लिखरा का नाममा का  
 मनाथान् पूरायतु मन्व ।  
 अन्वय अन्वय नपय दस  
 शाकाय वा म्दानवगा वा म्गा ॥

४. 'दामोदर' में 'न' का पद्य मुक नद है।

५. 'दामोदर' में इनका पद्य संकलित है।

६. 'दामोदर' — 'महानन्द' (१६८३ ४)

७. 'दामोदर' — 'विद्यावली' १८८३ ४

८. रचना — 'राजविद्या'

९. 'दामोदर' — 'दामोदर' शृंगाररत्न संस्कृतमन्वयन ।

नाममाला	नन्ददास
नाममाला	वनारसीदास
अमरकोषभाषा	हरिजु मिश्र
नाममाला कोष	चन्दन
गणरत्नावलि	प्रयोगदास

मुसलमान बादशाहों ने नाममालाकारों तथा अन्य संस्कृत क शास्त्रज्ञों को अपने दरबार में आश्रय दिया। हृपकीर्ति की लिखी नाममाला एक प्रसिद्ध पर्याय कोष है।<sup>१</sup> हृपकीर्ति क गुरु चंद्रकीर्ति जहागीर क द्वारा सम्मानित और सरभित्त थे।<sup>२</sup> हृपकीर्ति ने अपने धातु पाठ तरंगिणी में संस्कृत क विभिन्न आश्रित शास्त्रकारों की सूची आश्रयदाताओं क नाम क साथ दी है।<sup>३</sup> सूची स अलाउद्दीन स नेकर जहागीर तक की परम्परा स्पष्ट होती है। अकबर स पूर्व ही संस्कृत क शास्त्राचार्यों को मुस्लिम प्रश्रय प्राप्त होता रहा। संगीत आदि अन्य शास्त्रकारों को भी सरक्षण मिला। अनेक हिंदी का शास्त्र क रचयिताओं का भी मुस्लिम सरक्षण प्राप्त था।

बंगाल पूर्व हिंदी का शास्त्राचार्यों का विशेष विवरण तो प्राप्त नहीं पर व भी था तो स्वतंत्र क अर्थान भक्तिपरक का शास्त्र स सम्बद्ध क अथवा राज्याश्रित थे। पुण्डरीक राजा मान क आश्रित था।<sup>४</sup> बंगालदास का सम्बन्ध यद्यपि एक हिंदू राजा स था फिर भी जहागीर स उनका गहरा सम्बन्ध भुनाया नहीं जा सकता। आग क आचार्यों का सम्बन्ध तो प्राय राजाओं या मुस्लिम बादशाहों स था। इनका राज्याश्रय विवरण था दिया जा सकता है—

मुन्दर कवि	गाहजहा
चित्तामणि	नागपुर क मकरदशाह <sup>५</sup>
मतिराम	बूंदी के भावमिह
भूषण	गिवाजी

१ पूना स १९६१ ई में प्रकाशित। मम्पाक मधुकर मगराष्टकर

२ बड़ी भूमिका पृ० १११

३ ब्रह्मन्—अन्तर्गत (अलाउद्दीन) रत्नशेखर—पैरोजशाह (१३५१ ई ८८ ई०) इमकीर्ति—उत्कलशाह (सम्भवत मिहन्दर लोना १४८८/१५१८ ई), अन्तराय—हुमायूँ (१५०१/१५५५), उद्देशार्थ—शाहमलम (जहागीर), पद्मगुण्डर मणि—अकबर (१५५६/१६०५)

४ *Journal of Indian History: Cultural Activities During the Reign of Allauddin Khilji: Introducing India Part II Muslim Patronage and Contribution to Sanskrit Learning*, J. K. Chaudhary

५ गिरधरु विनोद भग १ (सं १९६४ वि), पृ० ७३ शिवसिंह सराव, पृ० ६ (भूमिका)

६ अर्जुन वना मामुना समत साह मकर

महाराज गिवाजी जिति भक्त मसु मुभव ॥

इनको रत्नमि सोनकी तथा साहजहा की कृपा भी प्राप्त था।

कुनपति मिश्र	महाराज रामसिंह (जयपुर) <sup>१</sup>
सुखन्ध मिश्र	श्रीगजब के मंत्री फाजिन अली
देव	वर्द्ध आश्रयदाता पर मुख्य रूप से भोगीलाल
कालिदास त्रिवेदी	वीना के जालिम जोगाजीत
मूरति मिश्र	जहानाबाद के नेवाब मुहम्मद
आचार्य श्रीपति	सम्भवत स्वतंत्र
सोमनाथ	प्रतापसिंह (भरतपुर)
करन कवि	पन्ना नरेश
भिलारीदाम	अलवर नरेश हिंदूपति
प्रतापसाहि	धरखारी नरेश विश्वमसाहि
नवीन	नाम्ना नरेश जसवतसिंह
पद्याकर	जगतसिंह (जयपुर) <sup>२</sup>

राजाशा ने ही नहीं उनके अमीर उमरावों ने भी हिन्दी के आचार्यों को आश्रय दिया। बेनी बंदीजन बजीर टिकतराय (लखनऊ) क कृष्ण कवि जयपुर नरेश हरनाथ सिंह के पुत्र गोविंद सिंह के आश्रित थे। इनके अतिरिक्त अनेक ज्ञात अज्ञात आचार्यों को राजाओं के अमीर उमरावों ने आश्रय दिया था।

इस प्रकार राज्याश्रय का द्वार हिन्दी और संस्कृत आचार्यों के लिए उमुक्त रहा। इस राज्यश्रय ने आचार्य का स्वरूप निर्धारित किया। हिन्दी के आचार्यत्व की सीमा निश्चित करने में संस्कृत की सुदीर्घ काव्यशास्त्र परम्परा का भी हाथ था। काव्यशास्त्र का प्रत्येक अंग पर प्रायः अतिम गौरव कहा जा चुका था। सिद्धांतों का परीक्षण अण्डन-मण्डन तथा उनकी आलोचना प्रत्यालोचना हो चुकी थी। इस समृद्ध परम्परा ने प्रेरणा तो भरपूर दी पर हिन्दी के आचार्य का कतव्य पथ को जटिल बना दिया। काव्यशास्त्र में सक्रिय रूप से उदभासक या दाह्याता के रूप में भाग ले सकना सम्भव नहीं था। पर राज्यश्रय विनोद और विलास के रूप में काव्य और काव्यशास्त्र की मृष्टि की प्रेरणा दे रहा था। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र की स्रोत के रूप में स्वीकार करके और राज्यश्रय से प्रेरणा लेकर हिन्दी का आचार्य चला। हिन्दी के आचार्य के माप कवि भी लगा रहा। आचार्यत्व की पूणता के लिए कवि ने उपाहरणा का योजना की। विजयो या पराजित आश्रयता के अवकाश लोगों को प्रगल्भ और विनाश विनाश में मर्ति और स्फोट बनाना आश्रित कवि आचार्य का कतव्य-कर्म मुनिश्चित हुआ। इस कान का आश्रयदाता राज और रूप की परम्परा में नहीं था जो काव्यशास्त्रीय सूत्र उगापोद्ध को आश्रय देता। वह सम्भवतः गाम्भिर्य में नहीं विनोद में काव्यशास्त्र में नहीं कविता के वाच्य

१ उमादशर ८० २ १ १

२ यह मूल उपाहरणापरम्परा है। इहम मूल्य के लिए लिखी साहित्य का २५२ ४ १०० (१९८०) १०००।

शास्त्रीय रसास्वाद तथा तत्संबंधी शक्ति सचय में अभिवृत्ति रखता था। उसकी रचि का एक और पक्ष था वह काव्यशास्त्रीय उपनिधि में इतना विश्वास नहीं रखता था, उस स्वयं भी कविता की रचना (चाहे प्रयत्नसाध्य ही क्या न हो) की अभिलाषा थी। तत्कालीन सामंतीय जीवन का आदर्श वह था जो कामशास्त्र ने निश्चित किया था। नागरिक की निचर्या में परिष्कृत रचि और कला विलास का स्थान था। उसके निष्ठ बहुमुखी ज्ञान अभिवाय था। साहित्य संगीत-कला की गौणिक्या आयोजित होती रहती थीं। यह वातावरण 'कवि' नहीं तो प्रयत्नसाध्य कवि अवश्य बना सकता था। कई राजाओं ने स्वयं कविता की तथा काव्यशास्त्र की रचना भी की। कुछ प्रसिद्ध राजा या राजकुमार जिहान काव्यशास्त्र की रचना की ये थे — नरवरगढ़ के राजा रामसिंह तेरवानरेण यशवर्तिसिंह अमेठी नरेश भूपति मिहरामऊ के रईस जमींदार रणधीर सिंह कागिराज (बासी-नरेश महाराज चेतसिंह के पुत्र) तथा भानकवि (राजा जोरावरसिंह के पुत्र)।<sup>१</sup> कवि के द्वारा प्रशस्ति गायन में राजा को अपने अमरत्व की ज्योति दीव्यती थी। इसमें पुरस्कार में कवि को निश्चित अवकाश मिलता था। राजा प्रशस्ति के आधार पर ही अमरत्व के लोभी नहीं थे काव्य-नपुण्य प्राप्त करके कवि रूप में भी यश गरीर की प्राप्ति के इच्छुक थे।<sup>२</sup> कवियों और काव्याचार्यों के लिए यह सौभाग्य की बात थी। ऐसे काव्यच्छु राजाओं का अस्तित्व संस्कृत काल में भी था।<sup>३</sup> बाण के आश्रयदाता हर्ष स्वयं काव्य साधक थे। राजा भाज ने अपनी साहित्य साधना से अपने बहुशास्त्र ज्ञान को सिद्ध किया है। हाल सातवाहन का नाम प्राकृत साहित्य में प्रसिद्ध है ही। वाकपति राज ने गौडवहो नामक महाकाव्य की रचना कन्नौज के राजा यशोवर्मन के लिए की थी। इसमें काव्यमीराधिपति उलितादित्य के हाथों उसकी पराजय हो जान पर भी उसकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सकी।

## उद्देश्य

उक्त सामंतीय वातावरण ने हिंदी के काव्यशास्त्र की दिशा निर्धारित की और उद्देश्य निश्चित किया। कुछ काव्यशास्त्र के ग्रंथों के साथ 'विनोद सम्बद्ध हुआ— पदमाकर का जगद्विनोद' कानिदास का वधविनोद, चन्द्राग्रर का रमिकविनोद जनराज का कवितारमविनोद प्रतापसाहि का काव्यविनोद आदि। कुछ ग्रंथों का नामकरण विनाम के आधार पर हुआ—गोपाल राय का भूषणविलास मदन का रमविलास देव के नवानीविलास रमविलास और कुशलविलास समनम का

१ इनके विशेष परिचय के लिए अज्ञेय दिल्ली साहित्य का इतिहास (पृष्ठ भाग) पृ. ४२६, ४२७, ४२८, ४२९, ४३०, ४३१

२ देव ने इस अमरत्व की रक्षा की है —

रक्षा के लिये धामधन सर्व्व मरदाय लय।

गम गरीर गम में अमर भय्य काज रम रूप ॥ (वाचस्पत्ययन)

३ कीर्ति दिल्ली अनुवाक, पृ. ६६



कुलपति मिश्र  
सुखदेव मिश्र  
दव  
कालिदास त्रिवेदी  
मूरति मिश्र  
आचाय श्रापति  
सोमनाथ  
करन कवि  
भिक्षारीदाम  
प्रतापसाहि  
नवीन  
पद्याकर

महाराज रामसिंह (जयपुर)<sup>१</sup>  
घोरागजब के मंत्री फाजिल अली  
कई आश्रयदाता पर मुख्य रूप से भागीलाल  
बीना व जालिम जोगाजीत  
जहानाबाद के नेवाज मुहम्मद  
सम्भवत स्वतंत्र  
प्रतापसिंह (भरतपुर)  
पना नरेश  
अलवर नरेश हिंदूपति  
चरखारी नरेश विष्णुसाहि  
नाभा नरेश जसवतसिंह  
जगतसिंह (जयपुर)<sup>१</sup>

राजाभा ने ही नहीं उनके घमीर उमरावों ने भी हिंदी के आचार्यों को आश्रय दिया। बेनी व दीजन वजोर टिकतराय (लखनऊ) व कृष्ण कवि जयपुर नरेश हरनाथ सिंह व पुत्र गोविंद सिंह के आश्रित थे। इनके अतिरिक्त अनेक ज्ञात अज्ञात आचार्यों को राजाओं के घमीर उमरावों ने आश्रय दिया था।

इस प्रकार रामायण का द्वार हिंदी और संस्कृत आचार्यों के लिए उमुक्त रहा। इस रामायण ने आचाय का स्वरूप निर्धारित किया। हिंदी के आचायत्व की सीमा निश्चित करने में संस्कृत की सुदीर्घ काव्यशास्त्र-परम्परा का भी हाथ था। काव्यशास्त्र व प्रत्येक अंग पर प्रायः अन्तिम गान् कहा जा चुका था। सिद्धांतों का परीक्षण संपन्न-मण्डन तथा उनकी आलोचना प्रत्यालोचना हो चुकी थी। इस ममृद्ध परम्परा में प्रेरणा तो भरपूर दी पर हिंदी के आचाय व कृतय पथ को जटिल बना दिया। काव्यशास्त्र में सत्रिय रूप से उदभावक या पाख्याता के रूप में भाग ले सकना सम्भव नहीं था। पर रामायण विनोद और विनास व रूप में काय और काव्यशास्त्र की मृष्टि की प्रेरणा दे रहा था। इस प्रकार संस्कृत काव्यशास्त्र को स्रोत व रूप में स्वीकार करके और रामायण से प्रेरणा लेकर हिंदी का आचाय चला। हिंदी के आचाय के साथ कवि भी लगा रहा। आचायत्व की पूणता के लिए कवि ने उगाहरणा की योजना की। विजयी या पराजित आश्रयताता के अवकाश क्षण का प्राम्नि और विनास विनास से महिन और स्फात बनाना आश्रित कवि आचय का कर्तव्य वम मुनिश्चिन हुगा। इस कान का आश्रयदाता भाज और हृय की परम्परा में नहीं था जो काव्यशास्त्रीय मूयम ऊगापोह को आश्रय देता। व सम्भवत गान्त्र में नहीं विनास में काव्यशास्त्र में नहीं कविता व काव्य

<sup>१</sup> रामायण का ० = ३

<sup>२</sup> दस मू उगाहरणा रूप का ० ३। वृद्ध मू की व वना हिंसा साहित्य व वृत्त व वम (वट वना) वना।

शास्त्रीय रसास्वाद तथा तत्सवधी शक्ति-सचय में अभिवृद्धि रखता था। उसकी रचि का एक और पक्ष था वह काव्यशास्त्रीय उपलब्धि में अतना विश्वास नहीं रखता था उसे स्वयं भी कविता की रचना (चाहे प्रयत्नसाध्य ही क्या न हो) की अभिप्राया थी। उत्कालीन सामंतीय जीवन का आदर्श वह था जो कामशास्त्र ने निश्चित किया था। नागरक की शिचर्या में परिष्कृत रचि और बना विलास का स्थान था। उसके लिए बहुमुखी ज्ञान अनिवार्य था। साहित्य-नयीत-कला की गतिविद्या आयोजित होती रहती थीं। यह वातावरण 'कवि नहीं तो प्रयत्नसाध्य कवि अवश्य बना सकता था। कई राजाओं ने स्वयं कविता की तथा काव्यशास्त्र की रचना भी की। कुछ प्रसिद्ध राजा या राजकुमार जिहान काशशास्त्र की रचना की में थे — नरवरमण व राजा रामसिंह तेरवा-नरेण यशवन्तसिंह अमठी-नरस भूपति सिंहरामज के रहस जमीनार रणधीर सिंह काशिराज (काशी-नरेश महाराज चेतसिंह के पुत्र) तथा भानकवि (राजा जारावरसिंह व पुत्र)।<sup>१</sup> कवि व द्वारा प्रशस्ति-गायन में राजा को अर्पने अमरत्व की ज्योति दीखती थी। इससे पुरस्कार में कवि को निश्चित अवकाश मिलता था। राजा प्रशस्ति व आचार पर ही अमरत्व व नीमी नहीं था का य-नपुण्य प्राप्त करके कवि रूप में भी यशशरीर की प्राप्ति व इच्छुक थे।<sup>२</sup> कविओं और काव्याचार्यों के लिए यह सौभाग्य की बात थी। ऐसे काव्यचट्ट राजाओं का अस्तित्व सफ्टकाल में भी था।<sup>३</sup> बाण के आश्रयदाता ह्य स्वयं काव्य साधक थे। राजा भोज न अर्पनी साहित्य साधना से अर्पन बहुशास्त्र ज्ञान का सिद्ध किया है। हाल सातवाहन का नाम प्राकृत साहित्य में प्रसिद्ध है ही। वाकपति राज ने गौडवही नामक महाकाव्य की रचना कनोज व राजा योगवमन के लिए की थी। इससे काशीराधिपति अनितादित्य व हाथों उसकी पराजय हो जान पर भी उसकी कीर्ति अक्षुण्ण रह सकी।

उद्देश्य

उक्त सामंतीय वातावरण न हिली व काव्यशास्त्र की शिशा निर्धारित की थी उद्देश्य निश्चित किया। कुछ काव्यशास्त्र व ग्रंथों व साथ विनोद सम्बद्ध हुआ— पद्माकर का 'जगद्विनोद कालिदास का बघविनोद, चन्द्रावर व रसिकविनोद', जतगज का 'कवितारसत्रिनोद' प्रनापसाहि का काव्यविनोद आदि। कुछ ग्रंथों का नामकरण विलास व आचार पर हुआ— योगेश राय का भूपणविलास महन का रसविनाम दव व भवानीविलास, 'रसविनाम और 'कुशाविलास मदनम का

१ इन विषय परिचय व विषय शि, दिल्ली साहित्य का पुस्तक शि शस (पठ का) पृ० १०६, ४२ ४४१, ४१३, ४७४  
 २ दव ने इन अमरत्व का उचा की का है —  
 रक्षा शश्वत भागधन शश्वत शश्वत शश्वत  
 जय शश्वत शश्वत शश्वत शश्वत शश्वत शश्वत  
 ३ शिव शिशा अशुभ १० ६६

रमिकविलास बेनी बंदीजन का रसविलास' बलवीर का दपतिविलास लाल कवि का विष्णुविनास भोगी लाल दुब का बख्तविलास देव का भावविलास रूपसाहि का रूपविलास प्रतापसाहि का काव्यविलास आदि। किंतु इसमें यह तात्पर्य नहीं कि संस्कृत के काव्यशास्त्रों की गली पर नामकरण हुआ ही नहीं। सबसे लोकप्रिय नाम भूपण या उमक पर्यायो के आधार पर बना।<sup>1</sup> इससे अलंकार प्रियता स्पष्ट है। वस अलंकार नक्षत्र प्रयोग का नामकरण इस प्रकार का हुआ। संस्कृत में भी इन प्रकार के नाम थे काव्यालंकार काव्यालंकारमूत्र प्रतापस्त्र यणोभूपण सरस्वतीकण्ठाभरण आदि। प्रकाश अलोक चण्डिका आदि संस्कृत नाम भी संस्कृत की परम्परा में आते हैं। दपण' की गली के भी कुछ नाम हैं। फिर भी द्विनो और विलास वाचा नामकरण नवीन प्रतीत होता है और प्रवृत्ति की दृष्टि में एक प्रमुख प्रेरणा स्रोत की ओर संकेत करता है।

इन साहित्यिक आचार्यों का उद्देश्य निरूपण भी युग की परिस्थिति में और राज हृदि के अनुसार हुआ। इनके उद्योगों में विकास हुआ है। काव्यशास्त्र काव्यसाधना का एक अंग था। सदाप काव्य कला को समाज में निर्यात बना देना है।<sup>2</sup> आचार्यों ने काव्य का सफलता के लिए गति-वृत्ति और अभ्यास को आवश्यक माना है। व्युत्पत्ति विविध शास्त्रों का ज्ञान है तथा अभ्यास का आधार काव्यशास्त्र का ज्ञान है। वस साधना के लिए पटुमनसा में काव्यशास्त्र तथा अथ सम्बद्ध शास्त्रों के अध्ययन की आवश्यकता बनाई है।<sup>3</sup> वस वा अभवन् ही वही मुकवि है।<sup>4</sup> दूतह न वस गत का और भी स्पष्ट किया है। उनका अनुसार अलंकार ज्ञान से युक्त और अलंकार प्रयोग में निष्णात कवि अलंकारी होता है और सभा में उमका आदर हाता है। सभा में गोभिन होने और राजदरबार में सम्मान पान के लक्ष्य के लिए यही लिए काव्यशास्त्रों की आवश्यकता थी। यदि कवित्व गति जन्मसिद्ध हाता है तो उमक लिए कविगिणा और निरागण भी आवश्यक हाता है। वस संस्कृतियों (= आचार्यों) ने पूर्वजान में

१ उदाहरण - लिए गण का रामचंद्रभूषण कान्हेन का कशाभरण शक्तिभूषण तथा भूपभूषण चन्द्रमण्ड का भूपभूषण भूषण का शिवभूषण भूषण का बंटाभूषण अलंकार का कवित्वगणना पत्रिका का पत्रिकाभरण।

२ उदाहरण का पत्रिकाभरण पत्रिका का पत्रिकाभरण पत्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण का पत्रिकाभरण।

३ उदाहरण का अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण का अलंकारचण्डिका।

४ उदाहरण का अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

मुद्रिकाभरण का अलंकारचण्डिका।

५ उदाहरण का अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

७ उदाहरण का अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

८ उदाहरण का अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

अलंकार चण्डिका रमक मुद्रिका का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

—नियुक्ति का अलंकारना मुद्रिकाभरण।

बड़े-बड़े सिद्धांतों की सृष्टि की थी, पर अलकृती बनने के इच्छुक कवियों के लिए एस लघु प्रयत्नों की भी आवश्यकता थी जो उन सिद्धांतों को सुगम सुलभ कर दें।<sup>१</sup> जो सिद्धांतों के इन लघु मस्वरणों को कठस्थ कर लेंगे उनको भारती की सिद्धि हा सकती है।<sup>२</sup> इस युग के काव्यशास्त्र और आचार्य का उद्देश्य इसी आवश्यकता से निश्चित हुआ। राधाश्रय का मोह अनक नवीन कविता को काव्यशास्त्र की ओर आकर्षित कर रहा था। इसीलिए कविशिक्षा और तत्त्वम्ब की ग्रंथों की आवश्यकता का अनुभव किया जा रहा था। सभी कविता के पास इतनी गति सम्पत्ति कहा थी कि काव्यशिक्षा के सहारे के बिना ही युगकवि बनकर अपना स्थान बना सकें। 'कवित विवक एव नहि मारे परम्परा का कवि अपनी अनिश्चिन्त भाव सम्पदा के आधार पर चल सकत थे। आरम्भ से ही हिन्दी के आचार्य ने कवि की इस आवश्यकता को ध्यान में रखा। कृपाराम ने अपनी हिततरंगिणी की रचना कविहित की।<sup>३</sup> कविव का उद्देश्य स्पष्टतः शास्त्रोन्मुख हो जाता है। उनकी दृष्टि में कवि ही नहीं पाठक भी आता है। भामह की भांति वे भी दोषयुक्त काव्य और उसके कता को समाज में निन्द्य समझते थे। साथ ही अलकाररहित कविता की स्थिति की भी वे कल्पना नहीं कर सकत थे।<sup>४</sup> अतः उन्होंने कविहित का ध्यान में रखकर ही कविप्रिया की रचना की। जो कवि बनना चाहते हैं उन्हें कविप्रिया कठस्थ कर लनी चाहिए।<sup>५</sup> कविव की दृष्टि कविशिक्षा की थी। वे बालाचालका की शिक्षा के लिए शिक्षाग्रथ की रचना कर रहे थे। कविशिक्षा की परम्परा राजाखर से निश्चित रूप में चला थी। इसका वर्णन पीछे दिया जा चुका है। इस शिक्षा संप्रदाय का उद्देश्य काव्यशास्त्र का उपस्था की दृष्टि से दयन वाले नौसिखिय कवियों को इस शास्त्र की ओर आकर्षित करना था। राज्याश्रय का लाभ अनक कवियों को आकर्षित तो कर रहा था पर कविपथ से अनजान रहकर उनकी माधना पूर्ण नहीं हो पाती थी। व्याकरणशास्त्र से विमुख विद्यार्थियों को इस शास्त्र की ओर आकर्षित करने के लिए यही काव्य

१ श्रीरघु मन मन कविन के अर्थाशय लघुतरंग ।

कवि दूल्ह याने किया कविपुलक टामरण ॥

२ अथ काव्य शिष्यति जो समुक्ति परहिने कठ ।

मना समैगी मानी तः रमना उपरठ ॥—दूल्ह

३ द्वितन गिनी हारिनी कवि द्वित परम प्रकामु ।

हा हारिणीप्रमाण विवक अनकी वा का माना है द्वितन साहित्य पृ ८

४ राजन अचन दापनुल कविता बनिना मित्र ।

कविव हाना हान ज्या, मगाए अपवित्र ॥—कविप्रिया १४

५ शास्त्रि मुजनि मुलदना सुवरन सुरत ।

भूषण विपु शावरणदा कवि । बनिता पित्त ॥ कविप्रिया १७

६ अठना ज्यो कवि प्रया कठवरदु कविरात्र ॥—कविप्रिया २३ दूल्ह न भी मीने मर मिलाया ।

७ मनुमें बानाबानकनि बरनन पथ अगाप ।

कविप्रिया पत्रक करी छिन्नी मुन अपगाप ॥—कवि० ३१

कात्यायन ने पाणिनि सूत्रों की वातिक की रचना द्वारा किया था। केशव ने पूर्वाचार्यों के पुष्ट और सुनिश्चित काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की आलोचना प्रत्यालोचना या उनका खण्डन मण्डन न करके उनको भाषा की सरल शली में निबद्ध किया। विषय की सुस्पष्टता के लिए केशव ने उदाहरण प्रत्युदाहरणों की रचना की। इस प्रकार व्याख्याकार आचार्य के काव्य का सम्पादन भी किया और कवि शिक्षाचार्य का भी। इस प्रकार केशव ने कवि-योगेच्छु नवीन कवियों के हिताथ पूर्वाचार्यानुमोदित सिद्धांतों को सुबोध गली में प्रस्तुत किया और लक्षणों के स्पष्टीकरण के लिए उदाहरण प्रत्युदाहरणों की योजना की। उदाहरणों में राम-कृष्ण को स्थान देकर भक्तिकर्त्रीय नवीन कवियों को भी काव्यशास्त्रीय शिक्षा की ओर आकर्षित किया। केशव का बालाबालकनि वाला उद्देश्य अप्रपद्यदीक्षित से साम्य रखता है।<sup>१</sup> केशव का लक्ष्य शुद्ध कविशिक्षा था। पर अप्रपद्यदीक्षित ने ललित त्रियते लिखकर उदाहरणों के लालित्य की ओर सम्भवतः सवत किया है। मतिराम ने ललितललाम नामकरण करके इसी परम्परा से जसे अपना सम्बन्ध जोड़ा था। डा० श्रीमत्प्रकाश ने इसका अर्थ 'मुकुमारोपयोगी दिया है।<sup>२</sup> भूषण का उद्देश्य अलंकार निरूपण नहीं शास्त्रीय माध्यम से गिवा-चरित्र गायन था। इस प्रकार कविशिक्षा से ललितललाम और उससे गिवराज भूषण उद्देश्य विकास की दिशा को स्पष्ट करते हैं। केशव का उद्देश्य प्रायः शास्त्रीय था। जसबतसिंह ने भाषाभूषण की रचना भाषा में निपुण और कविता विषय प्रवीणों के लिए की।<sup>३</sup> यहाँ बालाबालकनि वाला उद्देश्य नहीं दीखता। कविता विषय प्रवीण से तात्पर्य सम्भवतः काव्यशक्ति से युक्त होना है जो दूल्ह के अनुसार जन्मजात होती है। उसको विकसित कविशिक्षा करती है। रसनीन ने ब्रजभाषा सीखने के लिए ही लक्षण ग्रन्थ रची।<sup>४</sup> इस प्रकार उद्देश्य का विस्तार होना रहा। भूषण और रसनीन ने स्वयं अपने हीन के लिए अलंकार निरूपण किया। केशव का जो उद्देश्य आरम्भ में था वह ज्यों का त्यों पीछे न रह सका शुद्ध कविशिक्षा का उद्देश्य न रहकर उद्देश्य मिश्रित हाता गया।

उद्देश्य की दूसरी दिशा और है। रसिकों के लिए भी काव्यशास्त्र की रचना हुई। पाठक का सामान्य से अधिक रस प्राप्त करने की क्षमता प्रदान करने में काव्य

१ व्याख्याकार आचार्य का काव्य पर-लि ने ही स्पष्ट किया है। न केवलान् त्वापत्तानि व्याख्यानं बन्दि आन् ए नन्ति। किं तर्हि। उदाहरण प्रत्युदाहरण बन्त्याचार्यार त्यतममुत्तिन व्याख्यानं भवति। (I p 189)

२ अलंकारु बालानाम् अत्रात्तन सिद्धय।

ललितं त्रियते तथा ललितं लक्षणं ॥ कुन्दनदान ४

३ ललितं अलंकारं मन्त्रं ५ ११

४ निवचन्ति ललिते भवा कवि भूषण के वित्त।

मतिमान् भूषणं मा भूषितं कौ कवत्त ॥—शि भू ४

५ लक्ष्मीरं हन्तं केशव ग्रन्थ ललित।

उदाहरण मन्त्रं ललितं कविशिक्षा प्रवर्तन ॥—भाषाभूषण

६ अत्र केशव ने उदाहरण उदाहरण ललित ॥—भाषाभूषण १०८

दृष्टानुमि

शास्त्र का योग रहता है। नत्ता का उद्देश्य प्रेम रस परिचय देना था। एक मित्र न नन्ददास म विनय आनन्द प्राप्ति के लिए नायक-नायिका भेद व लिए जिनासा प्रकट की। बगव की दृष्टि म भी यह रसिक जिनासु वग था। नन्ददास की भाति उहीने भी विगिण्ट और सामाय द्विविध उद्दय स रसिकप्रिया की रचना की। सामाय दृष्टि से उनक सामने रसिक जिनासु वग है। विगिण्ट रूप स उनकी दृष्टि म प्रवीणराय है जिमका सविता न कविता शक्ति प्रदान की थी। प्रत उसक विकास व लिए उस कविगिशा अपक्षित थी। पर कविगिशा का सम्बन्ध मुख्यत अलकार गिगा स माना गया। इस विगिण्ट गिशा की अघिकारिणी प्रवीणराय मानी गई है। वम रसिकप्रिया की उपयोगिता भी भाषाकवि व लिए है। पर पारिभाषिक रूप म रस रीति का परिचय कराने को रसिकप्रिया और कविगिशा देने व लिए कवि प्रिया की रचना मानी जानी चाहिए। छन्दमाना की रचना भी कविगिशा स सम्बद्ध है। भाषाकवि को ससृष्ट छन्दो की गिशा ही केशव को इन ग्रन्थ म प्रमीष्ट है। इस प्रकार बगव का उद्देश्य उहें आचार्य के पद पर अघिच्छित कर देना है। रसिको व हिताय काव्यशास्त्र की रचना की परम्परा आगे भी चलती रही। भिस्वारीदास का उद्देश्य भी रसिको व सामाय नान स सम्बद्ध है। दास के अनुमार बुद्धिमानी तथा रसिको व लिए कायचर्चा सदैव सुखद होती है। इस प्रकार रीतिवालीन आचार्यों के उद्देश्य म १८वीं शती तक विकास होता है। कविगिशा का शुद्ध शास्त्रीय उद्देश्य पीछे रसिकजनों को सामाय परिचय देने की ओर मुड गया। संस्कृत के कायाचार्यों का भी उद्देश्य इसी प्रकार द्विविध बना रहा यग प्राप्ति और आनन्द प्रदान करना। यग प्राप्ति व इच्छुक कवि भी इनसे लाभान्वित होत थ।

१ डा० मनीरय मिश्र "यथाय मे काव्यशास्त्र के उद्देश्य दो ही होने हैं। एक तो उपरिष्ण काव्य के मौल्य को स्पष्ट करके उसक द्वारा सामान्य म अधिक आनन्द प्राप्त करना दूसरा तोपे म बगवते हुए उत्तम काव्य सृष्टि की प्रवर्ण प्रेरणा भर देना।"

—द्विती काव्यशास्त्र का शि १५

- ० विन जाने यह भेद सब प्रेम न परचै होय । नन्ददास, रसमन्त्री—प्रभावना
- १ एक मीन हमसो भ्रम हुयो । मै नाका भेद नहिं सुन्यो ।
- २ भरु जो भेद नाहक थ गुने । वेहू म नहिं नीकै गुने ॥ रसमन्त्री—प्रस्तावना
- ५ रसिकन का रसिकप्रिया काली केसवदास ॥ रसिकप्रिया ११२
- ५ मयिता जू कविता दह ता कह परम प्रकास ।
- ६ तापे काज कविप्रिया कीही केमवदास ॥ कविप्रिया ११५
- ६ जैसे रसिक प्रिया विना दरिय दिन दिन दीन ।
- ७ त्वा ही भाषा कवि मने रसिकप्रिया विनु हीन ॥ रसिक० १०१५
- ७ भाषा कवि मुमुम्भे मने निगरे ह्य सुभा ॥
- ८ छन्दन की माला करी सामन केमवदास ॥ छन्दमाना ।
- ८ चाहन जानि जु थर ही रस कवित्त को बरा ।
- ८ निन रसिक क हेत यह कन्दो रम सारास ॥ रससागरा
- ८ दास कविनद की पयवा बुभितन को सुम ते सब ठण ॥ काव्यनिरुप
- २० ' The two great ends which appeal to them are—the winning of

रसिकों के लिए काव्यानन्द की अनुभूति कराने का नास्त्रीय पद्धति प्रतिष्ठित करके आनन्द प्रदान करने में भी आचायक समय थे ।

### कवि आचायक लक्ष्य और लक्षण

हिंदी के आचायक साथ कवि भी लगा हुआ था । इस समय से आचायकत्व और कवित्व दोनों ही प्रभावित हुए थे । वस उपयुक्त उदाहरणों की गोथ मृष्टि और याजना नास्त्री का अभिनय भ्रम रहा है इसपर पहल विचार किया जा चुका है । पनजनि ने आस्थाना आचायक कृतव्यय में उदाहरण प्रयुद्धाहरण भी सम्मिलित किए थे । वसे कुछ ससृष्ट क आचायकों में भी स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत किए थे ।<sup>१</sup> इस समय का कारण युग की परिस्थितियों में निहित है अनेक कवित्व या आचायकत्व सामंतीय युग की उच्चवर्गीय रचि और विनाद वृत्ति को तुष्ट नहीं कर सकता था । वानावरण गुद्ध नास्त्रीय ऊहापाह भाष्य आस्थान या विवचन क उपयुक्त नहीं रहा । इस वानावरण में आचायकत्व को सीमित कर दिया । पर पारिभाषिक रूप से उदाहरण रचना भी आचायकत्व की विरोधी प्रवृत्ति का द्योतन न करके पूर्व प्रवृत्ति की सूचना देती है । इन आचायक का उद्देश्य भी काव्यनास्त्री का सामान्य परिचय कवि और रसिक को देना था । इस काय का सफलता तरस उदाहरणों पर निर्भर करता थी ।<sup>२</sup> कृपाराम ने नभययुक्त उदाहरणों को सरस बनाने की दृष्टि भी रखी है ।<sup>३</sup> लक्षण निरूपण मिकुडना द्वारा सूत्र गती अपना रहा था । जम्ब और अप्यदीक्षित ने प्रथम पक्ति में लक्षण और द्वितीय में उदाहरण प्रस्तुत किया था । इस प्रकार लक्षण उदाहरण दोनों का सन्धि बनाने की चेष्टा मिलती है । कृपाराम ने विस्तृत उदाहरणों को छोड़कर दोहे का नभय निरूपण के लिए अपनाया । अक्षर धारे भेदक ककार सूत्र गती की धार अपनी रचि प्रकृत की है ।<sup>४</sup> उदाहरणों में भक्ति क प्रवृत्ति उनको और भी स्फीत कर दिया । भक्ति का सम्बन्ध आध्यात्मिक राग से है । गायन में रामभूषण में राम क चरित्र को उदाहरणों में व्यक्त किया । चरित्र जब उदाहरणों में प्रविष्ट हो जाता है तो उदाहरणों में एक प्रबन्ध सूत्र रचना भी आवश्यकता हो जाता है । केनव ने राम-कृष्ण को उदाहरणों में स्थान दिया चाहे भक्ति-भावना में रहा हो पर आगे कृष्ण और राधा ही उदाहरणों में अधिक लोकप्रिय

same and the giving of pleasure ' (Keith *Hist of Skt Lit* p 338)

१ इनमें जम्ब अप्यदीक्षित प्रभृति आचायकों का नाम लिया जा सकता है ।

२ रीति कवि का ध्येय भाषा के पाठक को काव्यराग्य क सामान्य सिद्धान्तों से परिचित करा देना था । सरस्वती क कथन यह इन काय में अधिक स्पष्ट हो सकता था । — डा आनन्दकारा हिन्दी जनशर महित्य पृ ४१ ।

३ रचि प्रत्ये कवित्व धर धर कृष्ण की स्थान ।

४ राम भूषण उदाहरण लक्षण प्रथम मन्थन ॥

५ कानन कवि लिखर रस धर कवि लिखरि ।

६ केनव नास्त्रीय विवचन कृष्ण कवि लिखरि ॥१॥

७ कानन कवि लिखर रस धर कवि लिखरि ॥१॥

होत गए। इसका कारण यह था कि कृष्णचरित्र ऐसे प्रेम रम प्रसंगों की शृंखला है जो मुक्तक और गीतों के लिए पूरा विषय बन सकता था। 'रामचंद्रिका' वैसे एक उदाहरण ग्रंथ ही कहा जा सकता है। पर राम चरित्र की प्रबन्धात्मक प्रवृत्ति व कारण यह लक्षणों से मुक्त ग्रंथ है। बसल शीपकों से छन्द जान होता है। माध ही रसराज की विभाव भूमिका में राम का मर्यादा वदित चरित्र उपयुक्त नहीं हो सकता था। अतः गाथा कृष्ण अपने समस्त पौराणिक, सांस्कृतिक और माधुय की पृष्ठभूमि के साथ इस युग के आचार्यों के उदाहरणों में विराजमान हुए। गीतिकालीन अधिकांश आचार्यों में द्विविध मंगलाचरण की परम्परा चली। कदाव जम आचार्यों ने यदि गान्ध की सफलता की दृष्टि से सिद्धि सदन गजवदन गणेश या गिब की वदना की तो उदाहरणों के प्राण रसविग्रह कृष्ण की वदना भी सलग रही। पीछे बसल कृष्ण वदना अवगिष्ट रह गई। यह उदाहरणों की वदना निरूपण पर प्रमत्त विजय की सूचना देती है। कुलपति ने कृष्ण की वदना की। तोप ने हरि राधिका की वदना की ही उदाहरण रूप में ग्रहण किया। मतिराम ने तो उदाहरणों में राधा कृष्ण का अतुल सौन्दर्य माधुय उदल दिया। पर भक्ति शृंगारयुक्त उदाहरणों की विजय यात्रा कदाव के पश्चात् विनोय रूप से सफल हो गई। तोप कवि (मुधानिधि) में राधा-कृष्ण-कलि का रसग्राही घनत ही आयासित है। रसनायिका गान्ध का स्था मान यत्र-तत्र उपलब्ध है। सवादास ने अपने रस दपण में राधा-कृष्ण और सीता राम के मधुर रूप के उदाहरण मजात रहे। पर एक विनोय बात गीयती है भक्ति भाव और रममयता के आधार पर उदाहरणों की विजय मुख्यतः रम नायिका-नक्षत्रिण निरूपण की परम्परा में मिलती है। कृष्णभक्ति साहित्य के मधुर रस की छाया रस-सम्बन्धी आचायत्व पर बनी रही। कृष्ण भट्ट ने शृंगाररसमाधुरी में शृंगार का महात्म विभाषण से मयुक्त किया है। माध ही इनमें भूषण-दूषण की जटिल पारिभाषिक पद्धति के प्रति एक प्राति भी परिलक्षित होती है। चन्द्रदास कृत शृंगार सागर का आधार 'रासपचाध्यायी' है इसका भक्ति शृंगार रम ग्रंथ कहा जा सकता है रम लक्षण निरूपण गीण और राधारहस मुख्य है। इस प्रकार रस-सम्बन्धी गान्ध प्रणयन में उदाहरणों की और विनोय आचरण रहा।

अनकार निरूपण काव्यगान्ध का विनोय पारिभाषिक अग्र था। यहां रम में

- १ रामचन्द्र की चंद्रिका बरनन हो बहु दल ।
- २ केनि कथा हरि राधिका की पर धम जयामनि प्रेम करानो ॥
- ३ मायां शिगार मदारम गधुरी भूषन जानां न दूषण जानो ॥ ०॥
- ४ पत्रदाया ध्यान बहु बरना मुक मुनि व्यास ।
- ५ टन मुनन पावन सुपन नरनारी कैलान ।
- ६ नोस पादम मात रस दानम भूषन मन ।
- ७ बरनऊ श्रीश कृष्ण सुम गोचार सात्विक धन ॥३॥
- ८ लक्ष्मन जनन रमिक जन माधू जानन ध्यान ।
- ९ चन्द बपनेन कृष्णगुन राधरस विधान ।



रविकों के लिए काव्यात्मक की अनुभूति कराने का सांस्कृतिक पद्धति प्रतिष्ठित करके आनन्द प्रदान करने में भा आवाय समर्थ था।

### कवि आवाय लक्ष्य और लक्षण

हिन्दी के आवाय के साथ कवि भी लगा हुआ था। इन समन्वय से आवायत्व और कवित्व दोनों ही प्रभावित हुए थे। वस जयसुक्त उदाहरणों का गायक नृपति और राजा गायक का सम्बन्ध रहा है इनपर पहलु विचार किया जा चुका है। पत्रबन्धि न उदाह्यता आवाय के कृत्य में उदाहरण प्रयुक्त होने का सम्बन्धित किए थे। वने हुए सस्त्र के आवायों ने भा स्वरचित उदाहरण प्रस्तुत किए थे। इन समन्वय का कारण युग की परिस्थितियों में निहित है। अन्तर्गत कविता या आवायत्व माननीय युग का उच्चवर्णित रसि और विना वृत्ति का तुष्ट नहीं कर सकता था। वातवरण गुड गायक ऊपरवाह भाष्य आवाय या विवचन के उदाहरण नहीं था। इन वातावरण ने आवायत्व का मानित कर दिया। पर परिभाषिक रूप से उदाहरण रचना भा आवायत्व का विना प्रवृत्ति का दातन न करके पूरक प्रवृत्ति का सूचना देता है। इन आवाय का उदाहरण भा आवायत्व का सामान्य परिचय कवि भी रसिक का दान था। इन काय का सम्बन्ध करके उदाहरणों पर निम्न काली थी। कृष्णराम ने लक्षण उदाहरणों का 'रसन' बनाने का दृष्टि भी रखी है। लक्षण निम्न विवृत्ता हृदा सूत्र वाली अपना रहा था। उदाहरण और अल्पवर्णित ने प्रथम पक्ति में लक्षण और गायक ने उदाहरण प्रस्तुत किया था। इस प्रकार लक्षण उदाहरण दोनों का सम्बन्ध बनाने का चर्चा मिलता है। कृष्णराम ने विवृत्त छन्दों का छाँटकर दाह के लक्षण निरूपण के लिए अपनाया। अन्तर गार भी वह कच्छर सूत्र गता की धार बनाने रसि प्रवृत्ति की है। उदाहरणों में भक्ति के लक्षण ने उनका और भा स्फोट कर दिया। भक्ति का सम्बन्ध आवायत्व का स है। लक्षण ने 'रामलक्षण' में राम के चरित्र का उदाहरणों में व्यक्त किया। चरित्र जब उदाहरणों में प्रवृत्त हो जाता है तो उदाहरणों में एक प्रवृत्त सूत्र रखना भी आवायत्व का हो जाता है। कवय ने 'रामलक्षण' को उदाहरणों में स्थापित किया वह भक्ति-मान्यता ने रहा है पर भा कृष्ण और राधा का उदाहरणों में अधिक सावधान

fame and the giving of pleasure' (Keith Hist of Skt Lit p 338)

१. इनके उदाहरण आवायत्व प्रवृत्ति आवायों का लक्षण दिया जा सकता है।

'रसिक कवि का ध्येय मन्ता के पटक का कव्यात्मक के सामान्य सिद्धांतों से परिचित करा देना था। लक्षण के कारण यह इन वार में अधिक सहज हो सकता था।' — डॉ. आर्कर हिन्दी भाषा-साहित्य पृ ५१।

रसिक प्रवृत्ति का ध्येय मन्ता की लक्षण।

लक्षण उदाहरण, लक्षण उदाहरण ॥

४. लक्षण कवि लक्षण उदाहरण उदाहरण।

मैं कवय लक्षण उदाहरण उदाहरण।

२. लक्षण उदाहरण उदाहरण उदाहरण ॥

होते गए। इसका कारण यह था कि कृष्णचरित्र ऐसे प्रेम रस प्रसंगों की शृंखला है जो मुक्तक और गीतों के लिए पूण विषय बन सकते थे। रामचंद्रिका वैसे एक उदाहरण ग्रंथ ही कहा जा सकता है। पर राम चरित्र की प्रवर्धात्मक प्रवृत्ति के कारण यह लक्षणों से मुक्त ग्रंथ है। केवल शीपकों से छंद जान होता है। साथ ही रसराज की विभाव भूमिका में राम का मर्यादा वदित चरित्र उपयुक्त नहीं हो सकता था। अतः राधा कृष्ण अपने समस्त पौराणिक साहित्य और माधुय की पृष्ठभूमि के साथ नव युग के आचार्यों के उदाहरणों में विराजमान हुए। रीतिकालीन अधिकांश आचार्यों में द्विविध मंगलाचरण की परम्परा चली। केवल तब आचार्यों ने यदि शास्त्र की सफलता की दृष्टि में मिथि सदन गजवदन गणेश या शिव की वदना की तो उदाहरणों के प्राण रसविग्रह कृष्ण की वदना भी सलग्न रही। पीछे जब कृष्ण वदना अविनाश रह गई। यह उदाहरणों की लक्षण निरूपण पर प्रमत्त विजय की सूचना देती है। कुलपति ने 'कृष्ण की वदना की। तोप ने हरि राधिका की कथा को ही उदाहरण रूप में ग्रहण किया।' मतिराम ने तो उदाहरणों में राधा कृष्ण का अतुलनीय माधुय उडल दिया। पर भक्ति शृंगारयुक्त उदाहरणों की विजय यात्रा कला के पदचातुर्विध रूप से सफल हो गई। तोप कवि (सुधानिधि) में राधा-कृष्ण-कलि का रसग्राही वणन ही आयातित है। रस-नायिका शास्त्र का स्वयं मात्र यत्र तत्र उपलब्ध है। मवादास ने अपने रस रक्षण में राधा-कृष्ण और सीता राम के मधुर रूप के उदाहरण सजाते रहे। पर एक विशेष बात दीखती है भक्ति भाव और रसमयता के आधार पर उदाहरणों की विजय मुख्यतः रस राधिका नखनिल निरूपण की परम्परा में मिलती है। कृष्णभक्ति साहित्य के मधुर रस की छाया रस-सम्बन्धी आचार्यत्व पर बनी रही। कृष्ण भट्ट ने शृंगाररसमाधुरी में शृंगार की महारस विभाषण से मयुक्त किया है। साथ ही इतने भूषण दूषण की जटिल पारिभाषिक पद्धति के प्रति एक भाति भी परिलक्षित होती है। चन्द्रदाम कृत शृंगार सागर का आधार रामपचाध्यायी है इसकी भक्ति शृंगार रस ग्रंथ कहा जा सकता है इसमें लक्षण निरूपण गौण और आधाररहस्य मुख्य है। इस प्रकार रस-सम्बन्धी शास्त्र प्रणयन में उदाहरणों की ओर विशेष भावपण रहा।

अन्यत्र निरूपण साहित्यशास्त्र का विशेष पारिभाषिक अंग था। यहाँ रस में

- १ रामचन्द्र की चरित्रा बरनन हो बहु छन्द ।
- २ केजि कथा हरि-राधिका की पर हंस जगमनि प्रेम बधानी ॥
- ३ मायो सिंगार मङ्गलम माधुरी भूपन जना न दूषन जानी ॥१०॥
- ४ पदचातुर्विध ध्यान यदु बरना मुक्त मुनि व्यास ।  
पठन मुनन पावन मुपन नरनारी बैलान ।  
नीम पाहम भक्त रस द्वांस भूपन मन ।  
बरनऊ बीडा कृष्ण मुन गेनार सात्त्विक धम ॥३॥  
लक्षण न न रमिक जन, माधु जनन ध्यान ।  
चन्द्र वपनन कृष्णगुन राधरहस विधा ।

प्रवाहित होने की सम्भावना कम थी। भक्ति भी व्यक्त रूप में प्रविष्ट होकर उदाहरणों को विगण आक्षेप और तमयकारी नहीं बना सकती थी। साथ ही अन्वयों और दोषों को व्यक्त करने वाले उदाहरणों की रचना भी रसमन्वयी उदाहरणों की अपेक्षा कठिन होता है। वेगव ने तो कविप्रिया में अन्वय और दोष आदि के उदाहरण प्रस्तुत किए। इन उदाहरणों में लक्षणा का पुष्ट पान ही अप्रगणित नहीं था, उदाहरण रचना में भी विगण कौशल अप्रकटित था। वेगव के पञ्चानु के अलंकार निरूपक आचार्यों ने भी उदाहरणों की रचना की दुष्करता का अनुभव किया। जसवन्तसिंह ने अन्वय पूर्वकालिक उदाहरणों का अनुवाद मात्र लिया और कुछ मौलिक उदाहरणों की रचना की।<sup>१</sup> कुलपति का आचायत्व तो अप्रकटावृत्त गुण और सुलभा हुआ है पर उदाहरण रचना में आचायत्व कम प्रस्फुटित है। देव का तो आचायत्व के लक्षण और उदाहरण दोनों अंगों में गिविन्ता है। लक्षण अस्पष्ट और उदाहरण अनुपयुक्त। दूल्हा में आचायत्व के लक्षण उदाहरण अभयपक्षपुष्ट और स्पष्ट हैं। कुछेक आचार्य एस भी हुए जिन्होंने अपने अपने पूर्व के हिंदी कवियों के उदाहरण भी लिए। आचार्य श्रीपति ने दोषों को वेगव के पद्यों से उदाहरित किया है।<sup>२</sup> वेगव ही नहीं अन्य कवियों के दोषपूर्ण पद्यों को भी उदाहरणों के रूप में ग्रहण किया गया है।<sup>३</sup> रमिक गोविन्द ने रमिकगोविन्दानन्दधन में भी दूसरों के उदाहरण दिए हैं। रसरूप ने तुलसीभूषण में रामचरितमानस के उदाहरणों के द्वारा १११ अलंकारों का निरूपण किया है। उन्होंने लक्षण औरों के लिए और उदाहरण तुलसी के।<sup>४</sup> पदमाभरण में पद्माकर ने भी दूसरों से उदाहरण लिए हैं। बरीनाल और बिहारी के उदाहरण विगण रूप से लिए गए हैं। इनका स्मरण भी लखक ने किया है। इस प्रकार अलंकारशास्त्र से सबद्ध कुछ आचार्यों ने औरों के उदाहरण भी लिए भक्ति और रस से भी शृंगार आचार्यों की अपेक्षा कम प्रभावित रहे।

उदाहरणों की सरसता और कविकर्म ने आचायत्व को प्रभावित किया। डा. नगद ने इसको स्पष्ट रूप से लिखा है। संस्कृत के आचार्यों ने प्रायः आचायत्व और कविकर्म को पृथक् रखा था वहाँ हिन्दी के आचार्य कवियों ने दोनों को मिला लिया। रस काय की वृद्धि तथा निश्चय ही हुई किन्तु काव्यशास्त्र का विकास न

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास इतिहास पृष्ठ भाग १ ४४७

निष्कंधु विनायक भाग २ पृ ५१८ १६ (१८६४ का संस्करण)

३ डा. अमीरखान, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ० ११३

४ वही पृ १७

५ डा. तुलसी निज भक्ति में भूषण धर द्वारा।

नाह प्रकामन की भक्ति मर विन में गव ॥

६ अंग्रेज के लन्दन लि० रानादन थ लन्दन।

सुलभा भूषण ग्रन्थ की का विधि किये प्रकच्छ ॥

विराट विरराज के लिए ६ २१० अमरप्रकाश हिन्दी का अलंकार साहित्य पृ १७६ १७७

७ वही पृ १६ १६१

हो सका।<sup>१</sup> डा० भगीरथ मिश्र व अनुसार उदाहरण रचना उन आचार्यों व उच्च का भाग था। इनमें नवीन सिद्धांत सिद्धांत निरूपण तो है ही नहीं प्राचीन सिद्धांतों की पूर्णतया व्याख्या भी नहीं है। मस्कृत में निरूपित काव्यशास्त्र व उन नियमों का हिंदी में रखकर उमक उदाहरण उपस्थित करना ही इनका उद्देश्य है।<sup>२</sup> डा० नारायणदास मन्ना ने उदाहरण रचना का मूल्यांकन या किया है। आचार्य व विद्वान् हैं जिन्होंने कविता करने व लिखने जिन नियमों एवं सिद्धांतों की आवश्यकता जानी है उनका विधिवत विवचन किया है। काव्य नियमों एवं सिद्धांतों की पृष्ठभूमि में हृदयप्राहिणी एवं आनन्दप्रदायिणी कविता भी जिस आचार्य ने की ही उस वस्तुतः बड़ा आचार्य मानना चाहिए।<sup>३</sup> डा० बच्चन सिंह ने आचार्यत्व व कारण कविता को प्रभावित माना है। वस्तुतः आचार्यत्व का मोह उन निरूपणमिद्ध कवियों की कविता व पार्यों की लौह शृंगला बन गया।<sup>४</sup> आगे उन्होंने कहा। उपयुक्त कवियों की दृष्टि आचार्यत्व की ओर अधिक रहने पर भी अपने कवि के प्रति सवया सचेत रही। इस दुहरे काय व निवाह में उनकी शक्ति पूरा-पूरा उनका साथ न दे सकी।<sup>५</sup> आचार्य गुबल ने अपना मतव्य मा व्यक्त किया है। इन रीतिग्रंथों व कर्ता भावुक सहृदय और निपुण कवि थे। उनका उद्देश्य कविता करना था न कि काव्यांगों का शास्त्रीय पद्धति पर निरूपण करना। अतः उनका द्वारा बड़ा भारी काय यह हुआ कि रत्नों (विशेषतः शृंगाररस) और अलंकारों व बहुत ही सरस और हृदयप्राही उदाहरण अत्यन्त प्रचुर मात्रा में प्रस्तुत हुए। इस सरस और मनोहर उदाहरण मस्कृत के सारे लक्षण यथा से पुनः इकट्ठे करें तो भी उनकी इनकी अधिक समस्या नहीं होगी। अलंकारों की अपेक्षा नायिका भेद की ओर कुछ अधिक भुकाव रहा।<sup>६</sup> वस्तुतः इन आचार्यों की परिस्थिति ही ऐसी थी कि इनका कविकर्म और आचार्यत्व को मिला देना पड़ा। सामन्ता व वेदव्यपूण दिनचर्या में काव्यशास्त्र की पद्धति पर बने-डले उदाहरण आवश्यक भग बन सकते थे। दूसरी ओर रमिक वग का आग्रह था। वह सामान्य काव्यशास्त्रीय पान और उदाहरण रचने तथा अपने के काव्य का आस्वाद लन का इच्छुक था।<sup>७</sup> आमिजात्य और नागरिक रचि, जो ग्राम्य रचि से भिन्न है शास्त्रीय पद्धति व काव्य की ओर उमुख होते हैं। कवि ने यह किया। नागरी रचि की चर्चा रीतिग्रंथों व कवियों ने की है।<sup>८</sup> 'काव्यशास्त्र विनोदन कालोत्थिति धीमताम्' की भावना से

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, पृष्ठ ५६५

२ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृष्ठ ३५

३ आचार्य मिश्ररीणस पृष्ठ १६२

४ रीतिग्रंथालोक कवियों की प्रेम-व्यंजना (काशी, सं० २०१५ वि०), पृष्ठ ६२

५ वही, पृष्ठ ६३

६ हिन्दी साहित्य का इतिहास (२००० वि०), पृष्ठ २०५

७ अभिनवगुण ने 'साक्षात् में रमिक को परिभाषा या दी है 'वेदा कल्पानुरागानान्यत्र मर्यादाशरीरभूतेनानुभव वगनाय समधीमवनकार्यना से दृश्य सवात्र मात्र सदृश'।

८ वे न यथा गगर वडे, जिन आदर या भावः।

भून्यौ अनृत्या मयो, गवद र्गव गुलाव ॥

आकुल राजमभा म भी सरग उदाहरणों का विगण आग्रह था। काव्यशास्त्र की सुनीध परम्परा न हम वान व आचाय व त्रिण विगण बाय नहीं छोडा।<sup>१</sup> उदाहरणों की रचना हम क्षति भी पूति कर रही थी। कामशास्त्र की दीध परम्परा काव्यशास्त्र और काव्य का प्रभावित करती आ रही थी। रीतिकाल व आचार्यों व उदाहरणों का भी इसमें प्रभावित किया। गाय ही अय पूर्वप्रचलित काव्यरूपा न भी रीतिकालीन आचार्यों के उदाहरण विज्ञान को प्रभावित किया। प्राकृत व गाय साहित्य का पारलौकिक चित्ता स मुक्त उमुक्त प्रेम स सित्त मुक्तव का य की परम्परा म सर्वोच्च स्थान है। हान की सतमई<sup>२</sup> रसिक जना का वण्टहार ही बना रहा। य गायए सालकार है सालकाराण गाहाणम्। प्रेम की इन मरन स्वच्छन्द छविया काय रत सुदरियो के अभिराम छविचित्रा ग्राम्य नायिकाओं व निच्छव प्रेम शृंगार की अश्रु चष्टाओं के आकलन न शास्त्रीय शृंगाराधारित प्रेम रूपा को हिला दिया। इसपर शास्त्रीय पद्धति का गलीगत प्रभाव अवश्य द्रष्टव्य है। वजातगा भी प्राकृत गायकों का एक एगा ही सग्रह है। सस्कृत म भी हम प्रकार की रचनाएँ होने लगी। सस्कृत म अमरकगतक और आर्यासप्तगती प्रमुख हैं। आनन्दवधन जैसे आचाय न अमरक की प्रणाम म अमरक कवरव तक प्रवच गतायत निखकर सस्कृत की समस्त प्रवध सम्पत्ता क प्रति मुक्तका की सफल प्रतिप्रिया की और सकत किया। काव्यशास्त्र म गायकों की उपयोगिता और लोकप्रियता भी हमस अनुसूचित है। आर्यासप्तगता बगाल व राजा लक्ष्मण सन व आश्रित कवि गोवधन की रचना है। इसम मरस पदावली रसाद्रता और रसिक सज्जनो को माहित करने की अनुपम शक्ति है।<sup>३</sup> रीतिकालीन रीतिमुक्त कवियों पर भी इसका प्रभाव पडा<sup>४</sup> और रीतिवद्ध कविया व उदाहरणों पर भी। सस्कृत की इसके अतिरिक्त शृंगार मुक्तक परम्परा ने

१ उनसे पास शताब्दियों म प्रतिपात्ति एवं विवेचिन्त सस्कृत में काव्यशास्त्र के नियमों एवं सिद्धांतों का अद्य कोरा था ही। इन नियमों और सिद्धान्तों का संरक्षित माहित्य में इतना अधिक खण्डन मण्डन हो चुका था कि सिन्धी व कवियों के लिए नई उभावनाएँ करना और फिर उन्हें संस्कृत का ज्ञान रग्नेवाले विद्वानों से मान्य करा लना न तो आसान ही था और न सहज सम्भव ही। नारायणराम सन्ना आचाय भिखारीदास, पृ १२ ६१

२ बाल्यायन और कक्कोक पाठके कामशास्त्रों में जाती हुई यह परम्परा आनन्द कविद्वय कोकमनरी (रचना स० १७६१ वि ) तक चली आती है।

३ कीच (सस्कृत साहित्य का इतिहास पृ २१४) व अनुमार इसका समय स ४५ ई व बीच मानते हैं। डा बकर (Das saptasatakam daes hala Introduction pp xxii) इसकी रचना तीमरी और मानवी शानी व बीच हुई। डा भारकर ने इसको छठी शताब्दी की रचना सिद्ध किया है। (आर जी भारकर स्मारक ग्रन्थ में विक्रम संवत् पर लख, पृ १०६)

४ रचयिता पद्मवल्लभ मद्रास काल लगभग १४वीं शती विजयीय

५ आचार्यशरणी १।५१

६ पद्मसिद्ध शाना न सीधना भाष्य में विहारी पर गाय साहित्य व प्रभाव को विस्तार से विवेचिन्त किया है।

भी उदाहरणों को प्रभावित किया। शृंगार मुक्त स्तोत्र भी इही प्रभावस्वरूप भक्ति साहित्य के अंग बन गए। अपभ्रंश साहित्य में जो स्पष्ट शृंगारिक दोह यत्र-तत्र मिलते हैं वे शृंगारिक दोहा की अपभ्रंग परम्परा को स्पष्ट करते हैं। अपभ्रंग के मुक्तक पदय प्रबंधों के अंतर्गत चारण गोप आदि पाशा द्वारा सूक्ति सुभाषित के रूप में प्रयुक्त हुए हैं। अलंकार ग्रंथों में उदाहरणवत् इनके प्रयोग की परम्परा भी चली। आनन्दवर्धन के ध्वन्यालोक छंद के काव्यालंकार भोज के मरस्वतीकण्ठाभरण धनजय के दण्डवक आदि ग्रंथों में कतिपय अपभ्रंश पद्य उदाहरणों के रूप में प्रयुक्त मिलते हैं। रीतिकालीन काव्याचार्यों का भी इन परम्पराओं में आकर्षित किया। पर उनका प्रयोग न करके आचार्य ने उस गली पर अपनी रचनाएँ की।

रीतिकालीन कविता का बाह्य जहाँ संस्कृत काव्यशास्त्र के अनेक तत्वों से निर्मित हुआ है वहाँ उसका अंततः सकीर्ण अथवा भक्तियुगीन कविता का विकसित रूप है। मध्यकालीन भक्त कविता के शृंगाराश्रित रहस्यवादी रचनाओं में राधा कृष्ण गोपी तत्त्वा के आचार पर जो भक्ति शृंगार जाह्नवी प्रवाहित की वह रीतिकालीन आचार्यों के उदाहरणों को स्नात करती रही। गोपिया स्वकीया परकीया विद्वान् मया गइ। मधुर भाव लौकिक शृंगार में परिणत हो गया। वे प्रमुख परम्पराएँ थीं जिन्होंने रीतिकालीन नक्षत्र ग्रंथों के उदाहरण भाग को अनुप्राणित किया। साथ ही कुछ और भी परम्पराएँ थीं। इनमें नमसिख की परम्परा मुख्य है। संस्कृत में भी नमसिख की प्रबल परम्परा थी। लोकभाषा में भी यह परम्परा चलती रही। पद्यरत्न वारहमिशा की परम्परा भी इन उदाहरणों को प्रभावित करती रही। नायक

१ मर्म कालिदास के पास से प्रसिद्ध शृंगारतिलक, पत्रपर विलक्षण की चौरपचारिका मनुहरि का शृंगारतिलक आदि प्रसिद्ध हैं। संस्कृत में शक्य की परम्परा भी चली। उत्प्रेक्षावल्लभ के मुन्दीरासक जनार्दन मोरवामी की शृंगारकलिका, मनुहरि का शृंगारानक, कामराज शैविन की शृंगारकविकात्रिसारी और विश्वेश्वर का रोमावलीरासक।

२ कालिदास ने दशमि विषयक रत्निका शृंगारयुक्त रूप प्रस्तुत करके भाग प्रसारित किया। पीछे 'चण्डालप्रसङ्गिका' नाम स्तोत्रग्रंथों की रचना हुई। एमें ग्रंथों पर मध्यकालीन मधुराभक्ति का भी प्रभाव माना जा सकता है।

३ कालिदास विमोक्षसौम्य चतुष्षेत्रिक, हेमचन्द्र, इन्द्रोऽनुशामन प्राट्टन द्रव्याश्रयकाव्य, सोम प्रभाचापकृत कुमारपालप्रतिबोध, मेरुतुगाचापकृत प्रबंधचिन्तामणि रात्ररात्रिसंस्कृत प्रबंधकोश, प्राट्टन पद्म पुगतन प्रबंधउपग्रह।

४ दशम बचन सिद्ध, रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यंजना, १०३।

५ गीष्प नयप (द्वितीय सप्त) दसवनी का नक्षत्रिण सातवा तथा दसवा सप्त भी कालिदास का पाशा उपशान्त बचन शक्यस्तोत्र ग्रंथों में भी एक परम्परा चली।

६ मुनि मूलभद्र ने पाण्डित्युप की एक वेश्या का नमसिख बचन रिया है। (दशम शिवप्रसाद सिद्ध, सूरपुर ब्रह्मपाशा और उसका साहित्य १००८२-८३) पुष्पान का नारी चिन्तन। (राहुल द्विज काव्य धारा १००) हनुमान संकलित दोहों में नारी चिन्तन, मुन्दीरासक में नारी चिन्तन, चण्डालप्रसङ्गों में भी शक्यप्रसङ्ग सप्तम में समा बचन रिया है। दिग्गद दाना के कवि नागयश दाम के दिग्गद के बचन में भी इन परम्परों का प्रभाव है। दीहल कवि के पद्य महेश्वरी में भी परम्परा का निवाह है।

७ संस्कृत में प्रकृति-बचन की परम्परा के अनिश्चित, संसारामक का पद्य-बचन प्राट्टन

नायिका निरूपण की नाटयशास्त्रीय काव्यशास्त्रीय कामशास्त्रीय और भक्तिशास्त्रीय परम्पराएँ सबसे अधिक तीव्र और व्यापक प्रभाव डालती रही। इस प्रकार गीति कालीन आचार्यों के द्वारा प्रयुक्त उदाहरणा को अनक दीघ परम्पराओं का प्रभाव भार वहन करना पड़ा। बंवल दृष्टि का अन्तर रहा। केगव चिन्तामणि कुलपति जसवन्तसिंह आदि आलंकारिका ने उदाहरण रचना को लक्ष्य नहीं होन दिया उस रचना में सरसता को गौण रखत हुए लक्षण निरूपण की स्पष्टता व उद्देश्य को मुख्य रखा। केगव को हृदयहीन कवि आदि विवेचनों से अभिहित करनेवाले आलोचक यह भूल जाते हैं कि सरसता और भावुकता की दृष्टि से उन्होंने काव्य ही नहीं किया शास्त्रीय आचायत्व की दृष्टि प्रधान रही। यही विगपता केगव को रीतिकालीन आचार्यों से कुछ भिन्न विगपता प्रदान करती है। जिन आचार्यों ने उदाहरणों की सरसता और कवि प्रतिभा की साधना को प्रमुखता दी उनका आचायत्व अद्भ्य ही प्रभावित हो गया। सम्भवतः उन्होंने लक्षण इमलिए दिए कि रसिक उनका द्वारा रचित काव्य का विगप्ट रसास्वादन कर सकें। उनका उद्देश्य कवि शिक्षक आचार्यों की भाँति सिद्धान्त बोध नहीं था। कवि शिक्षक आचार्यों में उदाहरण रचना आचायत्व की अंग ही थी। उत्तरकालीन संस्कृत आचायत्व भी कविशिक्षा और उदाहरण रचना की समन्वित पर आधारित हो गया था। उदाहरणों की ओर विशेष आकर्षण उन आचार्यों का था जो या तो भक्त थे या रस निरूपक। अलंकार निरूपक तथा सर्वांग-निरूपक आचार्यों में सरस उदाहरण रचना की ओर विशेष आकर्षण नहीं था।

डा० नगेन्द्र जी के अनुसार इस काल के आचायत्व की एक और परिचीमा गद्य का अभाव था।<sup>१</sup> इसका समर्थन अय विद्वानों ने भी किया है।<sup>२</sup> गद्य के अभाव में सूक्ष्म विचारणा और विश्लेषण सम्भव नहीं था। डा० चञ्चन सिंह के शब्दों में— विग्लेषण के काय के लिए गद्य का माध्यम ही समीचीन है। किसी रीति या पद्धति पर विचार करने के लिए गद्य में पूरा पूरा अवकाश मिलता है। अनक नियमों की शृङ्खलाओं में दबे रहने के कारण विचारों का ठीक ठीक स्फुरण पद्य में सम्भव नहीं है। ब्रजभाषा का गद्य कभी भी इतना विकसित न हो सका कि विचारों के विश्लेषण के लिए उम ग्रहण किया जाता। लक्षण निरूपण की गिघिलता का यह भी एक बहुत बड़ा कारण है।<sup>३</sup> यह सीमा हिन्दी के आचार्यों की ही नहीं है। संस्कृत गद्य के होते हुए भी जयदेव भानुदत्त और केगव मित्र प्रभृति उत्तरकालीन आचार्यों ने उसका प्रयोग नहीं किया। अतः ब्रजभाषा की गद्य की अयोग्यता या अनुपयुक्तता नहीं प्रवृत्ति गत विकास की गतिविधि ही गद्य के प्रयोग न करने के मूल में है। 'कारिका' की

पैगबर्क के अनुसार अतु-वर्णन के पत्र पृथ्वीराज रामो का पठन-वर्णन नेमिनाथ चौपट का बारहमासा तथा नरहरिभ का बारहमासा आदि प्रसिद्ध हैं। (दे. सूर्यव ब्रजभाषा और उसका साहित्य पृ. ३१६)

१ डा. नगेन्द्र रीतिकाल की भूमिका पृ. १४८

२ डा. नारायणराम सन्ना आचाय भिजारीनाथ पृ. ७१

३ रीतिकालीन कवियों की प्रेम-व्यवस्था पृ. ६३

सक्षिप्त रूप में देने की परिपाटी प्रायः संस्कृत का-यशास्त्र में आरम्भ से ही मिलती है। वृत्ति में कारिका का व्याख्यान विस्तार होता था। वृत्ति में गद्य का प्रयोग प्रायः होता था। अतः गद्य के प्रयोग की परम्परा का समाप्त होना संस्कृत का-यशास्त्र का एक प्रमुख अंग वृत्ति विधिन पड़ गया। संस्कृत के कुछ आचार्यों ने स्वरचित वृत्ति नहीं दी थी तो भाष्य और टीका की परम्परा इस अभाव की पूर्ति करती थी। हिन्दी के आचार्य की परम्परा से 'वृत्ति' की प्रवृत्ति ही नहीं मिली। साथ ही पतञ्जलि, अभिनवगुप्त की भाष्य टीका परम्परा भी इस समय तक शिथिल हो गई। बंगव जस कुछ आचार्यों की टीकाएँ तो पर्यप्त हुई पर उनकी अपनी निजी परिचीमाएँ हैं। इस प्रकार रीतिकालीन आचार्य द्वारा कथित सिद्धांतों के पूर्वक सिद्धांत बनाने वाले वृत्तिकार या भाष्यकार नहीं हुए। गद्य के अभाव ने वृत्ति को शिथिल कर दिया।

जहाँ प्राचीन का-याचार्य के तीन क्षेत्र—कारिका वृत्ति और उदाहरण में वृत्ति प्रायः समाप्त हो गई उदाहरण स्पीत हो गए वहाँ सिद्धांत भाग संस्कृत के आधार पर कभी सदीप कभी अदीप कभी पूण कभी अपूण रूप में प्रस्तुत हुआ। लक्षण निरूपण के लिए इस काल के आचार्य ने संस्कृत की सूत्र शली से प्रभावित होकर छोटे छंद को अपनाया। अक्षर थोर भेद बहु में इसी प्रवृत्ति के दृग्गन होते हैं। कृपाराम ने प्राचीन कविमत को धारण करने तथा लक्षणयुक्त सरस उदाहरण प्रस्तुत करने का प्रण किया था।<sup>१</sup> जयदेव और अप्पयदीक्षित ने पद्य के पूर्वार्द्ध में लक्षण देकर सक्षिप्तता की प्रवृत्ति का ही परिचय दिया था। हिन्दी में भी लक्षण निरूपण गेहो में होता रहा। संस्कृत के आचार्यों की प्राचीन और नवीन वर्गों में संस्कृत के कुछ आचार्य भी विभाजित करते थे। इस भेद से हिन्दी का रीत्याचार्य भी भवगत था।<sup>२</sup> इस आधार पर हिन्दी के आचार्यों का द्विविध वर्गीकरण किया जा सकता है प्राचीन आचार्यों का आधार तब तक चलनेवाले आचार्य तथा आधुनिकों के आधार पर चलने वाले आचार्य। प्राचीन में संस्कृत के उद्भावक या सम्प्रदाय प्रवतक आचार्य आते हैं तथा आधुनिकों में यास्याता भाष्यकार या कविशिक्षाचार्य आते हैं। हिन्दी में प्राचीन उद्भावक आचार्यों के पृष्ठाधार को अधिकांश स्वीकार नहीं किया गया। आधुनिकों का ही अनुगमन किया गया। बंगव की दृष्टि प्राचीनों पर विग्य रही। अथ आचार्यों ने आधुनिकों का आधार ग्रहण किया। यत्र अपवात्स्वरूप कुछ और आचार्यों ने भी प्राचीनों के सिद्धांतों को निरस्त-परस्त तो अधिकांश बंगव के माध्यम से ही। स्वतंत्र रूप से प्राचीनों के सूक्ष्म और मूल सिद्धान्तों का अध्ययन

१ रामो अथ कविमत धरे धरे कृष्ण को ध्यात ।

रासे सरम उदाहरण लघुन जुत समान ॥ दित्तगमिणी ।

२ अप्पयदीक्षित ने 'प्राचीनों' और 'आधुनिकों' के मत को तब तक ही अपने ग्रंथ की रचना की थी 'प्राचीनआधुनिकाना च मतान्यलोच्य सवन' 'कुवलयानन्द' १६६

३ दूराइ ने अक्षरकार निरूपण में 'प्राचीन' 'आधुनिक' दोनों ही वर्गों के आचार्यों का मत लिया है—

अरथात्कन मत प्राचीन कहे ते बहु ।

आधुनिक सत्तरि, इच्छर प्रमाने इ ।।



करने की क्षमता सम्भवतः उनमें नहीं थी। यास्याताओं को भाष्यकारों तथा कवि-  
शिक्षाचार्यों द्वारा सरलीकृत और स्पष्टीकृत सिद्धांतों को ही ग्रहण करने की सामर्थ्य  
इनमें थी। नीचे के विवरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी।

### शास्त्रीय आधार

आरम्भिक आचार्यों में सम्भवतः मूल काव्यशास्त्रीय आचार्यों तथा उनके  
सिद्धांतों पर दृष्टि डालना। कृपाराम ने भरत के नाट्यशास्त्र का आधार बनाया।<sup>१</sup>  
पर स्वाधीन पत्रिका आदि १० रूपों में नायिकाभेद निरूपित करना भरत के अनुसार  
नहीं मान्यता के अनुसार है।<sup>२</sup> बेगव ने सस्कृत के प्राचीन आचार्यों का दृष्टांत ग्रहण  
किया। इसी आधार को दृष्टि से कहा जा सकता है कि बेगवदाम जी हिन्दी के पहले  
आचार्य हैं जिन्होंने शास्त्रीय पद्धति पर कायरीति के विभिन्न अंगों की सम्यक  
विवचना की।<sup>३</sup> बेगव ने नायिकाभेद की पद्धति स्वरूपक व शृंगारतिथक का आधार  
पर रखी। पर डा० नगद ने नवयोजना केवल अंगों तथा लज्जाप्राप्तियों को अंगों  
विवचनाय के प्रथमावतीण योजना प्रथमावतीण मदनविकारा और समधिक लज्जावती  
के पर्याय माना है और नववध को मुग्धा का सामान्य रूप माना है।<sup>४</sup> इस प्रकार डा  
नगद के अनुसार बेगव इस नायिकाभेद-सम्बन्धी सामग्री के लिए विवचनाय के ऋणी  
हैं। पर सभी विद्वान् इस प्रश्न पर एकमत नहीं हैं।<sup>५</sup> यत्किंचिद् एतद् है या और  
कोई इस बात पर मतभेद है। वेद और पितृ के मत में दोनों अभिन्न हैं। दुर्गादास  
और डा० जकोबी इस मत का विरोध करते हैं।<sup>६</sup> अधिकांश विद्वान् इनमें अन्तर्भाव मानने  
के ही पक्ष में हैं। प्राचीन सूक्ति संग्रहों में दोनों के पक्ष एक दूसरे के नाम से लिए गए  
हैं।<sup>७</sup> एतद् एक प्रसिद्ध आलोचक कवि थे ही सकता है कि बेगव ने इनमें नायिका  
भेद सम्बन्धी सामग्री भी ली हो। हमने इस क्षेत्र में अनेक आचार्यों के सम्मिलित  
प्रभाव की चर्चा की थी। नायिकाभेद के विषय में बेगव ने भरत के नाट्यशास्त्र  
घनजय के दण्डपत्र विवचनाय के साहित्यदण्ड तथा भानुदत्त के रसमञ्जरी आदि  
काव्यशास्त्रीय ग्रंथों से ही सहायता नहीं ली। अपितु वात्स्यायन के कामसूत्र का भी

१ कृपाराम जो कहते हैं भरत ग्रन्थ अनुमानि।

२ भरत ने ८ भेद किए हैं और भानुदत्त ने १०।

३ डा० केशव मिश्र ऐतिहासिक कवियों का प्रेम व्यञ्जना पृ० ५६

४ वदा पृ० ६६

५ रतिकाल्य की भूमिका तथा देव आर उनकी कविता, पृ० १६२

६ पर कानून बेगव ने विवचनाय में अन्तर्भाव नहीं ली है इसमें शिष्य वरुण के श्लोको  
हैं। डा० केशव मिश्र ऐतिहासिक कवियों की प्रेम व्यञ्जना पृ० ६६

७ पृ० ५० काव्य साहित्यदण्ड आर विवचनाय पृ० ६६

(१६५१) पृ० १४७

८ वदा

९ आचार्य विवरण काव्यशास्त्र भूमिका पृ० ४८

आधार बनाया है।<sup>१</sup> इसपर आगे क अध्यायां म विंगप विचार किया गया है। कगव का नखणित क्तना परम्पराभुक्त है कि क्सक मून क्वात का पता नगना कठिन है। मरदार कवि न कविप्रिया की टीका म लिया है नखणित प्राचान पुस्तक म नाहा मिलत परतु हमार जान क मव छोड एस कवित्त बनावनहार आन नाहीं यात लिपियतु है। रत्नाकर का कगवकृत नखणित की अलग प्रति मिनी थी।<sup>२</sup> पर कगव का आचायत्व का मग्य क्षत्र अलकार है। सस्कृत म अलकार सप्रदाय क प्रथम पुरस्कता भामह और दण्डा थे। कगव पर दण्डी का विनेय प्रभाव परिलभित होता है। कगव न प्राचीन आनकारिका का आधार मुख्यत किया। यत्ति उनथ निरूपण की कुछ समानता नवीना न है तो वह इसलिय कि भामह दडी आदि का प्रभाव न नवीना पर भी पडा। रस निरूपण म भी कगव ध्वनिवादिपों स अधिक प्रभावित दीखत हैं। व रस मम्बधी विविध धारणाआ स परिचित थे।<sup>३</sup> कगव भरत की भाति सभी रसा की सत्ता पृथक् स्वीकार करत हैं।<sup>४</sup> व सभी रसा का अतर्भाव शृगार म करत हैं पर भोज की भाति सभी रसा का मूल शृगार म नही मानत। वस शृगार क रमराजत्व की घोषणा करने क लिए ही 'रसिकप्रिया की रचना हुई है।<sup>५</sup> पर ध्वनिवातियों की भाति विगिष्ट अथ को ही काय की आत्मा मानते हैं। अथहीन काय मृतक है। अभिनवगुप्त की भाति रस को व विभानुभाव मचारी क सयोग स व्यजित स्थायी ही मानत हैं। इस प्रकार कगव की रस मम्बधी मायताआ का खान भरत ध्वनिकार तथा अभिनवगुप्त जस प्राचीन आचार्यों म हा मिलता है। इस प्रकार कगव का आचायत्व मूल पुरस्कता आचार्यों क मौलिक सिद्धातो क परिचान पर आधारित है व्याख्याकारों या नवीन आचार्यों क विरघन पर नही। यही कगव के आचायत्व का वगिष्ट्य है। आग क आचार्यों ने इन मून स्रोता को स्पग हा नही किया और यदि किया भी तो बहुत कम न और वह भी रस क क्षेत्र म। नीच की सूचियों स यह स्पष्ट हो जाएगा

- १ केशव और उनका साहित्य, पृ० १४७
- २ सरदार कवि की टीका कविप्रिया, ११वा प्रकाश पृ० १
- ३ ना प्र० म०, कारी, खान रिपोट पृ० २३
- ४ अनिरति गति मनि एक करि विविध विवेक तिलास। रसिकप्रिया १।१०
- ५ वही १।१५
- ६ गवहू रस क भाव बटु निनके मिन्न विगत।  
सवको कगवगुप्त' हरि नायक है शृगार ॥ वग १।१६
- ७ गृत्क कदाचै अथ विनु कगव' सुनहु प्रवीन। वही ३।७
- ८ आराय कवि केशव प्रा० कृष्णचन्द्र वाग, पृ १३६  
मिन्न विभाव अनुभाव पुनि मंगारी सु अनूप।  
अग करै थिर भाव जो मोह रस गुन रूप ॥

वरन की क्षमता सम्भवतः उनम नहीं थी। 'याम्यातामो भाष्यकारो तथा कवि शिक्षाचार्यो द्वारा मरलीकृत और स्पष्टीकृत मिद्वान्ता को ही ग्रहण करन की सामर्थ्य इनम थी। नीचे क विवरण स यह बात स्पष्ट हा जाएगी।

### गास्त्रीय आघार

आरम्भिक आचार्यों न सम्भवतः मूल का पगास्त्रीय आचार्यों तथा उनके सिद्धांत पर दृष्टि डाली। वृषाराम ने भरत क नाट्यशास्त्र का आघार बनाया।<sup>१</sup> पर स्वाधीन पत्रिका आदि रूपो म नायिका भेद विरूपित बरना भरत क अनुसार नहीं भानुदत्त क अनुसार है।<sup>२</sup> बेगव ने संस्कृत क प्राचीन आचार्यों का दृष्टता स ग्रहण किया। सभी आघार की दृष्टि स कहा जा सकता है कि बेगवदाम जो सिद्धी क पहल आचार्य हैं जिहोने गास्त्रीय पद्धति पर का परीति क विभिन्न अंग की सम्यक विवचना की।<sup>३</sup> बेगव न नायिका भेद की पद्धति रूम्भट्ट के शृंगारनिबन्ध क आघार पर रसी। पर डा० नगण ने नवयौवना नवल अनगा तथा लज्जाप्रायरति को प्रमग विरवनाथ क प्रथमावलीण यौवना प्रथमावलीण मदनविकारा और समधिक लज्जावती के पर्याय माना है और नववधू को मुग्धा का सामान्य रूप माना है।<sup>४</sup> इस प्रकार डा० नगण क अनुसार बेगव इस नायिका भेद-सम्बन्धी सामग्री के लिए विरवनाथ क श्रेणी हैं। पर सभी विद्वान् इस प्रश्न पर एकमत नहीं है।<sup>५</sup> य रूम्भट्ट रदट हैं या और कोई इस बात पर मतभेद है। वरर और पिपल के मत म दोनो अभिन्न हैं। दुर्गास और डा० जकीवी इस मत का विरोध करत हैं। अधिकतर विद्वान् इनम अभिन्न मानने के ही पक्ष म है। प्राचीन सूक्ति सग्रहो म दोनो के पद्य एक दूसरे के नाम स लिए गए हैं।<sup>६</sup> रूम्भट्ट एक प्रसिद्ध आलंकारिक कवि थे हो सकता है कि बेगव ने इनस नायिका भेद सम्बन्धी सामग्री भी ली हो। हमने इस क्षेत्र म अनेक आचार्यों के सम्मिलित प्रभाव की खर्चा की थी। नायिका भेद क विषय म बेगव ने भरत क नाट्यशास्त्र धनजय क दण्डपक विरवनाथ क साहित्यदपण तथा भानुदत्त के रसमञ्जरी आदि कायशास्त्रीय ग्रंथो स ही सहायता नहीं ली। अपितु वात्स्यायन क कामसूत्र को भी

१ वृषाराम यो कहत हैं भगव अथ अनुमानि।

२ भरत ने ८ भेद विरूप हैं और भानुदत्त ने १।

३ डा कचन सिद्धी रीतिकालीन कवियों का प्रेम-व्यवहार पृ ५६

४ वही पृ ६६

५ रीतिकाल्य की भूमिका तथा देव आर उनकी कविता पूर्वोक्त पृ १६२

६ 'पर वरुण शिव न विरवनाथ म य मान्यो नहीं ली है इसर लिए वे रूम्भट्ट क श्रेणी हैं। डा० वरुण सिद्धी रीतिकालीन कवियों की प्रेम व्यवहार पृ ६६

७ यो १ काण साहित्यसंग्रह आर विरवनाथ में दी गिये छात्र म पुत्र पोस्टिल (१६५१) पृ १४७

८ वग

९ आचार्य विरवनाथ का साहित्यसंग्रह, भूमिका पृ ४८

आधार बनाया है।<sup>१</sup> हमपर आगे के अध्यायों में विगप विचार किया गया है। कगव का नवगिन्य स्तना परम्पगमुक्त है कि हमक मून न्यान का पता लाना कठिन है। मरदार कवि न कविप्रिया की टीका में लिखा है नवगिन्य प्राचीन पुस्तक में नहीं मिलत परन्तु हमारे जान के मत्र छोड़ हम कवित्त बनावनहार आन नहीं यात लिपियतु है। रत्नाकर को कगवकृत नवगिन्य की असंग प्रति मित्री थी।<sup>२</sup> पर कगव का आचायत्व का मस्य क्षत्र अत्रकार है। मन्वृत में अत्रकार सप्रणय के प्रथम पुरस्वता भामह और दण्डा थे। कगव पर दण्डी का विगप प्रभाव परिनिमित्त होता है। कगव न प्राचीन आत्रकारिका का आधार मुख्यत लिखा। यत्ति उनक निरूपण की कुछ समानता नवाना में है ता वन् इमत्रिण कि भामह दण्डी आत्ति का प्रभाव एन नवीना पर भी पडा। रम निरूपण में भी कगव ध्वनिवादिषा से अधिक प्रभावित दीखत हैं। व रम-मम्बधी विविध धारणाआ से परिचित थ। कगव भरत की भाति सभी रसों की मत्ता पृथक स्वीकार करत हैं।<sup>३</sup> व सभी रसा का अत्रभाव शृगार में करत हैं पर शोज की भाति सभी रसा का मून शृगार में नहीं मानत। वस शृगार के रमगजत्व को घोषणा करन के त्रिण ही रमिकप्रिया की रचना दृढ़ है।<sup>४</sup> पर ध्वनिवात्तियों का भाति विगिष्ट अथ का हा का य की आत्मा मानते हैं। अयहीन काव्य मृतक है। अभिनवगुप्त की भाति रम का व विभानुभाव सूचारी के सयाग से व्यजित स्यायो ही मानत है। इस प्रकार कगव की रम-मम्बधी मायनाआ का आन भरत ध्वनिकार तथा अभिनवगुप्त जस प्राचीन आचायों में हा मिलता है। इस प्रकार कगव का आचायत्व मूल पुरस्वर्ता आचायों के मौनिक सिद्धान्तों के परिज्ञान पर आधारित है यास्याकारों या नवीन आचायों के विवचन पर नहीं। यही कगव के आचायत्व का वगिष्ट्य है। आगे के आचायों में इन मूल स्तारों का स्पग हा नहा किया और यत्ति किया भी तो बहुत कम न और वह भी रस के क्षत्र में। नीच की सूचियों से यह स्पष्ट हो जाएगा

- १ कगव और उनका साहित्य, पृ० १४०
- २ सरदार कवि की टीका कविप्रिया ११वा प्रकार, पृ० १
- ३ ना० प्र० सु०, काशी राज रिपाट, पृ २३
- ४ अनिरनि गन्ति, मति एक करि विविध विवक विलम्ब। रसिकप्रिया १।१०
- ५ वही १।१५
- ६ नवदू रज के भाव के दू मिलके भिन विचार।  
मकरी 'कगवगसु' हरि नायक है शृगार ॥ वना १।१६
- ७ शुक के हावै अथ विनु कराव मुनदु प्रवीन। वनी ३।७
- ८ आचाय कवि कराव प्रा कृष्यक बना, पृ० १३६  
मिल विभार अनुभाव पुनि स्यारा सु अनूप।  
अग के विर भाव लो, मोह रस मुन रूप ॥

## नायिका भेद तथा रस निरूपण आचार्यों का आचार

	भरत	भास	रचना
नृपाराम	×	×	हिनतरगिणी
नन्ददास <sup>१</sup>	—	<	रसमञ्जरी
सोमनाथ	—	×	रसपीयूषनिधि का रसप्रकरण
दास	—	×	शृंगारनिषय
जगतसिंह <sup>२</sup>	—	×	साहित्यमुधानिधि
धरतकवि	×	—	रसकलोल
रसलीन	—	×	रसप्रबोध
शम्भुनाथ	—	×	रसतरंगिणी
उजियारे कवि	×	—	जुगल रसप्रकाश रसचन्द्रिका
रामसिंह	—	>	रसनिवास
पदमाकर	—	×	जगन्निन्द
वेनी प्रवीण	—	×	नवरसतरंग (नायिका भेद)
नवीन कवि	—	×	रगतरंग
चन्द्रोत्तर	×	×	नायिका भेद रसवर्णन (रसिकविन्द)
सुखदेव	—	×	रस <sup>३</sup> रत्नावर रसाणव
सुन्दर	×	×	सुन्दरशृंगार
मण्डन	×	—	रसरत्नावली
मतिराम	—	×	रसराज
उदयनाथ	—	×	रसचन्द्रान्य
रामसिंह	—	×	रसशिरोमणि
शिववतसिंह	—	×	शृंगारशिरोमणि

१ प उमाशकर सुत नन्ददास श्यावली<sup>४</sup>, प्रथम भाग (प्रथम प्रकरण, प ६३)

रसमञ्जरी अनुसार क नन्द सुमति अनुसार ।

धरत कविता भेद नद, भेदसार विस्तार ॥ बही पृ १४५

२ द्वितीया साहित्य का बृहत् इतिहास (षष्ठ भाग) पृ ३५८

३ अनुत्त आर्थिक मन करि अनुमान ।

शिया प्रकट करि भाषा कवि विधान ॥

४ अन्ति प्राग नागरा प्रचारिणी सभा में है ।

५ उरस तथा भाव का ज्ञान अनुभव होइ ।

साहि ब्रह्म अनुभाव हैं भरत मना कवि चार ॥

६ अन्ति नागरी प्रचारिणी सभा में है ।

देव<sup>१</sup> × — भावविलास

### अलंकार निरूपक आचार्यों का आधार

प्राचीन मम्मट विश्वनाथ जयदेव शम्भु

गोपा <sup>१</sup>	—	—	—	×	×	अलंकारचर्चा द्रका
जसवन्तसिंह	—	—	—	—	×	भाषाभूषण
मतिराम	—	—	—	—	×	सलितसलाम
भूषण	—	—	—	×	—	शिवराजभूषण
कुलपति मिश्र	—	×	—	—	—	रसरहस्य
देव	×	—	—	—	—	काव्यरसायन
श्रीधर कवि	—	—	—	×	×	भाषाभूषण
रसिक सुमति	—	—	—	—	×	अलंकारचन्द्रादय
दूलह	—	—	—	—	×	कविकुलकटाभरण
दास	—	×	—	×	—	काव्यनिर्णय
पद्माकर	—	×	×	—	×	पद्माभरण

ऊपर की तालिकाएँ इन आचार्यों की पूर्ण सूची नहीं प्रस्तुत करती केवल कुछ प्रतिनिधि कवियों को लेकर निष्कल्प निकालने की चेष्टा की गई है। रस' क आचार्यों ने भरत का आश्रय ग्रहण किया है यद्यपि इन आचार्यों पर भानुदत्त की रसमञ्जरी छाई रही। पर अलंकार क्षत्र के आचार्यों में किसी भी प्राचीन आचार्यों का अनुसरण नहीं किया। केवल देव ने केशव के माध्यम में प्राचीनों का अनुसरण किया। इससे हिन्दी के आचार्यत्व के क्षत्र में केशव की स्थिति अत्यन्त सही रीतिवाली आचार्यों से विनिष्ट हो जाती है। शुबल जी ने आधार को दृष्टि में रखकर एक सामान्य कथन

- १ भुवने मान भारती सुमिरि, भरनाटिक ध्याये। पर आधार अन्वों का भी है।
- २ हिन्दी अलंकार साहित्य पृ० ७८
- ३ जिते साज हैं कवित के, मम्मट कह बरजानि।  
त मव भाषा में कहे, रसरहस्य में आनि ॥ रसरहस्य  
मगनाखण्ड में अभिलवगुप्ताय का नामोल्लेख किया है।
- ४ “देव कवि पर आमह, देखी आत्ति का मीषा प्रभाव उतना नहीं, जितना केशव के माध्यम से, वे सरलतन के आचार्यों से अनुप्रभावित हैं परन्तु केशव में अधिक मात्रा में अनुप्रेरित।”  
—डॉ० श्रीमूकेश, हिन्दी अलंकार साहित्य, पृ० १३७

५ उन्होंने शैली के विषय में लिखा है—

लच्छन भाषे गीहरा, उगाहरा पुनि आयु।

६ रसिक कुवलयानन्द लिखे अलि गन हरम बड़ाह।

आकार रसालयहि बरानु द्विय दुलमार ॥

७ भूक्ति सुवदानीक अरु काव्यप्रकाशदु ग्रंथ।

समर्पि सुर्वाव भाषा कियो, लै भारी कवि पथ ॥

## नायिका भेद तथा रस निरूपक आचार्यों का आधार

	भरत	भानुदत्त	रचना
कृषाराम	×	×	हिततरंगिणी
नन्ददास <sup>१</sup>	—	✓	रसमञ्जरी
सोमनाथ	—	×	रसपीयूषनिधि का रसप्रकरण
दास	—	×	शृंगारनिर्णय
जगतसिंह <sup>२</sup>	—	×	साहित्यसुधानिधि
वरनकवि	×	—	रसकल्लोल
रसलील	—	×	रसप्रबोध
गमुनाथ	—	×	रसतरंगिणी
उजियार कवि	×	—	जुगल रसप्रकाश, रसचन्द्रिका
रामसिंह	—	✓	रसनिवास
पद्माकर	—	×	जगन्निन्द
वनी प्रवीण	—	×	नवरसतरंग (नायिका भेद)
नवान कवि	—	×	रसतरंग
चन्द्रगुप्त	×	×	नायिका भेद रसवर्णन (रसिकविनाद)
मुगटेव	—	×	रस <sup>३</sup> रत्नावर रसाणव
मुत्तर	×	×	सुन्दरशृंगार
मण्डन	×	—	रसरत्नावली
मतिराम	—	×	रमराज
उत्तमनाथ	—	×	रसचन्द्रोदय
रामसिंह	—	×	रसगिरोमणि
गणवतसिंह	—	×	शृंगारगिरोमणि

१ प उमाशंकर शुल नाट्यम ग्रन्थाली, प्रथम भाग (प्रथम संस्करण, पृ ३३)

रसमञ्जरी अनुसार क नन्द सुमति अनुसार ।

वरन कविता भेद वैद प्रेमसार निर्णय ॥ बही पृ १४५

२ लिखी साहित्य का बहुर इतिहास (४९ भाग) पृ ३५८

३ भानुदत्त ध्यात्क भन करि अनुमान ।

रिया प्रकट कवि भाषा कवित विधान ॥

४ गन्धि प्रति नगरी प्रचारणी समा में है ।

५ उरग तथाद माव का जान अनुभव हो ।

ताद कहन अनुभव है भरत गना कवि जोर ॥

६ प्रति नगरी प्रचारणी समा में है ।

अलंकार-निरूपक आचाया का आधार

प्राचीन मम्मट विश्वनाथ जयदेव द्रप्यप

गोपा <sup>१</sup>	—	—	—	×	×	अनकारचंद्रिका
जमवतसिंह	—	—	—	—	×	भाषानुषंग
मतिराम	—	—	—	—	✓	उल्लिखनाम
भूपण	—	—	—	×	—	गिदगवन्नुषंग
कुलपति मिथ	—	×	—	—	—	रसरहस्य
देव	×	—	—	—	—	बाल्यरसायन
श्रीधर कवि	—	—	—	×	✓	भाषानुषंग
रसिक सुमति	—	—	—	—	✓	अनकारचंद्रिका
डूल्ह	—	—	—	—	✓	कविकृतसंग्रह
दास	—	✓	—	✓	—	बाल्यरसायन
पद्माकर	—	×	✓	—	✓	पद्मानुषंग

ऊपर की तालिकाएँ इन आचार्यों की पूरा सूची नहीं प्रस्तुत करना उचित कृत प्रतिनिधि कवियों को उचित निरूपण निकालने का चयन का मद्दे है। 'रस' व आचार्यों ने भरत का आश्रय अधिक लिया है यद्यपि इन आचार्यों पर आनुपम का 'रसदर्शी' छाई रही। पर अलंकार क्षत्र व आचार्यों में उचित नो प्राचीन आचार्यों का उचित सरण नहीं किया। कवन देव नवनिर्वाक माध्यम में प्राचीनों का अनुसरण किया। अन्त हिन्दी व आचार्यदेव व क्षत्र में कवन का स्थिति अथ समी गतिशालीन भाव्यों व विधिष्ट हा जाती है। पुवन जो न आचार्य का दृष्टि में रसकर एक अन्त कवन

१ सुवन मान भारतीय सुनिधि, भारतीय कलाय। पर अन्त अन्त का म है।

२ दिल्ली अलंकार माहात्म्य पृ० ७८

३ विन्दा साहू कवि क, मम्मट वर विलास।

४ सुव भाषा में कह, रसरहस्य में अन्त ॥ रसरहस्य

रसरहस्य में अन्तिलक्षणवाय का भाषानुषंग दिया है।

५ "देव कवि पर मम्मट, गण्डा अन्त का सीरी प्रसंग अन्त अन्त, अन्त अन्त अन्त अन्त, म, व अन्त अन्त आचार्यों में अन्तुप्रभावित है अन्तु अन्त अन्त, अन्त अन्त अन्त अन्त।"

—दो० का अन्त, अन्त अन्त अन्त अन्त, दृ० १११

६ उदाहरण गोपी के विषय में दिया है—

लक्ष्मीदेव आन लारा, अन्त अन्त पुन अन्त।

७ रसिक कुशलवात्सल्य अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त।

अलंकार अन्त अन्त, अन्त अन्त अन्त अन्त।

८ सूक्ति अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त अन्त।

समर्थ सुवि भाषा अन्त, अन्त अन्त अन्त अन्त।



किया। संस्कृत की ही एक सक्षिप्त उद्धरणी हिंदा म हो गई।<sup>१</sup> डा० भगीरथ मिश्र ने विष्णुपण्य की कविता है। कविवर्य ने तथा उनके समकालीन कुछ आचार्यों ने भामहरी की जस प्राचीन संस्कृत का आचार्यों को आधार बनाया। परवर्ती हिंदी आचार्यों ने बंगाली और कुवलयानंद को अधिकांश म आधार बनाया। कुछ प्रथम काव्यप्रकाश और साहित्यद्वय का भी आधार पाया जाता है। यह निष्पत्ति ऊपर की तानिकाशा म स्पष्ट हो जाता है। किसी किसी कवि ने पूर्ववर्ती आचार्यों की एक सूची भी दी है। उदाहरण के लिए जगतमिह को लिया जा सकता है।<sup>२</sup> पर यह सूची मात्र सूची है। रसिकगोविंदानंदवन भरसिंह गोविंद ने भरत के नाटयशास्त्र अभिनव गुप्त मम्मट के काव्यप्रकाश तथा विश्वनाथ के साहित्यरूपण आदि का मत देकर फिर अर्थकर्ता की मत के रूप म अपना निष्पत्ति दिया है।

कुछ आचार्यों ने अपने पूर्ववर्ती हिंदी के आचार्यों का आधार भी पूरा रूप म या अंग रूप म ग्रहण किया। मतिराम पर कविवर्य और जसवन्तमिह का ऋण स्वीकार किया जा सकता है। भूषण ने मतिराम से बहुत कुछ लिया है।<sup>३</sup> दब के भावविश्वास पर तो कविवर्य का प्रभाव स्पष्ट है। कविवर्य का आधार यद्यपि इतिहासकारों के मतानुसार विशुद्ध नहीं लिया गया फिर भी आगे के अनेक हिंदी आचार्य उनके ऋणात्थ। कविवर्य के आधार की परम्परा को इस प्रकार स्पष्ट किया जा सकता है—

आचार्य

विशेष अर्थ

पदुमनदास (काव्यमञ्जरी)  
देवर्षि

कविशिक्षा श्लो अन्वकार निरूपण  
दोष निरूपण

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास (१९६७ वि) पृ० २८१

२ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ० २५

३ अन्तर्लीक आदि है भाषा कान।

कवि साहित्य सुधानधि दरवै दीन ॥

×

भरत भोज अर्थ मम्मट श्री कवे

विश्वनाथ गोविन्दम तानिका मेव।

भानुपत्त आदिक मत कर अनुमान।

नियम प्रकृत करि भाषा कविन विगान ॥ (साहित्य सुधानधि)

४ डा भगीरथ मिश्र हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास द्वितीय संस्करण पृ० १६६

५ रिव अन्वकार कविवर्य की शान्तिश्लो में ही लिया गया है —

सरस्वती की शान्ति को कल्पि प्रतिकूल (कशाव)

सरस्वती की शान्ति को कल्पि प्रतिकूल (मतिराम)

६ डा आचार्यकाश हिन्दी अन्वकार साहित्य पृ० ११

७ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ० ३७

८ कवि पृ० ३३७। दब ने कशाव के अन्वकार शान्ति से प्रेरणा प्राप्त की।

श्रापति  
चिन्तामणि  
मनिराम<sup>१</sup>  
भिवारीदास  
जगतमिह  
कृष्णमठ<sup>१</sup>  
गिवनाथ  
मुन्<sup>२</sup>

वापदोष<sup>१</sup>  
भाव<sup>१</sup>  
भात्र चित्र अन्तर  
वाग्वी आदि चार रमयुतिया  
दाप प्रकरण<sup>१</sup>  
अनरस (रमनाप)  
रम प्रकरण  
नियोग शृंगार

१२२ प्रवार रम निरूपक आचार्यों न बहुधा बगव व दाप प्रकरण न प्ररणा या आघार ग्रहण किया। अन्तर व क्षत्र म बगव की परम्परा अत्रय हा अत्रि व नवती हाकर चनी। बगव की परम्परा व कुछ चिह्न आग पदुमनराम की बाध्यमजरी (म० १७४१) गुप्दीन पाण्य व वाग मनोहर (म० १८६०) और वनी नवीन व नानागवप्रकाग (स० १८७०) म दिखनाई पढत है। 'देव व अलकार नाम और उनक लयणा पर बगव वा प्रभाव गप्ट है।' दूनह पर चाह मीया प्रभाव न हा पर अन्तर व महत्वाकन पर बगव वा छाया है।' राममिह न भी यहा बात कही है।' आगिब रूप म बगव वा प्रभाव आग व आचार्यों पर परिलगित होता है। अन्तर यह मामाय

१ पगव व काय म लपा के उल्लारण लिह ह। रतिकप्रिया के बाना बरोग रग नैनन के दोला संग' वाले छन्द में 'अन्न' ने अतिकट लेप बनाया है। यनि रग' के उल्लारण में भी रतिक प्रिया का एक उल्ल लिया गया ह। 'असमय' में 'रतिकप्रिया आग शिथिल' में कविप्रया' के छन्द को लकर लेप रगन कराया गया ह। 'म प्रकार केगव इनके आशयन का विषय रहा।

२ 'केराव न केवल आर्या मुह और वजन म ही मन की दान को प्रकट करना भव कहा था, चिन्तामणि न भी 'नी प्रकार' ११ हा० मनीरथ मिश्र, दिल्ली कायगात्र का इतिहास, पृ ८३ ३ मनिराम ने अभिव्यक्ति बरक अगों की रम्या तो बदा दी पर शैली बदी रहा—

लोचन बचन प्रमाण मृन् दान बाम धन माण ।  
इनन परगट जानिब बगत सुकवि विनोन् ॥ रमराज

४ दिल्ली साहित्य का बहुर इतिहास, पृष्ठ भाग, पृ १५८  
५ बही, पृ ३७०। इतिहास अथ बधिर, नगन, किम निरम आदि दाप केराव की पदनि पर लिह है।

६ बही, पृ ३५६। शृंगारममाधुनी, सोलहवा स्वा० ।  
अनरम का बगव केराव के रमनाप निरूपण म मान्य रगना है ।  
७ रमवलि में केराव का रतिकप्रिया का आधार लिया गया है। वनी पृ ५ ५ ५

८ वनी पृ ५४६  
९ दिल्ली साहित्य का बहुर इतिहास पृष्ठ भाग पृ ४४३  
१० दिल्ली अन्तर साहित्य, हा० अमृतका पृ १२०, पा० निरूपणी— 'मम्मद है केराव के अनुयायी और भां कुत्र आगाव त्र मे पूव हुए हां, तिनके विषय में जान इतिहास मौन है।'  
११ 'मम्मद' लन्दन मल्लिन रति रीने करार ।  
१२ निर भूपण गदि भूप कविता बनना यन ॥ कवि-रकमरग ०  
१३ कविता अन्तरान की अन्तरक छवि नेन । अन्तरकमरग ०

कथन कि केशव का प्रभाव आगे के आचार्यों पर नहीं पडा एक प्रति साधारणीकरण कहा जा सकता है। डा० गमगकर शुक्ल रसाल' ने भी एक प्रभाव की परम्परा को स्वीकार नहीं किया है। पर इन्होंने लिखा है कि चाहे उनका अनुपायी न हों पर उनका स्थान उच्च है।<sup>१</sup> इतना निश्चित है कि प्रेरणा का स्रोत केशव के आचायत्व में ही है। तब संस्कृत काव्यशास्त्र में प्राचीन और नवीन का भेद हो गया था उसी प्रकार हिन्दी में भी दो परम्पराएँ मिलती हैं प्राचीन या केशव परम्परा तथा पीछे की परम्परा। आधार की दृष्टि से केशव परम्परा प्राचीन पर तथा नवीनों का परम्परा पिछले खेव के संस्कृत आचार्यों पर आघत थी।

इस प्रकार परम्परा के प्रबन्ध के रूप में भी केशव का स्थान हिन्दी आचायत्व के इतिहास में बन जाता है। केशव के इस ऐतिहासिक महत्त्व के सम्बन्ध में दो मत नहीं हो सकते। डा मिश्र ने इस तथ्य को इन शब्दों में स्वीकार किया है 'केशव' का महत्त्व संस्कृत के आधार पर हिन्दी में काव्यशास्त्र के विषयों पर नक्षत्र उदाहरणपूर्ण ग्रन्थ लिखन की परम्परा डालने में है और उसमें वे सफल भी हुए। डा० श्रीमप्रकाश के अनुसार<sup>१</sup>— केशव ने भाषा में काव्यशास्त्र को प्राप्य बनाने का मार्ग दूसरों के लिए भी प्रशस्त कर दिया था। आचाय रामचन्द्र शुक्ल ने रीति परम्परा का आरम्भ चिन्तामणि से माना है। पर केशव के ऐतिहासिक महत्त्व को उहोने भी स्वीकार किया है इसमें सन्देह नहीं कि काव्यरीति का सम्पन्न समावर्ग पहन पहन आचाय केशव ने ही किया। पर हिन्दी में रीतिप्रथो की अविरल और अखण्डित परम्परा का प्रवाह केशव की कविप्रिया के प्राय ५० वर्ष पीछे चलता। 'शुक्ल जी के मत का समर्थन करते हुए डा० श्रीमप्रकाश ने इस प्रकार स्पष्टीकरण किया है— यदि चिन्तामणि और केशव की दूरी को पाटने वाला आचाय मिल भी जाए तब भी प्राचीन और नवीन दो प्रकार के आचाय मान जायेंगे। पूर्वार्द्ध केशव के अनुकरण कर्ताओं का होगा और उत्तरार्द्ध मम्मट जयदेव और विम्बनाथ का। 'चिन्तामणि से पचाकर तक जो आचाय हुए प्राय स्वच्छन्द कवि मात्र थे किसी परम्परा के

१ It is also a fact that Keshava a great master or writer of poetics with sufficient originality could not attract people to follow him There is hardly to be found any poet or scholar of Hindi who is ready to recognise the authority and accepts his view on poetics (not to say this scholars like Sripati have criticised him and have tried to show his work on poetics as faulty) However he has been allowed a very high place in the field of Hindi literature ?  
(*Evolution of Hindi Poetics*)

१ हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ ५

२ हिन्दी अलंकार साहित्य, पृ ५

३ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ २२

४ वही पृ ०१

५ दो अलंकार हिन्दी अलंकार साहित्य पृ ५

प्रयत्न नहीं। कभी कभी उनमें आच्चापत्व अधिक कम हो जाता था। वेगव न सस्कृत के व्याख्याता आचार्यों या स्पष्टीकरण करने वाले आचार्यों का अनुकरण नहीं किया। उन्होंने सस्कृत के उदभावक प्राच्याचार्यों को ही अनुकरणीय माना। यह उनका अलंकार सम्बन्धी दृष्टिकोण से स्पष्ट हो जाता है—

भामह ४०-१ (३ का निरसन तथा १ का तिरस्कार) + १ (आगी) = ३७  
 दण्डी ३४ + २ (ममक तथा चित्र) + १ (आवृत्ति दीपक) = ३७  
 उदभट ४१-३ (अनुप्रास) - १ (पुनस्तवदाभास) = ३७  
 बदाय = ३७

इस प्रकार वेगव की अलंकार सख्या प्राचीनों ने ही मिलती है। उनपर दण्डी और उदभट का प्रचुर प्रभाव था।

### हिन्दी के आचार्यों का वर्गीकरण

हिन्दी के आचार्यों का वर्गीकरण कई आधारों पर किया जा सकता है। कुछ तत्कालीन आचार्यों ने भी वर्गीकरण का आभास दिया है। दूल्हन ने अपने कविकुल-कटाक्ष में साहित्य-साधकों के तीन वर्गों की सूचना दी है। वर्ता सत्कवि और अनवृत्ती।<sup>१</sup> इनकी व्याख्या करते हुए डा० ओम्प्रकाश लिखते हैं— वर्ता वह है जो रमणीय रचना कर मक आज की भाषा में उसको कवि कहा जाएगा सत्कवि शब्द महा आचार्य के लिए प्रयुक्त है जो यत्कि एक से अधिक अंगों का निरूपण (एक ही पुस्तक में) कर सकता था वह उस युग का आचार्य था। अनवृत्ति स दूल्हन का अभिप्राय उस यत्कि स है जो अलंकारयुक्त कविता रच कर और अलंकार विषय का ज्ञाता भी हो। देव ने प्राचीन और नवीन भेद करके 'पुराननि मुनि तथा आधुनिक कवि भेद किए हैं।<sup>२</sup> प्राचीन में तात्पर्य कुछ विद्वानों ने सस्कृत के आचार्य माना है। यहाँ मुनि शब्द सम्भवतः देव का अभिप्राय भरत से हो। हो सकता है कि पुराननि का अन्तर्गत वे हिन्दी के भी प्राचीन आचार्यों को रखते हों।<sup>३</sup> कवि से सम्भवतः वे पिछले सेवे के रीत्याचार्यों को छोड़ित करना चाहते हैं। इस

१ चन्द, धरन लच्छन ललित, रचि रीकै करतर ।

×

दारप मन मन कविन के अर्थशाय लघु तप

×

समा मन्त्रसोमा लई अनकृती टहराय ॥

२ हिन्दी अलंकार साहित्य पृ० ५४

३ अलंकार मुख्य उन्नालीन हैं देव कर्द,  
 कई पुराननि मुनि मनन में पाये ।

आधुनिक कविन के मंगल अमक और,  
 इनही के ने और विविध बनाये ॥ (भावविनास)

४ हिन्दी अलंकार साहित्य पृ ५५

## रीतिकालीन प्राचापत्य का मूल्यांकन

इस काल का मित्र वसुभ्रा ने 'अलकृत काल' नाम दिया है। कुछ व अनुसार इसे शृंगार-काल ही कहना चाहिए। पर रीतिकाल नाम ही अधिक लोकप्रिय बहुप्रयुक्त तथा उपयुक्त है। संस्कृत काव्यशास्त्र में रीति एवं पारिभाषिक शब्द था। विगिष्टा पदरचना काव्याद्या सहित वामन न (श्वी गी) इसे काव्यात्मा माना था। रीति शब्द का शास्त्रीय अर्थ हिन्दी के आचार्यों ने ग्रहण किया। पर इसका एक विकसित अर्थ भी प्रकट हुआ काव्य रचना पद्धति तथा सत्त्वबन्धी शास्त्र। तुलसी ने भी कवित रीति का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> यहाँ कविभाग ही इसका अर्थ है। रीति या कविभाग के नियमों को वे वष्य विषय व उपकारक रूप में ही स्वीकार करके उसकी स्वतंत्र सत्ता स्वीकृत नहीं करते थे।<sup>२</sup> रीतिकालीन कवियों ने इस अर्थ में पद्य का भी उल्लेख किया है।<sup>३</sup> बंग व पश्चात् बहुधा रीति शब्द का प्रयोग ही मिलता है। चित्तमणि मनिराम शब्द सुरति मिश्र दाम प्रभृति आचार्यों ने रीति शब्द का प्रयोग किया है।

अत रीति शब्द काव्यशास्त्र अथवा काव्यशास्त्रीय विधान का वाचक न होकर व्यापक अर्थ में विधान अथवा शास्त्रीय विधान का ही वाचक है। इससे यह स्पष्ट होता है कि शास्त्रीय काव्य विधान तथा तत्सम्बन्धी बोध और अभिरुचि की पुनर्स्थापना का यह युग था। भक्तिवाच्य न वस्तु को प्राधान्य दिया गली को गीण स्थान मिला। रीति काल ने इस स्थिति की प्रतिनियाम गली और रूप को सुनिश्चित व्यवस्था देने का यत्न किया।<sup>४</sup> भक्तिकालीन साध्यात्मिक अथवा सामाजिक उपयोगितावाद के स्थान पर गली शिल्प व कलात्मक तत्त्वा को मायता दी गई। यदि उपयोगिता मानव की एक प्रमुख आवश्यकता है तो कला उसके अंतर्गत की एक प्रमुख प्रवृत्ति है। भक्ति साहित्य यदि एक आन्दोलन से बल ग्रहण करके हिन्दी में एक मुद्रा परम्परा बना सका तो रीति काल मानव मन की कलाप्रियता से बल ग्रहण करके एक दीर्घ परम्परा स्थापित कर सका। इसीलिए इस काल के आचार्यों ने संस्कृत काव्यशास्त्र की पूर्ण समृद्ध परम्परा को माया व कगारों में प्रवाहित होने के लिए बाध्य किया।

रीतिकाल की दीर्घ अविच्छिन्न परम्परा स्वयं अपने आपमें कुछ निजी शक्तियाँ रखती है जो इस जीवन रस देती रही। इन्होंने प्रेम को अलौकिक धरातल से उतार

१ कवि रीति नहीं जानें कवि न वदार्थों।

२ भक्ति विचित्र मुकवित्तु नोऊ। राम नाम विनु सोइ न सोऊ ॥

३ समुक्त कला शालकहु वरुन पय अगाथ।

४ रीति सुभाषा कविन की बरनन मुख अनुमार।

५ मो विग्रन्ध नबान यो बरनन कवि रस रीति।

६ अपनी-अपना रीति के काव्य धार कवि रीति।

७ बरनन मनरन नडा रीति अलौकिक होइ।

८ काव्य का रीति निगी मुकवी ह मो।

९ हिन्दी साहित्य का इतिहास इतिहास पृष्ठ भाग ५० १८

१० डा सप्रेम कला कल्पना और साहित्य पृ २१२

कर गुड मानवीय लौकिक धरातल पर स्थापित किया। भक्तिकाल में प्रेम को जन जीवन व व्यावहारिक धर्म से अलग कर दिया उसे अपने में इतर पुरुष निभुण अथवा नगुण के लिए समर्पित कर दिया, उसकी अपनी भावना का अपने ही हाड-मांस के लिए कोई भी स्थान और उपयोग नहीं रहा। प्रेम का भक्तिकालीन उदात्तीकरण एक सामयिक आवश्यकता और युगधर्म से प्रेरित था। रीतिकाल न मानव की मूल भावना उसे वापस दी। प्रेम का यह उच्छलित रूप आचायप्रणीत उदाहरणों में समाकर युगर्चि का सामान्यतः तथा राजरुचि का विनोपतया परिष्कार किया। राजर्चि को वाच्य और वाच्यशास्त्र की श्रार मोडकर एक प्रकार से एम काल के कवि आचाय ने बड़ा उपकार किया। यदि राज्याश्रय इस कवि के लिए एक बंधन माना जाता है, तो उसने राजवश के रागतत्व को भी नियंत्रित किया है। इस प्रकार राज्याश्रय और अपनी निजी शक्तियाँ के बन्धन यह युग दीर्घ काल तक चलता रहा। भक्तिकाल में अर्थात् सत्रहवीं शती में ही रीत्याचार्यों का काय धारम्भ हो गया था। पर यह धारा इतनी सघन और बलवती नहीं हो पाई थी। वैश्वनाथ को रीतिकाल का प्रवर्तक आचाय मानने के सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद नहीं है। वैश्व और चित्तामणि के बीच का नवी जो खाई है उसको पाटने वाली कठिया के अभाव में प्रस्तावना काल और रीतिकाल को अलग मान लिया जाता है। बीच की तुप्त कठियों का अनुमान भी तबमगत ही होगा। पर इस प्रश्न पर यहाँ नहीं आगे विचार किया है। यहाँ यह मत देकर मतोप कर लिया जाता है रीतिकाल का सीमा निधारण सवत् १७०० से १६०० तक ही होना चाहिए। सत्रहवीं और बीसवीं शती के रीतिकाल का अन्त प्रस्तावना और उपसंहार के रूप में मान्यता किया जा सकता है। अर्थात् रीतिकाल का विस्तार तो सवत् १७०० से सवत् १६०० तक ही है। इस प्रकार २०० वर्ष में कम का इतिहास रीतिकाल का नहीं है। यह अवधि इस युग के कवि आचाय तथा उनके कविकर्म के मूल्य का प्रमाण है।

इस दीर्घ कालावधि में संकटा पात अनात रीतिप्रथा की रचना हुई। इस युग के कवि आचाय का परिमाणगत मूल्यांकन कठिन है। बहुत-से अर्थ अप्रकाशित पड़े हैं, बहुत-से अनात हैं बहुत-से लुप्त हो गए हैं। फिर भी प्राप्य सामग्री कम नहीं है। डॉ० भगीरथ मिश्र की सूची के आकड़े इस प्रकार हैं अलवार ग्रंथ ४८-

१ डॉ० सरयेन्द्र, कला, कल्पना और साहित्य, पृ० २११

२ शृंगार का समय स० १५६८ वि० माना जाता है और मेनपति का १७००। इस काल के आचार्य कवियों की सूची के लिए देखिए, हिन्दी साहित्य का बहन् इतिहास, अष्ट भाग पृ० १६७-१६८

३ अन्त केराव के प्रादुर्भाव-काल में रीतिकाल का प्रवर्तन स्वीकार न करके चित्तामणि के समय से ही रीतिकाल का प्रवर्तन मानना अधिक युक्तिमगत है। शृंगार, करनेम और केराव की राजशाहों को रीतिकाल्य की प्रस्तावना के रूप में ही अर्थ करना चाहिए। उक्त प्रस्तावना के साथ भाग के रीतिकाल्य का अध्ययन करने पर रीतिकाल का प्रारम्भ अठारहवीं शती में मानना होगा।

—हिन्दी साहित्य का बहन् इतिहास, अष्ट भाग पृ० १७०

४ वही पृ० १७२

५ हिन्दी वाच्यशास्त्र का इतिहास पृ० ३७-४३

रसग्रथ ३८-+शृगार और नायिका भेद ग्रथ ३०-+कायशास्त्र ग्रथ ३२ = (योग) ११६। हिंदी साहित्य का वृहत इतिहास<sup>१</sup> की सूचियों व आकडे इस प्रकार हैं सर्वांग निरूपक आचार्यों के ग्रथ १५-+सवरस निरूपक ग्रथ ३१-+शृगार रस निरूपक ग्रथ १६-+नायिका भेद ग्रथ १७-+अलंकार निरूपक आचार्य ३७ (लगभग इतने ही ग्रथ) -+पिगल निरूपक आचार्य १५ (लगभग इतने ही ग्रथ) = (योग) ११५। नाट्य विधान से संबंधित वचन एक ग्रथ नारायणकृत नारायणदीपिका है और कविगिष्ठा सम्बन्धी ग्रथ कवि प्रिया। इन आकड़ों से रीति आचार्यों का परिमाणगत महत्त्व स्थापित हो जाता है।

इन आचार्यत्व की सीमाएँ हैं। इस युग के आचार्य के साथ कवि सलग्न था, जो सरस उदाहरणों की रचना का आग्रह करता रहता था। पर उदाहरण रचना या योजना भी आचार्यत्व का अंग ही माना जाना चाहिए। संस्कृत में कायशास्त्रीय ऊहापोह उस कोटि तक पहुँच चुका था कि मौलिकता दिखाने का अवकाश ही नहीं था। प्राचीन सिद्धांतों का उपयुक्त वैज्ञानिक व्याख्या भी इन आचार्यों से प्रायः नहीं हो सकी। उदाहरण रचना वचन विस्तार<sup>२</sup> नायिका भेद वर्गीकरण तथा कुछ भाषा सम्बन्धी प्रश्नों का समाधान में मौलिकता के दशन होते हैं। नवानता ज्ञान का माह प्रायः सभी आचार्यों में दिखाई पड़ता है पर जहाँ नवीनता है उसका आधार दृष्ट और वैज्ञानिक नहीं है। संस्कृत के तत्कालीन आचार्य भी न कोई मौलिक चिंतन ही प्रस्तुत कर सके थे और न सूक्ष्म विवेचना ही। हिंदी के आचार्यों की भाँति उनका भी भुक्त्वा वचन विस्तार की ओर ही विद्यमान था। पंडितराज में मौलिक चिंतन और मेधा दिखाई देती है पर वचन प्रियता से वे भा मुक्त नहीं हैं।

रीतिवादी कवि आचार्य का सिद्धांत प्रतिपादन अस्पष्ट उलझा हुआ और दापपूर्ण था। इसका कारण यह था कि संस्कृत कायशास्त्र का सम्यक ज्ञान बहुत कम आचार्यों को था। संस्कृत कायशास्त्र की उत्तरवर्ती परम्परा से इनका सम्बन्ध होना भी एक कारण था वह परम्परा मौलिक चिंतन और उदभावना की दृष्टि से निर्जीवप्राय हो चुकी थी। इस परम्परा में पंडितराज ही देदीव्यमान नक्षत्र के समान चमक रहे हैं। कविगिष्ठा की परम्परा से ही इनका सीधा सम्पर्क हुआ जिसमें सिद्धांतों का सूक्ष्म ऊहापोह अथवा परीक्षण अपेक्षित नहीं था उसका सामान्य बाध ही पर्याप्त था।

इन आचार्यों का साहित्य-संवर्द्धन और समीक्षा पद्धति की स्थापना में जो महत्वपूर्ण योगदान है उस भुना नहीं देना चाहिए। इनके प्रयत्नों से कायशास्त्रीय अभिरुचि सुरक्षित रह सकी। काव्य रचना के लिए तथा वाच्यस्वादन के लिए शास्त्रीय पृष्ठभूमि प्रस्तुत की गई। भाषा काव्य का इस पृष्ठभूमि में समुचित उन्नयन और समृद्ध वाच्यरूपीय विकास सम्भव हो सका। 'कवित्व विवेक एक नहीं मोरे तथा

१ हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ भाग ५, ३८६-३८८

२ नारायणकृत रस आचार्य भिखारीदास, पृ १६१

३ काव्य, हिन्दी साहित्य का बृहत् इतिहास, पृष्ठ भाग ५, ५१५

४ काव्योपनिषद्, हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास, पृ १६१

‘बलम गही नहि हाथ के आदोनन स प्रेरित बलवती प्रवृत्ति और परम्परा के वातावरण म कायगास्त्रीय परम्परा की इहोन लुप्त नहीं होन दिया । साथ ही कविकम के योग स गास्त्रीय चिन्तन को जहा क्षतिपहुची बहा उम सरसता भी प्राप्त हुई । भव यह उच्च मनीषितायुक्त विचारक बग ब एकाधिकार का क्षेत्र नहीं रह गया । सामान्य कवि और रसिक ब लिए भी रमणीय हो गया । इमब अतिरिक्त सस्कृतन हिंदी आचार्यों म मौलिकता का सबथा अभाव भी नहीं है ।

‘हमारी बतमान आलोचना की समृद्धि म इन रीतिकारों का योगदान स्पष्ट है । बौद्धिक हास ब उस अघकार युग म काय ब बुद्धिपक्ष का जाने अनजान पोषण देकर ंटोंने अपने ढग स बड़ा काम किया । ’ इनका एक पारिभाषिक और गास्त्रीय योगदान भी है । सस्कृत काव्यगास्त्र का सबमाय सिद्धांत ध्वनिवाद ही रहा है—रस का स्थान भूषण होने हुए भी उसका विवचन प्राय असलक्ष्यम व्यंग्यध्वनि के अत गत अग रूप म ही होता रहा है । हिंदी ब रीतिकार आचार्यों न रस को परतनता म मुक्त किया और पूरी दो गताब्दियों तक रसराजशृंगार की एसी अविछिन धारा प्रवाहित को कि यहा शृंगारवाद एक प्रकार स स्वतंत्र सिद्धांत क रूप म प्रतिष्ठित हो गया । ’ इन आचार्यों की साधना इतिहासकारों की उपक्षा पाती रही है । नवीन दृष्टि स इसका पुनर्मूल्यांकन अपक्षित है ।

१

१ टा० गे० दिन्नी सादिय का पत्र इतिहास, पृ० ४६७

२ बदा पृ ४६८



## द्वितीय प्रकाश केशव के आचार्यत्व का क्षेत्र

### प्रस्तावना

केशव से पूर्व काव्यास्त्रीय आचार्यत्व का बीजारोपण हो चुका था। १६वीं शती के उत्तरार्द्ध में कृपाराम सूरदास नन्ददास रहीम मोहनलाल सुन्दर आदि नायिका भेद पर भक्ति की प्रेरणा से या वस ही कुछ तिल चुक थ। गोपा एव करनस अलकार-सम्बन्धी कुछ शास्त्रीय रचनाएँ प्रस्तुत कर चुक थ। इन रचनाओं में आचामत्व-सम्बन्धी जो प्रारम्भिक प्रयत्न मिलता है, उसक पीछे भक्ति की प्रेरणा का यत्क अयत्क सूत्र मिल हा जाता है। बंगवपूर्व आचार्यों में नायक-नायिका भेद और अनकार निरूपण की दिशाओं में कुछ प्रगति की। इनमें से भी प्रथम को कवि-मुलन भावात्मकता और विषय की रसात्मकता का कारण विशेष स्फाति और विसृति मिली। आचार्य केशव के प्रयत्न में जा प्रौढता आई उसने आचार्यत्व का क्षेत्र का पर्याप्त विस्तार किया। केवल व आचार्यत्व का प्रमुख आधार-स्तम्भ तो शृंगार और अलकार ही रहे पर सामान्यतः इसका क्षेत्र में प्रायः सभी का योग था। केवल व आचार्यत्व की सीमाएँ निर्दिष्ट करने में उनके व्यक्तित्व और युगचि का विशेष हाथ रहा। अतः प्रस्तुत प्रकाश में तत्कालीन रचि केवल व व्यक्तित्व और उनके काव्यास्त्रीय क्षेत्र का निवचन अभीष्ट है।

### तत्कालीन अभिरुचि

पूर्व मध्यकाल और उत्तर मध्यकाल की देहली पर आचार्य केशव की स्थिति है। हिंदी साहित्य की दृष्टि से पूर्व मध्यकाल की प्रमुख विशेषता आचारमूलक धर्म और बुद्धिवादी दशन की भावात्मक सत्कारिता मानी जा सकता है। धर्म की भावात्मक परिणति ने धर्म और साहित्य का गठबंधन कर लिया था। इस प्रवृत्ति में एक प्रतिक्रिया की तीव्रता और एक आंदोलन का बल था। इस आंदोलन ने युगचि का निर्माण किया। निगुण काव्य में बौद्धिकता सणन-मदन, योगाचार या भद्रतवादी दशन की चेतना के रूप में कुछ रही पर प्रधान स्वर भावात्मक ही रहा। ऊपर से बौद्धिक उगने वाले समस्त तक भावात्मक प्रभाव और बल ब्रह्म लिए हुए हैं। राम-साहित्य में नविकता और व्यापक सामाजिक आदर्शों की चेतना का रूप में यत्किंचित् बौद्धिकता बनी रनी पर अदिकाण भावात्मक ही रहा। कृष्णकाव्य में भावात्मकता चरम कोटि की पहुँच गई बौद्धिकता का सभी अवकाश नुप्त होन लग। रामकाव्य धारा में नविकता या धार्मिकता काव्य का सतह पर स्पष्ट मलकती थी। धार्मिकता और काव्य में अमद की स्थिति

नहीं आई थी। कृष्णकाव्य में साधन साध्य काव्य और अध्यात्म का भेद समाप्त हो गया था। काव्य का रसशास्त्रीयपक्ष आध्यात्मिक साधना से और भावपक्ष साध्य से घुलमिलकर एक हो गए। भक्ति साधना को रसशास्त्रीय रूप बंगाल के बण्णव आचाय दे चुके थे। शृंगार के स्थान पर हरि शृंगार की स्थापना हो गई थी। शृंगार के रसराजत्व की परंपरा से अनुप्राणित, एक हरि शृंगार शास्त्र बनन और प्रचलित होने लगा। इस प्रकार केशव से बहुत पहले ही भक्ति आंदोलन की साहित्यिक परिणति काव्यशास्त्रीय संस्कार ग्रहण करने लगी थी। आगे चलकर भक्तिवादी लक्ष्य-साहित्य में लक्षण निरूपण के रोडों की सड़क नहीं सुनाई पड़ती है। लक्ष्य-साहित्य में लक्षण का सद्भाषितिक पक्ष निमज्जित था। पर अव्यक्त रूप से युग रचि एक और शृंगार से और दूसरी ओर प्रच्छन्न शास्त्रीय निदातो से प्रभावित अवश्य होने लगी। इस नवोदित मध्यकालीन अभिरचि का सम्बन्ध राजवग से सीधा नहीं था। इसका रूप छनकर जन-जीवन का स्पष्ट अवश्य करने लगा था। जन से सस्पृष्ट होने पर ही अभिरचि व्यक्ति को सीमाओं से निकलकर युगयापी होती है। जयदेव ने जिस शृंगार-वृत्ति को हरि शृंगार का रूप देने के लिए काव्य शास्त्रीय और कामशास्त्रीय स्फीति प्रदान की जीवगोस्वामी और रूपगोस्वामी ने स्पष्टतः जिसको काव्यशास्त्रीय लक्षणों में बाधकर रखा, हिन्दी के रस संप्रदायी कवियों ने जिस शृंगार को प्रचुर लक्ष्य साहित्य दिया उसने यदि युगरचि को गहराई से प्रभावित किया तो आश्चर्य की बात नहीं है। इसके प्रभाव में रामशास्त्र के रसिक संप्रदाय भी आ गए। पर जन मन में यह शृंगार रचि कृष्ण के आघार पर ही बढती पनपती रही। राधा-कृष्ण जैसे भक्ति के प्रतीक शृंगार प्रतीक बन गए। शृंगार की अनौकिक परिणति में ही नहीं, उसकी लौकिक परिणतिवाले साहित्य और लोक साहित्य में भी इन प्रतीकों का प्रयोग होता रहा। इस प्रकार एक व्यापक अभिरचि साहित्य में अभिव्यक्ति पाने लगी। पर इसके साथ-साथ एक क्षीण अवतन अध्यात्म भावना अवश्य रही। अध्यात्म का सहारा पाकर अनौलता भी उदात्तीकृत हो गई थी। विधि निषेधमय नतिकता से संप्रस्त सामूहिक अवचतन उदात्तीकृत अभिव्यक्ति को पाकर मुष्ट हो रहा था।

आध्यात्मिक शृंगार की धारा तो प्रबल थी ही तो तीन शक्तियों में लौकिक शृंगार की अविरल धारा भी पूरे वग के साथ प्रवाहित होने लगी। कभी वीरगाथाओं के रोमास से उसका शृंगार हुआ तो कभी लौकिक प्रेमगाथाओं के रूप में इसका विस्फोट हुआ। शृंगार की एक सुदीर्घ परम्परा ने युगरचि का एक सुनिश्चित दिग्ग प्रदान की। लौकिक शृंगार कभी आध्यात्मिक ऊँचाइयों पर रमता जाता था कभी आध्यात्मिक भावना लौकिक शृंगार से भावेन और तीव्रता उधार लती थी। मध्यकाल की मही कद्राय प्रवृत्ति बन गई। समस्त विश्व में ही मध्यकालीन संस्कृति शृंगार मूलक भावार्मकता से उद्बलित थी।

इस व्यापक जगति का राज संस्करण भी प्रस्तुत होने लगा। एक बार भक्तिमूलक शृंगार के प्लावन में जो लौकिक शृंगार भावना लीन हो गई थी,

राजाश्रय की छाया में फिर उलहने लगी। राजवग की क्षतिपूरक प्रवृत्ति विभिन्न रूप ग्रहण कर रही थी। सुदरी अब शीघ्र का साध्य नहीं हो सकती थी। युद्धों की विभीषिका अब नारी अपहरण के रूप में घटित नहीं हो सकती थी। विदेशी आसन के प्रति विद्रोह भावना से चुकी थी या अत्यन्त क्षीण हो गई थी। भक्ति की भावना ने शृंगार की जो रूप प्रतिष्ठा की थी उससे नवीन प्रतीक लेकर लौकिक शृंगार नव जीवन ग्रहण कर चुका था। इससे राजरुचि भी अप्रभावित नहीं रह सकती थी। नवीन आध्यात्मिक प्रेम प्रतीकों की आड में अश्लील शृंगार सामाजिक स्वीकृति में पान लगा था। राजवग का पराजित मन उन्मुक्त प्रेम और शृंगार के अवसरों को प्रश्रय देने लगा था। यह तो एक सामान्य स्थिति थी जो राजरुचि की पट भूमिका तयार कर रही थी। वस्तुतः राजरुचि और तदगत शृंगार का निर्माण अथवा स्रोतों से हुआ। गतिवालीन राजवर्गीय विलास वृत्ति और उसके विकास विस्तार के लिए प्राप्त अवकाश नवीन ललित भाव्यव्यक्तियों को जन्म दे रहा था। इनमें सबसे प्रथम आवश्यकता थी विनोद और विलास के आस्वाद्य क्षणों को विस्तृत बनाने की। आस्वाद के क्षण का विस्तार अवकाश प्राप्त उच्चवर्ग की प्रमुख मनोवैज्ञानिक आवश्यकता होती है। आस्वाद के क्षण का विस्तार व्यावहारिक रूप से भी हो सकता है और सद्धान्तिक रूप से भी। दोनों ही दिशा विस्तारों के लिए शास्त्रों की रचना हुई। इन शास्त्रों ने आस्वाद की प्रक्रिया को एक विधि पद्धति में ढालकर इसे विनियमित किया। कामशास्त्र ने विलास-क्षण के व्यावहारिक या त्रियात्मक पक्ष को विस्तार दिया और काव्यशास्त्र उस क्षण को शुद्ध मनोवैज्ञानिक पद्धति से विस्तृत करता था। समस्त व्यवहार पक्ष काव्यशास्त्रीय पद्धति से नियोजित एक मन स्थिति में ही स्फीत होता है। काव्यशास्त्र विनोदेन का यही रहस्य है। भक्तिगत शृंगार विलास के क्षणों को भी विस्तृत करने के लिए शास्त्र का सहारा लिया गया था। राजरुचि का यह शास्त्रीय संस्कार ही उसे जनरुचि से विनिर्दिष्ट कर देता है।

इस राजरुचि के कारण रीतिवालीन आचायत्व कुछ विस्तृत हुआ। कामशास्त्र का पुत्र काव्यशास्त्रीय शृंगार विधान के लिए अनिवार्य-सा हो गया। कामशास्त्र नारी के मानसिक और शारीरिक सौन्दर्य-स्तरों को त्रमण उदघाटित करने सुप्त सौन्दर्य को जागृत करने और उसके भोग की त्रियाओं को विलम्बित करने का शास्त्र है। रतिचष्टाओं का कामशास्त्रीय विवरण भावना और उत्तजना के लिए आवश्यक हो गया। राजरुचि से अभिव्यक्ति पक्ष भी प्रभावित हुआ। कविता भी एक कामिनी है। राजशास्त्र न कभी काव्य-मुख्य की सांग कल्पना की थी अब कविता कामिनी रूप में ही स्वीकार्य थी। जिन प्रकार नारी प्रकृति का चन्द्र शृंगार है उसी प्रकार कविता की प्रकृति भी शृंगारमय माना जा गई। नारी सौन्दर्य के उपभाग और आस्वाद्य को यदि शास्त्रीय पद्धति से नियोजित किया गया और समस्त उपभोग त्रिया को विलम्बित करने की चेष्टा की गई तो कविता कामिनी के आस्वाद को भी विलम्बित करने की आवश्यकता हुई। परिणाम यह हुआ कि रस और ध्वनि जैसे

सूक्ष्म काव्यशास्त्रीय सिद्धांतों की उपस्था हुई। शास्त्र व उन अंगों का पुनराख्यान किया जान लगा, जो काव्य व 'रूप' को शास्त्रीय आवरणों में ढक देते थे। अंगों का आवरण हटते जाए वस्तु सौंदर्य की अंगों प्राप्ति और उसका विलिखित आस्वाद मिल सके। सामंतीय अभिरुचि में 'रूप' की उलभना व प्रति एक आग्रह अनिवार्य रूप से होता है। जिस प्रकार नारी का स्थूल सौंदर्य राजवर्ग की आँखों में मंदिरों की भाँति ढल गया था उसी प्रकार काव्य के बाह्य रूप की चमत्कारपूर्ण अस्तित्वों व लिए उनका वान आवृत्त थे।

अलंकारशास्त्र ने शलो की आवश्यकता को पूरा किया। अलंकार जहाँ एक ओर सौंदर्याधारक था वहाँ दूसरी ओर राजरुचि की सृष्टि व लिए समुचित चमत्कार और आस्वाद व क्षण का विस्तार भी समक द्वारा ही सम्भव था। चमत्कार भी राजरुचि की एक विशेषता होती है। चमत्कार-सम्बन्धी रुचि को भी छोटा समझा जा सकता है। चमत्कार वस्तु-सम्बन्धी भी हो सकता है और रूपगत भी। चमत्कार का मूल वचिन्मय है। एक प्रकार की असाधारणता चाहिए जो तत्काल चमत्कृत कर दे। चमत्कार जब गलोगत होता है तो अर्थ निरपेक्ष होकर भी प्रफुल्लित कर सकता है। ध्वन्यात्मक नादात्मक या मात्र शब्दों व आघार पर उत्पन्न होनेवाला चमत्कार अर्थबोध की अपेक्षा नहीं रखता। अर्थबोध से पूर्व का चमत्कार भी विविध अलंकार विधान पर आघत होता है। अर्थबोध की प्रक्रिया भी चमत्कारपूर्ण हो सकती है। चमत्कार अपने आप में यदि लक्ष्य बन जाए तो अर्थ सङ्कुचित जाना जाता है। शुद्ध चमत्कार अर्थबोध व लिए एक जिज्ञासा उत्पन्न करता है। अर्थबोध की बौद्धिक प्रक्रिया भी चमत्कार व कारण आस्वाद्य बन जाती है। चमत्कारजय सृष्टि की प्रवृत्ति बौद्धिक होती है। इस प्रकार जटिल अलंकार विधान राजरुचि से संबद्ध होता गया। वस्तुगत चमत्कार की दृष्टि में रुद्ध और विस्तृत घनन और विवरणों की भीड़ जुट गई। इसके द्वारा अपनी बहुता प्रदर्शित करके कवि भी एक बौद्धिक सृष्टि प्राप्त करता था और बहु ज्ञान पर आघातित काव्यशास्त्र राजवर्ग को इसलिए तुष्ट करता था कि वह इसके कारण साधारण जन से अपने को विनिष्ट अनुभव करता था। उसका अभिजात्य एक विनिष्ट गली और असाधारण आस्वाद प्रक्रिया से मनुष्ट होता था। चमत्कार की प्रवृत्ति और अभिजात भावना ने एक बौद्धिक प्रक्रिया को प्रोत्साहन दिया। भक्ति साहित्य की सघन भावात्मकता जिस आस्वाद में शक्य थी वह सीमित हो गई। बौद्धिक उपकरण सामंतीय रुचि का वनिष्ट्य स्थापित कर देते हैं।

भक्ति-शृंगार व आस्वाद व साथ एक धार्मिक भावना मलग्न थी। विश्वास व माध्यम में रमास्वाद होता था। सामंतीय रुचि शास्त्रीय पद्धति व बौद्धिक उपकरणों पर आघारित थी। मौलिक ज्ञान या चिन्तन का उत्तर मध्यकाल में अभाव हुआ था। भक्तिकाल में भी बौद्धिक उपकरण परंपरा से लिए गए थे। फिर भी मौलिक संस्कार सभी पुरातन उपकरणों का हुमा। रीतिकालीन बौद्धिक उपकरण भी परंपरा से उधार लिए गए। उनका सूचीबद्ध या सूचनागत रूप प्रकट हुआ कोई मौलिक संस्कार उनका नहीं किया गया। काव्य में बौद्धिक चमत्कार और भावुकता में कभी

सतुलन रहता था कभी विगड़ जाता था। धीरे धीरे बौद्धिक चमत्कार प्रबल होता गया। इस क्षण में प्रतियोगिता भी बढ़ती गई। मौनिक चिंतन का अभाव में परिगणन की वृत्ति जन्म लेती है। बौद्धिक चमत्कार की इच्छा और वास्तविक ज्ञान या चिंतन का अभाव स्वातः सुखाय की सरलता को समाप्त कर देता है। युव समाज के प्रति एक चेतना रहती है जो कविकर्म की स्वाभाविकता को भंग करती जाती है। यह चेतना एक धीरे निर्दोष काय रचना की अनिवायता उत्पन्न करती है दूसरी ओर शास्त्राधारित चमत्कार की ओर उसे प्रवृत्त करती है। राजवग की बौद्धिक चेतना न तो विरोध तीव्र ही थी और न उसके व्यक्तित्व का अनिवाय भंग ही। फिर भी एक मनोवैज्ञानिक छल था जो बौद्धिक उपकरणों को जुटाना चाहता था। चमत्कार की प्रवृत्ति का यही संक्षिप्त विश्लेषण है। राजरुचि की यह एक सीमा बन गई।

इस व्याख्या के आधार पर सक्षय में राजरुचि के मूल उपादान ये ठहरते हैं

- १ विलास शृंगार के क्षण का विस्तार।
- २ आस्वाद प्रक्रिया को विलंबित करना।
- ३ चमत्कारप्रियता अलंकारप्रियता।

इस राजरुचि का प्रतिनिधित्व केगव के आशयदाता इन्द्रजीतसिंह में मिलता है। इन्द्रजीतसिंह को शास्त्रीय संगीत और नृत्य में विशेष रुचि थी। देग भर के प्रसिद्ध संगीतज्ञों और वेद्याओं को उनके यहाँ आश्रय मिलता था।<sup>१</sup> इन संगीत-नृत्य निपुणा वेद्याओं के सम्बन्ध में केगव ने कविप्रिया में कई छन्द लिखे हैं। इन्द्रजीतसिंह की प्रतिवादी विलासिता भी इस वातावरण से प्रकट होती है। इन्द्रजीतसिंह स्वयं भी कविता करते थे और कवियों का सम्मान भी करते थे। काव्यशास्त्र के प्रति भी उनका विचार आकर्षण था। उनके नाम से केगव ने 'रसिकप्रिया' की रचना की।<sup>२</sup> इस सम्पन्न में इन्द्रजीतसिंह की शृंगार वृत्ति को सतीय भी मिला और अपने को उसने गौरवाचित भी अनुभव किया। शृंगार की रुचि का पूर्ण प्रतिनिधित्व इस रचना में मिलता है। इसकी आग्रहपूर्ण प्रेरणा इन्द्रजीतसिंह ने ही दी।<sup>३</sup> इस राजरुचि का साथ धार्मिक शृंगार भावना का समावेश करके एक उदात्त भूमिका तैयार कर दी गई है।

### आचाय केगव का व्यक्तित्व

केगव ब्राह्मण थे और उनके जात्याभिमान के अनेक कथन मिलते हैं। वणव

१ कर्दो अरातौ राज के सम्पन्न सब संगीत।

लको दमन इत लो इन्द्रजीत रजनीत ॥ कविप्रिया १४१

इति गीत-नृत्य-शास्त्र-ज्ञान-इन्द्रजीत-विरचित-रसिकप्रिया ॥

३ इति कवि-कर्म-शास्त्र-सु-कोन्दा-धन-सुन्दु।

सब सुन्द दे करि श्री कृष्ण 'रसिकप्रिया करि दहु ॥ रसिक ११२

४ द्रष्टव्य रानवन्धिका १४-५ २०१२३ २११५ १६ २ ३३१० ३४४५ आदि।

संस्कृतिक विकास-काल में ब्राह्मण की स्थिति कुछ अस्थिर-सी हो गई थी। जाति-भेद का विरोधी स्वर ब्राह्मण को क्षति पहुँचा रहा था। जिस संस्कृत ज्ञान का वह धनी था, उसकी अपेक्षा लोकभाषा और लोक साहित्य की प्रतिष्ठा अधिक हो गई थी। यज्ञ-यागादि पर भक्ति-भावना विजय प्राप्त कर रही थी। बलपूर्वक धर्म परिवर्तन के कारण वंश-युद्धों का अन्त हो गया था। जिससे कि विद्वयी यवना से सुरक्षित रह सकें और अपनी जीविका भी चला सकें। संस्कृत का राजाश्रय दूरी राजाश्रयों के दरबारों में प्रायः समाप्त हो गया था।<sup>१</sup> इस स्थिति में परंपरागत पंडित मण्डली का छिन्न भिन्न हो जाना स्वाभाविक था। इसकी प्रतिक्रिया में काशी, मिथिला, नवद्वीप या पूना में संस्कृतिक केंद्र बने। नवीन स्मृतियों का प्रणयन हुआ। पर प्रतिक्रिया की समस्त दुरलताएँ इन केंद्रों पर मिलती हैं। ब्राह्मण न दूरभागी भाग भी पकड़ा। निराश्रित पंडित मण्डली पुरोहिती या पौराणिकी वृत्ति के द्वारा आजीविका की व्यवस्था कर रही थी। इस परिवर्तित रूप में उसने नवीन राज्यों में भी आश्रय पान की चेष्टा की। वह संस्कृतिक भाषा पर उतर आया। उसका हाथ से समाज का नतृत्व छूट गया। ब्राह्मण वृत्ति के साथ चारण-वृत्ति का मिश्रण किया। शास्त्रीय शृंगार की गायिका से आश्रयदाता का मनोरंजन और एतदर्थ दान उसकी प्राथमिक साधना का लक्ष्य बन गया। कविप्रिया में उन्होंने स्पष्ट कथन किया है कि उनके पितामह पिता आदि राजाओं के श्रेष्ठभाजन रहे।<sup>२</sup> कविव्यवस्था का अग्रज बनभद्र राजा मधुकर गहलके वचन से ही पुराण-वाचक सुनाया करते थे। बुद्ध ज्ञानवादी परम्परा से विच्छिन्न होकर ब्राह्मण न पुराण-वाचक का स्थान ग्रहण किया। पुराणों तत्कालीन सांस्कृतिक जागरण का प्रमुख केंद्र बन गया था। गुप्त-युग से ही पुराण-नामकी साहित्यिक छातों में प्रमुख हो गई थी। कविव्यवस्था के युग में भी साहित्यिक वस्तु प्रेरणा एवं परिवर्तन किसी न किसी रूप में पुराणाश्रित रहता था। जन परम्परा न भी पुराणों की नवमूर्ति की थी। पुराणों ने समस्त भारत को सांस्कृतिक एकभूतता प्रदान करने में महत्त्वपूर्ण योग दिया था। हिन्दू-संस्कृति के संरक्षण में भी इस परम्परा का महत्त्व था। इसी का आश्रय ग्रहण करके मध्ययुगीन ब्राह्मण वंश समाज में उच्च स्थान प्राप्त करने लगा। पुराणवाचक मध्ययुग का प्रमुख व्यक्तित्व बन गया। इसका सम्बन्ध जनता से भी था और राजवत्त से भी। जनपदीय भाषा के माध्यम से पुराणवाचक न पौराणिक संस्कृति का मंदार पर पर पहुँचाया। इसी रूप में कविव्यवस्था जस संस्कृत पंडितों के वंशधरों को राज्याश्रय प्राप्त हुआ। कविव्यवस्था के पितामह कृष्णदत्त को राजा अन्ननाथ ने पौराणिकी वृत्ति प्रदान की थी।<sup>३</sup> उस समय में यही वृत्ति कविव्यवस्था के धर्म में चली आई। बनभद्र भी यही वाप

१ अक्षर और अन्य सुगत राज्यों के अन्तर्गत बुद्ध संस्कृतिक संस्कृतिक अक्षरों से, इनका निरक्षण प्रथम प्रकाश में किया जा चुका है।

२ कविप्रिया २। १६

३ पुत्र भय हरिनाथ के जन्म-संज्ञक सुम वरा।

करते थे।<sup>१</sup> इस प्रकार कंगव का वंग सस्कृत परंपरा को अक्षुण्ण रखने की चेष्टा कर रहा था और शास्त्रीय एवं पौराणिक ज्ञान से संपन्न था।

कंगव के वंग का सम्बंध ब्रज और राजस्थान के सीमावर्ती प्रदेश से है। वहां से उनके पूर्वज औरछा में आश्रय लेने के लिए आए।<sup>२</sup> एक घोर तो राजवंश से इस वंग का सम्बंध था। दूसरी ओर ब्रज के वणव सम्प्रदाय से यह परिवार संबद्ध था। कंगव का बल्लभ सम्प्रदाय से सम्बंध होना सिद्ध है। समस्त विद्वलनायजी एक मंत्रगुरु थे। उनकी प्रशस्ति में उहाने एक छंद भी लिखा है

हरि इदं बल गोविंद विभु पायक सातानाय ।

लोकप पिठल सखधर गृहध्वज रघुनाथ ॥<sup>३</sup>

इस प्रकार वणव संस्कार कंगव में दृष्ट थे। यह सर्वविदित है कि गो० विद्वलनायजी ने सम्प्रदाय में शृंगार को प्रमुख स्थान दिया था। जहां बल्लभाचार्यजी ने वात्सल्य पर बल दिया वहां विद्वलनायजी ने मधुरावृत्ति को सम्प्रदाय में प्रविष्ट कराया। कंगव की शृंगार वृत्ति को इस धार्मिक दृष्टि ने भी प्रभावित किया।

अपने मूलस्थान से कंगव के वंगज औरछा आए। औरछा का राजवंश सांस्कृतिक दृष्टि से बड़ा गौरवगील था। गढ़ कुडार (औरछा) के बुदल रसा की पदहवीं गती से हिन्दू-संस्कृति का प्रतिनिधित्व करते आ रहे थे। यह राज्य साहित्य संगीत एवं कलाओं का केंद्र बन गया था। अकबर के नवरत्नों में से दी रत्न रामचंद्र बुधेला ने ही अकबर को दिए थे—वीरवत् और तानसेन। गढ़ कुडार (औरछा) के बुदला ने वणव धर्म का स्वीकार किया। इसी वंग की एक शाखा ने चित्रकूट और अयोध्या के वणव मंदिरों का निर्माण कराया। यदि कंगव के वंगजों ने इस राज्य में आश्रय ग्रहण किया तो आश्चर्य की बात नहीं। यह राज्य मुगल सल्तनत रहने की परंपरा का भी निर्वाह करता रहा। वीरसिंहदेव इस परंपरा का एक जागृतव्यमान दीप है। कंगव के व्यक्तित्व निर्माण में औरछा के राजवंश की स्थिति ने भी योगदान दिया। एक ओर उनके अर्जुनसिंह के विलास क्षणा को गुदगुदाना पहा और दूसरी ओर वीरसिंहदेव जय स्वाभिमानो धर्माभिमानो वीर के कार्यों को वाणी देनी पड़ी। एक ओर उन्हें धर्म शिक्षा का काय करना पड़ा और दूसरी ओर कविशिक्षा का। मंत्रगुरु<sup>४</sup>

समा मा इ सम्मान की जाने गंग अमय ॥

जिनकी वृत्त पुरान की दीनी रागा रत्न ।

जिनके कमीनाथ मुन मामे मुद्धि समु ॥ कविप्रिया २१३ १४

१ कालक तै मधुमाहि नथ निनाय मुग्गे पुरान । की २।१६

गारलाल तिवरी, बुधुनरत्न का इतिहास पृ ११४

२ कविप्रिया १६।१६

४ वीरभक्तवत्सल की आकांक्षा का निबन्धनात्मक के मूल में है—

दधाराजिन स्व करन भक्ति हरि जन वच श्रंगा ।

भित्त न लखत विहार न्दाप नर दयपि गंगा ॥ विधानगीता १। ८

५ गुरु करि मन्दा इति तन मन कृपा विचरि । कविप्रिया २।२

राजसखा, मन्त्री—सभी रूपा म केशव को अपने को ढालना पडा। इस प्रकार कविवे का यत्तित्व बहुमुखी हो गया। उन्होंने अपने गुणा के कारण श्रौरछा म ही नही अयत्र भी सम्मान प्राप्त किया। कविवे का सम्प्र घ वडे लोगो से तो था ही पतिराम, चन्द्र जिस सामाय लोगो से भी उनका हित था। इनपर कुछ छंद लिखकर इनको भी कविवे न अमर बनाया। कामसना और राय प्रवीण जसी सामायए भी केशव के सस्पर्श स अमर हो गयीं। यह केशव की उदारता को ही प्रकट करने वाले उल्लेख हैं।

कविवे परपरा से कविवे की बहुगता का वातावरण मिला। केशवदासजी क कविवे म पाण्डित्य की परपरा पीडियो से चली आ रही थी। भावप्रकाश नामक ग्रन्थ इनके ही एक पूवज भाऊराम की रचना है। इनके पिताजी काशीनाथ मिश्र न ज्योतिष की प्रसिद्ध पुस्तक गीघ्ररोध का प्रणयन किया था। कुछ लागो की सम्मति मे 'प्रसन्न राघव के प्रसिद्ध अलक गयदेव इनक पूवज थे। इनक बड भाई बलभद्र मिश्र हिंदी के अछू विद्वान थे। उन्होंने नखगिख 'भागवत भाष्य तथा हनुमन्ताटक टीका' आदि की रचना की। इस प्रकार कविवे बहुमुखी पाण्डित्य और ज्ञान दरवागे से सबद कविवे जस यत्तित्ववाने सभी कवियो को आवश्यक था। धर्म ज्योतिष, सगोत भूगोल बधक वनस्पति पुराण राजनीति अश्व परीक्षा कामशास्त्र आदि शास्त्रो का कविवे को सामाय यावहारिक ज्ञान था। काव्यशास्त्र के वे विगप ज्ञाता थे और इस क्षेत्र म उनकी रुचि भी बढी चढी थी। समस्त पाण्डित्य जहा उनको पर्याप्त राज-सम्मान से विभूषित करा गया, वहा उनकी काव्यशास्त्रीय साधना को भी प्रभावित करता रहा। उमर उदाहरण भाग को इस बहुगता न समृद्ध बनाया। काव्यशास्त्रीय पद्धति का विस्तार भी इसके द्वारा हुआ।

सामाय और विगिष्ट युगरुचि के सदभ म भी कविवे का यत्तित्व का समझा जा सकता है। कविवे के आचायत्व के क्षेत्र का नियमण युगरुचि और उनक यत्तित्व के द्वारा हुआ। युगरुचि ने कवियग प्रार्थी युवका की शास्त्रीय आवश्यकताए उत्पन्न कर दी। कविवे का व्यत्तित्व मध्यकालीन संस्कृत पंडित का यत्तित्व था। इस काल के संस्कृत पंडित को अस्तित्व रक्षा के लिए संस्कृत ज्ञान को सचित करना भी आवश्यक था और उसको भाषान्तरित करना भी। पाण्डित्य की वास्तविक गहराई समाप्त हो गई थी। यह मात्र कविवे और प्रद्वान की वस्तु रह गई थी। उत्तरकालीन संस्कृत

१ इन्द्रजीत के बडे भाई रामराह ने केशव को मिश्र आर मन्त्री मममा—

इन्द्रजीत के हेतु तव राजा राम मुगान।

माया मन्त्री मिश्र के 'केशव' म प्रमान ॥ कविप्रिया २२१

२ दक्षिण लटक की 'केशव' म उनका साहित्य वृत्ति, पृ ४६

३ केशव का पद्मीनी मुनार था।

४ दक्ष राजा धीरदल का दरबान था।

५ दक्ष राजा रामसिध की वरवा थी।

६ कविप्रिया की दगा में इन्द्रजीतसिंह की इस वरणा को मूल प्रेरणा केशव ने रवीकार की है।

७ 'केशव और उनका साहित्य' पृ० ३२



का यशास्त्र और श्रयसाहित्य अधिकाधिक चमत्कारवाणी हो गया था। पंडितवग म कायशास्त्र की एक परंपरा विधाम ल रही थी। भक्तकार का सक्षिप्ततम निरूपण तथा उदाहरण रचना म विनोप रूचि इस परंपरा की विंगपता थी। दूसरा पम शृंगार और नायिका निरूपण का विस्तार था। लक्षण और उगहरणों की मतिविति म चमत्कार पदगन किया जाता था। इस पंडितवग की मूल प्रवृत्ति प्रदगन की थी। कंगव का जम भी ऐस ही पंडितवग म हुआ।

इस पंडितवग को भी राजाथय की आकाशा थी। भक्त राजरुचि का भी इसे ध्यान रखना था। राजरुचि के अनुकूल इस वग के पास शास्त्रीय ज्ञान बगता और चमत्कारपूण काव्य था। रायश्रित कवि या तो आह्राण था या चारण। चारण राजा क जीवन का साथी था। उसकी वाणी म जादू था और उसे राजरुचि की परल थी। पर सस्कृत ज्ञान उसके पास नहीं था। उसका समस्त ज्ञान परम्परागत था। कायशास्त्र के क्षेत्र मे उसका योगदान नहीं रहा। क्षत्रिय जाति से चारण जाति का घनिष्ठ सम्बध रहा। राजा और चारण के बीच सखाभाव था। पर कंगव का व्यक्तित्व चारण से भिन्न था। वे एक सस्कृताभिमानी पंडित थ। उनको राजगुरु हाने का गौरव भी मिला था। सधि विग्रह म भी उनकी मत्रणा का मूल्य होता था। इस प्रकार कंगव के यत्तित्व मे आह्राणत्व और चारणत्व का समावेग था। उहोन अपने सस्कृत के शास्त्रज्ञान क आधार पर आचार्य क रूप मे प्रतिष्ठा प्राप्त की। चारणो की गली म उहाने प्रगस्तिया भी लिखीं। औरछा राज्य ने दिल्ली स जो राजनतिक सम्बध रख उनम भी कशव का हाथ था। इस प्रकार सामायत केशव का व्यक्तित्व बहुमुखी था।

जसा कि ऊपर कहा जा चुका है भक्ति के रस सप्रदाय शास्त्रीय सस्कार ग्रहण करने लग थ। कंगव का युत्पन यत्तित्व युग क प्रबल प्रवाह स झल्ला नहीं रह सकता था। लौकिक कवि भी युगधम स निरपेक्ष नहीं रह पाया। रायश्रित कवि भी अपने की बलात् इस शृंगार पारावार क किनारे पाता था। कंगव ने भी अपने व्यक्तित्व म हरि शृंगार क प्रति एक आग्रह पाया। आध्यात्मिक सस्कारो की अद्वजापृत अवस्था में कंगव ने हरि शृंगार म सभी रसों का समावेग कर दिया।<sup>१</sup> भक्तिकाव्य ने जो शृंगार प्रतीक प्रदान किए वे ही कंगव के शृंगार निरूपण के आधार बन गए। आध्यात्मिक दृष्टि स सभी रस एक मूल बद्र स नि सृत होत हैं। उमीम उनका विलय भी हो जाता है। यह दृष्टि गुद्ध काव्यशास्त्रीय न हाकर भक्तिमिश्रित है। रस-सम्बधी समस्त आचार्यत्व इसी दृष्टिकोण स प्रभावित था। यह युगधम की प्रेरणा थी। रायश्रित हाइ हुए भी कंगव न ल रणा क उदाहरणों का लौकिक प्रगस्ति स मुक्त रखा। यह कंगव क यत्तित्व की स्वच्छदता ही थी। शृंगार क रस राजत्व की शास्त्रीय-परम्परा क साथ भक्ति की प्रेरणा न मिलकर

<sup>१</sup> नवदूरम के भवदु तिनके भिन्न विवर।

केगव के व्यक्तित्व का प्रयोग गील बना दिया। उद्देश्य कथन में केगव ने रस विवचन का रसरोति बाध और स्वाथ एव पारमार्थिक लक्ष्या की प्राप्ति के लिए उद्दिष्ट कहा।<sup>१</sup> केगव का उद्देश्य एक श्रार जयदव तथा श्रय बगाली वृष्णव आचार्यों से मिलता है दूसरी ओर नन्ददास से। इस भक्ति की प्रेरणा ने केशव के रस-सम्बन्धी आचायत्व को बहुत प्रभावित किया। शृंगार के जिन श्रगों का भक्तिमूलक शृंगार शास्त्र में विस्तार हुआ था उनका विस्तार केशव ने भी किया। नायिका निरूपण के श्रारम्भ में जगनायक की नायिका उनकी दृष्टि में थी। इस प्रसंग का केगव ने रुचि से विस्तार किया है। भक्ति की रसरोति में नायिका निरूपण को प्रमुख स्थान प्राप्त था। भक्ति की प्रेरणा ने उन्हें मामाया के निरूपण से रोका। परकीया का लक्षण निरूपण भक्ति भावना से प्रेरित है

सब तें पर परसिद्ध जग ताकी प्रिया जु होइ ।

परकीया तासों कहैं परम पुराने लोइ ॥<sup>१</sup>

राधा वृष्ण की रति चेट्यामो का वणन करने के पदचात् केशव की भक्ति भावना उनकी अनुभव कराती है कि सम्भवतः उनसे कुछ घटता ही गई

राधा राधा रमन के कहै जयामति हाव ।

ठिठई 'केसवराय' की छनियो कवि कबिराय ॥<sup>२</sup>

विप्रलभ शृंगारात्तगत दग दगाभो का वणन करते-करते, 'मरण का निरूपण करते समय केशव की कल्पना ठिठक जाती है

मरन सु 'केसवदास' प चरयो जाइ न निप्र ।

धजर धमर जस कहि कहों कसैं प्रम चरित्र ॥<sup>३</sup>

भक्ति भावना की रक्षा में केगव को पूणता और अपूणता का ध्यान भी नहीं रहना। इन कुछ उदाहरणों में यह स्पष्ट हो जाता है कि भक्ति के प्रभाव ने केगव को रस-सम्बन्धी आचायत्व को प्रभावित किया था। इस प्रेरणा से केगव ने कुछ श्रगा को छोड़ दिया और कुछ का विस्तार किया। नायिका भेद का प्रकरण सस्त्रन के उत्तरवालीन आचायत्व में प्रमुख स्थान हो गया था। वृष्णप्रिया की भावना भी नायिका भेद का आश्रय देने लगी थी। केगव ने भी नायिका भेद का विस्तार में पर्याप्त रुचि ली है। सखियों का भी वृष्ण-लीलाभो में प्रमुख स्थान था। सखी प्रकरण को भी केगव ने रसिकप्रिया के दो प्रभावों में दिया है। सखी समाज की महत्ता भक्ति के रसिक सप्रदायों में बहुत अधिक थी। इन सप्रदायों में 'तत्सुखी भावना सर्वोच्च थी। इनका राम में दर्शिका या सहायिका का रूप में प्रवण था। सखियों में भक्ति-सम्बन्धी आदर्श की स्थापना हो गई थी। इस रूप में सखियों की

१ काँडे रति मनि अनि परै जानै सब रस रीति ।

रवाराथ परमाराथ रहैं, रसिकप्रिया की प्रीति ॥—के० प्र०, पृ० ६३ (म० १)

२ के० प्र०, पृ० १८ (रा० १)

३ के० प्र०, पृ० ३६

४ के० प्र०, पृ० ५५

कल्पना कंगव क ध्यान म थी । अतः उन्होंने सतियो की यह स्थिति बतलाई

केसवदास' प्रवास को कह्यो यथा भति साज ।

राधा हरि बाधा हरन बरनों सखी समाज ॥'

दगन और मिलन का विस्तार' भी भक्ति प्रेरित प्रतीत होता है । इन प्रसंग पर कंगव क समय मे प्रचुर लक्ष्य साहित्य प्रस्तुत हो गया था । उसी प्रकार विप्रलम्भ क रूप भी भक्ति-साहित्य म प्रतिष्ठित थे । पूर्वानुराग मान आदि पर भी पर्याप्त भक्ति साहित्य बन चुका था । कंगव ने विप्रलम्भ क इन अंगों का रुचिपूर्वक विस्तार किया है । मान का विवेचन रसिकप्रिया क नौवें और दसवें प्रभावों म किया है । इनक विस्तार म भी भक्ति की प्रेरणा प्रतीत होती ह । इस प्रकार कंगव क व्यक्तित्व का भक्तिपक्ष रस निरूपण म स्पष्टतः प्रतिबिंबित है । युग का प्रबल प्रभाव इस रूप म प्रकट हुआ है । रसिकप्रिया क अध्ययन क फल का कथन भी भक्तिमूलक प्रतीत होता है । उसको पढ़कर सभी वर्णों और सभी आश्रमों क व्यक्तियों को सुख मिलगा

इहि बिधि स्याम सिंगार रस बहु बिधि बरनो लोड ।

चारि बरन चहुँ आश्रमनि कहत सुनत सुख होइ ॥'

कंगव क शृंगार निरूपण पर कामगास्त्रीय प्रभाव कंगव क व्यक्तित्व क दूसरे पक्ष को प्रदर्शित करता है । राजरुचि स कंगव का व्यक्तित्व प्रभावित था । राजरुचि विलास रत थी । विलास के क्षणों के विस्तार म कामगास्त्र सहायक था । काव्यगास्त्र और कामगास्त्र का संयोग आचायत्व की परम्परा म पहले से हो चुका था । नायिका भेद का कामगास्त्रीय आधार स्वयं भरत ने स्वीकार किया है । कामगास्त्र सम्बन्धी अनेक प्रकरण भरत के नाट्यगास्त्र म ही प्रविष्ट हो गए थे । प्रेममूचक इंगित राजाभा तथा सामायजना द्वारा नारियों को बग म करने क उपाय वामक (सम्भोग) के कारण सम्भोग का समय नायक का स्वागत सम्भोग स पूव क आयोजन सम्भोग क समय स्त्री पुरुष का पारस्परिक व्यवहार मान क प्रकार आदि ऐसे ही विषय हैं ।' स्ट्रट न भी कामगास्त्रीय विधि विधान को नायिका निरूपण का भाग बनाया । कंगव न राजरुचि का ध्यान रखत हुए काममूय रतिरहस्य अंगरग आदि का आधार लिया । मित्रन दपतिचष्टा बहिरति अन्तरति पोढाग शृंगार आदि क प्रसंग कंगव क आचायत्व क कामगास्त्रीय विस्तार को स्पष्ट करत हैं । इस प्रकार कंगव का व्यक्तित्व काव्यगास्त्र क विस्तार क लिए उत्तरदायी है । एक ओर उनक आचायत्व को भक्ति न प्रभावित किया और दूसरी ओर कामगास्त्र न ।

१ के अ पृ ६८

२ रसिकप्रिया प्रभाव ४५

३ के अ पृ ८०

४ नाट्यगास्त्र २ १५१ २०१२०१ २०१२ ४ २३५८

५ नाट्यगास्त्र २४१५५० १५८ १६५ १६६ २५१६५-७, २२२ २३ ३०१

२ १२ २२८ २२६ २३१ २४६, २५ २६५ ८१ १६५

केगव व कवि शिक्षक-यत्कित्व की यही सक्षिप्त पृष्ठभूमि है। आचाय के रूप में उनकी गतियो उनकी दुःखताओं, विषयों की विस्तृति और स्फीति के लिए यही पृष्ठभूमि अधिकांगत उत्तरदायी है। मिश्रब-धुआ ने केगव का भाषा का भासह एव मम्मट कहा है।<sup>१</sup> कवि शिक्षक के रूप में केगव का यत्कित्व विगान और उगार प्रतीत हाता है। उहोन सामाय कोटि के बाल युवका को ध्यान में रखकर कवि शिक्षाकर्म आरम्भ किया। उनकी दृष्टि में रायप्रवीण और पतिराम जैसे वाचा-यालक थे जो कविता करने में रुचि रखते थे। परन्तु सम्बन्ध में पर्याप्त शिक्षा के अभाव में उनकी इच्छा अपूर्ण रह जाती थी। उनकी आवश्यकता केगव की दृष्टि में थी। उनका जो प्रतिभा मिली थी उसका पर्याप्त विकास अभ्यास के बिना नहीं हो पाता था। इसी दृष्टि से केगव ने कविप्रिया का प्रणयन किया।<sup>२</sup> न जान कितने कायगिद्यार्थी केगव की कविशिक्षा से लाभान्वित हुए हगि। प्रथम बार केगव ने ससृष्ट काव्यशास्त्र के पचीस विषयों को भाषा के माध्यम से व्यवस्थित रूप में प्रवृत्तित किया।

केगव ने सामाजिक हलचल से पीडित पंडितवग को एक भाग भी दिपलाया। काव्यशास्त्रीय रुचि और सुरुचिपूण काय के लिए उपयुक्त वातावरण उत्पन्न करना उनका काय था। इस पंडितवग ने देगी राजाभा और दगाधिपति अकर के आश्रय पाकर रीतिकविता का हिंदी में सूत्रपात किया। प्रगाढ़ विलास के कारण स्वस्थ सौंदर्य के स्थान पर भोगवादी एव चमत्कारनिष्ठ शृंगार परम्परा का प्रचलन रीतिकाव्य की प्रमुख दुःखता बन गई। पर पंडितवग ने इस गिगा में अनुपम साधना की। कितने ही अनाद स्तरी का उदघाटन हुआ। सक्षप में यही केगव का व्यक्तित्व था जो एक नवीन काव्य परम्परा के प्रवर्तक होने की क्षमता रखता है।

### आचाय केगव सद्धान्तिक दृष्टि

कवि शिक्षक आचाय के रूप में केगव सवाग निरूपक आचाय थे। सांप्रदायिक दृष्टिकोण से वे अलवारवादी थे और रस के क्षेत्र में वे शृंगारवादी के समर्थक थे। केगव के आचायत्व का यही मद्दान्तिक त्रिकोण है। केगव का कविकर्म और आचायकर्म उनके साहित्य का लक्षणग और सदयाना इती त्रिकोणात्मक दृष्टिकोण का प्रतिनिधित्व करता है। रीति की दृष्टि से उन्होंने रसरीति और काव्यरीति के मामों का रूप निर्धारित किया। गवाग निरूपक आचाय के रूप में केगव का क्षेत्र निर्वाचन उनका और युग की अभिलेखि से नियंत्रित है। मुगर्षि के साथ तत्कालीन कवियग प्राणी युवकों की आवश्यकता भी केगव के आचायत्व का प्रभावित करती है। सामंतीय रुचि का मुक शृंगारचित्रण और अलसृष्ट रूप रचना की और थी। समस्त रीतिकालीन

१ हिन्दी जवरा, पृ ५६०

२ कविप्रिया, पृ ११६१

आचायत्व शृंगार और अलंकार के आधार स्तम्भों पर आधारित है। अथ विषय या तो उपक्षिप्त रहे या गौण रूप से स्वीकृत। जमा कि पहले देखा जा चुका है केशव के शृंगारगत आचायत्व पर मधुर भक्ति और शृंगार के रसरजत्व की परम्परा का प्रभाव रहा और अलंकार सम्बन्धी आचायत्व पर प्राचीन आचार्यों का। शृंगार निरूपण के समय शृंगार रीतिसिद्ध कल्पभक्त कवियों का प्रचुर लक्ष्य साहित्य उनकी दृष्टि में था। साथ ही जो शृंगारी प्रतीक इस मितो जुली परम्परा में विकसित हुए थे उनको स्वीकृत करना आचाय कंगव ने श्रमपूर्वक समझा। कंगव के व्यक्तित्व का यही सदातिक पक्ष है। संस्कृत का व्याख्याकार आचार्यों में अथ रीतिकालीन आचार्यों की भाँति कंगव का कविनिष्पन्न रूप नहीं उलभा। पर रस के क्षेत्र में उनको उत्तरकालीन आचायत्व ने उह अक्षिप्त किया। एक प्रकार से शृंगार रीति पर उन्होंने एक मिश्रित गायत्री की रचना को अपना लक्ष्य बनाया। कवि निष्पन्न के रूप में सभी कायागो पर उन्होंने इस महत्वाकांक्षा के साथ नहीं लिखा। इसी सदातिक पक्ष को ध्यान में रखकर कंगव के आचायत्व का क्षेत्र निरीक्षण करना चाहिए।

### अनुपम चतुष्टय

इसमें चार बातें आती हैं—अधिकारी विषय प्रयोजन और सम्बन्ध। उसके सम्बन्ध में पहले कुछ विचार किया गया है। रसिकप्रिया का उद्दिष्ट पाठक रसिक वर्ग है। इस वर्ग को रस रीति की शिक्षा देना कंगव को अभीष्ट है। रसिक की व्याख्या पहले की जा चुकी है। पारलौकिक दृष्टि से 'पिबत भागवत रसमालय रसिका भुवि भावुका का भाव रसिक में सम्मिलित है। लौकिक दृष्टि से रति मति की चातुरी वाला वर्ग इसकी परिधि में आता है। रसिक गद्द से काय शास्त्रीय पद्धति से रसास्वाद लेने वाला का भाव भी लक्षित है। इस अर्थ में विषय का विवचन पहले किया जा चुका है। शृंगार के रस राजत्व की प्रतिष्ठा इस अर्थ का अभीष्ट है। व्यापक दृष्टि से इस अर्थ का उद्देश्य स्वाथ और परमाथ दोनों की साधना है। इसपर भी विचार किया जा चुका है।

रसिकप्रिया में कविप्रिया और रसगिता दोनों ही कवि को अभीष्ट हैं। साथ भक्ति परक रस-साधना की दृष्टि भी उसमें मिलती है। कविप्रिया में उद्देश्य का यह त्रिकोण नहीं मिलता। उसमें मुख्य उद्देश्य कविप्रिया ही है। उद्देश्य की दृष्टि से यह शुद्ध आचायत्व का अर्थ है। व्यक्तिगत रूप से रायप्रवीण के लिए इस अर्थ की रचना हुई। पर सामान्य रूप से रायप्रवीण काव्य शास्त्रीय गिर्गार्थों वर्ग का प्रतिनिधित्व करती है। समुक्त वाला बालकनि वरनन पक्ष अगाथ। नवयग प्रार्थों सुवर्ण-सुवर्तिना का काव्यशास्त्रीय भाव्यव्यवहारों का विन्लेपण पहन किया जा चुका है।

रसिकप्रिया कविप्रिया और छन्दमाला में कंगव की दृष्टि भाषाकवि पर रही है। त्यों ही भाषा कवि सब रसिक प्रिया बिन हीन तथा 'भाषा कवि समुक्त सब सिगर छन्द मुभाइ'—जसी उक्तियों से यह बात स्पष्ट हो जाती है।

भाषाकवियों की विंगल गिजा छन्दमाला का उद्देश्य है। विषय इसका छन्द निरूपण है। संक्षेप में केशव का अनुबन्ध चतुष्टय गार्श्रीय रचिवाल पाठकों और भाषा कवियों की दृष्टि से ही निर्धारित हुआ है।

### निरूपण पद्धति

लक्षण निरूपण के लिए केशव न दोहा छन्द का तथा उदाहरण के लिए वक्त सवया या अथ छन्दो का प्रयोग किया है। यही पद्धति आगे भी चलती रही। लक्षण भाग दोहे जस छोटे छन्द में कभी कभी पूण रूप में स्फीत नहीं हो पाता। संस्कृत के आचायक वक्ति के द्वारा लक्षण की सूक्ष्मातिसूक्ष्म विवेचना करते थे। पर पीछे उदाहरण भाग स्फीत होता गया। हिन्दी में आचायक भी लक्षणों की बारीकियों को विनोय चिन्ता न करके उदाहरण सज्जा में विंगय रचि लत रहे। केशव भी इसका अपवाद नहीं हैं। कहीं कहीं लक्षण निरूपण में अपस्पष्टताएँ और परस्पर विरोधी बातें भी मिल जाती हैं। लक्षण भाग की समीक्षा इस प्रबन्ध में प्रत्येक विषय के साथ यथाविधि की गई है। केगव की निजी भाष्यताएँ भी परम्परित भाष्यताओं से गुथी हुई मिलती हैं। लक्षणों की भाषा को एक विंगय दृष्टि से देखकर संस्कृत की सुदीर्घ परम्परा को ध्यान में रखकर ही—उनका मम समझा जा सकता है। साथ ही उदाहरणों को मात्र उदाहरण कहकर नहीं छोड़ा जा सकता। कभी कभी उदाहरण लक्षणों को पूण बनाते हैं। लक्षणों और उदाहरणों का साथ-साथ विश्लेषण करके ही केगव की धारणाओं को स्पष्टतया समझा जा सकता है। लक्षण निरूपण कहीं संस्कृत के आचायकों की उद्धरणों मात्र हैं। कहीं कहीं केगव न अपनी निजी भाष्यताओं को प्रकट किया है। कहीं कहीं परम्परा से असहमत होकर केगव निर्भोक्ता के साथ अपनी बात कह जाते हैं। यही कारण है कि तुलनात्मक प्रणाली के बिना केगव के मन्तव्य को ठीक ठीक नहीं समझा जा सकता। तुलनात्मक पद्धति कुछ कठिन इसलिए हो गई है कि केगव की सामग्रियों का स्रोत सदैव एक ही नहीं है। स्रोतगत विविध्य तुलना को जटिल और व्यापक बना देता है।

### केशव की आचायत्व सम्बन्धी कृतियाँ

केगव की आचायत्व-सम्बन्धी रचनाएँ प्रामाणिक हैं। उनकी आचायत्व सम्बन्धी रचनाएँ धर्म कृतियों के साथ मिलकर दखन से उनका विशाल व्यक्तित्व समग्र रूप से सामने आ जाता है। एक सम्पूर्ण युग उसमें प्रतिबिम्बित हो जाता है। समस्त रीतिवालीन काव्य सामग्रियों को प्रवृत्ति की दृष्टि से चार भागों में विभाजित किया जा सकता है—प्रार्थित या वीरकाव्य, शृंगार काव्य, नीति भक्ति वराग्य काव्य और रीतिगार्श्रीय साहित्य। केगव में ये चारों प्रवृत्तियाँ यथाविधि परस्पर के नवीन और आरंभिक सूत्र के रूप में मिल जाती हैं। प्रथम वग में जहागीर जस-चन्द्रिका, वीरसिंहदेवचरित' और रतन बावनी भी गणना की जा सकती हैं। धार्य बनकर यह प्रवृत्ति काव्यगार्श्रीय लक्षणों के उदाहरणों में समाविष्ट हो गई।

इसका स्वतंत्र रूप प्रायः तुल्य ही गया। प्रगतिमूलक उदाहरण-याचना का सूत्रपात भी हिन्दी में कविवर ने ही किया था। शृंगारी प्रवृत्ति रमिकप्रिया में और ज्ञान वराम्य विज्ञानगीता में समाविष्ट हुए। महाकाव्य का रूप कविवर अपनी ज्योति दिखाने के समस्त रीतिकान्त स विदा हो गया। काव्यशास्त्र की कृतियां तो प्रथम बार कविवर की तखनी में व्यवस्थित रूप में निरूपित हुईं। कृतियों के सम्बन्धित पद्यवेक्षण में तत्काल स्पष्ट हो जाता है कि सत्रहवीं शताब्दी में आचार्य कविवर ने अपने शास्त्राय पाणिन्य और अभिरुचि में साहित्य की पुनर्योजना की। उनके पश्चात् शताब्दिकों की सहायता से शताब्दिक है। इस सहायता में चिन्तामणि कुलपति देव सोमनाथ मतिराम भूषण भिखारीराम तसव तसिंह और पद्माकर प्रमुख हैं।

कविवर की आचार्यत्व सम्बन्धी तीन रचनाएँ हैं—

- (अ) रमिकप्रिया
- (आ) कविकप्रिया और
- (इ) छन्दमाना।

नखलिख नामक एक रचना की खोज और की जाती है।<sup>१</sup> पर यह स्वतंत्र रचना नहीं है। वनमान कविकप्रिया के उपमालकार प्रकरण में यह अंतर्भूत है। कविकप्रिया के प्राचीनतम टीकाकार मरदार कवि के अनुसार कविकप्रिया की प्राचीन प्रतिपादना में नखलिख अनुस्यूत नहीं है। पर वह उसका अपनी आलाय्य प्रति में सम्मिलित कर लेते हैं— नखलिख प्राचीन पुनर्रचना में नहीं मिलते परन्तु हमारे ज्ञान कविवर छोड़ ऐसे कवित्त बनावनहार शान्त ना ही यान् विदियतु है।<sup>२</sup>

वास्तव में शताब्दिक तक अन्तर्गत नखलिख एक स्वतंत्र वष्य विषय अवश्य हो गया था। नायिका भेद का शृंगार के विभाव क्षण स निकानकर कविया और आचार्यों ने जिस प्रकार उक्त स्वतंत्र वष्य का स्थिति प्रदान की उन्नी प्रकार इस प्रकरण में भी रमिकप्रिया के आग्रह में स्वतंत्र रूप ग्रहण करने की शक्ति थी। हाँ सक्ता है कविवर ने उन्नी रूप में इस ग्रहण किया हो। रत्नाकरजी को पहले पढ़ने यह स्वतंत्र रूप में प्राप्त हुआ था। उन्होंने उनकी भूमिका में इसका कविवर की प्रथम कति के रूप में स्वीकार किया है। अपने मत की पुष्टि में उन्होंने तीन तक भी दिए हैं—

- (१) कविकप्रिया में जितने कवित्त हैं उनमें कई एव इसमें नहीं हैं।
- (२) किसी किसीका पूर्वापर क्रम बगला हुआ है।
- (३) कविकप्रिया का जितनी ही प्रतियां में नखलिख-वर्णन नहीं है।

इस स्थिति में दो संभावनाएँ की जा सकती हैं—एक तो यह संभव है कि कविवर ने इसका एक स्वतंत्र कति के रूप में लिखा था और उपमागत चमत्कार के कारण पाठ्य के निषिद्ध या टीकाकारों ने इस उपकृति को कविकप्रिया के साथ यथास्थान संलग्न कर दिया था। दूसरे कवि के कथन में इस संभावना का यान् मिलना है।

१ शिव विद्या १६ के कविवर का प्र. म. पृ. २३

२ कविकप्रिया मरदार कविकप्रिया का संकलन १ का प्रस्ताव

साथ ही यह भी मानव है कि स्वयं कविव्यवस्था ने ही इसकी कविप्रिया में सम्मिलित कर दिया है। दूसरी गमनायकता यह भी मानव है कि कविव्यवस्था ने उपमा को शृंगारमूलक चमत्कार देने के लिए कविप्रिया के साथ ही इसकी रचना की है और रीतिकालीन विप्रिया के शृंगारिक भावों को यथोचित रूप और रूप प्रसंग की स्वतंत्र रूप में अवतरित होने की शक्ति देकर इसको मूल ग्रन्थ से विच्छिन्न करके उस स्वतंत्र रूप दिया है।<sup>१</sup> मानवता शिक्षाक्षय अन्तर्गत के विस्तार में कविव्यवस्था ने जो अर्थप्रदान किया है उसने भी इस प्रकार के भी स्वतंत्र रूप ग्रहण किया था। इस विस्तार में भी युग प्रवृत्ति प्रति चलायित है और इसमें भी स्वतंत्र रूप में खड़े होने की शक्ति है। कुछ भी है इस समय नवीन कविप्रिया का अंग मात्र है। यदि इस अलग रचना माना भी जाए तो भी यह कोई लक्षण ग्रन्थ नहीं है। यह तो वृत्त प्रधान काव्य ही है जो उदाहरण योजना के अंतर्गत मान्यता है अधिक से अधिक कविव्यवस्था की योजना में यह सामान्यतया वारों में—अर्थप्रदान—के अंतर्गत आ सकता है। नीचे उक्त तीनों रचनाओं का संक्षिप्त परिचय दिया गया है। इस परिचय में प्राप्त प्रतियां उनकी टीकाओं और विषय योजना की संक्षिप्त भाविका सम्मिलित की गई हैं। अधिक प्रतियां मिलना इन कृतियों की लोकप्रियता को प्रमाणित करता है। इनकी टीकाओं से भी यही प्रकट होता है कि उस युग में तथा उसमें अन्तर्गत भी कविव्यवस्था की शास्त्रीय कृतियों को समझने-मनमाने के बिना उद्योग होते रहे। अतः इनकी सूचनाओं को सगृह्यता करना अनुपयुक्त नही होगा।

### (अ) रसिकप्रिया

इसकी रचना का उद्देश्य रसिकों को रसरीति का परिचय कराना है। उच्च वर्गीय शिल्पकर्मियों के धर्म का शास्त्रीय रसिक विचारों में विनय कर देना चाहता था। इस हरि विद्या में कवि का महयोग वालनीय था। इसलिए 'रसिकों का रसिकप्रिया कीनी समवर्तन। दूसरा उद्देश्य शृंगार के रसराजत्व की मौलिक प्रतिष्ठा से संबद्ध है। भाषाकवियों का भी रसरीति और तत्सम्बन्धी शिक्षा देना इस ग्रन्थ का उद्देश्य है।<sup>१</sup> जयदेव की हरि शृंगार परंपरा का भाषा में अवतरण भक्ति-क्षण में प्रायः ही हुआ था। पर भक्तिगत ग्रन्थ से शृंगार अभिप्राय अभिप्राय हो गया था। कविव्यवस्था ने इस परंपरा का रहस्यवादी अभिप्रायों में इस रचना के द्वारा मुक्त किया। तीर्थचर्याओं का अंतर्गत प्रभाव से सु-अभ्यास नहीं रहा। एक

१ 'रसिक प्रिया नामिका मे' का अर्थ हो सकता था पर कविव्यवस्था ने उनके टीकाकारों ने इस प्रकार विचारों के साथ संबद्ध कर दिया है। यह परंपरा भी पालन मिलती है। केशव मिश्र ने 'प्रकाश शृंगार' में 'रसिक प्रिया' के अर्थ में 'प्रकाश' की लकी लकी लकी है। मिश्रों के अर्थ प्रयोगों का उपयोग करने उन विचारों के साथ किया गया है। उन्होंने तो युग के लोकोपमानों का भी यही किया है।—कविव्यवस्था परंपरा, प्रथम सर्गादि ६७

२ 'रसिक प्रिया' का अर्थ रसिक प्रिया विनयन।

(१) ही कविव्यवस्था रसिक प्रिया विनयन ॥ २० प्रि० ११४



शब्द में रसिकप्रिया रसरति सम्बन्धी ग्रन्थ है। 'रसगीति की आवश्यकता मत्त-रसिक और लौकिक रसिक दोनों की थी।

यह ग्रन्थ अपने समय और उसके पश्चात् भी रसिकजनो का कठोर बना रहा। इसका प्रमाण है इसकी अनेक प्रतियो और टीकाओं की खोज। उनकी चार प्राधान प्रतियो के आधार पर केगव ग्रन्थाली में इसका सम्पादित रूप प्रस्तुत किया गया है।<sup>१</sup> नागरी प्रचारिणी सभा की खोज रिपोर्टों में इसकी कई प्रतियो की सूचना दी गयी—

१ खोज रिपोर्ट १९२६ पृ २८

पत्र ७९ आकार ८ × २ पत्तिया प्रति पृष्ठ ३२

छन्द १८९६

रचना काल स० १६४८ वि०, लिपिकाल स १७३७

प्राप्तिस्थान—आनन्द भवन पुस्तकालय बिसवा जिला सीतापुर।

२ खोज रिपोर्ट १९२६ पृ २८

दो हस्तलेख, समय १७३७ सन् १६८०

रचना-काल स० १६४८। ये हस्तलेख अब तक की सभी प्रतियो में प्राचीन हैं।

३ खोज रिपोर्ट, सन् १९। केगवदास मिश्र कृत रसिकप्रिया छदसख्या १६२०

स्थान—पुस्तकालय महाराजा बनारस।

४ खोज रिपोर्ट १९१७ १९१९ रिपोर्ट न० १६४

रसिकप्रिया केगवदाम कृत। पृष्ठसख्या ६८ छदसख्या १०३०

स्थान—सेठ चन्द्रशंकर अन्पगहर बुलदाहर।

५ खोज रिपोर्ट सन् १९१७ १९१९ रिपोर्ट न० ९६४

रसिकप्रिया केगवदास कृत। पृ० स० ५ खडिन छदसख्या १३३०

६ खोज रिपोर्ट सन् १९१७ १९१९ रिपोर्ट न० ८२

रसिकप्रिया केगवदास कृत, पृ० सख्या ३४ छदसख्या ५ ६

प्रतिलिपि-काल स० १७७४

स्थान—५० महावीर प्रसाद दीक्षित चण्डमाना फतहपुर।

हिन्दी-शास्त्र के पश्चिमी भाग में भी अनेक प्रतिया प्राप्त हुई हैं और पूर्वी भाग में भी। इससे रसिकप्रिया की लोकप्रियता सिद्ध हो जाती है।

केगव की सभी रचनाओं में इसका स्थान तृतीय है और आचायत्व-सम्बन्धी उनकी यह प्रथम कृति है। इसकी रचना काल—१६४८ वि०—के सम्बन्ध में कोई सदेह नहीं है। इसका स्पष्ट निष्कर्ष सभी प्रतियो में मिलता है।<sup>२</sup> केगव न प्रभावत की पुष्पिका में रचनाकार के रूप में चन्द्रजीतिमिह का नाम लिया है। पर यह मात्र गिष्टाचार है।

१ ५ विरक्त-प्रमाण मिश्र केगव ग्रन्थाली में ३ भूतिका पृ ४

२. संवर सारङ्ग सु बरसु बोट अटलनाम।

कविता मूर्ति लिपि छान्दो वार बरनि रवनीस ॥ २ दि १११

इन्द्रजीतसिंह के आदेश पर केगव ने ही इसकी रचना की है।<sup>१</sup> इन्द्रजीत विरचिता का अर्थ इन्द्रजीत द्वारा विरचित न लेकर इन्द्रजीत के लिए विरचित लेना चाहिए। इस शब्द में तृतीया तत्पुरुष न मानकर या तो प्रयोजक हेतु तृतीया तत्पुरुष मानना चाहिए या चतुर्थी तत्पुरुष।

रसिकप्रिया की प्रतिया के अतिरिक्त इसकी कुछ टीकाएँ भी मिलती हैं। इसकी टीकाप्रा का भी एक अंश बना रहा। नीचे कुछ प्रमुख टीकाओं की सूची दी जा रही है।

१ **मुखविलासिका**—यह रसिकप्रिया की सबसे प्राचीन उपलब्ध टीका है। इसकी रचना बाशिराज ईश्वरीनारायण प्रतापसिंह की आना से स० १६०३ वि० में सरदार कवि न की थी। सरदार ललितपुर क निवासी श्रीर हरिजन के पुत्र थे। उन्होंने टीका क अंश में अंश परिरचय दिया है

ताहि निहारि महीपमनि कह बन मुख दन ।  
रसिक प्रिया भूपन रची कविकुल आनद ऐन ॥  
धरि सिर आयस भूप की मन मह मानि अनद ।  
रसिकप्रिया भूपन रची जस राका को चद ॥  
सिव दग गमनो गृह सु पुन रद गनेस की सात ।  
जेठ सुकल इसमी सुगुर करी अर्थ मुखमाल ॥  
यास ललितपुर नद है हरिजन की सरदार ।  
बंदी जन रघुनाथ को पालत पवन कुमार ॥<sup>२</sup>

इस टीका का प्रकाशन लखनऊ स सन् १९११ म तथा वैकण्ठेश्वर प्रेस, बंबई से सन् १९३१ म हो चुका है।

२ **जोरावरप्रकाश तथा रसग्राहकचन्द्रिका**—रसिकप्रिया की ये दो टीकाएँ आगरा निवासी श्री मूरत मिश्र ने लिखीं। उनकी हस्तलिखित प्रतिया लेखक ने श्री रामणलाल हरि चौधरी बाजार कोठी (मथुरा) क यहाँ देखी हैं। 'जोरावरप्रकाश' का प्रतिलिपि-काल सन् १८६१ ई० और रसग्राहकचन्द्रिका का प्रतिलिपि-काल सन् १८१२ है। मूरत मिश्र जहानाबाद दिल्ली के नसरुल्ला खा उपनाम रसग्राहक की सेवा म रहने क। उन्होंने नाम पर टीका का नामकरण किया गया है।

४ **रसिकप्रिया टीका सहित**—रसिकप्रिया की यह टीका खोज रिपोर्ट<sup>३</sup> के अनुसार वाजिद क पुत्र कामिक ने लिखी थी। इस टीका की छन्दमहत्या ४१५८ है। इसकी पृष्ठमहत्या १४४ बतनाई गई है। रचना-काल १६४८ वि० है जो रसिक प्रिया का भी रचना काल है। इस दृष्टि स इस टीका क रचना-काल के विषय म सन्देह हो जाता है। खोज रिपोर्ट म प्राप्तिस्थान का उल्लेख नहीं है।

५ **टीका सहस्रमीनिधि**—एक अन्य टीका सहस्रमीनिधि चतुर्वेदी ने सन् १८५२ म लिखी है। हिंदी क विद्याविद्या का रसिकप्रिया स परिरचित कराने में

१ रसिकप्रिया १।१०

२ मुखविलासिका इन्द्रजीतसिंह प्रतापसिंह १५ १८, पृ ३

३ पृ० प्र० ममा खोज रिपोर्ट सं० २०१० वि०

इसका उपयोग रहा है। टीका सामान्य है।

प्रतियो और टीकाओं की सूची स यहा निम्नप निकाला जा सकता है कि रमिकप्रिया पर्याप्त लोकप्रिय रही। जिस प्रकार विभिन्न आश्रयदाताग्राहक अपने आश्रय में मौलिक काय कृतियाँ को प्रोत्साहन दिया उमी प्रकार रमिकप्रिया जैसे रसग्रन्थ की टीकाओं की रचना भी कराई गई। मुसलमान मामता का भी रमिकप्रिया रचि कर रही। मुसलमानों ने भी इसकी टीकाएँ प्रस्तुत कीं।

### (आ) कविप्रिया

कविप्रिया कविशिक्षा का सबसे प्रसिद्ध ग्रन्थ है। इसकी रचना अनन्तमयक आधार पर फाल्गुन शु० ५ बुधवार म १५८८ को हुई। जाला भगवानदीन इस तिथि को उसका प्रारम्भ करने की तिथि मानते हैं। अथ बिद्वान् इस तिथि को कविप्रिया की समाप्ति मानते हैं। दोहों में आठ अवतार के आधार पर उक्त तिथि का समाप्ति सूचक मानना युक्तियुक्त प्रतीत होता है। साथ ही रामचन्द्रिका और कविप्रिया के रचना-काल में बवल चार महीने का अन्तर रहता है। इसमें गृहा अनुमान लिया जा सकता है कि इसकी रचना या इसके उद्घाटन की स्फुट रचना पहले से ही चल रही थी। रामचन्द्रिका के अनन्तर बंगव ने इस समग्र और सुसंपादित रूप में प्रस्तुत कर दिया। तभी चार महीने में इसकी समाप्ति सम्भव हो सकी।

कविप्रिया की पुष्पिका में किसी आश्रयदाता का उल्लेख नहीं है। अतः इसका कर्ता के सम्बन्ध में किंचित भी सातह नहीं रह जाता। इस ग्रन्थ का महत्त्व इन बातों में है कि इसमें ही हिन्दी के आचायत्व का शुद्ध रूप में सूत्रपात हुआ। इसकी भी अनेक प्रतियाँ और टीकाएँ मिलती हैं। इनका सन्निपत गणित विवरण नीचे दिया जा रहा है।

कविप्रिया की प्रतियाँ—तामरी प्रचारिणा सभा बानी की लोज विपों के आधार पर कविप्रिया की ये प्रतियाँ मिलती हैं

१ लोज रिपाट १६० ई० पृ० ४६

कविप्रिया बंगवदाम निरकृत छन्दमय्या ११४

स्थान—बाबू कृष्णदेव बमा बसराग नखनड।

गाज रिपाट १८१७ ई० ई० पृ० १७८

क—रिपाट न० १ क कविप्रिया अपूर्ण पृ० म १५८ छ म १६६७

स्थान—शिवलाल वाजपथी अमनी फतहपुर।

म—रिपाट न० ६६ कविप्रिया बंगवदामकृत पृ० स १६७ -

म १६६७

स्थान—नारदी प्रयाग।

सत्र रिपाट मन् १६२ २८ क

१ कविप्रिया ११६

२ मन् ६६ १६ २८ क कविप्रिया अपूर्ण।

कविप्रिया रचयिता—केशवदाम आरछा बुदलखड कागज दमी पत्र  
११६ आकार १४ $\frac{1}{2}$  × ६ $\frac{1}{2}$ " पवित्रया प्रति पृष्ठ १०  
रचना-काल—१६५८ वि० त्रिपिकाल १८१० वि०  
स्थान—गज पुस्तकालय प्रतापगढ राज्य ।

४ खोज रिपोर्ट १६२६ २८ इ०

कागज देगो पत्र १०४ आकार ८" × ४ पवित्रया प्रति पृष्ठ ३०  
रचना-काल—१६५८ वि०  
प्राप्तिस्थान—आनन्द भवन पुस्तकालय तिमवा जिला भीतापुर ।

५ खोज रिपोर्ट सन् १८२६ २८ इ०

कागज साधारण पत्र ६१७ आकार ८ $\frac{1}{2}$ " × ६ $\frac{1}{2}$ " प० प्र० पृ० १८  
रचना-काल स० १६५८ त्रिपिकाल स० १६६०  
प्राप्तिस्थान—आकारनाथ पाण० ग्राम चचहरा टाकखाना कठिनोरिया ।

६ खोज रिपोर्ट १८२६ २८ इ०

तीन हस्तलेख समय स० १६ ७ वि०

### कविप्रिया की टीकाएँ —

१ कविप्रिया—तिलक घोष कवि

पृ० स० १६३ छ० स० १४५० प्रतिनिधि कागज सन् १८८०  
स्थान—राजकीय पुस्तकालय, दतिया ।

२ कागिराज प्रकाशिका—मरदार कवि

पृ० सन् १२५ छद स० २१००  
स्थान—राजकीय पुस्तकालय महाराज बनारस ।

इस टीका का प्रणयन रमिकप्रिया व टाकाकार गणेश कवि न अपन विषय  
नारायण की सहायता में अपन आशयदाता महाराजा इन्दरी नारायणसिंह की आजा  
ग किया ।

३ कविप्रियाभरण—हरिचरणदास

हस्तलिखित दो प्रतिया प्रथम प्रति—पृष्ठसंख्या १८१ छदसंख्या ६०००  
स्थान—राजकीय पुस्तकालय बनारस ।

द्वितीय प्रति—पृष्ठसंख्या २० छदसंख्या ७/१२, प्रतिलिपि-काल  
स० १८८३

स्थान—प रामवण उपाध्याय फाजाबाग ।

यह टीका स० १८३५ म कवि हरिचरणदास द्वारा दुष्काळ राजस्थान म  
रहकर लिखी गई । कवि यहां क महाराज यहादुरराज क दरवार म रहता था ।  
टाक म कवि न अपना पूरा परिचय दिया ह ।

४ कविप्रिया मटीक—मूरत मिश्र

पृष्ठसंख्या १००० छदसंख्या २२५०

प्रतिलिपि-काल—स० १८५६

स्थान—जुगल बिशोर मिश्र गधौली सीतापुर ।

५ आचाय केवदास नामक ग्रन्थ में डा० हीरालाल दीक्षित ने कविप्रिया पर लिखी हुई दो टीकाओं का उल्लेख किया है जो नाजिर सहजराम की लिखी हुई हैं । इन्हें उन्होंने राजकीय पुस्तकालय बनारस में देखा है जिनमें से एक प्रति खण्डित है दूसरी पूरा । लेखक ने एक टीका प्रतिलिपि मन्मूलाल पुस्तकालय गया में देखी है जिसका विवरण इस प्रकार है—

रचयिता—केवदास मिश्र टीकाकार सहजराम

ग्रन्थ—अच्छी प्रारम्भ का एक पृष्ठ नहीं

पृष्ठसंख्या ८५ आकार ६ × २½ पक्तियाँ प्रतिपृष्ठ २८

लिपि नागरी प्रतिलिपिकर्ता अज्ञेय

रचना काल—स० १८३४ प्रतिलिपि काल स० १८८३

स्थान—मन्मूलाल पुस्तकालय गया ।

उक्त टीका का नाम चन्द्रिका है और कर्ता नाजिर सहजराम । इसमें टीका और उदाहरण का क्रम रखा गया है । टीकाकार ने टीका के अन्त में लिखा है—

केसव सोरह भाव सुभ सुबरन मम सुकुमार ।

कविप्रिया के जानियहु ये सोलह शृंगार ॥

सहजराम कृत चन्द्रिका सति चन्द्रिका समान ।

ताकत ही ससय तिमिर प्रतिदिन करत प्रनाम ॥

६ नाजिर सहजराम कृत टीका की एक प्रति खण्डित रूप में मन्मूलाल पुस्तकालय गया में है जिसका विवरण इस प्रकार है—

टीकाकार—नाजिर सहज

प्रतिलिपिकार—करनसिंह राजपूत गयावासी

पृष्ठसंख्या ११ प्रतिपृष्ठ पक्तियाँ १५

प्रतिलिपि काल—स० १९० चत्र शु० ६ गुरुवार ।

यह टीका अपूर्ण है बस १६वाँ प्रकाण्ड है । प्रथम पत्र चित्रानकार से संबंधित है—कमल चित्र कवित्त में ब्रह्म परम विचित्र । अंत में कवि श्री नाजिर सहजराम विरचिताया कविप्रिया टीकाया सहजराम चन्द्रिकाया चित्रानकार विवरण नाम षोडश प्रकाण्ड लिखा है । इसमें प्रतीत होता है कि टीका सभी प्रकाण्डों पर लिखी गई है ।

### (इ) छन्दमाला

छन्दमाला की २१ प्रतियाँ प्राप्त हुई हैं । एक प्रति श्री ब्रह्ममान जैन ग्रन्थालय बीकानेर में है । इसका अनुलिपि पं. विठ्ठलनाथप्रसाद मिश्र की श्री अमरचन्द्र नाहटा से प्राप्त हुई थी । इसकी एक अनुलिपि हिन्दी साहित्य सम्मेलन प्रयाग में है । दूसरी प्रति का शास्त्र डा० किरणचन्द्र वर्मा ने की । यह प्रतिलिपि गुरुमुखी लिपि में है । किरणचन्द्र वर्मा ने यह प्रति नागरागराक्षित रूप में अपने गोप प्रबंध में दे दी है ।

रचयिता श्री लिपिकाल की सूचना देने वाली पुष्पिका इस प्रकार है

इति श्री समस्त पंडित मंडली कमोत्सव विरचिता छन्दमाला समाप्त सवत्  
१८३६, बंगाल गुदी ९, पुत्रवार लिखत जति ऋषि स्वसिष्य जगता ऋषि  
पठनाय शुभमस्तु वागप्रस्थपुरे लिपिकृता ।

गुरुमुखी वाली प्रति म नेवल इति श्री नैसवराय वृत छन्दमाला समाप्त  
लिखा है । हिंदी साहित्य सम्मेलन म जो अनुलिपि है उसकी सूचना सबसे पहले वस  
प्रबंध ने लखक को मिली थी ।

उक्त पुष्पिकाओं के आधार पर कहा जा सकता है कि इसके रचयिता महाकवि  
कसबदास ही हैं । साथ ही अधिकारा उदाहरण रसिकप्रिया और रामचंद्रिका स ही  
दिए गए हैं । इससे यह भी स्पष्ट होता है कि छन्दमाला की रचना रामचंद्रिका और  
रसिकप्रिया के पश्चात् ही हुई । रचना का न सं १६५८ वि० माना जा सकता है ।  
डा० किरणचंद्र गर्मा के अनुसार छन्दमाला स ही छन्द लेकर रामचंद्रिका म उद्धृत  
किए हैं । उनके अनुसार छन्दमाला की रचना रामचंद्रिका स पूर्व ही हो चुकी थी ।  
पर एसा प्रतीत नहा होता । जिन पद्या की उदाहरण के रूप म प्रस्तुत किया गया है  
वे एव प्रबंध के ही अंग हैं । उनकी रचना अलग स हुई प्रतीत नहीं होती । मौक्तिक-  
दाम नामक छन्द का उदाहरण इस प्रकार है—

गये जय राम जहाँ सुनि मात । वही यह यात किहो बन जात ॥

कछु जनि जो बुल पायहु माइ । सुवेहु असोस मिलो फिरि घाइ ॥

इसके अव्यय पद जब के आधार पर यह कहा जा सकता है कि यह पद्य एक कथात्मक  
रचना स ग्रहण किया गया है । रामचंद्रिका के पश्चात् ही इसकी रचना मानना मुझे  
अधिक समीचीन प्रतीत होता है । सम्भव है कविप्रिया के पश्चात् ही इस शिक्षाप्रथ  
की रचना हुई हो । इस रचना ने कंगव को सर्वांग निरूपक आचाय के रूप म प्रतिष्ठित  
कर दिया । रामचंद्रिका म बहुत छन्द रूप तो घा ही चुर थ, कवल लक्षणा की  
रचना करके एक विगल ग्रथ का कंगव न जन्म दिया ।

उक्त पुष्पिका स कंगव इस कृति के रचयिता ठहरते हैं । स्वयं प्रस्तावना भाग  
म इसका उल्लेख किया गया है

भाषाकवि समुक्त सब सिंगरे छन्द सुभाइ ।

छन्दन की माला करी सोनन बेसवराइ ॥<sup>१</sup>

इसके आधार पर रचना के उद्देश्य को भी समझा जा सकता है । इसका स्वर भी  
कविप्रिया के उद्देश्य-वचन म मिलता है । इसम भी कंगव का गणक-आचाय दोल  
रहा है ।

रचना विधान अध्यायों म विभक्त नहीं है । वगैरे और मात्रिक छन्द  
विभाजन के आधार पर इसके दो खण्ड किए गए हैं । प्रथम खण्ड म वगैरे और  
द्वितीय खण्ड म मात्रिक छन्द का निरूपण है । जिन प्रकार कविप्रिया और रसिकप्रिया

की टीकाएँ उपन्यास होती हैं उस प्रकार रसका नहीं। सम्भवतः विषय की सरलता ही इसका कारण है। इस रचना में उन शास्त्रीय सूत्र-मात्राओं और निस्तृतियों का अभाव है जो बंगव की अन्य शास्त्रीय कृतियों में मिलती हैं। अन्य रचनाओं की तुलना में यह एक अत्यन्त सामान्य रचना ही टहलती है। सम्भवतः बंगव में जिम मनोयोग और रुचि के साथ आचायत्व-सम्बन्धी अन्य क्षेत्रों का निधारण किया उन मनोयोग से पिता सम्बन्धी आचायत्व की स्थापना नहीं की। इसका कारण यह हो सकता है कि संस्कृत छन्द शास्त्र भाषा की परम्परा के अनुकूल नहीं था। भाषा का अपना छन्द विधान विकसित हो गया था। उसी भाषा का अनुसरण दीर्घकाल में किया जाता रहा था। इसलिए एक परम्परा का स्थापन नहीं करके ही हम महान आचायक न सतोप लाभ किया।

बंगव का आचायत्व सम्बन्धी कृतियाँ उनकी प्रतियाँ और टीकाओं के विवरण में बंगव के आचायत्व के विस्तार उसका लावण्य और इन कृतियों की भौगोलिक सीमाओं का परिचय मिल जाता है। टीकाकारों ने विषय का स्पष्टीकरण नहीं करके अपनी रचियों और भावनाओं का आराधन विचार किया है। अतः विवेचन में पर्याप्त स्पष्टता नहीं आ पाई है। आधुनिक युग में लाला भगवानदीन ने बंगव की कृतियों का टीका-विषयक इस अभाव की पूर्ति की। यह बात ही सचता है कि लालाजी भा. कहीं कहीं बंगव के मर्म को स्पष्ट नहीं कर सका है पर आधुनिक युग में बंगव को सुबोध बनाने में उनकी प्रिया प्रकाश जमी टीकाओं का बड़ा हाथ है। सामान्य विद्यार्थियों को ध्यान में रखकर सन् १९५० में जमीनिधि चतुर्वेदी ने भी कविप्रिया की टीका लिखी है। पर सम्भवतः एक विस्तृत टीका का आवश्यकता अभी भी बना हुई है जो बंगव के मूल दृष्टिकोण का स्पष्ट करेगा।

### आचायत्व का क्षेत्र विस्तार विहगन दृष्टि

साधारणतया काव्यशास्त्र का क्षेत्र विभाजन इस प्रकार किया जा सकता है

	— काव्य-स्वरूप
	— काव्य-रस
क—प्रस्तावना	— काव्य-प्रयोजन
	— कवि-प्रकार
	— कविराजि
	— अभिधा
ख—संज्ञा	— शब्दा
	— शब्द-प्रयोग
	— शब्द-विस्तार
ग—ध्वनि-सुगान्ध-व्यंग्य	
घ—रस-भाव-वद	
ङ—दृश्य-निर्माण	

च—गुण निरूपण

छ—रीतिवृत्ति

—नाटकीय (कण्ठी आदि)

—काव्यशास्त्रीय (बर्भी आदि)

ज—अलंकार निरूपण

झ—पिंगल

सामान्यतः काव्यशास्त्र की यही रूपरेखा है। इस रूपरेखा की दृष्टि में यदि बंगव व आचायत्व का देखा जाए तो पात होगा कि कुछ अंगों को बंगव ने छोड़ दिया है। कुछ का अतिरिक्त विस्तार किया है और कुछ को समुचित कर दिया है। बंगव ने रीतिवृत्ति ध्वनि गुण का छोड़ दिया है। रीतिवृत्ति प्रकरण को अगूँरा छोड़ दिया है बस नाटकीय वृत्तियाँ का निरूपण मिलता है। शेष पर बंगव न लिखा है। बंगव व द्वारा विरचित क्षेत्र को कुछ विस्तार व साथ देखा जा सकता है।

### प्रस्तावना भाग

काव्य स्वरूप का निधारण बंगव न विस्तृत रूप में नहीं किया। इसके एक अंग प्रकरण व रूप में भी बंगव न नहीं रखा। फिर भी यदि विमरी हुई कड़ियों का जोड़ा जाए तो काव्य का स्वरूप त्रिकोणात्मक ठहरता है। निधायक दृष्टि से काव्य का निर्दोष होना चाहिए।<sup>१</sup> अलंकार उनको दृष्टि में काव्य का अनिवार्य अंग है।<sup>२</sup> बंगव का आचाय इन दो सीमाओं में काव्य को रखकर समुप्ट है। धीमे स्वर में यह भी सुनाइ पड़ता है— बिनु बानी न रसात्ता। वास्तव में रसात्मक वाक्य में बंगव को विवास था। बंगव आचाय की दृष्टि में इस क्षेत्र में मम्मट की प्रतिश्रिया उपस्थित करत है।

संस्कृत का शास्त्र में काव्य हेतु पर विचार किया गया है।<sup>३</sup> मम्मट ने कवि निपुणता और अभ्यास को स्वीकार किया है। पर बंगव न प्रस्तावना का भाग का छोड़ दिया है। काव्य प्रयोजन पर भी बंगव का आचाय सूक्त है। स्पष्ट रूप में कुछ बस अत्रय मित है। तस रसिकन को रसिकप्रिया की ही बंगवनाम पर अथ आचार्यों का भाति बसव न विधियत् काव्य प्रयोजना का परिणत नहीं किया। कविया व तीन प्रकार बंगव का माय ध—परमार्थी स्वार्थी न स्वार्थी न परमार्थी बसव मनाविना। तीन प्रकार का कविरीतिया उहान लिखी<sup>४</sup>—मत्य का अमत्य व रूप में अमत्य का सत्य व रूप में तथा नियमवद परपरा व अनुगार वणन करता।<sup>५</sup> बंगव न अपने आचायत्व व प्रस्तावना भाग को अपने ढंग से नियोजित किया

१ कविप्रिया १८

२ वदो ५१७

विचार करत बानी में मत्य, बामन, मत्र कुनक चार मम्मट जलनाभाव ६।

५ काव्यप्रकाश ३३

उभय कविप्रिया ४१, २, ३, ४ ८



है। कवि प्रकार निरूपण में उनके युग की छाप परिलक्षित होती है। परंपरागत प्रस्तावनाओं को ज्यों का त्यों उन्होंने नहीं ग्रहण किया है।

### रस—(रसिकप्रिया)

रसिकप्रिया में रस निरूपण मिलता है। कुछ विद्वानों के अनुसार केगव का यह ग्रंथ रस निरूपण में होकर शृंगार निरूपण ही है। इसका कारण यह है कि शृंगार का निरूपण ही कवि का प्रतिपाद्य है। एक नवीन प्रकार से शृंगार की महत्ता की प्रतिष्ठा ही इसका केंद्रीय अभिप्राय है। वस्तुतः रसिकप्रिया रसरीति संबंधी ग्रंथ है। गुबलजी ने हिंदी साहित्य के उत्तर मध्यकाल को रीतिकाल सज्ञा दी थी। पर उन्होंने रीति शब्द का स्पष्टीकरण नहीं किया था। आचार्य हजारीप्रसाद द्विवेदी ने इसका ग्रंथ यों समझा है—यहां साहित्य को गति देना में अलंकार शास्त्र का ही जोर रहा है जिस उस काल में रीति कवित्त रीति या सुकवि रीति कहना लग था। संभवतः इन शब्दों से प्रेरणा पाकर गुबलजी ने रस श्रृंगार की रचनाओं का रीतिकाव्य कहा है। 'डा० विश्वनाथप्रसाद मिश्र' और 'डा० नगेन्द्र' ने भी इससे मिलती जुलती व्याख्या की है। संभवतः गुबलजी ने भी रीति का प्रयोग का यरीति के ग्रंथ में ही किया था।

केगव ने रीति शब्द का प्रयोग किया है। उस काल में कायरीति के अंतर्गत रसरीति और अलंकार रीति मुख्य थी। इन क्षेत्रों में परंपरागत काव्य रीतियों को अवतारित करना ही रीतिकालीन आचार्यों का लक्ष्य था। इनके आचार्य ब्रह्म में काव्यांग का शास्त्रीय निरूपण उच्चकोटि का नहीं है पर रीति की स्थापना पूर्ण है। इस काल के कवियों में स अधिकांश ने कायरीति की अपेक्षा रसरीति या रसिकता की गिशा देने के लिए रचनाएं प्रस्तुत की हैं। रसरीति संबंधी ग्रंथों की परंपरा हिंदी साहित्य में मिलती है। इस परंपरा के ग्रंथों के कर्ताओं ने उद्देश्य-व्ययन की प्रकार का किया है

क—एक मित्र हमसों अस्त गुणों।

मैं नायिका भद नहिं सुयों।

तब सगि इनक भद न जानें।

तब सगि प्रमत्तत्व न पहिचानें॥

दिन जाने थे भेद सब प्रम न परचे होय।

धरन हीन ऊंचे अचल अंत न देख्यो कोय।

ख—सुरबानी यात करी नरबानी में ल्याय।

जात भय रसरीति को सबतें समझो जाय।<sup>१</sup>

१ हिन्दी साहित्य पृ २६१

विहारी की भूमिका

३ रीतिकाव्य की भूमिका पृ १२६

४ रस शब्दों के अर्थ ५ सुन्दर कवि सुन्दरसिंहार

ग—चरनत कवि सिंगार रस छन्द बडे विस्तारि ।

में वरयो दोहान जिच याते सुघरि बिचारि ।<sup>१</sup>

घ—बाड रति मति अति पढ जाने सब रसरीति ।

स्वारय परमारय सहै, रसिकप्रिया की प्रीति ।

× × ×

रसिकन को रसिकप्रिया कीहो कववदास ।<sup>१</sup>

एन उद्धरण स रसिकप्रिया की परपरा स्पष्ट हो जाती है । जिस प्रकार काम व क्षत्र म कामकला या कोकला का प्रचलन है वम ही रमिकता व क्षत्र म रसरीति या प्रेममाग का है । अस्तु रसरीति का सवध भरत द्वारा प्रतिपादित काव्यरम स नहीं अपितु रमिकता या विलासिता स प्रा-त होने वाल रम या आन- स है ।<sup>१</sup> यह रसरीति पूव मध्यकाल म भक्ति के क्षेत्र म प्रतिष्ठित हो गई । उमम पूव और पर वर्ती काल म इसका सवध लौकिक विनास स हा गया । इनक आधारभूत स्राता म का-यगास्त्रीय ग्रय भी थ और कामगास्त्रीय भा । रमरीति क ग्रया म शृगार का ही विगद निरूपण मिलता है । शृगार के बोधक ग्रय ग- रस शृगार विलास य विनोद प्रचलित रहे । रसप्रयोध शृगारसागर रमरहस्य बधूविनाद रस विलास भावविलास जगद्विनोद आदि में शृगार के रीतिकारीन पर्याया का प्रयोग है । य सभो ग्रय रमरीतिमूलक ग्रथों की परपरा म आने हैं । कवव न भी रमिक गिशा क लिए रसिकप्रिया की रचना की । राजवग की रचि को ध्यान म रखकर ही रसरीति-मवधी ग्रया का प्रणयन किया जाता था । इद्रजीतमिह न राजवग की विलास-वृत्ति का प्रतिनिधित्व करते हुए कवव से इस ग्रय क प्रणयन का आग्रह किया था । कवव राजरचि के पारखी थ । उन्होंने यह नहीं लिखा कि व काव्य शास्त्रीय रस सिद्धात का प्रतिपादन करने जा रह हैं । उन्होंने स्पष्ट कहा है कि रति गति का विलास विवक क अनुसार निरूपण ही इस ग्रय का प्रतिपाद्य है और इसके उद्दिष्ट पाठक रसिक लोग हैं ।<sup>२</sup> अलकार ग्रयो और सर्वांग निरूपक ग्रया का प्रणयन तो आचायत्व की दृष्टि स किया गया पर 'रसरीति'मूलक ग्रथों की रचना रसिकता की गिशा के लिए ही हुई । इसीलिए यह कहा जा सकता है कि कवव का आचायत्व रसिकप्रिया म सुदृढ नहीं मिश्रित है । इसका नियोजन राज रचि, रतिरीति भक्ति-प्रेरणा आंगिक रूप से का-यगास्त्रीय और अधिकागत कामगास्त्रीय पद्धति की ही दृष्टि स हुआ है ।

१ कृपाराम दिनतरगिणा

२ रसिकप्रिया

३ डा गणपतिचन्द्र गुण दिनी काव्य में शृगार परपरा और मङ्गलवि विगती पृ० २४४

४ दिन कवि केसवसास सों कान्दो धम सनदु । सब सुन्य करि यो कडो रसिकप्रिया करि द्यु ॥ २० प्रि० १।१०

५ अनि रति-गति-भनि एक करि, विविध विवेक विलास ।

रसिकनको रसिकप्रिया कीनी समवगम ॥ २० प्रि० १।१२

रसरीति स सज्ज न्या म शृगार निरूपण मुख्यत एन प्रकरण गीपका म विभक्त किया जा सकता है

क शृगाररस क विभिन्न अवयव

ख नायिका भेद

ग नखण्डिख और

घ पटश्रुतु वणन ।

रसिक रचि स मबद्ध होने क कारण हम प्रनार की रस-यात्वा प्रचरित हो गई थी । शृगार रस का शास्त्रीय निरूपण एतना प्रमुख नहीं था जितना नायिका भेद का विस्तार और विस्तारपूर्ण नखण्डिख । बंगव क रस मबधी आचार्यत्व की भीमाण भी इसी प्रकार की थी । रसिकप्रिया क आरभ म बंगव ने दो प्रतिज्ञाए की ह शृगार (या हरि शृगार) सभी रसा का नायक है<sup>१</sup> और सभी रसा का निवास ब्रजराज म है ।<sup>१</sup> एन दो सकल्पों म स प्रथम का मबध शृगार क रसराजत्व की परंपरा स है और दूसरे का खान वृष्णवा का रसशास्त्राय भक्तिभावना म है । आचार्यत्वक दृष्टि स निविन रसाग्रह वृष्ण है । मरुद्ध क आचार्यों म ही शृगार की एम रूप म प्रतिष्ठा होती गई । जब आचार्यत्व रसिक रचि पर धारित हुआ तो नायिका भेद फीत होता गया । एम प्रकरण की लोकप्रियता एतनी हुई कि नायिका भेद पर पृथक् शास्त्रों की रचना हुई । आलाच्य युग म भी नायिका भेद की लोकप्रियता बढी । नायिका भेद पर रीतिकान म भी स्वतंत्र रचनाए हुए ।<sup>१</sup> रसाग्रित भक्ति संप्रदाया म भी एम विषय का पर्याप्त स्त्रीति मिली । एकी दृष्टियों म बंगव का रस विवेचन का क्षय साधित है । अतन यथा क्या जा सकता है कि रसिकप्रिया रसरीति का ही ग्रथ है । बंगव न शृगार क उभय पना की गीति का ही उल्लेख किया है ।

ग्रथ क १६ प्रकाण म ग चोन्ह पकाग शृगार व्याख्या स सज्ज हैं । एन चोन्ह म म घाठ प्रकाण म नायिका-नायक प्रकरण ही है । एक म सभी रसों का सक्षिप्त परिचय और मभीकी स्थिति शृगार म दिखतान का प्रयास है । एमनिण यह प्रकाण भी शृगार प्रतिष्ठा म ही संबधित है । एक प्रकाण म वृत्तिया और एक म रस दोषों की चर्चा करक ग्रथ समाप्त कर दिया गया है ।

निम्नलिखित पंक्ति म बंगव का रस मबधी आचार्यत्व स्पष्ट हा जाता है । आचार्यत्व जगण और उदाहरण का भागा म एतना है । एकी दृष्टि स क्षय का विहगावनाकन किया गया है ।

१ एत एम क भाव का निरूपण निम्न निम्न ।

मन्त्रः --- बंगव का गदक है शास्त्र ॥ २ ॥ ११६

नखण्डिख के अन्तर्गत निम्न । रसिकप्रिया १ ।

१ शृगार का रस एन दव का रस एतन नायिका म क रसिक म की दृष्टि स एत रचि ; एतनाकन व है ।

४ एत मन्त्र निम्न की कम्ब बन्ता नि ।

दिल्लेख निम्न की गीति कहीं कहीं प्रसिद्धा र नि ७४

विषय अनुक्रम

विषय	प्रभाव सख्या	लक्षण	भेद	उदाहरण		उपसहार
				सामान्य प्रकाश	प्रच्छन्न राधा कृष्ण	
१ शृंगार भेद	प्रथम	+	१ सयोग २ वियोग	X	+	+
२ नायक भेद	द्वितीय	+	१ अनुवृत्त २ दक्षिण ३ शठ ४ घट्ट	X	+	·
३ नायिका भेद	तृतीय	+	जातिगत १ पत्निनी २ चित्रिणी ३ गुलिनी ४ हस्तिनी	+	X	·
			अथ सामाजिक			
		+	१ स्वकीया	+	X	X
		+	२ परकीया	+	X	X
		X	३ सामाया	·	X	X
			४ गभी उपभेद			
		+	गणित	+	X	X
		X	५ राम शास्त्रीय विस्तार	X	X	X

१ स्वकीया व उपभेद इस प्रकार है सुखा-४ प्रीति, सुखा-४ नववधू, नववाचना, नवप्रसन्नता व आशादरति। मया-४, आन्वीया प्रयभवना प्राप्नुत नामा और मूर्ति चिकित्सा। प्रीति-४ सुखल सुखानि चिकित्सा आनन्दित और लक्ष्यापति। इन स्त्रिय विविध भेद-परा अरिता धीरापीया। परकीया-उत्त, अद्वय। प्राप्तीया व सामा और आर्तिगुणा।

२ सुखा के बाहरारतीय विस्तार में पराशर नामके राधन, सुख प्रीति का विरूपण किया है। तथागत पुरनिचिकित्सा के साथ माल कटिरीया और प्रन्तरिया का आन्वीया दी है। साथ ही पराशर शृंगार की मया और सुखान वलन नाम है। पर वय आन्वीया करव इस प्रसंग की पराशर ने छोड़ दिया है।

विषय	प्रभाव सख्या	सक्षण	भेद	सामान्य	उदाहरण प्रच्छन्न प्रकीर्ण	उपमहार राधा कृष्ण
४ दगन	चतुस्र	+	१ साक्षात् दगन	×	+	+
		+	२ स्वप्न दगन	×	+	+
		+	३ श्रवण दगन	×	+	+
५ दपति चेष्टा	पंचम	+	१ चेष्टा' (वचन)	/	+	+
		+	२ स्वयं दूतत्व	×	+	+
		×	३ प्रथम मिलन स्थान (गणना)	+	×	×
		×	४ मिलन के श्रवण	+	×	×
६ हाव भाव पण्ड	+	+	१ भाव क विभाव	×	×	×
		+	आलबन	×	×	×
		+	उद्दीपन	×	×	×
		+	स अनुभाव	×	×	×
		+	ग स्थायी	×	×	×
		+	घ-सात्त्विक	×	×	×
		+	ङ व्यभिचारी	×	×	×
		+	२ हाव हेला	×	×	+
		+	नीला	×	×	+
		+	ललित	×	×	+
		+	म	×	×	+
		+	विभ्रम	×	×	+
+	विह्वल	×	×	+		
+	विलास	×	×	+		

विषय	प्रभाव	नक्षत्र	भद्र	उदाहरण			
				सामान्य	प्रच्युत राधाकृष्ण प्रकाश		
		+	किलकिचित	×	×	+	
		+	दित्रोक	×	×	+	
		+	विच्छित	×	×	+	
		+	मोटटावित	×	×	+	
		+	कुटटमित	×	×	+	
		+	बाधक	×	×	+	
७ अष्ट नायिका	सप्तम	+	क१ स्वाधीन } पतिका	×	+	×	
		+	२ उत्का	×	+	×	
		+	३-वामकसज्जा	×	+	×	
		+	४ अभिसंधिता	×	+	×	
		+	५-खडिता	×	+	×	
		+	६ प्रोपितपतिका	×	+	×	
		+	७ विप्रलभा	✓	+	×	
		+	८ अभिसारिका	×	+	×	
		+	ख६ उत्तमा	×	×	×	
		+	१ मध्यम	×	×	×	
		+	११ अघम	×	×	×	
		+	१२ अगम्या	+	×	×	
				ग अभिसारिका } क उपभद्र			
				१३-स्वकीया	+	×	×
				१४ परकीया	+	×	×
		१५ प्रेमाभि गारिका	×	+	×		
		१६-गर्वाभि गारिका	×	+	×		
		१७ कामाभि सारिका	✓	+	×		
८ विप्रलभ अष्टम		+	१-गुवानुराग	×	+	+	
		+	२-गुवा	×	+	+	
९ मान नवम		+	मान	×	×	×	
		+	१ गुमान	×	+	+	
		+	२ नपुमान	×	+	+	
		+	३ मध्यम मान	×	+	+	
		+	(प्रिय का)	×	×	+	

त्रिपय	प्रभाव	लक्षण	भेद	सामान्य	उदाहरण प्रच्छन्न प्रकाश	उपसंहार राधाकृष्ण
१०	मान	दग्ग	मानमोचन			
		मोचन				
			१ साम	×	×	+
			२ दान	×	×	+
			३ भेद	×	×	+
			४ प्रणति	×	×	×
			क अतिहित	×	×	+
			ख अतिकाम	×	×	+
			ग अति अपराध	×	×	+
			५ उपमा	×	×	+
			६ प्रसंगविध्वंस	×	×	+
११	क-कृष्णा	एका	१ कृष्णा	×	+	+
	विरह	दग्ग				
	ख	प्रवास	२ प्रवास	×	+	+
			३ विरह-मय विभ्रम	×	×	+
			४ निद्रा	×	×	+
			५ पत्नी	×	×	+
१२	सखी	द्वादग्ग	जानिगत १३ नामगणना	×	×	+
१३	सखी	त्रयो	नामगणना ६	×	×	+
	कम	दग्ग				
१४	धर्म	चतु	क हास्य			
	रम	दग्ग				
			१ मदहास	×	×	+
			२ क-वहाम	×	×	+
			घनिष्ठम	×	×	+
			६ परिहास	×	×	+
			ख-कृष्ण	×	×	+
			ग रौद्र	×	×	+
			घ-वीर	×	×	+
			ङ-भयानक	×	×	+
			च-वीरम	×	×	+
			छ-धम्मून	×	×	+
			ज-मम	×	×	+

विषय	प्रभाव लक्षण	भङ्ग	उदाहरण		उपमहार
			सामान्य	प्रचलन	राधाकृष्ण
			प्रकाश		
१५ वृत्ति पञ्चम	+	१-कगिकी	+	×	×
	+	२-भारती	+	×	×
	+	३-भारभटी	+	×	×
	+	४-मात्स्वती	+	×	×
१६ अनरस पाङ्ग	+	१-प्रत्यानीक	+	×	×
	+	२-नीरस	+	×	×
	+	३-विरस	+	×	×
	+	४-दुःसाधन	+	×	×
	+	५-मात्राटुष्ट	+	×	×

रसिकप्रिया का यही विषयानुक्रम है। इसमें कई बातें प्रकट होती हैं।

१ कुछ विषय एक अध्याय में ही समाप्त हो गए हैं। कुछ का विस्तार एक से अधिक अध्यायों में है। कुछ अध्यायों में एक से अधिक विषय समाविष्ट किए गए हैं। इस तथ्य का कारण कभी तो १६ प्रभावों की संख्या पूरी करना हा सकता है और कभी भविष्यत विस्तार।

२ समस्त रचना शृंगार निरूपण को समर्पित प्रतीत होनी है। १४वें प्रभाव में शयनो का मीमांसा विवरण कर उनका अन्तर्भाव शृंगार में किया गया है। जैसे आचाय शृंगार का रमणज क रूप में अभिव्यक्त करा रहा है।

३ शृंगार-वर्णन क द्विधिया का वृत्ति और निषेधन का अनरस व्यक्त करत हैं।

४ हचिगत विस्तार और मन्त्रोच आचायत्व क उदाहरण भाग में भी मिलत हैं। उदाहरणों क मन्त्र में य प्रवृत्तिया मिलती हैं

क—कुछ म विषयों में कवन लक्षण और सामान्य उदाहरण दिए गए हैं। यहाँ आचायत्व अपेक्षाकृत अभिहित है।

ख—कुछ में लक्षण और प्रचलन प्रकाश उदाहरण दिए गए हैं। यहाँ भस्कृत आचायत्व की एक और लिंगा का प्रभाव है।

ग—कई लक्षणों क गाय कवन राधाकृष्ण मन्त्रों उदाहरण हैं—न सामान्य त प्रचलन प्रकाश।

घ—कई उदाहरणों म प्रचलन प्रकाश और राधाकृष्णपरक उदाहरणों का मिश्रण है।

ङ—कई लक्षण न दकर उक्त तीन प्रकारों में से किसी एक प्रकार क उदाहरणों की योजना है।

उक्त विषयानुक्रम क आधार पर कवच क रमणज आचायत्व का क्षत्र



निश्चित किया जा सकता है। उक्त अनुक्रम से शृंगार का शास्त्रीय पत्र भा स्पष्ट ही जाता है और उसका रुचिगत और कामशास्त्रीय विस्तार भी। शृंगार की प्रतिष्ठा में जितन उपकरणों की आवश्यकता पड़ेगी न समझी है सबका समावेश करके शत्रु को विस्तृत और युगानुकूल बनाया गया है। अब इस विस्तृत क्षेत्र का विभाजन किया जा सकता है।

### रस सबधी आचायत्व का क्षेत्र विभाजन

कण्व ने स्वयं विषय को विभिन्न प्रकरणों में बाँटकर उसका निरूपण किया है। कण्व का विभाजन सबधा = टिकोण अध्यायों के उपसंहारों से स्पष्ट होता है। कुछ उपसंहार तो सामान्य हैं। इनको द्विमुखी उपसंहार कहा जा सकता है। इनमें प्रथम अध्याय की समाप्ति और अगले अध्याय के विषय की सूचना दी जाती है।<sup>१</sup> इन उपसंहारों का लक्ष्य प्रकरणों को सुश्रुत रखना है। छठ प्रकार के अत में एकमुखी उपसंहार ही है। इसमें समाप्त विषय की सूचना और विनय का समावेश है।<sup>२</sup> इसमें शृंखला टूट सी जाती है। पर किसी आंतरिक आग्रह के कारण कण्व को आग्रह के अध्याय की सूचना देने की अपेक्षा क्षमा-याचना अधिक आवश्यक प्रतीत हुई। तीसरे प्रकार के उपसंहार परिशिष्टमूलक बह जा सकते हैं। इनके अंतगत अध्याय में समाप्त विषय के अविशिष्ट सूत्र दिए जाते हैं। कण्व के आचायत्व के पूरक सूत्र इही उपसंहारों में हैं।<sup>३</sup> इन उपसंहारों को आचायत्व का अग्रणी माना जाना चाहिए।

कुछ द्विमुखी उपसंहारों से कण्व का पत्र निर्वाचन सबधी दृष्टिकोण स्पष्ट होता है। ये उपसंहार दो अध्यायों को नहीं जोड़ते विषयों को संबद्ध करते हैं।<sup>४</sup> ये प्रभाव के पश्चात् कण्व ने उपसंहार में कहा है कि यहाँ तक राधाकृष्ण के शृंगार का निरूपण हुआ है आग्रह अथ रसों पर विचार किया जाएगा। अतः पूर्व अध्याय शृंगार का फल-अधन भी किया है।<sup>५</sup> इस उपसंहार से प्रतीत होता है कि कण्व ने अपने रस सबधी आचायत्व का पहला विभाग ही विभाजित किया है शृंगार एवं शृंगारतर रस। आगे प्रभाव के अंत में अध्याय का उपसंहार न करत हुए समस्त विषय को एक इकाई मानकर उपसंहार किया है। यहाँ तक उद्दान समाप्त शृंगार का निरूपण किया है आग्रह विषय निरूपण है

१ अथर्व र सि १। - १०८ ३।७४ ४।१६ ५।४७ ७।४५ ८।१० ९।१ १०।३

२ १।३० १।३१०० १।४६१ १।४६१

३ राधा-राधासमन के कहें या अतः आग्रह

दृष्टि के अनुसार को उद्दान का विचार। र सि ६। ७

४ अथर्व १। ८४ ७।४६ ८। ८।५४ १६ १। ८३ १।३१ १। १६। १६

५ राधा राधासमन के कहें या अतः आग्रह

रस आग्रह अथ रसों पर विचार का अर्थ। र सि १३।

६ र सि १३।११

यह सजाय मिगार की केसव बरनी रीति ।

विप्रलभ सिगार की रीति कहीं करि प्रीति ॥'

इस प्रकार सातवें अध्याय तक शृंगार व काव्यशास्त्रीय और कामशास्त्रीय अंग उपागा का निरूपण किया गया है । इसी अध्याय व अंत म यह भी कहा गया है कि नायक-नायिका पर यहां तक विचार किया गया है ।' वम इस अध्याय म बचन नायिका भन् कहा गया है । अत यह प्रतीत हाता है कि यह भी प्रकरण का उपमहार है । इस प्रकरण म दगन (प्रभाव ५) मितन (प्रभाव ५) तथा हाव भाव (प्रभाव ६) को भी मम्मिनित कर लिया गया है । द्वितीय और ततीय अध्याय म नायक-नायिका निरूपण व पञ्चान् सातवें प्रभाव म फिर नायिका भद पर आ जाने का रहस्य यही है कि बीच व प्रभावों म नायिका मयधी अय प्रमर्गों को अनुस्यूत करके इसी प्रकरण का विस्तार किया गया है । यह ममस्त प्रकरण कणव न सयोग व अनगत माना है ।

उपमहारा म कणव की वियाग मयधी आचायत्व की दृष्टि भी स्पष्ट हाती है । आठवें प्रभाव म विप्रलभ व चार भेदा की गणना करके पूर्वानुराग के लक्षण निरूपण और दग दगाधों का विवरण दिया गया है । आग व दो प्रभावों में मान का प्रकरण है और ग्यारहवें प्रभाव म करण और प्रवास का निरूपण है । आग व दो प्रभाव मखी निरूपण का ममपिन हैं । वम इस प्रकरण को विप्रलभ व साथ भी मम्मिनित किया जा सकता है । कणव का अभिमत भी राधा-हरि बाबा हरन स एमा ही प्रतीत हाता है । चौहवें प्रभाव म अय र्गों का विवरण देकर शृंगार म उनकी स्थिति दिखाने की चष्टा की गई है । कणव व मतानुसार अय रसों का प्रकरण स्वतंत्र ही है । कणव न नवरम का एक इकाई माना है । इस प्रकरण का कद्र शृंगार ही है । वृत्ति और धनरम का निरूपण करनवाले अन्तिम दो प्रभाव स्वतंत्र मत्ता रखत हैं । कणव व उपमहारगत कथनों को आधार मानकर दोन विभाजन इस प्रकार होगा—

० प्रस्तावना नवरम गणना

१ शृंगार निरूपण मयोग वियोग

१ १ गुयाग

१ ११ नायक

१ १२ नायिका भद

१ १२१ जातिगत (कामशास्त्रीय)

१ १२२ सामाजिक दृष्टि म (स्वकीयादि)

१ १२२१ दगन

१ १२२२ दपति चष्टा

१ १२२३ हाव भाव

- १ १२३ अवन्यानुसार (अष्ट नायिका भद)
- १ २ वियोग प्रकार कथन
- १ २१ पूर्वानुराग
- १ २११ लक्षण निरूपण
- १ २१२ दण्डगा
- १ २२ मान
- १ २२१ तद्वशादि
- १ २२२ मोचन विधि
- १ २३ करण
- १ २४ प्रवास
- १ २५ सखी
- १ २५१ कम
- १ २५२ धम
- २ अथ रस
- २ १ निरूपण
- २ २ शृंगार म अन्वभाव
- २ उपमहार
- ३ १ रसा का परस्पर मन्वय
- ३ २ वक्ति वषण विधि
- ३ ३ अन्तरम निपथ प ३

कण्व क रस-मन्वधी आचार्यत्व का क्षेत्र यही है। इस क्षेत्र विभाजन का क्षेत्र बिन्दु शृंगार है। रस मन्वध्या प्रथम पर शृंगार क रसराजत्व और कामगास्त्र की परम्परामा का सम्मिलित प्रभाव है। साथ ही भक्ति का प्रभाव भी स्वीकृत करना होगा। रस प्रकार का विभाजन कुछ दोषपूर्ण भी लगता है। भाव निरूपण का मन्वध शृंगार - उभय पक्षा म है पर कण्व न रस पवर्ण का भी तात्परान्तर शृंगार के अन्तर्गत रसा है। कण्व की दृष्टि प्रसन्न शृंगार पर रदा है और शृंगार क भी संयोग पक्ष पर उन्नि विस्तार म विचार किया है। रसी दृष्टिकोण का प्रभाव क्षेत्र विभाजन पर पडा है।

### क्षेत्र का मन्वाच और विस्तार

कण्व न मन्व दृष्टिकान क अनुसार क्षेत्र का विस्तार और मन्वाच भा किया है। भक्ति ऐरण क कारण मामाया का निरूपण कण्व न नहीं किया। रसा कारण म दण दणामों म म मरण दण का बहिष्कार कर लिया गया है। क्षेत्र विस्तार दो

१ और नु लब्धी रसी कदा कदा दण टौर।

रस मे विम न वरणि कहन रसिक निरुण ॥ २० प्रि ५। ३

२ कौ ८२४

गनिया म किया गया है । पहला गली उदाहरणों क विस्तार की है और दूसरी गली उपमहार क रूप म परिगिष्ट चोदन की है । ऊपर त्रमणिका की जा तालिका दी गई है उमम उदाहरणगत विस्तार की प्रवृत्ति स्पष्ट होती है । उदाहरण विधान स विस्तार और मकाच का निम्ननिम्न प्रवृत्तिया परिचित होती हैं

१ कवन लक्षण निरूपण उदाहरण का अभाव परिगिष्टा का कवय न उदाहृत नहा किया है । एक माय ती घष्ठ प्रभावात्तगत भाव निरूपण क कवल लक्षण दिए गए हैं उदाहरण नहीं । विभाव अनुभाव स्यामी मात्त्विक और अभि चारी क लक्षण और भदों का परिगणन ता किया गया है इनको उदाहृत नहीं किया गया ।

२ सामान्य उदाहरण-याजना कुछ प्रकरणा क त्रिए प्रच्छन्न प्रकाश या राधाकृष्णपरक उदाहरण नहीं लिए गए हैं । कवन सामान्य उदाहरण दकर प्रकरण को नमाप्त कर लिया गया है । हम प्रवृत्ति क दोनक प्रकरण य हैं कामगाम्नीय पश्चिमी श्राप्ति नायिकाए सामाजिक स्थिति क अनुमार स्वकीया आदि नायिकाए प्रथम मितन क स्थान और अक्षर उत्तम मध्यमा और अधमा नायिकाए वृत्तिया और अक्षरम ।

३ प्रच्छन्न प्रकाश उदाहरण-याजना कुछ प्रकरणा क माय कवन इसी प्रकार क उदाहरण नियोजित हैं । इनम य प्रकरण आएग नायक भद अष्टविध नायिकाए ।

४ कवन राधाकृष्णपरक उदाहरण याजना हम विभाग म हाव निरूपण मान मोचन विधि गयी प्रकरण तथा अक्षर रमों का निरूपण ।

५ प्रच्छन्न प्रकाश एक राधाकृष्णपरक उदाहरण की समुक्त योजना अप प्रकरण इसीक अतगत हैं । य हम प्रकार हैं मयाग विभाग निरूपण दगत दपनि चष्टा विप्रलभ म दग दगा मान निरूपण कल्प वियोग और प्रवाम वियोग । कहन की आवश्यकता नहीं कि जहा उदाहरणों का नितात अभाव है वहा कवय का आचायत्व विगुद्ध है । गुद्ध बौद्धिक दृष्टि स ममम्न निरूपण किया गया है । रचि युगधम श्राप्ति क द्वारा उनक आचायत्व का नियन्त्रण नहीं हुआ है पर उदाहरणा क अभाव म आचायत्व एकांगी अवश्य है । हम अत वान विषय गुद्ध गाम्नीय हैं । सामान्य उदाहरण-योजनावान प्रथम भी गुद्ध आचायत्व क चानक हैं । उदाहरणों की योजना करते हम पून बनाया गया है । प्रच्छन्न प्रकाश उदाहरणों का याजना पर पुरान विस्तारप्रिय आचायों का प्रभाव है । लक्षणों का विम्नन ध्यास्या की शार नहीं आचाय का ध्यान उदाहरणगत विस्तार की ओर है । चौथी और पाचवी प्रवृत्तिया रचि और युगधम म प्रभावित विस्तार की परिचायिका है । जहा गुद्ध मद्दानिक पक्ष कवय क गामन रहा है वहा उहनि उदाहरणगत विस्तार नहीं किया है ।

कवय न अपन मौलिक दग म कुछ क्षत्रों का विस्तार किया है । हम विस्तार म बहुधा कामगाम्नीय और भक्तिगाम्नीय म महायता ली गई है । मौलिक विस्तार इसलिए कहा जाता है कि मस्त्रन क पूर्वाचार्यों न हम विस्तार की शार विशेष ध्यान

नहीं दिया। इस प्रकार के विस्तार स्थल ये है

१ सुरतिविचित्रा मध्यानायिका के निरूपण में सात बहिरति मात अंतरति, पाङ्ग शृंगार और सुरतात का उल्लेख किया गया है। कामसूत्र में आर्लिगन विचार चुवन विकल्प नख रदन क्षत चित्ररत आदि के रूप में इनका समावेश है। उत्तर कालीन मधुरा भक्तिवाले मप्रदायो में सुरतात बणन की पद्धति बहुत लोकप्रिय हो गई थी। इनपर नायिका भेद का न अर्ध्याय में विस्तृत विचार किया गया है।

२ चार प्रकार के दग्ना की स्वतंत्र चर्चा में भी विस्तार प्रियता भलवती है। इनमें छाया दग्ना का समावेश करके कंगव ने मौलिक विस्तार किया है। सभी दग्नों का उल्लेख निरूपण भी उन्होंने किया है। संस्कृत के किसी आचाय ने ये नहीं दिए हैं। यह संयोग पक्ष का विस्तार है।

३ दपति चोटा में भी काव्याशास्त्र के कामशास्त्रीय विस्तार का प्रयत्न है। कामसूत्र में समागम स्थला की चर्चा की गई है। इनके प्रभाव से कंगव ने प्रथम भिन्न के स्थला का परिगणन किया है। कंगव ने इनको स्वमतसम्मत कहा भी है।<sup>१</sup> भिन्न के बहाना पर भक्तिगत प्रभाव भी है।

४ अगम्याओ की गणना (रमिकप्रिया ७वा प्रभाव) भी कामशास्त्रीय विस्तार के अंतर्गत आती है। इसमें कामक्षत्रीय नीति का समावेश है।

५ कंगव की दृष्टि मान प्रकरण पर विनोद रही है। भक्ति साहित्य में भी यह प्रकरण विनोद लोकप्रिय था। प्रसंग का उपसंहार करते हुए मान के सबंध में नीति-कथन किया गया है। मान के समय अति हठ बजित है। मान बार-बार नहीं करना चाहिए।<sup>१</sup> प्रेम और भय का संबन्ध दिखलाने हुए तुलसी की 'भय विनु होइ न प्रीति का उपयोग किया है—

प्रीति बिना भय होय नहिं भय विनु होय न प्रीति।

प्रीति रहे जह भय रहे यहै मान की प्रीति ॥

नाम्पत्य जीवन में उत्पन्नता आने के कारणों में गव यमन घनत्याग निष्ठुर बचन तालच विप्रियकरण की गणना की है। इसीमें मान सबंधी नीति का उपसंहार है।<sup>१</sup>

६ आठवें प्रभाव के उपसंहार में भी रति-संबंधी नीति का कथन किया गया है। पहले रमणी के मन में रति का संचार होता है। उसका सबंध पाकर सब्धी उसका प्रकाशन करती है। यही रतिविधि है। अत्यंत आदर तोष और समग में माधुआ का मन भी चंचल हो जाता है।

७ ग्यारहवें प्रभाव में प्रवाम की चार स्थितियों का भी मौलिक विस्तार है।

१ प्रथम भिन्न मत में कह अपनी मति अनुसार। २ वि० ५१५१

बदा १। ४

३ बदा १३

४ बदा १३१

५ बदा १०१३

भव विभ्रम म प्राकृतिक वस्तुओं को देखकर संयोग के क्षणों की याद का उल्लस है। अनिद्रा की अवस्था का समावेश भी मौलिक है। पत्नी का तत्त्व विरह निवेदन या संदेश के अंतर्गत है। लक्ष्य साहित्य के प्रभाव से यह उक्षण विस्तार किया गया है।

८ सखीकर्म का विस्तार कामगास्त्रीय ही है। भोज और भानुदत्त म रस विस्तार का धीज मिलता है। कामगास्त्र म इसकी सामग्री ह। इस विस्तार की प्रेरणा भक्ति संप्रदाय से मिली ह।

मुख्य रूप से वेगव ने इन्हीं क्षणों का विस्तार किया है। कुछ विस्तार स्थल तो मात्र गणनात्मक हैं। नाम गणना को ही यहाँ कागव ने पर्याप्त समझा है। लक्षण और उदाहरण नहीं दिए हैं। अथ गोपिका म १४५६ वसी प्रकार के विस्तार क्षत्र हैं। गोप में नाम गणना के साथ त्रिगुण और उदाहरण भी नियोजित हैं। जहाँ लक्षण और उदाहरण भी हैं व स्थल कागव के आचायत्व व अभिन अग बन गए हैं। केवल गणना रतिविधि व स्पष्टीकरण व लिए है।

कागव व रस संबंधी आचायत्व की एक और दिशा है। इस दिशा का परिचय रसिकप्रिया से नहीं कविप्रिया से मिलता है। अलंकारवादी होन व नात वक्षव की रस व संबंध में एक विगिष्ट दृष्टि रही है। भामह और दंडी जस रसवादी आचार्यों ने भी रस की महत्ता स्वीकार की है। पर उनकी दृष्टि में रस अलंकार की सीमा से बाहर नहीं है। भामह दण्डी और उद्भट ने रस भाव रसाभास और भावाभास का क्रम रसवत् प्रियस्वत और ऊन्नस्वत अलंकारों के रूप में ही ग्रहण किया ह। उद्भट ने समाहित नामक अलंकार को भावगाति का पर्याय माना ह। कागव ने सभवत इन्हीं आचार्यों का अनुगमन करत हुए ऊज रसवत् और समाहित जस रसपरक अलंकारों का निरूपण कविप्रिया व ग्यारहवें और तरहवें प्रभावा में किया ह। इससे संबंध में आगे यथास्थान विवचन किया गया ह। यहाँ केवल क्षेत्र निर्देश कर दिया गया ह। उहाँने रसवत् अलंकार के अंतर्गत नवरसा का निरूपण किया ह।<sup>1</sup>

### वेगव का अलंकार-संबंधी आचायत्व (कविप्रिया)

कविप्रिया में कागव का व्यक्तित्व कवि शिक्षक के रूप में प्रतिष्ठित है। रसिकप्रिया का आचायत्व युगरुचि भक्ति भावना आदि से मिश्रित रहा। कविप्रिया में आचायत्व की भूमि भावुकता से इतनी विचलित नहीं है। इसमें शास्त्र और परम्परा की दृढ़ता है। नवीन कवियों के लिए शास्त्र और परम्परा का सुलभ करव एक नवीन 'वरन पय की स्थापना कविप्रिया व आचाय का अभीष्ट है। इसमें यदि क्षेत्र का विस्तार है तो शास्त्रीय या चमत्कारमूत्रक है। यह अथ रसिकप्रिया से मिलकर कागव व सम्पूर्ण आचायत्व को प्रतिष्ठित करता है। जिस दाप प्रकरण से रसिकप्रिया का समापन किया गया है उमासे कविप्रिया का आरम्भ। अंत में

रसमय हाय गु जानिये रसकन केशवगास।

नवरस का संघष ही, समुझी करन प्रकारा ॥ ६० प्रि० १११३

रसिकप्रिया के दोष प्रकरण की ओर संकेत करते हुए कविवक्त्र ने पौपा का निरूपण कहा दलन के लिए कहा है

केसव नीरस विरस अरु दुस्तथान विधानु ।

पात्र जु दुष्टादिकत्र को रसिकप्रिया तें जानु ॥'

एक प्रकार कविवक्त्र के आचायत्व की शृङ्खला की अर्वांगण्ट कडिया कविप्रिया में निर्याजित है। इन कडिया के जोड़ने से कविवक्त्र सवाग निरूपक आचायक रूप में प्रतिष्ठित हो जाते हैं। इसमें म दह ही कि कविवक्त्र की शक्ति मुख्यतः अलंकार निरूपण की ओर हो गई। अलंकार को कविवक्त्र ने एक साधारण अर्थ में ग्रहण किया है। इसीलिए कविप्रिया के सालह प्रभावों में स बारह प्रभावों में अलंकार निरूपण ही मिनता है। उनकी दृष्टि में काव्य के सभी वष्य विषय उन्हें विभूषित करने वाले उपकरण काव्यशास्त्र के सभी उपादय अंग और भावादि काव्य के अंतर्गत उपकरण अलंकार के अंतर्गत आ जाते हैं। कविरोति प्रसंग का कविवक्त्र ने अलंकार नाम नहीं दिया है। पर वह भी सामान्य अलंकार के समान ही वष्य विषय है। उसे भी सामान्य अलंकार में अंतर्भूत किया जा सकता है। दोष प्रकरण काव्यशास्त्रीय नीतिपक्ष के अंतर्गत आता है। इस प्रकार कविप्रिया का क्षेत्र नियोजन कविवक्त्र की शास्त्रीय धारणाओं पर आधारित है। अलंकार के सम्बन्ध में उनका धारणाएं ये हैं

१ अलंकार और अलंकार्य में भेद नहीं माना वष्य वष्य भूमी राज्यधो शक्ति वष्यनीय विषय भी अलंकार्य न होकर उनका दृष्टि में अलंकार है। शृंगारशक्ति रम भी अलंकार्य न होकर अलंकार ही है। रममूत्रक वष्य को उद्धान विधिष्ट अलंकार्य म रखा है और विवरणमूलक वष्यन विधि का सामान्य अलंकार्य म ।

२ काव्य के सभी मौल्य विधायक उपकरण—चाहे परंपरामूत्रक हा चाहे शास्त्रीय—अलंकार्य हा हैं ।

अलंकार्य काव्य के अनिचाय अंग है ।

एक म अंतर्गत को वा शीघ्र तो भामह दण्डी उद्भूट और वामन जैसे आचार्यों में मिन जाता है। उनकी प्रथम मायता मौलिक उपकरण है। कविवक्त्र के समान अमरचन्द्र मति एक कविवक्त्र मिन न काव्यकल्पतावृत्ति और अलंकार्यम्वर म काव्य को वष्य सामग्री को तो मगृहीत किया है पर उम मयका अलंकार्य सना नहीं दी। कविवक्त्र ने एम अलंकार्य नाम दत्तर अलंकार्य के अर्थ का अत्यंत विस्तृत किया है। दण्डी ने नाटकीय मधिया सध्याओं वनियों वत्यगा न उणा तथा गुणा का अंतर्भव अलंकार्य में किया था। इमम अलंकार्य विधा का क्षेत्र विस्तार हुआ था। पर य सभी उपकरण अमत्कार्यपात्रक हा य वष्य सामग्री नहा। वामन ने मौल्यमलंकार्य कहकर मद्रम काव्यापवारक सामग्री को अलंकार्य में अंतर्भूत कर अलंकार्य के अर्थ का विस्तृत किया। पर वष्य सामग्री का भी एक परंपरा बनी। उम सामग्री का प्रथम

१ क वि ३१२६

अलंकार्य कविप्रिया का मन् मुत्र निर्विध विवर ।

कविवक्त्र केसव अरु कविप्रिया का मन् ॥ क वि० ३१२

वार कविव्यक्ति न 'अलंकार में समाविष्ट करके अलंकार के अर्थ की सीमाओं को और भी विस्तृत कर दिया। कविव्यक्ति के मूलभूत उद्भावना के अर्थों पर एक वृत्तक उठाए जा सकते हैं जिस प्रकार शृंगार में सभी रसों के अंतर्भाव करने की प्रक्रिया पर किंतु कविव्यक्ति न शृंगार और अलंकार दोनों के क्षेत्रों का अतिरिक्त विस्तार करने की चर्चा आवश्यक है। कविव्यक्ति में अलंकार के क्षेत्र विस्तार का प्रयत्न ही मिलता है। कविव्यक्ति के अर्थों के अर्थों में कविव्यक्ति के क्षेत्रों का विभाजन करना चाहिए। सबसे पहले कविव्यक्ति के अनुक्रम पर दृष्टिपात कर लेना चाहिए। अलंकार के कविव्यक्ति के क्षेत्रों के अर्थों में अलंकार का अर्थ है।

प्रभाव संख्या	विषय	भेद	लक्षण	गणना	उदाहरण संख्या
	दाप	क मन्त्रोप कवित्त	+	×	१
		१ अर्थ	+	×	१
		२ अधिर } ३ पदु }	+	×	१
		४-अर्थ	+	×	१
		अलंकारहीन रमहीन	+	/	१
		५ मूलक	+	×	१
	ख दूषणवर्णन				
		१ अर्थ	+	+	+
		२ हीन रम	+	×	१
		३-वर्तिभग	+	×	१
		४-यय	+	×	१
		५ अर्थ	+	×	१
		६ हीन रम	+	×	१
		७-वर्ण वदु	+	×	१
		८-पुनरुत्त	+	×	२
		९ विरोध <sup>१</sup>	+	×	५
४	क कविभेद	उत्तम	×	+	×
		मध्यम	×	+	×
		अधम	×	+	×
	ख कविरीति	मूल्य	+	×	×
		मिथ्या	+	×	२
		कवि नियम	+	×	×
		सोसह शृंगार	+	×	×
		महापुराण	+	×	२

१ दश विरोध काल विरोध लोक विरोध न्याय विरोध आत्म विरोध।



प्रभाव सख्या	विषय	भेद	वक्षण	गणना	उदाहरण
५	कविता अलंकार	क सामान्य			
		१-वर्ण	+	×	६
		श्वेत	+	×	१
		पीत	+	×	१
		कृष्ण	+	×	१
		श्वेतकृष्ण	+	×	१
		आरक्त	+	×	१
		घग्ग	+	×	१
		नील	+	×	१
		श्वेतवृष्ण	+	×	१
		श्वेत पीत	+	×	१
		श्वेत आरक्त	+	×	१
६	वर्णालंकार	२-वर्ण			
		सम्पूर्ण	+	×	१
		आवत	+	×	१
		कुटिल	+	×	१
		त्रिकोण	+	×	१
		सुवत्त	+	×	१
		तीक्ष्ण गुरु	+	×	१
		कोमल	+	×	१
		कठोर	+	×	१
		निश्चन	+	×	१
		चञ्चल	+	×	१
		मुखद	+	✓	१
		दुस्व	+	×	१
		मदगति	+	×	१
		शीतल	+	×	१
		तप्त	+	×	१
		मुरूप	+	×	१
		नुर स्वर	+	✓	१
		मुस्वर	+	✓	१
		मधुर	+	✓	१
		शबल	+	✓	१
		बनिष्ठ	+	×	१
		नाच भूट	+	×	२

प्रभाव	विषय	भेद	लक्षण	गणना	उदाहरण
७	वर्णालकार	मडल—	×	+	१
		अगति	×	+	१
		सदागति	<	+	१
		दान	×	+	१२
		भूमि भूषण	×	+	१
		दण	×	+	१
		नगर	<	+	१
		वन	/	+	१
		गिरि	>	+	१
		प्राथम	>	+	१
		सरिता	×	+	१
		वाप	×	+	१
		ताल	×	+	१
		समुद्र	×	+	१
		सूर्योदय	×	+	१
		चन्द्रोदय	×	+	१
		वसत	×	+	१
श्रीष्म	×	+	१		
वषा	×	+	१		
गरद	×	+	१		
हमस	×	+	१		
गिरि	×	+	१		
८	वर्णालकार	राज्य श्री—			
		राजा	×	+	१
		रानी	×	+	२
		राजकुमार	>	+	१
		पुरोहित	×	+	१
		सनापति	×	+	१
		दूत	<	+	१
		मन्त्री	>	+	२
		मन्त्री मति	×	+	१
		प्रयाण	×	+	२
		हय	<	+	१
		गज	×	+	१
		सशाम	>	+	१
		घामट	/	+	२
		जलकलि	∩	+	१
		विरह	>	+	४

प्रभाव सह्या विषय	भेद	लक्षण	गणना	उदाहरण	
	स्वयवर	×	+	१	
	सुरति	×	+	१	
६	जाति	×	+	१	
	विभावना	विना कारण काय	+	×	१
		अय कारण	+	×	१
	हेतु	अय काय	+	×	१
		सभाव हेतु	×	×	१
		अभाव हेतु	×	×	१
		अभाव सभाव हेतु	×	×	१
	विरोधाभास	×	+	×	१
	विरोध <sup>१</sup>	×	+	×	२
	विशेष	×	+	×	५
	उत्प्रेक्षा	×	+	×	२
१०	आक्षेप	प्रेमाक्षेप	+	×	१
		अघर्षाक्षेप	+	×	१
		घर्षाक्षेप	+	×	१
		सगयाक्षेप	+	×	१
		मरणाक्षेप	+	×	१
		आग्निपाक्षेप	+	×	१
		घर्षाक्षेप	+	×	१
		उपायाक्षेप	+	×	१
		गि आक्षेप	+	×	१२
११	अम	×	+	×	३
	गणना	×	×	+	१२
	आगिप	×	+	+	२
	प्रेमानकार	×	+	×	१
	अलपावकार	×	+	×	५
		अभिन्न पद	+	×	१
		भिन्न पद	×	×	१
		अभिन्न क्रिय	×	+	१
		अविच्छिन्न क्रिय	×	+	१
		विच्छिन्न क्रिया	×	+	१
		नियम	×	+	१
		विगथा	×	+	१
	अमम	×	+	×	१
	अमग	×	+	×	१
	अनिश्चयता	<	+	×	१

प्रमाव संख्या विषय	भेद	लक्षण	गणना	उदाहरण
उज	×	+	×	१
रसवत्	शृंगार	×	+	१
	रोम्	×	+	१
	वीर	×	+	१
	करुण	×	+	१
	भयानक	×	+	२
	वीभत्स	×	+	१
	अद्भुत	×	+	२
	हास्य	×	+	१
	गात	×	+	१
अर्थात्तर				
यास	—	×	+	१
	युक्त	+	×	१
	अयुक्त	+	×	१
	अयुक्त युक्त	+	×	२
	युक्त अयुक्त	+	×	२
यतिरक	युक्ति	+	×	१
	सहज	+	×	१
अपह नुति	×	+	×	२
उक्ति	+	+	×	×
	वक्रोक्ति	+	×	१
	अयति	+	×	२
	व्यधिकरणोक्ति	+	×	५
	विशोक्ति	+	×	५
	सहोक्ति	+	×	१
व्याज स्तुति	—	+	×	१
निदाव्याज	—	+	×	२
अमित	—	+	×	२
पर्यायोक्ति	×	+	×	१
मुक्त	+	+	×	१
समाहित	×	+	×	२
मुग्ध	×	+	×	५
प्रगुग्ध	×	+	×	१
विपरीत	×	+	×	२
रूपक	+	+	+	×
	अद्भुत रूपक	+	×	१
	विगुग्ध रूपक	+	×	१
	रूपक रूपक	+	×	१

१२

१३

कविप्रिया व आधार पर केशव के आचायत्व के दो भाग हो जाते हैं गणनात्मक और लक्षण-आत्मक। सामान्य अलंकारों का क्षेत्र गणनात्मक है जहाँ केशव का विश्वकोपीय यत्न प्रकट हुआ है। दोष और अलंकार निरूपण लक्षण-आत्मक आचायत्व में आते हैं। इस क्षेत्र में केशव संस्कृत के पुराने आचार्यों के समकक्ष आते हैं। काव्य की वर्णन-रीति की शिक्षा इन दोनों ही आधारों पर होती है। बरनन पद्य की शिक्षा ही केशव का लक्ष्य है—समझें बाला बालकनि बरनन पद्य अगाध। विगिष्टानकारों का क्षेत्र दण्डी के समान प्रतीत होता है। केशव ने चालीस अलंकारों का ही निरूपण किया है। पर अत्रांतर भेद प्रभेदों के निरूपण के द्वारा केशव ने विवेच्य क्षेत्र का विस्तार किया है। भेद विस्तार में तीन प्रवृत्तियाँ मिलती हैं। कहीं तो आचार्यों के आधार पर भेदों की चर्चा की गई है कहीं उनके भेदों का अर्थ स्रोतों के आधार पर या भौतिक रूप से विस्तार किया गया है और कहीं कहीं गणनात्मक पद्धति एवं उदाहरणों के बाहुल्य से विस्तार किया गया है। क्षेत्र-संकोच की प्रवृत्ति भी कहीं कहीं मिलती है। इन विगिष्ट क्षेत्रों का स्पष्टीकरण इस प्रकार किया जा सकता है।

### विस्तार की प्रवृत्ति

आचार्यों के भेद विस्तार विभावना का भेद-व्ययन दण्डी और भोज के समान है। मयक का विस्तार केशव ने प्रायः दण्डी के आधार पर किया। दण्डी के भेद विस्तार को स्वीकार करके चरन पर भी केशव ने इसका अधिक विस्तार में रचि ली है। चित्र का विस्तार अमरचन्द्रयति की काव्यकल्पलतावृत्ति के आधार पर किया गया है। पद्य-इमक विस्तार के लिए केशव की रचि ही उत्तरदायी है। रीति काय के सम्भवतः किसी आचार्य ने चित्र का वृत्तना विस्तार नहीं किया। केशव ने अधिकांश भेद विस्तार प्राचीन आचार्यों के अनुसार किया है। इसी प्रकार अर्थ-आचार्यों के सर्वप्रथम भाँ तुलनात्मक दृष्टि से निष्कर्ष निकाल जा सकते हैं। इनपर प्रथम भाग पर आगे विचार किया गया है।

छन्दशास्त्रीय विस्तार दोष-निरूपण में अगण' दोष की गणना भी की गई है। अगण' के प्रकरण का केशव ने छन्दशास्त्रीय विस्तार दिया है। इस विस्तार को केशव ने आवश्यक समझा है। हम दोष का स्पष्टीकरण बिना इस पृष्ठभूमि के नहीं हो सकता था। इन विस्तार में य' गीयक लिए गए हैं गणागण-वर्णन गणागण-वृत्त-वर्णन गणागण-जाति-वर्णन गणागण-पत्राफन-वर्णन अगण विचार और सधु गुरु-वर्णन। इस प्रकरण के माय मनन पौराणिकता का भाँ केशव ने नहीं छाँटा है। अगण विचार पर पहुँच पत्रक मनन वामुकि नाग ने विचार किया था। पत्राफन विचार में केशव ने छन्द और कविता का प्रयोग भाँ स्पष्टीकरण के लिए किया है। इन सब छन्दों का प्रयोग अर्थ-वचन उदाहरणों के रूप में मिलता है। यह

केशव ने विगिष्टानकारों का सूच्य ३७ बना है। पर कुछ विगिष्टानकारों को छोड़कर ४ ही बना है। पद्य का सूच्य केशव द्वितीय भाग पर पद्य के प्रमुख आचार्यों के सूच्य १ ३६

३. अने विगिष्टानकारों के सूच्य का सूच्य ३७ बना है। पर कुछ विगिष्टानकारों को छोड़कर ४ ही बना है। पद्य का सूच्य केशव द्वितीय भाग पर पद्य के प्रमुख आचार्यों के सूच्य १ ३६

विस्तार अधिकांश म गणनात्मक है। गणना व कुछ भाग को उठाहृत भी किया गया है। गणागण और गुरु लघु को स्पष्ट करने व लिए उदाहरणों की योजना की गई है। वेगव का विगत जान यहा पूरक रूप म प्रयुक्त हुआ है। यही छन्दमाला' म स्वतंत्र रूप म विकसित हुआ है।

काव्यशास्त्रीय नीति विस्तार कही कहीं सामान्य नीति का भी कथन किया गया है। दोष निरूपण से पूर्व सदोष कवित्व व वजन को विस्तार दिया है। सामान्य व्यवहार-सबधी नीति की पृष्ठभूमि पर इस वजन का रखकर विगण बल दिया गया है। कमी प्रकार की नतिक भूमिका काय आगम विरोध नामक दोष को प्रदान की गई है। 'नखलिख-सबधी सामान्य नीति का कथन इस प्रकार किया गया है

नखलें सिल्लों बरनिय देवो दोषति देति ।

सिल्लें नखलों मानुषी वेसवदास विलेखि ॥'

चित्र कविन व सप्रथ म जो सामान्य कथन हैं, व अधिक शास्त्रीय हैं। उनक अनुसार अगण आदि दापा पर चित्र रचना म ध्यान नहीं दिया जाता। मोटे पतले अक्षर—य ज व व आदि—का भेद भी इसकी मरचना म नहीं माना जाता। इस नीति का कथन चित्र कवित्व की रचना की कठिनाई को ध्यान म रखकर किया गया है। सामान्य नीति कथन की प्रवृत्ति रसिकप्रिया की अपेक्षा कविप्रिया म कम दृष्टिगोचर होती है। इस प्रकार वेगव न कवन लक्षण और उदाहरणों की ही रचना नहीं की सामान्य रूप म आवश्यकतानुसार उहान काव्यशास्त्रीय रीति नियमों का उल्लेख कर दिया है। य नीति कथन कविप्रिया तक ही सीमित नहीं है। रसिकप्रिया में भी इन प्रकार व कथन मिलते हैं। उदाहरण व लिए मान-सबधी नीति कथन दिया जा सकता है।

मौलिक और उदाहरण-वाहृत्य से विस्तार का उपानकार व निरूपण म कविप्रिया का पूरा प्रभाव प्रभाव समर्पित है। इस अलकार व क्षय विस्तार की प्रवृत्ति दही म भी दृष्टिगत हाती है। पर वेगव का विस्तार कुछ विगिष्ट है। जहा दण्डी न प्रतिपद्य का वजन वनमान और भविष्य तक सीमित रखा है बहा वेगव न भूतकाल म भी प्रतिपद्य माना है। वेगव न १२ भू प्रभेदा का चर्चा की है। इनम से प्रेम अथय अथ मरण और शिक्षाभेद दही म नहीं मिलते। साथ ही बारहमासा काव्य रूप का विगणप म सम्मिलित करके वेगव न एक अलकार व क्षय का मौलिक उदाहरणमूलक विस्तार किया है।

गणना व विस्तार म कोपीय खोनों का मौलिक उपयोग वेगव न किया है।

१ क दि० ३१४५

२ वही ३१५७

३ वही ३५१३

४ वही ३६१२ ३

५ दण्डी का उदाहरण २४ भेदों का उल्लेख किया है। परन्तु ने इन मधका प्रयोग नहीं किया।

सामाज्यकार की भूमिका में इसका निरूपण किया गया है। बंगव ने एक मन्त्रक द्वाय सरयामूचक गदो की नाम गणना की है।<sup>१</sup> दो छंदो में गणना के उदाहरण देकर उदाहरण-सख्या बरह कर दी है। मौलिकता भी इस क्षेत्र विस्तार में स्पष्ट भलकता है। यह विस्तार सस्कृत के अधिकांश आचार्यों में नहीं मिलता।

आणिपानवार का लक्षण अत्यंत व्यापक कर लिया गया है। माता पिता गुरु देव और मुनिया के आगेर्वादा को भी इसमें अंतर्गत मानकर बंगव ने अपनी विस्तारप्रियता का परिचय दिया है।

इसमें क निरूपण में बंगव ने शास्त्रीय पक्ष का तो संकोच किया है—दण्डी के ६ भदो में से केवल सात चुने हैं—पर अर्थ दिशाओं में विस्तार किया है। एक तो भिन्न निया नामक मौलिक भद का बंगव ने जोड़ा है। दूसरे ५ अर्थ वाले श्लेष तक के ५ उदाहरण प्रस्तुत करके चमत्कारमूलक उदाहरणगत विस्तार किया है। इसमें आचायत्व का प्रावहारिक पक्ष पुष्ट और व्यापक हुआ है।

प्रहलिका के संबंध में आचार्यों में मतभेद रहा है। कुछ आचार्य इस रमोरक्य में बाधक मानकर छोड़ देते हैं। दण्डी ने इसमें सोलह प्रकारों का उल्लेख किया है। बंगव ने दण्डी का अनुकरण करते हुए इसे स्वीकार किया है और इसमें उदाहरणों में आठ पहेलियां समाहित की हैं।

उपमा का विस्तार नखलिख बणन से किया गया है। अमर बंगव ने अग प्रत्यय के परंपरित उपमानों उनकी प्रसिद्ध विगणनाओं आदि का विवरण देकर उपमा का क्षेत्र विस्तार किया है। यह विस्तार भी कागगत कहा जाएगा। वास्तव में नख लिख एक स्वतंत्र कान्यरूप बन गया था। इसका उपयोग बंगव ने उपमा के व्यावहारिक विस्तार के लिए किया है। या या कहिए कि अनुकूल प्रसंग पाकर बंगव ने उसका बणन किया है। कहीं अध्यामति जीव जड कसव पाई प्रसंग।

यमक के विस्तार में बंगव ने विरोध रचि नो है। यमक के जो उदाहरण बंगव ने प्रस्तुत किए हैं उनमें किमीकी छाया प्रतीत नहीं होती। यमक अधिकांश उदाहरण यमक के साथ ही समाप्त हैं। आचायत्व का प्रावहारिक पक्ष उदाहरणों में व्यक्त होता है। उदाहरणों के विषय और उनके विस्तार पर कवि के व्यक्तित्व और युग का छाप रहती है। कुछ अनुकारों के लिए बंगव ने कहीं आचार्यों पर एक से अधिक उदाहरण दिए हैं। सामान्यतः काई मा आचाय उदाहरणों की संख्या बंगव में अधिक है। फिर भी उदाहरण विस्तार की कुछ प्रवृत्तियां अभी जा सकती हैं। बंगव ने कविधियां में उदाहरणों के कविधय पर ध्यान रखा है। विगणन अनुकार के पाके उदाहरण लिए गए हैं। अमर में दा गिव के दो कृष्ण के और एक अनिराम के संबंध में है। अनिराम का उदाहरण अधिगणनाक्ति तथा विगणोक्ति के संबंध में भी किया गया है। अमर एक सामान्य व्यक्ति के संबंध में विगणन बयन किया गया है। दूसरी

१. सरयामूचक द्वाय सरयामूचक गदो की नाम गणना की है। दो छंदो में गणना के उदाहरण देकर उदाहरण-सख्या बरह कर दी है।

प्रमुख प्रवृत्ति नीति-सबधी है। इनमें आचार क तीन अयुक्त युक्त के दो युक्त अयुक्त के दो अयाति क दो और सुतिष्ठ क दो उदाहरण नीतिपरक हैं। उदाहरण विस्तार म तीसरी प्रवृत्ति प्राग्निमूलक है। जहा अवसर मिला है अद्वितीय मिह चन्द्रसन दूलह राम अमरमिह, राय प्रवीण काममना आदि की प्राग्नि म उदाहरणा का विस्तार किया गया है। विणिष्टालकारा म दत्तप अथह नुति अमित आदि क उदाहरण इसके प्रमाण क लिए द्रष्टव्य हैं। सामा यालकारो क निरूपण म भी य प्रवृत्तिया मिलती हैं। दान-वणन म १२ उदाहरण हैं। इनम स अतिम दो इन्द्रजीत और वीरबल क दान स सम्बद्ध है। प्राकृत जना क अतिरिक्त कणव ने राम के यगमान-सबधी उदाहरणा का भी बाह्य रखा है। अबत क वणन म राम की प्राग्नि क दो छंद हैं। दान वणन में राम क दान क मवध में तीन उदाहरण दिए गए हैं। इस प्रकार जब प्राग्नि का प्रसंग उदाहरणा में आता है तो उदाहरणो का कुछ विस्तार हो ही जाता है।

उदाहरण विस्तार की एक विशिष्ट पद्धति कणव में मिलती है। कणव ने विवरणात्मक कायस्था का समावग भी उदाहरणा म किया है। इस प्रकार ने तीन कायरूप विषय रूप म लोकप्रिय रहे हैं यत् श्रुतु वारहमासा और नल शिख। कणव न भूमिभूषण गिशाभय और उपमा क निरूपण म उदाहरणस्वरूप इन कायस्था का समावग किया है।

उक्त प्रवृत्तिया क कारण उदाहरण योजना गुड शास्त्रीय अभिप्राय स प्रेरित महा रह पाइ है। इनमें कणव का नामाय गान उाकी रुचि और युगधम ही परिलक्षित हैं। गेप उदाहरणा म विषय चाहे जो हा लक्षणा को उदाहृत करने और विषय क स्पष्टीकरण की प्रवृत्ति ही मिलती है। श्लेष चित्र यमक आदि के उदाहरणा म चमत्कार की प्रवृत्ति प्रमुख है। सक्षप म कणव की उदाहरण विस्तार सबधी प्रवृत्तिया इन प्रकार है

- १ लक्षणो क स्पष्टीकरण की प्रवृत्ति
- २ चमत्कारमूलक उदाहरण विस्तार प्राग्निमूलक उदाहरण विस्तार
- ५ भक्ति भावना, शृंगार स प्रेरित उदाहरण विस्तार
- ५ नीति गान वराग्यमूलक विस्तार
- ६ बहूनाम प्रागक उदाहरण
- ७ बाध्यरूपीय उदाहरण विस्तार।

कायस्थीय उदाहरण विस्तार को कुछ विद्वाना ने कविप्रिया का अंग नहीं माना है। बाह्यमामा नमगिन्य और गिम्बनस स्वयं रूप म भी प्रचलित हैं। साला भगवान दोन न तिसा ८ वइ एक प्रतिया म १४वें प्रभाव क अत म नायिका का गयगिर-वणन भी सम्मिलित पाया जाता है परंतु हम उतन गड को इस अर्थ का अंग नहीं मानते अत हमने उम छात्र किया है। वारहमाम का उदाहरण भी स्वीकृत किया



ह। प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने लिखा है— एसा प्रतीत होता है कि वगवत्त्व का यह प्रसंग कविप्रिया के अतगत ही रत्न की सूक्त बाद में सूभी। तब इस कथा रखा जाए इस दृष्टि से उपमालकार के अतगत इस उद्देश्ये किया। यह प्रसंग रखा गया चौदहवें प्रभाव की समाप्ति पर। उसमें सख्या नखलिख की पृथक् से दी गई। इसीसे किसीने इस चौदहवें प्रभाव का अंग नहीं माना पंद्रहवें में रख लिया। उदाहरणों के रूप में वगव न पारिभाषिक रूप में तो काव्याशास्त्रीय आचायत्व का विस्तार नहीं किया पर आंग की परंपरा का सूत्रपात अवश्य किया। कई परवर्ती आचार्यों ने उदाहरणों की ही प्रधानता रखी है। भूषण का नाम हम सवध में विगप रूप में लिया जा सकता है। भूषण का प्रमुख काव्य उदाहरणों में माध्यम से विवाचरित्र को ही प्रकट करना रहा है।

### क्षेत्र सकोच

हतु के निरूपण में वगव न क्षेत्र सकोच किया है। दंडी द्वारा निरूपित कारक और आपक भेदा में से वगव ने कवन प्रथम को ग्रहण किया है। कमीक अभाव सभावगत भेद प्रस्तुत किए गए हैं। दंडी के प्रभंग को भी छोड़ दिया गया है।

वगव ने दण्डी के नौ अक्षर भेदा में से केवल सात का ही चुना है। इसी प्रकार दण्डी ने अष्टाक्षरयास के आठ भेदा का निरूपण किया है और वगव ने उसमें केवल चार ही भंग माने हैं। पर उदाहरणों के द्वारा हमका विस्तार अवश्य किया गया है। प्रयुक्त युक्त और युक्तयुक्त दोनों के ही इन्होंने दा-दो उदाहरण दिए हैं। व्यतिरेक के भेदों में भी वगव न कमी की है। दण्डी ने उसके दस भंग स्वीकार किए हैं जब कि वगव ने दो भेद ही किए हैं। आपक का विस्तार भी वगव ने कम कर दिया है। दण्डी ने उसके बीस भंगों की चर्चा की है। वगव ने अनुसार केवल तीन भेद हैं।

वगव ने दीपक के दो ही भंग किए हैं यद्यपि यह स्वीकार किया है कि हमके अनेक भंग हो सकते हैं। दण्डी ने एक अनेक भंग स्वीकार करके चारह भंगों का निरूपण किया है। उपमा के दण्डी ने बत्तीस भंग किए हैं। वगव ने हमसे क्वकीम भंगों की चर्चा की है। हम उपमा के हमसे अधिक भंग वगव का स्वीकार्य है।

विशिष्टांतरकाय का विवचन करते हुए वगव का बंधा यह आशय रखा है कि हम प्रकारण का भंग प्रभंग विस्तार बन्ध अधिक है। मैं उसमें से एक अंग को ही प्रकाशित कर रहा हूँ। हम आचार्य के कथन भाष्य-नत्र मिलते हैं। वगव ने आरम्भ में ही लिखा है कि 'माया' के लिए जिन अनेकार्यों का आचायकता है या जिन अनेकार्यों का माया के परिवर्ण में समन्वय है उनका ही विवरण किया जा रहा है। उक्ति के सवध में भी वगव की कमी है। आरम्भ में ही वगव ने अपने कमी अनेक भंग

१ वगव अन्वयः । सत्यं सत्यं सत्यं हीय

२ सत्यं इत्येव अन्वयः भूषण कीय मिय । ३ मि १०

३ सत्यं ३ अन्वयः उक्तं ३ इ अन्वयः अन्वयः प्रकृतं ॥ वहा १ १

स्वीकार किए हैं जिनमें से उन्होंने निरूपण के लिए तान को ही चुना है।<sup>१</sup> इसी प्रकार दीपक के अनेक भेदा में से केवल दो को चुना गया है।<sup>२</sup> उपमा का क्षेत्र भी इसी प्रकार सीमित किया गया है। अनेक भेदा में से इक्कीस का निरूपण कविवर्य ने किया है।<sup>३</sup> यमक का उपसंहार करते हुए भी कविवर्य का यह चेतना है कि मैं समस्त भक्तों का निरूपण नहीं किया। यमक के अनेक दुष्कर आयोजन हैं। इनमें से कुछ ही लिए गए हैं।<sup>४</sup> चित्रकाव्य को तो वे समुद्र के समान मानते हैं। किंतु उसकी एक बूंद का ही निरूपण कविवर्य ने किया है।<sup>५</sup> इस प्रकार एक अन्तःकार का क्षेत्र कविवर्य ने सीमित किया है जिनका क्षेत्र परम्परा से बहुत बढ़ गया था। साथ ही चमत्कार मूलक अन्तःकार का क्षेत्र सीमित होत हुए भी विस्तृत हो गया है। चमत्कार युगरुचि की मांग थी।

### गणना और लक्षण

सामान्यालंकार के क्षेत्र में गणनाप्रधान आचार्यत्व के दर्शन होते हैं। एक शास्त्रोक्त वर्णन की पद्धति और तत्संबंधी सूट अलंकारों पर यहाँ प्रकाश डाला गया है। वहीं-वहीं गणना न देकर केवल उदाहरण दिया गया है। उदाहरण के रूप में श्वेतवृष्ण मिश्रित वर्णन को लिया जा सकता है।<sup>६</sup> वहीं-वहीं इसके विपरीत केवल गणना दी गई है। उदाहरणों की योजना का अभाव है। इस प्रकार के प्रसंग ये हैं 'कविभेद' 'कविनियम' 'सोलह शृंगार' 'श्वेत भारत'।<sup>७</sup> इस प्रकार कविवर्य का गणनात्मक आचार्यत्व (=सामान्यालंकार) प्रायः अविद्यमान है। सभी गण्य वस्तुओं के लिए उदाहरण देना संभव नहीं था। इस क्षेत्र का विभाजन भी युक्तियुक्त है।

विगिष्णालंकारों का क्षेत्र लक्षणपरक है। लक्षण और उदाहरण इस क्षेत्र में परस्पर पूरक होते हैं। कुछ अलंकारों के लक्षण न देकर कविवर्य ने केवल उदाहरण दिए हैं। हेतु के सभाव अभाव और अभाव-सभाव भेद किए गए हैं।<sup>८</sup> पर इनके लक्षण नहीं दिए गए। गणना के संबंध में भी यही किया गया है।<sup>९</sup> श्लोक के

१ तान में अनेक में, तीनों कहे सुभाऊ। क०प्रि० १३।१५

२ दीपक रूप अनेक हैं में वरत दो रूप। वही १३।२०

३ उपमा में अनेक हैं में करने इक्कीस। वही १५।५

४ इति विधि औरतु तानिजगु दुष्कर जनक अनेक। वही १५।१३

५ 'कैमव' चित्र-समुद्र में बूझ परम विचित्र।

ताव बुद्धक के करने वरतन का मुनि भिन्न ॥ वही १६।१

अन्त में भी चित्रक विचित्र अपार कहा है।

६ वही ५।१७

७-८ १ वही, शीघ्र प्रभाव

१० ११ वही पाचवाँ प्रभाव

१२ वही, द्वाँ प्रभाव

१३ वही, ११वाँ प्रभाव

अभिनविय अविद्वन्विय विद्वन्मया भयो एव नियम श्रौर विरोधी क भी कवल उदाहरण दिए गए हैं ।<sup>१</sup> रमवत अलकार क अतगत नवरमा क भी लक्षण नहीं दिए गए हैं ।<sup>२</sup> यमक क प्रभन्ना क लक्षण न देकर कवल उदाहरणा की योजना की गई ह ।<sup>३</sup> चिन कवित्त क उपभेदो म मे बहुतो क लक्षण देना कवि न अनावश्यक समझा ह ।<sup>४</sup> म प्रकार केव ने लक्षणो के क्षत्र को कही कही सकुचित करके उदाहरण भाग क दायित्व को अदा दिया ह ।

इस प्रकार कवि की प्रवृत्ति आचायत्व क क्षत्र म समान रूप स नही रमी ह । उहोन विषय क स्पष्टीकरण का यान तो सबत्र रखा ह पर अनावश्यक लक्षणा श्रौर उदाहरणा क विस्तार से बचने की दृष्टि भी उनम मिलती ह ।

### छन्दशास्त्रीय आचायत्व छन्दमाला

भक्तिकाल म पुरातन का पुनरुत्थान विषय वस्तु की दृष्टि स हृष्णा । रीतिकाल म शास्त्रीय परंपरा का अवतरण हृष्णा । पर मसृष्ट छन्दा की परंपरा हिन्दी म आरभ म ही समाप्त नही थी । वृत्तो की दृष्टि स अपभ्रंग म विकसित छन्द ही हिन्दी म प्रचलित हुए । यही कारण ह कि विगन मवधी आचायत्व रीतिकाल म अधिक बन ग्रहण नही कर पाया । मसृष्ट वत्त भाषा की प्रकृति के अनुकूल नही थ । भक्ति श्रौर रीतिकाल की मुक्तक परंपरा म दोह कवित्त सबदा छप्पय कुण्डलिया जम छन्द ही प्रचलित रह । इनका मसृष्ट छन्दास्त स मीधा श्रौर घनिष्ठ सम्बन्ध नहीं था । फिर भी सवाग निरूपक आचार्यों ने म पक्ष पर नी विचार किया । वक्ष मसृष्ट वत्तो म भाषा की वृत्तियों को भी बाधने की चेष्टा हुई । रामचरितका म प्रयोग का उदाहरण प्रस्तुत करता है । पर यह एक प्रयोग बनकर ही रह गया । आग मसकी परंपरा नही बन सकी । यदि विगन-मवधी आचायत्व की परंपरा बनी तो परंपरा क निर्वाह क लिए भाषा क छन्दा का निरूपण इस परंपरा की मौनिकता का प्रमाण है । छन्द सबधी आचायत्व का आरभ कवि स ही हृष्णा । यद्यपि यह प्रय साधारण कोटि का है फिर भी हिन्दी साहित्य का प्रथम छन्दप्रथ होने क नात मका अपना प्रति हामिक महत्त्व है ।<sup>५</sup> कवि क पञ्चान् चित्तामणि मतिराम (वृत्तकीमुनी) गुप्तव मिश्र (वत्तविचार) भिवारी दाम (छन्दाव) श्रौर मोमनाय जम विगल पर नियन वान आचार्यों की एक मृत्तना बन गई । रीतिकालीन विगनाचार्यों ने मसृष्ट श्रौर प्रकृत क विगन प्रथा का आधार बनाया । जहा कान्यशास्त्रीय आचायत्व क अय अंग क निरूपण म मसृष्ट को ही आधार बनाया गया था वहा विगन-मवधी विचार क लिए प्रकृत श्रौर अपभ्रंग का परंपरा को भी आधार बनाना पना । वज्रवला म न मसृष्ट क बना का का का निया गया है । मात्रिक छन्द मसृष्ट मात्रिक श्रौर

१ ४ ३०० ११० १०००

२ ४ १२० १०००

३ ४३० ६४ प्रभव

४ ३१० ६४ ३३० ३ ३३० ३ ३३०

शास्त्र में विंगप समाप्त नहीं है। उनकी सस्या भी अत्यल्प थी। अथर्वना कवियों ने मात्रिक छंदा का महत्त्व दिया। प्राकृतपगलम् में इनका सग्रह विंगप रूप से किया गया है। हिन्दी विंगल परंपरा में वणरत्नाकर, छंदमन्त्री और प्राकृतपगलम् का आधार मुख्य रूप में ग्रहण किया। रीतिकान्तिन विंगलग्रथा में कुछ छंद एव भी मिलते हैं जिनका आधारभूत ग्रथा में अभाव है। एम स्थला पर इन आचार्यों का उदभावक रूप प्रकट हो जाता है। केशव ने भी प्राचीन आधार पर नवीन छंदा की रचना करके इस क्षेत्र में विस्तार करने की चेष्टा की।

केशव ने छन्द प्रकरण का वर्णिक और मात्रिक दो भागों में विभक्त किया। पहला भाग में ७७ वर्णिक वृत्तों और द्वितीय विभाग में २६ मात्रिक छंदों का निरूपण किया गया है। रमिकप्रिया की भांति इसका भी एक प्रस्तावना भाग है। प्रस्तावना में छन्दशास्त्र-संबंधी सामान्य मायताओं का उल्लेख कर दिया है। उसके पश्चात् मूल ग्रथ आरंभ होता है। उपसंहार भाग का अंश अभाव है। इस ग्रथ के अंत का अनुक्रम अम प्रकार है

### (क) प्रस्तावना

गणपति वन्दना से प्रस्तावना का आरंभ होता है। कविप्रिया में ही केशव ने इस शास्त्र का आदि आचार्य वामुकि नाग को माना है।<sup>१</sup> छंदमाला में भी केशव ने भुजंगराज विंगल की वन्दना की है।<sup>२</sup> इसके पश्चात् भाषा की स्थिति स्पष्ट की गई है। भाषा की तीन शाखाएँ हैं—मुरभाषा नागभाषा नरभाषा। प्राग तीनों के आधिपत्या का उल्लेख किया गया है

सरभाषा के प्रथम ही यानभीकि ग्रहभाग।

अहिभाषा के महसु नरभाषा विंगल नाग ॥<sup>३</sup>

प्राग उद्धाने किया है कि तीनों शाखाओं में द्विविध कविता मिलती है वणवृत्ति और कलावृत्ति। फिर इनका सामान्य लक्षण दिया है। अभी सब प्रकरण को छंदमाला में लिया गया है। यह प्रस्तावना छंदमाला के द्वितीय ग्रह के पूर्व मिलती है।

### (ख) प्रथम गठ वर्णिक छंद

इसमें एकाक्षर से लेकर २६ अक्षर तक के वर्णिक वृत्तों के लक्षण और उदा

१ क० प्रि० १६

२ मूल में भुजंगराज विंगल की वन्दना है।

विंगल वि सुभाषा नरभाषा विंगल ॥

मुरभाषा नागभाषा नरभाषा

विंगल विंगल नाग नरभाषा विंगल ॥ ५० ६० ७० ४४६

३ छंदमाला २१४

४ वृत्त २१५,६

हरण प्रस्तुत किए गए हैं। इससे अधिक वर्णों वाले छन्दों का सामान्य नाम 'दशक' दिया गया है। वृत्ता के उपभेदों को भी सलग्न कर दिया गया है। षडाक्षर के अन्तर्गत ६ मप्ताक्षर म २ अष्टाक्षर म ५ नवाक्षर म २ दशाक्षर म ४ एकादशाक्षर म ४ द्वादशाक्षर म १३ त्रयोदशाक्षर म ३ चतुर्दशाक्षर म ३ पञ्चदशाक्षर म ४ षोडशाक्षर म ३ सप्तदशाक्षर म २ एकोनविंशाक्षर म २ त्रयोविंशाक्षर म ३ चतुर्विंशाक्षर म ६ और पञ्चविंशाक्षर म ३ छन्दभेदों को सम्मिलित किया गया है। नेप के एक एक भेद ही लिखे हैं।

इस लघु की अनुक्रमणी इस प्रकार है

१ एकाक्षर	१ श्री
२ द्वयक्षर	२ नारायण
३ त्रयक्षर	३ रमण
४ चतुरक्षर	४ तरणिजा ५ मदन
५ पञ्चाक्षर	६ माया
६ षडक्षर	७ मालती ८ सोमराजी ९ गकर १० विज्जोहा
	११ मयान १२ सुखदा
७ सप्ताक्षर	१ कुमारनिता १४ प्रमाणिका
८ अष्टाक्षर	१५ मल्लिका १६ नगस्वरूपिणी १७ मदनमाहिनी
	१८ बोधक १९ तुरगम
९ नवाक्षर	२० नगस्वरूपिणी २१ तोमर
१० दशाक्षर	२२ हरिणा २३ अमृतगति २४ तोमर २५ सयुक्ता
११ एकादशाक्षर	२६ अनुसूता २७ सुपणप्रयात २८ इन्द्रवज्रा
	२९ उपद्रवज्या
१२ द्वादशाक्षर	३० मातियदाम ३१ तोटक ३२ सन्दी ३३ मोटक
	३४ भुजगप्रयात ३५ तामरस ३६ द्रुतविलम्बित
	३७ कुमुदविचित्रा ३८ चन्द्रहृदय ३९ मानना
	४० वगस्वनित ४१ प्रतिमाक्षर ४२ सन्धिणी
१३ त्रयोदशाक्षर	४३ पञ्चवाटिका ४४ तारक ४५ वज्रहम
१४ चतुर्दशाक्षर	४६ हरिनीला ४७ वसन्तिलका ४८ मनोरमा
१५ पञ्चदशाक्षर	४९ मालती ५० मुद्रिय ५१ निर्गुणिका
	५२ चामर
१६ षोडशाक्षर	५३ नाराच ५४ मनहरण ५५ ब्रह्मरूपक
१७ सप्तदशाक्षर	५६ रूपमाना ५७ पृष्ठा
१८ अष्टादशाक्षर	५८ चकरी
१९ एकोनविंशाक्षर	५९ वरुणा ६० मून
२० द्विविंशाक्षर	६१ गीतिका
२१ त्रयोविंशाक्षर	६२ धम

२२ द्विविंशत्यक्षर	६३ मदिरा
२३ त्रयोविंशत्यक्षर	६४ विजय ६५ सुधा ६६ वसुधा
२४ चतुर्विंशत्यक्षर	६७ माघवी ६८ चक्रवला ६९ अमदकमल ७० मकरद ७१ गगादक ७२ तवी
२५ पंचविंशत्यक्षर	७३ विजया ७४ सुधा ७५ मानिनी
२६ षड्विंशत्यक्षर	७६ हार

यह ७६ छन्दों की संख्या हुई जो अक्षर गणना व आघार पर २६ शीषका म वर्गो-  
कृत है। २६ अक्षर से ऊपर वाले छन्दों का कवच न अलग वग माना है। इसमें केवल  
अनगण्यक्षर नामक छन्द का उदाहरण दिया है जिसमें ३२ अक्षर होते हैं। पूरे वग को  
कवच ने दण्डक नाम दिया है। छत्रिस अक्षर तें उपर कसब दण्डक जानि। दण्डक  
छन्द ही विगिण्ट है। गेप वणवृत्त माघारण हैं।

प्रथम सड़क व अक्षर म ८४ छन्दों की सूची दी गई है।<sup>१</sup> पर कवच न निरूपण  
केवल ७७ छन्दों का किया है। इसमें कवच की चुनाव की दृष्टि हो सकती है।  
उन्होंने छन्दों व क्षेत्र को इस प्रकार सीमित किया है। उनको वणवृत्तों की  
मापा व लिंग अनुपयुक्तता का आभास भी हागा। इसीसे क्षेत्र को कुछ सीमित कर  
दिया गया। छन्दों की तालिका म अनेक छन्द एस हैं जिनका निरूपण नहीं किया  
गया। इसका विपरीत निरूपित ७७ छन्दों म म कुछ एम भी हैं जो इस तालिका म  
नहीं आए हैं। उनका विवरण इस प्रकार है

- १ निरूपित पर तालिका म नहीं कुमार तलिता चन्द्रबला
- २ तालिका म हैं पर निरूपित नहीं ललिता, घत्ता रोना मरहटा सोरटा  
मिहावलोकन जमुन रूपमाला और हुनना।
- ३ तालिकागत और निरूपित छन्दों म नाम नद

निरूपित नाम	तालिशागत नाम
गवर	सकर
विजोहा	विभुहा
समुक्ता	सजुती
मोतियदाम	मोक्तिव दाम
ताटर	भोटव
सग्विणी	सग्विनी
सुप्रिय	सुप्रिया
नाराच	नराच
करण	करणा
विजया	जया
सुगवर	सुसदा

<sup>१</sup> प० प्र० (री ०), पृ० ३४८

तुलना करने पर अन्तर महत्वपूर्ण नहीं ठहरता। तत्सम-सदभाव के आधार पर कुछ नामों का अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है। कुछ नाम अपभ्रंश की गली के हैं।

जिन छंदों का निरूपण वर्णिक वृत्तों के अन्तर्गत नहीं किया गया है और तालिका में जिसका नाम है उनमें से कुछ मात्रिक छंद हैं और इनका निरूपण त्रितीय खंड में कर दिया गया है। ऐसे छंद ये हैं— धत्ता सोरठा मरहटा। अन्तर वाले छंदों में से गेप को छोड़ दिया गया है।

### (ग) खंड दो मात्रिक छंद

मात्रिक छंदों को केवल ने कनावृत्त की संज्ञा दी है। भूमिका में उसका लक्षण दते हुए यह स्पष्ट किया गया है कि वणवृत्ता में तो सभी चरण समान सख्या के अक्षरों से रचित होते हैं और मात्रिकवृत्तों में समपादी और विषमपादी वृत्त होते हैं। जो इस प्रकार से परिचित होते हैं वे छंददापा को तत्काल पकड़ सकते हैं। इन खंड की अनुक्रमणिका इस प्रकार है—गाथा दोहा कवित्त चतुष्पदी घत्ता नद उलाला पटपट पटटिका अरिस्त पाताकुलिक राजसम की नवपादी पद्यावली गारठा कुलिया चूनामणि काकालिका मधुभार आभीर हरिगीति विभगी हीर मदनमनोहर और मरहटा। इस प्रकार केवल न २४ मात्रिक छंदों का निरूपण हम खंड में किया है।

मात्रिक छंद क्षत्र विस्तार वर्णिक छंदों का क्षत्र विस्तार करने की कथा न चंटा नहीं की है पर मात्रिक छंदों की शक्ति और नाकप्रियता में वे परिचित थे। मात्रिक छंदों में भी कुछ का प्रचलन बहुत अधिक था। प्राकृत के स्वर का छंद गाथा अपभ्रंश का प्रतीक दोहा और वीरकाव्य से संबद्ध छप्पय उदाका अधिक ध्यान आकर्षित कर सब। इनके अनेक नामों की कथा कथाव न की है

गाथा	७ उपम
दाहा	१२ उपम
पटपट	५२ उपम

पर इनमें से अनेक न नक्षत्र लिए गए हैं और न उदाहरण। गाथा (=गाथा) के बदले एक उपम विभागा का निरूपण किया गया है। दाह के उपम का निरूपण करने की चंटा का गर्ह है। पटपट में उदाहरण बचने एक हा दिया गया है। गप का निरूपण गणनामक पद्धति में किया गया है। आ चय यह है कि कवित्त और मद्रथा का निरूपण छंद दिया गया है। ये छंद भक्तिज्ञान और गीतिज्ञान में अत्यन्त महत्त्वपूर्ण थे। कवित्त नाम से जिन छंदों का निरूपण किया गया है वे 'रागा' हैं। इनके अनेक नाम हैं कि कथा के आचायत्व का क्षत्र एक पुरानी परंपरा में निहित है। समकालीन प्रवृत्तियों का गम्यनित्त कथा क्षत्र का मोचित्त विस्तार नहीं किया गया है।

## निरूपण

कविवक्त्र आचार्यत्व का सर्वोत्कृष्ट स्वरूप स्पष्ट कर देता है। उनका प्रथमता प्रथमता विषय निवाचन इस प्रकार कर सकता है

- १ रस विवचन शृंगार तथा अय
- २ नायक-नायिका निरूपण
- ३ अलंकार निरूपण
- ४ छन्द निरूपण
- ५ अय का पाठ
  - क—दीप निरूपण
  - ख—वृत्ति निरूपण
  - ग—चित्रकाव्य निरूपण
  - घ—कविगिता

इहाँ विषय का आधार पर प्रस्तुत प्रवचन की प्रकाश-योजना की गई है। एक प्रकार में आचार्यत्व का विवचन किया गया है। परंपरा की पूर्वापर कठिनाई का निरूपण मूल्यांकन का प्रमुख भाग है। अतः में उपसंहार में विविध काव्यशास्त्रीय संप्रदायों के मदम में रखकर कविवक्त्र आचार्यत्व का मूल्यांकन प्रस्तुत किया गया है। आरम्भ में कविवक्त्र आचार्यत्व का विस्तृत पृष्ठभूमि दी गई है। इसके बाद प्रथम भाग में मसूत काव्यशास्त्र का प्रवृत्तिगत विकास स्पष्ट किया गया है। दूसरे भाग में कविवक्त्र का समकालीन परिस्थितियों का रुचिगत विश्लेषण किया गया है जिनमें आचार्यत्व की साधना का बीज सन्निहित है। इसके पश्चात् कविवक्त्र आचार्यत्व का क्षेत्र का सीमा निरूपण है। इस प्रकार की पृष्ठभूमि में आचार्य कविवक्त्र व्यक्तित्व का गतिपथ रूप रखा दे दी गई है। इस प्रकार परिवर्तन और व्यक्तिगत सदस्यों को स्पष्ट करके ही विषय विवचन किया गया है। अतः मूल्यांकन से किया गया है।

अन्त में यही कहा जा सकता है कि कविवक्त्र आचार्यत्व का क्षेत्र चाहे संपूर्ण काव्यशास्त्र और काव्यशास्त्रीय परंपराओं को लेकर न चला हो पर ऐतिहासिकता का रूप में वह पूर्ण है। ऐतिहासिक प्रवृत्तियों समग्र रूप से कविवक्त्र की रचनाओं में प्रतिबिम्बित है। जिन सिद्धांतों की ऐतिहासिकता में अधिक शक्तिप्रियता नहीं थी उनको कविवक्त्र न छोड़ ही दिया है। सिद्धांत का निरूपण और उदाहरण-योजना में भी कविवक्त्र ने सुगमता से ध्यान में रखा है। उनका व्यक्तित्व अपने समग्र रूप में आचार्यत्व-मन्त्रों की शक्तियों में भाग रहा है। आचार्यत्व का दृष्टि से एकात्मिक ऐतिहासिक आचार्यों में नहीं मिलता।



## तृतीय प्रकाश केशव का रस-विवेचन

### केशव का रस विवेचन

आचार्य केशवदास का रस विवेचन-सम्बन्धी ग्रन्थ है रसिकप्रिया । यद्यपि रसिकप्रिया एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी रचना मुख्यतः काव्यरसिका के लिए ही हुई है जिससे सामान्य रसिक पाठक भी कविता के शास्त्रीय सौन्दर्य का गान उठा सकें तथापि उसका उपयोग एक मात्रा तक शिक्षाग्रन्थ के रूप में भी किया जा सकता है । जहाँ रसिकप्रिया के अध्ययन से एक ओर रसिक पाठक की रसि भावना की अभिवृद्धि होती है वहाँ साथ ही उसे रसरीति का परिचय भी मिलता है ।<sup>१</sup> इसके साथ साथ उसका उपयोग काव्य सिद्धांतों के परिचय के लिए एक मात्रा तक भाषाकवियों के लिए भी है जिनका संस्कृत की अनभिज्ञता के कारण काव्यशास्त्र के तथा काव्य के सूत्र रहस्या से सीधा परिचय नहीं है ।<sup>२</sup> यदि शास्त्रीय भाषा में कह तो कह सकते हैं कि रसिकप्रिया का अधिकारी मुख्यतया तो है रसिक पाठक तथा आनुपणिक है ऐसा भाषाकवि जो काव्य रचना में तो प्रवृत्त होना चाहता है किन्तु संस्कृत में निहित काव्य या शास्त्रीय निधि से वंचित है । रसरीति का परिचय मात्र का उचित रूप कर चलन वाला ग्रन्थ में शास्त्रीय सिद्धांतों पर विद्वलपणात्मक एवं मौमासात्मक दृष्टि डालने का अवसर ही नहीं आया । वस्तुतः संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के समान विस्तारण की पद्धति केशव परवर्ती हिन्दी रीतिग्रन्थों में भी नहीं दिखाई पड़ती ।

केशव ने विस्तारण की पद्धति नहीं अपनाई । विवेच्य विषय के प्रति जो भी दृष्टिकोण धरने व्यापक अध्ययन के उपरांत उनका बना है उस के प्रस्तुत करत चले गए हैं । संस्कृत काव्यशास्त्र की एक उन्मुखी परम्परा उनका सामन फली हुई थी । इनके विचारधाराएँ नई पुरानी नानाविध मायताएँ उनका सामन आ चुकी थीं । वे एक अग्रज एवं बहुपणित पण्डित थे । उन नाना मायताओं में से जो भी उन्हें प्रभावित कर सकी उन्हें अपना कर वे प्रस्तुत करने लगे हैं । कहीं कहीं एकाधिक मायताओं का भी उल्लेख है किन्तु यह वैकल्पिक निरूपण रसिकप्रिया की अपना कविप्रिया में अधिक

१ रसिकप्रिया का रसिकप्रिया की ही सम्बन्ध । र प्रि १११०

२ रसिकप्रिया की ही सम्बन्ध । र प्रि १११०

३ रसिकप्रिया की ही सम्बन्ध । र प्रि ११११

४ रसिकप्रिया की ही सम्बन्ध । र प्रि १११२

५ रसिकप्रिया की ही सम्बन्ध । र प्रि १११३

हूँगा है तथा आचाय का गिणक रूप प्रधान है। रमिकप्रिया म तो किसी विषय पर एकाधिक मायताओं व उपस्थापन की अपेक्षा वहाँ-वहाँ एक ही विषय व सम्बन्ध म उनकी दृष्टि म एकाधिक मायताओं का समावग मितता है। व किमी विषय में प्राचीन और नवीन दोनों मायताओं स प्रभावित हा सकत हैं साथ ही अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण भी अपना सकत हैं। उहान 'ओ कहा है उनका तटस्थ विनयण करन पर हम उनकी विचारधारा व निर्माणक तत्त्वों का परिचय प्राप्त कर सकत हैं। किमी मिद्धात का प्रतिपादन करत समय उस उहोंने किस रूप म ममभा है तथा उसक भून म उनका क्या मभावित दृष्टिकोण निहित है यह बात भी सहानुभूति व माय उनके वक्ष्य का ममीक्षण करन म जानी जा सकती है। तभी हम उनक साथ आलोचक का 'माय धरत मकेंगे। प्रस्तुत प्रकाग में हम उनक रम विषयक दृष्टिकोण तथा निष्पण का विवचन प्रस्तुत करना चाहत हैं।

कंगव रमध्वनिवाधियों व समान ही काव्य में रम की महत्ता स्वीकार करत हैं। रम काव्य का आत्मभूत तत्व है। प्राण व जिना निर्जोद गरीर की क्या गामा ? ज्योतिहीन बड़ी बड़ी आशों व ढाच का क्या मूल्य ? जिना रसमयी वाणी के कवि की क्या पूछ—

ज्यों विनु दीठि न सोभिज लोचन लोल विहाल ।

त्योही बसव सकस कयि विनु बानो न रसात् ॥<sup>१</sup>

काव्य रचना म मवप्रथम आवश्यकता है वष्य भावना म तन्नीन होन की। रमीस कंगव को रम व प्रति तीव्र रुचि अपणित है। माय हा कवि को मरम रचना में रत चित्त होकर चिन्तनगीत एव प्रयत्नगील हाना है। मरम काव्य' ही उनकी काव्याराधना की चरम मफनता है

तान रुचि मों सोचि पचि कीज सरस कवित ।

केसव स्याम गुजान को सुनत होइ यस चित ॥<sup>२</sup>

कंगव को समस्त रमा की पृथक एव स्वतंत्र गना स्वीकृत है। व रम विषय में भरत परम्परा का अनुगमन करत हुए रमों की महत्ता नो मानत हैं।<sup>३</sup> व 'गान रम को स्वीकार करत हुए चलत हैं। मरत भरत व उग प्राचीन पाठ व आग्रही प्रतीन नती होन जा न ही रमों की चर्चा करता ह<sup>४</sup> तथा जो सम्भवत उभरत म पूव तक निदि वाट माय चना घा रहा था।<sup>५</sup> व इस विषय म अभिनव परम्परा व अनुपाया है।<sup>६</sup>

१ रक्तिमिदा ११३

२ कडा ११४

३ नश्ट रस व भव बहु जिनके निज विचार । कडा ११६

४ मंगरदाय चरपणो नाट्य रमा म्मना । ना गा ६१५

५ दानकर काल रमाउ दा की० रावन्, पृ० १३

<sup>६</sup> ना ही—उद्भट—मांग हैव मह दा नमगुरी कालरन इन गी देस्य काल नरुपायन  
पठ पक्ष रान पण्ड ०३ पण्डित कालर वर अभिनव ११

६ अभिनवभारती—अभिनवगुण, ना० ११०, पृ ३३० ३४१

## तृतीय प्रकार केशव का रस-विवेचन

### केशव का रस विवेचन

आचार्य केशवदास का रस विवेचन-सम्बन्धी ग्रन्थ है रसिकप्रिया । यद्यपि रसिकप्रिया एक ऐसा ग्रन्थ है जिसकी रचना मुख्यतः काव्यरसिका के लिए ही हुई है जिससे सामान्य रसिक पाठक भी कविता के शास्त्रीय सौन्दर्य का आनन्द उठा सकें तथापि उसका उपयोग एक मात्रा तक शिक्षाग्रन्थ के रूप में भी किया जा सकता है । जहाँ रसिकप्रिया के अध्ययन से एक ओर रसिक पाठक की रसि भावना की अभिवृद्धि होती है वहाँ साथ ही उसे रसरीति का परिचय भी मिलता है ।<sup>१</sup> उससे साथ साथ उसका उपयोग काय सिद्धांतों के परिचय के लिए एक मात्रा तक भाषाकवियों के लिए भी है जिनका संस्कृत की अनभिज्ञता के कारण काव्यशास्त्र तथा काव्य के सूत्र रहस्या से सीधा परिचय नहीं है ।<sup>२</sup> यदि शास्त्रीय भाषा में वह तो कह सकते हैं कि रसिकप्रिया का अधिकारी मुख्यतया तो है 'रसिक पाठक' तथा आनुपंगिक है ऐसा भाषाकवि जो काव्य रचना में तो प्रवृत्त होना चाहता है किंतु संस्कृत में निरति काव्य की शास्त्रीय निधि से वंचित है । रसरीति का परिचय मात्रा का उद्देश्य रख कर चलन वाले रस ग्रन्थ में शास्त्रीय सिद्धांतों पर विश्लेषणात्मक एवं भीमासात्मक दृष्टि डालने का अवसर ही नहीं आया । वस्तुतः संस्कृत के काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों के समान विमलपण की पद्धति केशव परवर्ती हिन्दी रीतिग्रन्थों में भी नहीं दिखाई पड़ती ।

केशव ने विश्लेषण की पद्धति नहीं अपनाई । विवेच्य विषय के प्रति जो भी दृष्टिकोण अपने व्यापक अध्ययन के उपरांत उनका बना है उस व प्रस्तुत करते चले गए हैं । संस्कृत काव्यशास्त्र की एक लम्बी परम्परा उनके सामने फली हुई थी । अनन्व विचारधाराएँ नई पुरानी नानाविध मायताएँ उनके सामने आ चुकी थी । वे एक बहुग्रन्थ एवं बहुपठित पण्डित थे । उन नाना मायताओं में से जो भी उन्हें प्रभावित कर सकीं उन्हें अपना कर व प्रस्तुत करने लगे हैं । कहीं कहीं एकाधिक मायताओं का भी उल्लेख है किंतु यह अव्यक्त निरूपण रसिकप्रिया की अपेक्षा कविप्रिया में अधिक

१ रसिकन की रसिकप्रिया की ही समवर्गता । र प्रि १।१२

का रसि मनि अनि परे जान सब रसरीति ।

स्वास्थ्य परमाय लहे रसिकप्रिया की प्रीति ॥ र प्रि १६।१६

२ कैम रामक प्रिया बिना रसिय तिन तिन गीन ।

रदा ही भाषाकवि सबै रसिकप्रिया बिन हीन ॥ र प्रि १६।१५

हूँ है जहाँ आचार्य का शिक्षक रूप प्रधान है। रमिकप्रिया में तो किमी विषय पर एकाधिक मायताया के उपस्थापन की अपेक्षा कहीं-कहीं एक ही विषय के सम्बन्ध में उनकी दृष्टि में एकाधिक मायताओं का समावेश मिलता है। व किमी विषय में प्राचीन और नवीन दोनों मायताया से प्रभावित हो सकते हैं साथ ही अपना स्वतंत्र दृष्टिकोण भी अपना सकते हैं। उहाँ जो कहा है उसका तटस्थ विम्लपण करने पर हम उनकी विचारधारा के निर्मापक तत्त्वा का परिचय प्राप्त कर सकते हैं। किमी सिद्धांत का प्रतिपादन करते समय उस उँहाने किम रूप में समझा है तथा उसका मूल में उनका क्या समाहित दृष्टिकोण निहित है यह बात भी सहानुभूति के साथ उनके वक्तव्य का समीक्षण करने से जानी जा सकती है। तभी हम उनके साथ आलोचक का पाय कर सकेंगे। प्रस्तुत प्रकाश में हम उनके रस विषयक दृष्टिकोण तथा निरूपण का विवचन प्रस्तुत करना चाहते हैं।

कविव रसध्वनिवादिर्मो के समान ही वाच्य में रस की महत्ता स्वीकार करते हैं। रस वाच्य का आत्मभूत तत्त्व है। प्राण के जिना निर्जीव शरीर की क्या गोभा ? ज्योतिहीन बड़ी बड़ी आखों के ढाँचे का क्या मूल्य ? जिना रसमयी वाणी के कवि की क्या पूछ—

ज्यों विनु दीठि न सोभिज सोचन सोल विसाल ।

त्योही कसब सबल कवि विनु बानी न रसाल ॥<sup>१</sup>

वाच्य रचना में सबप्रथम आवश्यकता है वष्य भावना में तल्लीन हान की। इसीसे कविवचन के प्रति तीव्र रुचि अपेक्षित है। माथ हा कवि को मरम रचना में दत्त चित्त होकर चिन्तनशील एवं प्रयत्नशील हाना है। सरस वाच्य ही उसकी वाच्याराधना की चरम सफलता है

तात रुचि सौ सोचि पवि कीज सरस कवित्त ।

केसव स्याम सुजान को सुनत हो कस चित्त ॥<sup>२</sup>

कविवचन को ममस्त रमा की पृथक् एक स्वतंत्र सना स्वीकृत है। व इस विषय में भरत-परम्परा का अनुगमन करते हुए रमा की महत्ता को मानते हैं।<sup>३</sup> व वाच्य रम का स्वीकार करते हुए चलते हैं। अतः भरत के उग प्राचीन पाठ के प्रायः ही प्रतीक नहीं होते जा के ही रमों की चर्चा करता है तथा जो सम्भवतः उभय म पूर्व तक निविवाद माय चला आ रहा था।<sup>४</sup> व इस विषय में अभिनव परम्परा के अनुयायी हैं।<sup>५</sup>

१ रमिकप्रिया ११३

२ बही ११४

३ नन्दू रस के भाव कष्टु निनेके निन विनाग । बहा ११५

४ श्यामदाय चत्तपी नाट्य रमा रमता । ना० गा ६१५

५ दा तन्दर कस रमाठ हा की राकन् पू १३

सो ही—उद्भट—माथ हैव मं दा नमसु ३ अरगन इन गी देस्य आर नाट्यशास्त्र पठ केव शान केव केव पाण्डेय काठ काइ अभिनव ।<sup>६</sup>

६ अभिनवभारती—अभिनवगुण, गा० शा०, पृ० ३३२ ३६१

सबप्रथम अभिनवगुप्त का ही दिग्दर्शकता है।<sup>१</sup> उन्होंने नाटरम की व्यापकता को सामान्य रखत हुए एक विंगप दार्शनिक दृष्टिकोण से समीक्षा का उसमें अतर्भाव दिखाने का प्रयत्न किया है।<sup>२</sup> कायशास्त्र के इतिहास में नम प्रकार के प्रयत्न अथवा आचार्यों द्वारा भी किए गए पाए जाते हैं।

शृंगार की व्यापकता तो भरत अभिनव आदि सभी बड़े आचार्यों को स्वीकृत है। उसका सम्बन्ध एक ऐसी मानवीय वृत्ति से है जिसका प्रसार जीवमात्र तक फैला दिग्दर्शकता है। समस्त भावा को समेट पाने की क्षमता शृंगार में है इसका सबसे प्राचीन सङ्गत स्वयं भरत में ही उपलब्ध हो जाता है। सबप्रथम शृंगार का निरूपण करते हुए वह उपसंहार रूप में कहते हैं

एवमेव सर्वभावसयुक्त शृङ्गारी भवति।<sup>३</sup>

अभिनव का तक है काम चार पुरुषार्थों में से एक प्रमुख फल है। उसकी पहचान अनेक प्राणिमात्र तक है। इसीलिए काम प्रधान शृंगार का उल्लेख सबप्रथम किया है। वस्तुतः हमका सम्बन्ध उमा मूल रतिके साथ बढता है जिसकी चर्चा श्रोत्रिय पत्रिक रूप में एकाकी न रमते सोऽकामयत एकोऽहं बहुस्याम के रूप में आती है। कामना काम या रतिकी व्यापक भावना से सम्बद्ध होने के कारण शृंगार की व्यापकता स्वतः सिद्ध हो जाती है। कविव्यवस्था ने भी अपने शृंगार को उसकी व्यापक भूमिका में पहचाना है

रति मति की प्रति चातुरी रति-मति-मत्र विचारः।

ताही सौं सब कहत हैं कवि कोविद शृंगार॥<sup>४</sup>

रत्यात्मक बुद्धि का कौशल अत्यन्त व्यापक है वह काम के मात्र का विन्नन है। उस ही कव्यमत्र में कवि कोविद शृंगार कहकर प्रकारत हैं। दो परस्पर प्राकृष्ट होने वाले तत्त्वों—दो सवर्गों के बीच की यह वृत्ति है उसकी सूचना भी कविव्यवस्था के रस कथन से मिलती है। इस वृत्तिके परिचय के लिए उन्होंने जहाँ एक ओर रतिकी सामने रखा है दूसरी ओर रतिपतिकी।

किन्तु शृंगार की व्यापकता का उल्लेख करना और बात ही तथा शास्त्रीय प्रायश्चित्त अर्पनाकर उस ही मूल रस कहना अथवा एकमात्र रस कहकर अर्थ को पीछे कर देना और बात। कायशास्त्र के क्षेत्र में शृंगारमात्र को मूल रस अथवा एक रस कहने के दो ही प्रयत्न शास्त्रीय रूप में हमारे सामने आते हैं—एक तो ह भोज का दूसरा

१ एरगुलर अष्टाष्ट नि यमिस इन दि की—आफ २२२२ २३ ७ ध्यारिम् इत ठाऊ एवर टू की सान एनिण्ट ीनला इन नि अभिनवभारती आफ अभिनवगुप्त।<sup>२</sup>

—ती नम्बर आफ रसायन—टा की रापन्, पृ १६५

२ अभिनव भारती—अभिनवगुप्त पृ ३३६ तत्र सवरसना शान्तप्राय एवास्वात्।

३ मत्र—नायराग्य पृ ३३

४ रस काम य एव च शास्त्रदन्तकविव्यवस्था तत्र प्रधान भार लघयति।

—अभिनवभारती पृ ३

ह गोडीय वष्णव आचाम्य रूपगोस्वामी तथा जीवगोस्वामी का । दोना के प्रकार नवथा अत्रग अलग हैं यद्यपि वात दोना १ आपातत सबथा एक-सी कही ह ।

भाज न शृंगार की एकमात्र मूल रस कहा है । अभिनवगुप्त के साथ एक दार्शनिक मतभेद सा प्रस्तुत करत हुए उन्होंने अपन विवेचन में शृंगार रस का दो प्रयोग म प्रयोग किया है—एक तो यजित रति—स्थायी—रूप कही प्रचलित शृंगार है जिसकी सामान्यत चचा काव्यशास्त्र म मिलती है दूसरा अथ है अभिमान या अहंकार तत्त्व । इम दूसरे प्रकार क अथ म ही उन्होंने शृंगार' रस का प्रयोग करके उस मूल रस कहा है । प्रचलित शृंगारादि नवरस तो उस रस की अर्चिया मात्र ह । सविद क अनुभव का मूल हेतु तो अहंकार तत्त्व है । वही रस है उसका नाम शृंगार है । वही एकमात्र रस है । वह अलण्ड है एक है । चित्तवृत्तिरूप भूमिका का प्रधानता दत हुए रसा का नवत्व अभिनव स्वीकार कर सक थ । भोज उनक इस दृष्टिकोण का विरोध करत गतीत होत हैं । उनके अनुसार रस तो वही अह तत्त्व है चित्तवृत्तियां तो उस परिवत किए रहनवाली रश्मिया मात्र हैं । भाज के अनुसार रति उत्साह आदि की भूमिका तो भावा की है । रस की भूमिका उसस प्राग वदकर है और वह है अलकार की भूमिका उम हो य शृंगार नाम दत हैं ।<sup>१</sup>

अपन इम विगिष्ट दृष्टिकाण क कारण भोज भावा स रसा की निष्पन्नता स्वीकार नहीं करत, रस स ही भावा की उत्पत्ति मानते हैं । लौटकर अहूतत्वजय रत्वादि भाव ही उस अनभूतिरूप रस के आविभाव के कारण बन जात हैं ।<sup>१</sup>

भोज की यह मान्यता उत्सर्ग का ही विषय बनी रही अनुसरण का नहीं । यस्तुत भोज रस की एक नयी लगने वाली दार्शनिक व्याख्या सामन लकर आए थ । किन्तु उनक सिद्धांत म कुछ नयापन नहा था । व अपने युग में प्रचलित शुक व्याख्याप्रा म ही कुछ उलट-फेर करके नूतनता दिखाना चाहत थ । कहन की आवश्यकता नहीं कि व एक शक ही थ ।

शुक्र क शृंगारकवाद पर भोज का कोई प्रभाव परिलक्षित नहीं हाता ।

दूसरा प्रयास शृंगारकवाद की दिशा म है गोडीय आचार्यों का । उनकी प्रतिष्ठा सबथा भिन्न ह । वस तो रूपगोस्वामी न भक्तिरसामतसिन्धु म सामान्यतया वृष्णविषयक रति का व्यापक भूमि म प्रतिष्ठित करके भक्तिरस का प्रतिपादन किया

- १ आचार्यसिन्धु शरमन् मुखियो कस्तु शृंगाररस रमनासमागतम ।  
अप्रातिरिक्ततया मन्सो मुक्तये नविशुभहेतुरिहाभिमान ।  
मेया रस म रसनीयस्य म्शरत रसार्थभूमति पुनर्विधा रमाति ॥  
रसार्थोपशान्तकविर्जितानि भावा पृथाविधिविभावमुवो भवन्ति ।  
इहाम्भवाभिल परिवरयत सप्ताचर्यं दुर्निचया इव कस्यचि ।

— शृंगारप्रकाश प्रति १, पृ० ३

२ न रसार्थभूता रस । कि रसि रसः । इतरो हि नान् आसतोद्भूतविराधे । म चन्त्या रसदत्ता रसः सुषुप्तः । रसार्थिभावत्वरत रसप्रभा एव भावा । ए रसो काले च्चाशत रसिद्वय रसात् रसः ।

— शृंगारप्रकाश प्रति २, पृ० १४० ५

१ रस २ उत्सर्ग ३ १० सांकर्य—नी यिदीज अथ रस एतदर्थः

ह ।<sup>१</sup> प्रधानतया भक्तिरस के दो भेद हैं—एक मुख्य दूसरा गौण । मुख्य रति क प्रगतत पाच भेद है—शुद्धा प्रीति सख्य वात्सल्य तथा प्रियता ।<sup>२</sup> इन सबमें प्रियता ही सब श्रेष्ठ है । उस ही मधुरा रति कहा गया है । यह गौणी कृष्ण क बीच का मधुर प्रेम है । उनके परस्पर शृंगार का आदि कारण है ।<sup>३</sup> गौणी रति वह है जहां प्रय स्थायी भाव अपने विभावोत्कषेण क कारण कृष्णरति को अनगहन तो करत है कि तु अपनी अभिव्यक्ति क कारण उसे सकुचित कर दत है ।<sup>४</sup> यह सात प्रकार की हो सकती है—हासरति विस्मयरति उत्साहरति गीकरति शोधरति भयरति तथा जुगुप्सा रति । इहींके आधार पर हास्य भक्तिरस आदि नाम हुए हैं । मुख्य रति को एक मानकर गौण के सात भेदों को मित्राकर भक्तिरस आठ प्रकार का हो जाता है । इस प्रकार भरत की अष्टरस सख्या का निर्वाह हो जाता है । प्रयया गौणी तथा मुख्या क कुल प्रमुख भेद बारह हात है ।<sup>५</sup> यह भक्तिरसामर्तसिंधु की प्रक्रिया है । किंतु इन सभी रतियों में मधुरा को अधिक महत्वपूर्ण मानकर उसके लिए उठाने एक पृथक् ग्रंथ उज्ज्वलनीलमणि की रचना की है । उज्ज्वल गद को शृंगार क प्रयाय म प्रकृण किया गया है । उज्ज्वल भक्ति मधुर शृंगार सभी गद एक ही ग्रंथ क वाचक है । डा० पी० बी० काणे की सम्मति में उज्ज्वल नाम की प्रेरणा रूप को स्वयं भरत स मिली प्रतीत होती है ।<sup>६</sup> भरत ने शृंगार को उज्ज्वल वपात्मक कहा है ।<sup>७</sup> वस्तुतः कृष्ण यद्यपि सभी रसों की भावना क विषय बन सकत है तथापि मधुर रस की पहच सबसे अधिक है ।<sup>८</sup> और जो उनका कामकलिकलासक्तो रसलीलाविहारद रूप है वह तो

१ स्वाद्यन्व हृत्ति भक्तानामागताना नवणादिभिः ।

एषा कृष्णराग स्थायी भावो भक्तिरसो भवेत् ॥—भक्तिरसा दक्षिण वि विभावलङ्घी  
१ १ रत्ना ६

२ मुख्या गौणी च मा द्वेषा रसस्यै परिकीर्तिता । वही, पृ १२ रत्नाक ६

३ शुद्धा प्रीतिस्तथा मख्य वात्सल्य प्रियतायमी ।

स्वपरायैव सा मुरया पुन पञ्चविधा भवेत् ॥ वही पृ २८४, रत्नाक ५ ६

४ यथात्तरमसो स्वदक्षिणापाल्तात्ममय्यपि । वही पृ २६१ रत्नाक ६

५ भिषो हरम गद्यारच सम्भागस्यात्कारणम् ।

मधुरापरपयाया प्रियत खेतिना रति ।

अस्या कथास्य चैपप्रियतायात्मनाय ॥ वही पृ २६१, रत्नाक ७ ८

६ विभावा कषया भावविराषा यानुगृह्यते ।

मङ्गल्यः स्वय रत्या मा गौणी रालग्यत ॥ वही पृ ६० रत्नाक ३

द्वामा विरमय उमा शोक काथा मय तथा ।

जुगुप्सा च अमी भावविराप मण्डलानि ॥ वही पृ ६ रत्नाक ११

७ पञ्चात्म्य रतयस्य न्यून्यमनरसापथा । वही पृ ३ रत्नाक ६१ ६

८ एव भक्तिरसा मन्दा इया रत्नाकान्यत । वही पृ ३ ६ रत्नाक ६८

९ डा पी की काणे—द्विगुण्य अप मङ्गल पाश्चिम्

१ तत्र रत्नाके नाम रत्नाक्यदिभवप्रभव । उज्ज्वलवपात्मक । दत्तात्रेयवचनस्य स रत्नाक्यदिभुवत् ।  
—नटयगाय १ १

११ शान्दवत्स मङ्गल्यदीभूत वपि मधुररस क विषयान्धियन् ।

—उज्ज्वलनीलमणि ताचनराधिनी ६ ७

गान् दाम मत्वा, गुरु-पिता आदि रूपवाले किन्हीं भक्तों द्वारा गम्य नहीं। जीव गोस्वामी क अनुमार समस्त गौण रतियों का ही नहीं मधुरेतर मुख्य रतियों का भी मधुरा रति म अग्रभाव ह अग्री तो बवल एक रस ह वह ह श्लोक्यण का शृगार। वस्तुतः कृष्ण शृगार रूप ही हैं। व शृगार क मून रूप ह। कृष्ण म म शृगार का निवानवर वचता ही क्या ह? और शृगार स कृष्ण को अलग करके वह थोड़ा रह जाता ह। हम प्रकार कृष्ण शृगार ही एक मून, अग्री रम है। गोस्वामी वधुओं ने अपने दोनों शास्त्रीय ग्रथो म उसी रस की व्यापक प्रतिष्ठा की ह। उज्ज्वलनीलमणि तो उसीके लिए लिखी गई ह।

रूपगोस्वामी क अनुसार अथ रस जहा तक कृष्णरति स मन्वद्ध हा मक्ते न वही तक रस की कोटि म आ मवत ह अथवा उससे स्वतंत्र हान पर उनक लिए रमाभामों क बीच स्थान ह। उनक अनुसार रसाभास तीन प्रकार का होता ह— उपरम अनुरम तथा अपरम। इनम जहा विभावानि की विरूपता अनुभयनिष्ठता आदि कारणो म होन बाल रमाभामों का परिग्रहण ह। वहा कृष्ण-मन्वद्ध स अलग होकर आन वागे विभाव अनुभाव अथवा स्थायिया स बनन वाले रसाभास का भी परिगणन ह। उने अनुरस नामक रसाभाम कहा गया ह। इस प्रकार यदि हम रमा क ता स्वरूप कर ने एक लौकिक अथवा माहित्यिक रम दूमरे भागवत या कृष्ण

१ यत्र कामकनिकलात्रको रामलीलाविशारत् इत्यादिगुणविशिष्टो म शाक्तसम्प्रदायिगुण्यु मय न केनापि श्रीयरमविपचीकतु शक्यत । लाजनेतिनी, पृ ७

२ तत्रश्च गण्यत्वमुच्यतेवाभ्या अद्वागिभावन स्थिताना रसाना गट्टप्यशृङ्गारस्यैवाद्भिव व्यक्तप्रथितम् । लाजनेतिनी, उज्ज्वलनील, पृ ७

३ भवप्रनाट्टनिरित्यनेन श्यामचाण्ड रस रूपवाच्य मून शृगाररमरूपत्वं च वनितम् ।

—लाजनेतिनी पृ० ७

४ शृगाररमरसत्वं शिमिषि-त्रविभूषणम् । उज्ज्वलनीलमणि पृ० २० श्लोक १६  
 शृगाररम म रस यस्यापि बहुव्रीहिणा कृष्ण सोपि गन्धवन्त्वा रस इति मवतीति व्यज्यते ।  
 शृगाररमस्य मन्वद्धमिति नपुंस्वरण शृगाररसोपि त विना स्वस्य वैयर्थ्य जानाति ।

—लाजनेतिनी उ० नी , पृ० ३०

- ५ पूर्ववत्पुंशिक्षेन विक्त्वा रमत्वगुणा ।  
 रसा च्च रसात्मना रउद्धरनुकारिण्या ॥ भक्ति० रसा० उत्तरविभाग लहरी०, श्लोक १  
 रयुक्ति शोषमाश्रयानुगमाश्चापरमाश्च च ।
- ६ प्राज्ञ रथापि विभावानुभावोपत्तं विरूपनाम ।  
 गान्ताथो रसा च्च शशोपरमा रमन्ता ॥ वही श्लोक ३  
 श्चारेकस्वरस्यैव रतिषा राशु रज्यते । वहा, श्लोक ८ ६  
 कृष्ण प्रतिपद्यार्थ्यपपत्रयना गता । वहा श्लो २१
- ७ मन्वद्धमिति विभावो कृष्णमन्वद्धमिति ।  
 रसाहायत्वं सत्य गान्तरानुरमा रमता ।  
 उपरमस्य विवेका बाशाशुप्युत्पत्ति ।  
 कृष्णवद्वा मन्वद्धेषु प्रायश्चै राशु विप्रति ।  
 कृष्णमन्वद्धमिभावोपत्तानुसूता मन्वद्ध । वहा श्लो २१ ०



विषय रति स सम्बद्ध रम 'तो समस्त साहित्यिक कह जाने वाल रम गोस्वामी बंधुओं की प्रश्रिया क अनुसार रसाभास है। मूल रम एक ही ह। वह ह मधुर या कृष्णविषयक शृंगार। इसी शृंगार क भीतर उहाने सभी रसस्थितियों को किनी न किसी प्रकार समेट कर रता ह।

वेशवदास का शृंगारकरमवाद गौडीय आचार्यों क शृंगारकरमवात् स प्रेरणा ग्रहण करता है। गोस्वामी आचार्यों का समय लगभग १६वीं शताब्दी का उत्तरार्द्ध है। जीवगोस्वामी को बंगाल की एक प्रचलित परम्परा १५२ १६१८ २० क मध्य रखती है।<sup>१</sup> वेशवदासजी का जन्म स० १६१८ वि तथा मृत्यु स १६८ वि० टहरती है।<sup>२</sup> रसिकप्रिया का रचना काल स० १६४८ वि० है। रूपगोस्वामीजी का समय ता कुछ और पहल है। वे ई १६वीं शताब्दी क पूर्वार्द्ध म विद्यमान थे।<sup>३</sup> वे महाप्रमु चतुर्थ के समकालीन थ।<sup>४</sup> इस प्रकार कालिक दृष्टि स रसिकप्रिया की रचना करत समय भक्ति की ये शास्त्रीय उपलब्धिया केव के सामने आ चुकी थी। उनस प्रभावित होना असम्भव नहीं था।

श्रीभक्तिरसामृतसिंधु के मंगल श्लोक म श्रीकृष्ण का पहला विशेषण अखिलरसामृतमूर्ति दिया गया है। जीवगोस्वामी की व्याख्या क अनुसार यह विष्णुपूर्वक द्वादश रसों का सम्बन्ध श्रीकृष्ण स जोड़ दता है। हम देख चुक हैं कि द्वादश रसों को ही सक्षिप्त करके सख्या ८ मानी गई है। गान्त को मुख्य रति क प्रथम प्रकार के रूप म रखा गया है। इस प्रकार भरत की प्राचीन सख्या का सामंजस्य बनाया गया है। वेशवदास न भी कुछ इसी प्रकार का उद्देश्य लेकर अपने रसिकप्रिया क मंगल श्लोक म नवरसमय ब्रजराज का स्तवन किया है। इस पद्य म अथ रसों स कृष्ण का जो सम्बन्ध है वह रसिकप्रिया म निरूपित अतर्भाव की शली का नहीं है अपितु भक्तिरसामृतसिंधु म निरूपित गौण भक्तिगत विविध रसों

१ निवृत्तानुपयोगिवाद्—भक्ति पश्च वि लक्ष ५ श्लो १ परदगममगमना रूपगोस्वामी।  
निवृत्तेषु प्राकृत श्याररममाभ्यस्तया भागवताभ्यस्तमादिरेतषु पृ ४ ६ अलंकारकौ  
स्तुभक्तिभिरपि—अप्राप्तने तु परांतरमणीरतिरव सवात्तमया भूयमी श्रूयन्।

—लोचनराशिनी उच्यते पृ १५

प्राकृत रम न आचार्यों ने हमारे साहित्यिक रसों के लिए ही प्रयुक्त किया है।

२ स्त्रीय न ति द्वितीयाश्च सरतुन पाटिम्—एम क ड पृ २५५ भाग १

३ केशव आर उनका साहित्य—रिचयपान सिंह पृ ३३ तथा ६

४ वनी पृ ६६

५ स्त्रीय न ति द्वितीयाश्च सरतुन पाटिम्—एम क ड भाग १ पृ ५५

६ वहा पृ ५५

७ अखिलरसामृतमूर्ति प्रशन्नरुचिच्छन्दारकापानि।

कलितरसमन्वितानां रागां प्रेरणान् विधुचयति ॥ —हरभक्तिमाला पृ १ श्लो १

८ अखिलरस बन्धन्य शान्ता द्वारा यस्मिन् शास्त्रमन्वयन्तस्व मूर्ति स।

—रसमन्वयनी जा पदमी पृ ३

की शली का है। यहा कृष्ण को मात्र गोपी सम्बन्ध से नहा देखा गया है उसा कि रसिकप्रिया क अतर्भावी पद्यों म देखा गया है। कंगव अभिनव की नवरस परम्परा क अनुयायी हैं अत उहोने अखिलरमामृतमूर्ति कृष्ण को नवरसमय ब्रजराज क रूप म अंकित किया है।<sup>१</sup>

हम गौडी आचार्यों की धारणा रख चुके हैं कि वे किस प्रकार से शृंगार का कृष्ण से अभिन करके चलते हैं। कंगव ने भी शृंगार को कृष्ण से अभिन बनाकर रखा है

नवहू रस के भाव बहू तिनके भिन विचार ।

सबको बेसवदास हरि नायक है सिंगार ॥<sup>२</sup>

इस दृष्टिकोण क अतिरिक्त इस निरूपण म हरि गुरु का और कोई उपयोग ही नहीं दिखाई पड़ता ।

गौडीय आचार्यों क अनुसार वस तो यह मधुर शृंगार कृष्ण तथा गोपी मात्र क बीच की रति है तथापि उसका पूण एव रहस्यात्मक स्वरूप राधा तथा कृष्ण क बीच ही प्रस्फुटित होता है। इसकी सच्ची परिणति राधा क प्रसंग म ही जाकर होती है।<sup>३</sup> कंगवदास ने भी रसिकप्रिया क शृंगार को विशेषत राधा और कृष्ण क बीच ही रखकर देखा है। वह राधा और कृष्ण क ही बीच का प्रेम है

प्रम राधिका कृष्ण को है तारें सिंगार ।<sup>४</sup>

रसिकप्रिया क इस शृंगार का रूप कंगव जगह जगह स्पष्ट करत चल हैं

क—जगनायक को नायिका घरनी बसवदास ।

तिनके बसन रस कहीं सुनो प्रछान प्रकास ।<sup>५</sup>

ख—इहि विधि राधा रमन के घरने मिलन बिसेति ।

बेसवदास निवास बहू बुधि बल नोजहु लेति ।<sup>६</sup>

- १ शीवभानु जगद्वि हैत शृंगार रसमय ।  
गाम हाम रस हर मानु-व-गन करुनामय ॥  
बेसी प्रतिअनि रौद, बार मारो बत्सामुर ।  
मय दावानल पान पिया बीमन्म बकी-उर ॥  
अनि अरभुत बनि बिबिचि पति, सात सुतने मोच चित ।  
कहि केसव सबहु रसिकान नव-रम मय ब्रजराज तित ॥

—रसिकप्रिया १।

२ रसिकप्रिया १।०

३ रासाम्भवधारव क्यापि भाँवे कंगव्ययी ।

सजनीयविचारी धनेब विच्छिद्यते रति ॥

—हरिमन्तिरामायन परिणत वि० लहरी ५, पं० ५

रासाम्भवधारव १ तु प्रेयस्यन्तरमाधवयो । दुर्गाम्गानी हरिम १, ५३०

४ रसिकप्रिया ६।१५

५ बदा १७५

६ बही ५।१८

ग—राधा राधारवन के बरने मान समान ।

तिनकी मान मनाइवो कहिप्रत सुनौ सुजान ॥<sup>१</sup>

घ—राधा राधा रमन के करयो सिगार सुयेय ।

रस आधिक घाने कहीं और रसनि के भय ॥<sup>२</sup>

केगव रसिकप्रिया के शृंगार को जागृकता या कृष्ण शृंगार का रूप दकर चला है । नायिका भेद में वह सामान्या का उल्लेख गान्त्रीय पक्ष में ही करते हैं अथवा कृष्ण के मन्दभ में सामान्या का क्या काम ?

और जु तदनी तीसरी क्या बरन इहि ठौर ।

रस मे बिरस न बरनिय कहत रसिक तिरमौर ॥<sup>३</sup>

और वियोग दगाआ के निरूपण के प्रसंग में मरण दगा का सम्बन्ध अजर अमर नायक भगवान् कृष्ण के साथ नहीं जुड़ सकता

मरन स कसवदास प बरयो जाइ न मित्त ।

अजर अमर जस कहि कहीं कसे प्रत-चरित्र ॥

गौडीय आचार्यों ने कृष्ण शृंगार के सम्भोग तथा विप्रसम्भ को बड़े व्यापक रूप में अपनाया है । काव्यशास्त्र के व्यापक विस्तार को नायिका भेद के नाना उपागों को उठोने किस प्रकार माधुर्य रस के ढाँचे में पिट करके दिखा दिया है यह उनके ग्रन्थों में ही देखन बनता है । केगव ने भी रसिकप्रिया के शृंगार में बहुत कुछ समेट कर रच दिया है ।

इतना सब होन हुए भी रसिकप्रिया के शृंगार के सम्बन्ध में यह निस्सन्देह कहा जा सकता है कि उसमें भक्ति की वह आत्मा नहीं है जो गौणीय आचार्यों के द्वारा निरूपित शृंगार में है । वस्तुतः केगव ने प्राकृत शृंगार को ही भक्ति शृंगार के अनुकरण पर सर्वांगीण बनाने का प्रयत्न किया है । उनकी व्यापकता के संकेत उन्हें स्वयं भरत तथा अभिनवगुप्त में ही मिलते थे । परन्तु प्राकृत शृंगार को गौणीय आचार्यों के भक्ति शृंगार के ढाँचे में रखने के कारण रसिकप्रिया का शृंगार विवेचन एक स्वतंत्र तथा नवीनप्राय हो उठा है जिसकी आधारभूमि भरत परम्परा की तथा प्रेरणा में सहयोग गौडीय आचार्यों का होते हुए भी वह उनमें से किसीका पूर्णानुकरण नहीं कहा जा सकता । फिर भी वह आगास्थीय नहीं है यह हम उनके विवेचनों पर कुछ विश्लेषणात्मक दृष्टिपात करने से ही जान सकेंगे ।

गौडीय आचार्यों के समान केगव ने कृष्ण शृंगार से स्वतंत्र साहित्यिक रसों को रसाभास की कोटि में नहीं रखा । हम पीढ़े विचार कर चुके हैं कि उन्हें उन समस्त रसों की इस शृंगार से पृथक् एक स्वतंत्र सत्ता भी स्वीकृत है जिसकी सूचना

१ रसिकप्रिया ३१ ।

२ वही १३१ ।

३ वही ५१३३

४ वही ८१४

रसिकप्रिया के अतर्भाव प्रमग व अत म निरूपित एक स्वतंत्र गीतरम व उदाहरण स मिलती है। यहा यह जिनासा उटना स्वाभाविक है कि हरि शृंगार का समस्त रसों म व्यापकता की दृष्टि म नायक स्वीकार करत हुए भी इन साहित्यिक रसों व प्रति बंगव की क्या दृष्टि है ? हमें इसका समाधान कविप्रिया म निरूपित रसवदलकारों व विवचन स मिलता है। वहा बंगव न मभी रसों को जिनम शृंगार का भी एक उदाहरण सम्मिलित है रसवत अनकार कहा है। उत्तलसनीय यह है कि रसिकप्रिया म निरूपित कृष्ण शृंगार का उहोंने समूची रसिकप्रिया म वहीं भी रम छोड़कर रसवदलकार नहीं कहा। तात्पर्य यह कि बंगव इस प्रकार कृष्ण शृंगार को गौडीय आचार्यों व ममान शृंगाररस का प्रतिष्ठित आमन प्रदान करत हैं गण कृष्णरति म स्वतंत्र साहित्यिक रसों को उनका ममान रमानास न कहकर भी रम नहीं कहने अपितु रमवन अनकार कहकर अलकार-कोटि म रखत हैं। यह ठीक है कि बंगव न अलकार गण का वही व्यापक धारणा व साथ अपनोया है जिसम वणन-गानिया हा नहीं वण्य विषय भी निमित्त आत हैं तथापि यह तथ्य भूलना नहीं चाहिए कि बंगव न अनकारा व दो प्रमुख बग किए हैं—एक साधारण अलकार दूसर विविष्ट अलकार और रसवदनकारा का विवचन विविष्ट अलकारा व भीतर ही आता है। अत यही उहरता है कि उ प्राकृत रसा का अनकार काटि में ही रमन है।

रम दृष्टिकोण के मून म एक कारण दिखाई पड़ता है। बंगव व मामन भक्त आचार्यों की नई रमव्याख्या आई थी और व उमम एक मात्रा तक प्रभावित हुए थे। यह सम्भव ही था उनका समय तक वह वातावरण एकत्रम समाप्त नहीं हा गया था जिसका कारण उम काल व हिंदी साहित्य का हम भक्तियान का नाम दन है। उह यह तो पसन्द आया था कि जब भक्ति शृंगार का स्तना विस्तृत साहित्य हिन्दी की गोत्र म खिस्तरा हुआ है तो भक्ति शृंगार व आचार्यों की प्रेरणा पर उमको एक शास्त्रीय रूप भी ा दिया जाए किन्तु व उम रूप का एकान्गी तथा उम मात्रा तक असाहित्यिक गापद नहीं बनन दना चाहत थ जिस मात्रा तक गौडीय आचार्यों न साहित्यिक रसों को रमानाम कोटि म रखकर बना दिया था। इसका समाधान उहें यी मून पहा कि इन रसों का रमानाम व दर्जे तक गिरान की आवश्यकता नहीं। बम, इननी-नी ही तो बात है कि रम गण को एक पारमाधिक कृष्ण शृंगार व त्रिण सुरागत कर देने पर इन्हें दूसरा नाम देना चाहिए। प्राचीन काव्यशास्त्र म अलकार आचार्यों व द्वारा रसों की पूण काव्यापगिता समझन हुए भी उह रसवदनकार व धात्र म ही स्थान दिया गया था। बंगव उन अलकारवाचियों की उपनिधियों स प्रभावित थ हा जमाकि अनकारों व लिए उहोंने उनका आश्रय ही अधिक दिया है बम, उहोंने साहित्यिक रसोंको रसवदनकारों के बग म म युग म भी आकर रगना पसन्द किया जिसमें कि अलकारवाच की म्यून मायताए निराकृत हो चुकी थीं।

रसवदलकारों व प्रमग म लिए विभिन्न रसों व उदाहरण पर दृष्टिकोण करन म एक तथ्य और सामन आता है। व मभी उदाहरण एक ही प्रकार व अथवा एक ही स्तर व नहीं हैं। हम कह चुके हैं कि कविप्रिया म रसिकप्रिया व आचार्य की

## भाव

वेगव ने भाव का लक्षण इस प्रकार किया है

आनन लोचन वचन भग प्रगटत मन की वात ।

ताही सों सब कहत हैं नाव कविन के तात ॥<sup>१</sup>

मुख नेत्र वचन आदि साधन मनोदंगा अथवा चित्तवृत्ति को प्रकट करत हैं । वा यक्षत्र में उसी चित्तवृत्ति को भाव कहते हैं ।

इन लक्षण में मुख नेत्रादि का कथन उपलक्षण रूप में ही समझना चाहिए । मुख विभिन्न भ्रू विकारादि विभ्रियाओं द्वारा लाचन अक्षयिमा-सजलतादि विकारों के द्वारा एक वाणी विभिन्न उक्ति प्रकारों के द्वारा किस प्रकार मानव मन को प्रकट करती है यह सबविदित है । सक्षप में गरीर चष्टादि जिहें अनुभाव कह सकत हैं भाव प्रकाशन के माग हो तो हैं । वही मागों में मनोत्पाओं का प्रकटन होता है । गान्त्रीय भाषा में यदि चाहे तो कह सकते हैं अनुभावा के माध्यम से जिन मनोविकारों का प्रकाशन या अभि व्यजन होता है वे भाव कहलान हैं । भावों का यह स्वरूप निरूपण अनुभावों के माध्यम से है रसा के सम्बन्ध से नहीं ।

संस्कृत आचार्यों ने भावों का लक्षण एक रूप में ही नहीं किया । उनके प्रति विभिन्न युगों में विचार-दृष्टि भी एक ही नहीं रहा ।

भाव चित्तवृत्ति रूप है यह बात सम्भवत अभिनव से पूर्व अनिवायत स्वीकार नहीं की जा सकी थी । स्वयं भरत ने भाव शब्द का प्रयोग चित्तवृत्ति मात्र के लिए नहीं किया । उनके अनुसार वाचिक आंगिक सात्त्विक अभिनयों से उत्पन्न वाच्यार्थों को भावित करने वाले तत्त्व भाव हैं

वागङ्गसत्त्वोपेतान् वाच्यार्थान् भावयतीति भावा ।<sup>२</sup>

शरीर भावित कर देने का अर्थ है परिव्याप्त कर देना वसा देना जैसे घाप किसी वस्त्र में केवड़े की गंध उसा दे । भरत भाव शब्द को सत्तायक भू धातु से निष्पन्न नहीं मानत करणायक से मानत हैं

भावा इति कस्मात् ? कि भवतीति भावा ? कि वा भावयन्तीति भावा ?

उच्यते—वागङ्गसत्त्वोपेतान् वाच्यार्थान् भावयतीति भावा । भू इति करण धातु तथा भावित वामित कृतमित्यनर्थान्तरम् । त्रिकर्षि प्रसिद्धम्—अहो ह्यनन गधेन रमन वा सबमेव भावितम् । तत्र व्याप्यधम् ।<sup>३</sup>

प्रश्न उठता है—भरत रस के परिव्यापक अथवा वासक तत्त्वा को भाव कहकर इनके भीतर क्या क्या लत हैं ? यद्यपि भरत ने स्पष्टत उल्लेख नहीं किया तथापि यह स्पष्ट हो जाता है कि उन्होंने उम चित्तवृत्तियों से भिन्न विभावानि के लिए भी प्रयुक्त किया है । छोटे अध्याय में रस विवचन के प्रसंग में भाव शब्द का प्रयोग

१ रत्निकप्रिया ६।१

२ नाट्यशास्त्र पृ ३४० अध्याय ७

३ अन्त—नाट्यशास्त्र पृ ३४३ ५

एसा हू है ।<sup>१</sup> इन प्रसंगा म किसी किसी स्थल पर भावा का चित्तवृत्तिरूप अनिवायन मानन वाल अभिनवगुप्त न भी व्यभिचारिया आदि क अतिरिक्त विभावादि क लिए भी स्वीकार किया है ।<sup>१</sup> भरत न अपन पूर्ववर्ती आचार्यों क कुछ आनुवच्य श्लोक प्रस्तुत किए हैं । उनम भी उनकी व्याख्या एव समजस सगति लगान पर भाव की परिधि म विभावात्मिक मभी आ जात हैं जो चित्तवृत्ति ही नहीं है ।<sup>१</sup> और छोड़िए भरत न जिन ४८ तत्त्वा का भाव क अतगत ग्रहण किया है उनम स्थायी तथा संचारी क अतिरिक्त मात्रिक विचार भी हैं । य मात्रिक अनिवायत चित्तवृत्तिरूप नहीं है । व चित्तवृत्तियों क विकार हैं । इसम यही निष्कप निकतता है कि भरत-युग म भाव गान की परिधि बड़ी व्यापक थी जा अनिवायत चित्तवृत्तिरूपता तक ही सामित नहीं थी । लोचनट न भी भाव गान का प्रयोग आलम्बन क लिए किया प्रतीत होना है । अभिनव की साक्षा है कि भरत क कुछ प्राचीन टीकाकार उनकी व्याख्या करत समय भाव गान को चित्तवृत्ति तक ही सीमित न । रखत । किन्तु अभिनव उनकी इस मायता का निगवरण कर दत हैं ।<sup>१</sup> यद्यपि व स्वय कही-कहीं गियिलता बरत गए हैं<sup>१</sup> तथापि व इस मायता को ही स्थिर करत हैं कि भाव चित्तवृत्तिरूप हान हैं । अभिनव क अन्तर यह मायता ही प्रमुखतया अनुगत रहा कि भाव चित्तवृत्तिरूप है । वशव न भी भावा को चित्तवृत्तियों क रूप म ही ग्रहण किया है ।

एव प्रश्न आता है भाव क लक्षण का । भरत न भाव-लक्षण क प्रसंग म तीन आनुवच्य श्लोकों को तीन वकल्पिक मायताया क रूप म प्रस्तुत किया है<sup>१</sup>

१ विभावेनाहृतो योज्यो ह्यनुभावस्तु गम्यते ।

यागङ्गसत्त्वाभिनय स भाव इति सति ॥

१ यथा हि नानाव्यञ्जनीषधिर्व्यञ्जयगाद्रसनिष्पत्ति तथा जानामभवेगमाद्रसनिष्पत्ति । यथा हि गुणान्भिद्रभ्ये ननैरापिभिरन प्रपाणकात्या रसा निवचन्त तथा नानाभावापगता अपि स्थानिना भावा रमन्वमानुबन्धीनि । नाट्यशास्त्र, पृ० २७३ ८

२ भावभिनयमन्वदन् ग्यादिनावात्तथा बुधा । इत्यादि

ना० शा ६।३३ का टीका में अभिनव कहत हैं 'गुणस्वरूपज्ञानस्वभावा भावा अत्र विना

वन्द्यभिचारिण' अ० भा ५० २६०

नाट्यशास्त्र ६।३३ ३३

४ अनुभावकारवाय न रसजन्या अत्र विवचितास्तथा रसकार्यत्वेन गणजानहवाय । अपितु भावनामव अनुभावा । अभिनवमन्ती लाल्ट का मत, पृ० २७२

५ अत्र कविगणु — भावकारवाधि' इत्येवयन्ते भावानामपि लक्षणम् इत्येवयन्त व विभावात्तानां सुबेधा सुधारण्येन प्ररनयि कति । अपुना तु विभवात्पु बन्वन्पु प्रथम तावद्रसान्या चित्तवृत्तिरूपस्य ग्यादिव्यभिचारिणा सङ्गीया । अभि० भा०, पृ ३४३

६ 'वय तु मूढ — भावकारान तव चित्तवृत्ति वशाया एव विवचिता । वहा, पृ ३६३

७ कही पृ ३४३

८ नाट्यशास्त्र ७।२, ३ पृ० ३८५ ६

भरत को आनुवच्य कारिका उतकी अपनी नहीं है । उनक द्वारा उच्यत पूजावादी क मत इनमें निर्दिष्ट हैं । उक्त कारिकाओं में एक सी है विवचयारा मानन नही आता । वस्तुतः य मन्त्रु की वकल्पिक मायता है ।

२ वाग्ङ्गमुखरागेण सत्त्वेनाभिनयेन च ।

क्वेरतगत भाव भावय भाव उच्यते ॥

३ नानाभिनयसम्बद्धान् भावयति रसानिमान् ।

यस्मात्तस्मादमी भावा विज्ञया नाटययोक्तभि ॥

एनम प्रथम लक्षण म भाव वह अथ ३ जा विभावा क द्वारा नाया जाता है अनु भावो तथा अभिनयो स गम्य बनता है । यह लक्षण ठीक ठीक तो रम रूप अथ पर घटित होता है अधिक स अधिक स्थायी तथा यभिचारी भावों पर । सारिकों आदि पर बिल्कुल नहीं ।

दूसरे लक्षण म वाचिकाणि अभिनया के द्वारा कवि के अतगत भाव को भावित करा देने वाले तत्त्व भाव हैं । ये तत्त्व क्या ह स्पष्ट नहीं । इसकी परिधि म विभाव अनुभाव यभिचारी स्थायी सभी आ सकत हैं ।

तीसरे लक्षण म रसा का भावित करने वाले तत्त्वो को भाव कहा गया है । अभिनयों का सीमा सम्बन्ध रसा म दिखाया गया है ।

द्वितीय लक्षण म दृष्टि कवि हृदगत भावा पर है तृतीय म काव्य नाटक म परि याप्त भावा पर । अन्तर दृष्टिकोण का ३ । वम सीमा म अन्तर अधिक नहीं ।<sup>१</sup> दोना ही लक्षणो म दृष्टि वस्तुपरक है न कि सहृदय के हृदगत भावो पर । स्वयं भरत क दृष्टि कोण का विश्लेषण करने म उनको दृष्टि वस्तुगत टहरती है ।<sup>२</sup> तब वाग्ङ्गसत्त्वोपत्तान् का यार्थान् भावय नीति भावा का अथ होता है वे तत्त्व जो अभिनय सम्बद्ध रसो को काव्य-नाटक म परिख्याप्त कर दते हैं भाव हैं ।

धनजय न दशरूपक म भरत म कुछ भिन दृष्टिकोण अपनाकर भाव-लक्षण एम प्रकार किया है

सुखदुःखादिकर्भावभिर्विस्तदभावभावनम् ।

एमपर धनिक की वृत्ति इस प्रकार है

अनुकार्याश्रयत्वेनोपनिबध्यमान सुखदुःखादिरूप भावस्तदभावस्य भावकचेतसो भावन वासन भाव ।<sup>३</sup>

अर्थात् काव्य म मूल पात्र रामादिको का सहारा पकडकर भावो का सविधान किया जाता ह अभिनय-कीर्णल म या काव्यगति क प्रभाव स भावक सहृदय का चित्त भी तदभाव या तत्कतान हो जाता ह तथा उमी प्रकार की अनुभूति करने लगता ह । कारण स्पष्ट ह काव्य म घाण हुए भाव भावक क हृदय को अपन ही रूप म भावित या वाहित कर लत हैं । इसी भावन क्रिया के कारण उह भाव

१ यत्तु रसान् भावयति क्वेरन्नात्भाव भावय भाव एन स तन्भिनयकाव्यो प्रवत्त गाम्य भावराज्यस्य प्रवृत्तिनिमित्तकथनम् । — दशरूपक प ४ श्लो ४ की वृत्ति ।

२ दशरूपक मुद्ररानावाच का ीका १ १२४

३ रसगणध का शरत्पत्र अथवदन—अमररूप मुक्त रम विवचन धान का मत

४ दशरूपक ४।४

५ दशरूपकाव्याज ४।४ की वृत्ति

बहते हैं।

धनजय तथा घनिक व भाव लक्षण का तात्पर्य भरत स भिन्न तो नहीं किन्तु दृष्टिकोण का अंतर अवश्य है। काव्य में मूल पात्रों व भाव वर्णित हैं। उनकी कल्पना कवि व द्वारा हुई है। व महहृदय की भावस्थिति स्वानुरूप कर लत है। उन तन्माय भावन की शक्ति वाल तत्त्व भाव हैं। घनिक को आगका हृद्द कि वहीँ कोई भग्न विरोध का आक्षेप न कर। अत उह यह स्पष्ट करना पडा कि यह भद मौनिक नही दृष्टिकोण का भद ह।<sup>१</sup> धनजय की दृष्टि महहृदय पर ह तथा भाव की व्याख्या व त्रिए उहोंने कायगत सुख दुःखाणि भावों को लिया ह। किन्तु भरत अपन लक्षण म मावो व त्रिए अभिनय पर दृष्टि जमात है।

मम्मट न भाव लक्षण नहीं किया। रतिवादि विषया व्यभिचारी तथाञ्जिन भाव प्रोक्त<sup>२</sup> उनका यह भाव लक्षण पारिभाषिक ह।

विश्वनाथ न अपन लक्षण में आचार्य भरत का ही अनुगमन किया ह

नानाभिनयसम्बद्धान भावव्यति रसानिमान।

तस्माद् भावा अपी प्रोक्ता स्यापिसचारिसात्त्विका ॥<sup>३</sup>

यह लक्षण भरत द्वारा उद्धत तृतीय आनुवश्य श्लोक का स्फुटतर मात्र है। स्वयं भरत न भी उमी लक्षण स प्रेरणा ली है। भरत न भावा का सीमा अपन लक्षण म स्पष्ट नही की था न ही आनुवश्य श्लोक म स्पष्ट थी। विश्वनाथ न उस निर्धारित करन का प्रयत्न किया है तथा स्थायी सचारी और सात्त्विकों का हा भावा म परिगणित माना है। भरत व समान ह। उनकी दृष्टि भी अभिनयात्मक है। व अपन ग्रंथ म दृश्य एव श्रुत्य—उभय कायस्था को मामन रमकर चन रह थे।

पण्डितराज जगन्नाथ न भाव लक्षण करत हुए दो पूर्वपक्षीय लक्षण प्रस्तुत किए हैं

विभावानुभावभिन्तत्वे सति रसव्यञ्जकत्वम्। तथा

रसाभिव्यञ्जकचवणाविषयचित्तवृत्तिरवम।

उन दोनों लक्षणा को उहान एस कारण अवबोधित कर दिया है कि प्रथम म ता ध्वन्यमान भावों म अव्याप्ति आती है। उपयुक्त भरत आति व लक्षण उगमग सी प्रकार व है। दूसरे म यह अव्याप्ति आता है कि जहा वहीँ वहीँ भाव अनुभावरूप म पाए जात है वहा अनुभाव भिन्नता व कारण यह लक्षण न लग सवंगा। अत व अपना अमोष्ट लक्षण इन प्रकार करत हैं

विभावादिव्यञ्ज्यमानहृषाद्यतमरव तत्त्वम्<sup>४</sup>

१ स्वरूपकावचाक ५० १२४

तथा मुद्रानाचाय द्वारा उमुका स्पष्टीकरण। वही ५० १२४

२ कथमप्रकाश—मम्मट ४।८५

३ विश्वनाथ, साहित्यदर्पण परि ३, रवा २८६

४ रमगाधर ५० ७५ ५ वही



पण्डितराज के लक्षण एवं उमके विवेचन में यह तथ्य सामने आता है कि भाव लक्षण ऐसा होना चाहिए जो ध्वयमान तथा व्यञ्जक सभी भावों पर घटित हो सके। दूसरी बात यह है कि भाव स्वयं अपनी सामग्री से व्ययमान होकर ही प्राप्त है तथा वह चित्तवृत्तिरूप ही होता है। पण्डितराज ने इस चित्तवृत्तिरूपता को व्यपक यापक अथवा ग्रहण किया है जिसमें चित्त की भावात्मक ज्ञानात्मक यहाँ तक कि अज्ञानात्मक दशाशा का भी समावेश हो सकता है। तीसरी महत्वपूर्ण बात यह कि एक चित्तवृत्तिरूप भाव स्वयं विभाव अनुभाव आदि के रूप में भी आ सकता है। अतः भाव लक्षण में ऐसी सीमा नहीं बाधनी चाहिए जो उमकी इस व्यपकता को परिणत करे।

पण्डितराज भाव का लक्षण विभावादि रूप व्यञ्जक के माध्यम से करना चाहते हैं। भरत ने हमें वाय के लिए अभिनय-तत्त्वों को पकड़ा था। धनजय की दृष्टि भी अभिनयपरक थी। विश्वनाथ ने भरत का ही अनुगमन किया था। किंतु विष्णुदत्त ध्वयकायपरक दृष्टि से देखा जाए तो अनुभावा का स्थान काय में वही है जो दृश्य में अभिनयों का। पण्डितराज ने उन तत्त्वों को अभिनय अथवा अनुभावों तक ही सीमित नहीं रखा, पूरी व्यञ्जक सामग्री तक व्यापक बनाया। शास्त्रीय दृष्टि से यह अधिक सगत भी था। उनकी दृष्टि अथवा व्यपक थी। पण्डितराज का विवेचन कण्व के सामने नहीं था। उन्होंने भरत के अभिनय-तत्त्वों को अपनी प्रव्यकायपरक दृष्टि के अनुरूप अनुभावा के रूप में मुख्य नेत्र-वचन के रूप में परिणत करके उनसे प्रयुक्त चित्तवृत्तियों को भाव कहा। कण्व के लक्षण में अभीष्ट व्यपकता अप्रतिष्ठ है। वह व्यञ्जक तथा प्राचायन ध्वयमान सभी प्रकार के भावों पर घटित हो सकता है। इस लक्षण से तक्षित भाव स्थायी संचारी और सात्त्विक ही नहीं विभाव और अनुभाव भी हो सकते हैं। कण्व के भाव अभिनव के समान ही चित्तवृत्तिरूप हैं। भरत के समान चित्तवृत्ति से भिन्न तत्त्वों का नहीं समझते। कण्व के लक्षण में हम गहरा अध्ययन एवं संतुलित दृष्टि पाते हैं।

## भावों के प्रकार

कण्व ने भावों को ५ प्रकार का माना है विभाव अनुभाव स्थायी सात्त्विक एवं अभिचारी

भाव सु पाच प्रकार के सुनि विभाव अनुभाव ।

याई सात्त्विक कृत हैं अभिचारी कबिराव ॥ १

कण्व के इस बचन पर उनकी कोई स्पष्टकारिणी लिपि नहीं। उनके हम दृष्टि कोण की व्याख्या दा प्रकार में की जा सकती है।

१ मंगलार का शास्त्रीय अध्ययन अज्ञानरूप सुनि भाव विवेचन पण्डितराज का लक्षण २ अन्वितिका ३।

एक व्याख्या यह है सक्ती है हमन अभी पीछे दिखाया है कि अभिनव स पूव भावा की चित्तवृत्तिरूपता निर्विवाद रूप म स्थिर नहीं हुई थी। भरत व म्यलो की साम जस्यपूण धार्या कर्न पर यही दृष्टिकोण सामन आता है कि व भाव को अनिवापत चित्तवृत्तिरूप नहीं समझत। उनक भाव व सभी भावक या वासक तत्त्व हैं जो रमी को नाटय म परि प्राप्त कर दत हैं। इन वामक तत्त्वो म विभाव अनुभाव स्यायी सचारी एव सात्त्विक—पाचो प्रकार व तत्त्व आते हैं। एम व्यापकता व साध भाव ग<sup>१</sup> का प्रयोग प्रतीत हाता है उन्हें अपन पूवाचार्यो स ही प्राप्त हुआ है जिनक श्लोक आनुवच्य रूप म उहाने प्रस्तुत किए हैं। अभिनव स पूव क कई टीकादार भरत क इस दृष्टिकोण म परिचित थ यह हम पीछे सबत कर चुक हैं।

भरत उन वासक तत्त्वो का अपने विभि न स्थिता का धावश्यकतानुसार भाव ग<sup>१</sup>द की सीमा म रखकर अपना विषय निरूपण करत हैं। सप्तम अध्याय जिसका नाम ही भावाध्याय है भावा व व्यापक विवचन का अध्याय है। अपने लक्षण की तचीली परिधि म उपयुक्त पावा तत्त्वो की समटकर भरत उन सबका निरूपण व्सी अध्याय म करत हैं। विभाव एव अनुभावो का निरूपण भी व्सी अध्याय म आता है। इसम भी यहा निष्कय निवाता जा सकता है कि उह भाव ग<sup>१</sup> की सीमा म य पावा ही तत्त्व अभिप्रेत हैं। परंतु इन पाचों क भरत दा वग बनात प्रतीत होत हैं। एक वग म विभाव एव अनुभाव दूसरे म स्यायी सचारा एव सात्त्विक आत हैं। यद्यपि प्रथम वग क भावा व बिना द्वितीय वग क भावों की सिद्धि नहीं हाता तथापि उनका स्थान दूसरे वग क भावों क समान ही नहीं है। प्रथम वग क भाव साधनरूप हैं त्तीय वग क माध्यरूप। प्रथम वर्गीय भावा की स्थिति बहुत स्थूल है जिनका परिचय व्यक्ति को लोक-स्वभाव म ही हा जाता है।<sup>१</sup> यह विवचन प्रक्रिया भावाध्याय की है। य पाचों प्रकार क वासक तत्त्व रमी का भावन करान क कारण सामान्यतया भाव कह जा सकत हैं।

यहा एक प्रश्न उठ सकता है। भावन या वासन ता स्वय स्यायी भावो का हाता है। व ही तो भावित होकर रस कहनात हैं। तब उन्हें भावक तत्त्वों म किन प्रकार रसा जा सकता है? व ता स्वय भाष्य हैं। इसका समाधान यहा समझना चाहिए कि भरत का विवचन नाटय क समूच स्वरूप पर दृष्टि रखकर चलता है। एक नाटक में एक ही प्रधान रस—प्रधान स्यायी—होता है, किन्तु उमक माप अनक स्यायी गीण रूप म भी आ सकते हैं।<sup>१</sup> व गीण स्यायी अथवा गीण रस उम प्रधान रस क वासक तत्त्वो म ही परिगणित हात। इस दृष्टि स स्यायियों को भी वामक तत्त्व हान क कारण

१ एव तं विभक्तानुभास्यमुक्ता भावा इत न्यास्यता । अ । इयथा भावना सिद्धिभवति ।  
स्यमात्ता भावना विभक्तानुभास्यमुक्ता सचरति गनन्दमिभ्यासायम । तत्र विभावानुभावो  
भावप्रसिद्धो । साकवगवानुगन्तव्यं तयावस्था नाथ्यनप्रसुगनिव्ययम ।

—नाट्यशास्त्र अध्याय ७ पृ० ३४८

२ न इयं रसः । कान्दं किन्चित्पि यत् ।

भासो वापि रसा वापि प्रवर्तिता तिरवन् ॥ बही म ७ पृ १२६

भाव सीमा में रखा गया है ।

किन्तु रस स्वरूप का परिचय का प्रसंग में भाव में परिगणित सभी पांच तत्त्वों का उल्लेख नहीं । प्रसिद्ध रससूत्र में विभाव अनुभाव तथा यमिचारियों का ही परिगणन है । वस्तुतः यहाँ सप्तम अध्याय में निरूपण का दृष्टिकोण भिन्न है । यहाँ छठे अध्याय में सातवें का समान वासक तत्त्वों को परस्पर साध्य-साधक के रूप में रसकर नहीं देखा गया अपितु भाव्य—स्थायी—एव भावकों का परस्पर सम्बन्ध पर दृष्टि डाली गई है । सप्तम अध्याय के ५ भावक तत्त्वों में से स्थायी या वादाचित्कतया ही अथवा सम्पूर्ण नाट्य की दृष्टि से ही भावकों में परिगणनीय होता है अथवा वह तो स्वयं भाव्य ही है । शेष ४ रह जाते हैं विभाव अनुभाव यमिचारी एव सात्त्विक । सात्त्विकता की स्थिति अभिनय दृष्टि अलग कर देने पर अनुभावों में अन्तर्भूत है । एक प्रकार काव्य या यज्ञक सामग्री में तीन ही उल्लेख का निष्पन्न रह जाते हैं । उन्हीं का साथ स्थायी समुक्त होकर रस बनता है । यही कारण प्रतीत होता है कि भरत ने रससूत्र में भाव शब्दों के भीतर पांचों तत्त्वों को ग्रहण करते हुए भी तीन का ही उल्लेख किया है तथा सातवें अध्याय में साधन रूप भावों को साध्य भावों का साथ मिलाकर स्थायी मचारी तथा सात्त्विकता को ही सामन करते हुए भावसंख्या ४६ बताई है ।

भरत का सामान्यतया वापक दृष्टिकोण का अनुसार कहा जा सकता है कि भाव पांच प्रकार का होना है विभाव अनुभाव यमिचारी भाव स्थायी भाव तथा सात्त्विक भाव । केवल न भी इन पांचों भाव प्रकार में परिगणित किया है ।

परन्तु कंगव का दृष्टिकोण का साथ एक यादव का मत नहीं । हम देख चुके हैं कि कंगव अभिनय का अनुरूप भावों को चित्तवृत्ति रूप ही मानते हैं । किन्तु भरत के उपर्यक्त दृष्टिकोण में भाव अनिवायत चित्तवृत्ति रूप ही नहीं रह जाते । वहाँ सभी वासक तत्त्व चित्तवृत्ति मात्र नहीं हैं ।

तब दूसरा सगत समाधान यह आता है भरत का अनुवर्तिनी परम्परा में भाव सामान्यतः तीन प्रकार का मान गए हैं स्थायी सचारी तथा सात्त्विक । सात्त्विक यद्यपि गारार विकार रूप हैं तथापि उनका सम्बन्ध भाव अथवा चित्तवृत्ति की गहरी स्थिति से स्वाभाविक है अतः उन्हें भाव कहा जाता है । भरत ने इन विकारों को जिनकी सरथा घाट है सात्त्विक भाव नाम कुछ दूसरी दृष्टि से दिया था । भाव तो वे इस लिए हैं कि रसों का अर्थ तत्त्वों का समान भावन या वासन करते हैं । तथा उह सात्त्विक इसलिए कहा गया है कि उनका अभिनय कोई अभिनेता बिना अपना मन स्थिति का उमी रूप में जान जिस रूप में अभिनय पात्र की भी नहीं कर सकता कारण इन विकारों का सम्बन्ध चित्त की गहरी अनुभूतियों से स्वाभाविक अथवा अनिवायत है । भरत का अनुसार मत्त्व का अर्थ चित्त ममाधि में इसी प्रकार की उत्पत्ति का है । स्पष्ट है भरत ने उन अभिनय एव वासन की आवश्यकताओं का अनुरूप यह नाम

१ इह हि मत्त्व नाम मन प्रभवम् । तत्र समाहितमनस्यनुच्यते । मनस्य ममात्मी सन् निश्चितमवने । तस्य च यानि स्वभावो रानाञ्चानुबन्धयानुसङ्गात् कणमावागन्त म न शक्यान्दननमा कनु निर्वन । तावत्त्वानुकरणाच्च सत्त्वनीमित्तम् । एतन्वाग्य मत्त्व यत्तु दुःस्ति

लिया था । कि तु परवर्ती आचार्यों ने मन प्रभवता के कारण उह भावकोटि में स्वीकार किया । उस प्रकार मोटे तौर पर भावा के तीन प्रकार रहे—स्थायी व्यभिचारी और सात्त्विक । इसका अर्थ यह हुआ कि चित्तवृत्तियाँ तीन रूपाँ में आ सकती हैं यह माना गया । विन्वनाथ ने इस मोटे निरूपण तक ही दृष्टि रखी । कि तु सूक्ष्म विवचन ने यह भी स्वीकार किया है कि भाव विभाव तथा अनुभाव रूप में भी आ सकते हैं । यहाँ विभाव का अर्थ होगा किसी अथ भाव का जन्म देना या उसका कारण बनने की क्षमता होना । इसी प्रकार अनुभाव का अर्थ होगा किसी रस अथवा भाव के अनुभावन में कायरूपतया योग देना ।<sup>१</sup> पण्डितराज जगन्नाथ ने तो भावा की विभावता तथा अनुभावता का अत्यन्त सूक्ष्म विवचन प्रस्तुत किया है । उन्होंने चित्तवृत्ति का जो पर्याप्त विस्तृत अर्थ में लिया है जिसमें भावात्मक ही नहीं ज्ञानात्मक वृत्तियाँ भी सम्मिलित हैं । भावा की विभावता तथा अनुभावता का स्पष्ट उल्लेख स्वयं आचार्य अभिनवगुप्त ने भी किया है ।<sup>२</sup> अतः यह मायता सामन आती है कि भाव कहीं जान वाली चित्तवृत्तियाँ तीन ही नहीं पाँच प्रकार में आ सकती हैं—स्थायी रूप में यभिचारी रूप में सात्त्विक रूप में विभाव रूप में तथा अनुभाव रूप में ।

हम दण्डित में कण्व ने इसी दृष्टि से भावा का पाँच प्रकार का कहा है । वे उस विषय में पूणत अभिनव के अनुयायी रहे हैं । भावा का चित्तवृत्तिरूप मानते हुए पाँच प्रकार का कहना भरत नहीं, अभिनव के अनुरूप ही हो सकता है । कण्व ने इस पाँच प्रकार का कहकर अपन अर्थयन की सूक्ष्मता का परिचय दिया है ।

### विभाव

कण्व का विभाव उक्षण इस प्रकार है

जिनमे गत अनेक रस प्रगट होत अनपास ।

तिनसों विमति विभाव कहि चरनत कसवदास ॥<sup>३</sup>

तत्र मुद्रिता वा प्रगान्धौ दग्निश्री इति कृत्वा सात्त्विकं भावा इति व्याख्याता ॥

—नटयशारत्न, पृ० ३७१, भाग १

१ विभावस्वरूप व्यभिचरिणा निमित्तकारणत्वात् । रसगणधर, पृ० ७६

२ णु सारिपु तत्र केचन केषाचन विभावा अनुभावाश्च भवन्ति । तथा हि इष्याया निर्वे प्रति विभावाश्च औ मुक्त्य प्रति सात्त्विकी यानि स्वयमूह्यम् । वनी, पृ १८

कण्वादिषु च सा ज्ञानाभावत्वात् ज्ञानी नित्यगम् ।

अपि नीलाप्यननाया कला व्यापारिणि विशामनुत् ॥

इत्यत्र ज्ञानाभावत्वात् कला नान्तरात् । तस्य विप्रलम्भानुभावयो र्माभिव्यक्तत्वात् । विषयत्वात् चित्त निवृत्तौ । वही, पृ० ७१

३ वर मुद्रित 'भावरा' न सात्त्विकवृत्तिविरापा एव विवक्षिता । तथा तु योग्यतावशात् यद्येते रसदिग्ध विभावो अनुभावरूपता संभवति । यत्वेन अष्टमलयाद्या विभाव—ते न भावगण्वाद्या ॥ अभिनवमायता भा १, पृ० ३६३

४ रत्निकप्रिया ६ । ३

'कण्व शब्द' का सुमार अर्थ करने भी अर्थ में प्रकार विदा ज्ञा सकता है—सोक में जिनमे

जिनसे धनक रस उद्बुद्ध हात हैं तथा अनायास प्रकट होत हैं उह विगन विभाव कहकर वणन करते हैं ।

कविविद्या का यह विभाव लक्षण विभावो की विभावन शक्ति की प्रारंभिक ध्यान दकर किया गया है । विभावयति वासनारूपतयातिमूक्ष्मान् रत्यादीन् स्थायिन आस्वाद योग्यतामानयतीति विभावा ।<sup>१</sup> यहा कविविद्या का रस गान भी स्थायी भावो का ही वाचक है । भाव सामान्यतः मुष्णदगा म रहत हैं विभावा क आश्रय म उद्बुद्ध एव प्रकाशित हो जात हैं । उनक उदबोधन एव प्रकाशन का अर्थ यही है कि सामाजिक द्वारा उनका आस्वादन हो सक । विभावत आस्वादाकुरप्रादुभावयाग्या त्रियते सामाजिक रत्यादिभावा एभि ।<sup>२</sup>

कवि ने अपने लक्षण म आलम्बन एव उद्दीपन उभयविध भावा क कार्यो पर ध्यान रखा है । भावो को जाग्रत या उद्बुद्ध मात्र करन वाल कारण रूप आलम्बन तथा प्रकाशन करन अथवा प्रकटता योग्य बनाने वाले उद्दीपन विभाव कह गए हैं । प्रकटता की क्षमता उद्दीपको क द्वारा ही आती है । फिर उद्दीपनो क सम्बन्ध म कवि का कुछ भिन्न दृष्टिकोण है जिम हम आगे अभी देखेंगे ।

यद्यपि कवि का यह लक्षण शास्त्रसम्मत है तथापि भरत धनजय विश्वनाथ आदि के लक्षणो म इसकी पदावली नहीं मिलती ।

भरत का लक्षण है

विभाव्यतेऽनेन वागङ्गसत्त्वाभिनया इति विभाव ।

विभावो नाम विज्ञानाय । विभाव, कारण निमित्त हेतुरिति पर्याया ।<sup>३</sup>

वाचिक आगिक सात्त्विक अभिनय जिसके द्वारा जनाए जात हैं उस विभाव कहत हैं । वि पूर्वक गिजत भू घातु भरत के अनुसार विज्ञानाथक है तथा विभाव गद का अर्थ है कारण । अतः विभाव के तापक कारण हुए जिनक द्वारा विभिन्न अभिनयो का ज्ञापन होता है ।

कवि ने अभिनयागा क स्थान पर रसा को विनय या प्रकाश्य माना है । यह उनक कायपरक दृष्टिकोण क कारण हुआ है । भरत की दृष्टि अभिनयपरक थी । भरत क आनुवच्य श्लोक म जो लक्षण दिया है उसम अभिनय नहीं अभिनेय अर्थ

अनक रस गत्यति विभिन्न भाव उद्बुद्ध हाते ह उनका विगन विभाव कहत ह । यह उद्यत विश्वनाथ के मन्त्रा अनु रूप हागा—रत्याद्युत्वायका लावे विभावा कायनाटयया ।

—साहित्य पृ ३२

१ कायम गान शीका पृ ८९

२ साहित्य परि २, पृ १६

३ ना शा पृ ३६६

४ भरत का अर्थन पूर्वकी प्राचायो म विभाव एव अनुभावा के विषय म दृष्टिकोण मन्त्र परिलिखित हा । है । भरत अभिनयो का ज्ञान कल तत्त्वो को विभाव तथा अनुभाविन कराने वाल तत्त्वो का अनुभाव कहत ह । यद्यपि आनुवच्य श्लोको में विभाव एव अनुभाव्य अभिनयागा नहा अभिनय अर्थ है । भरत के लक्षण म म हैं । मय में शब्दमन्त्रोच जाना-बूझा हा कहा जा सकत है । देखिए — शब्दशास्त्र अध्याय ७ पृ ४६ ८

ही विभाव्य कहा गया है ।<sup>१</sup> भरत क गंगा की व्याख्या अभिनव आनुवदय गंग की छाया म गी करत हैं ।<sup>२</sup> परिवर्ती मायता अभिनव व अनुसूप ही चली है ।

धनजय का विभाव लक्षण कुछ भिन्न दृष्टि म इस प्रकार है

नायमानतया तत्र विभावो भावपोषणम्<sup>३</sup>

नायमानतया का स्पष्टीकरण धनिक इस प्रकार करत है

एवमयम् एवमियम् इत्यतिगयोक्तिरनकायव्यापाराहितविगिष्टरूपतया

नायमानो विभाव्यमान सन्नाम्वनोद्धीपनत्वेन वा यो नायकादिरभिमतदंगशाला दिर्वास विभाव ।

वाप-व्यापार की विगिष्टता स ह्य नट की रामादि तथा नटी की सीतादि व रूप म समभ जन हैं । यह ढंग अनिगयाति का है । इस ढंग स जा विनायमान हैं व ही विभाव हैं । स्पष्ट है इन लक्षणा म आचार्यों की दृष्टि शुद्ध अभिनवपरक है । बंगव की पटावती इनस भिन्न होना ही स्वाभाविक है ।

### विभावों के प्रकार

बंगव विभावों के ७ प्रकार—प्रानम्यन एव उदीपन—स्वीकार करत हैं

सब विभाव द्व नीति क कसवदास बयानि ।

प्रालम्बन एक दूसरे उदीपन मन ग्रानि ॥<sup>४</sup>

का गंगास्य म विभावा क गंगे—प्रालम्बन एव उदीपन—मानन की मायता पयाप्त पुरानी है । गान्धर्व क तथा गुरुक क मनो म उनका उल्लस पाया जाता है किन्तु एगम पूव क विषय म निश्चयपूर्वक कुछ नहीं कहा जा सकता ह । एतना ता निम्न यह ह कि स्वय भरत एव उनस पूव क किमी आचार्य ने विभावों का इस प्रकार का विभाजन नहीं किया था । भरत क किमी स्थान म हम प्रकार की सूचना भी नहीं मिलती ।<sup>५</sup> उन्होंने विभिन्न रमा क विभावों का जो उल्लस किया ह उस स्थाने म यगी अनुमान हाता ह कि भरत किमी भाव क त्रिण किमी मानव-पात्र का अनिवायत हाता अपक्षित नहीं समझन । उदाहरणस्वरूप शृंगार की उत्पत्ति की चर्चा भी जा सकती ह । शृंगार क विभावों का निरूपण इस प्रकार हुआ ह

१ बहवाप्या विभाव्यन्त वागदाभिनयाप्रया ।

अनन यगमाचनाव विभाव इति मक्षित ॥ ना शा० ३।५

२ वागत्याभिनया यथा ग्या वन्धनिचारिण्या त वागाभिनयसहिता विभाव्यन्त विगिष्ट नया वायन्त येन विभवा । अभि भा०, भाग १, पृ० २७

३ आरूपक ५२

४ आरूपकवचक ५० को वति

५ रवि००, प्रम व ६ ५

६ अनप्य पुनिता नय क्वदिभिभाव उल्ल सूत्रिता वा । अनिवायान्ता, भा १ पृ० ३०५

७ नटगाम्त्र अ० ६ रम प्रकग्य तदा म ७ ग्यावभावा प्रकग्य

तत्र सम्भोगरतायत् ऋतुमाल्यानुलेपनालङ्कारविषयवरभवानोपभोगोपजनगमना  
नुभवनध्वणदगनश्रीडादिभिविभावदृष्टयते ।<sup>१</sup>

सम्भोग शृंगार उत्पन्न होता है प्रत्युत्तु माल्य चन्दनादि अनुलेपन आचरण  
प्रियजन—मखीघादि दृष्टविषय गीत आदि सुन्दर भवनोपभाग उपवन गमन दृष्ट  
सामग्री का अनुभवन श्रवण दगन श्रीडा गीता आदि स । हम देखते हैं कि हम सामग्री  
म नायक-नायिका आलम्बन तथा प्रकृति उद्दीपन जसा कोई विभाजन नहीं आलम्बन  
रूप म किसी चेतन पात्र का भी अनिवायताविधायक कोई उत्पन्न नहीं । वस्तुत  
भरत के विभाव की कुछ परिस्थितिया हैं जिनम रत्नदुदबोधन स्वाभाविक है ।

अभिनवगुप्त भरत के इस दृष्टिकोण से सहमत होत हैं । वह समस्त सामग्री  
शृंगार की विभाव समझनी चाहिए जो भी रमणीय है हृद्यतम है । उसका माज  
सभार पूणता को पहचान नहीं कि उत्तम प्रकृति वाले व्यक्ति के मन म रत्नदुदय  
हुआ नहीं ।

एतच्च समस्तमेव शृंगारविभावत्वेन मानव्यम् । यावान् कश्चिदप्य  
विषयसम्भारो हृद्यतमस्तत्पूणतायां सत्यामुत्तमस्य रत्नदुदय ।<sup>१</sup>

यदि हम भरत के शृंगार विभावो का विश्लेषण करें तो उत्तम निम्न नामग्री  
पा सकते हैं

१ प्रकृति की कुछ मोहक

परिस्थितिया

ऋतु

२ विलास एवं ऐश्वर्य सामग्री

माल्य अनुलेपन वरभवनोपयोग  
उपवन गमन सर-सपाटा श्रीडा  
सीला आदि

३ गीत कलाए

विषय गीतादि

४ प्रिय व्यक्ति

दृष्ट जन

(क) परस्पर नायक-नायिका

(ख) उनका सम्बन्ध स प्रिय गगन वात

अथ योय क मखी तखा

(ग) अपने मखी-मखानि

यहा एक बड़ी महत्वपूर्ण बात सामने आती है । क्या भरत ने प्रकृति म स्वतन्त्रतया  
रत्नदुदबोधन की क्षमता मानी है ? यदि हाँ तो वह परवर्ती काव्यशास्त्र को कहा तब  
माय है ?

उपयुक्त विश्लेषण पर दृष्टिपान करन स यहा तथ्य निकलना है कि प्रकृति की  
कुछ रमणीय तथा मानव परिस्थितिया की पूणता हान पर भरत मानव मन म रति के  
समुत्पन्न की सम्भावना करन हैं । परवर्ती काव्यशास्त्र प्रकृति की सम्भावना को नहीं

१ ना गी भाग १ पृ ३

२ उक्त शब्द—अभिनवगुप्त १० ४

३ मखी पृ ३ ८ भाग १

पहचान सका। प्रकृति का प्राय उदीपन रूप में ही ममभा गया। हिंदी काव्यग्राम्भ की दृष्टि तो हम मीमांस उठी ही नहीं। आधुनिक काल की समीक्षा में उमपर ध्यान गया है।

सात्ययुग है कि भरत क अनुभार प्रकृति तलितकला विलास-मामग्री अथवा प्रियजन सम्पक—ममीम रत्युवाधन की क्षमता है। उमम स्त्री अथवा पुरुष चतन प्रतिपात्र की स्थिति अनिवापत अपरित नहीं।

अभिनवगुप्त भरत क रम 'यापक दृष्टिकोण में महमत तो होत हैं किंतु कुछ परिष्कार क साथ। उनका एक स्पष्टीकरण यह है कि भरतकन विभाव परिस्थितिया व्यस्त रूप में नहीं अपितु ममस्त एक सम्पूर्ण रूप में हानी चाहिए अथवा विषय-सम्भार हाना जुटना चाहिए कि वह एक अभीष्टपूणता का पहचकर रत्युदबीध क अनुवृत्त विभावात्मक वातावरण की मृष्टि कर सक।<sup>१</sup> यदि इस विभाव-वातावरण अथवा शृंगारी परिस्थिति में कुछ कभी भी होती है तो सामाजिक की कल्पना कितन उम पूरा करती है। अभिनव का समुपाधन है कि भरत का शृंगार उत्तम प्रकृति क 'नागा म सम्बध रखता है जो एश्वयाम्भन हान हैं। व समृद्ध भोगा क सम्भार मन में लिए रत हैं। उन सम्भारों क वन स ही काव्यानुभूति क समय 'सूनतम विभाव सामग्री में भी काम चल जाता है कल्पना उनका सहारा देती है।<sup>२</sup>

भरतक दृष्टिकोण में दूसरा परिष्कार अभिनव की ओर म यह है कि व विभाव परिस्थिति की चतन प्रतिपात्र क बिना नहीं स्वीकार करना चाहत। उसी विभाव वातावरण की जिसक बीच चतन प्रतिपात्र मद्रिहित है व रति का विभाव कहना चाहत हैं। फगत विभावा का मालम्भन उदीपन भेद भरत की दृष्टि स कृत्रिम मान कर भी तथा ममूच ही वातावरण का विभाव मानकर भा व वास्तविक विभाव परस्पर स्त्री पुरुष की ही मानत हैं।<sup>३</sup>

इम प्रकार हमने देखा कि भरत म मालम्भन उदीपन की कोई विभाजक रखा नहा। अभिनव उन्हें कृत्रिम मानत है। किंतु यह वर्गीकरण अभिनव स बहुत पुराना चल पटा था। लो नट क विवचन में भा उमका उत्तरम मिल जाता है। अभिनव भरत क मडातिक दृष्टिकोण में सहमत हाकर भी अपन युग में जड पकड चुकी इम मा यता की एकम उगाड नहीं फेंकत। व उदीपना की गता एन उनका काय कुछ

१ 'अथवा मममनव म्भाविभाव क मन्वयन्। यामान् कश्चिद्य विषयमभय। एतन्मन्वयन् तस्य मन्वयन्मन्वय रत्युय। अन एव रनावया इवमनुमन्वयन कान्वपूना वमन इत्यपि मममवाप संशुधा। शक्यनितगतपुत्रागमनित्वे 'दन्त' इत्या म्ना।

—अभिनवभाष्यी भाग १, पृ० ०४

२ 'तु प्रथम प्रमाणप्रमाणे 'गानममनानिम' २४। क एतन्व १ प्रवपूनाय नि 'लारा' इत्यमृष्टिमन्नाममन्वादाभात् पूना नि 'मन्वय' एतन्व १ इ एतन्व १ इत्येव तत्रतयागइत्यम्। ता पूनापुत्रागइत्यमनुमितिम्। वडा, भा १ पृ० ३ ६

३ 'एतेष्वकानु' म्भापुमा परत्य रिम'।। एतन्व १ इत्येव तत्रतयागइत्यम्।



न कुछ स्वीकार कर ही गत हैं। अनुभाव एव उद्दीपन का निरूपण करते हुए एक प्रथम म व कहते हैं

तस्य तु प्रथमक्षयापामेव रसनागोचरत्वाभिमतस्य नयनचातुर्यादिभी रसो रसनाद्याभिमुख्य नीयते । अत एव ते अभिनया अनुभावाच्च । तद्रसास्वादे समर्थाचरण मुद्दीपनम् ।<sup>१</sup>

विभाव अलग अलग नहीं एक समूची परिस्थिति है। उनके साक्षात्कार क प्रथम अवसर म ही रसन क्रिया निष्पन्न हो जा ती है। ऐसा नहीं होता कि गमन क्रिया क समान ग तय पर पहुचने पर क्रिया निष्पत्ति होती हो।<sup>२</sup> इस रसना या अनुभूति क्रिया की ओर अभिनय कराने वा न या बढ़ाने वा न तत्त्व अभिनय अथवा अनुभाव कहनाते हैं। उसी रसास्वाद म जो समथ आचरण हाते हैं उह उद्दीपन कहते हैं।

रसास्वात् की प्रक्रिया म समथ आचरण उद्दीपन है। किन्तु उद्दीपनरूप म समथ आचरण अथवा समथ क्रियाए कौन-कौन हैं यह अभिनव न स्पष्ट नहीं किया।

भरत एव अभिनव क उपयुक्त विचारो को हम कगव की प्रेरणा क मून म स्पष्ट पात है। कगव की विचारधारा का विरूपण करने स यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा।

कगव आलम्बन एव उद्दीपन का भेद विभावो म स्वीकार करते हैं। यह हम अभी देख चुके हैं। अभिनव न भरत क माथ सद्भातिक रूप से सहमत हाकर भी समर्थाचरणा का उद्दीपन कहा है। उसका अर्थ हुआ क आलम्बन उद्दीपन का भेद अस्वीकार नहा करते। इस रूप म उद्दीपनो को स्वीकृति न्न का अर्थ है समस्त विभाव वग म स कुछ विनिष्ट आचरणा का अलग कर गप का आलम्बन रूप म स्वीकार करेना। कशव ने अभिनव के इस स्थान क विवेचन स इसी प्रकार का निष्कप निकाला है जो असंगत नहीं कहा जा सकता।

कगव आलम्बन एव उद्दीपन का निरूपण इस प्रकार करते हैं

जिह् अतन अवलम्बई ते आलम्बन जानि ।

जिनते दीपति होति है ते उद्दीप बलानि ॥<sup>३</sup>

जिह् कामवति अवलम्बित करती है व आलम्बन होत है तथा जिनसे उद्दीपत होती है उन्हें उद्दीपन।

यहा यह द्रष्टव्य है कि कगव न जो आलम्बन का लक्षण किया है वह शृंगार मात्र को ध्यान म रखकर न कि सभी रसों क आलम्बन मात्र क विषय में। हम देख चुके हैं कि रसिकप्रिया म कगव का विवेचन शृंगार दृष्टि स परिचालित है। यदि

१ अभिनवभारता भाग १ पृ ३५

२ नै कथितापनिबद्धनेन च साक्षात्कारकत्पत्तानानीनै सम्यगि यविधनभागात्मक समागो रस उत्पन्न भवति-इव । नहि गमनक्रियावत् पश्यन्ते रसनक्रिया निष्पन्नं । अथि तु प्रथम प्वाचर ।

—वही पृ ३५

३ रसिकप्रिया ६।५

४ अतन — अतनु — वान — रनि

आप चाहें तो अतन गण का अर्थ जसा कि प्राय किया जाता है 'रम कर सकत है और जिह रम अपने उद्घाषन के लिए अवनम्बित करता है व आलम्बन इस प्रकार का अर्थ निकाल सकत हैं। किन्तु वह अर्थ बंगव का अभिप्रेत नहीं। अतन गण का प्रयोग रम के लिए साहित्यशास्त्र में नहीं आता। अतन का मीघा सादा अर्थ है वाम और कामवृत्ति या रति को ह्रा बंगव शृंगार का मूल भाव निर्धारित कर चुक है।'

उद्दीपन का लक्षण भी जिम रूप में परम्परा स्वीकृत है उ होने किया है। अभिनव ने समय आचरणों को उद्दीपन कहत समय उनका दीपनात्मक रूप को नहीं बताया था यह कहा जा सकता है। अथ आण् इत दोनों में परिगणित सामग्री की भार।

बंगव आलम्बन विभाव के अतगत निम्न वस्तुओं का उल्लेख करत है

दपति जोवन रूप जाति-लच्छन जुन सलि-जन ।

कोकिल कलित घसत फूल फल दल अलि उपवन ॥

जलकर जल जुन अमल कमल कमला कमलाकर ।

चातक मोर सुसन् तश्चित घन अरुद अवर ॥

सुभ सज दीप सौगध गृह पान गान परिधान मनि ।

नय नृत्य भद धीनादि सब आलम्बन कोसव बरनि ॥'

ध्यान से दृग्गन पर प्रतीत होना है कि प्रथम पक्ति में शृंगार विभाव की सामग्री रखा हुई है जिममें युवक दम्पति सपरिकर गिना लिए गए हैं। ये भरत के 'दृष्ट जन की पारत्या मात्र हैं। द्वितीय पक्ति में वसन्त के उपकरण तृतीय में गणक के और चतुर्थ में वषा के समार २। इन तीन पक्तियों का भरत के श्रुतु तथा अभिनव के श्रुतुवसन्तानि' गणों का विस्तार भर हा समझना चाहिए। पाचवीं पक्ति में सुभ सज दीप सौगध गृह पान गान परिधान मनि में भरत के माल्यानुलपना नवारविषयवरभवनापभोगोपवनगमन की विलास एवम्ब की सामग्री सन्निविष्ट है। अन्ति पक्ति में नय गान संगीत वाद्य आदि विविध वनाओं की और सबत किया गया है।

बंगव ने किसी उपकरण को व्यस्त रूप में नहीं दिया। योवन रूप जाति लक्षणों से युक्त युवक दम्पति अपनी मित्रमण्डली के सहित विभिन्न श्रुतुओं के समार में विभिन्न विलास-सामग्री एवं वनापूण वातावरण के बीच रखकर दंग गए हैं। विभाव के आलम्बन पक्ष को चरन प्रतिपात्र से युक्त वातावरण के रूप में रखा गया है।

और उद्दीपन के अतगत बंगव ने भावोन्बोध के अनन्तर हीन वाता युवक

१ रत्ननि की अलि गान्गी रतिरनि मन्त्र विरर ।

लक्ष्मी मां सब कष्ट इं बरि का'रि' म गार ॥ रत्नविद्या १ । १७

२ बहा ६६

३ अभिनवभागी भा १, पृ० ३०६

न कुछ स्वीकार कर ही गया है। अनुभाव एवं उद्दीपन का निरूपण करते हुए एक प्रयोग में यह कहते हैं

तस्य तु प्रथमकक्ष्यायामेव रसनागोचरत्वाभिमतस्य नयनचातुर्यादिभ्यो रसो रसनाद्याभिमुख्य मीयते । अत एव ते अभिनया अनभावाश्च । तद्रसास्वादे समर्थाचरणमुद्दीपनम् ।<sup>१</sup>

विभाव अलग अलग नहीं एक समूची परिस्थिति है। उनके साक्षात्कार के प्रथम अवसर में ही रसन क्रिया निष्पन्न हो जाती है। ऐसा नहीं होना कि गमन क्रिया के समान य त य पर पहचाने पर क्रिया निष्पत्ति होती हो।<sup>२</sup> इस रसना या अनुभूति क्रिया की ओर अभिनय कराने वाले या बढ़ाने वाले तत्त्व अभिनय अथवा अनुभाव कहलाते हैं। उमी रसास्वाद में जो समय आचरण होता है उह उद्दीपन कहते हैं।

रसास्वादा की प्रक्रिया में समय आचरण उद्दीपन है। किन्तु उद्दीपनरूप में समय आचरण अथवा समय क्रियाएँ कौन-कौन हैं यह अभिनव ने स्पष्ट नहीं किया।

भारत एवं अभिनव के उपयुक्त विचारों को हम कण्व की प्रेरणा के मूल में स्पष्टतः पाते हैं। कण्व की विचारधारा का विश्लेषण करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा।

कण्व आलम्बन एवं उद्दीपन का भेद विभावों में स्वीकार करते हैं। यह हम अभी देख चुके हैं। अभिनव ने भारत के साथ सद्धान्तिक रूप से सहमत होकर भी समर्थाचरणों का उद्दीपन कहा है। इसका अर्थ हुआ कि आलम्बन उद्दीपन का भेद स्वीकार नहीं करते। इस रूप में उद्दीपनों को स्वीकृति देने का अर्थ है समस्त विभावों में से कुछ विशिष्ट आचरणों को अलग कर लेने को आलम्बन रूप में स्वीकार करना। कण्व ने अभिनव के इस स्थल के विवेचन से इसी प्रकार का निष्कर्ष निकाला है जो असंगत नहीं कहा जा सकता।

कण्व आलम्बन एवं उद्दीपन का निरूपण इस प्रकार करते हैं

जिहें अतन अवलम्बई ते आलम्बन जानि ।

जिनते दीपति होति है ते उद्दीपन बलानि ॥<sup>३</sup>

जिहें कामवृत्ति अवलम्बित करती है व आलम्बन होना है तथा जिनसे उद्दीपित होती है उह उद्दीपन।

यहां यह द्रष्टव्य है कि कण्व ने जो आलम्बन का लक्षण किया है वह शृंगार भाव को ध्यान में रखकर न कि सभी रसों के आलम्बन मात्र के विषय में। हम देख चुके हैं कि रसिकक्रिया में कण्व का विवेचन शृंगार दृष्टि से परिचालित है। यदि

१ अभिनवभारता भाग १ पृ ३५

२ एते कविनापनिबद्धेनैतेन च साक्षात्कारकत्वात्मानोत्तमस्यगिर्यविप्लवभागात्मकसंभागात्संस्पर्शमन्त्रित्वेन । नहि गमनक्रियावत्पश्यन्ते रसनक्रिया निष्पन्नम् । अथि तु प्रथम एवात्सर ।

—दही १ ०५

३ रसिकक्रिया ६ । ५

४ 'अन्न — अन्न — काम — रसि

आप चाहें तो अतन गद्य का अर्थ जसा कि प्राय किया जाता है रस बर सकत हैं और जिह रस अपने उद्बोधन के लिए अवनम्बित करता है व आलम्बन रस प्रकार का अर्थ निकाल सकत हैं। किन्तु वह अर्थ बंगव को अभिप्रेत नहीं। अतन गद्य का प्रयोग रस के लिए साहित्यशास्त्र में नहीं आता। अतन का सीधा सादा अर्थ है काम और कामवृत्ति या रति को ही बंगव शृंगार का मूल भाव निर्धारित कर चुक है।<sup>१</sup>

उद्दीपन का लक्षण भी जिस रूप में परम्परया स्वीकृत है उहोने किया है। अभिभाव ने समय आचरणा को उद्दीपन कहन समय उनक दीपनात्मक रूप को नहीं भुलाया था यह कहा जा सकता है। अब आइए इन दोनों में परिगणित सामग्री की धार।

बंगव आलम्बन विभाव के अतगत निम्न वस्तुओं का उत्प्रेषण करत हैं

दपति जोवन रूप जाति सच्छन जुत सखि-जन।

कोकिन कलित बसत फूल फल दल अलि उपवन ॥

जलधर जल जुत अमल कमल कमला कमलाकर।

घातिर मोर सुसद तडित धन अरुद अवर ॥

सुभ सज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान मनि।

नय नृत्य भद योनादि सब आलम्बन कसब बरनि ॥<sup>१</sup>

ध्यान से देखन पर प्रतीत होना है कि प्रथम पक्ति में शृंगार विभाव की सामग्री रक्ता हुई है निम्न युवक दम्पति सपरिवार तिना लिए गए हैं। ये भरत के अष्ट जन की व्याख्या मात्र हैं। तृतीय पक्ति में वसत के उपकरण, तृतीय में गद्य के और चतुर्थ में वषा के सभार हैं। इन तीन पक्तियों को भरत के 'श्रुतु तथा अभिनव के श्रुतुवसताति' गद्य का विस्तार भर ही समझना चाहिए। पाचवीं पक्ति में सुभ सज दीप सौगंध गृह पान गान परिधान मनि में भरत के माल्यानुत्पना उदारविषयवरभवनापयोगीपवनगमन की विलास एवम्प की सामग्री सन्निविष्ट है। छठी पक्ति में नृत्य-गात संगीत वाद्य आदि विविध कलाओं की ओर संकेत किया गया है।

बंगव न किसी उपकरण को व्यस्त रूप में नहीं लिया। जीवन रूप जाति सक्षणों से युक्त युवक दम्पति घपनी मिश्रमण्डली के सहित विभिन्न श्रुतुओं के सभार में विभिन्न विलास-सामग्री एवं कलापूज वातावरण के बीच रगकर दने गए हैं। विभाव के आलम्बन पक्ष को चर्चन प्रतिपाद्य से युक्त वातावरण के रूप में देखा गया है।

और उद्दीपन के अतगत वशाव ने भावोदबोध के अनन्तर होने वाली युवक

१ रत्नमणि के अति पानुगी रत्नमणि मन्त्र विज्ञान।

तर्ही मां सब कदम दं कवि वाचि म गार ॥ रत्नकमिया १। १७

२ कदा, ६।६

३ अन्तिरामरक्षी भा० १, पृ० ३०४

दम्पति की कुछ पारस्परिक च्छटाओं का उत्पन्न किया है

अवलोकनि आलाप परिभवा नत्तर रद-दान ।

चुदनादि उद्दीप ये मदन परस प्रमान ॥<sup>१</sup>

एत जियाओ अथवा आचरण। म नायक नायिका की परस्पर च्छटाए है । कविवर के इस दृष्टिकोण को अभिनव के तत्सोदयाने समर्थाचरणमुत्पीपनम् की सीधी प्रेरणा मिली है । आचरणों की सम्यक्ता का कविवर ने यही अर्थ उगाया है कि नायक नायिका में परस्पर रत्युदबोध हो जाने पर तत्सोदबोधे सति होन वान फसात्मक आचरण ग्रहण बिण जाए ।<sup>२</sup> पर साथ ही इनका उद्दीपनात्मक उपयोग भी है । कविवर ने दम्पति च्छटा आदि को इसी दृष्टि से विस्तार दिया है ।

कविवर के इस दृष्टिकोण उसकी प्रेरणा तथा उसके पीछे निहित का यशस्वन् च मम को ठीक से न समझने के कारण उनकी इस मायना की उल्टी भीषी आलोचना होनी रही है । रसिकप्रिया के प्राचीनतम टीकाकार श्री सरदार कवि ने भी मनमानी याख्या कर परम्परामुक्त अर्थ निकालन का प्रयत्न किया है ।<sup>३</sup> उन्होंने आलम्बनो म वर्णित मामग्री म स नायक नायिका को तिनका पत्ति में उत्पन्न है छोड़कर गण नीचे के उद्दीपन वर्णन के प्रसंग से सम्बन्ध जोड़ा है । यह याख्या सवधा अनभिप्रेत है जबकि कविवर अिण्डिम घोष के साथ स्वयं कहते हैं—सव आलम्बन कसव बरनि ।

कविवर विभावो के निरूपण में निरुन दह पूणत गास्त्रीय गृह तथा भौतिक है । अभिनव के समर्थाचरणम् उद्दीपनम् की याख्या उनकी अपनी है । उद्दीपनतर ममस्त परिस्थितिरूप विभावा को आलम्बन कहकर उद्दान अभिनव के ममस्त दृष्टिकोण को कुछ यथस्थित करने का ही प्रयत्न किया है । यह प्रयत्न अभिनवोत्तर का प्रागास्त्रीय परम्परा में केवल कविवर के द्वारा ही किया गया है । अथवा नाग पिटी पिटाई लोक पर चलते रहे है । अभी कारण कविवर का यह निरूपण उस परम्परा में कुछ हट भी गया है ।

## अनुभाव

अनुभावो का वर्णन कविवर ने इस प्रकार किया है

आलम्बन उद्दीप के ने अनवरन यधान ।

त कहिपत अनुभाव सब दपति प्रीति विधान ॥

दाम्पत्य प्रीति के मायधान में विभावा के अनु अर्थान् पत्नरूप में आश्रय पात्र में गः करपत्रय विचार हान है उन मन्त्रका अनुभाव क्या जाता है ।

कविवर के मन में गण की परोमा के पालन हन प्रमुख आचार्यों की अनुभाव स्थायी मायनामा का स रूप में प्रस्तुत करना चाहते हैं ।

१ रत्नकाम्या ६।७

२ या कलको प्रवृत्त मा मनथा रत्नकाम्या । शास्त्र निश्र गीर्णक पृ १५१

३ अन्तर कविवर रामकृष्ण की टीका मन्त्र ६ विभाव प्रसंग

४ रत्नकाम्या ६।७

भरत वाचिक प्राग्विक-मात्त्विक अभिनय को सामाजिक व त्रिण अनुभावित कराने वान तत्त्वा को अनुभाव कहते हैं

अनुभाव इति वस्मात् ? अनभाव्यतेनेन चागङ्गासत्त्ववृत्तौभिनय इति ।<sup>१</sup>

भरत का पूर्ववर्ती मायता व अनुसार अभिनय नर्तौ अभिनयाय व अनुभावक तत्त्व अनुभाव कह जान चाहिए—

वागङ्गाभिनयनेह यतस्त्वयोनुभाव्यते ।

गाताङ्गोपाङ्गसमुत्तम्वनुभावस्तत स्मृत ॥<sup>२</sup>

अभिनय व अनुसार लगभग एक-स ही तत्त्वा को अभिनय एव अनुभाव नाम दिया गया है । रस को चवाणाभिमुख ल जान व कारण भ्रूणप आदि विकार यत् अभिनय हैं तो अनुभावन व कारण अनुभाव ।<sup>३</sup>

पनजय न भावा की सूचना देने वाले तत्त्वों का अनुभाव कहा है

अनुभावो विकारस्तु भावससूचनामक ।

यनिक अनुभाव गीता की तीन विगपताओं का ओर ध्यान ल जाकर उनका व्युत्पत्ति किया जाना चाहते हैं<sup>४</sup>

१ सामाजिक व स्थायी भावा का अनुभावन कराने व कारण— अनुभाव यतीति अनुभावा ।

२ अभिनय एव वाच्य म अनुभवकताआ व द्वारा अनुभाव व कम रूप म अनुभव किये जान व कारण अनुभूयते इत्यनुभावा ।<sup>५</sup>

आश्रय म भावावबोधन व अनुभयात् पंचान् कायरूप म आन व कारण अनुभवतीति अनुभावा ।

विद्वनाय इन विकारों व अनुभावन तथा अनुभवन दोनों पन्ना पर ध्यान ल जान है

उदबुद्ध कारण स्व स्वबहिर्भाव प्रकाशयन् ।

तोष य कायटव सोनुभाव काशयनाटययो ॥<sup>६</sup>

रसहन व इन आचार्यों व वर्णना म प्रमुक्तया अनुभावा की दो विगपताओं पर ध्यान दिया गया है

१ य विकार भावा का अनुभावन कराने व कारण अनुभाव वृत्तात हैं ।

२ आश्रय म इनका जन्म नावोवोधन व अनु—पंचान् होता है ।

किन्तु एक महत्त्वपूर्ण बात ओर ध्यान ल जाना है । अनुभाव कह जान वाले इन

१ ना शा भा० १ पृ० ३४०

२ वही भाग १, पृ० ७१४

३ अथनु शा समाभिनुव नर्तक अन एव तन्निदा अनुभावान् । आभिनुव नर्तकानु भावन व ।

४ अक्षरपक पृ ११०

५ दरूपवाचनाट ५० १ ३ तथा पंचान् अर उनका मा इस पृ० ७

६ साहित्यदर्पण परि ३ १४०

—अभि भा० मा १ पृ० १

यान आकृष्ट होता है

१ व्यभिचारिया का किसी विगिष्ट रस व साथ नियत सम्बन्ध नहीं है। यमी व्यभिचार के कारण उह यह नाम दिया गया है।

२ व्यभिचारियो का वाय रसानकूल परिस्थिति का निर्माण करना है।  
अथ केगद के लक्षण की ओर आइए—

भाव जु सख ही रसन मे उपजत कसवराय।

बिना नियम तिनसों कहत व्यभिचारी कविराय ॥<sup>१</sup>

जो भाव सभी रसो अथात् स्थायी भावा म बिना किसी नियत सम्बन्ध व उत्पन्न होत हैं उह व्यभिचारी कहत हैं। इस लक्षण से भिन्न बानें स्पष्ट है

१ व्यभिचारी एक प्रकार के भाव हैं।

२ उनका किसी स्थायी विषय स नियत सम्बन्ध नहीं।

कवच न इनक तथा स्थायियो व परस्पर सम्बन्ध की याख्या की है। रमाभिव्यक्ति मे इनका क्या उपयोग है इसका उल्लेख नहीं किया।

इस प्रकार कवच का विभाव लक्षण सर्वांगीण नहीं रह जाता। उससे सामान्य परिषय का उद्देश्य ही सफल होता है। वस उसकी गान्त्रीय पृष्ठभूमि दुबल नहा।

### व्यभिचारियों के प्रकार

व्यभिचारियो व नामा तथा भेदा व विषय म कवच न आचार्य परम्परा स कुछ स्वतन्त्रता अपनई है। उहोने व्यभिचारियो व निम्न ३५ प्रकार मान हैं<sup>१</sup>

निर्वेद	ग्लानि	गका	आनस्य	दय	मोह	स्मृति	वृति
व्रीडा	चपलता	श्रम	मद	चिंता	कोह	गव	हृष
आवग	निष्ठा	निद्रा	विवाह	जडता	उत्कठा	स्वप्न	प्रबोध
विषाद	अपस्मार	मति	उग्रता	त्रास	तक	व्याधि	उन्माद
मरण	अवहिस्था	आधि					

भरत-परम्परा म इनके नामो सख्या एव स्वल्पक सम्बन्ध म कुछ अन्तर है। भरत न निम्न ततीम भाव गिनाए हैं

निर्वेद	ग्लानि	गका	अमूषा	मद	श्रम	आनस्य	दय
चिंता	मोह	स्मृति	घनि	व्रीडा	चपलता	हृष	आवग
जडता	गव	विषाह	श्रीत्सुक्व	निष्ठा	अपस्मार	स्वप्न	विबोध
अमथ	अवहिस्था	उग्रता	मति	व्याधि	उन्माद	मरण	त्रास

वितक।

आचार्य मम्मट तथा रसतरंगिणीवार न भरत की कारिकाओ को यों का त्यो

१ रतिक्रिया ६।११

रतिक्रिया ६।१० १४

३ ना ११ अ ६।१८ २१

उदघृन किया है।<sup>१</sup> दशरूपक तथा साहित्यदपण में बवल छन्द वाला हुमा है।<sup>२</sup> विवचन नाम ने मुक्तक स्थान पर स्वप्न नाम दिया है। पण्डितराज जगन्नाथ नय नाम गद्य में गिनाए हैं।<sup>३</sup> इस प्रकार भरत-परम्परा में माट तीर पर इस मायता में काइ विगण परिवर्तन नहीं मिलता।

यद्यपि भरत की इस सभ्या का आचार्यों ने ज्या का त्या अक्षुण्ण रखा है किन्तु वे यह स्वीकार करते हैं कि नमस्त भावक्षेत्र का इन तृतीय भावा में ही समाप्त नहीं समझना चाहिए। पण्डितराज जगन्नाथ नय स्वीकार किया है कि अनक अतिरिक्त साहित्य में और भी अनक भाव मिलते हैं। फिर भी वे इनकी सभ्या ३३ ही स्वीकार करते हैं। उनका कथन है कि नय मिलने वाले भावों का भरत क किसी न किसी समानप्राय भाव में जब अतर्भाव सम्भव है ता फिर व्यय भरत की मायता को विश्रुल्लभ क्यों किया जाए।

बंगव क व्यभिचारिया में भरत क व्यभिचारियों से अंतर पाया जाता है। बंगव तथा भरत क वषम्य को हम माट तीर पर तीन रूपों में रख सकते हैं

१ कथल नामभेद—भरत क श्रीमुख्य मुक्त विवाय तथा वितक का बंगव न प्रमाण उत्कण्ठा स्वप्न प्रवाय एव तक कहा है। यह कोई बड़ा वषम्य नहीं। मुक्त को स्वप्न विवचनाय न भा कहा है और वितक को तब धनत्रय न भी। श्रीमुख्य और उत्कण्ठा पयाय-मात्र हैं।

२ भरत-परम्परा क स्थानापन—भरत क अमप एव अमूया क स्थान पर बंगव ने बोह एव नित्य का ग्रहण किया है।

३ नयोन घोण—बंगव न विवाय एव आधि दो नय नाम जाहकर सभ्या ३५ की है।

आधि क जोहन में तो बंगव की ओर से यह तक दिया जा सकता है कि जब व्याधि जा कि भूतत गारीरिक व्यया है व्यभिचारिया में गिन ली गई ता आधि ता मानमिक व्यया हान क कारण भावक्षेत्र क और भी समीप पड़ती है। विवाद का बंगव न अपनी स्वच्छन्दता प्रकट करने क लिए ही जाना प्रनीत है। हम इस पुन हैं कि भाववृत्तियों को ३३ सभ्या तक सीमित करना उपयुक्त मात्र है। आर्यथा आचार्यों को यह स्वीकार्य है कि भाववृत्तिया और ना हा सकनी हैं। बंगव कधी हुई परम्परा में एक ७ नाम घटा बनाकर वाञ्छित रूप में यनी सूचित करना चाहत प्रतीत हात है कि य तृतीय भंग सभ्यामें है तथा विवचना की

१ वाचस्पता ४।४६ तथा अमतरगिगा व्यभिचारी विवचन

२ दशरूपक ४।६ अम म २० ३।१४४

३ समानापर ५०७६

४ अथ कथम्ब अंगनित्य १ मा मत् २ अममध्य विवर्कि अथैत्यभ्यसमास्तुका इत्यादिना मंगलपद्ययागानि तत्र मय ९९६तु दानार् इति अत्र न। अत्रु सभ्यामप्य ७ को क न सभ्या ५ अथैसाप्य १७५। पुत्रावामुप सभ्या ७३३ उत्र सभ्यामप्य धनी विदार।



सुविधा व लिए ही हैं अथवा भावा के अर्थ भेद भी हो सकते हैं ।

अब प्रश्न उठता है कंगव ने अमप एव असूया क स्थान पर कोह एव निंदा का नाम क्या लिया ?

वस्तुतः कोह क्रोध का पर्याय नहीं । यद्यपि वह क्रोध शब्द से ही बना है । वह हिन्दी में बहुत पुराने समय से ही एक हल्का क्रोध के लिए प्रयुक्त होता है । अमप का रूप भी हल्के क्रोध व लिए होता है । कंगव ने इमीनिए उस समानार्थक मानकर अमप के लिए प्रयुक्त किया प्रतीत होता है ।

अब रही निंदा की बात । असूया एव निंदा एक ही वग के लगभग एक ही भाव है । गुणा में दोष निकालना असूया कहलाती है । निंदा में भी वृत्ति दोषो-मुख होती है । रसिकप्रिया में कंगव क समक्ष अतर्भाव की योजना थी । उह शृंगार में बीभत्स का अतर्भाव दिखाना अभीष्ट था जो शास्त्रीय दृष्टि से दिना कुछ हेर फेर के कठिन था । इसके लिए उन्होंने बीभत्स के स्थायी जुगुप्सा की जगह उसी वग का एक हल्का भाव निंदा अपनाया और अतर्भाव की समस्या पूण की । उसी निंदा को यहा उन्होंने अभिचारियों में परिगणित किया । उनक सामने शातरस के स्थायी का एक निदशन मौजूद था । भरत ने गान्त के किसी स्थायी का उल्लेख नहीं किया । गान्त को मायता देने वालो के सामने प्रश्न था उसका स्थायी क्या माना जाए ? नया स्थायी मानने पर भरत की निश्चित भावसंख्या ४६ में गड़बड़ी पड़ती । अतः उन्होंने अभिचारियों में से ही एक भाव निर्वेद उठाया, और उस गान्त का स्थायी कहा । उनका तक यह रहा कि मागलिक मुनि ने अमगल प्राय निर्वेद को ३३ भावा में पहल उसकी स्थायिता की सूचना देने के लिए ही रखा है । मम्मट ने इस दृष्टि को ही स्वीकार किया । कंगव ने भी यही दृष्टि अपनाई । उन्होंने बीभत्स व लिए चुने जाने वाल अमप स्थायी को व्यभिचारियों में पहल जगह कर ली । उम असूया क स्थान पर ले लिया । यह बहुत बड़ा परिवर्तन न था । किंतु इससे उनका बहुत बड़ा काम चल गया । गान्तवादियों के समान उन्होंने फिर अपने अभीष्ट स्थायी को अपने अभिचारियों में से ही पा लिया । निंदा को स्वीकार कर लेने पर असूया का रखने की आवश्यकता न रही । उस हटा दिया गया ।

इस प्रकार भाववृत्तियों के विषय में भरत से होने वाले इस वषय्य में हम कंगव क कई मतपर निहित पाते हैं । वे सब साभिप्राय है तथा शास्त्रीयता से पूण हैं । व उनक दृष्टिकोण में एक रूपना स्थापित करते हैं । साथ ही उनके दृष्टिकोण को गद्य वसि क अभाव में का-योचित रूप में प्रस्तुत करते हैं ।

अर्थ रस एव उनका अन्तर्भाव

हम पीछे शृंगार की रमराजता का कंगव का उद्गम समझ चुके हैं । उमी

१ 'ने' 'गव' 'प्राम्य' 'अमननुपा' 'द' 'व्युपा' 'गान' 'व्यभिचारि' 'देपि' 'स्थापिता' 'भिधाना' 'धम' ।

उद्दय क माय निरूपित चौदहवें प्रभाव में आए शृंगारेतर रसों की चर्चा पर यहाँ विचार करना है। इस प्रभाव में हास्य कर्णा रोद्र वीर, भयानक बीभत्स अस्मृत एव गम क लक्षण एव उदाहरण प्रस्तुत किए गए हैं। लक्षण दाहा में हैं जिनका सम्बन्ध आचायत्व में है। प्रत्येक लक्षण तत्तत् रस क स्वतंत्र रूप का परिचायक है, किन्तु उसका उदाहरण शृंगार का किसी न किसी प्रकार भ्रम बनाकर ही लिया गया है। लक्षणा की यह विगणता है कि उनमें अन्तर्भाव क दृष्टिकोण में वही वही परिचयन भी किए गए हैं। इस सामान्य परिचय क साथ हम उनक विवक्षित प्रत्येक रस का अलग अलग लकर दख सकते हैं।

### हास्यरस

हास्य का लक्षण इन गी में प्रस्तुत किया गया है

नयन वयन कल्लु करत जब मन की मोद उदोत ।

चतुर चित्त पहिचानिय तथा हास्य रस होत ॥<sup>१</sup>

नय बाणी आदि अनुभाव जब मानसिक उल्लास का प्रकाशन करत है तब हास्यरस का वयन समझना चाहिए। यह सामान्य हास्य का लक्षण है।

मम्मट ने ता हास्यादि क लक्षण किए नहीं, उदाहरण देकर चतता कर दिया है। विवनाय एव धनत्रय न हास्य का सीधे ही नहीं अपितु हास-स्थायी का उल्लेख करत हुए लक्षण किया है। धनत्रय क अनुसार विवृत भावति बाणी वगादि के द्वारा हाम उत्पन्न होता है। उसीका परिपोष हास्यरस कहलाता है।<sup>१</sup> विवनाय भी लगभग यही बात कहत हैं।<sup>२</sup> वस्तुतः इन लक्षणों में भरत की प्रतिध्वनि है। हास्य में जो हामात्मक चित्तवृत्ति है उसका स्वरूप-परिचय इन आचार्यों ने नहीं दिया। स्वयं भरत ने भा नहीं। हाम एक सर्वानुभूत भाव है सम्भवतः यही समझकर नहीं। भरत धनत्रय भाति क दृष्टिकोण पूणत अभिनयपरक ही रहत हैं। पण्डितराज जगन्नाथ ने उसक मानसिक पक्ष की ओर कुछ ध्यान अवश्य लिया है। उनके अनुसार बाणी तथा अगाति क विचारों को दशन में चित्त की जो विकासात्मक दशा होती है वह हास है।<sup>३</sup> वेगव क समय तक आकर चित्तवृत्ति क स्वरूप की ओर भी ध्यान जाते लगा था। त्रिम प्रकार पण्डितराज ने अपन लक्षण में हामात्मक चित्तवृत्ति की विकासात्मक दशा

१ रमिक १४।६

२ विवृताभिनयवेदाराजनेय परस्य का।

हाम तथापरिपोषस्य हास्यरसोऽस्ति ॥ २१०४३७

३ विवृताभिनयवेदाराजनेय बुद्धकार भवत्।

हास्यो हामस्थितिभाव इति प्रथमः ॥ २१०४ १२१६

४ ता० ता० भा० १, पृ ३१२ ३

भव हास्यो ताव हामस्थितिभावः । स च विवृताभिनयवेदाराजनेयबुद्धकारिभिरुक्तः ।

५ कालिकाविशयशास्त्राभा विकासात्मक हास्य । रम्याभिर, पृ० २

कहा है उसी प्रकार कविवर्यदास ने भी उस मन का मोह कहा है। परन्तु व विभाव माध्यम से नहीं अनुभाव माध्यम से उमका परिचय प्रस्तुत करते हैं। भाव सामान्य के लक्षण में भी अनुभावों के ही सहारे स उहाने निरूपण किया था। यह हम पीछे देख चुके हैं।

हास्यरस के भेदों के विषय में कविवर्य ने पर्याप्त मौलिकता का काम किया है। भरत परम्परा में ६ प्रकार का हास्य माना जाता है। स्मित हसित विहसित अवहसित अपहसित तथा अतिहसित।<sup>१</sup> हलकी सी मुस्कान से लेकर अन्तःहाम तक को इन भेदों में समेट लिया गया है। भरत परम्परा की यह मायता रही है कि उत्तम प्रकृति के पुरुषों में स्मित या हसित हलकी मात्रा के हास्य होते हैं मध्यम कोटि वाला म विहसित तथा अपहसित जिनमें हमी के साथ कुछ गान भी चलता है तथा अधम काटि के अन्वितयो में अपहसित तथा अतिहसित नामक हास्य हात हैं इनमें आसाम म आमू अगो की विक्षिप्ति एवं अत्यन्त कणकटु ध्वनि तक हास्य पहुच जाता है।<sup>२</sup>

आचार्यों के इस दृष्टिकोण में कविवर्य की दो बातें रचिकर नहीं प्रतीत हानी। एक तो यह कि एक एक प्रकृति के साथ दो दो भेदों का सम्बन्ध स्थापित करना। मात्रा के आधार पर तो प्रत्येक प्रकृति में और भी भेद पाए जा सकते हैं। अतः सीधी बात यह कि यदि मानव प्रकृति को तीन भागों में बाटा गया तो हास्य को भी तीन ही भागों में माना के आधार पर बाट लिया जाए। दूसरी बात यह है कि स्मित एवं अतिहसित को छोड़ कर वर्गीकरण में चार नाम हसित विहसित अवहसित तथा अपहसित नितान्त पारिभाषिक बन चुके हैं। इनके उपसर्ग इनकी मात्रा को बताने में सवधा असमय है। तब क्या न ऐसे नाम रखे जाए जो साधक हों। कविवर्य इसी कारण अपना मौनिक वर्गीकरण प्रस्तुत करते हैं।

प्रथम कोटि का माद हास्य है मध्यम कोटि का कुछ गान मिश्रित कलहाम तथा अतिम कोटि का अतिहास। कल गान एक और ध्वनि दूसरी और उसकी मधुरता की सूचना देता है। मध्यम कोटि का हास्य भी स ध्वनि होत हुए अपना मधुरता नहीं छोड़ता। अतः कविवर्य इस कोटि के हास्य को 'कन हास्य' नाम देते हैं। अतिम अतिहास नाम ससृजत आचार्यों का ठीक ठीक मात्रा परिचायक था अतः उम

१ स्मितमथ हसित विहसितनपहसित चान्दसितमतिहसितम् ।

द्वौ द्वौ मन्त्रे स्थानामुत्तममयनाथप्रकृती ॥ ना शा भ १ पृ १४  
विश्वनाथ न भरतक उषहसिते च स्थानपर अ हसिते नाम लिया है । २। द । १७८

२ स्थितिकमिन्ननन स्मित स्वान् स्थितितारम् ।

किञ्चिन्लक्ष्यन्ति तत्र हसित कथितं सुभै ॥

मधुरम्वर लिङ्गितं मानसि कल्पमवहसितम् ।

अपहसितं मास्वय विद्वत्प्राग च भवयन्ति नितम् ॥ सा० द० ३। १८

भारत की कलाकारों का भी क्या तापस है। मानायेतया यन्ते दृष्टि रही है

जगदानां निन्दितं मयाणां हि हसितं पदम् ॥ ३।

नानाकारहसितं स्थानामुत्तमं च पदम् ॥ सा० द० ३। १७

का त्या स्वीकार कर लत हैं। इसीको दृष्टि म रखकर वे अपन प्रथम हास का नाम मन्हास रखते हैं।<sup>१</sup>

कवय मन्हास, कल एव अनिहास का सम्बन्ध उत्तम मध्यम अधम प्रकृतिया क साथ जोड़ना उचित नहीं समझन। उनक नायक और नायिका कृष्ण और राधा सदा उत्तम प्रकृति क हैं। सखिया भी उत्तम एव मध्यम काटि की हैं। अधम कोटि का उनक शृंगार म प्रश्न ही नहीं उठता। उनक नायक नायिका मुस्करा भी सकत हैं विनयिलाकर हस भी सकत हैं। यहा तुलसी की मर्यादा पुरुषोत्तमी गीतभूमि नही जाला पुष्पात्तम श्रीकृष्ण की प्राडाभूमि है। फिर कवय हास्य की मात्राप्रो का सबध प्रकृतियों स जोड़कर अपन नायक नायिकाओ को अधम कस ठहरा सकत हैं ?

हास्य क भेद कुछ भिन्न दृष्टिकोण स भी हो सकत हैं। भरत न आत्मस्थ तथा परम्य दा भेद हास्य के किए हैं।<sup>१</sup> इन रूपा की कई प्रकार स व्याख्या हुई है।<sup>१</sup> कवय सम्भवत आत्मस्थ तथा परम्य रूपा को इस रूप म लत हैं कि नायक-नायिकागत हास्य आत्मस्थ तथा उनक प्रति किन्हीं मखिया आत्नि म अवस्थित हास्य परम्य। जो भी हो व भिन्न दृष्टि स भेदो की सम्भावना क प्रतीक रूप म एक भेद परिहास नाम स सामन करत है। जहा सखा मखिया नायक-नायिका की कानि छाटकर उनपर हस पढ, वहा परिहास होता है। दृष्टिकोण क भेद स और भी भेद सम्भव हाव हुए कवय न नहीं बनाए। वास्तव म यहा कवय का दृष्टिकोण नदसख्या बढाना नहा है। दृष्टि मात्र दना है। व कवय नायक-नायिकागत हास्य के रूप दिसाकर छाट दत हैं अथवा या ता प्रच्छन्न प्रकाशता आदि क आधार पर और भी अनेक भेद सम्भव थ। किन्तु इस प्रकार ता व्यय ही ग्रह्य चरना।<sup>१</sup> यहा ता उद्गम्य है विभिन्न रसो को शृंगार म अतभूत करव लिखाना साथ म परिचय क लिए वष्य रस का परिचय दना।

कवय का परिहास मोनिक है दृष्टिकोण की प्ररणा भरत अभिनव स। शृंगार एव हास्य मित्र रग हैं अत अतर्भाव म कोई शास्त्रीय बाधा नहीं पा पाई।

- १ मन्हास कलहास पुनि कदि वसुव अनिहास।  
 कावि कवि वरनत मय अरु धीरो परिहास ॥ रत्निकप्रिया १४१०  
 विगाउहि नयन कपाल कछु दत्ता दत्ता क काम।  
 मन्हास हास लाना कहत कावत वसवन्त ॥ बही १४१३  
 अह मुनिव कल ध्वनि कहु कामल विमल विलास।  
 कवय मनसा मोदिय वरनटु कवि कलहास ॥ बही १४१८  
 अहा हर्षद निरमुक हर्षक दि सुग सुग वास।  
 भाष भाष वरन पन् उपनि वरन अनिहास ॥ बही १४१९
- २ विषयव्ययना अथ परम्यरय। ग० शा०, भाग १, पृ० ३१३।
- ३ अभिनवभारती, पृ० ३१४, ४, भाग १
- ४ जहा परिचयन सब हास उठत ज अपनि की कानि।  
 केसव कानटु कुटिलन सो परहास दगानि ॥ बही १४१५
- ५ वरनत का प्रथम कहु, कहु व वसवन्त।  
 मोरा मन सो अनयो मय प्रदान प्रकाश ॥ बही १४१८

## करुणरस

केशव के अनुसार प्रिय के विप्रिय अर्थात् अनिष्ट होने से करुणरस होता है।<sup>१</sup> उन्होंने अपने करुण निरूपण की प्रेरणा भरत से ही ली है। भरत के अनुसार षट् वध दशन अथवा विप्रिय वचन के श्रवण से ही करुण रस की उत्पत्ति हो जाती है।<sup>२</sup> किंतु दष्टिभेद के कारण भरत एवं केशव का करुणरस एक ही नहीं है। यद्यपि केशव का लक्षण करुण स्वतंत्र पर भी घटित हो सकता है तथापि यहाँ वे अतर्भाय करुण को ही दष्टि में रखकर लक्षण कर रहे हैं। भरत का विप्रिय शब्द उनके दूसरे विघेषण षट्बध के ही समान है। किंतु केशव के नायक नायिका श्रीकृष्ण तथा राधा के विषय में ऐसे विप्रिय की अनुमति शास्त्र भी नहीं देता।<sup>३</sup> अतः केशव विप्रिय के अत्यंत हलक रूप को लेते हैं। नायक-नायिका के हलक से कष्ट का श्रवण मात्र विप्रिय श्रवण के अंतगत आ जाता है। कृष्ण को पशु चारण जैसे कठोर कम में नियोजित किया गया है स्नेहमयी राधा के हृदय में करुणोद्भक्त के लिए इतना ही पर्याप्त है। उधर राधिका कुवरी पर गोरस बिकवाने की बात श्रीकृष्ण को करुणा में प्लावित कर देती है।<sup>४</sup> केशव निरूपित शृंगारामभूत करुण की बस यही सीमा है। यद्यपि उसके लक्षण में लचीलेपन के कारण स्वतंत्र करुण को भी लक्षित करने की क्षमता है।

करुण शृंगार का सामायत विरोधी रस है। विरोधी रस के समावेश के लिए शास्त्र सामायत मना करता है।<sup>५</sup> यदि कोई रस प्रकार का समावेश करना ही चाहता है तो शास्त्र कुछ विरोध परिहार के माग भी बताता है। ध्वनिकार ने रस प्रकार माग बताए हैं उनमें दो प्रकार का संकत मिलता है—एक सामाय दूमरा विषय। सामाय माग में दो बातें आती हैं—एक तो विरोधी रस को बाध्य बनाकर रचना दूसरे अंग बनाकर। बाध्य बना वह ही कही जाएगी जिसमें अंगों के द्वारा अंग अभिभूत ही रह सके।<sup>६</sup> बाध्य अथवा अंग बनाने के लिए विरोधी का एक सीमित मात्रा तक ही परिषेप

१ प्रिय के विप्रिय करने से अनिष्ट करुण रस होना। रसिक १४८

२ षट्बधनाम विप्रियवचनस्य मन्त्राणापि।

३ एभिर्भावविशेषैः करुणरसना नाम संभवति ॥ ना शा ६।६२

४ आशयविद्यते रसस्यात्यन्तविद्येः प्राने। वनः आलोक ३।७ प ६६ दत्ति

५ ननु मति मत्त मत्त चमुत्ता से कष्ट बद्धा।

६ म म पून पा म पमुपान करियतु है ॥ रसिकप्रिया १४।१६

७ कौने बीनी निपत्त कुमालि ज्ञानि स्वर्णि एमी।

८ राधिका कुवरी पर गोरस विधा वी ॥ वनी १४।

९ प्रवधे मुक्तस वपि रम्यान् वधुनिदना।

१० दन काय सुमतिना परिवार विगंधिना ॥ ध्वन्यालोक उद्यान १२७ प ३६

११ एवमपि विधिया विरारिना च प्रवधमनागना रसन समावेशे भाग्यमतिराधापाय प्रत्ये एतानी विरारिद्विध्याव न प्रतिपादयितुमवाच्यम्। दना प ८७

१२ विद्विन्न रस लब्धप्राने तु विरारा नाम्। बाधानामद्गभाव वा प्रागे नामुत्तरि दला। कन्दव दि विधिना शब्दाभिभवचे नन्दया। १ बही। ० तथा वृत्ति

रहना चाहिए। इस प्रकार विरोधी विरोधी नहीं रह जात। विरोध दो प्रकार का हो सकता है—एकाधिकरण और नरन्तय स। एकाधिकरण विरोध म दो बातें आती हैं—एकाश्रयत्व एव एवालम्बनत्व।<sup>१</sup>

तात्पर्य यह कि कुछ रसों म तो इस प्रकार का विरोध होता है कि व एक आश्रय म नहीं रह सकत। भयानक और वीर का एसा ही विरोध है। कुछ के आलम्बन एव नहीं हो सकते। यथा शृगार और रौद्र। कुछ क निरन्तर वणन दापपूर्ण हान हैं जस शृगार और वीभत्स। इसके लिए शास्त्रकारों की सलाह है कि एकाधिकरण दूर करन क लिए आश्रय या आलम्बन जो भी हो, भिन कर दना चाहिए। नरन्तय विरोध म किसी परस्पर मित्र या कम स कम उदासीन रस को बीच म डाल देना चाहिए। घ्वनिकार की इस प्रकार की मायताओं का सम्मान आज तक मों ही चला आ रहा है। मम्मट विश्वनाथ आदि सभीन यही पथ अपनाया है।

कण्व ने सभी रसों को शृगार म अंतभूत करव दिखाया है। तब हास्य जस अविरोधी रसों के सम्बन्ध म तो कोई बात नहीं किन्तु वरुण वीभत्स आदि विरोधी रसों क विषय म यह जिनासा उठना स्वाभाविक है कि कण्व न उपयुक्त भागों म स कौन-सा भाग अपनाया है? वह भाग कहा तक शास्त्रसम्मत है?

मानदवघन न विरोधी रसों का वाच्य रूप म रसन पर निर्दोषिता स्वीकार की है। इसके लिए उन्होंने सुभाव दिया है कि विरोधी रस का अधिक परिपोष किसी दगा म नहीं होने दना चाहिए। उनका उद्देश्य है विरोधी को अश्रय श्रयी स क्षीण रगता। कण्व ने एक नया भाग और निकाला है। स्यायी का अनुभावानि क द्वारा पूणत परिपुष्ट न करव क्षीण रसन क बजाय उद्धान मोधे-सीधे स्यायी को ही क्षीण रूप म ग्रहण किया है। इस प्रकार उनकी कई स्यायी वृत्तिया सचारी की कोटि की रह गई हैं। सम्भवत कण्व को इसकी प्रेरणा इस बात स मिली है कि जब अपरिपुष्ट स्यायी सचारी की कोटि का होता है ता परिपुष्ट सचारी का स्यायी क समान रसा जा सकता है। अत स्यायी की क्षीणता क लिए उन्होंने अश्रय विधियों क साथ यह भी विधि अपनाई कि सचारी भावों म स कुछ वृत्तिया उठाकर स्यायी क स्थानों म प्रयुक्त कीं। यह उनका प्रयोग ही कहा जा सकता है। वरुण क अन्तर्भाव म कण्व न यही भाग अपनाया है। उन्होंने भाव को हलक रूप म रसन क लिए यहा विभाव का ही हलक रूप म लिया है। उसकी शास्त्रीय पृष्ठभूमि दुबन तो नहीं, किन्तु शास्त्रीय रूप म इसका इगी रूप म उल्लस नहीं।

### रौद्ररस

श्रेष्ठ स्यायी भाव वाला रौद्ररस होता है उसम विग्रह क कारण शरीर उग्र हो जाता है। विग्रहजय शरीर की उग्रता स अनुभावित श्राय स्यायीमूलक रौद्ररस होता है होहि रौद्र रसश्रेष्ठमय विग्रह उग्र शरीर।<sup>१</sup>

१ अकारिकरण्यभिः शौचैः शिवो विधीः । स्वयंभावात् १०२००

सस्कृत आचार्यों के लक्षण भी वही प्रकार के हैं ।<sup>१</sup> किंतु स्वतंत्र रौद्ररस म विग्रह ग ८ का अर्थ युद्ध है वह यहा अतभूत रौद्र म कुछ दूमरे रूप मे ही आ सकता है । शृंगार एव रौद्र म आलम्बनक्य विरोध है । उनक अविरोध व लिए आलम्बनो को भिन्न होना चाहिए । कथन ने इसक दो उदाहरण लिए हैं । प्रथम म उस विभाव का अर्थ बनाकर रखा है ।<sup>२</sup> इसमे सखी की उक्ति के द्वारा राधा के निरपम सौंदर्य की प्रशंसा की गई है । राधा क अंगों के उपमानभूत प्राणी राधा क क्रोध स भयभीत होकर वन म गरण ल रहे हैं । सखी कह उठती है— राधिका कुवरि क्रोध कौन पर कीनी है । यह क्रोध शृंगार क आलम्बन राधिका क कमनीय रूप विधान म उपयोगी है । आलम्बन की दृष्टि स ऐसी प्रक्रिया को समारोपित कह सकते हैं ।<sup>३</sup>

द्वितीय उदाहरण म समारोपित गली का दूसरा ढग अपनाया गया है । नायक म मथ मथन करके रतिरण म विजय पा लेते है । यहा आरोप म ही रीति दिखाया गया है । तदनु रूप ही अनुभाव दिखाने क्रोध की योजना की गई है । यद्यपि आरोप म उपमानाग की प्रधानता होती है पर कवल वाध्य रूप म ही । पयवसित रूप म तो वह उपमेय पक्ष के प्रति गौण ही है । अत आरोपित क्रोध शृंगार का अर्थ ही समझना चाहिए । दोनों उदाहरणो म क्रमशः क्रोध एव रोप शब्द आत है । उनमे भी स्वग ८ वाच्यत्व दोष नहीं समझना चाहिए क्योंकि इस प्रकार स क्षीणता के उद्देश्य स सामने आए जान वान भावो म अनुभूति की क्षति नहीं होती । विमर्शनीकार ने भी यही मान्यता अपने उदाहरण क द्वारा सामन रखी है ।<sup>४</sup>

### वीररस

उत्साह स्यायी भावभूतक वीररस होता है ।<sup>५</sup> इसका लक्षण भी भरत

१ अथ रौद्रो नाम त्रावस्थाधिभावत्प्रको रत्नोदानव दत्तमनु यप्रकृति समग्रहेतुक ।

ना शा , पृ ३१६ भा १

२ क्वही कपान करि केर मृग मीन पनि ।

सुक पिक कस रजरी वन लीनी है ॥

× ×

कमनीय दास भूष कोवि कुवर कीन्त ।

राधिका कुवरि क्रोध कौन पर कीनी है ॥ रसिक १४१२

३ धव चालोक, ३।७६ आनाक

४ मीन मारयो कलह विदाग मारयो वारि क ।

मरोर मारयो अभिरान मारयो मथ मीन्यो है ॥

चाली रान रन मथयो मनमथ हू कौ मन ।

वसोत्स कौन कह राष उर आन्यो है ॥ रसिक १४१२३

५ कात्व रत्नपटावपुष्टनमुगी मुग्ध तवाह सखी

कि शूयोकनि कचला निवममि त्वामागन्तव्यपितुम् ।

पन्तनुमुच्यमान कथयन्त्य लाज्य कच तत

पन्तु स्मरसुव म्बुनग्य तस्या जगत् विलसग्दिता ॥ अन्करसवस्व पृ० २ ६

६ अथवीरो नामान्तराकारसः । ना शा , भा १, विमर्शना टीका १।६ पृ० ३ ४

परम्परा व अनुरूप ही है<sup>१</sup> तथा उसका उदाहरण म भी आरोपित गली वी ही अपना कर उम शृंगार का धम बनाया गया है। नायिका बड़ी सज धज के साथ रतिरण म प्रिय व लिए अभियान करती है

गनि गजराज साज देह की दिपति बाजि ।

हाथ रय भाव पतिराज चलो चाल सो ॥<sup>२</sup>

इम रतिरण व लिए नायिका म अदम्य उत्साह एव माहम है

प्रेम की क्वच कसि साहस सहायकल ।

जीतौ रतिरन आजु मदन गुपाल सौं ॥<sup>३</sup>

इयां आरोपित शली वी स्पष्ट करत हुए विद्वनाथ ने साम्यमूलक कहा है ।<sup>४</sup>

### भयानरस

किसी भयकर वस्तु व दशन से भय स्थायी वी उत्पत्ति होती है। उसीकी व्यजना भयानक रस कहनाता है

होय भयानक रस सदा केशव स्वाम सरीर ।

जाफो देखत मुनत ही उपजि परत भय भीर ॥<sup>५</sup>

शास्त्रीय दृष्टि स शृंगार एव भयानक आलम्बनक्य म विरोधी रस है। बंगव ने उसका उदाहरण म भिद्यालम्बनत्व का माग अपनाकर शास्त्रीय माग की पूर्ति की है। घटराती हुई धनपटा वी देख नायिका व हृदय म भयोत्पत्ति होती है और वह भय उमक हृदय म रति की प्रतिष्ठा करता है

बमहू जसि कसव वामिनि देसि लगी प्रिय कामिनि कठ तटो ।<sup>६</sup>

भय एव रति दोनो भावा का आश्रय तो नायिका ही है। वितु आलम्बन घन एव नायिक भिन भिन है। फिर पूर्वोत्पन्न भय विभाव रूप म आकर रति को व्यञ्जित करने म उपयोगी हो रहा है। इम प्रकार अतमूत भय विभाव पक्ष व अन्तगत ही है।

### वीभत्तरस

शृंगार एव वीभत्त अत्यन्त विरोधी रसो म स है। एक ही आलम्बन होने पर उनम वाध्य बाधक दोष आ जाता है। एक ही आलम्बन व प्रति रति व कारण

१ हादि बीर वसुदेव्य गौर वरुन पुत भव ।

अनि उगार गभार कहि कसव पाय प्रभंग ॥ रतिकप्रिया १४।२४

२ वही १४।२५

३ वही १४।२५

४ मन्मथ विशदित । मादि० ८ परि ३ पृ० २२५

५ रतिक १४।२७

६ वही १४।२८

७ ननु यथा रसानां परस्परविरोध इथा बीरशृंगारयोः शृंगारव्याप्यता तत्र भयव्यञ्जनात्



आवपण एव जुगुप्सा क कारण विकपण दोनो प्रकार की मनोवृत्तियों में नरतय दोष भी आ सकता है। इस प्रकार क विरोधी रसों क समावेश क लिए जसा कि हम पीछे देख चुके हैं ध्वनिकार ने यही भाग बताया है कि विरोधी रसों को वाच्य या अग रसा जाए तथा उम क्षीण ही रखा जाए। हम यह भी दिखा चुके हैं कि बेगव न क्षीणता क लिए एक दूसरा भाग भी अपनाया है सीधे स्थायी को ही क्षीण घरातन पर ग्रहण करना अर्थात् सचारी के स्तर पर अपनाता। वास्तव म आनन्दवधन न उपाया की कोई सीमा नहीं बाधी। यह प्रयोक्ता की प्रतिभा के ऊपर छोड़ दिया है कि वह क्या रूप अपनाता है। उनका उद्देश्य तो यही है कि अग्नी रस की अपेक्षा किसी न किसी प्रकार अग विरोधी को क्षीण ही रखा जाए।<sup>१</sup>

बेशक ने बीभत्स को शृंगार का अग बनाने के लिए उसक स्थायी जुगुप्सा के स्थान पर उसी वग क हलक भाव निन्दा को ग्रहण किया है। ध्यान रहे कि व इसी उद्देश्य से निन्दा को सचारियों म असूया के स्थान पर ग्रहण कर चुके थे। कविप्रिया म रसवत् अनकार क प्रसंग म भी उसे स्थायी के स्थान पर रखकर उहोने अपने दृष्टि कोण को सवत्र एकरूप रखा है। वे बीभत्स का लक्षण इस प्रकार दते हैं

निन्दा भय बीभत्स रस नील बरन लघु तास।

बेसव देखत सुनत ही तन मन होइ उदास ॥<sup>२</sup>

बेगव ने यहा अपने उदाहरणों<sup>३</sup> म एक कौशल और अपनाया है। स्थायी को मूलत क्षीण ग्रहण कर लेने से अनुभावों द्वारा उसक पुष्ट हो जाने पर भी वाच्य वाधकता की शका बनी रह सकती है। अत उहोने जुगुप्सायक रूढ सामग्री मान रस आदि को वाचिक अनुभावा क रूप म ग्रहण कर लिया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं है कि यह निन्दा सखी द्वारा की गई है और पयवसित रूप म नायिकागत नायकविषयक रति को ही परिपुष्ट करती है।

प्रस्तुत विषय म बेगव का शास्त्रीय पक्ष इतना ही अपुष्ट कहा जा सकता है कि उहान परम्पराप्राप्त स्थायी को बदल दिया है। यद्यपि उसकी विधि शास्त्रीय है। उदाहरणों से एक बात और झलकती है हम समझ हैं अत सब कुछ कर सकते हैं यह प्रवृत्ति उभर आई है। किन्तु इसक बिना इसक शृंगार का रसराजत्व भी तो अयूरा रहता। नायकगत बीभत्सात्मभाव का जो दूसरा उदाहरण रखा गया है उसम श्रीकृष्ण नायक का चौकड़ी भरना आत्म क प्रतिबूत ही है मले ही उसक लिए

उषा तु कथं भवन् यथा पररप वाच्यवाधकभावा यथा गारबीभत्सदो रीरभयानकयो।

—ध्वन्यालोक ३।२३ की वृत्ति

१ विराधिनम्तु रसस्वाङ्गरसुन्दरापञ्चया वरयचिन्मूलना सम्पत्नीया यथा शान्नेङ्गिनि म्गारय शृंगार वा शान्तय।

रत्निक १४।३

३ वही १४।३१

४ दूट टाट धुन धुन धूरि सानु मन मगुन धगाही सधि वीरदन की धन जू।

पर धर्मानि पै ज्ञान न मिलत जू ॥ वही १४।३२

गौडीय आचार्यों की भावनाओं में से कुछ समयक सामग्री जुटा दी जाए।

### अद्भुतरस

किसी अद्भुत वस्तु के देखने या सुनने से जो आश्चर्य—विस्मय—होता है उसी-की व्यञ्जना अद्भुतरस है।<sup>१</sup> शृंगार एवं अद्भुत अविरोधी रस हैं। नायिका का अलोक-भासाय सौन्दर्य द्रष्टा के हृदय को विस्मयाभिभूत कर देता है। अतः शृंगार में उमका बड़ा उपयोग है। कविवर्य ने इसी शक्ति के कारण विलासनिधि कहा है। उन्होंने इसका तीन उदाहरण प्रस्तुत किए हैं। दो में तो नायिका के अनुपम सौन्दर्य का विधान करके अद्भुत सनिवग से शृंगार के आलम्बन को सजाया गया है। तीसरे में नायकगत अद्भुत सौन्दर्य एवं शक्ति का विधान है। इन उदाहरणों में विभावना, विनेपोक्ति विरोध आदि चमत्कारमूलक अलंकारों का भी उपयोग हुआ है, जो काव्य के भाव तथा कला—उभय पक्षों का सामञ्जस्य सामन करता है।

### शातरस

शाम अथवा शातरस के विषय में भी कविवर्य के सामने वही अतर्भाव की समस्या है।<sup>१</sup> शम सत्कार की समस्त आसक्तियों से निवृत्तिमूलक भाव है, जबकि शृंगार घोर प्रवृत्तिमूलक है। किन्तु भक्त आचार्यों एवं भक्त कवियों विनेष्ट राधाकृष्ण के उपासकों की कथा से शातरस कवन निवृत्तिमूलक भाव न रह गया। लौकिक आलम्बनों से वह जितना ही निवृत्तिमूलक रहा, अलौकिक कृष्ण के प्रति वह उतना ही प्रवृत्ति-मूलक बन गया। गौडीय आचार्यों ने उक्त मुख्य रसि के ५ भेदों में प्रथम स्थान दिया है। यसे उमका रयान मधुरा रति से बढकर नहीं है। इस प्रकार भक्ता का शातरस योगियों का शातरस नहीं है। उमकी निवृत्ति प्रवृत्तिपरक है। माधुर्य भाव के उपासका के लिए तो उमका एक घोर उपयोग है—अगत की समस्त विभूतियों एवं सुखों से मुक्त माडकर राधा-कृष्णविषयक मधुरा रति में गहरी आसक्ति। उस सामान्यतः प्रेमवृत्ति अपने विषय के अनिश्चित सवम गहरी विरक्ति उत्पन्न कराती हुई स्व विषय में तीव्र आसक्ति कराती है। इस दृष्टि से ही उसका निवृत्ति अग की सामने रवकर निर्वेद को धनुरक्ति का अग बनाया जा सकता है। कविवर्य ने यही माग धपनाया।

सभी घोर से मन उगम होकर एक ही स्थान पर बस जाए उस कविवर्य शम-रस कहते हैं। इस शमरस में एक घोर से मन के निर्वेद के साथ दूरगरी घोर आसक्ति का एक ही ठौर बग जान का उत्पन्न है। शृंगार में अतर्भूत शम का उदाहरण इस

१ होइ अचभौ दनि मुनि मा अद्भुत रस गनि।

कमान्म विलासनिधि पीन अगन कपु मानि ॥ रसिकप्रिया १४।३३३

२ एव शातर दीठ ईठ ठरे को अनीठ मन पीठ ॥ मंगल के चूडनी न कोऊ तादि।

३ एव ने हाउ उगाउ मन कसे एक ही शर।

शरी से माग रस बडन बसव कवि त्रिभौर ॥ कथा १४।३७

प्रकार है

देख नहीं भरविन्दन त्या चित घद की आनन्द कद निवाई ।  
 कामिनि काम क्या कर कान न ताक त्रिधाम की मुदरताई ।  
 देखि गई जब तें तुम को तब तें कुछ चाहि न देख्यो सहाई ।  
 छाड गी देह जु देख बिना अहो देहु न काह कहूँ ह्व दिसाई ॥<sup>१</sup>

नायकगत अतभूत गम वा उदाहरण भी इसी कोटि का है ।<sup>१</sup>

इस प्रकार यह अतर्भाव का प्रसंग समाप्त होता है । चौदहवें प्रभाव में ही अतर्भ अतभूत गम के दो उदाहरणों का अनन्तर केगव एक गम का उदाहरण और प्रस्तुत करते हैं

वनज मनुज जीव जल थन जननि को परयोई रहत जहां काल सों समर है ।  
 अजर अनत अज अमरी भरत परि केगव निकसि जान सोइ ती अमर है ।  
 वाजत खयन मुनि समुसि सबद करि वेदनि को बाद नहीं सिव की उमर है ।  
 भागहु रे नागो भया भागनि ज्यों भाग पर भव क भवन मास भय को भमर है ।<sup>२</sup>

यह उदाहरण शृंगार के अतर्भूत नहीं वसमे जगत के प्रति गुद निर्वेद की भावना है । इस प्रकार इस स्वतन्त्र गीत के उदाहरण केगव ने अपने अन्तर्भाव विवेचन के प्रसंग में प्रस्तुत करके यही सूचित किया है कि इसी प्रकार अन्य रस भी शृंगार से स्वतन्त्र हो सकते हैं । इसकी विशेष चर्चा हम पीछे ही कर चुके हैं ।

इस प्रकार केगव ने शृंगारेतर आठ रसों को लेकर शृंगार में उनका अन्तर्भाव लिखा । विवेचन में गृहीत रसों का अम भरत के अनुकूल है । रोद्र भयानक अद्भुत आदि रसों के लक्षण भरत के समान ही स्थापित किये गए हैं । वहीं वहीं जस हास्य में उनके स्वरूप विशेषण पर भी कुछ दृष्टि गई है । वस्तुतः इन लक्षणों में शास्त्रीय विशेषण के स्थान पर परिध्यात्मकता ही प्रमुख है । केगव ने इन रसों के जो वर्ण दिखाए हैं वे भी भरत के ही अनुरूप हैं । शृंगार का वर्ण श्याम हास्य का वर्ण वरुण का कपोत रोद्र का रक्त वीर का गौर भयानक का कृष्ण बीभत्स का नील तथा अद्भुत का पीत वर्ण भरत ने भी माना है और केगव ने भी । भरत ने रसों के लक्षण अलग और वर्ण अलग बताए हैं । विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों ने वर्णों के लक्षणों के साथ ही वर्णों को भी दिया है । केगव ने इसी परवर्ती परम्परा का अनुसरण किया है । यद्यपि बीभत्स के स्थायी जुगुप्सा के स्थान पर आवश्यक्तावग

१ रमिकप्रिया १४।३=

रामिक रसो न तत्र वा तत्र न मासत हू सधु मदी बडा ।

कनक उ मूरुगु दूखन आ डा ता प धादि निटा ।

ता रन न कारन र क वादि मय करि बहू निटाइ ।

ता निने राखी उठय समत मुधा वमुग की मिटाइ ॥ वही १४।३६

२ वग १४।४

४ नाट्यशास्त्र ६ । ३४

रमिक १४।१ २१ २४ २७ ३ ३३

निष्ठा को ग्रहण किया गया है तथापि उसका वण परम्परा प्राप्त नील ही रखा गया है। भरत के समान ही उन्होंने गात का कोई वण नहीं दिया। वस्तुतः शात को तो मम्मट की प्रक्रिया पर पहले आठ स्थायी बताकर पीछे स नवा रस दिखाया गया है। हाम्य का वण भी अलग स नहीं दिया गया।

कंगव को आचायत्व की दृष्टि से इस अतर्भाव म दुहरी सफरता मिली है। एक ओर तो उनके लक्षणों की पृष्ठभूमि म सुदृढ शास्त्र-परम्परा निहित है साथ ही साथ उनके परिवर्तन सकारण हैं। प्रायः उनक लक्षण सचोल हैं। व एक ओर स्वतंत्र रमो पर लागू होते हैं दूसरी ओर अतर्भाव का ध्यान रखकर चलने हैं। वास्तविक अन्तर्भाव उदाहरणा के माध्यम स दिखाया गया है। उनम रस विरोध का परिहार करने वाल शास्त्रीय मार्गों का अनुसरण किया गया है। इसम कंगव न आनन्दवचन आदि क मूल दृष्टिकोण को नहीं भुलाया। उम सामने रखकर अपनी प्रतिभा का भी स्वच्छन्द प्रयोग किया है। सामायत विरोधिया को अग या बाय बनाकर ही काम लिया गया है। साथ ही अय भाग भी अपनाए गए हैं जिनम शास्त्रानुगमन क साथ स्वतंत्रता भी दिखाई पडती है जोकि भूलतः शास्त्र विमुख नहीं है। जुगुप्सा क म्यान म निन्दा की कल्पना हम पीछे देख ही चुक हैं। अलकारनेखर म कंगव मिश्र ने भी किन्तु एक भिन्न दृष्टिकोण स जुगुप्सा को गर्हा या निन्दा के रूप म लिखा है। 'दोष दानात् प्रत्येषु महण जुगुप्सा (पृ० ७६)। यह दूसरी बात है कि एक मुतोष का न ग कनी आनी हुई परम्परा के भीतर हम हेर फेर पसन्द न हो किन्तु कंगव क मौनिक एव एक पर्याप्त मात्रा तब सफर प्रयत्न को सराहनीय कहना ही चाहिए।

अतर्भाव के प्रकार म कंगव का दृष्टिकोण ससृजत कायशास्त्र के अनुरूप ही रहा है तथापि उसकी प्रेरणा म गौडीय आचार्यों का भी योग कम नहीं है।

रगिकप्रिया म इस रस निरूपण क साथ साथ कंगव न रम सम्बन्धन कतिपय ओर जाना की चर्चा भी की है। प्रमुन यानें निम्न हैं

क—रसवृत्तिया

ख—रमदोष

ग—रसा का जय-जनक विचार

घ—नायिका भद अत्यन्त विस्तृत एव भागरूप म

ङ—रम विरोध

इनम ग नायिका भू को अपनी याजना के अनुसार हम अलग म अग्रिम प्रदान म अपना अध्ययन का विषय बना रहे हैं। रमदोष ओर रमवृत्तियो का विवेचन हम अय काव्यमग गीयक प्रवाण म यथास्थान करेंग। दाया का निरूपण कंगव न कवि प्रिया क अन्तगत भी किया है। यहा काव्यदोषा क ऊपर व्यापक दृष्टि डाली गई है। उम दृष्टि स यहा का रमदोष निरूपण उमका एक अग ही ठहरता है। अतः हम यही रगिकप्रिया ओर कविप्रिया क दाप निरूपण का मित्ताकर इस विषय पर विचार करेंगे।

रसा क परम्पर जय-जनक सम्बन्ध की चर्चा बढ ही सामाय रूप म है। इस सम्बन्ध म आचार्य भरत ने एक हुनका भी चर्चा की है। उन्होंने बताया है कि शृंगार

स हास्य रीति से करण वीर स अद्भुत और ब्रीभत्स से भयानक की उत्पत्ति हाती है शृगाराद्धि भवेदधास्यो रौद्राच्च करणो रस ।  
 वीराच्चवाद्भुतोत्पत्तिर्बोभत्सा च भयानक ॥ (ना १०, प्र० ६, श्लो ५६)  
 केशव ने इसी मायता का निम्न रूप में वर्णित कर दिया है  
 भय उपज ब्रीभत्स तें अह सितार तें हानु ।  
 कण्व अद्भुत वीर तें करुना कोप प्रकामु । (रसिकप्रिया १६ । १३)  
 वसी प्रकार रस विरोध का उल्लेख भी अत्यन्त संक्षेप में चर्चित किया गया है  
 कसव करुना हास्य बहु कर ब्रीभत्स सितार ।  
 वरनत वीर भयानकहि सतत वर विचार । (रसिकप्रिया १६ । १२)  
 करुण हास्य ब्रीभत्स शृगार वीर भयानक इन मायता के अनुसार परस्पर विरोधी रस हैं । यह चर्चा बहुत स्थूल है और परम्परा में माय चली आ रही थी । कण्व ने उसपर कोई विगप विचार प्रस्तुत नहीं किए । संस्कृत काव्याशास्त्र में इस विषय का बारीकी से अध्ययन हो चुका था । सभवतः शृगार की रसराजता के प्रति पादन का ही उद्देश्य लेकर चलने वाली रसिकप्रिया में वह बारीकी कण्व को इस विषय में अनावश्यक जची हो । जो ही उन्होंने इस विषय को अत्यन्त स्थूल रूप में परिचित भर करा दिया है ।

### निष्कर्ष

अब तक हमने कण्व की रस चेतना का कुछ विस्तृत अध्ययन कर लिया है । उसके फलस्वरूप हम इस विषय में निम्न निष्कर्षों पर पहुँचते हैं

- १ कण्व को ६ कायरसों की पृथक पृथक एवं स्वतंत्र सत्ता माय थी ।
- २ रसिकप्रिया में एक विगिष्ट दृष्टिकोण अपनाया गया है वह है शृगार की रसराजता की प्रतिष्ठा करना । अतः वह नवरस का ग्रंथ नहीं केवल रसराज शृगार का ग्रंथ है । इसी शृगार में सब रसों का अन्तर्भाव प्रतिपादित है ।
- ३ रसिकप्रिया का रसराज शृगार भोज की परम्परा का नहीं है गौरीय आचार्यों की परम्परा का है । उस रसिक भक्ति क मंत्र में बिठान का प्रयास किया गया है ।

४ अन्तर्भाव की आवश्यकता के अन्तर्गत विभिन्न रसों के स्वरूपों एवं सीमाओं में कुछ हेर-फेर भी कण्व ने किया है ।

५ अन्तर्भाव की मूल दृष्टि शास्त्रसम्मत है । विवचन की समस्त पृष्ठभूमि भरत अभिनव तथा ध्वनिवादी आचार्यों की रखी गई है । वह गौडाय आचार्यों की नहीं है । ढाचा भरत परम्परा का बना था रटा है प्रेरणा गौरीय आचार्यों से ली गई है ।

६ रसिकप्रिया के विवचन निरूपण-संज्ञा उगाहरण रसवर्तियों रस-श्रेणी आदि सभी अन्तर्भाव के मूल दृष्टिकोण से प्रभावित एवं तन्तुरूप हैं ।

७ शृगाररस रसों का साहित्यिक दृष्टि से समव्यवहार बहुत हुए कण्व

अलंकारवाद की प्राचीन परम्परा के अनुमता प्रतीत होत ह पर एसा उहाने कवल अलंकारवाद क अधानमरण के कारण नहीं किया । व अपनी मायता का गौडीय आचार्यों के अनुरूप भी बना देना चाहत थ । साथ ही भरत-परम्परा का पल्ला भी नहीं छोडना चाहत थ ।

८ वेगव का अपना एक विगिष्ट दृष्टिकोण है । उस समय लने पर उनके समस्त रस निरूपण म एकरूपता ग्रास्त्रीयता तथा यवम्या परिलम्बित होती है । उम बिना समझे उनके निरूपण और उनका आचायत्व गडबडी स भरा प्रतीत होने लगता है । अत समादाचको को पहले उनके दृष्टिकोण स तादात्म्य स्थापित करना चाहिए ।

## चतुर्थ प्रकाश नायक-नायिका भेद

### प्रस्तावना

नायक-नायिका भेद की दृष्टि से कविवर उन कवियों की श्रेणी में आते हैं जिन्होंने शृंगार निरूपण के अंतर्गत इस प्रकरण को अनुस्यूत कर कुछ विशेष रचि के साथ विस्तृति दी है।<sup>१</sup> कामशास्त्र के अर्थ अंग उपागो की जो गूढ विवचना और तत्काल मम्मत् स्थापनाएँ संस्कृत वाङ्मय में मिलती हैं उतनी नायिका निरूपण के क्षेत्र में नहीं। भारत से लेकर भानुमित्र से पूर्व तक लगभग १५ सौ वर्षों में इस प्रसंग के प्रतिपादन में न खडन मडनात्मक गाली की अपनाया गया न भेदोपभेदों के ऊपर सूक्ष्म विवचन प्रस्तुत किया गया और न कभी इन प्रकरण को रस प्रकरण से असम्बन्धित एक स्वतंत्र प्रकरण के रूप में स्वीकृत किया गया।<sup>२</sup> यह प्रकरण कामशास्त्रीय परम्परा में पुष्ट हुआ है। आदिकाल में कामशास्त्र के आधार पर ही प्रत्यक्ष अप्रत्यक्ष रूप से इन विवचन को प्राग्वह्य बनाया गया है। स्वयं भारत ने इस आधार को स्वीकार किया है।<sup>३</sup> दृष्ट पर भी इन क्षेत्र में कामशास्त्र का प्रभाव गहरा रहा है। भोज ने काममूत्र के अनेक अंगों को शृंगारप्रधान में विभक्त रूप में लिया है।<sup>४</sup> केशव की दृष्टि मूल आचार्यों या उन्मावक आचार्यों की ओर जाती रही है। केवल व्याख्याकारों की सरल सुरम्भ वीथियों में न रुककर वह सिद्धान्तों की मूल भूमि से सबल ग्रहण करती रही है। इस क्षेत्र में भी कामशास्त्र के उपभित अंगों को ग्रहण करके कविवर ने अपनी रस प्रवृत्ति का परिचय दिया है। उदाहरण के लिए जात्यनुसार पश्चिमी आदि नायिकाओं को लिया जा सकता है। संस्कृत कामशास्त्र के क्षेत्र में अक्षरवराह ने इनका अपनाया था और हिन्दी के क्षेत्र में कविवर के अतिरिक्त देव और हरिदोष को दिया जा सकता है। इस प्रकार कविवर उन कतिपय आचार्यों में हैं जिनपर कामशास्त्रीय

१ इस आचार्यों में दण्ड (काव्यालंकार) भात (मरुत्वीकृतमरण) गारप्रकाश) तथा विरहाय (मात्रिकान्त) विशेष उल्लेखनाय हैं।

२ मयूर चोपरा लिखी रसि-परम्परा के प्रमुख आचार्य पृ ३६

३ आम्बरधर विद्या नायिका नायकान्त।

४ कामशास्त्र के अर्थ अंग उपागो का शा २४।६१-४ आदि।

५ कामशास्त्र १।६।५-६

६ शोभ तुभावाय दिव्य आर्य कविकल्प मन्थन लिखेचर, १९३७ म १ पृ ८६

प्रभाव सघन था। सस्कृत म द्रष्ट विषय पर कामगास्त्र<sup>१</sup> नाटयगास्त्र<sup>१</sup> और काव्यगास्त्र<sup>१</sup> क ग्र यों म सामग्री मिलती है। कामगास्त्रीय परम्परा स सीधे प्रभाव ग्रहण करन वान आचाय बहून कम हैं। प्राय नाटयगास्त्र और काव्यगास्त्र की परम्परा ही नायक-नायिका निरूपण को प्रभावित करती रही है। हिन्दी क आचार्यों पर तो भानुमिश्र का पूण जाड़ू है। पर काव्य की दृष्टि में कामगास्त्रीय और नाटयगास्त्रीय परम्परा निश्चित रूप स है। नायक-नायिका निरूपण क बीज भारतीय परम्परा म बहुत प्राचीन है। यह केवल कामगास्त्रीय तत्त्वा स ही निर्मित नहीं हुए सामाजिक जीवन का विकास मास्कृतिक स्तर नागरिक रुचि तथा समाज की विवाह-व्यवस्था भी इन प्रकरण क समठन म योगदान दत रह हैं। काव्य क विवचन पर विचार करन स पूव इन सुदीघ परम्परा का सक्षिप्त सर्वेक्षण भी अनुपपुक्त न होगा।

चार पुण्यायों की स्थापना भारतीय सस्कृति का मूलाधार कहा जा सकता है। इनम काम का प्रमुख स्थान है। प्रेम या मुख काम क अतगत आन है। यह जीवन की मूल प्रेरणा क रूप म माना जाता रहा है। आरम्भिक गास्त्रा म धम, अथ और काम का विवचन हुआ है। साहित्य क क्षेत्र में रामायण और महाभारत धम को लेकर धन हैं। अथ और काम पर धम का नियन्त्रण आवश्यक है अथवा अनियन्त्रित रूप म ये पतन का माग ही प्राप्त करन हैं। उपनिषद परधन क प्रलाभन को वजित करती है।<sup>१</sup> गीता म कृष्ण ने अर्जुन को काम कहा है।<sup>१</sup> वह काम जो धर्मनुकूल है। इन प्रकार काम अमन नहीं नियन्त्रित काम ही भारतीय सस्कृति का आदग रहा है। वाल्म्यायन ने इगोनिए धम-अथ-काम की त्रयी का साथ दिया है।<sup>१</sup> साथ ही इनक प्रयोग को एसी विधि का समधन दिया है कि य परस्पर एक दूसरे को बाधा न पनुचाए सभीम गतुलन-मम-वय बना रह। बाल्यावस्था म जानाजन जीवन म मुख भाग पीछे धर्मानुसरण की बात कही गई है।<sup>१</sup> कालिदास न दिगीप क चरित्र की महा विगपता बताई है। वह यायाय ही दण्ड दता था सतानाथ ही विवाह करता था। उमक

१ इन परम्परा में दक्षक कुचारा का स्थापन, कल्याणलल, कन्नडक मीननाथ आदि के नाम लिख जा सकते हैं।

२ इन परम्परा में काल का नाटयगास्त्र धनत्रय का दशरूपक माग्यनी का नाटकमल्लय रानडोष और रामचन्द्र गुणचन्द्र का नाटयगास्त्र—ये चार अथक अत्यन्त हैं।

३ उ व पुन चार के अतिरिक्त आगर के अतगत इन प्रमुख क लेखाने उल्लेख्य आचार्य हैं— कर्मरु अग्निपुराण टीकणकवि कागमा प्रथम हेमचन्द्र आरदा नय, विष्णुनाथ शिवभूषण कागमटि तीप और करानिध। भानुमिश्र (१ गामचरी) कागमाामी (उत्तरीवनीनमणि) तथा अकरराद (५ गामचरी) ने सतत्र रूप से इन विषय को अना विवेच्य विषय क आ है।

- ४ अर ८१० टाटकर सोमेश आर इण्डिया ट्रेडीशन, न्यूया १० २११
- ५ इरायय १११
- ६ मीनरामचरणीय ७११
- ७ आर ८१० टाटकर सोमेश आर इण्डिया ट्रेडीशन १० २१२ २१३
- ८ काग्य ११११
- ९ की ११११



आर्थिक अभियान तथा प्रेम काम धम स नियमित थे ।<sup>१</sup> कामशास्त्र म उन्नत रचियो सुख भोग की सुमस्कृत प्रविधिया तथा कलात्मक जीवन यापन की विधियो का ही निरूपण है । सुख भोग वम प्रकार हो कि स तुलन बना र<sup>२</sup> और चरम सीमा की भी उपनिधि हो सके । इस माग स चलनेवाला ही नागर है ।<sup>३</sup> वात्स्यायन न दत्तक वा उल्लेख किया है । पर उसका दत्तकसून उपलब्ध नहीं है । दत्तक ने कामनीडा को वश्या के सदभ म देखा है । इसका उल्लेख वात्स्यायन करत हैं ।<sup>४</sup> वात्स्यायन ने गृह म प्रवेश किया और कामकला को नागरिक क गृहस्थ-जीवन म अनुस्यूत किया । इस प्रकार कामसूत्र म गृहस्थ क कलात्मक जीवन का चित्र प्रस्तुत हो गया । गणिका का स्थान गृहिणी ने लिया और वृत्तिक क स्थान पर पति प्रतिष्ठित हुआ । इस प्रकार वात्स्यायन क कामसूत्र म भारतीय गृह का पूण सांस्कृतिक चित्र मिलता है । दत्तक के पश्चात कामशास्त्र दो शाखाया म विभाजित हो गया । एक म गणिका सम्बन्धी कामनीडाआ का वणन प्रमुख था तथा दूसरी म गृहस्थ जीवन म कामकला को अपना कर सुवचिपूण जीवन यापन करने की विधि का प्रतिपादन था । केगव का मन्व ध वसी दूसरी परम्परा स है । उहाने परम्परा निर्वाह के लिए स्वकीया परकीया सामायावाला तिसूत्री वर्गीकरण स्वीकार तो किया है<sup>५</sup> पर मामाया गणिका का विवरण नहीं दिया । वे जान बूझकर उसका नाम भी नहीं लते<sup>६</sup> क्योंकि वससे रस बाधा उपस्थित हो जाती है । वस प्रकार गणिका को छोडकर केगव ने रस मर्यादा तथा समाज-मर्यादा दोनो की रक्षा का है । यद्यपि रामप्रवीण का केगव पर प्रभाव माना जा सकता है पर उहान उस कतामयी पातुरी के रूप म प्रस्तुत किया है वश्या क के रूप म नहीं । वस प्रकार मामाया को छोडकर चलने म केगव की दृढ नारी भावना और तत्सम्बन्धी सामाजिक आदर्शों क प्रति सुवचि सम्पन्नता का पता चलता है ।

सामाया को छोडने का कशक के लिए एक और कारण है । वे रसिकप्रिया म निरूपित रसराज शृंगार को हरि शृंगार का रूप दकर रसिक भक्ति की परम्परा से कड़ी जोडना चाहत थे । वसी उद्देश्य क अनुरूप उहाने रसिकप्रिया क समस्त निरूपण प्रस्तुत किए हैं । रसिक भक्ति म स्वकीया और परकीया तो स्वीकृत थी सामाया क लिए अवकाश नहीं था । इसीलिए केगव ने उस अपने निरूपण म ग्रहण नहीं किया ।

सामाया या कुनटा को स्वीकार करना गृह और स्वकीया का अपमान करना

१ खुवरा १।२५

२ वात्स्यायन १।४

३ तम्य षष्ठ वंशक-विक्रम्य पाठ्यपीपुत्रकाया गणिकानां नियोगात् दत्तक पृथक पत्रार ।

—कामसूत्र १

४ एन मा चन्धर जे वी ओ अर एम , ५ भाग २

५ ता नायक का नायक - भनि तीन वमन ।

मुक्किया परकाया अवर सानान्या सुमाना ॥ रसिकप्रिया ३।४

६ और तु तस्मात्तीवरी वसी वरनौ इति टौर ।

रस में भिम न वरनिण कडन रसिक तिरमौण ॥ वी ५।४

है। वगव की नारी भावना पर कम लिखा गया है। कामगास्त्री की गाहस्थ्य जीवन सम्पूर्ण परम्परा का परिचय वगव ने ध्रुव भी दिया है। वगव स्वकीया व पति प्रत धम की उल्लेखिता व पोषक थे। नारी की गति पति ही है।<sup>१</sup> गाहस्थ्य-जीवन क पति पत्नी रूप दा पहिया व सहयोग और उनक अधोयाथय की वगव न दृढता स पचा की है।<sup>२</sup> वगव की स्वकीया नायिका पतिप्रता की परिभाषा व अतगत आ जाती है जो सुग युग म समभाव म स्वपति म अनुरक्त रह।<sup>३</sup> यह युग की प्रवृत्ति व प्रति पच पत्र विरोह है। स्वकीया व दम घादन को स्वीकार करनवाता आचाय वदि मामाया का कम स्वीकार कर सकता है। स्वकीया की निचया आदि व वणन म पता और रसिकता पयाप्त मात्रा म है। कामगास्त्रीय निचया का उल्लेख वगव ने किया ह। वीरसिंह देव की पत्निया गुक सारिकाद्या की पताती है।<sup>४</sup> व समस्त जीवन कनाप्रों म पारगत हैं।<sup>५</sup> कम प्रकार वगव व नारी-मध्वघा दृष्टिकोण म जहा पनि प्रत धम व प्रति एक स-नाराजय आकषण ह बहा कामगास्त्रीय रसिकता और वनाप्रियता भो ह। प्राय यह उच्छेदन न होकर स्वकीयाश्रित है।<sup>६</sup> स्त्रीलिए वगव का स्वकीया गण धनजय विवनाय भानुत्त प्रादि किसी भी आचाय न नहीं मिलता।<sup>७</sup> मामाया पर स्वकीया की विजय व पीछ वगव की उता नारी भावना नी थी और रमराज शृंगार को भक्तिसत्रीय बनाए रगन की दृष्टि भी।

स्वकीया की भावना का लघप सामाया ही नहीं परकीया की भावना म भी है। वन्कि कात्र ने दम लघप की परम्परा चली आ रही है। नारी काम वासना स श्रित हाकर पुण्य म गति प्रमग की याचना करती है।<sup>८</sup> विवाह निरपण अस्यायी दाम्पत्य व धिन्न भा मित्रत हैं।<sup>९</sup> यह स्व मम्यता का युग माना जाता है।<sup>१०</sup> कम विवाह निरपण दाम्पत्य दिवाई देता है। महाभारत व अनुगार दवनवतु न विवाह प्रया की प्रचरित किया।<sup>११</sup> कुछ भागा म विवाह प्रया उन समय भी नहीं थी।<sup>१२</sup> सूर्या

- १ धन कम सब ति पल देवा। हादि एक पत्र कै पनि मवा।  
दीनन्म-पाति रामगद्विवा, पूवाड, पचमावृति, पृ० १ ५
- २ पति नी पनि किनु तान अति पनि पत्निना किनु गत।  
चन्द्र विना ज्यो जग्निनी क्या किनु न निनि चत् ॥ का० पृ० १३५
- ३ मयनि रिपति जो अरत हू मग एक अनुदृष्टि।  
तदि मुशीग गतिव गत मम वना विगति ॥ कशवप्रन्वली, पृ० ६
- ४ कहु मानिनी गल ममन कहु गायति मरि सुग हेत।  
सरो-मुदनि पत्नय एक, परकने मुनि इगत अनेक ॥ व रद्विद-वरि ५० २५१
- ५ मूयन बना दास्य अथ, पत्नि पत्नय मुदति ममभ।  
रतिग निग कही का, युगाग बलिग पुमरता नात ॥ बहा ५० २६६
- ६ दा किराण-रानी पयकामु च बना बना और कृतिव पृ ३१०
- ७ प-प १-१३० अ-प- १ १० ८ १० पुग्वा-उम अ-प- १ ११
- ८ महा सु-य ५००० १० १५ पृ० मज जगा है।

—राज-राज प्रासन नारीय परम्परा और शताम, पृ० १०३

१ महाभारत ११३८५ १३ ५५

११ १ विद्वान् १ १० १५ विद्वान् १० १३१५०

के विवाह प्रकरण स जात होता है कि भाय सम्यता म पहल स ही विवाह प्रया थी । कंगवा वर को चुनती थी और विवाह परिपक्वावस्था म होता था ।<sup>१</sup> विवाह-पूर्व अवस्था मे भी युवक युवती का प्रेम के अवसर प्राप्त होत थ ।<sup>२</sup> आने की परिस्थितियों म विवाह हू होता गया और स्वतंत्र प्रेम के अवसर समाप्त होते गए । पर दाम्पत्य जीवन रूढ नहीं हा गया था । इसका उद्देश्य प्रेमपूर्वक जीवन-यापन था । विवाहोपरांत पति पत्नी प्राथना करते मिलत हैं । देवता हमारे हृदयों को मिला दें जल वायु-मरुत्स्वती हम दोनों को संयुक्त करें ।<sup>३</sup> इसक साथ ही अथर्ववेद म कामक्रिया का भी स्पष्ट उल्लेख है । वहा स्त्री की कामोत्तजना क लिए देवों से प्राथना मिलती है ।<sup>४</sup> मभोग गि ना के कामगाम्नीय बीज भी यहा मिलते हैं ।<sup>५</sup> इस प्रकार दाम्पत्य जीवन म कामगिक्षा तत्वों का समावेश था जिहोंने उसे रूढ होने स बचा दिया था । इसक अतिरिक्त नारी के अंग प्रत्यंगों के सौंदर्य का चित्रण भी वैदिक साहित्य म मिलता है । कंगवा सुमंजित होकर पतियों के पास जाती थी ।<sup>६</sup> पत्नी की सुन्दर भुजाओं सुन्दर अंगुलियों लम्बे बगैँ और स्थूल नितम्बा का वर्णन मिलता है ।<sup>७</sup> शतपथ म भी स्थूल नितम्बा विगान वक्ष और सूक्ष्म कटि का उल्लेख है ।<sup>८</sup> इस प्रकार सौंदर्य भावना भी दाम्पत्य जीवन म पर्याप्त थी । इसक साथ ही कंगवा की भावना भी गुम्फित थी । उपनिषदा म ब्रह्म को समस्त रसा का आधार बताया गया है ।<sup>९</sup> इसीमे साहित्यिक तथा अथर्वलात्मक अभिव्यक्तियों का जन्म हाता है ।<sup>१०</sup> इस प्रकार कलाकाम म उस दाम्पत्य-जीवन को सजाया गया । इसका समन्वित रूप कामगाम्त्र म आकर मध्यकाल म नागर जीवन म उतरकर आया । कंगव म इसी जीवन की भाङी नादिका भेद के साथ मिलती है । कंगव की समकालीन वग स बहनी हुई रमिकमक्ति की परम्परा अपने क्षेत्र म इसे पूणत आत्मसात् कर चुकी थी । इसम नारी सौन्दर्य उसक उन्नयन कलाप्रियता और कामुकता का कलात्मक रूप समन्वित है । रामायण म मयाङी की स्थापना ने जीवन क इन सजीव तत्वा को ठेम लगाई । पुराणों तथा महाकाव्यों म एक अखिल सौन्दर्याधिष्ठान परमात्मा क अवतार केन्द्र क आसपास एक रमा चित्र मल्लिभूषा का जाल बन गया । पर गार्तीय साहित्य म रमिकता क लौकिक

१ इरिस्त वेत्तकार भारतवर्ष का सारवृत्तिक विद्वान् पृ ५-५२

२ हा ही एम अट्टेकर ली फोडीशन आफ् बीनन इन ली लिन्दू विविलिजेशन १६३-

पृ ७७-७९

३ शतवत् १-५ । ४७

४ अथर्ववेत् १५। १३ ३८

५ बहो १५। २। २८

६ बडा १५। २। ३६

७ शतवत् रामायणल विवेकी का लिनी अनुवत् पृ ६६। ३३

८ व । १३। ४७ ८

९ शतपथ १। २। ५। ६

१० लौकिक १७

११ कृतगणपक म्म २। ६। १



शृगार भर गया।<sup>१</sup> पर एक बात द्रष्टव्य है। मिट्टा न अपने साहित्य में स्वकीया रूप पर ही बल देकर उसपर ध्यान केंद्रित किया। वृष्णव परकीया भाव का उसमें अभाव है।<sup>२</sup> कुछ चयापदा में परकीयात्व भी स्पष्ट रूप से परिनिहित है।<sup>३</sup> आगे सत निगुण भक्ति साहित्य में भी पतिव्रता और स्वकीया पर ही विशेष बल मिलता है। आध्यात्मिक विवाह रचाया गया है। पतिरूप परब्रह्म व साथ सभी जीव पत्नीभाव से सम्बन्ध रखते हैं।<sup>४</sup> सती ने स्वकीया भाव को ही आत्म माना है।<sup>५</sup> पतिव्रता को प्रतीक रूप में सती ने बड़ी दृढ़ता से ग्रहण किया है। इनके प्रेमादाय सती और गूर हैं।<sup>६</sup> सूफिया में पत्नी और प्रेयसी का समवित रूप माय रहा। पर अतन्त उहोन नारी के पतिव्रत आदेश पर बल देकर पतिसेवा का माग ही उसके लिए कल्याणकारक माना है।<sup>७</sup> रामकाव्य की कुछ मधुर शास्त्राभा को छोड़कर समस्त राम-साहित्य में पतिव्रता और सती का रूप माय रहा जो स्वकीया की प्रतिष्ठा को बढ़ाता है।<sup>८</sup> केगव ने नारी व आदेश रूप का ही समर्थन किया।<sup>९</sup> इस सर्वेक्षण से पता होता है कि हिन्दी साहित्य में स्वकीया की भावना की एक दीर्घ परम्परा मिलती है। यह परम्परा भारतीय विचारधारा से पुष्ट है। इसीलिए स्वकीया भावना को केगव ने अपने नायिका भेद निरूपण में सर्वाधिक समर्थन प्रदान किया है। उनकी इस मायता में शास्त्रीय भारतीय नारी आदेश कामशास्त्रीय गृहिणी का स्वरूप ग्राह्य स्थान में अभिहित कामकला तथा विविध परम्पराओं का योग है।

स्वकाया की धारा व साथ परकीया भाव भी साहित्य में सबग प्रवाहित होता रहा है। बमाल के वृष्णव साहित्य में परकीया भाव ही सबसे अधिक दृढ़ रहा। परकीया भाव का सम्बन्ध वृष्णव साहित्य से रहा। शास्त्राभी तुलसी जम मर्यागावानी भक्त नम्रज की गोपियों व परित्याग और उन परकीया प्रेम का कल्याणकारी माग बताया है।<sup>१०</sup> शृगारमूलक भक्ति-बल्लरी श्रीमदभागवतकार के साहित्यिक संपन्न से प्रफुल्लित हो उठी। वृष्णव व सीदय माधुय से विवग गोपिया का हृदय प्रणय की मधुर

१ धमनीर भरती मिट्टा साहित्य पृ २४६

२ वनी पृ २४७

३ वनी पृ २४७

४ दुर्लभिन गवतु मन्त्रकार। इन पर आण हा राजा रामभरतार।

—कवारप्रभावना पृ ८

५ पुष्पि हारा एक है इन नारी बटु अग। शास्त्रावल की बानी पृ० ३८ मा १५७

६ हा आया पाणव्य मध्ययुगीन हिन्दी साहित्य में नारी भावना पृ० ८७

७ कवारमन्त्रकी पृ ४

८ हा हजारीमाना विनी कवीर पृ १६४

९ आदनाप्रभावना पृ ७७

१० दुर्लभोप्रभावना भा० २ पृ० २८६

११ रामचरिता उत्तरकाण्ड पृ २६

१२ बनि दुर्लभ तन्त्र कन मत्र बन्तनि मय हृदय मन्त्रकारी। तु भा० भा २ पृ० ५४१

पीडाघ्रा स भर जाता है। नायिका भेद क तथा रस परिपाक क सभी गान्धीय तत्त्वा का समावेश गोपी प्रकरण म हो जाता है। 'गीतगोविन्द' की स्वर लहरी समस्त भारतीय साहित्य म गूजी। गीतगोविन्दकार ने भागवत स वस्तु साहित्यशास्त्र से रस-नायिका भेद कामशास्त्र स कामकलिकला संगीत स राग रागिनी तथा भ्रमभ्रम की गीत मुक्तक गली लेकर एक एसा साहित्यिक सामजस्य प्रस्तुत किया कि कामुकता की धार्मिक स्फुटि प्राप्त हुई और विनासकना जिनामुष्मो को कुतूहल मिला। प्राय सभी नायिकाओं को उसम स्थान मिला है। राधा क छाठा रूपो क एक सूत्र वणन म ही समस्त कथानक रम गया। भक्ति क क्षेत्र म साहित्यशास्त्र क तत्त्वा का यह समन्वय धारो कई गतायियो तक कभी भक्ति-सापेक्ष रूप म, कभी भक्ति निरपेक्ष रूप म धारो उत्तरोत्तर उत्तम विकसित होता गया। कायशास्त्र की स्त्रियो स विद्यापति न अपन को कुछ स्वतंत्र किया। नायक नायिका स्वतंत्र प्रेमी प्रेमिका बने। लोकभाषा की प्रतिष्ठा ज्योतिरी-स्वर भर चुके थ। विद्यापति ने उम अपनाया। उस लोकभाषा म सिद्धो की गीति गली जगमगा उठी। आश्रयदाताओं की रमिकता और कामरुचि न उमको मराबोर कर दिया। जिस प्रकार जयदेव क काय की एक दीध परम्परा बनी उमी प्रकार विद्यापति की भी परम्परा स्थापित हुई। उम परम्परा क प्रभाव से उठीगा और बगान भी मुक्त न रह सक। चतय क आश्रय स न गीता का प्रचार प्राय समस्त उत्तरी भारत म हुआ। हिन्दी का कृष्णभक्ति साहित्य भी इससे प्रभावित हुआ। यह शृंगारमूलक भक्तिरस का शास्त्र बना। रूपगोस्वामी न इस उज्ज्वल रम कहा। इस समस्त परम्परा म परकीया भाव की सुदृष्ट प्रतिष्ठा हुई है। चतय सम्प्रदाय की समस्त धार्मिक मायताण और तत्सम्बन्धी समस्त साहित्य परकीया भाव स प्रेम का सर्वोत्कृष्ट रूप सामने रखत हैं। इस परम्परा की दो प्रमुख विषयताएँ रहीं परकीया प्रतिष्ठा और रीति-तत्त्वा का समावेश। चतय न स्वय परकीया भाव से रमोत्साम की बात कही और इस परकीया प्रेम का कद्र ब्रज माना। यह उपपति प्रेम भी कहलाता है। श्रीरूपगोस्वामी न उपपति की यह परिभाषा दी है जा पुण्य दूगरे की पत्नी क प्रेमाधिक्य क कारण दूसरी स्त्री या दूमरी स्त्री अपन पति का छाड कर एक दूगरे पुरुष क हृदय पर अधिकार कर लती है वह उपपति हाता है। इस प्रेमभाव की कुछ प्रविच्यनि ब्रज क कृष्णभक्त कवियो म भी मिलती है। नन्ददास न

१ यन् इरिमरण सरसं मनो। गो गा० ६

२ 'यन् विद्यामकलायु सुकलम्।' ११ वही, ६

३ गणपतिचन्द्र गुप्त हिन्दीकाव्य में शृंगार परम्परा और विहारी, पृ १५०

४ बयकाला निग प हिन्दी भाषा मैत्रिणी लिटररर, भा १

५ उपायकम शृंगार स मूलक चिन्त गही है। भरत न भा शृंगार क विषय इन् शब्द का प्रयोग किया है।—गा शा० म० ६। रूपगोस्वामी न इस भगवत्प्रथित कर दिया है।

६ धैर्यदरिण ल १। ५। २७६

७ उपायकम शृंगार स मूलक चिन्त गही है।

उपनिषद् की भाँति<sup>१</sup> समस्त रस का आधार कृष्ण को माना है।<sup>२</sup> इस मधुर रसरूप की पहचान नायिका भेद के बिना सम्भव नहीं है।<sup>३</sup> रूपमजरी म नन्ददास ने भगवत्प्राप्ति का एक सूक्ष्म माग बताया है। इस सूक्ष्म माग से नन्ददास का अभिप्राय उपपत्ति रस से है।<sup>४</sup> कम्भी निष्पत्ति के लिए उन्होंने रूपमजरी में एक यथा की कल्पना की है। क्या इस प्रकार है—रूपमजरी एक अत्यन्त रूपवती बन्या है। उसका विवाह एक अयोग्य वर से हो जाता है। इस बेमेल सम्बन्ध से रूपमजरी की सखी इदुमती अत्यन्त दुःखित है। इसके लिए वह उपपत्ति की योजना करती है।<sup>५</sup> पर इस उपपत्ति भाव पद्धति के अनुसरण में अधिकारी अनधिकारी होने का प्रश्न उठाया गया है।<sup>६</sup> इस प्रश्न के पीछे सामाजिक मर्यादा और पतन की सम्भावना की दृष्टि अतिरहित है। पर बल्लभ सम्प्रदाय में यह परकीया भाव प्रतिष्ठित नहीं हो सका। रास के मध्य में राधा-कृष्ण का विवाह सूर ने दिखाया है। निम्बाक सम्प्रदाय में राधा स्वकीया ही है। राधावल्लभीय सम्प्रदाय में राधातत्त्व स्वकीया परकीया से पुरे स्वीकृत है।<sup>७</sup> इस प्रकार राधा को तत्त्वतः परकीया मानने की परम्परा इन सम्प्रदायों में नहीं रही। पर नन्ददास ने रूपमजरी में परकीया भाव की पुष्टि की है। इस चतुर्थ सम्प्रदाय में भी परकीया भाव के विरुद्ध कुछ शक्ति हुई। ब्रह्मवत्पुराण (सम्भवतः दार्वाण गीता) में राधाकृष्ण का विवाह सम्पन्न कराया गया है। जीवगोस्वामी ने उद्वननीलमणि पर चोचनराचिनी टीका की है। इसमें यह सिद्ध करने की चष्टा की है कि ब्रज के अवतीर्ण होने से पूर्व ही कृष्ण और गोपियों में विवाह सम्बन्ध था। रूपगास्वामी ने भी अपने ललितामाधव में राधा और कृष्ण के बीच विवाह सम्बन्ध सम्पन्न कराया है। वस्तुतः चतुर्थ सम्प्रदाय के आचार्य परकीया भाव लौकिक दृष्टि से मानते हैं तत्त्वतः तो ब्रज द्रविया के साथ त्रीकृष्ण का नित्य पतित्व होता है। यह परकीया भाव पीछे सृष्टिया सम्प्रदाय में विकृत भी हो गया था।<sup>८</sup>

बेगव के सामने नायिका निरूपण के समय यही समस्त स्वकीया परकीया की परम्परा थी। नायगास्त्र के क्षेत्र में परकीया की मायता थी। रीतिकानीन आचार्यों और कवियों में भी सामान्या और परकाया भाव के चित्र भरे पड़े हैं। किसी न उपकार ने सामान्या और परकीया के प्रति वह दृष्टिकोण नहीं रखा जो बेगव का

१ तत्तिरीय १७

२ नन्ददास रसमन्त्रा

३ बदा

४ रूपमजरी

५ प्रस्तुत्यान शाल्ल ब्रजभागा सामान्य का नायिका मन् दि सु० पृ ६५

६ रूपमजरी

७ मूलभागे प्रथम मन् पृ ६३२ पन् १ ७६१६६२

८ शत्रुघ्नमन-वन्दनात्ता भगवत्प्रे भा, श्रमि मयूज पृ २५२

९ दा विद्वान् गानक राधावल्लभमन्त्राय मिद्वान् और अभ्ययन पृ ०११

१० मन्नीलमाधव नाम एन शत्रुघ्नान् दू दा पाण्ट चन्द्रय सम्पत्त्या कट पृ २५ ६३

है। डा० कृष्णचन्द्र गमा ने परकीया के प्रति वेगव के विलक्षण दृष्टिकोण की ओर संकेत किया है।<sup>१</sup> परंपुरपरत वाली परकीया परिभाषा बंगव जैसे दास्यत्रय और सामाजिक आदर्शों का ध्यान रखनेवाले आचार्य को भाग्य नहीं हो सकती। उन्होंने पुराने लोगो के अनुसार यह परिभाषा दी है परात्पर प्रसिद्ध पुरुष (परपुरुष) की प्रिया ही परकीया है।<sup>२</sup> इसमें स्पष्ट है कि वेगव परकीया भाव का निरूपण करते हुए उनकी कही आध्यात्मिक क्षत्र में स्वीकृति मायतामा के अनुरूप रखते हैं। लौकिक पदों में उन्हें स्वकीया का आदर्श ही प्राप्त है। जिन भक्ति सम्प्रदायों में राधा के साथ परकीया भाव सम्बद्ध है उन भाव को ग्रहण करके बंगव ने परकीया की नवीन परिभाषा देकर मौलिकता का परिचय दिया है। इस विचारधारा के स्पष्टीकरण के लिए ही कुछ विस्तार के साथ हमने पीछे यह पृष्ठभूमि प्रस्तुत की है। बंगव की समस्त नयिकाओं की पृष्ठभूमि में राधा कृष्ण की भावना है।<sup>३</sup> परकीया नायिका उनकी दृष्टि में कृष्णप्रिया के अतिरिक्त तो कोई है ही नहीं। बंगव के स्वकीया प्रधान दृष्टिकोण का भाग के कुछ आचार्यों पर भी प्रभाव पड़ा। उदाहरण के लिए मतिराम को दिया जा सकता है। बंगव ने इस विषय में काव्यशास्त्रीय तथा भक्तिशास्त्रीय मायतामा का समाज सापक्ष समन्वय करने का प्रयास किया है।

### लक्षण एवं स्वरूप

(क) आधार एवं पृष्ठभूमि—नायक-नायिका भेद के चतुर्मुखी स्रोत और आधार की पहचान गतिष्ठ चर्चा हम कर चुके हैं। ये स्रोत हैं कामशास्त्र नाट्यशास्त्र साहित्यशास्त्र और रसिक भक्तिशास्त्र। बंगव ने निश्चित ही इन स्रोतों से प्रेरणा और वस्तु ग्रहण की है। इन स्रोतों की परम्पराओं में अनन्त आचार्य हुए हैं उनमें से किसे आचार्य को बंगव लेकर चलें यह कहना कठिन है। वेगव प्रायः किसी एक आचार्य का ही आधार बनाकर चल भी नहीं हैं। भोज विद्वनायक या भानुपति के आधार पर कुछ रीतिकानीय आचार्य चलें पर बंगव में स्रोतों का बहुध्वनितता है। महा कारण है कि बंगव के निरूपण का किसी एक आचार्य से अंतरण मिलता जुतता नहीं पाया जा सकता। पर एक बात उनके निरूपण के विषय में निश्चित है कि वे कहीं भी आचार्य नहीं है यदि कहीं किसी रूप में मायता का अनुगमन नहीं करते तो वही बाद दिग्गज कारण होता है। प्रायः वही बंगव का अपना दृष्टिकोण होता है।

नायक-नायिका भेद की पृष्ठभूमि के रूप में हमने पीछे बंगव की विचारधारा उनकी दृष्टि में नारी की सामाजिक स्थिति और बंगव की निरूपण विषयक पद्धति को

१ परावगम जीवन कला और कृष्णिक पृ० ३६७

२ सर्वप्रथम परमेश्वर का लक्ष्य किया तु डा०।

परकीया लक्ष्य कर परम पुराने लक्ष्य ॥ रसिकप्रिया ३।३७

३ आचार्य की नायिका करनी बंसुराम्। ६६। ३।७५

४ रसिकप्रिया, रामराज भूमिका पृ० ५१ बनारस १९६०



स्पष्ट करने की चंटा की है। वेशव अपने युग में उपलब्ध समस्त प्राचीन और अर्वाचीन छाता एवं प्रभावों से प्रभावित हो रहे थे और हिन्दी के व्यापक काव्यशास्त्र के निमाण का प्रयास कर रहे थे। वे अपने युगीन रमिक साहित्य के अनुरूप रसाशास्त्र बना रहे थे जिसका उपयोग रतिक परम्परा के भक्त रसिक भाषाकवियों और रमिक पाठका—मक के लिए हुआ मन् साथ ही उन्हें उनका नाम और क्षत्र के अनुरूप मौलिकता का प्रभावपूर्ण श्रय भी मिला सके।

वेशव के पुरुष या उनके समय की नायिक-नायिका निरूपण की हिन्दी क्षत्रीय परम्परा समय में इस प्रकार है<sup>१</sup>

क—कृपाराम	हिततरंगिणी (स १५६८ वि०)
ख—मूरदास	साहित्यनहरी (स १६०७? १६१७? १६२७?)
ग—नन्ददास	रसमजरी रूपमजरी
घ—रहीम	बरवा नायिका
ङ—सुन्दर	सुन्दरशृंगार
च—वेशव	रमिकप्रिया

वेशव के अनन्तर तो रीतिकाल में इसकी परम्परा बहुत दूर तक चलती रही।<sup>२</sup>

## नायक

नायक निरूपण भी भारतीय वाङ्मय के विविध क्षत्रों में पाया जाता है। उपनिषद में धीरे तथा धनुष्यर नायक राम की चर्चा है।<sup>३</sup> इन गुणों में वाङ्मय और भ्रान्तरिक गुणों का स्वस्थ संतुलन हुआ जाता है। धीरे विगणन नायक और साहित्य शास्त्रों में नायक के साथ सम्बद्ध रहा। आध्यात्मिक क्षत्र में पात्र की उपनिषद के आधार पर नायकत्व का विचार हुआ है। धीमान् ही नायक है। गकर ने विवेक शील को नायक कहा है। साथ ही उसमें साहस और धर्म को आवश्यक माना गया है।<sup>४</sup> साहित्यिक और सामाजिक दृष्टि में भी पत्रप्राप्ति के लिए धर्मपूर्ण प्रयत्न करने वाला ही नायक होता है। अन्तर में होता है कि आध्यात्मिक नायक श्रय की साधना में अन्तर्मत्त हाता है और सामाजिक नायक बहुमुख हाकर कत प धर्म का परिपालन करके अमर कीर्ति के पत्र का भावना बनता है।<sup>५</sup> पहला पात्र के परिपाक से आत्मपान प्राप्त कर अमरत्व को प्राप्त करता है।<sup>६</sup> आध्यात्मिक नायक मृत्युजय होता है तो

१ इस परम्परा में लक्ष्मण निरूपण देकर न कलकत्ता कवियों का सम्मिलित नडा किया गया है। इनमें विष्णुपति का नाम उल्लेखनीय है। उनके काल में अजनाया मादिय के नायिका में का भा प्रामाणिक रूप मिलता है। —प्रमुख्यतः मोहन मजमा का नायिका में पृ ३४

२ हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ १४५५

३ रामचरितमानस उपनिषद् ४।७

४ कट २। पर शाङ्करभाष्य

५ कहा

६ इतिहास पृ ४। पर शाङ्करभाष्य

सामान्य नायक मृत्यु की उपमा करता है। अतः धीरे-धीरे अतमुग्ध और बहिर्मुख दोनों ही अर्थों में प्रयुक्त होता है। इस प्रकार आध्यात्मिक और सामाजिक क्षेत्र में नायकत्व का बीज विचार प्राचीन काल में मिलता है।

काव्याशास्त्र नाट्यशास्त्र और कामशास्त्र के क्षेत्र में भी घटित साहस निभयता आदि गुण नायक के साथ सम्बद्ध रहते हैं। परन्तु क्षेत्र बदल गया। प्रेम रति रण और नायिका की प्राप्ति प्रमुख हो गई। कामशास्त्र में एकमात्र पति को ही नायक कहा गया है।<sup>१</sup> नायक की यह भावना समाज-सम्मत है। यो धीरे-धीरे व्याख्या करते हुए कहा है कि वात्स्यायन ने नायिका भेद की भाँति नायक भेद की स्वीकार नहीं किया है। एकलक्ष्य ज्ञान आध्यात्मिक नायक का गुण है। कामशास्त्र का पति-नायक भी अपनी पत्नी को ही लक्ष्य में रखता है। यहाँ साहित्य के अनुकूल नायक का बीज है। केवल के अनुसार अनुकूल नायक मन बचन और काम से निरत पत्नीरत होता है। परस्त्री की निन्दित कल्पना भी नहीं करता है।<sup>२</sup> माय ही वात्स्यायन ने प्रच्छन्न नायक की भी कल्पना की है। पर इसका लक्ष्य प्रेममुख्य नहीं कोई अन्य लाभ होता है।<sup>३</sup> इस प्रकार प्रच्छन्न नायक की कल्पना में उपपत्ति की कल्पना का बीज मिल जाता है। वगैरह रूप में वगैरह नायक की भी कल्पना मिल जाती है।<sup>४</sup> अक्षरशास्त्र ने अपनी शृंगारमञ्जरी में और बगवदामल ने अपनी रसिकप्रिया में नायक नायिका के प्रच्छन्न और प्रकाश भूत स्वीकार किए हैं।<sup>५</sup> इस भेद का सोच कामशास्त्र में निहित अन्त-पुरगामी प्रच्छन्न और अप्रच्छन्न भाग के प्रयोक्ता नामकों के उल्लेख में है।<sup>६</sup> वात्स्यायन की दृष्टि में अनुकूल नायक अष्ट है।<sup>७</sup> यही ध्वनि बगवत में भी मिलती है। परस्त्री अनियोग में मित्र नामक ही दक्षिण है। तम नायक भी स्त्री को रति में है।<sup>८</sup> गठ और पूत की तो चर्चा नहीं है पर कुछ नामकों के उल्लेख में उन्होंने आभास मिला है। इसी अनुविषय वर्गीकरण का प्रायः सब आचार्यों ने स्वीकार किया है। बगवत में तादृगीकी स्वीकृति है। बगवत ने पति उपपत्ति और वगैरह में सब उपपत्ति को स्वीकार किया है। जिन प्रकार नायिका भेद में बगवत ने स्वीकार पर चल किया है उसी प्रकार नायक भेद में पति नायक का अनीष्ट माना है। उपपत्ति और वगैरह का भाव उक्त अनामानिक लगा है। कामशास्त्र में भी सबका वर्णन हीन रूप में समस्त पति का ही है।

- १ कामशास्त्र १।५।२०
- २ बह्विधनायक ५।५।२१
- ३ रसिकप्रिया २।३
- ४ 'प्रच्छन्नान्मुनि' इति । विशयलामाय । काम ० १।५। ८
- ५ बही १।५।२० पर दरार की व्याख्या
- ६ कामशास्त्र सूत्रा अधिपत्य
- ७ अक्षरशास्त्र, शृंगारमञ्जरी, नायक निरूपण
- ८ रसिकप्रिया २। ८, १०, १३, १५, १७
- ९ कामशास्त्र ५।५।२०, ५।५।२०
- १० बही ३।२।५८ ६ ११ बही ५।२।८५

अनुकूलादि भद शिगभूपाल ने पति के माने हैं ।<sup>१</sup> सभी रसा और नाटकादि क क्षत्र म धीरोदात्तादि प्रकार के ४ नायक माने गए थे ।<sup>२</sup> पर शृंगार के क्षत्र म गिंग ने पति उपपति और वगिक ही मान हैं ।<sup>३</sup> बंगव को जब सभी रसों का समाहार शृंगार म करना है तो धीरोदात्तादि भद उह माय नहीं हा सकत । साथ ही जिस सामाजिक और भक्तिगास्थ्रीय दृष्टिकोण को लेकर बंगव चल है उसक अनुसार उह उत त्रिविध वर्गीकरण स्वीकार्य भी नहीं हो सकता । अत उहान भूपाल क पति तथा उसके अनुकूलादि उपभदा को ही स्वीकार करवे नायक प्रकरण को सरल और समीचीन बनाने की चेष्टा की है । विश्वनाथ ने पढ़ने धीरोदात्तादि ४ भद किए हैं । इनम स प्रत्यक के अनुकूलादि ४ ४ उपभद दिखाए हैं । पर इन उपभदों का विश्वनाथ ने भी शृंगार स ही सम्बन्ध माना है । भोज ने नायक क प्रवृत्त्या गठादि ४ भद स्वीकार किए हैं ।<sup>४</sup> भानुदत्त न फिर गिंगभूपाल की पद्धति को अपनाया । सवरस-साधारण धीरोदात्तादि चतुर्विध वर्गीकरण को भानुदत्त ने स्वीकार नहीं किया । पति उपपति वगिक की त्रयी को भानुदत्त न माना है ।<sup>५</sup> पति के अनुकूलादि भद किए गए हैं । धनजय न नाटक म माय धीरोदात्तादि भद तो माने हैं अनुकूलादि भद भी मान है । इस स्थिति को देखत हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि बंगव ने किसी आचाय का पूणत अनुसरण नहीं किया । सबसे अधिक साम्य कामसूत्र की बबल पति के समयन वाली परम्परा स है । इसी स्रोत स बंगव का नायक भेद अवतरित हुआ है ।

नायक क सामाय गुणा का उल्लेख बंगव ने नायक प्रकरण क आरम्भ म किया है । उनके अनुसार नायक म य गुण होने है अभिमानी त्यागी तरुण कोकक्यामों म प्रवीण भव्य क्षमाशील सुंदर घना सुचि रुचियुक्त तथा कुलीन । इनम से सुचि रुचि सदा प्रवीण की याख्या पर मतभेद है । डा० हीरानाथ दीक्षित ने सुचि का रुचि का विशेषण माना है सदा गत को कुलीन स सम्बद्ध मानकर उसकी उपमा की है ।<sup>६</sup> डा० किरणचद्र गमा न मदा रुचि एक अलग गत युगम मानकर उमवा अथ उत्साही किया है ।<sup>७</sup> सुचि को पवित्र के अर्थ म और कुलीन को भी अर्थ लिया है ।<sup>८</sup> उत्साह का अर्थ लना अधिक युक्तियुक्त है । इस गुण का प्राय सभी आचाय मानत भी हैं । बिना इसक आत्मा नायक की कल्पना भी पूण नहीं हाती । नीच क विषय स अर्थ आचार्यों स बंगव क नायक गुण गणन का तुलनात्मक रूप स्पष्ट हा जाता है ।

१ रमाणकमुभाकर द्विवन्धन, १९१६ पृ १६ श्लो० ८

२ बनी श्लो ७८

३ वहा श्लो ७९

४ माहित्यशास्त्र ३।७७

५ मरम्बकाकरठनरण

६ रमनन्ती बलराम, स ७ ८, पृ १७१

७ वहा पृ १७३

८ बरावप्रयागली, सड १ २।१

९ डा हरानन्त दीक्षित आचाय बरावगोस ५० २६१

१० बरावगोस जीवनी, कला और कृत्तित्व पृ १८१

इसमें केवल समान गुणों को दिनाया गया है अतिरिक्त गुण नीचे पाद टिप्पणी में दे दिये गए हैं ।

विविध आचार्यों द्वारा गृहीत नायक गुण

केनय ११	धनजय <sup>१</sup>	निगभूपाल <sup>१</sup>	विश्वनाथ <sup>१</sup>	भोज
अभिमानो	+	+	<	+
त्यागो	+	उदार	+	उदार
तरुण	+	×	+	×
कोककलाविद्	+	+	×	×
भय	×	×	×	विलासी
क्षमाशील	>	>	×	×
सुन्दर	+	×	+	×
				सौभाग्यशाली
धना	×	भाग्यशाली	+	महाभाग्यशाला
सुवि	+	+	वृत्ती	×
सदाशिव (उत्साही)	+	×	+	×
कुलीन	+	+	+	×

(यहां + चिह्न उस आचार्य द्वारा भी भाव्यता का सूचक है, × चिह्न अभाव का सूचक है ।)

इस तुलनात्मक सूची को देखने से स्पष्ट हो जाता है कि वंशव का गुण गणन धनजय और विश्वनाथ व अधिक समीप है । इन दोनों आचार्यों में से धनजय नाटय शास्त्रीय परम्परा का अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं । वंशव की नायक निरूपण में दृष्टि

१ दशरूपक, २।१७३, धनजय ने कला समर्पित माना है । कला में उनका अभिप्राय काम शस्त्र में मान्य इव कलाओं से है । अतः कोककलाविद् व समीप है ।

२ आचम्यो मनस्य तावको गुणवान् पुमान् ।  
 तद्गुणान् महाभाग्यशालीय स्वयच्छते ॥  
 भोजन्य धार्मिक च कुलीन च वाग्मिना ।  
 इत्येव तदवत् सुविना मातरालिता ॥  
 तेचस्वित्वा कलावत् प्रजारजकनाय ।  
 एतं माधुर्या प्रोक्त्वा तावकरय गुणा बुधे ॥

३ विश्वनाथ साहित्यरत्न ३।६६  
 (यगो कृती कुलीन मुनीको रूपयौवनोत्साही ।  
 इत्येनुरक्तलोकात्तजा स्वयगीनवनेन ॥

४ तरुवनीकपारण्य भोज, श्लो० १२० १०३  
 महाकुलीनो गये महाभारय वृत्तना ।  
 रूपो राने स्वयशीलसौभाग्यसुप ॥  
 र्गतिनाशरवादे व सुन्दरानुरागिना ।  
 दान्तरा गुणादुर्गापराभिगामिकान् ॥

—रमाणवसुधाकर, श्लो० ६१ ६३, पृ० ६

नित्यव्याकरणे, १६३५ पृ० ५६८ ६

अनुकूलादि भेद गिगभूपाल ने पति के माने हैं।<sup>१</sup> सभी रसा और नाटकादि के क्षेत्र में धीरोदात्तादि प्रकार के ४ नायक माने गए थे।<sup>२</sup> पर शृंगार के क्षेत्र में गिग ने पति उपपति और वगिक ही माने हैं।<sup>३</sup> केगव को जब सभी रसों का समाहार शृंगार में करना है तो धीरोदात्तादि भेद उहे माय नहीं हो सकता। साथ ही जिस सामाजिक और भक्तिशास्त्रीय दृष्टिकोण को लेकर केगव चले हैं उसका अनुसार उह उक्त त्रिविध वर्गीकरण स्वीकार्य भी नहीं हो सकता। अतः उहोने भूपाल के पति तथा उसके अनुकूलादि उपभेदों को ही स्वीकार करके नायक प्रकरण को सरल और समीचीन बनाने की चेष्टा की है। विश्वनाथ ने पहले धीरोदात्तादि ४ भेद किए हैं। इनमें स प्रत्येक के अनुकूलादि ४४ उपभेद दिखाए हैं। पर इन उपभेदों का विश्वनाथ ने भी शृंगार से ही सम्बन्ध माना है। भोज ने नायक के प्रवृत्त्या गठादि ४ भेद स्वीकार किए हैं।<sup>४</sup> भानुदत्त ने फिर गिगभूपाल की पद्धति को अपनाया। सवरस-साधारण धीरोदात्तादि चतुर्विध वर्गीकरण को भानुदत्त ने स्वीकार नहीं किया। पति उपपति वगिक की प्रथी को भानुदत्त ने माना है।<sup>५</sup> पति के अनुकूलादि भेद किए गए हैं। धनजय ने नाटक में माय धीरोदात्तादि भेद तो माने हैं अनुकूलादि भेद भी माने हैं। इस स्थिति को देखते हुए यह स्पष्ट हो जाता है कि केगव ने किसी आचाय का पूणत अनुसरण नहीं किया। सबसे अधिक साम्य कामसूत्र की बबल पति के समयन वाली परम्परा से है। इसी स्रोत से केगव का नायक भेद अवतरित हुआ है।

नायक के सामान्य गुणों का उल्लेख केगव ने नायक प्रकरण के आरम्भ में किया है। उनमें अनुमार नायक में ये गुण होने हैं अभिमानी त्यागी तरुण कोकनासों में प्रवीण भय धर्मागीन सुन्दर धनी शुचि रचियुक्त तथा कुशीन। इनमें से शुचि रचि सदा प्रवीण की यास्या पर मतभेद है। डा० हीरानाल दीक्षित ने शुचि का रचि का विगणण माना है सदा गुरु की कुशीन से सम्पद्ध मानकर उसकी उपमा की है।<sup>६</sup> डा० किरणचन्द्र गामा ने सदा रचि एक अलग गुरु युगम मानकर उमका अर्थ उस्ताही किया है। शुचि की पवित्र के अर्थ में धीर कुशीन को भी अर्थ लिया है।<sup>७</sup> उस्ताह का अर्थ लना अधिक युक्तियुक्त है। इस गुण का प्राय सभी आचाय मानते भी हैं। बिना इसके आत्मा नायक की कल्पना भी पूण नहीं होनी। नीच के चित्र से अर्थ आचायों से केगव के नायक गुण गणन का तुलनात्मक रूप स्पष्ट हो जाता है।

१ रमालवसुधकर दिव्य २१ १६ १६ ३०० =

२ बंग रत्ना ७८

३ बहा रत्ना ७६

४ साहित्य ३१७

५ सारवना १०८३

६ रमाली बनारस २० ८, १० १७१

७ बहा १ १७३

८ शरावत यावली १, २११

९ डा. किरणचन्द्र गामा आचाय कथावाम, १० २६१

१० शरावत यावली, बला और कृत्तव १० ३८१

किस काल समान गुणों का विचार किया गया है अतिरिक्त गुण नीचे पाठ्य-विषय में दिये गए हैं।

विविध आचार्यों द्वारा गृहीत नायक-गुण

केशव ११	धनजय <sup>१</sup>	गणभूषण <sup>१</sup>	विश्वनाथ <sup>१</sup>	भाज
अभिमान	+	+	<	+
स्वामी	+	उत्तर	+	उत्तर
सम्पन्न	+	<	+	×
काव्य-शक्ति	+	+	>	/
भय	/	>	×	विनाश
समाधान	>	>	>	×
मुक्त	+	>	+	×
				सौभाग्यशाली
धनी	>	भाग्यशाली	+	महाभाग्यशाली
धुंध	+	+	दृष्टी	>
संगति (समाही)	+	>	+	×
दृष्टी	+	+	+	>

(यहां + चिह्न उस आचार्य द्वारा भी मायता का सूचक है > चिह्न अमायता का सूचक है।)

इस तुलनात्मक सूची का दायन न स्पष्ट हो जाता है कि केशव का गुण-संगत धनजय और विश्वनाथ व अधिक समीप है। इन दोनों आचार्यों में धनजय नाट्य-शास्त्रीय परम्परा का अधिक प्रतिनिधित्व करते हैं। केशव का नायक निरूपण में दृष्टि

१ लक्ष्मण, २१७३, धनजय ने कला समन्वित माना है। कला में उनका अभिप्राय काल शास्त्र में मान्य ६६ कलाओं में है। अतः शौककलाविरुद्ध समीप है।

२ आपत्तन मत्त न नायको गुणवत् पुण्ड्र ।  
 तद्गुणस्तु महाभाग्यशाली च स्वयंचरु ॥  
 श्री-सत्य धामकव च दृष्टीसु च शक्तिः ।  
 इत्येत नयसु च पुत्रिणा मानसात् ॥  
 तत्रात्मन कलावत्त प्रकाशकलात् ॥  
 एत मासरेण प्राक्त नयकरय गुण सुदै ॥

—सत्यवदुसाकर श्लो० ६१ ६३ पृ ६

३ विश्वनाथ साहित्यशास्त्र १२६  
 (यथा कला-पुत्रीन सुश्राका रूपवैभवात्सली ।  
 इत्युत्पन्नाः कृतज्ञाः स्वयं-वचनम् ॥  
 ४ सरस्वतीकल्याणम् भा०, श्लो० १२ १२३  
 महाभाग्यशाली च महाभाग्य दृष्टयः ।  
 स्वयं-वचनम्-शास्त्र-मायनम् ॥  
 नातिपारावन्त च सुप्रियासुगमि ।  
 द्वाशति सुधानाहुनां रघुनिगमिकम् ॥

निगदनागम्येन, ११ ४ पृ० १६८ १

कामगास्त्रीय तथा शायगास्त्रीय परम्परा की ओर विंगय रूप स है। अय आचाय भी प्राय इहीं खोतो से सामग्री लेते हैं। कुछ हेर फेर भी करत हैं।

कंगव क परवर्ती हिंदी आचार्यों ने भी नायक लक्षणमूलक गुणो की गणना की है। चित्तामणि ने एक विशिष्ट दृष्टि रखी है। उन्होंने सभी नायकों म सामाय गुणा की स्थापना न कर भेद के अनुसार गुण भी भिन्न दिखाए हैं।<sup>१</sup> उज्वलनीलमणि म रूपगोस्वामी न भी ऐसा ही किया था। अस विभिन्न विशिष्ट भेदो म भी नायक गुण विभिन्न हो जाते हैं। कंगव अस विस्तार म नहीं गए। मतिराम ने भी सामाय गुण ही दिए है।<sup>२</sup> सोमनाथ<sup>३</sup> तथा भिलारीदास ने भी लगभग एस ही गुण नायक म स्वीकार किए हैं। परवर्ती आचार्यों की सूचिया प्राय कंगव की गुण सूची स मिलती जुलती है। कंगव ने नायक के चार प्रकार अनुकूल दक्षिण गठ और घट्ट स्वीकार किए हैं।

### अनुकूल नायक

अनुकूल नायक भारतीय सस्कृति और परिवार जीवन की दृष्टि से सबभ्रष्ट नायक माना जाता है। इसकी पृष्ठभूमि पर पीछे विचार हो चका है। कामसूत्र म यही एकमात्र लोक प्रसिद्ध नायक माना गया है। कंगव ने इसक लक्षण कम प्रकार दिए हैं। अपनी पत्नी म मन वचन कम स अनुरक्त परनारी स सदा विरुद्ध अनुकूल नायक होता है।<sup>४</sup> इस लक्षण निरूपण म विधि और निषेध दोनो पक्षो द्वारा एकपत्नीयत पर बन है। विश्वनाथ ने कवन विधिपक्ष पर बल दिया है। एकस्यामव नायिका यामासक्तोनुकूलनायक।<sup>५</sup> गिंगभूपान ने भी अनुकूलस्त्वकजाति कहकर कम विधि पक्ष को ग्रहण किया है। भोज न त तण निरूपण नहीं किया। भानुदत्त ने परस्त्री विमुख होना भी उसका लक्षण माना। रूपगोस्वामी न भी दोनो पक्षो का उल्लेख किया है। अस प्रकार कंगव का लक्षण निरूपण स्वयुगीन प्रचलित परम्परा क प्रतिनिधि भानुदत्त तथा भक्तिश्रीय आचाय रूपगोस्वामी दोना क अनुरूप है। चित्तामणि ने एकांगी परम्परा को ही अपनाया है। मतिराम न विधि निषेध वाली परम्परा क अनुसार लक्षण किया है।<sup>६</sup> दास न भी एकांगी लक्षण किया है।<sup>७</sup>

१ कविकुलकपतरु ४।३।३ ५७ ५६

२ रमराज बनारस १६६ पृ १३३

३ रंगभोगुनिधि १३।१

४ गंगरनिगय ८

५ रंगकद्रिदा २।३

६ साहायदंगु ३।७२

७ रमनकी

८ उज्वलनीलमणि १

९ रमराज दंग २४४

१० गंगरनिगय १३

## दक्षिण नायक

कंगव न दक्षिण नायक क मानसिक मधय का बढ सुन्दर ढग स प्रस्तुत किया है ।<sup>१</sup> नायक का मन परनारी प्रेम क लिए मचल उठता है । पर अपनी पूर्वप्रिया स प्राति भय तथा मयाग क कारण अपन आचरण पय पर बढ आस्ट रफता है । कंगव का दक्षिण-लक्षण अत्यन्त विचित्र है । दक्षिण नायक की खचा वात्स्यायन न की है ।<sup>२</sup> मस्वृत क अनक आचार्यों न दक्षिण नायक का अनक नायिकाका म समान अनुराग रखनेवाता कहा है ।<sup>३</sup> बहूनारीरत का वात्स्यायन न सम कहा है ।<sup>४</sup> धनजय क अनुमार दक्षिण नायक अपनी पूव पत्नी स भी प्रेम रखता है ।<sup>५</sup> रूपगास्वामा क अनुमार अय म अनुरक्त हान पर भा दक्षिण नायक अपनी पूव पत्नी स प्रेम नहीं छोडता । उन्होंने यह भा बताया ह कि बढ पूव पत्नी स प्रेम भय और सम्मान का भाव रफता ह ।<sup>६</sup> यह निरूपण कंगव स आंगिक रूप स मिनता है । उन्होंने भी प्रेम भय सम्मान और मर्यादा की बात कही ह । कंगव का नायक अपन आचरण स विचलित नहीं हाता । उमम नियमन और समय की मात्रा अधिक ह ।

## गठ नायक

गठ नायक तीमरी कोटि म आता है । यहा परनायक मन और कम म अया सक्त होना है । कंगव वचन म प्रस्तुत नायिका की प्रमन्न करना चाहता है । एमा नायक प्रसक्क है । कंगव एम गठ कहत हैं । कंगव की दृष्टि म परनारी म श्रामक्ति एक सामाजिक और समाजनीय अपराध है । इस अपराध स मयाग भय वचता है । दक्षिण नायक भय भी रखता है । पर गठ का अपराध करत भय भी नहीं हाता । धनजय न गुप्त रूप स विप्रिय करनवाल को गठ कहा है । गुप्तविप्रियकच्छठ ।<sup>१</sup> एतम अपराध की जगह विप्रिय या अप्रिय गत् प्रयुक्त है । एम भाव म नायिका की बदल वयक्तिव दृष्टि को स्थान मिलता है । सामाजिक तत्व पर एमका इतना ध्यान नहीं है । यहा कंगव क अपराध और धनजय क विप्रिय म अंतर है । गुप्ताप स अप्रिय करता है का तात्पर्य हूमा वचनानि स अपन कपटाचरण का व्यक्त नहीं हात दता । कंगव का गठ भी भीठी बातें करनेवाता है । गुप्ताचरण ही गठ का घट्ट स

१ रत्निकप्रिया २।७      २ बानमूत्र ४।१।२०

३ साहित्यसंग ३।७२

४ 'पुरुषगु बहूनागन् समान य समो भवत् ।' बानमूत्र ४।१।२५

५ 'दक्षिणाय सुदृश्य धनजय, दरारूपक, दक्षिणलक्षण

६ दो गौतम भय प्रेम तात्पर्य पूर्व्यापिति ।

न मुन्नयन्दिस्तापि हेयामौ खनु दक्षिण ॥ उज्ज्वलनालमणि दक्षिणनायक

७ मुड भाटी काने कहे निपट कपट न्ये जानि ।

साहि न करु अपराध को सुठ करि ताहि कंगान ॥ कशावप्रभाकली, पृ ६, दृश्य २१

८ दरारूपक शठनायक लक्षण प्रकरण



अलग करनेवाला है। विश्वनाथ ने भी अप्रिय करनेवान को ही गठ कहा है। उनमें भी गुप्ताचरण का तत्त्व निहित है।<sup>१</sup> रूपगोस्वामी ने अपराध वास तत्त्व का स्पष्ट कथन किया है।<sup>२</sup> इसमें प्रिय बोलना परोक्ष में विप्रिय करना तथा गूढरूपण अपराध करना सम्मिलित है। उस प्रकार केशव के लक्षण सबसे अधिक रूपगोस्वामी के निरूपण से मिलते हैं।

मतिराम ने गठ को अपराधी अपराध से न डरनेवाला कपट प्रेम करनेवाला और वचन चतुर कहा है।<sup>३</sup> भानुत्त ने भी अपराधी होने पर भी कामिनी को ठगने में कुशल माना है। उनके अनुसार गठता का आधार नायिका को ठगने की प्रवृत्ति है। भिलारीदास ने भी वचन चतुरता व्यभिचार कपटाचरण को गठ नायक के लक्षण में रखा है।<sup>४</sup> हिंदी के आचार्यों में मतिराम का निरूपण बेगव से पर्याप्त मिलता है।

### घट नायक

घट नायक में लज्जा का तत्त्व भी समाप्त हो जाता है। नायक ने अपराध किया वह रग हाथो पकड़ा भी गया। उसपर अपराधी की बौद्धिक हुई मार भी पड़ी। पर न उस किंचित लज्जा है न भय। अपने दोष को वह स्वीकार भी नहीं करेगा। बेगव के अनुसार उस प्रकार का नायक घट सजा पाता है।<sup>५</sup> विश्वनाथ के लक्षण से बेगव का लक्षण बहुत कुछ मिलता है। गिरभूपाल के अनुसार नायक व्यक्त रूप से अपराध होता है और निभय भा होता है।<sup>६</sup> दण्डरूपकार के अनुसार कनिष्ठा नायिका के साथ रतिश्रीडा कर सुरत चिह्नो को भी न छिपाते हुए गीठ नायक घट होता है।<sup>७</sup> यहाँ भी निलज्जता और निभयता का भाव मिलता है। रसमजरीकार ने लक्षण इस प्रकार दिया है— पुन पुन अपराध करके नायिका के द्वारा मना किए जाने पर भी बिना हिचक उसके सामने आता है— वहाँ घट है।<sup>८</sup> चित्तमणि का लक्षण

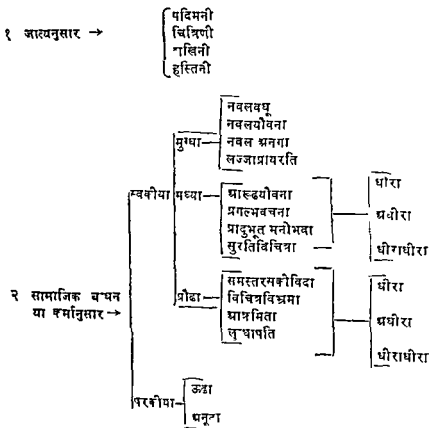
- १ साहित्यदर्पण ३।७६
- २ प्रियवक्त्रे पुरान्यत्र विप्रियं कुर्वन् भूरात् ।  
निगूढापरिधेयं शठाय कथितो बुधैः ॥ उक्तवन्नीलमणि शठप्रकरण
- ३ रस करत अपराध नाह करै कपट को प्रीति ।  
बचन किया में अति चतुर सठ नायक का रीति ॥ रसरत्न पृ १५१ धृत् २५०
- ४ रसमजरी शठलक्षण
- ५ उगारनिर्णय २१
- ६ लज्जा न मारिदु नार का द्वादि रस मुख ग्राम ।  
रस्य दण्ड न मानडां घट सु कद्विद लम ॥ करवन्नीलमणी पृ ७ धृत् २५
- ७ कृष्णाय अपि निरशकम्प्यनापि न लज्जते ।  
दण्डनायक मिथ्यावाक कथिता धृत्नायक ॥ साहित्यदर्पण ३।७६
- ८ रसमजरीकार धृत्लक्षण
- ९ रसमजरीकार धृत्लक्षण
- १० भूय निरशकम्प्यनापि भूय निरतिपि भूय प्रपराधाय धृत् ।

—रसमजरी धृत्लक्षण

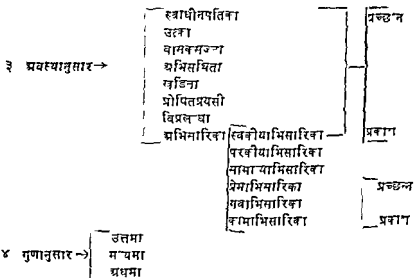
निरूपण रसमजरी के अनुसार है अपराध प्रकट हान पर भी जो निभय घर आए वही घट्ट है ।<sup>१</sup> मतिराम का निरूपण भी ऐसा ही है ।<sup>२</sup> बंगव न गाली और मार की बात कहकर घट्टता की प्रतिमात्रा दिखाई है । रूप गोस्वामी न भी इन बातों का उल्लेख नहीं किया ।<sup>३</sup>

नायिका भेद

भेदोपभेद वर्गीकरण—बंगव न जाति सामाजिक बंधन या कम अवस्था तथा गुण व आधार पर नायिका के भेदापभेदों का निरूपण निम्न प्रकार किया है



१ कवियुल्लेखनक ५।३।१५  
 २ रसरत्नक ५ १४०, द्वा ५३  
 ३ अभिव्यक्तानुसंगीभोगलक्षणापि निभय ।  
 निध्यावननन्दरत धृष्टोय सतु कथ्यन् ॥



कविवर ने इन नायिका भेदों का गुणन फल अतः म ३६० दिया है।<sup>१</sup> इस गुणन फल को या स्पष्ट किया जा सकता है

स्वकीया = ३ × ४ प्रकार = १२ १० + २ परकीया = १५ १४ + १ सामाया = १५ १५ × ६ = १२० १२० × ३ गुणानुसार = ३६०। यह कविवर का भेद निरूपण एक मिश्रित परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। कामगास्त्र और काव्यगास्त्र दोनों ही स्रोतों से उद्गृत सामग्री ली है। कामगास्त्र में पत्निनी शक्ति चार नायिकाओं का विवरण दिया है। वाल्मीयन ने पुरुष स्त्री जाति पर विचार किया है।<sup>२</sup> पर उमर इन चार नायिकाओं का नामोल्लेख नहीं मिलता मृगी ब्रह्मा और हस्तिनी ती हैं। रतिरहस्य में उत्त चारों भेदों का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के कर्ता कविवर पत्नि न नत्किन्दर को इस विभाजन का प्रवर्तक माना है।<sup>३</sup> रतिरहस्य पर आधारित परवर्ती कामगास्त्रीय ग्रंथों में भी आत्यनुसार चतुर्विध विभाजन है।<sup>४</sup> जहाँ तक काव्यगास्त्रीय क्षत्र का सम्बन्ध है सत प्रकवरगाह न इस भेद का नवप्रथम स्थापक किया। श्रीकृष्ण कवि ने भी उत्तका उत्तरक किया है।<sup>५</sup> हिता व आचार्यों में नवप्रथम कविवरदास ने इनका स्वीकार किया। जमबन

१ रामकृष्ण ७। ३

कविप्रदीप १६११

—१

४ रतिरहस्य नायिका १ ११६

५ —१

६ अतः म १११ १६ पत्रांक ६ ६

नायिका १५

७ रामकृष्ण ३११

सिंह न भाषाभूषण म दव न रसविलाम म भवानीविनास और सुखसागरतरंग म इन भेदा की चर्चा की ह ।<sup>१</sup> सोमनाथ न इनपर विस्तार न लिखा ह ।<sup>२</sup> चित्तामणि ने अकबरशाह की शृंगारमजरी की हिन्दी छाया क द्वारा इस प्रकरण स रीतिकालीन आचार्यों को अवगत करा दिया था ।

एक विभाजन का आधार नारी की गारीरिक तथा प्राकृतिक विपत्ताएँ हैं । इनम से कुछ जन्मजात विपत्ताएँ भी हैं और कुछ अर्जित भी हैं । इनके लक्षणों म कुछ अदलीलता भी आ जाती ह । शृंगाररस क परिपाक की दृष्टि स य विपेताएँ विगप उपयोगी नहीं हैं । सम्भवत इसीलिए काव्यशास्त्र क कुछ आचार्यों को छोड़कर इस भेद चतुष्टय का अर्थ न स्वीकार नहीं किया । डा० सत्यदेव चौधरी ने इस उपक्षा क य कारण मान हैं एक यह कि लोक म ऐसी नारियो का दूरे निकालना असंभव नहीं ता अत्यन्त कठिन अवश्य ह जिनपर पद्मिनी आदि क सभी गुण पूण रूप स घटित होने क कारण उह इन विगिष्ट नामा स अभिहित किया जा सक । और दूसरा कारण यह कि एक विभाजन का इसनिए उपक्षा मिली कि काय नाटकवादि लक्ष्यग्रथों में भी ऐसी नायिकाएँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं ।<sup>३</sup> हमारे विचार म य कारण गिणिल हैं । नायिकाया के आदर्श नखनिखगत लक्षण भी मिलना कठिन ही ह । इन नायिकाओं क निरूपण म नखनिख वणन में सामान्यत माय अगा क अतिरिक्त गुप्त अंगो की भी माप तौल दी गहती ह जो एक विराट नमता स सम्बद्ध ह । मदन मन्दिर, मदन जल आदि काव्य में अदलीलता उत्पन्न कर सकत ह । साथ ही शृंगाररस के परिपाक म एनका मोघा सम्बन्ध भी नहीं है । उसम मानसिक स्थितियो तथा उमक चोतक हाव भावा क ही महत्त्वपूण स्थान है । कणव न इसको स्वीकार किया है । एनका एक कारण यह प्रतीत होता है कि कामशास्त्रीय श्रोत कशव को विपे प्रभावित करता रहा । साथ ही उहोने लक्षण निरूपण म गारीरिक विपत्ताया क निरूपण मे मर्यादा दृष्टि रखी है । एनकी वासना या रति सम्बन्धी रुचिया और प्रतिक्रियाया पर विगप बन दिया है । इससे उनकी शृंगार रमानुकूलता मिद्ध हो जाती है । इस सम्भ म यह और उल्लेखनीय है कि रमिक भक्ति का साहित्य और उसक निए बना भक्तिकाय शास्त्र इसका अधिकाग स्वाकृत कर चुका था । श्रीकृष्ण को एक वार कामकेलि विगारद स्वीकार कर चुकन क बाद उम साहित्य म सब कुछ की समाई हो चुकी थी । कणव अपनी रमिकप्रिया का उस रस-साहित्य क लिए भी बनाना चाह रह थ । अत उहोने कामशास्त्रीय तथा मान्दित्यशास्त्रीय परम्पराया म चल आत हुए एन निरूपणों को अपने निरूपण म गहज स्थान दे दिया ।

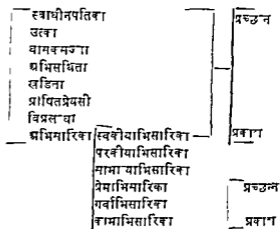
सामाजिक बर्णन क अनुसार नायिकाया का विभाजन प्राय सभी आचार्यों ने स्वीकृत किया है । भरत न वाह या (कुनीना) आभ्यन्तरा (वर्णा) और बाह्य आभ्यन्तरा

१ डा सत्यदेव चौधरी गिनी रीतिपरंपरा के प्रमुख आचार्य, पृ० ४२

२ रमनायुनिधि ८११ १६

३ गिनी रीति परंपरा क प्रमुख आचार्य पृ० ४०

३ अथस्यानुसार→



४ गुणानुसार→

उत्तमा मध्यमा अधमा
--------------------------

कविवर ने इन नायिका भेदा का गुणन फल अतः म ३६० दिया है।<sup>१</sup> इस गुणन फल का यो स्पष्ट किया जा सकता है

स्वकीया = ३ × ४ प्रकार = १२ १२ + २ परकीया = १५ १५ + १ सामाया = १५ १५ × ६ = १२० १२ × ३ गुणानुसार = ३६ । यह कविवर का भेद निरूपण एक मिश्रित परम्परा का प्रतिनिधित्व करता है। कामगास्त्र और काव्यगास्त्र दोनों ही स्रोतों से उद्धान सामग्री ली है। कामगास्त्र में पदिसंख्ये चार नायिकाओं का विवरण दिया है। वाल्म्यायन ने पुरुष स्त्री जाति पर विचार किया है।<sup>२</sup> पर उमम इन चार नायिकाओं का नामोल्लेख नहीं मिलता मृगो बहवा और हृस्तिनी तो हैं।<sup>३</sup> रतिरहस्य में उक्त चारों भेदा का उल्लेख मिलता है। इस ग्रंथ के कर्ता कविकोक पंडित ने नटिकश्र्वर को इस विभाजन का प्रवर्तक माना है।<sup>४</sup> रतिरहस्य पर आधारित परवर्ती कामगास्त्रीय ग्रंथों में भी जात्यनुसार चतुर्विध विभाजन है।<sup>५</sup> जहां तक काव्यगास्त्रीय क्षेत्र का सम्बन्ध है सत अक्षरगाह ने इस भेद का नवप्रथम स्वीकार किया। श्रीकृष्ण कवि ने भी इनका उल्लेख किया है। हिंदा के आचार्यों में नवप्रथम कविवरदास ने इनका स्वीकार किया।<sup>६</sup> जमवत

१ रामकृष्ण ७।१३

कामन्द १६।१

—नी

४ रामकृष्ण अक्षरविचार १ १२६

५ —

६ अक्षरगाह १।१० १६ अक्षरगाह ६ ६

कविवरनी १५

७ रामकृष्ण ३।१

सिंह न भाषाभूषण म दव न रसविलाम म, भवानीविलास और सुखसागरतरंग म इन भद्रा की चचा की ह ।<sup>१</sup> सोमनाथ ने इनपर विस्तार से लिखा ह ।<sup>२</sup> चित्तमणि ने अक्षयशाह की शृंगारभङ्गरी की हिन्दी छाया व द्वारा इस प्रकरण से रीतिकालीन आचार्यों को अवगत करा दिया था ।

इन विभाजन का आधार नारी की शारीरिक तथा प्राकृतिक विभक्तताएँ हैं । इनमें से कुछ जन्मानुगत विभक्तताएँ भी हैं और कुछ अर्जित भी हैं । इनके लक्षणों में कुछ अश्लीलता भी आ जाती है । शृंगाररस व परिपाक का दृष्टि से ये विशेषताएँ विभक्त उपयोगी नहीं हैं । सम्भवतः इसीलिए काव्याशास्त्र के कुछ आचार्यों को छोड़कर इस भेद चतुष्टय को अग्रा ने स्वीकार नहीं किया । डॉ० सत्यदेव चौधरी ने इस उपक्षा के ये कारण माने हैं— एवं यह कि लोक में ऐसी नारियाँ का दूरे निकालना असंभव नहीं तो अत्यन्त कठिन अवश्य है जिनपर पद्मिनी आदि के सभी गुण पूर्ण रूप से घटित होने के कारण उन्हें इन विभक्त नामों से अभिहित किया जा सके । और दूसरा कारण यह कि इन विभाजन को इसलिए उपक्षा मन्त्री कि काव्य नाटकादि लक्ष्यग्रथों में भी ऐसी नायिकाएँ दृष्टिगोचर नहीं होतीं ।<sup>३</sup> हमारे विचार से ये कारण गिथिल हैं । नायिकाशास्त्र व आदर्श नखशिखमत्त लक्षण भी मिलना कठिन ही है । इन नायिकाओं के निरूपण में नखशिखमत्त वर्णन में सामान्यतः माय अर्णों व अतिरिक्त सुन्दर अंगों की भी माप तोल दी रहती है जो एक विराट् नग्नता से सम्बद्ध है । मदन मन्दिर, मदन जन आदि का ये भेद श्लीलता उत्पन्न कर सकते हैं । साथ ही शृंगाररस व परिपाक में उनकी भीषा सम्बन्ध भी नहीं है । उसमें मानसिक स्थितियों तथा उसके द्योतक भाव भाषा व ही महत्त्वपूर्ण स्थान है । कर्णव ने इसको स्वीकार किया है । इसका एक कारण यह प्रतीत होता है कि कामशास्त्रीय स्रोत कर्णव को विशेष प्रभावित करता रहा । साथ ही उन्होंने लक्षण निरूपण में शारीरिक विभक्तताओं व निरूपण में मर्यादा दृष्टि रखी है । उनकी वामना या रति सम्बन्धी रुचियाँ और प्रतिक्रियाओं पर विभक्त बत दिया है । इससे उनकी शृंगार रमानुकूलता मिट्टी हो जाती है । इस सन्दर्भ में यह और उल्लेखनीय है कि रमिक भक्ति का साहित्य और उसके लिए बना भक्तिकाव्य शास्त्र इनका अधिकार स्वीकृत कर चुका था । श्रीकृष्ण को एक बार कामकेलि विगारद स्वीकार कर चुकने व बाद उस साहित्य में सब कुछ की ममाई हो चुकी थी । कर्णव अपनी रमिकप्रिया का उस रम साहित्य के लिए भा बनाना चाह रहे थे । अतः उन्होंने कामशास्त्रीय तथा साहित्यशास्त्रीय परम्पराओं में चल आते हुए इन निरूपणों को अपने निरूपण में सहज स्थान दे दिया ।

माभाजिक व घन व अनुसार नायिकाओं का विभाजन प्रायः सभी आचार्यों ने स्वीकृत किया है । भक्त नवाह या (कुलीना) आभ्यन्तरा (व्या) और बाह्य आभ्यन्तरा

१ डॉ० सत्यदेव चौधरी, हिन्दी रीति-परम्परा व प्रमुख आचार्य, पृ. ४२३

२ रमपाद्यनिधि ८।१ १६

३ हिन्दी रीति परम्परा व प्रमुख आचार्य पृ. ४०

(वश्यावृत्ति त्याग कर प्रेमी व साथ रहनवात्री) भद स्वीकार किए हैं।<sup>१</sup> इनम स्पष्ट रूप से परकीया को स्वीकार नहीं किया गया। रुद्रट ने भी इस त्रिविध वर्गीकरण को स्वीकार किया है।<sup>२</sup> भोज ने पुनभू को जाडकर चार भद कर दिए हैं।<sup>३</sup> विश्वनाथ ने इनको स्वीकार किया पर स्वकीया के भद प्रभद म वद्धि की। भानुमिथ व अनुसार स्वकीया परकीया और सामाया नायिकाए प्रमुख हैं।<sup>४</sup> रूपगोस्वामी ने वचन स्वकीया और परकीया को स्वीकार किया है। सामाया को नहीं।<sup>५</sup> केगव ने भी स्वकीया को विस्तार देते हुए परकीया को भी निरूपित किया है। सामाया का माहित्यगास्त्रीय परम्परा का पालन करते हुए उल्लेख कर हरिशृंगार व लिए उस अस्वीकार कर दिया है। अत केगव इस विषय म गोस्वामी आदि आचार्यों व निकट हो जाते हैं।

जहा तक इनक उपभदो की बात है इनम आचार्यों म विगप अंतर नहीं रह जाता। स्वकीया को उहाने मुग्धा मध्या प्रीता—तीन भदो म माना है। यह वर्गीकरण भी प्राय सभी आचार्यों को मान्य है। हिंदी व आचार्यों ने भी इस भद पद्धति को स्वीकार किया है। इस वर्गीकरण का आधार रति विकास या रति कौगल का विकास है।

केगव व अनुसार मुग्धा स्वकीया चार प्रकार की हैं नवलवधू नवधोवना नवलप्रनगा ल जाप्रायरति।<sup>६</sup> संस्कृत व आचार्यों म यह वर्गीकरण समान नहीं मिलता। केगव और कुछ प्रमुख आचार्यों की तुलनात्मक तालिका इस प्रकार हो सकती है

नायिका	केगव	धनजय	शिंगभूपात	विश्वनाथ	रूपगोस्वामी
नवलवधू	+	×	×	×	×
नवधोवनाभूषिता	+	नवधयमा	+	प्रथमावतीण धोवना	नवधया
नवन अनगा	+	नयकामा	+	प्रथमावतीण मदनविकारा	नयकामा
ल जाप्रायरति	+	×	सग्रीड मुरतप्रयत्ना	समधिक न जावती	सग्रीडरता प्रयत्ना

१ नाग्यरात्र २४।१६२ १४।

२ काव्यानकार १२।१७ ७

३ नाट्यकारा राघवन ५ ३३

४ माहित्यगास्त्रि ७

५ रत्नमन्त्री नायिकाकरण

६ उच्चरनीलमणि

७ रुद्रट काव्यानकार १२।१७-८ विश्वनाथ शा १ १६-१८ भानुमिथ रसवती  
नर्तक मन्त्रकरण

८ विश्वनाथ कवित्तकवच ५। १७-१८ विगम रमरान १३ भानुनाथ रमधार्पनिधि  
८। ४ अ

९ कवयप्रयत्ना, १२ १ १० दृष्ट १७

नायिका	केशव	धनजय	निगभूपाल	विश्वनाथ	रूपगोस्वामी
रतिवामा	+	+	+	+	+
मृदुकाया	×	+	+	+	रोपकन वात्पमीन
त्राघादभाषणरत्ना	+	×	+	+	मानविमुखी

(यहां × चिह्न अनुलग्न का और + चिह्न उल्लेख का सूचक है।)

मुग्धा के भेद प्रभेद की यह एक परम्परा है। कर्मतांत्रिका से यह स्पष्ट होता है कि केशव की नववधू किना आचार्य ने अपने वर्गीकरण में सम्मिलित नहीं की। वस्तुतः नववधू भी कौटुम्बिक प्रेम प्रसंग में एक मधुर स्थान रखती है। हिन्दी के आचार्यों में देव ने केशव का अनुसरण किया है। उक्त वर्गीकरण में दृष्टि नायिका के वय त्रिकाम और रति विकास पर रही है। देव ने नववधू की वय १३ वर्ष मानी है। मतिराम ने नववधू भेद का तो स्वीकार नहीं किया पर उत्साहरणों में इस शब्द का प्रयोग अवश्य मिलता है साथ साथी के नई दुलही।<sup>१</sup> इस प्रकार नववधू की कल्पना रीतिकान्तिन आचार्यों में घनी रही। केशव ने सम्भवतः वय क्रम की आरम्भिक स्थिति में नववधू भेद का स्वीकार किया है। नवयौवनाभूषिता से पहले इसकी रखने का कारण यह हो सकता है कि हिन्दू समाज में बाल विवाह प्रचलित था। इस अवस्था से ही यौवन की विरल प्रसफुटित होना आरम्भ होता है। इससे वधू की बाल अवस्था का बोध होता है। नवयौवना के उदय से यह दृष्टि और भी स्पष्ट हो जाती है। बाल्यावस्था का पारकर जा यौवनावस्था में प्रवेश कर रही है वही नवयौवना है।<sup>२</sup> सम्भवतः अन्य आचार्यों ने इस बालवधू का इसलिए छोड़ दिया है कि रति की अपरिपक्वतावस्था में रतिरमपरिपाक सम्भव है। इसलिए अन्य आचार्यों ने वय मरिच से आरम्भ करना आवश्यक समझा। नववधू में तत्कालीन हिन्दू बाल विवाह की भूलक मिलती है। यह सम्भव है कि परिस्थितियों के अनुकूल केशव ने यह भेद स्वयं ही दिया है। यह वर्गीकरण एक सुनिश्चित परम्परा के अनुरूप है।

ऊपर का तानिका में नामभेद भी मिलता है। उदाहरण में भी अंतर मिलता है।<sup>३</sup> पर वर्गीकरण की प्रवृत्ति एक-सी ही दिखलाई देती है। एक और परम्परा वर्गीकरण के विषय में हम मिलती है। विश्वनाथ तक उक्त मुग्धा भेद की परम्परा चलती रही। पीछे भानुदत्त में एक नवीन वर्गीकरण मिलता है।<sup>४</sup>

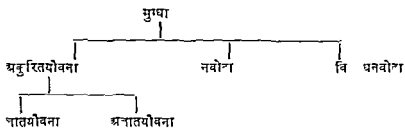
१ रमरान ४

२ रत्नप्रिया ३१०

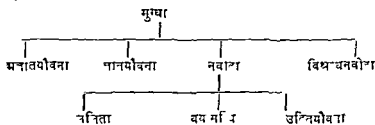
नायक आगे लक्ष्य निरूपण।

३ रत्न (जरी) नायिकाप्रकरण के आधार पर





एस वर्गीकरण का आधार कुछ सूक्ष्म दिखाई देता है। इसका आधार लज्जा तथा भय है। पातयोवना में तो लज्जा होती है पर अनातयोवना में लज्जा का संचार नहीं है। नवोत्पा लज्जा और भय का डोल में भूलती है।<sup>१</sup> भय सुरतप्रिया के धनान से जाय है।<sup>२</sup> एन दोना से डरी हुई नायिका रति से बिरत-सी दिखाई देती है। जो वधू पहले पति की रतिक्रम में कुरकमा समझती थी अब अनुभव में उसपर कुछ विश्वास करने लगी है। पर अभी लज्जा नहीं छूटी।<sup>३</sup> एस प्रकार वयत्रम का आधार पर हुआ वर्गीकरण छूटने लगा। इस वर्गीकरण में पीछे का आचार्यों का विषय रूप से प्रभावित किया। हिंदी के आचार्यों में कृपाराम ने मुग्धा का वर्गीकरण एम प्रकार दिया है<sup>४</sup>



यह वर्गीकरण एक भिन्न जुन आधार पर हुआ है। कवि ने जहाँ प्रथम रति सम्बन्धी नायिका की लज्जा और भय पर आधारित वर्गीकरण का ग्रहण किया है वहाँ वयमत्रि में वय का आधार भा लिया है। चिन्तामणि ने भी नवनवधू को स्वीकृत नहीं किया। अविन्तियोवना अविदितकामा विन्तियकामा विन्तियकामयोवना नवाङ्गा विधनवोत्पा और कामलकोपा—एतौन मुग्धा नायिका कथं ६ भूत मान है।<sup>५</sup> चिन्तामणि का अनुमान मुग्धा वयमत्रि पर स्थित जाना है।<sup>६</sup> बंगव ने यह स्थिति नवयोवन भूविना की मानी है।<sup>७</sup> एमम यह स्पष्ट है कि बंगव भी भानुजित का आधार हा लकर

१ रसुत्पा।

२ अनात ४

द्विन्तियोवना का आधार पर

४ अविन्तियोवना ५।३।११

५ जहाँ जहाँ अविन्तियोवना का आधार पर

६ एमम वयमत्रि में भी वयमत्रि का आधार है। अविन्तियोवना ५।३।११

७ अविन्तियोवना ३।३

चल पर यह आधार भी मिश्रित ही है। 'कोमलकोपा वस्तुतः धनजय की कोपमृदु मुग्धा ही है। मतिराम न रसमजरी व अनुमार अनातयोवना और नातयोवना—मुग्धा व दा भेद माने हैं।<sup>१</sup> फिर नवोत्त और विश्वधनवोत्त भी स्वीकार की हैं।<sup>२</sup> रसलील ने नवलवधू भेद स्वीकार किया है।<sup>३</sup> पर स्थिति में भेद है। सोमनाथ ने भी रसमजरी का ही अनुमरण कर मुग्धा के अनातयोवना और नातयोवना दो भेद माने हैं।<sup>४</sup> होने वालपन व विवाह की चर्चा अवश्य की है। नवोत्त वही बालविवाह के कारण उज्जा और भय में युक्त रहती है। वगव न रस स्थिति से कुछ पूर्व नवलवधू को रखा है। बालविवाह उनकी दृष्टि में था। दास ने भी रसमजरी के अनुमरण पर अनातयोवना नातयोवना तथा विश्वधनवोत्त और विश्वधनवोत्त भेद स्वीकार किए हैं।<sup>५</sup>

निष्कप रूप में कहा जा सकता है कि इस वर्गीकरण की परम्पराएँ हैं एक पुराने आचार्यों की जो विद्वनाथ पर जाकर समाप्त होती हैं। दूसरी नवीन आचार्यों की जो भानुमिश्र में आरम्भ होती है। वगव ने पहली परम्परा का अपनाया तथा प्रथम आचार्यों ने दूसरी की। कहीं-कहीं मिश्रित आधार मिलता है। देव ने वगव की भाँति वर्गीकरण दिया है। प्रथम आचार्यों ने भी लक्षण निरूपण में नवलवधू का प्रयोग किया है।

वगव ने मध्या व चार भेद किए हैं आद्ययोवना प्रकृतभवचना प्रादुभूत मनीभवा सुरतिविचित्रा। फिर इनको धीरा अधीरा धीराधोग के रूप में स्वीकार किया है। मुग्धा की स्थिति पार कर नायिका पूरा यौवन और कामवामना से युक्त हो जाती है। उम सुरतश्रीहा में रुचि होने लगती है।<sup>६</sup> अतः एव वर्गीकरण का आधार यौवन और बिलाम की विधि है। धनजय ने उद्योवना नगा और मोहा तसुरतक्षमा—य दो भेद मध्या के स्वीकार किए हैं। इनमें से प्रथम वगव की आद्ययोवना ही है। वगव द्वारा परिगणित पाँच तीन भेदों को धनजय ने स्वीकार नहीं किया। मया व भेदों का विश्वनाथ ने या किया है विचित्रसुरता प्रकृतभवना प्रकृतयोवना इत्यप्रगतभवना तथा मध्यमश्रीडिता।<sup>७</sup> इनमें से मध्यमश्रीडिता को छोड़कर गेप चार वगव को भाँप है। भानुदत्त ने मध्या व भेदों का छोड़ दिया है। गिगभूषाल ने मध्या व केवल तीन ही भेद माने हैं समानलज्जामदना प्रोद्यत्तारण्यगालिनी मोहा तसुरतक्षमा।<sup>८</sup> एव प्रकार

१ रमरान १७

२ बही २४ २७

३ मुग्धा भेदों को कल्पना इन प्रकार है अतुरितयोवना, शाययावना नवलवधू (= हान, अज्ञान) नवलवधू (= प्रविष्टि मिश्रित) नवलवधू (= नगना विभ्रमनवाग लनायकना रतिनायिका) — प्रमुखाय न माल, मन्माया नादित्य म नायिका भेद, १० ४ ६

४ पराधीन रति लाज भय ना निव म मन हाय ।

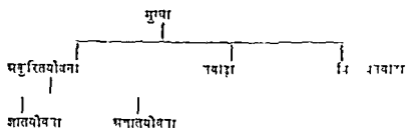
बालपनै ब्याहा सु या नाग बरनन साय ॥ रमपीरूपनिधि ८२

५ रसलील २४, २५

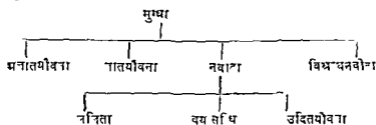
६ दरारूपक ११६

७ माडियन्पण्य ११ २

८ रमाणयनुसावर १ २३



इस वर्गीकरण का आधार कुछ सूक्ष्म दिक्कतें दता है। इसका आधार लज्जा तथा भय है। शातयोवना में तो लज्जा होती है पर अशातयोवना में लज्जा का सवार नहीं है। नवाडा लज्जा और भय का डाल में नतनी है। भय अकुरितयोवना का अंगान से गय है। इन दोनों से दरी हुई नायिका रति से अकुरितयोवना दिक्कतें दती है। जो वधू पहल पति को रतिक्षण में अकुरितयोवना समझती थी अथ अकुरितयोवना से उमपर कुछ विश्वास करने लगी है। पर अभी नज्जा नहीं छूटा। इस प्रकार वयस में अकुरितयोवना पर हुआ वर्गीकरण छूटने गया। इस वर्गीकरण में पीछे के आचार्यों का विष्णु रूप से प्रभावित किया। हिंदी के आचार्यों में नयाराम ने मुग्धा का वर्गीकरण इस प्रकार दिया है १



यह वर्गीकरण एक मिन जुदा आधार पर हुआ है। कवि ने जहा प्रथम रति सम्प्रदायी नायिका की लज्जा और भय पर अकुरित वर्गीकरण का ग्रहण किया है वहा वयसधि में वयस का आधार भी लिया है। चित्तमणि ने भी नववधू को स्वीकृत नहीं किया। अकुरितयोवना अकुरितकामा अकुरितकामा अकुरितकामयोवना नवाडा विश्रान्त नवोत्तरी और कोमलवोवना—उन्होंने मुग्धा नायिका के ये ६ भेद माने हैं। चित्तमणि के अनुसार मुग्धा वयसधि पर स्थित होती है। १ वेणव ने यह स्थिति नवयोवन भूषिता की मानी है। २ इससे यह स्पष्ट है कि वेणव भी भानुदत्त का आधार ही लेकर

१ रममन्त्री

२ रसराम ७४

३ अकुरितयोवना का आधार पर

४ कविवर्यकल्पतरु ५।१।८१ २

५ पान चोवन अकुरित या मुग्धा वर गारि ।

हुई अकुरित रति में ती वयसधि निहारि ॥ कविवर्यकल्पतरु ५। ७८

६ रमिकप्रिया ३।२

चल पर यह आधार भी मिश्रित हुआ है। 'कीमलकोपा वस्तुतः धनजय की कोपमृदु मुग्धा ही है। मतिराम ने रसमजरी के अनुमरण अनातयोवना और नातयोवना—मुग्धा के दा भेद माने हैं।<sup>१</sup> फिर नवोटा और विश्वघनवोटा भी स्वीकार की हैं।<sup>२</sup> रसनीन ने नवलवधू भेद स्वीकार किया है।<sup>३</sup> पर स्थिति में भेद है। सामनाथ ने भा रसमजरी का ही अनुमरण कर मुग्धा के अनातयोवना और नातयोवना दो भेद माने हैं। इहीन वाक्यन के विवाह की चर्चा अवश्य की है। नवोटा भी बालविवाह के कारण नया और भय से युक्त रहती है।<sup>४</sup> कण्व ने 'म स्थिति से कुछ पूर्व नवलवधू को रखा है। बालविवाह उनकी दृष्टि में था। दास ने भी रसमजरी के अनुमरण पर अनातयोवना नातयोवना तथा अविश्वघनवोटा और विश्वघनवोटा भेद स्वीकार किए हैं।<sup>५</sup>

निष्कप रूप में कहा जा सकता है कि इस वर्गीकरण की परम्पराएँ हैं एक पुराने आचार्यों की जो विद्वानाथ पर जाकर समाप्त होनी हैं। दूसरी नवीन आचार्यों की जो भानुमिश्र में आरम्भ होती है। कण्व ने पहली परम्परा का अपनाया तथा अथ आचार्यों ने दूसरी को। वहीं वहीं मिश्रित आधार मिलता है। दत्त ने कण्व की भाँति वर्गीकरण किया है। अथ आचार्यों ने भी लक्षण निरूपण में नवलवधू का प्रयोग किया है।

कण्व ने मध्या के चार भेद किए हैं आरुढयोवना प्रकल्पवचना प्रादुभूत मनोभवा सुरतिविचित्रा। फिर उनकी धीरा अधीरा धीराधीरा के रूप में स्वीकार किया है। मुग्धा की स्थिति पार कर नायिका पूरा जीवन और कामवामना से युक्त हो जाती है। उम सुरतश्रीदा में रुचि होने लगती है।<sup>६</sup> अतः एक वर्गीकरण का आधार जीवन और विलास की विधि है। धनजय ने उद्योगीवनायगा और मोहा तसुरतक्षमा—ये दो भेद मध्या के स्वीकार किए हैं।<sup>७</sup> उनमें से प्रथम कण्व की आरुढयोवना ही है। कण्व द्वारा परिगणित पाँचों भेदों के धनजय ने स्वीकार नहीं किया। मया के भेदों का विद्वानाथ ने या किया है विचित्रसुरता प्रकल्पवचना प्रकल्पयोवना स्वरप्रगल्भवचना तथा मध्यमश्रीद्विता। इनमें से मध्यमश्रीद्विता को छोड़कर पाँचों चार कण्व को मान्य हैं। भानुमिश्र ने मध्या के भेदों का छोड़ दिया है। गिरभूपाल ने मध्या के कण्व तीन ही भेद माने हैं समाप्त-जामदना प्रोद्यताख्यगातिनी मोहा तसुरतक्षमा (६) के प्रकार

१ रसमजरी १७

२ बहा २४ २७

३ मुग्धा भेदों की कल्पना इन प्रकार है अतुरितयोवना शोकयोवना नवलवधू (= हस्त अक्षान्त), नवलधनगा (= अविश्व घनवोटा) नवलवधू (= नया विश्व-धनवोटा) ल-नायिका रसिका (नायिका) — प्रमुग्धा ल-मौल्य-मनमाया मा-द्विज-म-नायिका भेद पृ ४०

४ पराधीन रति लान भय या नियम-मन हाथ।

बालपने च्याही मु या नया भयान साय ॥ रसपीशु-निधि ८५

५ रसमजरी २४ २५

६ दरारूपक १२६

७ साहित्य-पत्र ३११०

८ रसमजरी १० २३



रतिप्रोत्तिमनी और मुग्धनिमोत्परवणा ।<sup>१</sup> मतिराम न द्विविध और चतुर्विध दाना वर्गों  
 वर्णों का छोड़कर प्रीत्या में बचन कामकला व ज्ञान की स्थिति मानी है ।<sup>२</sup> दव न  
 रमदिलास म प्रीत्या व लुभापति रतिकोविद्या आश्राप्ता सविभ्रमा—चार भू मान  
 हैं । इम वर्गीकरण म बगव का अनुकरण स्पष्ट है । रसनीन न भी इम प्रकार का  
 वर्गीकरण स्वीकार किया है । उन्मत्तयौवना मत्नमत्ता लुभापति और रतिवादिता ।  
 एम प्रकार वर्गीकरण क विषय म दृष्टिकोण का भ्रमण विकास मिलता ह । पहन बवल  
 योवन और कामवामना क विकास क आश्राय पर वर्गीकरण रहा पीछे कौटुम्बिक और  
 सामाजिक दृष्टि का भी समावेश हुआ । स्वकीया प्रीत्या पति क ममान हा पतिकुन क  
 अय व्यक्तिता का आश्रय करती है ।<sup>३</sup> एम वधूगत प्रीत्या क बिना स्वकीया ष्टि पूण  
 नों हा सकती । यही लुभापति का बीज है । एम ष्टि म बगव विश्वनाथ म भिन्न  
 हा जान हैं । अथन एन मभी विकास उभार भाव तथा समाजमम्मत् गुणा स नायिका  
 प्रिय पर नियन्त्रण करती है । इम प्रकार आश्रयितानायिका का आधार उनका जन  
 विजयी प्रभाव है । प्राय मभी आचार्यों ने प्रीत्या क धीराधीराणि तीन भू स्वीकार  
 किए हैं ।

बगव क परकीया-सम्बन्धी दृष्टिकोण का हम पहल निरूपण कर चुके हैं ।  
 परकीया क भेदोपभेदा की और बगव न कुछ उदासीनता प्रकट की है । परकीया  
 क दो भेद प्राय मान्य रहे—विवाहिता और अविवाहिता । बगव ने उन्मत्त और अनूदा  
 क रूप म इन्हें स्वीकार किया है । इनक प्रभाव की आश्रय भी उन्मत्त दृष्टि डाली  
 है जिन्हें देखि बम होत है सतत मूढ अमूढ । पर सम्भवत उसकी असामाजिक  
 स्थिति को ध्यान म रखकर बगव न इसकी उपेक्षा की है और इमक उपभेदा को  
 नहीं गिनाया । एन्ट भोज भानुत्त रूपगोस्वामी तथा विश्वनाथ न इन भेदो को  
 स्वीकार किया है । हिन्दी क कई आचार्य भी इन्हें स्वीकार करते हैं । कृपाराम ने  
 उन्मत्त अनूदा भेद दिए हैं ।<sup>४</sup> गाय ही उपभेद भी किए हैं ।<sup>५</sup> चिन्तामणि ने भी उपभेदा  
 सहित उक्त दोनों भेद मान हैं । मतिराम ने भी ६ उपभेदो क साथ इन्हें माना  
 है ।<sup>६</sup> मोमनाथ ने इन भेदन्त्य क साथ परीत्या क ६ भेद माने हैं ।<sup>७</sup> भिखारीदास ने  
 भी अपने रसमाराग म इन दा प्रमुख भेदा क साथ उपभेद दिए हैं । यह पद्धति  
 भानुमिश्र स सम्बन्धित है । भानुमिश्र न परकीया क अतगत गुप्ता मुदिता लक्षिता

१ कविकुलकल्पतरु १।१।१०३

२ रमराज ३३

३ परावयथावली पृ १६, छन्द ५७

४ काव्यालंकार अ १० सरस्वतीदण्डाभरण अ ५ रसमानी उन्मत्तनीलरथि १०२०,  
 परि ३

५ दिनतरमिथी

६ प्रभुन्त्याल मीनल अतमाया माहिर्य में नायिका भेद पृ २६

७ कविकुलकल्पतरु पंचम अध्याय

८ रसराज छन्द ६५ ६ रमपीयूयनिधि ६।७

कुण्डा अनुगमना और विख्याता नामक ६ भेद लिए हैं। हिन्दी के प्रायः सभी आचार्यों ने इन उपायों का किया है। बंगल ने नाम सामाजिक आदर्शों की प्रकृति पाई है। कुण्डा धार्मिक उपाय सामाजिक व्यवस्था तथा। धर्म उपायों को प्रोत्साहन भरी उपाय कर दी। नाम वर्गीकरण में भी ही परम्पराएँ रहीं—एक में मुख्य भेदा का ही किया गया है। दूसरी में उपाय। का भी निष्पन्न किया गया है। बंगल का मध्यम पद्धती परम्परा है।

बंगल ने इन सभी नायिकाओं को आठ भागों में विभाजित किया है। स्थापनापरिणत उत्कृता (उत्कृता) वाग्यगाम्भीर्य अभिमतिगा गहिता प्रोपिनप्रेमनी विप्रा या अभिसारिका।<sup>१</sup> इन भेदों का व्याख्यात्मक और वाग्म्यात्मक परम्पराएँ बहुत प्राचीन हैं और रसिक साहित्य तथा उपाय वाग्म्यात्मक में यथाप्यता प्राप्त कर चुके हैं। नायक के साथ मयोग अथवा विषय का व्यवस्था के अनुसार भरत ने नायिका के आठ भेदों की स्वीकार किया है। भानुदत्त ने प्रवत्स्यत्पत्तिका—एक नवा भेद और जोड़ा है।<sup>२</sup> हिन्दी के आचार्यों में कृष्णराम ने इन भेदों की सख्या दस तक पहुँचाई है।<sup>३</sup> दस में रसविज्ञान में महत्ता के ही रगी है। रसलीन ने रसप्रयोग में ८ को मानी है। नामनाथ ने प्रसिद्ध आठ नायिकाएँ तो मानी ही हैं साथ ही प्रवत्स्यत्पत्तिका और आगमिष्यत्पत्तिका को मानकर भेदसंख्या फिर दस स्वीकार की है।<sup>४</sup> आठ अतिरिक्त नायिकाओं में स प्रथम का साथ ही भानुदत्त की रसमञ्जरी है दूसरी का उत्तर मसूत्र के किसी आचार्य ने नहीं किया। दास ने प्रसिद्ध स्वाधीनपत्तिका आदि आठ भेदों के साथ अतिरिक्त दो भेदों का भागिनाया है। इन भेदों की ८ १ की तीन धाराएँ चली। मसूत्र में प्रायः आठवाँ परम्परा ही प्रचलित रही। बंगल ने दूरी प्राचीन परम्परा को अपनाया भानुदत्त का अनुवर्तन अथवा हिन्दी आचार्यों ने किया।

गुण के आधार पर नायिका के तीन भेद बंगल ने और माने हैं— उत्तमा मध्यमा और अधमा।<sup>५</sup> भरत ने भी प्रकृति के आधार पर यह वर्गीकरण किया है।<sup>६</sup> भोज ने भी इन गुणों को माना है। प्रायः आचार्य इन भेदों की स्वीकार करते रहे हैं। हिन्दी में चित्तमणि मतिराम रसलीन सोमनाथ दास आदि ने इन तीनों का निरूपण किया है। इस प्रकार गुण या प्रकृति के अनुसार नायिका भेद की प्राचीन एवं स्वीकृत परम्परा मिलती है। बंगल ने इन भेदों को प्रस्तुत करते हुए इसी परम्परा का परिपालन किया।

१ उत्तमभावली प्रथम खण्ड

२ प्रवत्स्यत्पत्तिका नवमी नायिका भविष्यत्पत्तिका। रसमञ्जरी  
प्रभुपाल मीनल अरुणाया साहित्य में नायिका भेद पृ. ४

४ रससारा ११४

५ उत्तमभावली १ ५ ४ छ. २१

६ नाट्यशास्त्र १।१६ ४०

७ मरुतीकटाभरण ५।१ ०

## जात्यनुसार नायिकाएँ

इस वर्गीकरण में नारी की सामाजिक और कौटुम्बिक स्थिति पर विचार नहीं किया गया है। उसके शरीर और स्वभाव की विशेषताओं को ही स्पष्ट किया गया है। इन विशेषताओं की दृष्टि से निम्न भेद किए गए हैं।

### पद्मिनी

पद्मिनी एक आदर्श नारी है। वेगव क अनुसार इसकी शारीरिक विशेषताएँ ये हैं सुगन्धित हृद्य स्वभावणा, तनु तनु तथा लोमरहित मृन्मदिर। उसकी रुचि और श्रम्यम अल्पता या सूक्ष्मता लिए होते हैं। भोजन, रोप, रति निद्रा तथा मान की मात्रा उमम अल्प होती है। बुद्धि विकसित और गज्जा सौंदर्य की द्विगुणित करनेवाली। स्वभाव से उत्तारहृदया और कोमला। स्वच्छ वस्त्र धारण करती है। ऐसी आदर्श नारी का प्रेम परम सुखद होता है।<sup>१</sup> जायसी ने पदमवास मत्तुलित शरीर तथा उमक अल्पाहार का उल्लेख किया है।<sup>२</sup> कामगास्त्रीय ग्रन्थों में इन नायिकाओं के गुणों की चर्चा मिलती है। अनुराग के लक्षण वेगव से मिलते हैं। उसके अंग प्रत्येक सुगन्ध आना चम्पा और स्वर्ण के वण की होना स्वल्प और लज्जा का सम्बन्ध अल्प भाजन अल्प निद्रा स्वच्छ वस्त्र धारण।<sup>३</sup>

हिंदी के कुछ अन्य आचार्यों ने भी पद्मिनी के गुणों की गणना की है। इनमें जसवंतसिंह (भाषाभूषण) देव सोमनाथ आदि के नाम लिए जा सकते हैं।<sup>४</sup> इन आचार्यों के नामने कावदास का ही आदर्श रहा होगा। काव ने रतिरहस्य के प्राचार पर अपना निरूपण किया है। सोमनाथ ने पद्मिनी का यह लक्षण किया है महज सुगन्धित शरीरवाली कनकवर्णा मृदुहासिनी, रोप, भोजन तथा रति में अल्परुचि।<sup>५</sup> यह लक्षण काव से मिलते-जुलते हैं।

उदाहरण के काव ने लक्षण के पूरक रूप में प्रस्तुत किया है। कुछ और गुणों को दिया गया है उमक हाव भाव मूक हाते हैं वह कोव की वारिका जसी हानी है आदि।<sup>६</sup> साथ ही उदाहरण में गणना के सभी गुण भी नहीं रखे गए ऐसा करना आवश्यक भी नहीं था। हा प्रभाव का उल्लेख किया है और संभवतः अभिलाष प्राप्त भाति।

१ केशवप्रयावली १ प ८ छन्द ३

२ चायमी प्रयावली ५ ८

३ अनुराग, संपादक जयशंकर विश्वनाथ लाहौर १६ ७ पृ० २३, २४, २५, २६

४ रसविनाम ५ ७ ६, ११, भवानीविलास २१ २२, २५, २६, सुगन्धामरतंग ४१, ४२

५ तथा रसपीरूपनिधि ८।१३ १५, १७ १६

६ रसप रूपनिधि ८।१३

७ मूक भूषि हार भाव काक वैसी वारिका। कावदास ज्ञाना १ पृ० ८ छन्द ४

८ वडा



कुलटा अनुगमना और विदग्धा नामक ६ भद दिए हैं। हिंदी के प्राय सभी आचार्यों ने उन उपभदा को दिया है। बंगव ने इनमें सामाजिक आदर्शों की व्युत्पत्ति पाई है। कुलटा आदि में उन्हें सामाजिक अपराध लगा। अतः उन्होंने इनकी तिरस्कार भरी उपमा कर दी। इस वर्गीकरण में भी दा ही परम्पराएँ रही—एक में मुख्य भेदा का ही दिया गया है। दूसरी में उपभदा का भी निरूपण किया गया है। बंगव का सम्बन्ध पहली परम्परा से है।

बंगव ने इन सभी नायिकाओं को आठ भागों में विभाजित किया है। स्वाधीनपतिका उत्कला (उत्का) वासकमज्जा अभिसंधिता सुद्धिता प्रोषितप्रेयसी विप्रलया अभिसारिका।<sup>१</sup> इन भूतों की काव्यशास्त्रीय और कामशास्त्रीय परम्पराएँ बहुत प्राचीन हैं और रसिक साहित्य तथा उसके काव्यशास्त्र में ये मायता प्राप्त कर चुके हैं। नायक के साथ समीप अथवा विषाग की अवस्था के अनुसार भरत ने नायिका के आठ भूतों को स्वीकार किया है। भानुदत्त ने प्रवत्स्यतपतिका—एक नया भूत जोड़ा है।<sup>२</sup> हिंदी के आचार्यों में कृपाराम ने इन भेदों की संख्या दस तक पहुँचाई है।<sup>३</sup> दश ने रसविलास में सत्या ८ ही रखी है। रसलीन ने रसप्रबोध में ८ ही मानी है। मामनाथ ने प्रसिद्ध आठ नायिकाएँ तो मानी ही हैं साथ ही प्रवत्स्यतपतिका और आगमिप्यतपतिका का मानकर भेदसत्या फिर दस स्वीकार की है।<sup>४</sup> अतिरिक्त नायिकाओं में स प्रथम का स्मृत तो भानुदत्त की रगमञ्जरी है दूसरी का उल्लस मस्कृत के किमी आचार्य ने नहीं किया। दास ने प्रसिद्ध स्वाधीनपतिका आदि आठ भेदों का साथ अतिरिक्त दस भूतों का भी गिनाया है। इन भूतों की ८ ८ १० की तीन धाराएँ चलीं। सम्बन्ध में प्रायः आठवाँ परम्परा ही प्रचलित रही। बंगव ने सभी प्राचीन परम्परों को अपनाया भानुमित्र का अनुवचन अथवा हिन्दी आचार्यों ने किया।

गुण के आधार पर नायिका के तीन भेद बंगव ने और माने— उत्तमा मध्यमा और क्षमा। भरत ने भी प्रकृति के आधार पर यह वर्गीकरण किया है।<sup>५</sup> भाज ने भा २२ गुण का माना है। प्रायः आचार्य इन भूतों का स्वीकार करते हैं। अतः मैं अतिरिक्त अतिरिक्त रसलीन मामनाथ दास आदि ने इन तीनों का निरूपण किया है। इन प्रकार गुण या प्रकृति के अनुसार नायिका भूतों का प्राचीन एक स्वीकृत परम्परा मिलता है। बंगव ने इन भूतों का प्रस्तुत करने में सभी परम्परों का परिपालन किया।

१ अतिरिक्त नायिकाएँ १७८५

२ अतिरिक्त नायिकाएँ जहाँ नायिका अतिरिक्त। रसलीन

अतिरिक्त नायिकाएँ अतिरिक्त नायिकाएँ अतिरिक्त नायिकाएँ १७ ४

३ रसलीन ११४

४ अतिरिक्त नायिकाएँ १७ ४ ५ ६ ७

५ अतिरिक्त नायिकाएँ ११३ ६०

६ अतिरिक्त नायिकाएँ ११ २

## जात्यनुसार नायिकाए

इम वर्गीकरण म नारी की सामाजिक और कौटुम्बिक स्थिति पर विचार नहीं किया गया है। उसक गौर और स्वभाव की विपत्ताओं का ही स्पष्ट किया गया है। इन विपत्ताओं की दृष्टि से निम्न नद किए गए हैं।

### पद्मिनी

पद्मिनी एक आदर्श नारी है। कर्णव क अनुसार इसकी गारीरिक विपत्ताए य हैं सुगंधित हममुग्य स्वणवणा तनु तनु तथा लोमरहित मदन मंदिर। उसकी रचि और श्रम्याम श्रल्पता या मूदमता त्रिए होत हैं। भोजन रोप, रति निद्रा तथा मान की मात्रा उमम अल्प होती है। बुद्धि विकसित और नज्जा सौंदर्य को द्विगुणित करनेवाली। स्वभाव स उत्तारहृदया और कोमला। स्वच्छ वस्त्र धारण करती है। एमी आदर्श नारी का प्रेम परम सुखद होना है।<sup>१</sup> जायमी न पदमवास मत्तुलित गरीर तथा उमक श्रल्पाहार का उत्तम किया है।<sup>२</sup> कामशास्त्रीय ग्रंथा म इन नायिकाओं क गुणों की चचा मिलती है। अनगरग क य नशण कर्णव स मिनत<sup>३</sup> उसक अग्र प्रत्यग स सुगंध आना चम्पा और स्वण क वण की होना म्वरूप और नज्जा का समवय अल्प भाजन अल्प निद्रा स्वच्छ वस्त्र धारण।<sup>४</sup>

हिंदी क कुछ अग्र आचार्यों न भी पद्मिनी क गुणा की गणना की है। इनम जसवन्मिह (भाषाभूषण) देव सोमनाथ आदि क नाम त्रिए जा सकत हैं। इन आचार्यों क मामने कर्णवर्ण का ही आदर्श रहा हागा। कर्णव न रतिरहस्य क आचार पर अपना निरूपण किया है। सोमनाथ न पद्मिनी का यह लक्षण किया है सहज सुगंधित गरीरवाली कनकवर्णा मृत्सूक्ष्मिनी, रोप भाजन तथा रति न अल्परचि।<sup>५</sup> यह नशण कर्णव स मिनत-जुलत हैं।

उत्तारहरण को कर्णव न लक्षण क पूरक रूप म प्रस्तुत किया है। कुछ और गुणा को त्रिया गया है उमक हाव भाव गून् जाने हैं वह कोक की कारिका जसी हानी है आदि।<sup>६</sup> साथ ही उत्तारहरण म लक्षण क सभी गुण भी नहीं रख गए एमा करना आवश्यक भी नहीं था। हा प्रभाव का उल्लेख किया है और स भवत अभिलाष नास भाति।

१ पशवप्रभावली १ प ८, छन्द २

२ जायमी श्रम्यवला ५० ० ८

३ अनगरग, सम्पात्क जयन्व विपत्तकार लाहार १६ ७, १ ३, श्लो० ८ ६

४ रमविनाम ५, ७ ६, ११ भवानीविलास ०१ १, २८, ३१, सुनगागरनग ४३४=

१/० तथा रसुधान्पूर्वार्थि ८१ १५, १७ १६

५ रमय यूपनिधि ८१३

६ गून् मूरि हान मर कोक नैमी कारिका। कर्णवद्विपत्ता १ ५० ८ छन्द ४

७ वडा

## चित्रिणी

यम नम म द्वितीय कोटि चित्रिणी नायिका की है। चित्रिणी नायिका की रचि कला विलास म हाती है। नत्य गीत चित्र कविता उम प्रिय हात हैं। उसका हृदय सुस्थित होता है। पर दृष्टि चञ्चल होती है। बहिरति म उमकी रचि होती है।<sup>१</sup> पदिमनी म रतिरचि ही कम हाती है। चित्रिणी म कामकलात्मक बहिरति म विनोप रचि पाई जाती है। मदन जा की मात्रा अधिक होती है। पदिमनी की भाति सार गरीर स ता सुग घ नहीं पर मुल स सुग घ आती रहती है। उमक गरीर की गध सबका भाती है।<sup>२</sup> मदन मंदिर आर गरीर अलोम तो नहीं पर चित्रिणी विरतलोमा अवश्य होनी है। इस प्रकार चित्रिणी और पदिमनी क बीच भेद का आधार सूक्ष्म है। तीन विगपताण ही उसे उसम अलग करती हैं कलाप्रेम बहिरति रचि और विरतलोमता। कवय के लक्षण अनगरग स मिलत है।<sup>३</sup> नत्य और बहिरति प्रेम रतिरहस्य क लक्षणा स मिलत हैं। सोमनाथ न इसके लक्षण कवय क समान ही लिए हैं।<sup>४</sup> पर मर्या कम है। तुलनात्मक तानिका यह है

	कलाप्रेम	अचलचित्तता	चञ्चलदृष्टि	बहिरति	सुरत	मुल	मिथ
				प्रेम	जता	सुगध	चित्र
					मिथ		प्रिय
कवय	नत्य गीत कविता	+	+	+	+	+	+
सोमनाथ	+	+	×	चित्र	×	×	+

यसम पात हाता है कि सोमनाथ कामगास्त्रीय मूल स्रोत की देग बिना ही चित्रिणी का निरूपण करत है। उसम परम्परा-पातन बटूत है। पूणता की ओर दृष्टि कम है। भित्तारीदास न भी इन उपभदों की चर्चा की है। पर उहान तो स्पष्ट कहा है कि काव्य म इनको स्थान दना अधिक उचित नहीं है।<sup>५</sup> फिर उनम आगा ही क्या की जा सकना है कि व इनक लक्षण निरूपण म पाय करेग।

## शशिनी

पदिमनी और चित्रिणी नायिकाया म शशिनी नितात भिन हाती है। काप

१ बहिरति महकाम पूर का उल्लेख त्रिग काली है। इमाने नारी भावन आलमन चुनन का अर्थ है। इनका कवन कामरूप में हुआ है। अधिकतर अर्थ

२ नयनानन्द कवि मय अचल विल सन राण।

बहिरति रति अति सुगन्ध सुगन्ध की सुक्ति।

विरत नाम तन मदन यह भावन मकल मुताम।

लिय विच लिय विचिना जेनदु कम्कणस। —रसिक ग

३ काव्य ग पृ ३ रत्ना १ ११

४ मयकवनकवय नयनानन्दविद्या। अदृष्टिकवयदृष्टिका दमनानरत्ना। रसिकग

५ रसिकग १ ५१२

६ रसिकग १ १२४

कपट काम प्राप्ति की माया में बहुत अंतर आ जाता है। कंगव<sup>१</sup> व अनुसार वह कोप गीला कपट-कुगला मजल-सलोम गरीरा रक्त वस्त्रा एक भोजन में रुचिवाली नस दान में प्रीति रखनवाली निलज्ज निडर और अधीर होती है। उसमें मदन जन में धार गद्य आती है। उस सुरत की अधिक इच्छा होती है। वह तप्तभगा भी हानी है। इन नायिका में प्रवृत्त ही हैं। कामशास्त्र में यह लक्षण इमीलिए दिए हुए हैं कि नायक और नायिका पहचानकर समरत में सलग्न हो सकें।<sup>२</sup> अतः वात्स्यायन ने नायक नायिका का पशु प्रतीक का माध्यम में यत्न किया है। तथा उनका जोड़ निश्चित किए हैं।<sup>३</sup> वात्स्यायन की कबल हस्तिनी नायिका का पशुशास्त्र में माय रही। पर का पशुशास्त्र में नायिका का मृग वृष अर्थात् भेद नहीं स्वीकार किया गया। कामसूत्र की बढवा नायिका ही गखिनी है।<sup>४</sup> कामशास्त्रीय ग्रन्थों में मिलनेवाले गखिनी के लक्षणों का कंगव ने अधिकारा सहारा लिया है। अनगरग में इमके लक्षणों की एक लम्बी सूची दी गई है।<sup>५</sup> सामनाय ने कंगव के सभी लक्षण तो नहीं दिए पर कंगव के लक्षणों का अनुसरण अवश्य किया है।<sup>६</sup> दास ने इसका निरूपण अत्यंत चतुरता कर लिया है। उन्होंने गखिनी और हस्तिनी को ग्राम्या बताकर बात चरती की है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि कंगव ने गखिनी के लक्षणों में सब हिन्दी आचार्यों में विस्तृत दिए हैं। इन लक्षणों का स्रोत कामशास्त्रीय ग्रन्थों में है।

गखिनी के उदाहरण में कंगव ने एक विचित्र अर्थोक्ति दी है। उसमें ऊट की रुचि का वर्णन किया गया है। वह कदली पान उदग आदि कोमल और सुखद लताओं में के भ्रममुट में न जाकर कटु कटीली भाडिया से ही प्रेम करता है। इससे ध्वनित होता है कि गखिनी की रुचि परिष्कृत नहीं होती उसकी कामाग्नि इतनी उदीप्त होती है कि नम और कलात्मक कामधर्मा पद्धति से वह परितृप्त नहीं हो सकता। अतः कंगव ने उसकी एक सामान्य प्रवृत्ति को उदाहृत करके लक्षणों की गणना के बोध में उदाहरण को बोधिल नहीं बनाया।<sup>७</sup> इस उदाहरण अपेक्षाकृत सजीव और सायक हा जाता है।

### हस्तिनी

हस्तिनी नायिका की प्रमुख विशेषता उसका स्थूल होना है। उसकी अगुलिया पर, मुह अधर और भोंहें स्थूल होती हैं। उसकी बाणी कटु होती है चित्त चञ्चल

१ केशवप्रधावनी ३, १, १० ६

२ कामसूत्र २।१।२

३ वहा १।११

४ ५० माधवाचार्य शर्मा, कामसूत्र, ५० २२८, मीननाथकृत समरलोपिका में कृप नायक और गखिनी का सम युग्म माना गया है।

५ अनगरग, ५० ३ श्लो १२ १३

६ समधीनूषनिधि ८। १७

७ रससारा १४४

८ केशवप्रधावनी १, १ ६

होता है और चान मन्द होती है। कवी का रग भूरा होता है गरीर पर लाम सपन हाते हैं।<sup>१</sup> हस्तिनी नायिका की चचा वात्स्यायन न अपने कामसूत्र म भी की है।<sup>२</sup> अनगरग म हस्तिनी के जो लक्षण बताए गए हैं उनम स अधिकांश कविवर्य स मिलत है। जैसे उमक कपिल केग कटु वाणी, मन्द गति अथर स्थौल्य मदन जन का हृत्ति गधी होना आदि।<sup>३</sup> सोमनाथ क अनुसार हस्तिनी क दात स्थूत्र और कविवर्य भूरे हात हैं। उसकी गति मन्द होनी है। स्वर गम्भीर होता है। उसक गरीर स हाथी क मदजल की सी गघ आती है। केगव न स्थूत्र दातो की चर्चा नहीं की।

कमक उदाहरण म कविवर्य ने कोई विवेकता नहीं दिखाई। समस्त दह को उहान दुग धमय कह दिया है। उन कविक्रिया की भी उहोने मतमन्द कहा है जिन को मुख की खान म हस्तिनी म सम्पृक्त हाना पडता है। उसक विनाल रोमा और कटु वचनों क कारण किसीको मुख नहीं मिल सकता।<sup>४</sup>

इन सभी लक्षण म गरीर की गघ और लोम क रूप को प्रधानता दी गई है। इन दोन म कामगास्त्र के अनुसार नायिका की कामदगा का पता चल जाता है। त्याज्य या ग्राह्य का निषय कहीं उपरी लक्षण क आधार पर किया जा सकता है।

कमानुसार नायिकाएँ

स्वकीया

स्वकीया-सम्बन्धी केगव की दृष्टि पर पीछे हम कुछ विचार कर चुक हैं। कविवर्य का स्वकीया पतिव्रता है जो सम्पत्ति विपत्ति जीवन मरण म मनसा वाचा कर्मणा नायक के साथ रहती है।<sup>५</sup> काव्यगास्त्र क आचार्यों ने स्वकीया क कम आदग की कल्पना प्राय नहीं की। गिगभूपान स कविवर्य का स्वकीया क लक्षण मिलत हैं। प्राय अपन ही स्वामी म अनुरक्त रहनवाती नायिका को सबन स्वकीया या स्वकीया कहा है। उम अपना स्वामी ही प्रिय लगता है।<sup>६</sup> धनत्रय ने पति क साथ व्यवहार क गीताजवालि गुणों पर बल दिया है।<sup>७</sup> विवनाय न अनेक यावहारिक गुणा की भी

१ कशकप्रबन्धना स १ पृ ३

२ नायिका पुनर्मृगी बन्धक हस्तिनी चरि। १११

३ मूला विमल कल्लो ध कमुद्रा प्रवर्तिता।

गगना विनालुकीचरणा इती मन्त्रिका।

विमलकामुद्रा विमल नायिका मन्त्रिका।

दुःसम्पत्ता मन्त्रिका मन्त्रिका मूल मन्त्रिका हस्तिनी ॥ अर्थात् १० ४ ११। ११

४ मन्त्रिका मन्त्रिका १११

५ कशकप्रबन्धना स १ पृ ३

६ कविवर्य

७ मन्त्रिका मन्त्रिका

८ मन्त्रिका मन्त्रिका

९ मन्त्रिका १११

चर्चा की है।<sup>१</sup> उन्होंने उसे विनय सरलता आदि गुणा से युक्त और गृहकाम में भी कुशल माना है। डा० विरणचन्द्र नामा ने कहा है यह लक्षण घनजय भानुदत्त आदि किसीस नहीं मिलता।<sup>२</sup> पर केशव की पतिव्रता का नामोल्लेख विश्वनाथ में है। केशव ने उसे और स्पष्ट कर दिया है। हा दृष्टिकोण में एक मौलिक अन्तर पर लक्षित होता है। केशव ने पातिव्रत्य गुणों को अधिक मुखर बनाया है। प्रायः आचार्यों ने उमक गृहस्थ और प्रिय क प्रति धरते जानबाल गुणा पर अधिक धन दिया है। प्रायः उसके पतिव्रत धर्म-सम्बन्धी गुणा की भाँती अस्पष्ट होती गई है। विनयादि गुणों पर अधिक धन दिया जान लगा है। चिंतामणि ने अपने ही पुरुष में 'प्रीतिव्रत' और 'सीत मुधाई लाज युत' कहकर दोनों पक्षा के सम्बन्ध को बात बही है।<sup>३</sup> सोमनाथ की स्वकीया के लक्षण केशव के निकट है। उनकी स्वकीया तन मन धन स अपने पति से प्रेम निर्वाह करती है। दास न भी उस पतिव्रता कहा है। वह कुरा जाता कुत्रवधू उदार मधुर, सलज्जा, मुकृतिनी और सुशीला होती है।<sup>४</sup> प्रताप साहिब ने पातिव्रत्य पर विशेष बल दिया है। स्वकीया नायिका अपने पति द्वारा दिखाए हुए चित्र को भी धमलिए नहीं देखती कि वही उसमें परपुरण के दान न हो जाए।<sup>५</sup> मतिराम के लक्षण इस प्रकार हैं जो सलज्ज नायिका अपने ही पति के प्रेम में विभोर रहती है उस स्वकीया कहते हैं। ऐसी नायिका का पति बड़ा भाग्यशाली होता है।<sup>६</sup>

### मुग्धा

केशव ने मुग्धा के लक्षण नहीं दिए। सामान्य लक्षण न देकर भेदोपभेद किए हैं और फिर प्रत्येक भेद के सोलाहरण लक्षण प्रस्तुत किए हैं। प्रायः आचार्यों ने वय के अनुसार मुग्धा का निरूपण किया है। केशव ने भेदा के अन्तर मुग्धा के गयन सुरति तथा मान सम्बन्धी लक्षण दिए हैं। उसके शयन के सम्बन्ध में केशव ने लिखा है पहले तो मुग्धा पति के पास गयन करना स्वीकार ही नहीं करती। यदि सखी के आग्रह पर सो भी जाए तो फिर उस सुख नहीं मिलता।<sup>७</sup> मुग्धा सुरति में स्वप्न में भी सह्य प्रवृत्त नहीं होती।<sup>८</sup> मुग्धा मान विधि से परिचिन नहीं होती। यदि मान करती है तो उस डराकर छुड़ाया जा सकता है।<sup>९</sup>

१ साहित्यदर्पण ३

२ केशवनाम नीमनी, कला और इतिहास पृ ३६

३ कबिनुलक पत्र ५। ७५ ६

४ रंगारविलाम १६३ रसवीर्यपिधि ८।२०

५ रंगारविलाम ६ रत्नमाला २१

६ अन्वयवकीमुनी १५

७ रत्नराज १०

८ पद्मप्रभाकरी सं० १ पृ ११

९ वही पृ० १

इन लक्षणों के अनुसार उदाहरण भी लिए गए हैं।<sup>१</sup> उदाहरण में लक्षण का मन्त्र पावन है तथा उदाहरण का वातावरण कलात्मक है। मुग्धा मूर्ति के उदाहरण के विधान में कवच ने मुग्धा को सलिया और निदय नायक का ग्रामन सामने रखा है। इसी प्रकार के निरूपण अन्य आचायों में लिए हैं। मन्त्रिराम ने उस नवोत्पन्न कहा है।

### नवलवधू

इसके शरीर की आभा दिन दूना बढती है।<sup>१</sup> अधिकांश आचायों ने मुग्धा के कम भद्र का स्वीकार नहीं किया। कम उदाहरण में भी सलिया का वातावरण तथा नवलवधू की दिन-दूनी बढती आभा पर सलियों के आश्चर्य का चित्रण है। कृषाराम ने नवलवधू के शरीर पर छापी यौवनाभा की ओर संकेत किया है।<sup>२</sup> इसका स्थिति देव के अनुसार वय मध्य के पश्चात है।

### नवयौवनाभूपिता

वालदगा का समाप्ति हो जाने पर यौवन उसके स्थान पर अपना आसन जमा लेता है। वही नवयौवनाभूपिता नायिका होती है।<sup>३</sup> धनजय ने नवलवयसा वि व नाय ने प्रयमावतीणयौवना तथा भानुपुत्र ने अकुरितयौवना नाम से प्रायः इसी भेद का निरूपण किया है। पर आचायों का वय मध्यवाला नायिका ने अधिक धाकृष्ट किया है। केशव ने वय मध्य की ओर "यान न देकर नवलवय के आगमन में ही विचार प्रारम्भ किया है। पर नवलवयनाभूपिता में थाल्यावस्था के आगमन को हटाने के लिए यौवन के अवतारों का प्रयोग है। इस प्रकार उदाहरण रचित समय कवच का दृष्टि में सम्भवतः वय मध्य पर स्थित यह नायिका है। उदाहरण में प्रथम प्रसंगों में हुए यौवनजय परिवर्तना का उल्लेख किया गया है। साथ ही कम उमरी नायिका का चवलता भी हट गई और धीरता का समागमन हो गया है। सलिया नायक का आवागमन देना<sup>४</sup> शीमक धार धरी अथ ल सुमर्षी मिलिबी बतमासी। इस प्रकार नायक-नायिका सम्मिलित का समय यौवनागमन के पश्चात् ही है। कम

१ कवचप्रथावली ३१ पृ ११

२ सुसंगत ४५

३ कवचप्रथावली ३१ पृ १ ४५ २०

४ कवच १ ६ १६

५ इति...

नवलवधू पुत्र लक्ष्मी ने कहा है धार।

६ कवचप्रथावली ३१ पृ १

० मेम्व देहा न निवृत्त विनयविद्वन्वया मा-नाथ-सर्विकर लक्ष्मी का मन्त्रि उदाहरण में उदाहरण २०। २१ निवृत्त-मुग्धा नृ वामर्षी मिलि। मन्त्रिराम कवच प्रथावली ३१ अक्षरालया जयदेवना के रूप में मन्त्र कवच प्रथावली ३१

८ कवचप्रथावली ३१ पृ १ ४५ २

पूव की स्थितिया सम्भोग स नहीं आद्वयमिश्रित दगन और स्पगमाय स नामक को विभोर करती रहती हैं ।

### नवल अनगा

नवलअनगा क लक्षण पर भी वय मधि की हल्की-भी छाया मिलती है । यह नायिका वातका क समान वातती और खेतता है । हमती भी है और भय भी दिग्लताती है । और इन सबम विलास क्ताता रहना है ।<sup>१</sup> इसम बाल-सुत्रम क्रिया कलाप विनाम रजित हा उठत हैं । वह हसना भी सीख गई है और नायक का प्रस्त करना भी उन आ गया है ।

उत्ताहरण म एक विनोप पखितन है । अब तक क उताहरणा म मखियों की मध्यस्थता थी । सखिया का तत्त इसक उदाहरण में समाप्त हा गया । उसक मन म विलासच्छा तरंगित है । इस दृष्टि स वह प्रियतम स पिछो हूइ नहीं है । पर नवल अनगा हान क कारण उस नितान्त एकांत चाहिए । तोत और सारिका क सा जान की उम प्रनीत्या है । वह मृगगावक और हम का भी रतिगृह स निकान दना चाहती है । दीपद्युति यदि समाप्त नहीं कर दा जाती ता उस वह मद अव्यय कर दगी ।<sup>२</sup> उसका हम उन्नित म भायो तुम्ह बसव सा माहू मन भायो है उसक मन पर हूए अनगाविकार की स्पष्टता तो है पर वह अभी रति स बचना भी चाहता है । दव ने नवलअनगा की अवस्था १५ वप मानी है । रसतीन न भी यह भद माना है ।

### लज्जाप्रायरति

यह नायिका रति म प्रवृत्त हाती है । पर वह लज्जा क अचन म लिपटी रहती है । हम नायक की प्रीति म वृद्धि हाती है ।<sup>३</sup> इस लक्षण म कवल लज्जा का तत्त्व प्रमुख है । उताहरण म हमीकी व्यजगा ३८ है । रतित्रिया को कगव न चित्रित नहीं क्रिया । नायिका अपनी सखियो स अपनी लज्जा का एस प्रकार वणन करती है

अनक वाग युवान पर भी मैं उनस नहीं वाला । कामातुर नायक परों पर मिरा तो उसन अपन का चादर म छुपा लिया । आतिगन क कामी नामक के प्रयत्न करन पर भी मैंन अपना हठ नहीं छाटा । जब मैंन उसकी और नहीं रेखा तो नायक न मरी टाी को अपन हाप स उठाया । फिर भी मैंन सीधी नजरों स उस नहीं दखा । निगाही लाज इन घाखों म भरी रही । लज्जाप्रायरति नायिका रति-वणन कस करसकती है ? परकगव न गिगभूपाव का सश्रीटमुरतप्रयत्ना विवनायका समधिक सजावती क लक्षण स सहायता तो है । उनक लक्षण इनस मितन हैं । यह भावी भी वय मधि क समान ही आकषक रही है । इस प्रकार भानुदत्त और उसक अनु

१ फराबप्रथावनी, पृ० १०

२ वनी पृ० १ छन्द २३

३ वनी पृ० १, छन्द २४

४ वनी पृ ११



यायी आचार्यों की नवोत्थान व नवगण इसमें मिलते जुलते ही हैं।<sup>१</sup>

इस प्रकार कविवर्य का मुग्धा निरूपण एक व्यापक दृष्टि से हुआ है। नामभेद रहते हुए भी इन आठों के अंतर्गत नवोत्थान वयमधि आदि की छाया आ जाती है। सयाजित उदाहरणों से नवगण निरूपण स्पष्ट हो जाता है। वही वही उदाहरण लक्षण निरूपण के पूरक है। जो कुछ वचन मुझे भेद और लक्षण हैं उन्हें कविवर्य ने शयन सुरति और मान के लक्षणों में समाविष्ट कर लिया है।

### मध्या नायिका

मुग्धा के विकास की यह मध्य स्थिति है। इस अवस्था में नायिका का यौवन और उमर का कामभाव अधिक परिपक्व हो जाते हैं। इस परिपक्वता के आधार पर कविवर्य ने मध्या का चतुर्विध वर्गीकरण किया है। मुग्धा में यौवन और काम लक्षणों के कारण कुछ ठिप रहे नायिका उनकी अतर्हित शक्ति और उनका व्यापक प्रभाव से अवगत भी नहीं थी। पर अब यौवन की वह अधनिमीलित कलिना पूर्ण रूपण प्रस्फुटित हो गई। उमर की बाणी में भी प्रगल्भता आ गई।

### आरूढ यौवना

इस मध्या भेद को कविवर्य ने सम्पूर्ण यौवन से उत्थित माना है। उमर अंग भाग्य के उत्थय और मुहूर्गायन के भी भन्व है। प्रियतम के मन में भी इस भाग मुग्धा और यौवनवती ने अपना स्थान बना लिया है। यह नवगण परम्परा धनजय में मिलती है। उनका मतानुसार यह उद्यौवनानगा और सुरत श्रीडा में विद्यमान रचित नवेवाती होती है। उद्यौवनानगा और कविवर्य की आरूढयौवना में अंतर नहीं है। पर भानुदत्त ने मध्या के लक्षणों में समानता-जामदत्ता को मिला लिया है।<sup>१</sup> उनकी यह तात्पर्य लिखता है कि मुग्धा में कामोद्भक्त नवजा के समान नहीं होता। नवजा का अतिशयण करने का शक्ति उमर नहीं होती। मध्या में नवजा और मन्त्र समान अनुमान में हो जाते हैं। अतः नवजा का आधिक्य कामधीनता में बाधक नहीं होता। रीतिकाल के अधिकांश आचार्यों ने भानुदत्त की इसी परम्परा को अपनाया है। इस प्रकार कविवर्य का नवगण निरूपण नवजा रीतिकाल के समस्त आचार्यों में विद्यमान है। कविवर्य का परम्परा स्पष्ट में ही मिलती है। उद्यौवन मध्या को आविर्भूतममयाग्याता और विविधधनमुक्तचतुः। बना है।<sup>२</sup> विद्यनाय ने भी प्रायः इसी परम्परा का पालन करते हुए परम्परायौवना में स्वाकार किया है।<sup>३</sup> इस गति के दिवस

१ भानुदत्त का मतानुसार यह है कि नवजा नवगण परम्परा में ही नवजा समानता

२ आरूढयौवना ३।३

मन्त्र-नवजा-नवजा-नवजा

३ विद्यनाय के मतानुसार यह है कि नवजा समानता में ही नवजा समानता

विद्यनाय के मतानुसार यह है कि नवजा समानता में ही नवजा समानता

४ नवजा नवजा ३।३

स केगव की परम्परा स्पष्ट हो जाती है।

जहा मुग्धा व उदाहरण म केगव न उसके यौवनागमजय अगप्रत्यग परिवर्तन का चित्रण किया है। वहा मध्या व अग विकास की सुनिश्चित स्थिति नपनिख-वर्णन की गयी म यवन की है।<sup>१</sup> एत और निश्चित उपमय अगा व साथ उपमान 'फिट' होने लगे। एतम लक्षणा व निर्वाह की और केगव का इतना ध्यान नहीं। उसक उभयो म पूण यौवन भाग-सुहाग युक्तता और कात प्रियता है। पर इसम एत उपमानो व साथ उसक पूण विकसित यौवन की और ही सक्त किया गया है। एत दो की आचाय न यौवन क परिणाम क रूप म गौण रूप दिया है।

### प्रगल्भवचना

यहा चरम यौवन की परिणति एक मानसिक विकार म होनी है। उसे अपन यौवन की उत्साल तरंगों म बहु शक्ति दिखताई पडती है जो प्रियतम पर नियन्त्रण कर सकती है। इस मनोविकार स प्रेरित होकर वह प्रियतम को उपालम्भ भी दती है। उस भय भी दिखती है। यौवन की यही वचना क माध्यम म अभिव्यक्ति है।<sup>२</sup> वि उनाय न प्रगल्भवचना क लक्षणा इमी प्रकार स दिए हैं।<sup>३</sup> धनजय ने इन भेदो को छाट दिया है। भानुसुत ने मध्या क भेदा की चर्चा ही नहीं की। इसका कारण यह दृष्टिगत होना है कि रममजरीकार को मध्या और विश्राधनवोला म अतर नहीं दिखताई पन्ता। हिन्दी क रीतिकानीन आचार्यों ने इसक विषय म भी भानुसुत का ही अनुसरण किया है। चित्तामणि न केगव की भाति चतुर्विध वर्गीकरण को स्वीकार करके प्रगल्भवचना को भी माना है। विद्वनाय का मध्यमत्रीहिता को केगव की भाति चित्तामणि न भी स्वीकार नहीं किया है। मतिराम न इन भेदो का उपा दिया। एत न भी एत भेदो को छोड दिया है।

उदाहरणा म केगव क लक्षणा का पूण समन्वय है। उसम उपात्मम भी है भय भी। वह नायक को यह कहकर भयभीत करना चाहती है उबटोण जू दतो अग दग्दु आग।<sup>४</sup> आग आग दलिए क्या हाता है।

### प्रादुर्भूतमनाभवा

काम की सरन तरन वीक्षिया म उल्लित नायिका कामत्रीहाकला म भी निष्णात हा जाती है। उसक मन म त्रीहा सम्ब धी कल्पनाए और योजनाए बनने लगती है। उसका अग विन्यास भी कलात्मक हा जाता है।<sup>५</sup> विद्वनाथ न जो प्रकृत

- १ केशवप्रयावली १, पृ० १
- २ वही पृ० १
- ३ वही पृ० १३
- ४ साहित्यसंग ३। ५६, १००
- ५ केशवप्रयावली १, पृ० १३
- ६ वही, पृ० १३

स्मरा व लक्षण दिए हैं वे काव्य में प्रायः मिलते ही हैं।<sup>१</sup>

इसके उदाहरण में काव्य ने राधा की काँति का उल्लस व्यक्त किया है। उसकी काँति मय युवतियाँ में अधिक है। उसकी गारीरिक चष्टाओं में बबल बनाकर भ्रू भंगिमा की चर्चा की है। उस भ्रू भंगिमा पर त्रलोक्य की आभा को निछावर किया जा सकता है। यह उदाहरण ऐसा नहीं लगता कि यह एक स्वतंत्र मुक्तक है। एवम उभयना की भूलक किंचिमात्र ही है।

### विचित्रमुरता

काम कील में नायिका इतनी पट्ट हो जाती है कि विचित्र क्रियाओं की उच्छा उसका मन में स्फुरित होती है। कवि इन कामचष्टाओं का वर्णन में कठिनाई अनुभव करता है। पर इन चष्टाओं का वर्णन सुनना प्रिय लगता है।<sup>१</sup> ये लक्षण विवनाय में मिलते हैं। यहाँ तक कि उदाहरण में भी पर्याप्त साम्य है। वह हाम विनास में युक्त होती है। उसकी चित्रवन और उसका भाषण रसमय ही है। सात प्रकार की बाह्यरति सात प्रकार की अंतररति तथा विपरीत रति में वह पारगता होती है। कामावका में लजा धूँ जाती है और बस्थाभूषण भी अस्त व्यस्त हो जाती है। रतिवालीन उसका वृजन एतनी विचित्र और आनन्दक होती है कि पक्षी भी उसका अनुकरण करने लगते हैं। वही सच्ची रति है। पाया का अनुकरण की बात विवनाय में भी विचित्रमुरता का प्रसंग में कही है।<sup>२</sup>

इस विचित्रमुरता का साथ ही काव्य में अंतररति और बहिररति यादृग शृंगार और मुरतात का विवरण दे दिया है। वस्तुतः सभी रतियों का परिणामों में नागरी नागरी का अर्थ प्रयोग चिह्न चिह्न ही जानें हैं। इन विषयों का विस्तार में काम वास्तवीय अर्थों में निरूपण उपन्यास होता है।<sup>३</sup> सम्भवतः विचित्रमुरता का निरूपण का भूमिका में काममूर्त का चित्ररत्न प्रकरण है। यथाशय न वाल्मीकि की टीका में दिया है कि चित्ररत्न में भी अमानता का ही प्रयोग माना है। य अमान विषय है। काव्य में अमानता का वर्णन कठिन बनाया है। कठिनता का आधार हीन है। य तुल्य काममात्राया विषय है। चित्ररत्न में निष्कान्त नायिका ही मुरत विचित्रा होती है। साथ ही मीकाराणा का विवरण भी काममूर्त में दिया है।<sup>४</sup> काव्य का रति-व्यक्त का काममूर्त में मनुक उल्लस है। काव्य ने अत्यन्त हीनता की सामा में

१ मा २ ३१

२ मा २ ३२

३ मा २ ३३

४ मा २

५ मा २ ३१ २ ५ मा २ ३२ ५ ३३ ५

६ काममूर्त अर्थ ३३ ३४ ३५ ३६

७ काममूर्त अर्थ ३३ ३४ ३५ ३६

८ मा २ ३३

मानेवानी बात को छोड़ दिया है। केवल बहिररति के नामादि ही गिना दिए हैं।

### धीरादि भेद

य भेद धय के आधार पर किए जाते हैं। नायिका के धय की पहचान तब होती है जब नायक अथ नायिका के साथ रति करके लौटा हो। और वह पूरे नायिका इससे अवगत हो जाए। धय के आधार पर प्रायः सभी आचार्यों ने तीन भेद स्वीकार किए हैं धीरा अधीरा और धीराधीरा। केशव ने भी इन्हें स्वीकृति दी है। तीनों ही नायिकाओं का नायक की पररति पर पीड़ा होती है। रोप से उनका अतस्तल उद्बलित हो उठता है। पर तीनों में अंतर रोप की अभिव्यक्ति के आधार पर होता है। धीरा अपने शोध का बशोक्ति गली में यत्न करती है। अधीरा विषम बट्ट वाणी से अपनी अतवेदना व्यक्त करती है और धीराधीरा उपालम्भ का आश्रय लेती है।<sup>१</sup>

सदृश प्रायः विश्वनाथ आदि आचार्यों के समान हैं। हिन्दी के अथ रीति काशीन आचार्यों ने भी लगभग समान रूप में निरूपण किया है। हा, मध्या धीरा धीरा का लक्षण बंग द्वारा जो दिया गया है वह किसी आचार्य से गलत नहीं मिलता। बंग के अनुसार धीराधीरा अपने पति को उलाहना देती है। इस ढंग से उपालम्भ के ही मात्र माध्यम से विश्वनाथ धनजय भानुदत्त आदि किसीने इसका निरूपण नहीं किया। भानुदत्त के अनुसार इस नायिका की मनस्थिति मिथित रहनी है। पहले तो प्रिय के अपराध पर रोप-वचन कहती है पीछे बाही देर में अपनी कोमलता के कारण रोने लगती है। चिंतामणि सोमनाथ मतिराम आदि हिंदी आचार्यों ने भानुदत्त का ही अनुसरण किया है।

कंग के अधीरा के उदाहरण में कठोरता की योजना तो है पर उस मात्रा की नहीं जिम्मेकी इस नायिका में होनी चाहिए। राधा कृष्ण के प्रति यम्य मर करके रह जाती है 'यह भठ बालना तुमने कहा से सीखा है रोप बातों में तो तुम अपने मां बाप में मिलते हो ?

### प्रीति

प्रीति या प्रणय के भेदों और स्वरूप पर पीछे विचार किया जा चुका है। बंग ने प्रीति के साहाय्य लक्षण नहीं दिए। उपभेदों के ही लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत कर दिए हैं। यहाँ नायिका में यौवन और काम अपने चरम पर पहुँच जाते हैं। उनकी अघता की स्थिति सा जाती है।

### समस्तरसकाविदा

यह नायिका प्रिय की रस रुचि का पहचानती है। उसकी रुचि के अनुसार ही वह रग-दान करती है।<sup>१</sup> मध्या तक प्रायः नायक ही सजग रहता था उस प्रियतमा की

१ कश्मिरीकली १, पृ० १४

स्वरा व लक्षण दिए हैं वे बंगव से प्रायः मिलते ही हैं।<sup>१</sup>

इसके उदाहरण में बंगव ने राधा की काति का उल्लेख किया है। उसकी काति सब युवतियों में अधिक है। उसकी गारीरिक् चेट्याओ में बबल कनात्मक भ्रू भंगिमा की चर्चा की है। उस भ्रू भंगिमा पर त्रलोक्य का गोभा को निछावर किया जा सकता है। यह उदाहरण ऐसा नहीं लगता कि यह एक स्वतंत्र मुक्तक है। इसमें उभयों की भूलक किंचिमात्र ही है।

### विचित्रमुरता

काम की गल में नायिका इतनी पट्ट हो जाती है कि विचित्र प्रियाया की इच्छा उसमें मन में स्फुरित होती है। कवि इन कामचेष्टाओं का बणन कठिनार्द्ध अनुभव करता है। पर इन चेष्टाओं का बणन सुनना प्रिय लगता है।<sup>२</sup> ये लक्षण विश्वनाथ से मिलते हैं। यहाँ तक कि उदाहरण में भी पर्याप्त साम्य है। वह हाम बिनास से युक्त होती है। उसकी चितवन और उमका भाषण रसमय होते हैं। सात प्रकार की दाह्यरति सात प्रकार की अंतररति तथा विपरीत रति में बहु पारगता होती है। कामावग में लज्जा छूट जाती है और वस्त्राभूषण भी अस्त यस्त हो जाते हैं। रतिकालीन उसकी ब्रूजा इतनी विचित्र और आकषक होती है कि पक्षी भी उमका अनुकरण करने लगते हैं। वही सच्ची रति है।<sup>३</sup> पक्षियों का अनुकरण की दात विश्वनाथ ने भी विचित्रमुरता के प्रसंग में कही है।<sup>४</sup>

इस विचित्रमुरता का साथ ही बंगव ने अंतररति और बहिरति घोडन श्रृंगार और मुरतात का विवरण दे दिया है। वस्तुतः सभी रतियों का परिणामों से नागरी नागरी का अर्थ प्रत्यय बिह्व चर्चित हो जाते हैं। इन विषयों का विस्तार से काम दास्त्रीय अर्थों में निरूपण उपलब्ध होता है।<sup>५</sup> सम्भवतः विचित्रमुरता का निरूपण की भूमिका में काममूर्त का चित्ररत प्रकरण हो। यगोधन ने दास्यदाय का टीका में लिखा है कि चित्ररत में भी आसना का ही प्रयोग होता है। ये आसन विषय है। बंगव ने इन आसना का बणन कठिन बताया है। कठिनार्द्ध का आघार गीत है। यह गुड कामदास्त्रीय विषय है। चित्ररत में निष्णात नायिका ही मुस्त विचित्रा होती है। माय ही सीत्काराणि का विवरण जो काममूर्त में पाया है। बंगव के रति-भूषण का काममूर्त में सटीक उल्लेख है। बंगव ने अर्थ अन्वीक्षता की भीमा में

१ सा १० ३१२

२ वे प्र १ ५ १३

३ वा ५० १३

४ वहा

५ सा ६० ३१ १०१ व प्र ० ५० १३ ८

६ काममूर्त, अधि ० अन्ता २ ३ ४ ५ ६ भा

७ काम्यदान के मूल ३६ ३६ पर टीका

८ वा २१० ६

आनेवाली बाता को छोड़ दिया है। केवल यहिररति व नामादि ही गिना दिए हैं।

### धीरादि भेद

य भेद घय के आधार पर किए जाते हैं। नायिका व घय की पहचान तब होती है जब नायक अथ नायिका व साथ रति करके लौटा हो। और वह पूरे नायिका इंसान बन गई हो जाए। घय व आधार पर प्रायः सभी आचार्यों ने तीन भेद स्वीकार किए हैं धीरा अधीरा और धीराधीरा। कंगव न भी इन्हें स्वीकृति दी है। तीनों ही नायिकाओं का नायक की पररति पर पीड़ा होती है। रोप से उनका अतस्तल उद्धत हो उठता है। पर तानों में अंतर रोप की अभिव्यक्ति के आधार पर होता है। धीरा अपने शोध का दशोक्ति गनी में व्यक्त करती है। अधीरा विषम कट्टु वाणी में अपनी अतर्वेदना व्यक्त करती है और धीराधीरा उपालम्भ का आश्रय लेती है।<sup>१</sup>

उत्पन्न प्रायः विन्दनाथ आदि आचार्यों के समान हैं। हिन्दी व अथ रीति कालीन आचार्यों ने भी उगमग समान रूप में निरूपण किया है। हा, मध्या धीरा धीरा का लक्षण कंगव द्वारा जा दिया गया है वह किसी आचाम से गन्त नहीं मिलता। कंगव के अनुसार धीराधीरा अपने पति को उलाहना देती है। इस ढंग से उपालम्भ व ही मात्र माध्यम से विश्वनाथ धनजय भानुदत्त आदि किसीन इसका निरूपण नहीं किया। भानुदत्त के अनुसार इस नायिका की मन स्थिति मिश्रित रहती है। पहले तो प्रिय के अपराध पर रोप-वचन कहती है पीछे थोड़ी देर में अपनी कामलता व कारण राने लगती है। चिन्तामणि सोमनाथ मतिराम आदि हिन्दी आचार्यों ने भानुदत्त का ही अनुसरण किया है।

कंगव के अधीरा व उदाहरण में कठोरता की योजना तो है पर उस मात्रा की नहीं जिसकी इस नायिका में होनी चाहिए। राधा वृष्ण के प्रति योग्य भर करके रह जाती है यह भूठ बाँटना तुमने कहा से सीखा है गप बातों में तो तुम अपने मा-बाप में मित्र हो ?

### श्रीग

श्रीग या प्रगल्भा के भर्तों और स्वरूप पर पीछे विचार किया जा चुका है। कंगव ने श्रीग के सामान्य उल्लेख नहीं किए। उपभदों के ही लक्षण और उदाहरण प्रस्तुत कर लिए हैं। यहाँ नायिका में यौवन और काम अपने चरम पर पहुँच जाते हैं। उनकी अघता की स्थिति आ जाती है।

### समस्तरसज्ञेयिदा

यह नायिका प्रिय की रस रुचि का पहचानती है। उसकी रुचि के अनुसार ही वह रस-दान करती है।<sup>१</sup> मध्या तब प्रायः नायक ही सजग रहता था उस प्रियतमा की

१ कंगवप्रभाषणी १, पृ० १५

रुचि को जानना पड़ता था। मुग्धा म तो रसोद्रेक करने का प्रयत्न नायक या सखियों द्वारा होता ही है। पर रसकोविदा प्रिय क रस को पहचानती है। यहा प्रियतम का अर्थ सामान्य नायक नहीं अपना पति ही है। अपने पति को प्रमत्त करनेवाली समस्त रतित्रियाओं का परिचान नायिका को प्रीति बना देत है। भानुदत्त ने अपने पति क समस्त रतिविधियों का प्रयोग करके सम्भोग करनेवाली को प्रीति माना है।<sup>१</sup> कंगव ने भी अपने प्रियतम के साथ कलात्मक सम्भोग करनेवाली नायिका को प्रीति कहा है। यह लक्षण सामान्य रूप से उद्दोहन न लेकर समस्तरसकोविदा क रूप म लिया है।

संस्कृत म विगवनाथ ने समस्तरसकोविदा भेद को माना है।<sup>१</sup> पर उन्होंने इसक लक्षण नहीं दिए। उन्होंने उदाहरण म जिन विगपताओं का उल्लेख किया है व कंगव क लक्षण निरूपण क समीप हैं। धनजय ने कवत दो ही भेद माने हैं और एन भेद का छोड़ दिया है। गिरभूपाल और भानुदत्त न भी चतुर्विध भेद न मानकर धनजय का ही अनुसरण किया है। अतः कंगव विश्वनाथ की परम्परा म आते हैं।

जहा तक उदाहरण का सम्बन्ध है वह लक्षणा से स्वतंत्र दिखाई पड़ता है। उसम अपने प्रियतम की रुचि क अनुरूप कामकलाओं का प्रदर्शन नहीं है। सख एक गोनिका का वर्णन करती है; उस अतिथीय गोभावाली बताया गया है। उसकी हाव भावार्ति चट्टाभा और उनके आकषण सम्मोहन की बर्चा है। पर लक्षणा का उदाहरण नहीं लिया गया।<sup>१</sup>

### त्रिचित्रविभ्रमा प्रौढा

कंगव न इसका लक्षण यों लिया है जिसके शरीर की छति म आकषित हाकर दूती प्रिय से उसका मित्राप करा दे। एतम छति योवन और रूप की होती है। मयी जस एम धृति की प्रतीक्षा म थी। जिस समय वह प्रकट दृष्टि सखी न सम्मिलन की योजना कर दी। उदाहरण म यह तत्पण बिल्कुल नहीं मिया। नायिका क रूप रंग और उभार शृंगार को दगकर नायक स्वयं आकषित हो रहा है। दूता की मध्यस्थता का उल्लेख उदाहरण म नहीं है। पर छति को उद्दोहन वहा अवश्य स्पष्ट किया है। उमके अंग प्रत्यगा म काम क आकर्षणक्षय मकता का विकास है। उमके कटाओं म कामवाणों की-मो तीक्ष्णता और प्रभाव है।<sup>१</sup> संस्कृत हिता क आचार्यों न एम भेद का नहीं लिया। देव न कंगव क अनुसरण पर प्रीति क चतुर्विध भेद म एमका उल्लेख अवश्य किया है। पर एमका नाम उन्होंने त्रिचित्रमा लिया

१ पद्मिनीसुन्दरीचरितकलाकलापका कंगवनाम। समन्वय

२ सा १ ३१२ ३

३ कलाकलापका १ ५ १६ ६२ ५२

४ छति विचित्र विभ्रमा मया प्रयास्य कान्ति।

जकी दारुणि दृष्टिका सिद्धि निवार अन्ति ॥ क म १ ५० १६ ६० ५३

५ सा १ ५ १६ ६२ ५५

है। रसलीन ने प्रौढा के चार भेद दिए तो हैं पर इस भेद को छाड़ दिया है। इससे पात होता है कि भानुदत्त और विश्वनाथ की परम्परा का अनुसरण होता रहा। विभिन्न विभ्रमा की कल्पना किसीने नहीं की। यह कण्व की अपनी उदभावना प्रतीत हाती है।

### आक्रमिता

यह नायिका मन वचन और बम स प्रिय का स्ववग कर लेती है। विश्वनाथ क उदाहरण स यही ध्वनि निकलती है। विश्वनाथ<sup>१</sup> के उदाहरण म सुरतात स्थित नायिका द्वारा नायक को कुछ शृंगार-सवा की आत्मा दिलवाई गई हैं। उदाहरण कण्व और विश्वनाथ क भिन्न हैं पर दाना की आत्मा एक है।

### लघापति

निज पति रति रत होना प्रीणा का प्रमुख लक्षण ह। इस भेद म नायिका की उच्च परिवार भावना सामन आती है। लघापति नायिका परिवार क सभी सदस्या का आदर करती है।<sup>१</sup> इस प्रकार कण्व न यौवनविलास को ही नायिका भेद का आधार नहीं बनाया, पारिवारिक भावना को भी बनाया है। विश्वनाथ के ६ भेदा म भी इमको स्थान नहीं मिला चिन्तामणि न अपन चतुर्विध वर्गीकरण म इसका उल्लेख नहीं किया। देव और रसलीन ने इस भेद को स्वीकार किया है।<sup>१</sup> उन दोना न ही कण्व स स्पष्टत प्रेरणा नी है। सस्वृत श्रोतो म यह भेद नहीं मिलता।

### प्रौढा के धीरादि भेद

मध्या क समान प्रीणा क भी धीरादि भेद कण्व ने किए हैं। मध्या भेदा म राय का प्रकट करन की पद्धति प्रमुख आधार थी यहा उम छिपान की क्षमता आधार बनाई गई है।

प्रौढा धीरा—प्रीणा धीरा वह है जो बाह्यत पति का आदर करती है, पर उस आदर म अनादर का भाव छिपा रहता है। विश्वनाथ का लक्षण कण्व स मिलता है। भानुदत्त क उदाहरण म नायिका द्वारा श्राप का गापन और सखी द्वारा रोपयजन होता है।<sup>१</sup> कण्व क प्रीणा अधीरा क उदाहरण म उदामीनता क तत्त्व क बिना ही कोप की यजना है।<sup>१</sup>

प्रौढा अधीरा—प्रीणा अधीरा पति क घोर अपराध को समझकर हितपूर्वक

१ मा द २।६० का उदाहरण

२ क म १, ५ १६ छं ५७

३ प्रमुखात् मीनल मजभाषा सा का नायिका भेद, ५ ४ ४, ४०६

४ सा० १ ३।६०

५ रसमजरी ६० १२

६ प० म १, ५० १७, ६० ६०



नायक का हित नहीं करती ।<sup>१</sup> विश्वनाथ क अनुसार अघोरा प्रोत्ता तजन और ताडन करती है ।<sup>२</sup> इस प्रकार विश्वनाथ और केशव के लक्षण नहीं मिलते । तजन और ताडन की चर्चा धनञ्जय शिगभूपाल और भानुदत्त ने भी की है ।<sup>३</sup> हिं दी म चिंतामणि का लक्षण तो अस्पष्ट है । मतिराम सोमनाथ ने इन तत्त्वा को ग्रहण किया है । पर केशव क हरि शृंगार की परिधि म नायिका राधा क लिए यह सम्भव ही नहीं कि वे अपराधी कृष्ण का तज ताडन भी कर सकें । अतः केशव ने उसे हित न करने क रोप-व्यजन तक ही सीमित रखा है । उदाहरण म केशव ने तजन का समावेश किया है ।<sup>४</sup>

**प्रोढ़ा घोराघोरा**—प्रोढ़ा घोराघोरा की स्थिति जटिल है । उसक मन मे प्रिय मित्रन की इच्छा अतीव तीव्र रहती है । अतः वह अपराधी प्रिय के प्रति भी आकर्षित रहनी है पर मुख से वह गुल्फ बार्ने करती है ।<sup>५</sup> विश्वनाथ क अनुसार घोराघोरा प्रोत्ता अपराधी नायक को 'यस्य वचना स खेदित करती है । भानुदत्त घोरा और अघोरा क लक्षणो का मिश्रण करत हुए घोराघोरा म तजन-ताडन का भी उल्लेख करते हैं ।<sup>६</sup> अतः इन सस्कृत आचार्यों म घोराघोरा की स्थिति बहुत साफ नहीं है । केशव न उम विभाजक रेखा क साथ प्रस्तुत करने का प्रयाम किया है । उदाहरण म हत्का साम्य विश्वनाथ से तो है भानुदत्त स नहीं । हिं दी के अर्थ आचाय प्रायः भानुदत्त का अनुसरण करते हैं । केशव का माग प्राचीनों के अनुकरण या स्वयं की मौलिकता पर तयार होता है ।

### परकीया

परकीया क सम्बन्ध म हम सामान्य विचार पीछे कर चुक हैं । केशव की परकीया लौकिक दृष्टि म परकीया नहीं त्रौकिक पति स सम्बद्ध हाकर भी कृष्ण प्रिया हान क कारण परकीया है । अतः केशव त्रौक म स्वकीया भाव क समर्थक ही है रमिक भक्ति क क्षत्र म उच्च परकीया भाव स्वीकृत है यही कहा जा सकता है । इस पृच्छभूमि का ध्यान म रम्यकर भी इनका निरूपण काव्यशास्त्रीय परम्परा क अनुरूप ही हुआ है । परकीया क दो भेद उहान मान हैं ऊत्ता और अनूत्ता ।

**ऊत्ता**—ऊत्ता परकीया को गभी आचार्यों न माना है । भरत रण्ट विश्वनाथ स्मृति न परकीया क दा ही भन् स्वीकार किए हैं—ऊत्ता और अनूत्ता । य प्राचीन आचाय इन दो भेदों तक ही सीमित रहें हैं । पर भानुदत्त ने ऊत्ता क गुत्ता विभाग्य लक्षित

१ पति की उन्नत स्मृति म ननि इतन कड़े हित मति । व. अ. १. अ. ६३ पृ. १७

२ म. अ. ३१६

३ लक्ष्मणक रमायणमञ्जर रमन्तरी

४ विश्वनाथकृत रमन्तरी म. अ. ३१६

५ व. अ. १ पृ. १८

६ व. अ. १ पृ. १८, ६५

७ म. अ. १६३

८ रमन्तरी १७

कुलटा अनुगयाना मुद्रिता—६ भेद करक और उपभेद दकर एम प्रसंग को विस्तार दिया है। हिंदा क अय रीतिकालीन आचार्यों ने भानुदत्त की परम्परा का ही पालन किया है। पर कशव ने लोक-नतिकता का ध्यान रखकर उसका विस्तार नहीं दिया। कवल हरिक भक्ति की सापेक्षता म प्राचीन आचार्यों के भाय दो ही भेद स्वीकार किए हैं। कशव क उगहरण म भी हरिक भक्ति की भावना स्पष्ट है।<sup>१</sup>

अनूदा—अनूदा क अविवाहिता होने की बात सभीने कही है। वह अपने प्रेम को गुप्त रखना चाहती है और परिवारवाला स छिपाना चाहती ह यह भी उसक लिए स्वाभाविक ह। भानुदत्त ने उसकी चष्टाम्रा की गुप्तता का उल्लेख किया ह।<sup>२</sup> विश्व नाय ने सल-जा कहकर यही बात कही ह।<sup>३</sup> केशव का अनूदा निरूपण हरिशृंगार की सापेक्षता म ही ह।

### नायिकाश्रा का अष्टविध वर्गीकरण

केशव न जानि कय, समाज यवहार धीरता क आधार पर नायिका निरूपण करके दान दम्पति-वृष्ठा आदि का विवरण प्रमग रसिकप्रिया<sup>४</sup> क चतुथ और पचम अध्यायो म प्रस्तुत किया ह। पठ अध्याय म फिर रम-सम्बधी भाव विभावादि समस्याओं का निरूपण किया गया ह। इसस स्पष्ट है कि पहल सभी वर्गीकरण का आधार रस निरपेक्ष था। रस सामग्री क निरूपण के अनतर रस के आधार पर नायिकाओं क अष्टविध वर्गीकरण का निरूपण छटे अध्याय क बाद किया गया ह। प्राय अधिकांश आचार्यों ने रम क आलम्बन के प्रसंग म ही नायक-नायिका निरूपण किया ह। केशव इसी परम्परा म रह हैं। यही कारण ह कि इस वर्गीकरण क भेदों पर सब मतबय रखत हैं। यह वर्गीकरण लाकप्रिय भी विंगय रहा ह।

केशव क अनुगार य अष्ट नायिकाए इस प्रकार हैं स्वाधीनपतिका, उत्का यासकसज्जा अभिसंधिता गढिना प्रोषितप्रेयमी विप्रन धा और अभिसारिका। एन भेदों की भरत ने भी दिया ह<sup>५</sup> पर उपभद नहो किए। रुद्र ने सभी नायिकाओं क उपभदों क रूप म हैं स्वीकार कर गुणक मान लिया और भेदमस्या बढा दी है।<sup>६</sup> नमिमाधु न रुद्र क इस स्थल को क्षपक माना ह। विश्वनाथ न गुणक रूप का स्वीकार कर १६ प्रकार की नायिकाओं को आठ प्रकार की माना ह। भानुदत्त न भी इह गुणक माना ह।<sup>७</sup> केशव न भी यही रूप स्वीकार किया ह।

१ क प्र० १ १ १८, छद०१

२ रसिकप्रिया श्लोक १० क पश्चात्।

३ सा० १ ३१७

४ के प्र १ ५ ३६, छं० ०

५ ना० शा० २५१०३, २०६

६ काव्यालकार अ १०

७ हिन्दी रीति परंपरा के प्रमुख भाषाय डा० मालदेव गीधरी ५० ३७६

८ सा १ ३१७

९ रसिकप्रिया श्लोक ३८ के पश्चात्।

कविवर ने इन आठ भूतों के सम्बन्ध सयोग और वियोग से नहीं जोड़े। परवर्ती आचार्यों ने ऐसा किया है।<sup>१</sup> सुविधा की दृष्टि में यह वर्गीकरण मानकर चला जा सकता है। सयोग से तीन नायिकाओं का सम्बन्ध जुड़ता है स्वाधीनपतिका वामकमला और अभिनारिका का। तब सम्बन्ध वियोग स्थिति से है।

### स्वाधीनपतिका (सयोग)

जा अपने गुणों में नायक को बगल में कर लेती है वही नायिका स्वाधीनपतिका होती है। इस प्रकार उसके पति इसके साथ रहता है। तब यह नायिका सबसे अधिक सौभाग्यवातिनी है। भरत ने भी इस सामोदा नायिका को स्वाधीनपतिका कहा है। उसका प्रिय सुरतरसबद्ध हाकर उमक पात्र में रहना है। कम लक्षण में रति मूलक गुणों की ओर मकत है। पर कविवर ने उधर मकत नहीं किया। उन्होंने गुणों की भूमि विस्तृत रखी है जिसमें सुरत गुण भी आ सकता है। विवनाथ ने गुणों का रति तक सीमित करना चाहा है।<sup>२</sup> धनजय ने परकीया के भदों में स्वाधीनपतिका नहीं रखा कारण उसके साथ यह भद ठीक नहीं बैठता। पर आचार्यों ने प्रायः सभी भदों के साथ इसका सम्बन्ध माना है। भानुजय ने सामोदा परकीया के साथ भी कम भद को स्वीकार किया है। यह एक श्रुति है। पर उन्होंने कम लक्षण ही बहुत पात्र किया है जिसका प्रिय उसके मकत को जानकर अभिप्राय के अनुकूल वाच करता है। कम परिभाषा के साथ ही वे उक्त भदों से इस सम्बन्ध कर मक है।

कविवर ने अचर की भाँति कम नायिका के प्रच्छन्न और प्रकाश भद किए हैं। प्रच्छन्न नायिका के बगल में नायक कृष्ण है जो उमक परों में मलावर उगत है। कविवर की नायिका रमिक मला के समान प्रेम शक्ति है और मला से भूनी हुई। शृंगार-मला तथा मलावर शक्ति की चचा अचर आचार्यों में भी मिलता है।

प्रकाश नायिका के उदाहरण में पति द्वारा पत्नी की मला शक्ति है। नायिका का वही रूप है जो रमिकभक्ति में कृष्ण-मला राधा का है। भानुजय आदि आचार्यों में भी मला रूप मिलता है पर भक्ति परम्परा से मलाकार नहीं है।

### वामकमला

वामकमला नायिका सयोग के निश्चय में रतिशुद्ध के तब पर प्रियमन के आगमन की प्रतीक्षा में रहती है। कविवर के अनुसार वामकमला नायिका विनाग मकतों में सुकत होकर रतिशुद्ध के तब पर पति आगमन की प्रतीक्षा करता है।<sup>३</sup>

१. कविवर

जा २० २०१० ७

२. का २ ३१३६

४. कविवर ६६

५. कविवर ७१

वासक म वर्ध अथ प्रचलित रहे । निघट्ट म इसक छ अथ मिलते हैं ।<sup>१</sup> कुछ आचार्यों न वासक का वार या दिन क अथ म ग्रहण किया है । प्रिय वासर का अथ उनक अनुसार प्रिय क मिलने का निश्चित दिन है । उस दिन का निश्चय होन पर सम्भोग की सामग्री सजानवाली नायिका ही वासकसज्जा है । भानुदत्त इमी अथ का उकर चतनवाला की परम्परा म आत हैं ।<sup>२</sup> गिगभूपाल ने भरत आदि प्राचीन आचार्यों क अनुसार वामक को त्रिवसायक माना है— भरताचरभिदधे स्त्रीणा वारम्तु वामक । भोज ने वासक का अथ वासगृह लिया है ।<sup>३</sup> भोज की वामकमज्जा रति गृह की सज्जा म तत्पर रहती है । उसक पूण हा जान पर प्रियागमन की प्रतीक्षा करती है । बगव का लक्षण इम परम्परा म ही आता है । गिगभूपाल न वामकमज्जा की चट्टाओं का उल्लस किया है । बगव न उन चट्टाओं की लम्बी सूची तो नहीं दी पर मविनास कहकर उसकी चेट्टाओं की ओर सकेत तो किया है । साथ ही रतिगृह द्वार की ओर उत्सुक नायिका का वार वार दखना भी दिखाया है । इस प्रकार वामक गण क अथ की दृष्टि स बगव का लक्षण भोज स मिलता है । और चट्टा की दृष्टि स गिगभूपाल म । आग क रीतिकालीन आचार्यों न भानुदत्त को अपनाया है । मतिराम न पत्यागमन क निश्चय और सज-म जा तथा शृंगार को लक्षणो म परिगणित किया है ।<sup>४</sup> पर भानुदत्त ने वासकसज्जा की चट्टाओं म प्रतीक्षा को सम्मिलित किया है । बगव न इम भी अपनाया है ।

उदाहरण म प्रच्छेन और प्रकाश भेद है । इनम वासकसज्जा क स्वरूप और चट्टाओं का लक्षणानुरूप सामंजस्य है ।

### अभिसारिका

अभिसारिका प्रिय स जाकर मिलती है । उसम प्रेम, गव या वाम का भावा तिरक रहता ह । इसी आधार पर प्रमाभिसारिका गर्वाभिसारिका और कामा भिसारिका—य तीन भेद उसर किए गए हैं ।<sup>५</sup> स्वकीया और परकीया अभिसारिकाओं क उदाहरण प्रस्तुत कर सामान्या पर आकर बगव की लेखनी रक गई है । वस उहाने अथ नायिकाया स अभिसारिकाया का विस्तार देकर अपनी रचि का लगाव स्पष्ट किया है ।

भरत ने अभिसारिकाया क अभिसरण प्रकार की चर्चा कुछ विस्तार स की

- १ वारश्च अनुकालश्च प्रवामानागनक्रिया ।  
प्रमान च ग्याया नायिकायास्तथात्मव ।  
नव दाभ्युपपत्तिश्च पदन वामका स्मृता ॥ निघण्टु
- २ रमनजरी रलाक ६३ के परचाट् ।
- ३ मरस्वभावुल्लकटाभरण रलो० ११७
- ४ रमाण्यवसु शंकर, पृ० ३१
- ५ रमराज छ १६७
- ६ रमिकप्रिया ७।२५

है।<sup>१</sup> विश्वनाथ ने अभिसारिका को काम विवशा लिखा है।<sup>१</sup> उन्होंने स्वकीया पर काया और प्रेय्या अभिसारिकाओं के अभिसार लक्षण दिए हैं। फिर अभिसरण-स्थल भी गिनाए हैं।<sup>१</sup> उस प्रकार केगव का आधार यहाँ विश्वनाथ से भिन्न है। उन्होंने प्रेम गव और काम के आधार पर तीन ही अभिसारिकाओं को माना है। विश्वनाथ ने अभिसारिका सामाया को काम विवशा ही देखा है। भरत ने उसे काम और गव दोनों के वग कहा है। साथ ही नायिका जाती नहीं नायक को स्वयं बुलाती है।<sup>१</sup> पर नायिका का जाना या नायक को बुलाना इन दोनों ही की सम्भावना घनजय विश्वनाथ भूपाल और भानुदत्त ने मानी है।<sup>१</sup> भोज ने नायिका गमन का ही उल्लेख किया है।<sup>१</sup> केगव ने नायिका के ही अभिसरण की बात कही है। इस दृष्टि से केगव भोज के समीप हैं।

नवलकिंगोर प्रेस तथा वैकटेश्वर प्रेस की प्रतियों में एक कुलटा का लक्षण निरूपक दोहा तथा कुछ अन्य छंद छंदे हैं जिन्हें विश्वनाथप्रसाद मिश्र ने प्रक्षिप्त मानकर छोड़ दिया है। केगव की कुलटा या सामाया सम्बन्धी दृष्टि को दखत हुए यह युक्तियुक्त ही लगता है। हिंदी के अन्य आचाय हिततरंगिणीकार के अनुमरण पर प्रायः प्रिय के जाने या नायिका के जान—दोनों के अभिसार की बात का उल्लेख करते हैं। मतिराम और सोमनाथ ने भी दोनों के उदाहरण दिए हैं। कामशास्त्र में भी दोनों ही की सम्भावना मिलती है।

### स्वकीया अभिसारिका

केगव के अनुसार आभूषण भूषिता वधुओं के साथ सलज्ज पद वियास करनी हुई यह अभिसारिका अभिसार के लिए जाती है। डा. हीरालाल दीक्षित ने तथा डा० किरणचन्द्र गर्मा ने वधुओं के साथ स्वकीया अभिसारिका का जाना लिखा है।<sup>१</sup> वस्तुतः अभिसारिका अन्य कुलवधुओं के साथ सलज्ज रतिशृङ्खला को जाती है

१ ना शा २४२१६ २२१

२ सा द १७६ ७३

३ ४६

४ ना शा २ १०२२

५ (क) कामानाभिषरत्काले सारयः अभिसारिका । तरारूपक २१०७

(ख) ना द ३१७३

(ग) रम्यावमसाकर

(घ) स्वयं भिसरति प्रिय-भिसारयति वा सलज्जभिसारिका । रम्यावमसाकर के मन्सात्र में भी पायीं हो  
संभवतः सलज्ज ही है— दोना के वग स्वयं का गमनम् । कामशास्त्र ११०१११

६ दुष्पुत्रादिना काले कर्ति वा सुभिसारिका । सुरम्ब ज्ञानकटावाम् ३१ ना ११४

७ काले ह्ये प्रियं यत्नं गमनं क विवक्षुः कार ।

विदह कार अनु यत्न अभिसारिका मु ३३३ ॥ हिन्दू विंगी

विदह कुला जागुके आरिड प्रिय पै कार । रम्याव १३

रम्यावमसाकर १११३६

८ आकाशकाले १ २२२ केरवाम् ३३३ १ ४१५

व घुघ्रो' व साथ नहीं। विश्वनाथ की अभिसारिका स्वकीया भी भूषणा स सुसज्जित है। पर उसकी नज्जा की अभिव्यक्ति भूषण वरणन और ध्वनि की बन्द करन म होती ह।<sup>१</sup> बगव की स्वकीयाभिसारिका सलज्ज पदविद्याम व द्वारा वरणन भी रोकती ह। लज्जा भी यत्न करती ह। अवगुण्टन वा वणन बगव ने नहीं किया। वस्तुत स्वकीया अभिसारिका गुरुजना की दृष्टि बचाकर ही अभिसार क लिए जाती ह। सतियों क बीच उस घू घट निकालने की आवश्यकता ही नहीं होती। वस विश्वनाथ का लक्षण विस्तृत ह पर बगव का निरूपण उनस नितात भिन नहीं।

### परकीया अभिसारिका

इसका लक्षण बगव ने या दिया ह दामी सहेत्री वधुघ्रा (बघुघ्रा) क साथ सलज्ज भाव स भाग म समलकर पत्र वि यास करती हुई यह नायिका अभिसार क लिए जाती ह।<sup>१</sup> यह लक्षण स्वकीया म नितात भिन नहीं ह। टा० विरणचन्द्र गर्मा के अनुगार कुलजा का जो निर्देश भरत और विश्वनाथ न किया ह उसम स्वकीया और परकीया दोना ही आ जाती हैं। इसका कारण उहाने यह लिया ह कि विश्वनाथ न तीन अभिसारिकाओ म स परकीया को नहीं गिनाया।<sup>२</sup> कुलजा क अतगत परकीया का सम्मिलित करना अधिक समीचीन नहीं दिखाई देता। पर वस्तुस्थिति कुछ ऐसी ही दिखाई देती ह। बगव के लक्षणा स कुलजा की ध्वनि ही निकलती ह।

भानुवत्त न परकीया के उदाहरण म उसक प्रेम क प्राबल्य कठिन परिस्थि तियों के प्रति एक साहसपूर्ण उपक्षामाव और उसकी अप्रतिहत गति के तत्त्वा को ही स्पष्ट किया ह। बगव क निरूपण म इनकी कोई छाया नहीं ह।

### सामान्या अभिसारिका

सामान्या म नज्जा का अभाव और साहस की अघिकता होती ह। उसका चित्त चकित-सा हाना ह। वह नीच वस्त्र धारण करती ह। ममस्त मोदय प्रसाधनों स भूषित चतुर्दिक नयन विनास करती हुई हमती हुई रमिका क मन को मोहती हुई मन्त्र गति स सखियों क साथ जार पति क पास अभिसार करती ह।<sup>३</sup> इस प्रकार समय और वस्त्रा क अनुमार वह कृष्णाभिसारिका क रूप में प्रस्तुत की गई है।

यहा उल्लेखनीय यह है कि सामान्या अभिसारिका क निरूपक दोहे श्रीवैक टेश्वर प्रेम स प्रकाशित प्रति म तो प्राप्त होत हैं प० विश्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित प्रति म इनका समावेश नहीं है। अथत्र सामान्या रूपो का निरूपण न होन क कारण यही उचित प्रतीत होता है कि सामान्या अभिसारिका का भी निरूपण

१ सा० द ३।७७

२ रतिक्रिया ७।२७

३ केशवाम जोवनी, कला और श्रुतिव पृ ४१६

४ रसनकरा ७८

५ रतिक्रिया, श्रीवैकटेश्वर प्रेम दो० २८ १०

कंगव ने न किया हो।

इसके अनंतर कंगव ने क्रमशः प्रच्छन्न प्रेमाभिसारिका, प्रकाश प्रेमाभिसारिका प्रच्छन्न गवाभिसारिका प्रकाश गर्वाभिसारिका प्रच्छन्न कामाभिसारिका प्रकाश कामाभिसारिका के उदाहरण बिना लक्षण दिए हुए ही प्रस्तुत किए हैं। इन उदाहरणों में इन नायिका भेदों के अनुरूप नायिका की परिस्थितियों एवं प्रवृत्तियों का स्पष्टीकरण हुआ है। कंगव ने कृष्णाभिसारिका गुह्याभिसारिका आदि भेदों का निरूपण नहीं किया पर उनके उदाहरणों में इन भेदों की भन्नकें हैं। कंगव के उदाहरणों में विविध आचार्यों की उक्तियों की सामान्य छायाएँ भी डूबी जा सकती हैं जो एक सामान्य सी बात है। इन उदाहरणों में लक्षणों में समन्वय ही नहीं राधा कृष्ण के उदाहरणों की रमिकता की मात्रा भी गहरी है।

वियाग के अनुसार नायिकाएँ

उत्का

नायिका प्रिय की प्रतीक्षा में रहती पर वह किसी कारण से नहीं आया। उस के मन में उसका न भ्रान्त सन्तक सत्त्व विकल्प उठे। एसी स्थिति में दुःख का अनुभव करती हुई नायिका उत्का कहलाती है।<sup>१</sup> भरत का लक्षण भी हमसे मिलता जुलता है।<sup>२</sup> पर भरत ने नायिका के हृदय में उठते सत्त्व विकल्पों का तथा विविध सत्त्व का उल्लेख नहीं किया। विवनाथ ने भी सोच से यह लक्षणों में नहीं बह उदाहरणों में स्वाभाविक रूप से इनकी योजना अवश्य की है।<sup>३</sup> विवनाथ की विरहावधि और कंगव की उत्का एक ही है। घनजय और भानुदत्त के लक्षण भी लगभग एव ही हैं। हिंदी के आचार्यों में प्रायः सभी समान हैं। सभीने प्रियागमन फिर उसका भ्रान्त न भ्रान्त पर तक वितक की चर्चा की है।

कंगव ने उत्का के भी प्रच्छन्न और प्रकाश भेद कर उदाहरण किया है। उत्का की प्रच्छन्नता हमसे है कि वह भ्रान्त सत्त्व के द्वारा विरमाय जान की बात नहीं कहती। उत्का नायिका के निरूपण में प्रतीक्षमाणा नायिका द्वारा नाना सत्त्व और वितकों की योजनाएँ आचार्यों ने की हैं। विवनाथ ने भी एक उम्मीद मूची दी है। कंगव के कुछ वितक विवनाथ में मिलते हैं। हमसे हम नायिका के चित्र मधुर हो जाते हैं।

सन्दिग्धा

कंगव की सन्दिग्धा का स्वरूप यह है प्रियतम नायिका से घन या वचन दे फिर उस रात न आकर प्रातः आवे। उस स्थिति की नायिका सन्दिग्धा हानी है। नायिका उमसे आकर नाना प्रकार की बातें भी बनाता है।<sup>४</sup> हमसे नायक का रात की

१ रामकृष्ण ७७

२ नाश १२०६

३ म २ ३ ६

४ इतिहास २१ ११८ समान १२६ समान १२६

५ इतिहास ३१६

न आना अथ-मम्भाग को यत्न करता है। प्रातः वह अपराधी की भाँति आता है। विश्वनाथ न उम सम्भाग चिह्नों में युक्त आता कहा है नायक हा नायिका व ईर्ष्या व नुपिना होने की बात भी स्पष्ट की है।<sup>१</sup> बगव न यह सब यजना पर टाड लिया है। उदाहरणों में प्रिय व जागर खिन नथ और नायिका व मन-प्राघ और अथ नायिका व प्रति ईर्ष्या स्पष्ट हो जाती है। इस प्रकार क उदाहरण उनक लक्षण व पूरक हैं। बगव ने नायक का प्रातः लौटना भी माना है। यह स्पष्ट है। भानुत्त यह मानकर कि अथ सम्भोग रात में नहीं दिन में भी हो सकता है नायक के लौटने व समय व विषय में चुप हैं। हिन्दी व आचाय प्रातः निवतन और रतिचिह्न योग—दानों की चर्चा करते हैं। मतिराम न प्रातः आगमन का उल्लेख नहीं किया भिन्नारीदाम न बगव व समान रतिचिह्नों की चर्चा नहीं की। पर मायताए मव की लगभग समान हैं।

यहाँ भी बगव ने अपनी परिपाटी के अनुरूप प्रच्छन्न और प्रकाश सङ्गिता व चित्र उदाहरण रूप में प्रस्तुत किए हैं। य उदाहरण उक्षण व पूरक हैं यह हम वह चुक हैं।

### अभिमधिता

अधिकार आचार्यों न इस नायिका को कनहातरिता के नाम से पुकारा है। इस भेद की पृष्ठभूमि में माना है। मानिना नायिका को मनान का प्रयास नायक करता है। वह प्रिय व अनुभव का ठुकराकर उमका अपमान कर देती है पर पीछे प्रिय की मद में दूना तडपनी है।<sup>२</sup> यही इसका मुख्य रूप है। भोज धन-य वि रनाथ भानुत्त सब्रम यह प चाताप उल्लिखित है।<sup>३</sup> इसक अनुसार कलह में अतरिता नायिका कनहातरिता नाम तो ठीक है पर अभिमधिता नाम अत्रिक स्वरूपानुरूप नहीं है इस नाम में प्रतारणा का पक्ष प्रमुख है। प्रिय की प्रतापणा करी व कारण इस नायिका का यह नाम लिया जा सकता है। बगव न यही नाम स्वीकार किया है। गण्डगा नायिका ही प्रिय से कलह कर अभिमधिता या 'कनहातरिता' व रूप में परिणत हो जाती है।

बगव न इसक कवच प्रच्छन्न और प्रकाश भेद ज्ञा किए हैं, स्वकीया परकीया आदि भेद नहीं किए। बगव व उदाहरणों में नायक व पात वतन की कामगास्त्रीय और कायगास्त्रीय परम्परा में प्रचलित बात तो कही गई है पाद-ताडन की बात नहीं कही गई जिसका उल्लेख उक्त परम्पराओं में मिलता है।<sup>४</sup>

१ मा० ८ २।७५

२ रतिकप्रिया ७।१३

३ मरुताजुलकण्ठाभरण, श्लो० ११५ अक्षरूपक मा० ६० श। २ रसदंजरा, श्लो० ४८ और ४६ के शीर।

४ तस्य न वानमुत्तरेण योजयती विद्ववाधा सक्चन्द्रमया आग्यमुन्नमदय पातन कदा।



तीन भद हैं उत्तमा मध्यमा अधमा ।

### उत्तमा

यह नायिका कवयवहार की दृष्टि से आदर्शतम स्थिति है। उसमें प्रियतम क प्रति सम्मान भावना हाती है। प्रियकृत अपमान पर भी वह ध्यान नहीं देती। अपमान क बल भी वह सम्मान करती है। बड़ा सम्मान पान पर ही मान माचन कर देती है। प्रिय दानमात्र से ही सुख प्राप्त करती है।<sup>१</sup> सम्भवतः नायिका क इस व्यवहार क मूल में काम प्रेरणा नहीं सामाजिक और पारिवारिक जीवन की मधुरता ही आधार है। शृंगार में मान न विविध रूप इसमें सम्मिलित हैं।

गिरिभूषालन उत्तमा आदि क लक्षणों का निरूपण किया है।<sup>१</sup> उनमें अनुसार उत्तमा का उल्लेख है। उत्तमा किसी कारणवश ही शोध करती है और नायक के द्वारा मनान पर प्रसन्न हो जाती है।<sup>२</sup> इसमें लघु मान का तत्त्व कगव क समान ही है। भूपान में सकारण शोध की बात कही है पर कगव अपमानित होने पर भी सम्मान देने की बात कहते हैं। अन भूपान में कगव का आगिन साम्य ही है। रमाशयसुधाकर से उनका अधिक साम्य है जिससे अनुसार प्रिय द्वारा अप्रिय आचरण किए जान पर भी वह प्रिय क प्रति प्रियाचरण ही करती है। भानुजित क अनुसार प्रियतम द्वारा किए गए अहित का समझ करन भी उत्तमा उत्तपर राय प्रकट नहीं करती उल्टे उमका हिन ही करती है।<sup>३</sup>

हिन्दी क परवर्ती आचार्यों ने प्रायः भानुजित का ही अनुसरण किया है। विनामगि मामगाय मतिराम क निरूपण भानुजित क छायानुसार से है।<sup>४</sup> दास ने मान का विभाजक आधार बताया है। उत्तमा में मानाभाव मध्यमा में लघु मान और अधमा में बिना अपराध क भाग्यमान हाता है।<sup>५</sup> कगव का निरूपण अधिक शायिक आचार्यानुकूल एवं मनावतानिक है। हल्का मान वह भी स्वयं सम्मान से छूट जानवाना इस बीध की स्थिति को ही उन्होंने स्वीकार किया है।

### मध्यमा

कगव क अनुसार छोटा दाप हान पर भी मध्यमा मान करती है। बहुत सम्मान पान पर उम मान को छोड़ पानी है। स्वभावगत सादृक्ता इसमें उत्तमा में कम हाती है। उत्तमा क घतिरिक्त गुणा का इसमें अभाव हाता है। भानुजित ने

१ रत्नक प्रसा ३३६

रत्नाग मुद्राकर पृ ६७ रत्ना १२७ १५७

२ वनी

४ वनी

५ रत्नक प्रसा पृ ८४ रत्ना ८६ म पृ ४

६ रत्नक प्रसा

७ रत्नक प्रसा ७३७

इसका लक्षण भी हिताहित व अनुसार किया है। प्रिय व हित करने पर हितकारिणी अहित करने पर अहितकारिणी चेटाए करनवाली नायिका मध्यमा होती है।<sup>१</sup> हिंदी के आचार्य प्रायः भानुदत्त व अनुयायी रहे हैं। कंगव ने उसका लघुमानमूलक लक्षण दिया है। इसमें स्पष्ट है कि उहोने गठे गठय समाचरेत् की भानुदत्त की व्यावसायिक बुद्धि को सामन नहीं रखा। मान क टूटने पर हित-भम्पादन तो ही ही जाता है।

मध्यमा का उदाहरण लक्षण व अनुरूप है। उसमें दीघ मान का निरूपण किया गया है उसमें माचन का प्रयाम नहीं लिखाया गया। भानुदत्त और उनकी परम्परा व परवर्ती हिंदी आचार्यों से कंगव की न लक्षण समानता है न उदाहरण समानता।

### अधमा

यह नायिका अकारण ही रुष्ट हो जाती है तो अकारण ही तुष्ट हो जाती है। अर्थात् इसकी प्रकृति चंचल होती है।<sup>१</sup> भानुदत्त ने भी लगभग ऐसा ही लक्षण किया है। पर उनकी दृष्टि भिन्न है। प्रिय के हित का बदला अधमा अहित म देती है। अकारण शोध करनेवाली यह नायिका अधमा है।<sup>१</sup> भानुदत्त का अनुकरण करनेवाले हिन्दी के चिन्तामणि मतिराम सोमनाथ प्रभति आचार्यों ने भी यही लक्षण दिया है। नायिका का दीघ मान रमाभाम कर देता है यह कवगा का लक्षण है। बिहारो ने भी इस नायिका का अधम चित्र दिया है।<sup>१</sup> इसकी अधमा कहन का कारण प्रमुगत इसका दीघ मान ही है। पर कंगव ने इस दीघ मान का अपने लक्षण में आधार नहीं बनाया। उनके उदाहरणों में एतका कुछ आभास अवश्य है। हिंदी में दाम न इसा तत्त्व का प्रमुखता दी है।<sup>१</sup> उनके अनुसार अधमा क्षिना अपराध ही गुरु मान करती है। कंगव ने मान से अधिक स्वभाव की चंचलता का संकेत किया है। इस चंचलता में ही मान की अकारणता निहित है। उदाहरण को लक्षणानुरूप बनाने का अपेक्षा उसमें उन सभी प्रवृत्तियों और चेटाए का निराकरण का उपन्य दिया गया है जो प्रिय और प्रिया के बीच अंतर उपस्थित करें।<sup>१</sup>

### अगम्या नारिया

नायिका प्रकरण के अंत में कंगव ने अगम्या नारिया का भी उल्लेख किया

- १ रसज्ञरी, रत्ना ६० म पूव
- २ रमिकप्रिया ७।६०
- ३ रसज्ञरी, रत्ना ६१ म पूव
- ४ रसज्ञ २३४ रमधीनूपनिधि ६
- ५ बिहारी मदनम ६८६
- ६ अगारनिणय
- ७ रमिकप्रिया ७।४१

तीन भद हैं उत्तमा मध्यमा अधमा ।

### उत्तमा

यह नायिका कण्वहार की दृष्टि से आदागतम स्थिति है। एतन् प्रियतम क प्रति सम्मान भावना हानि है। प्रियकृत अपमान पर भी वह ध्यान नहीं लेती। अपमान क क्षण भी वह सम्मान करता है। धान्य सम्मान पान पर ही मान माचन कर देती है। प्रिय दानमात्र से ही मुक्त प्राप्त करती है।<sup>१</sup> सम्भवतः नायिका कण्व यवहार क मूल में काम प्रेरणा नहीं सामाजिक और पारिवारिक जीवन की मधुरता ही आधार है। शृंगार में मान क विविध रूप इससे सम्बद्ध है।

विमभूषालन उत्तमा आदि कण्वारो का निरूपण किया है।<sup>१</sup> उन- अनुसार उत्तमा का उल्लेख है उत्तमा किसी कारणवश ही त्राघ करती है और नायक क द्वारा मनान पर प्रमत्त हो जाती है।<sup>२</sup> एतन् लघु मान का तत्त्व कण्व क सम्मान ही है। भूषण न सकारण त्राघ की बात कही है पर कण्व अपमानित होने पर भी सम्मान दान की बात कहते हैं। एतन् भूषण में कण्व का आगिद माध्य ही है। रमाणदमुधाकर से उनका अधिक माध्य है जिसके अनुसार प्रिय द्वारा प्रिय आचरण किए जान पर भी वह प्रिय कण्वि प्रियाचरण ही करती है। भानुत्त के अनुसार प्रियतम द्वारा किए गए अहित का समझ करण भी उत्तमा उनपर शप प्रकृत नहीं करती उल्टे उसका हिन ही करती है।

हिन्दी क परवर्ती आचार्यों ने प्रायः भानुत्त का ही अनुसरण किया है। चिन्तामणि गोमनाथ मतिराम क निरूपण भानुत्त क छायावाद से है। दास ने मान को विभाजक आधार बनाया है। उत्तमा में मानाभाव मध्यमा में लघु मान और अधमा में बिना अपराध क भाग्यमान होता है।<sup>३</sup> कण्व का निरूपण अधिक व्यावहारिक आदर्शानुसूल एवं मनोवैज्ञानिक है। हल्का मान वह भी स्वल्प सम्मान से छूट जानवाला इस बीच की स्थिति को ही उद्धान स्वीकार किया है।

### मध्यमा

कण्व क अनुसार थोड़ा दोष होने पर भी मध्यमा मान करती है। बहुत सम्मान पान पर उस मान को छोड़ पाती है। स्वभावगत सात्त्विकता इसमें उत्तमा में कम हाती है। उत्तमा क अतिरिक्त गुणा का इसमें अभाव होता है। भानुत्त ने

१ रसिकप्रिया ३३६

२ रमाणदमुधाकर पृ ३६ ७ श्लो १६२ १५७

३ धनी

४ वही

५ मननरी पृ ८६ श्लो ८६ से पूर्व

६ आरानलय

७ रसिकप्रिया ७३८

इसका लक्षण भी हिताहित व अनुसार किया है। प्रिय के हित करने पर हितकारिणी अहित करने पर अहितकारिणी चप्टाए करनेवाली नायिका मध्यमा होती है।<sup>१</sup> हि दी व आचाय प्राय भानुदत्त के अनुयायी रहे हैं। कथव न उसका लघुमानपूलक लक्षण दिया ह। इससे स्पष्ट है कि उन्होंने गठे गठय समाचरत् की भानुदत्त की व्यावसायिक बुद्धि को सामन नहीं रखा। मान क दूटने पर हित-सम्पादन तो हो ही जाता है।

मध्यमा का उदाहरण लक्षण क अनुरूप है। उसम दीध मान का निरूपण किया गया है उसक भाचन का प्रयाम नहीं लिखाया गया। भानुदत्त और उनकी परम्परा व परवर्ती हिनी आचार्यों स कथव की न लक्षण समानता है न उदाहरण समानता।

### अधमा

यह नायिका अकारण ही रुष्ट हो जाती है तो अकारण ही तुष्ट हो जाती है। अर्पण् एमकी प्रकृति चचन होती है।<sup>१</sup> भानुदत्त न भी लगभग एसा ही लक्षण किया है। पर उनकी दृष्टि भि न है। प्रिय के हित का बदला अधमा अहित स दती है। अकारण प्राध करनेवाली यह नायिका अधमा है।<sup>१</sup> भानुदत्त का अनुकरण करनेवा न हिनी क चित्तामणि भतिराम सोमनाथ प्रभृति आचार्यों ने भी यही लक्षण दिया है। नायिका का दीध मान रमाभाम कर दता है यह ककगा का लक्षण है। बिहारी न भी इस नायिका का अधम चित्र दिया है।<sup>१</sup> इसको अधमा कहन का कारण प्रमुगत इसका दीध मान ही है। पर कथव न इस दीध मान का अपने लक्षण म आधार नहीं बनाया। उनक उदाहरणाम इसका कुछ आभाम अवश्य है। हि दा म दाम न इसी तत्त्व को प्रमुयता दी है।<sup>१</sup> उनक अनुसार अधमा बिना अपराध ही गुरु मान करती है। कथव न मान से अधिक स्वभाव की चचलता का सक्त किया है। एम चचलता म ही मान की अकारणता निहित ह। उदाहरण को लक्षणानुरूप बनाने का प्रपक्षा उसम उन सभी प्रवृत्तिया और चेटाया व निराकरण का उपदग दिया गया है जो प्रिय और प्रिया व बीच अंतर उपस्थित करें।

### अगम्या नारिया

नायिका प्रकरण क अत म कथव न अगम्या नारिया का भी उल्लेख किया

१ रसमजरी श्ला ६० स पूव

२ रमिकप्रिया ७।१०

रसमजरी, श्ला० ६१ म पूव

४ रसरान ० ४ रमधीयूनिधि ६

५ बिहारी मत्तम ६ ६८६

६ उदारनिधय

७ रमिकप्रिया ७।४१

है। वस्तुतः इन अगम्या नारियों की धारणा समाज मर्यादा पर आधारित है। यह भी कामगास्त्रीय स्रोत में निहित है। रसागा म या रस परिपाक म एमका सीधा महत्त्व नहीं है। इसीलिए मस्कृत क नायिका भेदा आचार्यों ने एमका उल्लेख नहीं किया। किंतु आनन्दवर्धन और उनकी परम्परा क गभा आचार्य रस-परिपाक के लिए अनौचित्य निवारण अनिवार्य तत्त्व मानते हैं। शृंगार म तो अनौचित्य का समावेश सहज सम्भव है। नाना प्रकार की नायिकाया क निरूपण म फला द्रुमा शृंगार अपन अनौचित्य की सीमाएँ खो सकता है और तब सहज ही रसाभास क गत म गिर सकता है। सम्भवतः एमी सम्भावना स कवच ने अगम्या नारिया की चर्चा अनन नायिका निरूपण क उपसंहार रूप म की है।

अगम्या नारिया म पहली श्रेणी उनकी है जो उन सम्बन्धिया की स्त्रिया हैं जो पूज्य हैं या यह विवास रखत हैं नि यह समागम नहीं हो सकता। एम आती हैं सम्बन्धी की स्त्री मित्र की स्त्री ब्राह्मण की स्त्री। एमरी श्रेणी उन स्त्रिया की है जो विपत्ति म अस्त हा और जिनकी पुरुष न मटायना का हो। एम प्रकार किसीकी विवर्गता का नाश उठाकर गोपण क आधार पर अथवा अपन उपकार क बदल सम्भाग करना उचित नहीं। तीसरी श्रेणी उन स्त्रियों की है जिनक साथ सम्बन्ध अनुलोम प्रतिलोम पठता है जम उच्चवर्णीय पुरुष का निम्नवर्णीय स्त्री क माय या एमक विपरीत। चौथी श्रेणी म विधवा तथा पूजा स्त्रिया हैं। पाचवीं श्रेणी म गारीरिक रूप स विकृत या रण स्त्रिया आती हैं। इन समस्त नारियों क साथ रति मन्त्र क रसाभास का ही पोषक होगा।<sup>१</sup>

कामगास्त्र म भी कवच म ही नारिया अगम्या मानी गई हैं। वहा कुछ लम्बी सूची दी गई है।<sup>२</sup> उस सूची म स अधिकांश कवच स मिलती है। कुछ को कवच न रसानुकूल न होने क कारण छोड़ दिया है। वृद्धा रोगिणी आदि का अगम्या मानन का आधार आयुर्वेदग्रन्थो म भी है।<sup>३</sup> धमगास्त्रा म भी एम प्रकार की चर्चा मिलती है। मनुस्मृति म रणा आदि को वज्रितामा म गिनाया गया है। समस्त गुरु पत्निया निषिद्ध हैं। एस प्रकार कवच का अगम्या निरूपण का प्रकरण कामगास्त्र तथा धमगास्त्र पर आधारित तो है ही साथ म रसानुकूलता के अनुरूप भी है।

### उपसंहार

उन नायिकायो के गुणफल स कुल ३६० भेद हो जात हैं। पर कवच ने एस सख्या को पूणत सुनिश्चित नहीं माना है। जाति काल वय तथा भाव के अनु

१ रतिक्रिया ७।४३-४४

२ अगम्यास्त्ववेना — कुण्डलियुग्मत्ता पतिना भिन्नरश्म्या प्रकाशाप्रदिनी मनप्रायवैवनातिरवेना दिव्यया दुग्धा सम्बाधनी सती प्रज्जिता सम्बन्धिनसिरोत्रियराज्जाराज ।”

—काम्युत्तर १।१।२६

३ अष्टांगहृदय निगनस्थान अ १४

४ मनुस्मृति ३।७-८

सार अथ अनेक भङ्ग भी हो सकत हैं। जाति व अनुभार नायिकाएँ कामगास्त्र म भी मिलती हैं। साहित्यगास्त्र में भी इनकी परम्परा है। रसिकभक्ति और उमक गास्त्र म भी इनकी स्वीकृति है। कंगव क पञ्चान दव न जातिया क अनुभार नायिकाओं क भेद किए हैं पर कंगव न इह छान लिया है। उहोंन सामाया क भी अपन विवचन म स्थान नही दिया।

स्रोत की दृष्टि म रीतिकालीन आचार्यों म कंगव का स्थान सबसे पृथक है। उहोंने आर्य बंद कर किसी एक आवाय का अनुगमन नहीं किया। रीतिकालीन अथ हिन्दी आचार्यों न भानुदत्त का पलना पकड लिया है। कंगव अपनी प्रवृत्ति व अनुरूप मूल स्रोतों की ओर चन हैं। कामगास्त्रीय कायगास्त्रीय धमगास्त्रीय, भक्तिगास्त्रीय तथा साहित्य प्रकृति एव वस्तुस्थिति की परम्पराओं और आवश्यकताओं क अनुरूप उहोंन सतक चुनाव करन का प्रयास किया है। व विविध प्रभावा म प्रभावित हुए हैं। हिन्दी की परम्परा म परकीया व विषय म एक विंगप दृष्टि प्रवर्तित हो चुका थी। व अब न उमका ध्यान रखा है। सामाया का तिरस्कार सामाजिक नतिकता और भक्तिदृष्टि दोनों क अनुरूप है। कंगव प्रच्छन्न और प्रकाश रूप उकर चन हैं इन म। का आधार गोप्यता और प्रकाश्यता क आधार पर है। पीछे व आचार्यों स कंगव क नाम्य का निरूपण इन सक्षप म यथास्थान करत चल हैं। दख उनक विंगप रूप म ऋणी हैं। कंगव न नायिका भङ्ग को शृंगार विंगपत सपाठ शृंगार व अलगत रखा है। (रसिकप्रिया ७।४५) पर उनकी नायिकाओं म विधोनिनी नायिकाएँ भा हैं। अत नायिका भङ्ग दोनों स ही सम्बद्ध हैं। इम क्षेत्र म कंगव की कुछ मौलिकताएँ भा हैं। जो एक सात स निमत परिपाठी कंगव क पूर्व या उनक पञ्चात् साहित्य म प्रचलित चनी आ रही थी उमका विस्तार कंगव न मूल स्रोत म सामग्री लेकर किया। उहान अनक विषय म अनावश्यक विस्तार को समाप्त कर नायिका निरूपण का रसानुबूत बनाया है। उहोंन कामगास्त्राय स्रोत की कुछ नायिकाओं का लिया और अगम्या नायिकाओं का निरूपण किया। रसाभास और रगपरिपाठ की दृष्टि स उहान इहें गिनाया है। नायिका भङ्ग जस विषय का कंगव न सामाजिकता क यथागम्यव निकट रखन का प्रयास किया है। उनक ममस्त उगाहरण राधा कृष्ण व प्रेम त्रिपयक हान क कारण हरिशृंगार क ही अलगत स्रोत हैं। अत उनका मसूचा नायिका भङ्ग रसिकप्रिया की मूल चनना म एकमूर्त्रित है। जो मायतागम कधी म अलग भी पडता है व काव्यगास्त्रीय परम्परा म प्रचलित मायताओं का परिचित करान क लिए नर ममन्नी चाहिए। हिन्दी म उनका नायिका भङ्ग निरूपण इस दृष्टि स मवया अलग है।

## पंचम प्रकाश अलंकार-विवेचन

जिस प्रकार रसिकप्रिया एक रसग्रन्थ है उसी प्रकार कविप्रिया एक अलंकार ग्रन्थ। हम प्रस्तुत प्रकाश में कविप्रिया में निरूपित कवय क अलंकार निरूपण का अध्ययन प्रस्तुत करना चाहते हैं।

### केशव का अलंकारवाद

कई विगिष्ट कारणों से जिनमें काव्य में गहरी अलंकार प्रियता भी एक प्रमुख कारण है कवय को अलंकारवादी आचार्य कहा जाता है। उनके अलंकारवाद को ठीक अर्थ में समझने के लिए हम चार तर्कों पर दृष्टि डालनी होगी

- १ कवय काव्य में अलंकारों का एक अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान मानते हैं।
  - २ कवय ने अपना विगिष्टालंकारों का निरूपण प्राचीन अलंकारवादी आचार्यों के आधार पर किया है।
  - ३ कवय भामह दण्डी आदि प्राचीन अलंकारवादी आचार्यों के समान रसों को रसवदलकार कहते हैं।
  - ४ कतिपय प्राचीन अलंकारवादियों के समान ही उन्होंने कवय विषय और वचन गली—दोनों ही को अलंकार के भीतर रखते हुए रस गान के अत्यन्त व्यापक अर्थ में गृहीत किया है।
- इन चारों तर्कों पर हम यहाँ विचार करना चाहते हैं।

### काव्य में अलंकारों का स्थान

इस सम्बन्ध में कवय की यह उक्ति अत्यन्त प्रचलित है

जदपि मुजाति सुलच्छिनी सुवरन सरस सुवृत्त।

भूपन विनु न विराजई कविता यनिता मित ॥<sup>१</sup>

(कविता अर्थ सभी गुणों से युक्त हा सुंदर लक्षणवती हो सरस हो सुंदर

छन्दोमयी हा [किन्तु बिना अलंकारों के विगय रूप से उपोभित नहीं हो सकती ]

कवय की रस उक्ति से यही तात्पर्य निकलता है कि कविता को विराजित

या विगय रूप से उपोभित करने के लिए उसकी अलंकार सजा अपेक्षित है।

रस विवेचन में हमने देखा है कि केशव किम प्रयोग का यम रसक प्रति आग्रही है। अतः अलंकार उनका अनुगार आत्मस्थानीय नहीं हो सकत। यहा भी अलंकारों द्वारा कविता के विराजित होने की बात उहाम कही है न कि अनुप्राणित होने की। दोष विवेचन के प्रसंग में हम देखेंगे कि केशव न काय का आत्मतत्त्व विगिष्ट अर्थ को माना है जिसके अभाव में काय मृतक हो जाता है। अलंकारहीनता पर काय मृतक नहीं बचन नग्न कहा गया है। यहा भी यही दृष्टि प्रति पान्ति है। यद्यपि उहाने एक 'यापक अर्थ में अपने अलंकार' गण को परिगृहीत किया है जिसमें अलंकार विषय भी समाहित हैं तथापि उन 'यापक अर्थ परिधि के साथ परिगृहीत अलंकार' गण भी काय के प्राण-तत्त्व का वाचक होकर केशव के निरूपण में नहीं आया है बस विराजक या उपगोभक उपादान हाकर ही आया है।

### रसा की रसवदलकार रूप में स्वीकृति

हम देखेंगे कि केशव न काय-रसा को प्राचीन अलंकारवाग्निशा के समान ही रसवदलकार के रूप में प्रस्तुत किया है। आपातत उनका यह काय ध्वनि विरोधी और अलंकारवाग्नि के अनुरूप है।

पर हम सम्भव में हम रस विवेचन में देख चुके हैं कि केशव की रसिक प्रिया का रस विवेचन एक विगिष्ट दृष्टिकाण से परिचालित है। उसमें उम शृंगार की रसगजता प्रतिपादित हो जा रसिकभक्ति का भी ग्राह्य हो। फलतः अर्थ रस शृंगार में अंतर्भावित हैं। पर केशव हम अग्री हरिशृंगार के अतिरिक्त का परसो की पृथक् सत्ता भी स्वीकार करत हैं। का परसों के रूप में इस पृथक् सत्ता के लिए उनका निरूपण के ढांचे में क्या स्थान हा हम प्रश्न का समाधान गौडीय आचार्यों के पास तो यह है कि वे द्रष्टा रसाभास की कोटि में रखत हैं। पर केशव ऐसा नहीं करत। पर एक धार हरिशृंगार को एकमात्र रस स्वीकार कर लन पर काय-रसा का रसकोटि में रखने के लिए कोई स्थान नहीं रह जाता। अतः वे यह रस वदलकार की कोटि में रखत हैं। इनको रसाभास कहना साम्प्रदायिक भक्ति-काय शास्त्र की दृष्टि में तो चतुर्भक्तता या पर काव्यशास्त्रीय निरूपण के प्रतिकूल हा जाना। रसवदलकार कहने में यह बाधा न थी। एक तो प्राचीन आचार्यों का सहारा भी मिला हुषा या दूसरे स्वयं उहाने धनंवार 'गण' को 'यापक अर्थ में परिगृहात कर रसा या जिसमें अलंकार की भी समाई था। इस प्रकार केशव द्वारा काय-रसा को रसवदलकार कहना उनका निरूपण की एक आवश्यकता भी थी मात्र प्राचीन अलंकारवाग्निशा का अनुकरण नहीं था।

एक और बात उल्लेखनीय है। हम हम प्रकाश में देखेंगे कि केशव न कवि प्रिया में एक 'गिधक' आचार्य के नाम रसवदलकार के विषय में विविध आचार्यों की एकाधिक परम्पराया या मायताया का उदाहरणों द्वारा स्पष्टतः शिक्षित करने का प्रयास किया है। पुरी परम्परा में स प्रमुख मायताओं के साथ परिचित कराने



का काम हम पढ़ति स कदाव सहज निभा सक है। य विविध मायताए कंगव को प्राचीन युग का रूढ अन्तकारवादी नहीं रहने देतीं नवीन युग क पुनरुद्धारण काल का अन्तकारवादी बताती है जो रम और अय आघार-तत्त्वो क महत्व स पूण परिचित एव उनक प्रति गामक है।

### अलकार निरूपण म प्राचीन आचार्यों का आधार परिग्रहण

क्या जाता है कि कंगव ने अपन विगिष्टानकारा क निरूपण म प्राचीन अन्तका वादिया विगपत दण्डी को आधार बनाया है। हम विषय म यह उल्लेखनीय है कि कंगव न किसी भी आचार्य का अनुकरण नहीं किया। प्रमुख आधार दण्डी हाते हुए भी उनकी दृष्टि म अय आचार्यों की उपलब्धिया भी थीं और व अपन युग तत्व की प्रतिनिधायता स परिचित थ। कंगव प्राचीन और नवीन सब मायताओ म म रचि आवश्यकता और अय दृष्टिकोणा क अनुसूप चयन करत है तब किसी मायता को प्रस्तुत करते हैं कभी एकाधिक मायताए भी किसी विषय पर दत हैं। वे उस अणनात हैं जिस प्रामाणिक समझन हैं। अत प्राचीना का प्राय अनुसरण हात हुए भी उह अय अनुकारी और रूढ अन्तकारवादी कहना उनके प्रति माय न होगा।

### अलकार गद की यापक परिधि

कशव न अलकार गद की परिधि बहुत यापक ली है जिसम वष्य विषय भी हैं और वणन अन्तकार साधन भी। वामन न अलकार गद को दोनो अर्थो म लिया था। मम्मट न भी इस गद म एक स्थान पर दोनो अर्थो की समाई स्वीकृत की है। अत यह कहना कि कवत अलकारवादी ही अलकार गद को उक्त यापक परिधि म ले सवता है ठीक न होगा। हम गद की दो गुत्पत्तिया हो जाती हैं एव—जो अन्तकृत किए जाए व अलकार हैं। दूसरी—जो अलकृत कर व अन्तकार हैं। कंगव न दोना गुत्पत्तिया की परिधि क साथ अलकार गद अणनाया। पर हम यापक अर्थ क तने पर नी उनक निरूपण म कोई गड़बड़ी नहीं हुई है अपक्षित सफाई बनी रही है।

वस्तुन अन्तकार की यह यापक परिधि स्वाकार करता भी कंगव क निरूपण की एक आवश्यकता थी। व कविगिशा का भी एक प्रमुख उद्देश्य नेकर चले थ अत कविया को अन्तक वष्य विषया म परिचित करना भी उह अभीष्ट था जिनका उन्नत अन्तक सस्कृत का यगास्त्रीय प्रपा म हो चुका था। हम कविगिशा क ऊपर विचार करत हुए देखेंगे कि सस्कृत आचार्यों क इस कोटि क निरूपणा म कवस्थित याजना नहीं थी। कंगव न समस्त वष्यों को चार वर्गो म विभाजित कर सामान्यान्तकार क रूप म प्रस्तुत किया। हम देखेंगे कि कविगिशा क आधारअर्थो म भूथी और रायथी की सामग्री अन्तक अलग निरूपित न थी। कंगव न व्यवस्था देकर उसका नियोजित किया और एक विस्तृत निरूपण योजना म आवश्यक कर

निरूपण की सफाई प्रस्तुत की। यह सब व तभी कर सक जब उ'होने अलंकार' को व्यापक परिधि में स्वीकार किया और उनका सामान्य और 'विशिष्ट' दो अलग अलग वर्ग निर्धारित कर दिए।

अतः इन तथ्यों की छाया में ही हम कवय के अलंकारवादित्व का निगम करना चाहिए। इ हे रुढ़ नहीं उदार और नय युग का अलंकारवादी कहना चाहिए।

### सामान्य और विशिष्ट अलंकार

कवय ने अलंकारों का व्यापक परिधि मानकर उनका दो प्रमुख वर्ग स्वीकार किए हैं यह अभी कहा जा चुका है। प्रथम वर्ग सामान्यालंकार का है। इसमें चार उपवर्ग हैं—वर्ण वर्ण्य भूरा रागरी। इनमें निरूपित सामग्री का सीधा सम्बन्ध कविगिण्या में है अतः उसका निरूपण कविगिण्या में प्रथम में किया जाएगा। यहाँ हम विशिष्टालंकारों में ही सम्बन्ध रहना चाहते हैं।

### विशिष्टालंकार

कवय ने कविगिण्या में नवम से अंतिम प्रभाज तक विस्तार से निम्न विशिष्टालंकारों का निरूपण किया है

स्वभावोक्ति	विभावना	हेतु	विरोध	विशेष उत्प्रेक्षा
भाषण	श्रम	आगिष	श्रमा	इत्य
सूक्ष्म	नेत्र	निदग्ना	उजस्वी	रसवत
अथांतरायाम	अतिरेक	अपह्लाति	उक्ति	आजसुति
व्यागिण्या	अमित	पयायोक्ति	युक्त	समाहित
सुनिद्ध	प्रमिद्ध	विपरीत	रूपक	दोषक
प्रहेलिका	परिवृत्त	उपमा	यमक	

इन ३५ नामों में उक्ति कोई स्वतंत्र अलंकार नहीं है उसके अंतर्गत ५ अलंकार वर्णित हैं। ११ वें प्रभाव में एक गणना की और चचा है। इस प्रकार कुल मिलाकर ४० होते हैं। चित्र का सम्बन्ध कविगिण्या से है।

पन्हें प्रभाव में कवय ने नव गिण्ड का निरूपण किया है। चौदहवें में व उपमा के बाइस नदों का निरूपित कर चुके थे। अतः १५वें में प्रसंगका नव गिण्ड के भाष्य में नारी व त्रिविध अंगना व नाना उपमान उ'होने जुटाए हैं। अतः इस निरूपण का उपमा निरूपण का ही एक उपाग ममभना चाहिए। कवय कविगिण्या से जितना सम्बन्ध है उतना विधायक आचायत्व में नहीं।

कवय ने अर्थालंकार और गणालंकार के रूप में अलंकारों को नहीं बाटा। पन्हें तथा सोलहवें प्रभावों में पीछे में यमक और चित्र अलंकारों की चर्चा की है। ये दोनों अलंकार गणालंकार ही हैं। शेष को अर्थालंकारों की कोटि में रखा जा सकता है। पर इस वर्गीकरण में स्वयं अर्थालंकारों के बीच रसा होगा। अथश्लेष

और गणितज्ञ के रूप में वेगव ने कोई वर्गीकरण नहीं किया।

हम देखेंगे कि वेगव ने अक्षरानुसृत निरूपण में प्रमुख आघार दण्डी को बनाया है। अतः उनके निरूपण के परीक्षण के लिए सामान्यतः दण्डी को सामान्यतः रखना अनुपयुक्त न होगा। पर वेगव के अक्षरानुसृत निरूपण में प्रसंग में हमारे समक्ष कई महत्वपूर्ण प्रश्न उत्पन्न हैं वेगव ने किस आचार्य से कितना लिया दण्डी आदि प्राचीन आचार्यों का किस मात्रा तक अनुसरण अनुकरण किया उसमें अपना विवेक किस मात्रा तक है? काव्यशास्त्र की नूतन उपलब्धियाँ और आविष्कारों से क्या कहा तक परिचित थे? उनका प्राचीन या नवीन आचार्यों से क्या अंतर पड़ता है वहाँ वे कहा तक आते हैं कहा तक उनसे समझे बूझ कर फेर है? किसी तथ्य या अक्षरानुसृत रूप को प्रस्तुत करते हुए उस वेगव क्या समझते हैं? हम इन तथा इन जैसी जिज्ञासाओं को मन में रखकर वेगव के अक्षरानुसृत निरूपण की ओर बढ़ना चाहते हैं। अतः हमारी प्रतीक्षा यह होना चाहिए कि हम परम्परागत उपनिषदों पर दृष्टि रखते हुए वेगव को समझें और दण्डी का सामान्य माध्यम बनाते हुए संस्कृत काव्यशास्त्र के नये पुराने आचार्यों की उपनिषदों और अक्षरानुसृत सम्बन्धी गुणधर्मों का ध्यान में रखकर वेगव के निरूपण का अध्ययन करें।

और अब हम वेगव द्वारा निरूपित विनिष्ठाकारों का परीक्षण कर सकते हैं।

### स्वभावोक्ति

वेगव के स्वभावोक्ति अक्षरानुसृत का लक्षण प्रायः सभी संस्कृत के आचार्यों के जैसी अक्षरानुसृत लक्षण से मिलता है। भामह<sup>१</sup> ने तो इनको स्वभावोक्ति ही कहा है जब कि दण्डी 'एक' भोजन से स्वभावोक्ति के साथ साथ जाति नाम भी दिया है। वेगव ने इस स्वभावोक्ति तथा जाति दोनों ही नामों से प्रस्तुत किया है और इसका लक्षण परम्परानुसार ही दिया है।

जाको जसो रूप गुन कहिज तसे साज ।

तासों जाति सुभाव कहि बरनत हैं कविराज ॥

इसके अनुसार जिस वष्य वस्तु का सहज रूप अथवा गुण जसा हो वसा ही वर्णन किया जाए वहाँ कविगण स्वभावाक्ति अथवा जाति अक्षरानुसृत मानते हैं। इससे यह तो स्पष्ट है कि कम से कम नाम का उच्चारण तो वेगव भामह से प्रभावित

१ स्वभावोक्तिरक्षर इति कश्चिप्रवचन ।

अथस्य तदवस्थत्वं स्वभावोक्तिर्ज्ञेयम् ॥ काव्यालंकार २।३३

२ नानावन्ध पशुधना रूप साक्षाद्ब्रह्मणा ।

स्वभावोक्तिरथ जातिश्चत्वाया मां कृतिषुवा ॥ काव्यालंकार २।८

३ संशानावरथान्त्रियात्ति यथस्य दादरा भवन्ति ।

लोक चिरप्रसिद्ध तद्वचनमायथा जाति ॥ श्लोकात् । इन्द्र, काव्यालंकार ७।३० >

४ कविप्रिया ६।८

नहीं हैं। हा, लक्षण के लिए यह दण्डी द्रष्टृ भोज प्राप्ति मस किमको आघार मानकर चर है यह कहना कठिन है। कविप्रिया मस अलंकार के उदाहरण के लिए उन्होंने जो दा छंद<sup>१</sup> दिए हैं उनमें उनका द्वारा लिए हुए लक्षणा का पूरा सामंजस्य दिखाई देता है।

### विभावना

कणव ने दो प्रकार की विभावना बताकर अलग अलग उनका लक्षण दिए हैं। प्रथम का उल्लेख सामान्य विभावना कहा है तथा द्वितीय को अर्थ विभावना। सामान्य विभावना का उनका लक्षण यह है

कारण को बिना कारणही उद्यो हात जिहि ठौर।

तासों यहूत विभावना कसव कवि सिरमौर ॥<sup>१</sup>

और अर्थ विभावना का लक्षण यह है

कारण कौनहु आन तें कारण होइ जु सिद्ध।

जानो यही विभावना कारण छाडि प्रसिद्ध।<sup>१</sup>

कणव ने दो प्रकार की विभावना का बताया है वह परम्परामुक्त है। जिस के सामान्य विभावना कहते हैं वह वही है जहां बिना कारण के ही काय हाथा है। लेकिन जहां याम्यविक कारण से काय न हाकर किसी अर्थ कारण से ही वहा पर भी प्राचीन आचार्यों ने विभावना मानी है। कणव की अर्थ विभावना का लक्षण उसीकी आर इंगित करना है। मन्मथ के आचार्यों ने इहोँ दा भटा का ध्यान में रखकर विभावना कणव की व्युत्पत्ति की माथकता सिद्ध की है

१ विभाष्यते कारणांतर घस्याम्।

जहा प्रसिद्ध कारण को छोडकर कारणांतर को विभाजित किया जाए।

२ विगिच्छतया कायस्य भावनात्।<sup>१</sup>

जहा काय भवन प्रसिद्ध कारण के ढग को छोडकर विगिच्छत ढग से उपस्थित किया जाए।

मामह ने विभावना का लक्षण के त हुए कारण के स्थान पर क्रिया कणव का प्रयोग किया है और उसका भेद भी नहीं किए हैं। मम्मट ने भी क्रिया कणव ही का प्रयोग किया है। आषाढ विवनाय और जगदेव विभावना का कारण के उक्त घयवा अनुक्त रूप से लक्षण देते हुए उनका दो भेद स्वीकार करते हैं। अल्पथ दीक्षित ने विभावना के छ भेद बताए हैं। दण्डी ने विभावना का लक्षण देते हुए कारणान्तर चान न के प्रमुपना दा है और महज विभावना का गौण रूप से वर्णित किया है।

१ कविप्रिया १।१ १०

२ वही १।११

३ वही १।१२

४ अलंकारचंद्रिका, पृ० १८

५ अलंकारसुवर ५०।५७

अथ आचार्य दण्डी से भिन्न मत रहत है और उहाने कारणभावमूलक विभावना को प्रमुखता दी है। बगवत् भेद की दृष्टि से दण्डी का अनुसरण करत हुए भी सहज कारणमूलक विभावना का प्रमुख स्थान देत हैं और कारणान्तरमूलक को गौण। इस प्रकार बगवत् की सामान्य विभावना और दण्डी की स्वाभाविक विभावना एक ही हैं।

विभावना के इस निरूपण में बगवत् सबसे अधिक प्रभावित किम आचार्य से हुए हैं, इसपर विचार करत समय हम बगवत् का है कि बगवत् ने दण्डी का आधार तो बनाया है लेकिन नक्षत्र देत हुए सभी प्रमुख प्रमुख आचार्यों के निरूपणों को ध्यान में रखा है। निणयात्मक ढंग से यह कहना कि बगवत् की प्रथम विभावना का नक्षत्र रूपाट व दिग् लक्षण से तो भिन्नता है। पूणत ठीक नहीं। कारण यह है कि प्रायः सभी प्रमुख प्राचीन आचार्यों ने वही प्रकार का नक्षत्र दिए हैं और कारणभाव कायस्थोत्पत्ति वाल मिद्धात का ही प्रतिपादन किया है। फिर भगवत् रूपाट को ही यह प्रथम कहा गया है। उदाहरण को देखने से पता चलता है कि रूपाट और दण्डी दोनों के उदाहरणों की छाप बगवत् पर है।

## हेतु

इस अलंकार को सभी आचार्यों ने समान महत्त्व नहीं दिया है इसलिए हम की स्थिति स्वरूप तथा भेद के सम्बन्ध में सभीने भिन्न भिन्न मत प्रकट किए हैं। इसकी स्थिति के सम्बन्ध में दो मत हैं—१ भामह उल्लेख और मम्मट इस स्वतंत्र अलंकार नहीं मानते। २ दण्डी रूपाट विचित्राद्य आदि आचार्यों ने इसका लक्षण विधान किया है तथा अग्निपुराण एवं सरस्वतीकण्ठाभरण में इसका उल्लेख हुआ है। दण्डी के अनुसार तो हेतु एक उत्तम अलंकार है

हेतुश्च सूक्ष्मलेखोऽथ वाचामुत्तमभूषणम् ।

भोज ने अपने सरस्वतीकण्ठाभरण में हेतु को चार प्रकार का बताया है—१ कारणहेतु २ नापक हेतु ३ अभाव हेतु ४ वित्र हेतु। ऐसा प्रतीत होता है कि भोज और दण्डी के सामने कोई अलंकार प्रथम रहा होगा जिसका आधार दोनों ने लिया होगा। नापक इसी कारण से दण्डी ने हेतु के लक्षण तथा वर्गीकरण करत हुए आधारों का वर्णन नहीं किया। उहाने प्रथम हेतु के कारण और नापक दो भेद किए हैं।<sup>१</sup>

१ देखिए—हीरान्तक दीचिन आचार्य काव्यालंकार पृ० ४१

२ अथ जलमिना रश्मिभ्रमनाऽर्जिता नता ।

अग्रात्प्रेक्ष्यरनायनरस्त्रेण सुन्दरि ॥ काव्यालंकार पृ० ७२ श्लो० २०१

३ हेतुरथ सूक्ष्मलक्षोय नालकारत । मन काव्यालंकार २१=६

४ काव्यालंकार । ३५

५ त्रियाया कारण हेतु कारण काव्यालंकार २१

अभावश्चित्रहेतुरथ चतुर्विध इत्येवम् ॥—सरस्वतीकण्ठाभरण ३१२

६ काव्यालंकार २१ २३५

तत्पदवान् अभाव हनु व प्रागभाव प्रध्वसामाव अयायाभाव अत्यन्ताभाव तथा ससर्गाभाव व आघार पर पाच भेद उपस्थित किए ह । चित्रहनु भी दूरकाय तत्सहज कार्यान्तरज अयुक्त तथा युक्त—पाच प्रकार का बताया गया है ।<sup>१</sup>

दण्ठी व इन भेदा म स कारक हनु और अभाव हनु को ही वेगव न अपनाया है । पाप दाना दण्ठी व वाद की आचाय-परम्परा म स्वर नहीं उतर । इसलिए कगव न भी उह छोड़ दिया । दण्ठी व नापक हनु का परवर्ती आचार्यों न अनुमान अलंकार का नाम दिया ।<sup>२</sup> चित्रहेतु व भेद भी यथावत स्वीकृत नहीं हुए । दूरकाय नामक भेद में हनु चमत्कारी तत्त्व न था अपितु कारणकाय की भिन्नगीय स्थिति थी ।<sup>३</sup> अत परवर्तिश न उम असंगति कहा । तत्सहज<sup>४</sup> और कायांतरज<sup>५</sup> को अतिगयाक्ति<sup>६</sup> व अतगत रखा गया क्याकि व कारण काय की पाठपरिष्कारितक स्थिति स सम्बद्ध थ । काय व स्वरूपवाच टुबल आघार का लकर बनाए गए अयुक्त काय एव युक्त काय हनु तथा विभिन्न प्रकार की गीत रथाओं व मिथुण क आघार पर खडा किया गया चित्र हनु भी स्वीकार नहीं किए गए । कगव न हनु व पक्षवाल आचार्यों क पय का नर अनुकरण किया तत्र उनक सवसम्मत भेदा का ही स्वीकार किया ।

ऊपर हनु व पशवाग उन आचार्यों की मायता पर विचार हुआ है जा दण्ठी को आघार मानकर चन हैं । पशवाग आचार्यों की एक अय परम्परा भी है जा रण्ट का आघार मानकर चनी है । रण्ट व अनुमार हेतु अलंकार कहा होता है वहा कारण का काय व साथ अभेद दिनात हुए अभिधान किया जाए ।<sup>७</sup> एसी हनु का आचाय मम्मट न दण्ठम उल्लास म कारणमाला व प्रमग म चण्ठन किया है । व हनु को पृथक अलंकार नहीं मानत क्योंकि कारण काय अभेद व साथ अभिधान तो आद्युद्य तम् की भाति लक्षणा का विषय है ।<sup>८</sup> उनकी दृष्टि म उनका काव्यालिंग ही

- १ दूरकायमत्सृष्टन कायांतरापतया ।  
अयुक्तयुक्तकायो चत्सुतराचिच-हेतव ॥ काव्यालिंग २१५३
- २ तत्र अापकालुनाग्य विषय । साहित्यपण्य १ । ६२ कृति
- ३ काव्यालिंग १०५
- ४ तयोस्तु भिन्नरात्वे भगति । अलंकारवचन पृ० १६३
- ५ अविभ वि नारीया वय पथरतशासन ।  
सतैव पुना विप्रितगतो मन्विन्नने ॥ काव्यालिंग २१५६
- ६ पश्चापथरव किरणानुगण चद्रमण्डलम् ।  
प्रागव हरिणाघीणानुगीणो रागमातर ॥ ७ १२५७
- ७ 'आर्त्तियनि सम देव ।' कुबलयानल ४ । ३
- ८ हनुमता मङ्ग हतारभिधानममैकृद् भवदय ।  
कालकारो हनु रवात्वेभ्य पृथग्भूत ॥ रण्ट ७ । ८२
- ९ हेतुमता मङ्ग हेतोरभिमानमन्ता हेतुमिति ह्यलंकारो न च लडिन ,  
अनुपु तमित्यङ्गि रूपो दोष न भूषणत्वा क्वाचित्कनि वैरियामावाद् ।  
अभिलषमलविकास सकलालिङ्गश्च काकिलानद ।  
रथाप्यमति सप्रति लाकोत्कटाकर काप ॥

हेतु है। विवनाथ का आधार दृष्ट ही रहे।<sup>१</sup> जयदेव तथा अण्णय्य दागित न अपन अपने प्रथो म हेतु के जो लक्षण दिए हैं वे दो प्रकार के हैं। एक प्रकार के लक्षण का आधार दण्डा है दूसरे प्रकार के लक्षण का आधार दृष्ट।<sup>१</sup>

ऊपर के वचन से यह स्पष्ट है कि बगवत् न दण्डी का आधार मानकर भी अन्य आचार्यों के मतों को परता है और अपना स्वतंत्र विवरण प्रस्तुत किया है। यहां हेतु अलंकार के प्रथम में दण्डी का आधार तथा उनमें बगवत् की भिन्नता को तनिक और विस्तार से समझने की आवश्यकता है। दण्डी ने इस अलंकार का लक्षण तो दिया ही नहीं है अतः बगवत् पर उनके प्रभाव का स्पष्ट करने के लिए उनका उदाहरणों से ही काम चलाना होता है। दण्डी के उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि उनके अभाव हेतु में हेतु अभावात्मक है और कारक हेतु में सभावात्मक। उनके अनुसार कारक हेतु में वाय अभावात्मक और अभावात्मक दोनों प्रकार का हो सकता है। फिर भी उनके आधार पर उक्त कि ही उपभोग का वचन नहीं किया। वस्तुतः वाय के सभावात्मक और अभावात्मक होने से हेतु की स्थिति पर कोई प्रभाव नहीं पड़ता। हां हेतु अभावात्मक है अथवा सभावात्मक यह दृष्टि से इसपर विचार करना उपयुक्त है। बगवत् ने यी दृष्टिकोण अपनाया है और इसीलिए उन्होंने दण्डी के हेतु को स्वीकार करते हुए भी उसे दण्डी के समान चार भागों में बांटकर अभाव और सभाव दो भागों में ही बांटा है। अभाव तो दण्डी का भी स्वीकार है उसीके वचन पर सभाव का उदभावना बगवत् की अपनी है। अतः डा० दीक्षित जसो का यह वचन कि बगवत् सभाव तथा अभाव दोनों हेतुओं का आधार दण्डा के कारक हेतु के भेद ही है<sup>२</sup> ठीक नहीं। बगवत् का अभाव हेतु दण्डी के अभाव हेतु के आधार पर है न कि कारक हेतु के आधार पर। बगवत् के सभाव का ही आधार दण्डी का अभावेतर कारक हेतु है।

सभाव और अभाव के आधार पर किए हुए बगवत् के इस वर्गीकरण की समीचीनता पर कुछ विचार करने का आवश्यक है। सभावात्मक हेतु के विषय में तो कोई प्रश्न ही नहीं उठता। उस ध्यान में रखकर ही प्रायः उनके आचार्यों ने हेतु का लक्षण किया है। किंतु जहां हेतु के अभावात्मक होने पर भी काय साधन

इत्यत्र काव्यरूपता कोमलानुप्रासमङ्गिन्व समास्नाम्पि, न पुनरेत्कारक पनयति पूर्वोक्त काव्यलिंगमव हेतु। काव्यप्रकाश १।५२६

१ अमेनाभिधा हेतुनाहेतुमता सह। साहित्यस्य १०।६४

२ हेतुहेतुमतारे य हेतु कचिन् प्रचलते।

सत्त्व्या विलासा विदुषा कणाकावैकप्रभो ॥

हताहेतुमता साध वचन हेतुरभ्ये।

अभावुनि शान्तानुमानद्वेग्य सुभुवाम् ॥ कुवलयदान् १६७ १६८

३ दण्डी ने उसके गे मेरे बगवत् इ—कारक हेतु तथा दीनक हेतु। कारकहेतु के भी दो भेद किए हैं—भाव साधन में कारक हेतु और अभाव साधन में कारकहेतु। फिर उनमें भी उपमेरे विधे ६। केशव के हेतुभेद—सभावहेतु और अभावहेतु का आधार दण्डी के कारकहेतु के भेद ही हैं।

—आचार्य नैरवगाम पृ २४३

विश्याया जाए वहा उसकी विभावना से टकरान की सम्भावना है। दोनों की विभाजन रेखा अत्यन्त ही सूक्ष्म रह सकती है। विभावना में कारण के अभाव में जहाँ काय दिखाया जाता है वहाँ विरोध की भी एक क्षीण रखा होती है साथ ही वास्तविक कारण को छोड़कर प्रायः अत्रय अत्रय कारणों से उस काय का सम्पादन होता है। अतः उस विरोध का समाधान हो जाता है।<sup>१</sup> इस कारण विभावना में वास्तविक हेतु का अनपेक्षित हाना चमत्कारात्मक होता है। किन्तु यहाँ अभावात्मक हेतु में स्थिति कुछ भिन्न होती है। गांधीजी की मृत्यु का प्रसंग के लिए जीवनी गणित बनी इस वाक्य में गांधीजी की मृत्यु हेतु काय-साधन के लिए अत्यन्त अपेक्षित सिद्ध हुआ। किन्तु उस हेतु का स्वरूप स्वयं अभावात्मक है। विभावना में कारणभाव अनिर्वायत अपेक्षित नहीं होता। यही दोनों का अंतर है। मस्कृत भाषा में तो वतनी अभिव्यक्ति गणित रही है कि वत वन सूक्ष्म रखाया को स्पष्ट रख सकती है किन्तु हिंदा के पास विभाजन के गौरी हिंदी के पास इतनी क्षमता की कम ही आना की जा सकती है।

दण्डी के अनुसार कारण हेतु भावात्मक काय का भी हो सकता है अभावात्मक का भा।<sup>२</sup> कणव का नभाव हेतु भी जा कि दण्डी के कारण हेतु का स्थानापन्न है काय के भावात्मक तथा अभावात्मक दोनों रूप रख सकता है। भाव-साधन तो विवाद का वस्तु नहीं अतः अभाव साधन में नभावात्मक हेतु का उदाहरण देकर कणव अपनी मन्त्र स्पष्ट कर देते हैं

गौतम मन्द मुण्य समीर हरयो

इहं सौ मिलि धीरज धीरो ।<sup>३</sup>

यहाँ विगिष्ट वायु धीरज का अभाव का ही हेतु है जाकि कणव के अनुसार सभाव हेतु का उदाहरण है। उसपर, दण्डी के उदाहरण की छाया भी है।<sup>४</sup> इसी प्रकार अभावात्मक हेतु का आधार भी दण्डी का अभाव हेतु ही है। दण्डी का प्रवसा भाव हेतु का उदाहरण यह है

गत कामकथोमादो गलितो यौवन-वर ।

क्षतो मोह-युता तृष्णा कृत पुण्याश्रमे मन ॥<sup>५</sup>

अर्थात् कामकथाभा का उमाद दूर हो गया है यौवन-वर भी उतर चुका है मोह नमाप्त हो गया है और तृष्णा भी विलीन हो चुकी है। अतः मैंने अपना मन पुण्याश्रम में लगा लिया है।

१ कारणपर नियेधन बाध्यमान फलोत्पत्त्यः ।

विभावनायाभाभाति विरोधाऽन्यान्यत्राधनम् ॥ अन्वय वि टीका पृ० १५७

अप्रमत्त कारण वस्तुनास्तीति विरोधपरिहार 'वद' पृ० १५७

२ चन्नाग्न्याधुय गृष्टवा मलयनिमरान् ।

पश्चिमानामभाय फलोऽस्तुपस्विन ॥ काव्यांश २।२३८

३ कविप्रिया, प्र १।६६

४ देहि, हा दीक्षित, आशय केशवनाम पृ० २४४

५ काव्यांश २।२४८



जस उदाहरण म कामादिक का अभाव पुण्याश्रम रति क हतुरूप म सिखाया गया है। यहा कृत पुण्याश्रम मन को कायरूप म ही ररतना पत्गा। पुण्याश्रम म मन लग जान क कारण कामादिक समाप्त हा गए। एमा अथ करने पर दण्डी क अभीष्ट की सिद्धि नही हो सकती कथाकि य यहा हेतु को अभाव रूप म सिखा र है। कामादि का प्रध्वमाभाव ही काय क हतुरूप म ररतना उनका इष्ट है। इस उदाहरण म विभावना स टकराने की नीवन नही आती। अब प्राण कविवर्य क उदाहरण की धार जो हम प्रकार है

जायो न मैं मद योवन को उतरयो क्य काम की काम गयोई,  
छाड्यो न चाहत जीव कतेवर जीव कवर छाडि दयोई ।  
भावति जाति जरा दिन लीलति रूप जरा सब लीलति रघोई ।  
कशव राम ररो न ररो अनसाधहि साधन सिद्ध भयोई ।<sup>१</sup>

(न जान योवन म कव उतर गया ? काम क्षीण हा गया। बढावत्या जीवन क परिगणित दिना का नियन्त्री चनी जा रही है। रूप को तो वह निगल हा चुकी है। यद्यपि शरीर को जीव नहीं छोडना चाहता तथा शरीर म जीव को बहन करन की शक्ति नहीं रती। जीव का य धन म परे ही नमस्मि। अब राम जया या न जयो विना माये हुए—अनायास सिद्ध—साधना क द्वारा मैं तो सिद्ध हो गया हू।)

यहा कविवर्य न सिद्धावस्थारूप काय की सिद्धि क लिए योवनामाद तथा कामादि क अभाव स्थान पच भौतिक शरीर क अभाव तथा रूप—जिसपर रूप है जरा पक्ष म अवयव सौंदर्य तथा सिद्धि प म पचभौतिक सम्पत्—क अभाव का सिद्धि क हेतु रूप—म सामन किया है। इनको कविवर्य न मनमाये ही साधन कहा है जिसका अर्थ है अनायासापवन साधन। हेतु अभाव रूप है कामाभाव रूप जो कि कविवर्य क वर्गीकरण और निरूपण क सवथा अनु रूप है। साथ ही सब दण्डी क पद विहा पर भी है। कि तु जसा कि जरा कटा ना चुका है सखन की भी अभिपत्ति शक्ति बेगबी हिंदी क पास नही है। अत हम उदाहरण म विभावना क भ्रम की गजाइन पूरी-पूरी ह। अनसाधे ही साधन सिद्ध भया वा यह अर्थ समभन पर कि विना साधना को साथे ही मैं सिद्ध हो गया किसीको भी विभावना ही लगेगी। प्रलकार अर्थ सापक्ष होते हैं यह सभी जानते हैं। स्वय दण्डी क ही उदाहरण म हम देख चुके हैं कि यदि अर्थ कुछ भिन्न रूप स कर दिया जाए ता उनका मतय चर पूर हो जाणगा। इसी तथ्य की ओर दृष्टि न ले जा मकन क कारण प्रो० अरण डा० दीक्षित जस लोगों न कविवर्य की प्रतिबूल आलोचना की है।<sup>१</sup>

१ कविप्रवा म ११७

शब्दों ने अभाव हेतु क काक हेतु और सापक्ष हेतु दो भेद माने हैं। ये भेद कुछ मतान्तर म कशव ने प्रदण किए ह। परन्तु एमा प्रवीन दाता है कि केशव शब्दों क किए हुए भेदों का भाव न सममकर गडबड कर गए ह। अनन्व अभाव क उदाहरण म विभावना अलकार हो गया है।—प्रो अरण कशव एक अधयन पृ ४

‘दहा राम नाम क रमणरूप कारण क विना ही काय की सिद्धि कही ग है पैमा कि ‘अन साध ही साधन सिद्ध भयो’ शब्दों स स्पष्ट ह।’ आचार्य कशव, पृ २५८

इस प्रकार हम देखते हैं कि हेतु व निरूपण म कवच न दण्डी की ही मूल दृष्टि अपनायी है। उन्होंने दण्डी के सम्बन्ध हेतु जाल का संक्षिप्त करके उचित ही किया है। उन्होंने परवर्ती आचार्यों व अनुमार नापके हेतु एवं चित्रहेतु को छोड़ दिया है तथा दण्डी के कारण तथा अभाव हेतुओं को हेतु की अभावात्मकता तथा भावात्मकता के आधार पर पुन वर्गीकृत करके विवेचन की गिथिलता को दूर कर दिया है। उनका वर्गीकरण अधिक से अधिक दण्डी पर आधारित है अधिक से अधिक दण्डी का सुलभा रूप। साथ ही परवर्तनी उपनिषदों से सामंजस्य भी स्थापित करता है।

सभाव तथा अभाव दो प्रकार के प्रमुख हेतु भेद के अतिरिक्त कवच न एक मिथित उदाहरण और प्रस्तुत किया है।<sup>१</sup> इसमें हेतु को सभाव और अभाव दोनों प्रकार का तो दिखाया ही है साथ ही दण्डी के चित्र भेद कार्यांतरज<sup>२</sup> को जिस कि परवर्ती आचार्यों ने 'अत्यन्तातिगोवित'<sup>३</sup> कहा है भी समेट लिया है। यहाँ दण्डी के अनुसार चित्र हेतु तथा नवीनों के अनुसार अत्यन्तातिगोवित होती है। एम स्थिति का दिवान के लिए ही कवच न इस अतिरिक्त उदाहरण की मृष्टि की है। इसमें भाग म वृद्धि नहीं समझना चाहिए।

कवच के हेतु निरूपण की मामिकता का हिंदी आलोचक नहीं समझ सकें यह खेद की बात है। इस निरूपण में जो प्राचीन आशय निजी विवेक समूचा परम्परा का परिचय तथा मौलिकता की भावक मिनती है उसका श्रेय कवच का दिया जाना तो दूर रहा उन्मत्त कवच को भ्रान्तिया एवं गड़गड़िया के स्रष्टा के रूप में देखा गया है।

### विरोध या विरोधाभास

कवच में विरोध तथा विरोधाभास का एक ही माना है। उनका मत सस्कृत आचार्यों के मत में है। अलंकारों की अनुक्रमणिका प्रस्तुत करते समय उन्होंने अनेक विरोध का ही उल्लेख किया है।<sup>४</sup> विरोधाभास का वहाँ नाम नहीं है। लेकिन लक्षण देते समय उन्होंने पहले विरोधाभास का तथा बाद में विरोध का लक्षण विधान किया है। अलग अलग उदाहरण भी दिए हैं। इसमें यह अम हो सकता है कि कवच

- १ जा त्ति नै वृषभानु ललाहि अली मिलण मुरलीधर तेंडी।  
माधन माधि अगाध सबै सुधि माधि जो दूत अभूतन में ही।  
ता त्ति नै त्ति मान दुहून की बेसव आवति वान कहे ही।  
पाथे अकाम प्रकास ससा बदि प्रम समुद्र रहे पविले ही।<sup>५</sup>—कविप्रिया, १।१८
- २ परचाचयस्य किरणानुनाय चद्रमयलम्।  
प्रागव हरिणाधीणासुनीयो रामानगर ॥—काव्यांतरा २।२।२५७
- ३ अत्यन्तानिशावोक्तिगुणोपौवासदविषय।  
अमे माना गत परचानुनीता मियण सा ॥—बुवनवाल ४३।
- ४ जाति सुभाव विभावना हेतु विरोध विराय।  
अपेधा अपेध क्रम आशिष मिय मुरसप ॥—कविप्रिया १।१

शेनो को अलग अलग अन्वय मानते हैं। पर व उक्त दो अन्वयों का एक ही अर्थ नही देता। यथाय विरोध तो भूषण ही दूषण ही माना गया है। विरोध का अर्थ है पर उमका निराकरण हो जाने पर ही विरोध समाप्त होता है। मरुत क आचार्यों ने भी विरोध और विरोधाभास का अलग अलग नही माना है। 'बंगव न विरोधाभास तथा विरोध क जो अर्थ है व मरुत आचार्यों क मत म है।' उनका अर्थ इस प्रकार है

वरतत अग विरोध तो अय सब अविरोध।

प्रगट विरोधाभास यह समुसत सब सुयोध ॥'

कसयदास विरोधमय रचित वषा विचारि।

तसो कहत विरोध सब कायकुन सुबुधि सुधारि ॥

बंगव न प्राचीन आचार्यों क समान गुण लिया है उक्ति क आधार पर विरोध क प्रकार नही दिया है। उस दृष्टि से व उन आचार्यों म आ विरोध का एक प्रकार का मत है भिन्न मत रखते हैं। पण्डितराज जगन्नाथ समास व नीलम भदीकरण का अनावश्यक मानते हैं। पण्डितराज न विरोध दो प्रकार का स्वीकार किया है 'गुद्ध और स्वयमूक्त।' बंगव क उपाख्यान पर दृष्टि डालने से पता चलता

२ (अ) विरोधाभास विरोध । म उ मना इन विना प्रकृत । मति तुमनागन प्रमुग एवाभासमानवा विरोधाभास ।—रसगोष पृ ३५४

(आ) एकाधिकरणसम्बन्ध वन प्रतिपत्तिप्राथम्यथाभासमानकाधिकरणसम्बन्ध असाधारण सम्बन्धत्वमान । विरोध । यथा एकाधिकरणसम्बन्ध वन प्रतिपत्ति म । म च प्रकृतप्रकृतस्य । प्रगण्य वानुत्पत्त्याभूतवत् तद्वैपरीत्यप्राद । तत्र वा दापय । अय विरोधस्य नकारय । अत एवेव विरोधाभासमाचन । आ ३५४ भासत यभास विरोधस्यवा भासस्येति ।

—रसगोष पृ ४ ७

अर्थ—विरुद्धता पन्थाया यत्र समग्रानम ।

विरोधस्यभाव म विरोध रगुता यथा ॥—काव्याकार १३३३

भास—गुणस्य वा क्रियाया वा विरुद्धान्वयिभाविधा ।

या विरोधाभिधानाय विरोध त विदुधा ॥—काव्याकार ३१४

वचन—विराडाभासव विरोध । का यानकारस्य चतुथ अधिकरण अ वा १२२

प्रकृत—विरुद्धाभासव विरोध । इ जायाना चतुथ पन्थाया प्रयके त मय एव

सुगनीयविनाश्याया विराधिभ्या सम्बध विरोध ।—अन० म १५४

सम्बन्ध—विरोध ता विराधि विरुद्ध वन यद्वय

तानिश्चर्त्तान्तयाय गुणो गुणान्तिरिदिभि ।

क्रिया द्वाभ्यामपि द्रव्य द्रव्यवैत ते शः ।—कायप्रकार, उ १ १६६ ६७

अप्य—आभासवे विरोधस्य विरोधाभास इत्यन्त ।

विनाधि तन्नि दारण वडागौ ते नि दारिणौ । —कुवल पृ ७६

विरुद्धता—विरुद्धनिव भासत विरोधो मी शशाकृति । —सा ६० १ ६८ ६

३ कविप्रिया ६।१६

४ वहा ३।२१

५ वहा ज्ञानान्तिभेदानामकृत्वाच्छुद्धावर्तनमूलवाभ्या निविधो हेय ।—रसगोष, पृ १२८

है कि व जात्यान्मूत्रक तथा श्लेषमूलक दो भेद स्वीकार करत हैं । पर स्पष्टत उहाने इन भेद का भी उल्लेख नहीं किया ।

किस यह भी स्पष्ट हो जाना है कि कवय विरोध और विरोधाभास का अलग अलग अलंकार नहीं मानत । अलग अलग उल्लेख में उनका यही तात्पर्य है कि व यह दिखाना चाहत हैं कि आचार्य-परम्परा में दोनों नाम प्रचलित हैं । इस तथ्य को स्पष्ट न कर प्रो० अरुण का कवय पर यह दोषारोपण करना कि कवय ने आभास को भी विरोध मान लिया है अपन में भ्रमात्मक है । उसक विषय में बवल पही कहना पर्याप्त है कि आभास हान पर ही कम अलंकार की सत्ता होती है अथवा विरोधादाय हाता है ।

विराधांशुकार क निष्पन्न के साथ ही उमक सीमा निर्धारण का प्रश्न भी उत्पन्न है । कारण यह है कि विभावना विगपाविन अमगति आदि में भी विरोध तत्त्व की पर्याप्त अवस्थिति होती है । कम सीमा निर्धारण की आवश्यकता अपन विवचनों में अनक आचार्यों न अनुभव की है । उहाने विरोध या विभावना क प्रथम में अपन मध्यात्मक विवचनों द्वारा अथवा कवन उदाहरणों क द्वारा उनका अंतर स्पष्ट किया है ।

वास्तव में विरोध एक उत्तमरूप सामान्य अलंकार है तथा विभावना विगपात्ति आदि अयत्नरूप विगपा है । अतगति में कारण काय का भिन्न-भूतक विरोध होता है । इसी प्रकार अय उक्त अलंकारों में विरोध की विभिन्न स्थितियां हानी हैं । आचार्यों न इन विगपाट विरोधों क त्रिण विगपाट विभावना आदि अलंकारों का मृष्टि की है । इनमें अविगपाट स्थान विरोध क अतगति आत है । प्राचीन आचार्यों न इन अलंकारों क अंतर को स्पष्ट किया है । विभावना और विरोध के अंतर का स्पष्ट करत ए मध्यक न बताया है कि विभावना में कारण भाव प्रधान हाना है अत काय वाय हाना है कारण बाधक । किंतु विरोध में कारण काय परस्पर एक दूसरे क बाधक प्रतीत हान हैं । इसी प्रकार विगपात्ति में कार्याभाव प्रयत्न हान क कारण बाधक होता है और कारण-नत्ता वाय हाना है । परवर्ती आचार्यों जम विवचनाय एव जगनाय न यही बात कही है ।

१ दशव एक अरण्य, पृ० २५

२ विरोधादिमावाय मे दशयितुनाह-त्रियात्रनिध प्रसिद्धतत्त्वव्यक्तिविभावना ।

—अनकारसूत्र, अधि० ४ अध्या ११३

३ हाट इत कानन हू आल दात शिगम अपरेण कल्पविरान (विगपा) इह ती वाह्यैट आरु ती भी एह कर्म्याणै सु हू उमग, आश्ल विभावना एहट विगपात्ति अर नरो एहट करेसौगट हू अलंकार ।

—पी० वा बाणै, नाम् आन् साहित्यस्य, पृ २४२

४ कारणभावन बाध-अन्तर्बाध बलवता कायमेव बाधमानवत प्रतीयत । ननु तन कारण भाव इत्यन्योन्याकारवानुप्राशिनन्निर्वाधाद् मे । एव विरोधोक्तौ कायभावत बाधमानत्वाद् एव बाधतनु नेयम् अत साधि विरोधद् विभावना म्यात् । —अरु० सु० पृ० १५८

५ विभावनाया कारणभावनापनिवयनन्त्वात् कायमेव बाधवत प्रतीयत । इह तु अन्योन्यकारणवि बाधत्वम् इति भे । —माह्वि यूपय १ । ६१

६ कारणव्य निरभेन बाधमानफलान्य ।

विभावनायाम भाति विरोधाभ्यान्वबाधनम् ॥ —रमंगाधर पृ० ४३२

संस्कृत आचार्यों ने इन साम्य रसनवाले अलंकारों की सीमा निर्धारित करने के लिए तथा उनका अन्तर को स्पष्ट करने के लिए गद्य का महारा लिया है। किन्तु कंगव के पास गद्य का माध्यम नहीं था। उस दशा में उन्होंने इस अन्तर को स्पष्ट करने के लिए एक कौशल का आश्रय लिया। सबसे प्रथम तो उन्होंने विरोध और विरोधाभास की एकता दिखाने के लिए दोनों के नाम से एक-एक उदाहरण दिया और तत्पश्चात् तीसरे उदाहरण के द्वारा विरोधाभास का विभावना आदि अलंकारों से अन्तर स्पष्ट किया। कंगव जिस आचार्य से स्पष्टीकरण के लिए एम. ही कौशल की अपेक्षा था। विरोधाभास के स्वरूप को स्पष्ट करने के लिए उन्होंने जो तीसरा उदाहरण दिया है वह इस प्रकार है

आप सितसित रूप चित चित स्यात् गरीर ग रग राते ।

केसव कानन ही न सुन, स कहै रस की रसना बिन बातें ।

नन किधौ कोउ अन्तरजामी की जानति हौं जिय ब्रजति तात ।

दूर लौं दौरत है बिन पाइन दूरि दुरी दरस मति जात ।<sup>१</sup>

कुवलयानन्दकार ने विभावना का जो लक्षण दिया है उसका अनुसार ऊपर के छंद की प्रथम पंक्ति में विभावना सिद्ध है। 'गप पत्तियों' में तो विभावना स्पष्ट ही है। संस्कृत के आचार्यों में तथ्य स्पष्टीकरण की परम्परा का ही इस तीसरे उदाहरण के द्वारा कंगव ने निर्वाह किया है। इसी तथ्य का न समझ सकने के कारण डा० हीरालाल दीक्षित ने अपने ग्रंथ में इस प्रसंग में लाला भगवानदीन के कथन का प्रमाण देते हुए कुछ आपत्तियाँ उठाई हैं<sup>२</sup> जो महत्वहीन हैं।

## विशेष

कंगव का विशेष अलंकार संस्कृत के आचार्यों द्वारा वर्णित विशेष अलंकार से सर्वथा भिन्न है। रम्यक रट्ट मम्मट विवनाय अल्पय दीक्षित तथा जगन्नाथ आदि ने इस नाम के अलंकार का निरूपण किया है। उनके निरूपणों में साम्य दिखाई देता है। इस अलंकार के वहाँ तीन भेद माने गए हैं

१ कविप्रिया १।२३

२ 'वृद्ध्यात् कावसम्पत्तिरप्या कानिद् विभावना।

शाताशुकिरणास्तुवी इन्ने सन्नापयन्ति ताम् ॥—कुवलयानन्द ८१

३ इसी प्रकार केशव द्वारा दिया गया दूसरा उदाहरण भी प्रथम विभावना का ही है। यद्यपि आपु सितसित रूप इत्यादि। लाला भगवानदीन ने इस उदाहरण में विरोधाभास सिद्ध करने का प्रयत्न किया है किन्तु अन्त में उन्होंने टिप्पणी में लिखा है

हमारा अनुमान है कि यह छन्द प्रथम विभावना का उदाहरण है। लसको की अभावधानी से यह छन्द यथा लिख गया है।

यदि जो एक स्थलो पर इस प्रकार की वृत्ति होती तो यह लसको की अभावधानी कही जा सकती थी। किन्तु वास्तविकता यह नहीं है।

—आचार्य केशवनाथ १० २५८

४ अनन्तरमाधयमकमनेकगोचरमराक्यवगतन्तरकरण विराध । —अलंकार सूत्र १७१

- १ बिना आधार व आधेय का वणन ।
- २ एक वस्तु का अनेकत्र गोचरत्व ।
- ३ किसी कार्यारम्भ से अस्तम्भव वस्तु की उपलब्धि ।

यथाथ म यह कोई एक अलंकार नहीं है अलग-अलग तीन अलंकार हैं । मम्मट ने इसका लक्षण दिया है और बाद व आचार्यों म यह पूरा रूप से परिगृहीत हुआ है । दण्डी और भामह आदि न इसका उल्लेख नहीं किया । वहा विशेषोक्ति नाम के एक अलंकार की चर्चा है और कव का विशेष अलंकार भी उसी विगोक्ति पर बना है । लेकिन महा यह भी ध्यान रखना है कि दण्डी की विगोक्ति वह नहीं है जो परवर्ती आचार्यों म पाई जाती है । उन्होंने विगोक्ति का लक्षण दत्त हुए लिखा है जहा गुण जाति त्रिया आदि की विकलता किमी विगोपता व प्रतिपादन व लिए की जाती है वहा विगोक्ति होती है । साम्य की दृष्टि से भामह और वामन क लक्षण मम्मटादि क लक्षणा की अपणा दण्डी के अधिक निकट हैं । भामह क अनुसार किसी एक गुण का अभाव होन पर भी अन्य गुणों की सत्ता जहा किमी विगोपता क प्रतिपादन क लिए लिखा जाता है वहा विगोक्ति होती है । वामन ने भी इसीस मिलती जुलती बात कही है । व एक गुण की हानि की कल्पना होने पर ही साम्यदृष्टि की विगोक्ति कहत है ।

इन प्राचीन आचार्यों क लक्षणों म किसी न किमी प्रकार निम्न तथ्य स्वीकार किए गए हैं

- १ किमी गुण त्रिया अथवा अण का अभाव ।
- २ उपयुक्त अभाव के हात हुए भी काय सम्पन्नता का प्रतिपादन किसी विगोपता क सम्पाननाथ ।

स्पष्ट है कि य तथ्य विभावना क बहुत समीप हैं । अत परवर्ती आचार्यों ने विगोपति का घा तो खनन किया है या विभावना म अतभाव करक दितलाया

बिना प्रविद्धमाधारमाधयस्य व्यवस्थिति ।

एका मा युगपरवृत्तिरकथनेकगाचरा ।

अन्यत्र प्रवृत्त कायनरात्रियस्यायवस्तुन ।

सुख करण पति विरापतिप्रविधो मत ।—कायप्रकार १ । १३१-३६

१ गुणानि विद्यानां यत्र वैकल्प्यन्तानम् ।

विरापन्शनायेव मा विरापान्तिरिष्यते ।—कायप्रकार २ । १३३

२ एकस्यास्य विगम या गुणान्तरस्तनुति ।

विरापन्शनायामी विरापान्तिमना यथा ।—भामह काव्यालंकार ३ । ३

३ एकगुणानि कल्पनया मान्यन्त्याह्य विरापान्ति काव्यालंकारम्, अमि० ४ अ० ३ । २३

४ एकगुणानि कल्पनया सम्यगन्त्या विरापान्तियथा धूर्त हि ज्ञान पुरुषस्यसिद्धासन राज्यम् । अत्र धूर्त राज्यस्य साम्येनाराधेण रूपकभत्वात् । तत्र सिद्धामनरदिते धूर्त सिद्धामनमदितस्य राज्यप्राप्त्यस्य कथ निद्वयानि आरापान्मूलकमुक्तिनिरामावाराव्यमाणा रायसि सिद्धामन-रादित्य कल्पय इति एतारापरूपकनिम् ।—काव्यप्रकार, ५० ६६०

है।<sup>१</sup> परवना आचार्यों ने विगपोक्ति का मुख्य लक्षण कारण के ज्ञान पर भी काय की अनुत्पत्ति बताया है। यह लक्षण दण्ठी भामह आदि के लक्षणों से सवधा भिन्न है। फिर भी वही कही गयीं प्राचीन आचार्यों के विगपोक्ति के उदाहरणों में अपने दृष्ट म अपना विगपोक्ति लागू करके दिया दी है। उदाहरण में यह तथ्य स्पष्ट हो जाएगा। प्राचीन आचार्य भामह ने विगपोक्ति के उदाहरण में लिखा है

स एवस्त्रीणि जयति जगति दुमुमायुध ।

हृतापि तनु यस्य गम्भुना न यत् हृतम् ॥

भामह के इस उदाहरण का मम्मटादि ने अपनी विगपोक्ति के लिए अपनाया तो है लेकिन लक्षण से सगति विज्ञान की दृष्टिकोण भिन्न रखा है। भामह की दृष्टि में शरीर का अभावरूप एक देव विगत होने पर भी बलवान् ज्ञान गुणांतरमस्थिति है और काम की अल्प शक्तिमत्ता विगप कथन है।<sup>२</sup> जबकि मम्मट की दृष्टि में शरीर हरण रूप कारण होने पर भी बाहरणरूप काय के अभाव पर है।

हम यह स्पष्ट करते हैं कि सस्कृत के आचार्यों में विगपोक्ति के दो रूप प्रचलित थे। एक विगपोक्ति वह थी जिसका लक्षण विधान दण्ठी और भामह ने किया था। और दूसरी वह जिस मम्मटादि परवर्ती आचार्यों से ग्रहण किया। कवय ने दोनों का ही अपनाया। परवर्ती आचार्यों की विगपोक्ति का उद्धान विगपोक्ति के नाम से ही ग्रहण किया और दण्ठी तथा भामह की विगपोक्ति को परवर्ती आचार्यों का विगपोक्ति से अलग करने की दृष्टि में विगप नाम देकर ग्रहण किया। एक दृष्टि में तो कवय का दृष्टिकोण मम्मटादि परवर्ती आचार्यों से भी यापक टूटता है। उन्होंने एक और जग प्राचीन मायताओं के प्रति समत्व दियाया वहा दूसरी ओर सच्च अनकारवादी आचार्य के समान विगपोक्ति के चमत्कार के विभावना के चमत्कारी तत्त्व में किंचित् भिन्न हान पर उम अलग अनकार के रूप में स्थान दिया। लेकिन हमके कारण एक गडबडी भी हुई। सस्कृत काव्यशास्त्र में कवय के समय तक विगप नाम का अनकार स्वीकृत हो चुका था। वह दण्ठी और मम्मट के विगपोक्ति नाम के अनकारों में निहित था। दण्ठी की विगपोक्ति ही कवय का विगप है। तब कवय के विगप और परवर्ती आचार्यों के विगप में नाम साम्य के कारण भ्रम में पड़ जाने की सम्भावना बत गई। जमाकिं उपर कहा जा चुका है सस्कृत के आचार्यों का

१ ना विगपोक्तिनि श्रेणी व्याख्या। यत्स्वप्न प्रथमादहरण ममथय मडिनात्पदादरूप्य निवाशात्तरय उभयकरुणानां प्रापकतातिरारूपकरय (विगप रथायत्न इति। अस्याभ्यन्तु तादात्म्यविकल्पयति कारणभिरावाभावरूपमिति विनायना प्रशंसा।—जबलवन १ ६

२ भामह ३।२५

३ इत्यं तादृशं च आप वन ए तर इत दाी श्री मेरुम आर अनन्तर एत एतय्य दा इत ए आर ए टरिपन ए नु इकमान श्री सुपायिटी आर दो गां प्राय लय

काव्यालकार पृ १६ श्लो २५

४ अत्र अनुहरणव्यापार काय सत्यपि कस्मिन् कारण वनांतररूपकादस्वभावकथनमिति विगपोक्तिः । —कव्यशास्त्रा ५० ६६०

विगप अनङ्ग एक अनकार न होकर पृथक् तीन अनकार हैं और अब तक वाच भी आचाय तथा मामाच लक्षण उपस्थित नहीं कर सका है ।<sup>१</sup>

त्रिंशत्काल का विगप च विगप म भिन्न है और ऋषी की विशेषाक्ति व स्थान पर है । च दृष्टि म उनका लक्षण तथा उदाहरण टांक है । और उनम मामजस्य भी है । बसल एक ही बात ही मकता है कि च अलकार का विभावना में अतभाव लिखा जा मकता है । उनकी दृष्टि म काल व उदाहरणों म विभावना ना लिखा जा मकती है । किंतु विगप कथन का विगप चमत्कारा तत्र विभावना की रूपमा मभी उदाहरणों म स्पष्ट है ।

टा० हीनगत दीक्षित न काल के विगप को ग्यक व आधार पर तथा उसके उदाहरण का समुच्चय व चर्या म मामजस्य दियाया है ।<sup>१</sup> म यों ही बातें ठीक नहीं हैं ।

## उत्प्रेक्षा

काल का उत्प्रेक्षा-लक्षण ऋषी व आधार पर बना है । ऋषी का लक्षण है  
अनघष्य स्थिता वृत्तिचेननस्पतरस्य वा ।

अप्योत्प्रेक्ष्यत यत्र तामुत्प्रेक्षा विदुवथा ।

जगत् वा चवन म किमी दूसर प्रकार म वस्तुन स्थित वृत्ति को दूसर ही प्रकार म उत्प्रेक्षित किया जाता है उन उत्प्रेक्षा वस्तु हैं ।

काल न उत्प्रेक्षा का उत्प्रेक्षा प्रकार लिया है

क्षयश्च औरहि वस्तु मे औरहि बीज तक ।

उत्प्रेक्षा तासौ महत द्विनक्ष बुद्धि स्तक ।<sup>१</sup>

'जगत्' वस्तु म किमी अर्थ वस्तु की तक या सम्भावना का जाता है तब उत्प्रेक्षा होता है । उत्प्रेक्षा का मूल है उपमय म उपमान का तक या सम्भावना । महा दृष्टि अर्थ आचार्यों की है । काल व लक्षण एक उदाहरण म मामजस्य है । लक्षण साम्प्रयम्न है ।

## आक्षेप

आक्षेप ना एक एका अनकार है जिनके स्वल्प व विषय म गमा प्राधान

१. "अनुक्तं न च नैना नानास्य कान्तं दृष्टं नादेर्याना च गिरी तीव्रधर  
स्थिता तथा वग आक्षेपश्च न आक्षेपश्च च वाच । शप

विगपचाप्र सदा न पुनरकस्मिन् सिद्धि लक्षण्य भिन्नवत् । कारा ना म अन  
मर्हद्वयम् १ २५६ तथा अनकार म विगप १ २ — नद्विस्तम् १ ५६

२. कविप्रिया १।५५ २

३. आक्षेप १ ६०

४. कात्यायन २।३२२

५. कविप्रिया १।३



भाषाय एकमत नहीं हो सक है। उन्होंने आक्षेप का जो लक्षण बनाए हैं व परवर्ती भाषायों द्वारा कम ही स्वीकृत हुए हैं। साथ ही परवर्ती भाषायों ने कहीं-कहीं अलग से नामकरण भी किया है। यहाँ हम हम अलंकार का सम्बन्ध मतीन प्राचीन भाषायों—दण्डी भामह और वामन का लक्षणों को देखकर उनका सम्बन्ध में परवर्ती भाषायों का मतों की खर्चा करेंगे।

काव्यालंकारसूत्र में वामन ने आक्षेप का लक्षण उपमानाभाषाक्षेप 'न्या है। इस लक्षण की दो याख्याएँ की गई हैं १ उपमानस्याक्षेप प्रतिषेध । अर्थात् जहाँ उपमान की हेयता दिखानी जाय तथा २ उपमानस्याक्षेपत प्रतिपत्ति । अर्थात् प्रस्तुत उपमेय के वर्णन द्वारा अप्रस्तुत उपमान का आक्षेप करना। कहने की भावना कता नहीं कि वामन का आक्षेप का लक्षण की प्रथम याख्या परवर्ती भाषायों का प्रतीक की याख्या है। तथा नित्य की समामोचिन की। इससे यह भी स्पष्ट हो गया कि वामन ने आक्षेप का जो लक्षण दिया वह परवर्ती भाषायों द्वारा स्वीकार नहीं हुआ। भामह ने आक्षेप का लक्षण इस प्रकार दिया है—

प्रतिषेध इवष्टस्य यो विनोवाभिहितक्षया ।

आक्षेप इति त सत गतन्ति द्विविध यथा ॥

इस लक्षण में तथा उदाहरणों में उन्होंने यह स्पष्ट कर दिया कि प्रतिषेध दो प्रकार का होता है—१ वक्ष्यमाण विषय तथा २ उक्त विषय। परवर्ती भाषायें व्यक्त जब आक्षेप का लक्षण दो प्रकार से करती हैं तो यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके लक्षण पर भामह का लक्षण का प्रभाव है। व्यक्त के आक्षेप के लक्षण इस प्रकार हैं।<sup>१</sup>

१ उक्तवक्ष्यमाणयो प्राकरिणकयोविनोवाप्रतिपत्त्यथ निषेधाभास आक्षेप ।

२ अनिष्टविषयाभासश्च ।

दोनों लक्षणों में अंतर कबन इतना ही है कि प्रथम में विधि अभीष्ट होती है निषेध का आभास होता है जबकि दूसरे में निषेध अभीष्ट होता है और विधि का आभास होता है। प्रथम लक्षण का आधार भामह है दूसरे का आधार दण्डी प्रतीत होने हैं। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि भामह के आक्षेप के लक्षण का विकास परवर्ती भाषायों द्वारा किया गया।

दण्डी ने आक्षेप का लक्षण में निषेध को आवश्यक तत्त्व ठहराया। निषेध चाहे वाच्य रूप में हो या विध्याभास शली में। दोनों ही उन्हें स्वीकार थे जबकि व्यक्त ने विध्याभास द्वारा आक्षेप निषेध को स्वीकार किया। लेकिन वाच्य निषेध को नहीं।<sup>२</sup> इसका कारण यह है कि उनकी दृष्टि में निषेधाभास का द्वारा विधि का

१ काव्यालंकारसूत्र ४।३।२७

काव्यालंकार २।६८

३ काव्यालंकारसूत्र पृ १४४—१५

४ तस्मात्प्रथमि प्रभार आक्षेप य सदान्तयाभिनवत्वेनाप्ये। अभिनवत्वेनेति दण्डीवाच्येयथा। —स्युक्त विम पृ १५४

५ तेन न निषेधविधे न विधे निषेध, किन्तु निषेधेन विधिरात्रेण —स्युक्त, पृ० १४८—४९

प्राक्षप दिखाना प्राक्षप अलंकार है।<sup>१</sup> इसलिए उ होने प्राक्षप क चार तत्त्व स्थिर किए हैं<sup>१</sup>

१ एक—अभीष्ट अर्थ होना ।

२ उम अर्थ का निपथ ।

३ निपथ की अनुपपन्नता अथवा आभासत्व । क्योंकि वास्तविक निपथ तो दोष है ।

४ इस प्रक्रिया से एक विशेष अर्थ की उपलब्धि ।

उनके द्वारा स्थिर किए गए प्राक्षप के उक्त तत्त्व उनके मत की पुष्टि करत हैं । कहना न होगा कि परवर्ती आचार्य परम्परा प्रायः स्वयं के इसी लक्षण को मानकर चली है।<sup>१</sup> कुछ ने दण्डी के विद्याभासमूलक प्राक्षप को भी भामह परम्परा के प्राक्षप के साथ साथ स्वीकार किया है । विश्वनाथ के साहित्यदण्ण में दण्डी परम्परा के प्राक्षप को स्वीकृति मिली है।<sup>१</sup>

दण्डी के प्राक्षप का लक्षण इस प्रकार है —

प्रतिषेधोक्तिराक्षपस्त्रकाल्यापेक्षया त्रिधा ।

अथास्य पुनराक्षय्यभेदानत्यादनतता ।<sup>१</sup>

यह लक्षण अर्थ आचार्यों के लक्षणों से भिन्न नहीं रखता । अधिक व्यापकता होने के कारण निश्चितता का आ जाना स्वाभाविक होता है । वही बात दण्डी के प्राक्षप के सम्बन्ध में भी कही जा सकती है । इस लक्षण तथा उमक उदाहरणों पर ध्यान देने से जो बातें सामने आती हैं वे ये हैं

१ प्रतिपद्यतमक उक्ति सापन्न है । प्रतिषेध का आभासात्मक होना आवश्यक नहीं । वे वाच्यरूप में निपथबन्धन में ही प्राक्षप मानत हैं । यह बात उनके उदाहरणों से ही स्पष्ट है।<sup>१</sup>

१ मन्वेदनिर्वाहानस्य विद्युमुन्म्याद्येपवमिति स्थितम् । अन्० म०, पृ १५०  
एव चाद्ये इत्यस्यैव निपथ निषेधस्यानुपपन्नत्वात् मत्स्येव विरायप्रतिपादनं चित्त  
चतुष्टयमुपयुज्यते । तथैव, प १४८

३ निपथो वस्तुमिन्मय यो विशेषमिधिसुया ।

वक्ष्यमाणान्वितविषय स आद्येपो दिधा मत ।—काव्य कारा १०१६१

४ वस्तुनो व तमिच्छस्य विरायप्रतिपद्ये ।

निर्वाहानस्य आद्येपो वक्ष्यमाणोत्तमो िधा ।

अनस्य तथाय विद्याभास परो मत ।—साहित्यदण्ण, १ १५

५ काव्यान्तरा ११०

६ उक्त कुवन्त्य करण करानि क्लमादिणि ।

किमर्थाहमनयात्तमग्निम् कमणि मन्त्ये ॥ म वज्रमानाद्येपोय कुव-देवानिनोत्पन्न कथं  
काचिन्निदेयेव चाटुकरेण रन्दने । काव्यान्तरा ११०३-२४

सत्यं प्रवीमि न त्व मा द्रष्टुं वक्ष्यम लप्स्यसे ।

अथा सुभनं सज्जान्नाचार्यवदनेन चतुषा । वही २१०१

धन न व, लब्धं ते मुग्धं छेम न वमनि ।

न चने प्राणमन्त्रेस्तथापि प्रिय मात्म ना । वही, २१३० तथा २१४० २१५६, २१६४

२ व निषध का उक्त वचन वाच्यत्व म अतितु विद्याभाम न प्राप्त होने पर भी आक्षेप मानत हैं।<sup>१</sup> स्वयंकात् न प्रशिक्षा गम्य म स्वी रूप को अपनयात्।<sup>२</sup>

व अथ आचार्यों के समान भविष्यत्—वक्ष्यमाण—श्रीर भूत—उक्तविषय—आक्षेप ही नहीं वतमान विद्या भा मानत हैं।

४ दण्डी न आक्षेप्य भद अर्थात् जिन तथ्य का उक्त किया जा रहा है—क आक्षेप पर हम अनकार क अनवानक न्तान का सम्भावना<sup>३</sup> यत् की है। और २४ न्तान क तो उदाहरण भी प्रस्तुत किए है। वतम यह स्पष्ट हो जाता है कि उनके आक्षेप भी क वम स वम दा आक्षेप अवश्य है। (क) आक्षेप भत् तथा (ख) आक्षेपक भत्। आक्षेपक भत् क प्रत्यय व सद्य माधन गत गत न जिनके आक्षेप पर आक्षेप्य वस्तु का निषेध किया जाता है जय—धर्मात्प का नामकरण या आक्षेप्य धर्म मात्र के आक्षेप पर तथा पुरुषाक्षेप का नामकरण आक्षेप क उपाय भूत परपवचन क आक्षेप पर हुआ है। परपक्षेप म आक्षेप ही प्रिय गमन न कि परपवचन।<sup>४</sup>

५ दण्डी के उक्त श्रीर उदाहरणों के इस विवरण म यह स्पष्ट हो जाता है कि आक्षेप क विषय म उनसे उचित वृत्त ही यापक थी। श्रीर इसलिए उसम शिष्यागता भी आ गयी है। य परता होने पर भी उक्तान भामह के शिष्याभास वात तत्त्व को स्वीकार नहीं किया है। यही दण्डी आक्षेप क निरूपण के लिए कण्व के आक्षेप रहे हैं। हम अनकार का उक्तान देन हुए कण्व न हमके स्वरूप की तो वाक्या की है उसम उक्तान तीन वाता म उक्तान साम्य रखा है। कण्व के आक्षेप का उक्तान यह है

कारज के आरम्भ ही उक्त की-त प्रतिषेध।

आपन तासो कहत बहु विषय वरनि सुमेध।

तीनों कास बतानिज भयो जु भावा होतु ॥<sup>५</sup>

उस उक्तान म दण्डी से साम्य वाला उक्तान जानें—निषेधाभास को आक्षेपक न मानकर वाच्यविषय म आक्षेप मानना विद्याभास भूतक निषेध का भी स्वीकार करना आक्षेप को भूत भविष्यत् वतमान तीनों वाला म मानना है।

यह सिद्धांत जा चुका है कि दण्डी न अपन न्तान का आक्षेप आक्षेप न्त

१ कात्यायन १२४०

अनिताव यानामश्च। अलशरम पृ १५०

३ अथर्व्य पुनार्जे उभेदात् दात्त ता।—वापी रा १२०

४ तत्र तत्र वि वि २ व रूपान्तु मा न्तु।

यत् सत्यं नन्दुयव विमशात् न्त त म न्तु। बी २।२०

५ वडा २।१४३

६ कविप्रिया १०।१

वताया है। किन्तु उनमें इस तथ्य की पूरी सगति प्राप्त नहीं होती। कण्व न सगति की इस निधिलता को नहीं आने दिया है। उहीन आक्षेपक के आधार पर भद करके अयवस्था को बचाया है। उ होने भूत भविष्यत वतमान तीनों कालों में आक्षेप की गति दिग्गत हुए उन प्रेम अयव धय संगय मरण प्रकाश आनीर्वाण धम उपाय शिक्षा क भण स दिखाया है। सभी भदा की पट्टि एक सी ही है। प्राय आक्षेप्य है प्रियगमन और आक्षेपक ह विभिन्न उपाय जो इस नामकरण के आधार हैं। गि ग आ तप क अतगत नायिका बाह्यरमास के ढग पर आतव उद्दीपनों का वणन करके प्रिय को जान से रोकती है। इन भदा में भूत भविष्यत् संगय आगिप धम तथा उपाय दण्डी में मिलते हैं। दण्डी का मूलाक्षेप कान में मरणान्तेप के रूप में मिलता है। वास्तव में भण उपनयन मात्र हैं। कहीं नायिका अघय में तो कहीं धय से कहा प्रेम प्रदशन से तो कहीं संगयात्मक वार्ता से कभी अपने मरण की सूचना से तो कभी किसी अय प्रकार से प्रिय के विरग गमन को रोकता है। भद के इन आधार भूत उपायों की अन तता का तो स्वयं दण्डी ने भी स्वीकार किया है।

भदा उपभोगों एवं नामकरण में कण्व ने सर्वत्र दण्डी का अनुकरण नहीं किया। कण्व जब आचार्य से यह आशा भी नहीं की जानी चाहिए साथ ही यह विषय भी अनुकरण का नहीं है। कण्व ने सभी आचार्यों का गम्भीर अध्ययन करके इस अलंकार को समझा है और तत्पश्चात् अपनी शिक्षक बुद्धि से अनेक उपाय हरणा की सहायता में इस समझाने का प्रयत्न किया है। सरलता एवं वाद्यगम्यता की दृष्टि से कण्व दण्डी से भी आगे उद गये हैं। जहां आवश्यक समझा है वहां दण्डी के मत में भिन्न मत प्रस्तुत करने में भी हिचक नहीं की गयी है। उदाहरण के लिए दण्डी के धर्मापेय में धम गद का प्रयोग गुण धम के लिए हुआ है। किन्तु कण्व ने हिन्दी में अधिक प्रचलित कत य रूप अय में ही उस ग्रहण किया है।

इस विवेचन के उपरान्त यह कहा जा सकता है कि कण्व के आक्षेप विवेचन के आधार दण्डी हैं। उनमें और कण्व में कोई भी मौलिक अंतर नहीं है। वास्तव में कण्व ने दण्डी के आक्षेप को परिमार्जित रूप में प्रस्तुत किया है। ऐसा प्रतीत होता है कि प्राक्कण ने कण्व के आक्षेप की आलाचना करके समय स्वयं दण्डी का अवबोधन नहीं किया है और ऊटपटाग समीक्षा दा है।

## श्रम

कण्व का श्रमालंकार मस्कृत के आचार्यों की परम्परा में प्रचलित श्रमालंकार से नितान्त भिन्न है। प्राचीन परम्परा में इसका श्रम तथा यथाश्रम दो नाम मिलते हैं। दोनों ही नाम पर्याप्त प्राचीन हैं। यद्यपि दण्डी ने भी इसका नाम बताया है।<sup>१</sup> इस अलंकार का विषय प्रथम उद्देश्यरूप में रम्य हुए पदार्थों के सम्बन्धश्रम में

१ कण्व ५५ अध्याय ५ २७ तथा ८

२ काव्या श, २१२७३

ही दूसरे पदार्थों का सन्निवेश होता है। सभी आचार्यों ने अपने अपने लक्षणों में इसी तथ्य को स्थान दिया है। मस्कृत आचार्यों में यदि इस अलकार क सम्बन्ध में मत भेद है तो नाम को लेकर है। यदि एक ने इस क्रम कहा है तो दूसरे ने यथामस्य<sup>१</sup> तथा किसी किसीने दोनों ही नाम दे दिए हैं।<sup>२</sup> इस अलकार का जन्म एवं स्वरूप इतना सरल है कि कोई भी प्रारम्भिक विद्यार्थी किसी भी आचार्य के लक्षण से उसका परिचय कर सकता है। ऐसी अवस्था में बेगव जस आचार्य के क्रम की स्वरूप भिन्नता का कोई न कोई कारण होना चाहिए। अरुणजी के समान यह कह देना भर से छुट्टी नहीं होगी कि बेगव क्रम के लक्षण और उदाहरण को विभा नहीं सक। लक्षण अस्पष्ट है और उदाहरण गलत हैं।<sup>३</sup>

यह समझ में नहीं आता कि बेगव जसा आचार्य क्रम जस सरलतम अलकार क स्वरूप को भी न समझ सक। यदि हम संस्कृत कायगात्र की परम्परा में इस अलकार की स्थिति पर तनिक ध्यान दें तो यह बात हमारा ध्यान अवश्य आकर्षित करेगी कि परवर्ती काल में इस अलकार को इतना मान नहीं मिला जितना प्राचीन काल में मिला था। यह ठीक है कि आचार्य लोग इसके लक्षण उदाहरण प्रस्तुत करते रहे। लेकिन यह सब परम्परा के निर्वाह के लिए ही होता था। इसका कारण यह था कि परवर्ती आचार्यों की दृष्टि में क्रम का निर्वाह जस भगदोष का अभाव मात्र ही था। इससे अधिक और कुछ नहीं। इस सम्बन्ध में जयरथ का कथन ध्यान देने योग्य है। उन्होंने बनाया है कि 'यह अपक्रम दोष का अभाव मात्र है और दोष से वचना मात्र ही अलकारत्व नहीं'।<sup>४</sup> और आगे चलकर पण्डितराज जगन्नाथ के समय में आते आते तो इस अलकार को पूर्णतः छोड़ देने का आग्रह सा किया जाना लगा था।<sup>५</sup> यदि निरूपण किया भी जाता था तो केवल इस आधार पर कि परम्परा से यह चला आ रहा है और उनको परम्परा में अपनी आस्था प्रकट करनी थी।

बेगव भी परम्परावादी हैं। लेकिन इस अलकार क सम्बन्ध में उन्होंने परम्परा को अल्प रूप में निभाया है। वे परवर्तियों द्वारा इस अलकार के निषेध के सम्बन्ध में दिए गए कारणों की तह तक पहुँच और उन्हें भली भाँति समझकर उनका

१ माम् कायलकार २१-६

२ नामन ४।३।१७ मम्मन् विरवतोष १।७६

३ अल स पृ १८७

४ वरीव एक आचर्यो पृ ३

५ न चारयानकारमुक्त दोषाभावम्भवान्। उद्दिष्टाना क्रमेणानुनिर्देशे ह्यत्रियमाद्योपक्रमारया षोष प्रसूयन्। दाषाभावमात्रं च नालकारत्वम्। तस्य कविप्रतिभात्मकविधि ह्यतिविशेषत्वे षोषात्।'

अल स०, पृ १८८ विमर्शिनी

६ यथामरपमलकारपञ्चीमेव तावत् कथमारारु प्रभवताति तु विचारणीयम्। न ह्यमिन् लोक सिद्धे कविप्रतिभानिमित्तवत्त्वालकारताजीवानोर्नेशतायुपलभिरसित दैनालकारयत् शो मनागपि स्थाने स्यात्। अतोपक्रमत्वरूपणाभावे एव यथामस्यम्। एव चोद्भवतायुपाधिनामुपतय कुत् कर्षापखवत्परमणीया एव। एतेन यथामरदमव कमानकारसदृशा यवत्तो वामनस्यापि गिरो वारुयता इति तु नव्या। —रमगाधर ४७८

निराकरण करत हुए उन्होंने अपने अमालकार का लक्षण उपस्थित किया। वास्तव में परवर्ती आचार्यों ने इस अलकार का निषेध इसलिए किया है कि इसमें अलकारत्व का मूल विच्छिन्ति नहीं है। इस आपत्ति को स्वीकार करत हुए ऋग्वेद का कथन है कि यदि कहीं अमात्मक विच्छिन्ति मिल जाय तब तो उसे अमालकार कहा जा सकता है। आचार्यों के निषेध के कारण को ध्यान में रखकर ही ऋग्वेद ने अमालकार का लक्षण इस प्रकार दिया है

आदि अत भरि बरनिए सो अम वेसवदास ।<sup>१</sup>

इस लक्षण के अनुसार, प्रत्येक कथन का अंतिम अंग आगे के कथन में आद्य स्थान पाता चल, इस अम में किए गए वणन वाले स्थानों में अम अलकार होता है। अम वणन वाले अलकार का उदाहरण उहाँ ने यह दिया है

धिक मगन विनु गुनहि गुन सो धिक सुनत न रिन्निभय ।

रिन्निभ सु धिक विनु भोज भोज धिक देत जु खिज्जिभय ।

दोदो धिक विनु साच सांच धिक धम न भाव ।

धम सु धिक विनु दया दया धिक अरि कह आव ।<sup>२</sup>

इस प्रकार के वणन वाले स्थानों में संस्कृत के आचार्य एकावली अलकार मान चुके थे। लेकिन ऋग्वेद ने एकावली को अलग भाव्यता न देकर उसीको अम नाम दिया। ऋग्वेद के इस प्रयत्न की सफलता इस तथ्य में आकी जा सकती है कि यदि ऋग्वेद के मत को भाव्यता प्राप्त हो जाती तो दो बहुत ही महत्वपूर्ण बातें सिद्ध हो जाती। एक अम के अस्तित्व के सम्बन्ध में उठी आका समाप्त हो जाती क्योंकि यहाँ अमात्मक विच्छिन्ति का अभाव नहीं था। इस अलकार का नाम अम रखना अनिवार्य होना क्योंकि इसमें त्रियात्मक विच्छिन्ति की प्रधानता है। इसका लक्षण है और हिन्दी वाला के लिए तो अम नाम एकावली की अपेक्षा अधिक सरल पड़ता। किन्तु इस भाव्यता का संस्कृत आचार्य परम्परा से मेल न रह जाता।

### गणना

विभिन्न सख्या-सूचक शब्दों के प्रयोग वाले स्थानों पर ऋग्वेद ने गणनालकार माना है।

अनुगणना सो कहत ह जिनके बुद्धि प्रकास ।<sup>३</sup>

लक्षण के पश्चात् ऋग्वेद ने एक से दस तक सख्या-सूचक शब्दों की लम्बी तालिकाएँ देते हुए गणना के उदाहरण दिए हैं। गणना के सम्बन्ध में ऋग्वेद की इस सामग्री का आधार काव्यकल्पलतावृत्ति प्रतान चतुर्थ स्तवक ६ और अलकारगेतर मरीचि १८ हैं। प्रो० अरण की यह आलोचना ठीक ही है कि यह कोई अलकार नहीं

१ कविप्रिया, ११।१

२ वही, ११।२

३ कविप्रिया, ११।३

है।<sup>१</sup> किन्तु कविवर्य न उपयुक्त ग्रन्थों में माय गणना का अनकारण्य में स्वीकृति दे दी है। वस्तुतः उनका सम्बन्ध विच्छिन्न विचार में नहीं है।

## आगी

कविवर्य का आगी अनकारण्य ऐसा है जिसकी पूर्ण परम्परा सङ्गृत काव्यशास्त्र में प्राप्त नहीं है। प्राचीन आचार्यों ने आगी का या तो मायता दी है या उनका उल्लेख किया है। लेकिन परवर्ती आचार्यों वामन स्वयंकारण्य में विचारणाएँ आदि क द्वारा इसका उल्लेख न हान में यह जाना जाता है कि वास्तव में उनकी मायता समाप्त हो गई थी। मायता देनेवाले प्राचीन आचार्यों में भामह दण्डी और भट्टि क नाम उल्लेखनीय हैं। इस अनकारण्य के विवेचन के लिए कविवर्य ने दण्डी को आधार बनाया है। दण्डी के आगी का उल्लेख इस प्रकार है

आगीर्नामाभिलषिते यस्तु आगमनं यथा ।

पातु य परम उद्योतिरवाड मनसोत्तरम् ॥

अर्थात् जहाँ अभीष्ट वस्तु में आगमन दिखलाया जाय जहाँ वह अवाङ्मनस गोचर योग्यता आपका रक्षा करे। आगमन गन्त का अर्थ अभीष्ट कामना है। यह दो प्रकार की हो सकती है—अपन लिए हमारे के लिए। प्रथम अवस्था में यह प्राथना स्वरूप होती है द्वितीय अवस्था में मंगलकामना या आगीर्वाण्य के रूप में होती है। पराये मंगलकामना या आगीर्वाण्य होने पर ही वह आगी अनकारण्य के अन्तर्गत आती है। दण्डी के उदाहरण से भी हम तथ्य की पुष्टि होती है। भट्टि ने भी पराये मंगल कामना के अर्थ में उसका प्रयोग किया है। —

पतिवधपरिप्लतलोलकङ्गो नयनजनापहृताजनोष्ठरागा ।

कुहरिपुवनिता जहोहि शोकं च शरणं जगतां भवान् क्व मोह ॥<sup>१</sup>

भामह के उल्लेख ने इस अनकारण्य के अर्थ का और भी व्यापक बना दिया है। वे सोहाय्य की किसी भी अवरोधनी उक्ति को आगीरनकारण्य के अन्तर्गत स्थान देते हैं। किन्तु उनका उदाहरणों का अभिप्राय सुहृद की मंगल कामना पर नहीं है। कविवर्य ने आगी का अर्थ इस प्रकार किया है

मातृपिता गुरु देव मुनि कहत जो कछु सुख पाय ।

ताही सौ सब कहत हैं आगिय कवि कविराय ।<sup>२</sup>

हम उल्लेख को देखने से यह स्पष्ट हो जाता है कि कविवर्य ने इस अनकारण्य को भामह के समान ही व्यापक अर्थ में अपनाया है। लेकिन दण्डी का आधार होने के

१ केराव एक आचरण्य पृ २५

२ काव्यालोक २।३५७

३ मणि प्रमत्तकान्य १।१।७

४ आशीरपि च केवाचिन्लङ्कारतया मना ।

साहित्यविराधात्तौ प्रयाग स्वायत्ततया ।—कालान्तर १।५५

५ कविप्रिया, १।१।२४

कारण लक्षण की यह यापकता भामह के ही नमान कणव व उदाहरण द्वारा सीमित हो गयी है। वह आगीवाद अथ तक ही सीमित है—

चिर चिर सोही रामचन्द्र व चरण मुग ।

बसोदास दोवा कर अणिप आणय नर ॥

कुछ आत्मावका न दांटी और कणव म आगारनकार व मन्व घ म अंतर बनाया है। १० हीरागत दीक्षित न लिखा है दण्ड व अनुवार आगारनकार वही होता है ज। अभिनवपिन वस्तु की प्राति की लच्छा अथवा अभिनाया का स्पष्टीकरण है। परंतु कणव न माना पिता गुणव तथा मृनिषा द्वारा लिपि गए आगीवात् को ही आगी लकार माना है।<sup>१</sup> लेकिन हम हम कथन म सम्मत नहीं हो सकते क्योंकि कणव और लच्छा म का मूर्तिक अंतर लिपियी नहीं पत्ता। नाटका व आगीवादात्मक पद्यों का आत्मावका और आगीरलकार म रचन की यन्ती मा गी है कि पराथमगत कामनास्वरूप आगीवात् ही आचाय सम्मत है। हम मन्वघ म और कुछ कहना पय है।

### प्रमालकार

वा पाठ्य म लच्छा न प्रेयम नाम व अनकार का विवचन किया है। दण्डी का वही प्रथम कणव का प्रमालकार है। किमी भी प्रियतर वात का कथन प्रेयम का विषय हो सकता है—उमा लछी का कथन है।<sup>२</sup> लेकिन हम लक्षण स यह स्पष्ट है कि इनम यापकता न। है। यद्यपि हम अनुमार वा किमी प्रियतर वात का कहना मात्र प्रथम है। उहनि प्रथम व दा उदाहरण लिपि है। अिनम म प्रथम म स्तुय कृष्ण की प्रीति व आगार पर तथा दूसर म कानवीय वा प्रीति व आगार पर प्रेयम क स्वल्प को स्पष्ट किया है। कहना न हागा कि इन उदाहरणों व द्वारा उहोंने अपने लक्षण का मकीणता का दूर करके हम अनकार का यापकता प्रदान की है। भामह न प्रथम का लक्षण ता नया लिपि लेकिन उदाहरण न समय वहा उदाहरण प्रस्तुत किया जा दण्डी का था।<sup>३</sup> हमस स्पष्ट है कि भामह न उदाहरण न देकर भी यह सिद्ध कर दिया कि उहें हम अलनार वा दण्डी द्वारा दिया गया लक्षण माय है।

किंतु परवर्ती कान में हम अलकार व स्वरूप म विवाम हुआ। तब उसका

१ कविप्रिया १११२५ २६

२ आचाय कवकाम ५० २६६

३ प्रेय प्रियतरान्यातन।—कव्यांश ०१०५

४ अ—अथ वा मम गोविं न जाता वधि तृहागत।

कालनया मने प्रीतिस्तरै लमने पुन ।—कव्या ०१०२

आ—मामपुत्रो मरद् भूमिन्वीन हातानला ब्रधम ।

इति रूपालयनिकम्प रसा द्रष्टुं व के वाम् । इयानि ।—वगी, २१००—६

५ कव्यानकार १५



रूप उतना सरल न रह पाया जा प्राचीन प्राचार्यों का भाव था ।<sup>१</sup> और तब उसका स्वरूप—भाव जहा किसी श्रय का भ्रम घन—दृष्टा ।<sup>२</sup> रम्यक न इम अलकार व विक्रम को एक पग और प्राग बनाया । उहान एसक विषय म भाव व भ्रमभाव या गुणी भाव की दत्त नहीं रखी अपितु भाव सामाय व निव घन को प्रेयस कहा ।<sup>३</sup> एमक साथ ही इन प्राचार्यों न दण्डी व लक्षण —प्रेय प्रियतराम्यानम्—की सगति अपने अपने ढंग स दिखायी है । रम्यक न कहा है कि जहा प्रेयस का निवघन हो यहा ता प्रियतर का भय है । विवनाथ व अनुमार एना रचना विधान अत्यन्त प्रिय होता है अत वह प्रियतर हान व कारण प्रेय कहा जाता है । रम्यक ने भाव मात्र व विधान को और ध्वनि परम्परा का प्रतिनिधित्व करत हुए विवनाथ न भाव-मात्र व गुणीभाव को प्रेयस कहा है । रम्यक न रसादि अलकारो व लक्षण ध्वनिवादी तथा ध्वयभाववादी दोनों को ध्यान म रखकर किए है । मम्मट न तो प्रेयस जस अलकारो को अलकार ही नहीं माना । किन्तु उहान भी गुणीभूत यय व प्रसंग म उसक उदाहरण देकर आनन्दवधन की परम्परा का पासन किया है । एस विवचन व आधार पर यह समझा जा सकता है कि दण्डी भामह आदि व प्रयस तथा रम्यक विवनाथ आदि व प्रेयस म बहुत अंतर है । दण्डी स प्रभावित हान व कारण कव न एस अलकार को स्वीकार ता किया लेकिन ध्वनिवादिया व प्रेयस स अलग करने व उद्देश्य स उस प्रेयस क स्थान पर प्रेमालकार का नाम दिया । कहना न हागा कि अपने इम उद्देश्य म उहे पूण सफलता मिली क्योंकि व एस दण्डी की अपभा अपिष्ट स्पष्ट कर सक हैं । उनक प्रेमानकार का लक्षण इस प्रकार है

कपट निपट मिटि जाइ जह उपज पूरन क्षम ।

ताही सौ सब कहत ह केसब उत्तम प्रम ।<sup>४</sup>

कव ने एसका जो उदाहरण दिया है उसकी लक्षण से पूण सगति है । इस अनकार व सम्बध म प्रो० अरण की नितांत अमम्बद्ध टिप्पणी है किसी मनोभाव का कपटरहित वणन प्रेमानकार है । जसाकि कव का स्वभाव है उहाने अदभुत खीच-तान स सभी प्रकार व आचार्यादो म प्रेमालकार मान लिया है ।<sup>५</sup>

दत्तप

तप व निरूपण म भी कव ने दण्डी का ही आधार ग्रहण किया है । दण्डी ने श्लेष का लक्षण दत्त हुए कहा है

१ काण नोटम आन साहित्यपण्य पृ ३१६

२ साहित्यपण्य १ १६५ ६, ३१६

३ अम० स पृ २३३

४ अम स पृ २३२

५ साहित्यपण्य १ १६३ कृति

६ कविप्रिया १११२८

७ केशव रक अध्वयन, पृ०३६

८ आचार्या, २१३०

द्विलिख्यद्विलिख्यमनेकायनेकरूपावित वच ।<sup>१</sup>

अर्थात् एकरूप होते हुए भी अनेकाय वचन श्लेष हाता है । केशव के लक्षण का भी यही भाव है जो इस प्रकार है

दाइ तीन अरु भौति बहु अानत जाअ अथ ।

श्लेष नाम तासों कहत जे ह बुद्धिसमय ।<sup>२</sup>

दण्डी न सामान्यत श्लेष व दो भेद किए हैं—भिनपद और अभिनपद ।<sup>३</sup> और केशव न भी इन दो भेदों को स्वीकार किया है । भिनपद का लक्षण देते हुए केशव ने कहा है कि जहां पद म ही पद काटकर निकाला जाए वहां यह श्लेष होता है ।<sup>४</sup> इस दृष्टि से जहां कोई शब्द भिन्न पक्षों के लिए भिन्न अर्थ देता है वहां अर्थ-भेदात् शब्दभेद के अनुसार भिन्न पद माने जाएंगे । यही केशव की दृष्टि में पद में पद काटना है । किंतु जहां भिन्न पक्षा के लिए संवधा भिन्न अर्थ न करने पड़ें वहां अभिनपद होता है । परवर्ती आचार्यों ने पद विच्छेद की व्यवस्था पर आधारित जो अलग पद और अभग पद दो भेद किए उन्हें दण्डी के भिनपद और अभिनपद से संवधा भिन्न समझना चाहिए । इन सामान्य भेदों के अतिरिक्त दण्डी ने श्लेष व सात भेद और दिखाए हैं । यथा—अभिनप्रिय अविच्छिन्न विच्छिन्नार्थ नियमवान् नियमाक्षेप रूपोक्ति, विरोधी अविरोधी हैं । दण्डी ने इनके लक्षण नहीं दिए । कबल उदाहरण देकर ही इनके रूप को स्पष्ट करने की चेष्टा की है । उदाहरणों की देखकर इन भेदों के विषय में कुछ निष्कर्ष किया जा सकता है । इन नियमवान् और नियमाक्षेपरूपोक्ति अलग एक-सं हैं ।<sup>५</sup> तथा ये दोनों वर्तमान परिमर्या अलंकार में आते हैं । सामान्य श्लेष ही को दूसरा नाम अविरोधी दिया गया है । और विरोधी विरोध मूलक है ।<sup>६</sup> अतः केशव ने दण्डी के सात भेदों में से केवल पांच अभिनप्रिय अविच्छिन्नार्थ विच्छिन्नार्थ नियम तथा विरोधी भेदों को अपनाया ।<sup>७</sup> और उहीके समान लक्षण न देकर केवल उदाहरण ही प्रस्तुत किए । केशव ने परिसर्या अलंकार को मायता नहीं दी है । उनके नियम का उदाहरण इसीलिए दण्डी की परिसर्या के उदाहरण के समान है । इस दृष्टि से जहां भी केशव की रचनाओं में परिसर्या अलंकार पाया जाता है, वहां उन नियम श्लेष कहना ही उचित है । दण्डी का विरोधी अर्थ का उदाहरण विरोधाभास का है । किन्तु केशव का विरोधी श्लेष व्यतिरेक का उदाहरण है । इससे यह समझा जा सकता है कि आचार्य केशव ने विरोधाभास ही नहीं अर्थ समस्त

१ काव्यान्तर २।३१०

२ कविप्रिया ११। ६

३ काव्यान्तर २।३१

४ कविप्रिया १।३४

५ वही १।३६

६ काव्यान्तर २।३१६-३२०

७ वही ३ १-२०

८ कविप्रिया ११। ६

विरोधमूलक अलंकारों को भी जो श्लेष पर आधारित हैं विरोधी श्लेष के अन्तर्गत ला लिया है। ऐसा हान पर भी दण्डी और वेगव के दृष्टिकोण में कोई मौलिक अन्तर दिखाई नहीं पड़ता है। जहाँ श्लेष भी हो तथा तन्मूलक दूसरे अलंकार जैसे परिसंख्या समासोक्ति, विरोधाभास व्यतिरेक उपमा रूपक आदि हो वहाँ श्लेष कहा जाए या उन विनिष्ट अलंकारों का अधिकार माना जाए? वास्तव में संस्कृत के आचार्यों के लिए यह विवादास्पद का विषय रहा है और अलग अलग आचार्यों ने अलग अलग मायताएँ दी हैं। तीन मायताएँ तो स्पष्ट हैं। उन्मत्त के अनुसार एमे स्थला पर श्लेष माना जाना चाहिए। मम्मट और विन्वनाथ ऐसे स्थलों को सक्कर का विषय मानते हैं। और श्यक के वग के अनुसार उन स्थलों पर श्लेष न मानकर विंग्य विंगेय अलंकारों को माना जाना चाहिए।<sup>१</sup> इस सम्बन्ध में दण्डी ने स्पष्ट रूप से अपना मत व्यक्त नहीं किया है लेकिन उहोंने जो विवेचन किया है उसको धरते हुए उहें श्यक आदि के वग में रखा जा सकता है। उहोंने विशिष्ट विशिष्ट अलंकारों के प्रसंग में श्लेषोपमा विनिष्टरूपक श्लेषाक्षय आदि लिखा है। तो फिर विचारणीय यह है कि ऐसी अवस्था में उहोंने श्लेष के प्रसंग में वैसे स्थलों का क्या स्थान दिया। इसका समाधान यही है कि दण्डी के समय तक यह प्रश्न खुलकर आचार्यों के सामने नहीं आ पाया था। श्लेष की दृष्टि से उनमें कोई श्लेष प्रकार तथा विरोध आदि की दृष्टि में कोई विनिष्टालंकार दोनों को ही के स्वीकार कर लते थे। असा कारण उहोंने दोनों ही स्थलों पर इनका निरूपण कर दिया। अकारण बाद में उठें और परवर्ती आचार्यों ने अपनी भिन्न रायें प्रस्तुत कीं। दण्डी के नियम श्लेष तथा विरोधी श्लेष आदि नामों को तो उपलक्षण मात्र समझा जाना चाहिए। केशव भी मस्वृत के आचार्यों के तब वितक में नहीं पड़े। उहोंने सरलतम पथ का अनुगमन करके अपना लक्षण कह लिया। उहोंने दण्डी के समान ही उपलक्षण रूप में उपमा श्लेष का नाम भी वस हा लिखा है जमेकि दण्डी ने उपमा रूपक आक्षय आदि श्लेषों का। एक ही स्थल पर दोनों अलंकार अलग अलग बन जाएंगे यह बात केशव ने इस प्रकार प्रकट की है

भिन्न भिन्न पुनि पदत के उपमा श्लेष बलानि।<sup>१</sup>

### सूक्ष्म

वेगव के सूक्ष्म का उल्लेख तथा उदाहरण दण्डी के अनुसार है। सूक्ष्म का उल्लेख उहोंने इस प्रकार किया है

कौनहूँ भाव प्रभाव त जानिय जिय की बात ।

इगित त आकार त कहि सूक्ष्म अवदात ।

इस अलंकार के सम्बन्ध में दण्डी से केशव में एक अन्तर दिखाई पड़ता है कि

१ पी की काण इत्यादिवाचन दृ साहित्यरत्न पृ २०

२ काव्यालंकार १३

३ कविप्रिया ११६

४ कविप्रिया ११५

दण्डी ने आकृति तथा इगित दोनों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जबकि वैशद्य ने बचल इगितभूतक सूक्ष्म ही उदाहृत किया है।

### वेग

वेग के लगे के आधार भी दण्डी ही हैं। दण्डी ने दो प्रकार के वेग बताए हैं। उनमें से वेग के लगे प्रथम प्रकार का है। द्वितीय प्रकार के वेग के लेश का वेग न छाड़ दिया है। इसका कारण यह है कि वह लेश बहा होता है जहां लेश नित्य द्वारा स्तुति या स्तुति द्वारा निन्दा की जाए। परवर्ती काल में ऐसे स्थलों पर व्याजस्मृति तथा व्याजनिन्दा नाम के अलकार प्रचलित हुए। अतः वेग ने उस ग्रहण नहीं किया।

वेग के सम्बन्ध में डॉ० हीरानाथ दीक्षित का सम्मति है वेग का उदाहरण अपह्न नि अलकार से पृथक्ना दिखाने के लिए दण्डी की अपेक्षा अधिक अच्छा है।<sup>१</sup>

### निदग्ना

वेग की निदग्ना का विवचन भी दण्डी की निदग्ना के आधार पर हुआ है। निदग्ना का लक्षण दण्डी ने इस प्रकार दिया है

अर्यांतरप्रवृत्तेन किञ्चित्सदृश फलम् ।  
सवसद्धा निदग्नेत यदि तत् स्यान्निदग्नाम् ।<sup>२</sup>

अनुसार किसी अर्थ अथवा प्रवृत्त किसी वाक्य द्वारा कुछ उसी प्रकार के सत् या असत् फल के निदग्ना जाने स्थानों पर निदग्ना होती है। वेग के लगे का भी यही रूप है

कीनहु एव प्रकार त सत अथ असत समान ।  
करिण प्रगट निदग्ना समुपेत सकल मुजान ।<sup>३</sup>

दण्डी और वेग में अंतर केवल उदाहरणों में है। दण्डी ने सत् और असत् फल निदग्ना के उदाहरण अलग अलग लिखाए हैं जबकि वेग ने एक ही उदाहरण द्वारा दोनों प्रकार के फल निदग्ना कहा दिया है।<sup>४</sup>

### ऊजालकार

वेग के ऊजालकार का आधार भी दण्डी ही हैं। जहां अलकार के अर्थ में वेग का उदाहरण अलकार दण्डी ने लिखाया है। दण्डी का यही ऊजालकार वेग ने अपनाया

१ आचार्य कृष्णानन्द पृ २६७

२ कर्णाट २१५८

३ कर्मिणी ११४६

४ बहो ११५०

५ तर्कालोक २१७७ । आचार्य २१७७

है। सधन देते हुए कशव ने वसी ही बात कही है

तज न निज हकार को जछपि घट सहाय ।

ऊज नाम तासों कह केसव सब कविराय ।<sup>१</sup>

दण्डी का ऊजस्वी परवर्ती आचार्यों के ऊजस्वी से सवधा भिन्न है। परवर्तियों ने रसाभास या भावाभास के गुणीभूत होने पर इस अनकार की स्थिति मानी। अस्य स्थलो पर जस प्रेयस आदि के समान यहा भी वैश्व ने परवर्तियों का साथ न देकर दण्डी का ही अनुगमन किया है।

### रसवद अलकार

रसवदलकार के विषय में आचार्य परम्परा में कई मायताएँ प्राप्त हैं। आनन्दवधन से पूर्व के आचार्य प्रायः रसात्मक सौन्दर्य को अलकारों में अन्तर्भूत करते हुए रसवदनकार कहते हैं। कुत्तल ने रसवदलकारों के प्रति एक भिन्न ही दृष्टि रखी है। गौडीय आचार्यों की दृष्टि अलग है। यहा हम दो प्रमुख मायताओं का सामने रखना चाहते हैं। एक ध्वनिवादी मायता दूसरी ध्वयभाववादी मायता। ध्वयभाववादी मायता में हम भामह दण्डी उदभट आदि अलकारवादी आचार्यों को रसकत हैं ध्वनिवादी में आनन्दवधन अभिनव मम्मट विश्वनाथ जगन्नाथ को। यद्यपि अलकारवादी आचार्यों की रस चेतना में परस्पर पर्याप्त अन्तर है फिर भी वे सब इस बात में समान हैं कि रसों को रसवदलकार कहते हैं।

अलकारवादी आचार्यों के अनुसार रसवद का अर्थ है रस युक्त। वे समस्त रसमय चित्रणों में रसवदलकार मानते हैं।<sup>२</sup> इन ध्वयभाववादियों के दृष्टिकोण का सारांग प्रस्तुत करते हुए एक रसवत् गान की पुष्टि करते हैं रसो विद्यते यत्र निबधने यापारात्मनि तद्रसवत्।<sup>३</sup> इस वग के लोगो के अनुसार जहा रस का प्रधानतया चित्रण हाता है वहा रसवत् होता है तथा जहा रस गीण होता है वहा उदात्त नामक अलकार होता है।

दूसरी मायता ध्वनिवादियों की है जिनके अनुसार रस प्राधान्य युक्त होने पर तो ध्वनि कहलाता है गुणीभूत होने पर रसवत्।<sup>४</sup> इनकी मायता में ध्वयभाववादियों के उदात्त का प्रश्न नहीं। मम्मट के अनुसार गुणीभूत रस को रसवदलकार

१ कविवर्या ११।५१

२ रसवदमपरात्मम् । काव्यान्तरा २।२७७ । रसवद् रश्मिस्पर्शे १ गारास्ति रस यथा ।

—भासड १६

३ अर्न स ५ २३३

४ तत्र यस्मिन् शब्दे वाक्याभूता रसाभ्यां रसवदलकारा तत्रंगभूतरसान्विषये त्रितीय उदात्तलकार । वी ५ २३३ । यस्मिन् शब्दे इतिध्वन्यभावात् त्रिना मन्म् । विमर्शिनी जयरथ, ५ ३३ ।

५ यन्मने त्वगभूते रसान्विषये रसवदलकारा अन्यस्य रसान्विषयिना व्याप्तं वात् तत्र तदा लकारस्य विषया नावशिष्यते तन्विषयस्य रसवदलकारिणा व्याप्तं त्वान् । वी ५ ३२३ ।

नहीं सीधे गुणीभूतव्यग्य ही कहना चाहिए ।<sup>१</sup> व रसवदलकार जसी कोई चीज स्वीकार नहीं करना चाहत । केवल भ्रान्तवधन व घ्रादग पर स्वीकार कर लेते हैं ।

ध्वनिवाद व अनुमार रसादि गुणीभूत होने पर रसवत् होत हैं तब प्रश्न उठता है रसवत् क स्थला म प्रधान कौन हाता है ? मम्मट के अनुसार यह प्रधानी भूत अथ कोई रस कोई भाव या कोई वाच्य हो सकता है ।<sup>१</sup> भ्रान्तवधन के अनुमार यह प्रधानीभूत अथ किसी देवता राजा गुरु आदि का स्तुति या चाट्ट रूप हाता है । भ्रामह ने ऐस स्थला को प्रेय कहा है । अभिनव ने ऐसे स्थला म भ्रान्तवधन तथा भ्रामह दोनों की दृष्टि से सगति दिखाई है ।<sup>१</sup>

यह तो रही मुक्तक काय म रसो की रसवदलकारता की बात । यदि प्रबध म किसी रस प्रवाह व बीच दूसरा रस अग होकर आता है तो उस अगभूत रस को क्या कहा जाएगा ? सामान्यत उस खड रस या सचारी रस का नाम दिया गया ह । भरत ने का प म ऐसी स्थितियों की सम्भावना की है । किसी आचार्य न इस प्रकार गुणीभूत रस को रसवत् नहीं कहा । किन्तु जमाकि हम अभी देखेंगे शैशव ने ऐसी ही परिस्थिति का एक पद्य रसवत् के प्रसंग म उपस्थित किया है । मुक्तक म एक रस के गुणीभूत रस की ध्वनिवाद की दृष्टि स जय रसवदनकार कहा जाता है तो प्रबध म अ प रस व गुणीभूत किसी रस का वहा नाम क्यों न दिया जाए उनका यही तक प्रतीत होता है । मम्मव है इस प्रकार की चर्चा उनक सामन आई हो ।

रसवन व विषय म कंगव ने शिक्षक वृद्धि स विभिन्न दृष्टिकोणा स उदाहरण प्रस्तुत किए हैं । हम उनक निरूपण को ठीक ठीक व्ययक के रसवद विवेचन पर दृष्टि रखकर ही समझ सकते हैं । कंगव ने रसवत् का लक्षण इस प्रकार दिया है

रसमय होइ सु जानिए रसघत बसवदास ।

नवरस को सक्षय हो समुप्री करत प्रकास ।<sup>१</sup>

रसवन गण सस्कृत आचार्यों द्वारा अपना प्रपती दृष्टि से व्याख्यात हुआ है । यहा भी हम कंगव व रसमय गण को ध्वनिवादियों की दृष्टि स 'रस-गमित निरूपण तथा ध्वयभाववादियों की दृष्टि से रसात्मक चित्रण के अर्थ म ल सकते हैं । अब हम कंगव व विभिन्न रसवदलकारा व उदाहरणों की आर आ सकते हैं ।

### शृंगार रसवत्

कव्यक ने अपने विवेचन म प्रथम उदाहरण इस प्रकार का रसा है जिसका

१ अन्वय तु प्रसंगे वाच्यार्थे सप्राप्तभूतो रसात्प्रित्तम गुणीभूतव्यग्य रसवत्प्रेयतात्त्वमभाहिता-  
दयान्तकारा ।—काव्यप्रकाश ७० ४ पृ २५

२ वही पृ० १६४

३ ध्वन्यलोक २।२० की वृत्ति ।

४ न हो कर्म काय विचिन्नि प्रयागन । ना० शा०, ७।११६

५ कविप्रिया १३।५३

गगति उहोने स्वयं ध्वनिवादी तथा ध्वयभाववादी दोनों दृष्टियां स सगाई है।<sup>१</sup> केशव का प्रथम शृंगार रसवत् का उदाहरण भी इसी प्रकार का लिखाई पठता है। इस उदाहरण में ध्वनिवादी की दृष्टि से संयोग शृंगार का वर्णन वियोग व अन्नभत है। नायिका की विरहाशंका में संयोग गौण है। अतः अगभूत संयोग की दृष्टि से यहाँ ध्वनिवाद की दृष्टि से रसवदलकार कहा जा सकता है। ध्वयभाववादी की दृष्टि से पायन्तिक वियोग शृंगार रस का चित्रण मानकर रसवदनकार कहा जा सकता है।

### रींद्र रसवत्

द्वितीय उदाहरण रींद्र का है। इस ध्वयभाववादियों की दृष्टि से रसवदलकार का उदाहरण माना जा सकता है। इसमें सीधे सीधे रावण व प्रति राम व शोध की योजना है।

### वीर रसवत्

यह उस प्रकार का प्रबन्धागत रसवत् का उदाहरण है जिसकी चर्चा हमने अभी पीछे की है। यह रामचन्द्रिका व सत्रहवें प्रभाव का ४६वाँ छन्द है। लक्ष्मण शक्ति का प्रसंग है अतः प्रकरण करण रस का है। वारक लक्ष्मण मोहि विलोकी। मो कह प्राण चले तजि रोकी। कहकर राम विकल हो उठते हैं। प्रसंगवत् उन्हें देवताओं के प्रति रोष हो आता है। जिन देवताओं के लिए सब कुछ किया गया व आज कुछ भी सहायता नहीं करते। फिर राम क्यों न सत्कार को सुरहीन बना डालें। राम के ये उत्साहमय वचन प्रसंग से अलग करके वीर रस की प्रधानता का उदाहरण है और ध्वयभाववादियों की दृष्टि से रसवदलकार है। दूसरी ओर यह उत्साह प्राकरण शोक का अंग होने के कारण ध्वनिवादियों की दृष्टि से रसवदनकार है।

### करुण रसवत्

इस उदाहरण में शोक का चित्रण है। इसे भी ध्वयभाववादी दृष्टि से रसवदनकार मानना चाहिए।

### भयानक रसवत्

इसके उदाहरण में केशव ने दो पद्य लिए हैं। मन्तोरी राम के पराक्रमी कार्यो में प्रसन्न है किन्तु उसका भय रावण का भस्मना का अंग बन गया है। यहाँ रस एक भाव का अंग है। यह ध्वनिवादियों की दृष्टि से रसवदनकार का उदाहरण है।

<sup>१</sup> पतननय्युदाहरणम्। वाक्यार्थाभूताऽत्र कथ्यो रस अगभूतस्तु विप्रलम्भशारः। ध्वयभाववादिभिः उदाहृतम्।—अलकारसवरत्न पृ० २३६।

<sup>२</sup> श्री ग्युनाय मनः अममथ न दासि विना रथ हाथिन धीरदिः।

लगयो मरमन मकर की जिडि सो न कंग तुव लक न दोरि ॥ —कविप्रिया ११५६

### बीभत्स रसवत्

यह उदाहरण पुन ध्वन्यभाववादियों की दृष्टि से है। इसमें निःशब्द स्थायी है। केवल रसिकप्रिया में अतर्भाव की आवश्यकता के अनुरूप बीभत्स का स्थायी निःशब्द को निर्धारित कर चुके थे। यहाँ भी उस ही रखकर उन्होंने अपने विवेचन में एकरूपता लाने का प्रयास किया है। किन्तु निःशब्द को स्थायी के स्थान पर ग्रहण करने से वचन की शक्ति संचारी के स्तर की ही रह गई है।

### अद्भुत रसवत्

केवल में अद्भुत रसवत् के दो उदाहरण दिए हैं। इनमें राम के अलोक-मामांय काव्यों के वचन द्वारा विस्मय का चित्रण हुआ है। किन्तु राम के प्रभावातिशय के प्रति यह अद्भुत गुणीभूत है। यह स्थिति भी ध्वनिवादियों के अनुरूप है। आनन्द वचन ने ऐसी स्थिति में रसवत् माना है। प्रथम उदाहरण में राम का प्रभावातिशय वाक्यार्थीभूत है। दूसरे में कविगत रति। इन्हें आनन्दध्वन की दृष्टि से प्रिय फलकार का विषय समझना चाहिए।

### हास्य रसवत्

हास्य रसवत् का उदाहरण ध्वनि परम्परा का है। इसमें हास्य को शृंगार का अंग दिखाया गया है। इसकी प्रक्रिया जयशय द्वारा उदाहृत हास्य रसवत् से विलुप्त मान्य रखती है। इसमें उदाहरण में आया हुआ मुगकान शब्द भी विमर्शनी में उदाहृत स्मित शब्द के समान ही निर्बोध समझना चाहिए।

### शान्त रसवत्

यह भी ध्वनि परम्परा के ही अनुरूप है। इसमें शांत का कविगत रति का अंग दिखाया गया है। यह आमह उद्भव के अनुसार प्रय का तथा आनन्दवचन के

१ इत्यत्र त्रिपुरप्रभावातिशयस्य वाक्यार्थवै इध्याविप्रलम्भस्य रत्नपमहितश्याममाव इति। एवविध एव रसकालकारस्य न्यायो विषय। ध्वन्यालोक ७। ७७ की वृत्ति, पृ० १२।

२ इति विषय में पण्डितराज जगन्नाथ के निम्न विचार भी उपलब्ध हैं

चित्रं महानेष यथावतार क्व कान्तिरेषाभिनवैव भगी।

लाभोत्तर धैर्यमहो प्रभाव कात्याश्रुतिनूतन एष सग।

प्रतीयता नामात्र विस्मय, परन्तुमी कथकार अद्भुतरत्नध्वन्यवशात्तु ? प्रतिपाद्यमहा-  
पुत्रविशेषविषयाया प्रधानीभूताया स्तोत्रान्भस्ते प्रकथकत्वेनाभ्य उगीभूतत्वात्।

—रत्नगगधर पृ ४३।

३ का एवं रत्नपगजगुणनवनी मुग्धे तदाह सती।

किं शून्यीकमि क्वला निवसति त्वामागता-वेधितुम् ॥

एतन्नमुग्धैति कथय स्वालोच्य कृत तन।

पातु रमरमुग्धास्तुव्य तरुणो ज्ञाना विलसतिमता ॥

अत्र वाक्यार्थीभूत शृंगार । अंगभूतगुण हास्य ।

—अनन्ताशयस्य, पृ० २३६।



अनुसार चाटू का उदाहरण होगा ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि वेगव ने रसवदलकार में कई मायताओं को परिचित कराने का प्रयास किया है । विनोदत रम्यक एवं जयरथ की पद्धति अपनाई है । यहाँ ध्वनिवादी तथा ध्वन्यभाववादी दोनों वर्गों की रसवत् सम्बन्धी मायताओं का परिचय मिलता है । हास्य तथा गान्त रसवत् क उदाहरणों के रसत इन्हें दण्डी की परम्परा में रसवदलकार का उदाहरण मिद्ध किया ही नहीं जा सकता ।

### अर्थान्तरयास

वेगव व अर्थान्तरयास का स्वरूप संस्कृत आचार्यों से एकदम भिन्न है । उनके इस लक्षण पर विचार करने से पूर्व यह उचित होगा कि संस्कृत आचार्य परम्परा में इस प्रकार व स्वरूप विकास को देख लिया जाए ।

दण्डी व अनुमार अर्थान्तरयास वहा हाता है जहा किसी वस्तु को प्रस्तुत रूप में रसकर उसके समथन के लिए किसी अन्य वस्तु का यास किया जाए ।

ज्ञय सोषान्तरयासो वस्तु प्रस्तुत्य क्लिप्त ।

तत्साधनसमयस्य यासो योऽयस्य वस्तुन ।<sup>१</sup>

दण्डी के इस लक्षण में समथ्य-समथक भाव का उल्लेख स्पष्ट है । भामह ने भी इस अर्थान्तरयास का पूरा अर्थानुगत कहकर इस तथ्य को स्वीकार किया है ।<sup>२</sup> उद्भट ने भी यही कहा है ।<sup>३</sup> उद्भट से बाद के आचार्यों में समथक भाव तो माय रहा है, लेकिन उसकी सीमाओं के विषय में वे एकमत नहीं हो सके हैं । रम्यक ने प्रकृत अर्थ-समथन को अर्थान्तरयास तो कहा लेकिन सामान्य विशेष अर्थवा काय-कारण भाव सम्बन्ध उसमें जोड़ा ।<sup>४</sup> विश्वनाथ रम्यक के समथक हैं ।<sup>५</sup> लेकिन पण्डितराज जगन्नाथ रम्यक के कारण काय सम्बन्धी समथ्य समथक भाव वाल अर्थान्तरयास को स्वीकार नहीं करते क्योंकि उनके मत से यह क्षेत्र का र्थालिग का है ।<sup>६</sup> अर्थान्तरयास का नहीं । इससे यह स्पष्ट हुआ कि मूल मतभेद सीमा को लेकर है समथ्य समथक भाव सबका माय अवश्य है । इस तथ्य को सामान्य विद्यार्थी भी किसी भी आचार्य के लक्षण पर दृष्टि डालकर समझ सकते हैं । लेकिन वेगव ने अपने अर्थान्तरयास के लक्षण में संस्कृत व आचार्यों द्वारा स्वीकृत इस मूल तथ्य को भी छोड़ दिया है ।

१ काव्यालंकार २।१६६

२ उपन्यासनामयस्य पन्थोरवात्तित्वात् ।

शेष सोषान्तरयासं प्रवाधानुगता यथा ।—कायान्कार, २।१७१

३ मन्थकस्य पूर्व यद् वचोऽन्यथायथा पृच्छत ।

विषयवश वा यस्यान् ि शब्दोक्तयोऽन्यथापि वा ।—उद्भट २।१८

४ सामान्यविशेषकायकारणभावभ्यो निर्लिप्तप्रकृतसमथनमर्थान्तरयास । अलं० सं० पृ १३६

५ धी० वा काय ना स भान साहित्यपथ ।

६ यत्तु कारणेन कायस्य कार्येण वा कारणस्य समथनम् इत्यपि अर्थान्तरयासस्या लकारमवन्वकारो न्यरूपयत् । तत्र । तस्य कार्यालिंगविषयवात् ।—रसगणधर पृ० १७४

उन्होंने ऐसा क्यों किया इसके दो कारण ही अनुमान किए जा सकते हैं। (१) बगवद्से समझ न पाए हा। (२) उन्होंने अपना भिन्न दृष्टिकोण प्रगट करने की इच्छा से जान बूझकर इस छोटा हो। हम यह मानन क लिए तयार नहीं कि बगवद् जिनका सस्कृत साहित्य तथा साहित्यशास्त्र स इतना साधिकार परिचय है इतनी मोटी बात भी न समझ पाए। दण्डी के उदाहरणों स यह स्पष्ट है कि प्रथम चार भेदों तथा अन्तिम भेद स समर्थ समर्थक भाव आवश्यक है। यहा विगत इष्टव्य ह कि बगवद् न इन पाचा भेदों को छोड उन्होंने तीन भेदों को अपनाया ह जिनम इस तथ्य—समर्थ समर्थक भाव—का प्राग्रह नहीं था। यह हम बात का प्रमाण है कि केशव न अपने अर्थांतरयास में समर्थ समर्थक भाव की बात जान-बूझकर छोडो है।

बगवद् लकीर पकडकर चलनेवाल प्राचाय नहीं हैं। आवश्यकतानुसार अपना पथ बगल भी लत हैं। कई स्थानों पर हमने दवा है कि उन्होंने सस्कृत काव्यशास्त्र की पूरी परम्परा को छोड गानों की आवश्यकता को ध्यान म रखकर भलकारों का स्वरूप विधान कर दिया है। अर्थांतरयास गान स सामान्य विशेष या फिर कारण काय क बीच समर्थ समर्थक भाव तत्त्व पर प्रकाश नहीं पडता। फिर अर्थांतरयास के इस स्वरूप को बगवद् कम स्वीकार कर लत। अत आवश्यकता हुई कि उसका गान क अनुसार नवीन स्वरूप विधान किया जाए। बगवद् ने पूर्ववर्ती प्राचार्यों द्वारा गृहीत जटिलता को छोडकर उनका अवयव स्वरूप विधान किया। उनकी इच्छा रीति शास्त्र को अर्थांतरयास क सरलतम रूप को देने की प्रतीत होती है। यह बात दूमरी है कि उनक मन को भायता प्राप्त नहीं हुई। यथाय म भायता मिलनी भी नहीं चाहिए थी। क्योंकि न तो यह काय एक गिडक क जसा है और न एक ऐम प्राचाय क जसा जेकि गृप्तभूमि म स्थित सस्कृत प्राचायत्व को उडरणी कर रहा हो। फिर बगवद् ने इस प्रकार के दृष्टिकोण को अय सभी स्थानों पर भी वसा ही अपनाया होता तो बात दूमरी होती। बगवद् क अर्थांतरयास का लक्षण इस प्रकार है

और जानिए अप जह और वस्तु बजान।

अर्थांतर को यास यह चारि प्रकार सुजान।<sup>१</sup>

जहा किसी अय अय क दणन द्वारा अय ही अय लगाया जाए वहा अर्थांतरयास होता है। बगवद् न अर्थांतरयास को चार प्रकार का माना है। युक्त अयुक्त अयुक्त-युक्त युक्त अयुक्त।<sup>१</sup> दण्डी न हमी नाम के भलकार क द भेद—त्रिविध्यापी विनायस्य दनपाविद्ध विरोधवान अयुक्तकारी युक्तात्मा युक्तायुक्त तथा विषयय बताए हैं। जमाकि ऊपर कहा जा चुका है कि दण्डी क प्रथम चार में दो तथा अन्तिम भेद स समर्थ समर्थक भाव आवश्यक है। बगवद् ने उन पाचों को छोडकर दण्डी के दोय तान भेद अयुक्तकारी युक्तात्मा तथा युक्तायुक्त को जहा

१ कविप्रिया १०।३५

२ वही ११।३७

को मिले दानों ही आसन छिन गए । वह न तो काव्य का एक प्रकार ही स्वीकार हुई और न समस्त अलंकारों का मूल तत्त्व । परवर्ती आचार्यों ने बस एक अलंकार का पद दिया और उसके काव्य वक्रोक्ति और दण्ड वक्रोक्ति दो भेद किए ।<sup>१</sup> वामन की वक्रोक्ति सादृश्य व आधार पर की हुई लक्षणा है ।<sup>२</sup>

आचार्य कुन्तल न वक्रोक्ति को बड़े व्यापक अर्थ में ग्रहण किया है । उन्होंने उसे काव्य की आरम्भ बताया है तथा सभी प्रकार की व्यञ्जनाओं को उमम अन्तर्भूत करने का प्रयास किया है । जसाकि ऊपर कहा जा चुका है बंगव ने कुन्तल को आधार तो बनाया है लेकिन वक्रोक्ति व विषय में उनका दृष्टिकोण कुन्तल के समान व्यापक नहीं है । जिसे कुन्तल न वदग्ध्य भगी भणिति कहा है<sup>३</sup> उसी भणित्वा और वाक्यन का मात्रा बंगव की वक्रोक्ति में अधिक दिखाई देती है । वास्तव में कुन्तल ने वक्रोक्ति के लिए अभिप्रेत की वक्रता को ही प्रधानता दी है । बंगव की वक्रोक्ति का लक्षण इस प्रकार है

केसव सुधी आत मे वरनिघ टेढो भाव ।

वक्रोक्ति तासो कहू जे प्रबोन कविराव ।

बंगव के इस लक्षण के अनुसार जहा सीधी बात में बहिम भाव वर्णित किया जाए वहा वक्रोक्ति होती है । कहना न होगा कि वक्रोक्ति का जो गार्हिक अर्थ होता है उस बंगव के लक्षण में पूर्णतः अपनाया गया है । उदाहरण के द्वारा यह तथ्य और भी स्पष्ट हो जाता है ।<sup>४</sup> लेकिन इस विषय में यह आपत्तिजनक है कि इस प्रकार की वक्रोक्ति को अलंकारों के बीच में एक निश्चित स्वरूप के साथ रख दिया गया है । प्रो० अरुण की यह मान्यता कि बंगव की वक्रोक्ति दण्डी मम्मट विश्वनाथ आदि आचार्यों से मिलती है, ठीक नहीं है । वास्तव में बंगव ने वक्रोक्ति पर वक्रोक्ति के आचार्य का ही अधिकार माना है ।

### अयोक्ति

दृष्ट्यक के अनुसार यह अलंकार अप्रस्तुत प्रशंसा का सारूप्य निबधनामूनक भेद है ।<sup>५</sup> हिन्दी में इसे एक अलग अलंकार माना गया है । अयोक्ति का लक्षण बंगव ने इस प्रकार दिया है

औरहि प्रति जु बलानिए कछु और ही बात ।

अय उक्ति यह जानिए सरनत कवि न अघात ।

१ काव्यप्रकाश ६।३ ३

२ काव्यप्रकाश ४।३।८

३ कुन्तल में उभेय श्लो १०

४ कविसिद्धि १२।३

५ कविसिद्धि १२।४

६ अलंकारमञ्जर ५ १३२

७ कविसिद्धि १२।५

वेगव का यह लक्षण पूर्णतः स्पष्ट नहीं है। हा उदाहरणों से इस लक्षण का सामंजस्य तो अवश्य दिखाई देता है। स्पष्टता न हाते हुए भी लक्षण में वही भाव व्यक्त किया गया है जो अन्य आचार्यों ने किया है।

### अधिकरणोक्ति

वेगव की अधिकरणोक्ति का लक्षण निम्न प्रकार है

श्रीरहि में कीज प्रगट श्रीर हि के गुण दोष ।

उक्ति यह व्यधिकरण की सुनत होइ सतोष ।<sup>१</sup>

इस लक्षण के अनुसार जहां भ्रम वस्तु के गुण-दोष किसी भ्रम वस्तु में प्रकट किए जाते हैं वहां व्यधिकरणोक्ति होती है। कारण काय में भिन्न-देशत्व होने के कारण मम्मट तथा विश्वनाथ ने इसे असंगति<sup>१</sup> कहा है। वेगव का नामकरण मम्मटादि की अपेक्षा अधिक भ्रमव्य है। दण्डी ने इसका अलग से विवेचन तो नहीं किया लेकिन उन्होंने हनु में उसका अंतर्भाव किया है। उनका दूर काय हेतु<sup>२</sup> से यह बात स्पष्ट है।

### विशेषोक्ति

वेगव की विशेषोक्ति परवर्ती आचार्यों के अनुरूप है। इसका लक्षण केशव ने दण्डी से भिन्न रूप में प्रस्तुत किया है। वेगव की विशेषोक्ति का लक्षण इस प्रकार है

विद्यमान कारण सकल कारण होइ न सिद्ध ।

सोई उक्ति विशेष मम वेगव परम प्रसिद्ध ।

इस लक्षण के अनुसार समस्त कारण होते हुए भी जहां काय सिद्ध न हो वहां यह अलंकार होता है। मम्मटादि परवर्ती संस्कृत आचार्यों ने जो लक्षण दिए हैं उनका भी यही भाव है।<sup>३</sup>

### सहोक्ति

वेगव की सहोक्ति के आधार दण्डी हैं। दण्डी का लक्षण इस प्रकार है

सहोक्ति सहभावस्य कथन गुणकमपाम् ।<sup>४</sup>

वेगव का लक्षण यों है

हानि वृद्धि सुभ असुभ कष्ट कहिए गूढ़ प्रकार ।

होइ सहोक्ति तु साय ही धरनत केसववास ।

१ बही १२।८

२ काव्यप्रकाश १ ११६१ तथा माहात्म्येण च, १ १६६

३ काव्यालंकार २।१५५

४ कविविद्या १२।१५

५ काव्यप्रकाश १०। तथा साहित्यदर्पण परि० १०।६७

६ काव्यप्रकाश २।३५१

७ कविविद्या १२।३

लेकिन सस्कृत का यगास्त्र के परवर्ती आचार्यों में भी 'म अलकार का रूप अधिक बढ़ता हुआ दिखाई नहीं देता ।'

### व्याजस्तुति-याजनिदा

याजस्तुति और व्याजनिदा का उक्षण कण्व ने इस प्रकार किया है  
स्तुति निदा मिस होइ जह स्तुति मिस निदा जान ।  
व्याजस्तुति निदा कह बैसव दास बखान ।

इस लक्षण के अनुसार जहां आपातत निदा करते हुए स्तुति में पयवसान हुआ वहां याजस्तुति तथा जहां स्तुति द्वारा निदा में पयवसान हो वहां याजनिदा अलकार होता है । सस्कृत के आचार्यों ने इसकी सजा व्याजस्तुति ही दी है । उन्होंने इस ऋच की याजस्तुति तथा याजनिदा दोनों में मगनि भी दिखाई है । मम्मट ने कहा है

'याजस्तुतिमस्य निदास्तुतिर्वा दृढिरयथा ।

'याजस्था यजेन वा स्तुति ।'

शयन का मत भी यही है । दण्डी ने याजस्तुति वाल पक्ष का ही ग्रहण किया ।<sup>१</sup> इस प्रकार वे इसके रूप का सकुचित रखने के पक्षपाती हैं । केशव स्वयं दोनों ही पक्षा को ग्रहण करते हैं । इसी कारण उन्होंने दोनों पक्षों को स्पष्ट करने के लिए अलग अलग नाम दे दिए हैं । कुवलयानन्द ने इन दोनों परिस्थितियों को तो याजस्तुति के अंतगत ही रखा गया है<sup>२</sup> किंतु जहां निदा से निदा यक्त हो वहां याजनिदा कही गई है । इससे यह स्पष्ट है कि कुवलयानन्द की याजनिदा कण्व की व्याजनिदा से भिन्न कोटि की है । उन अलकारों को स्पष्ट करने के लिए कण्व ने जो उदाहरण दिया है वह अत्यंत ही कौशलपूर्ण है । कारण उस उदाहरण द्वारा उन्होंने दोनों अलकारों का स्वरूप एकसाथ ही अलग अलग स्पष्ट कर दिया है । दो उदाहरण व्याजनिदा के और दिए गए हैं जिनमें से एक में दण्डी की भांति श्लेष का प्रयोग करके दिखाया है<sup>३</sup> इस प्रकार उन्होंने दण्डी के आधार को किमी न किमी रूप में स्पष्ट अवश्य कर लिया है ।

### अमित

कण्व के अनुसार अमित अलकार बना होना है जहां माधक को मिलनेवाली

१ साहित्यदर्पण १।५५ तथा कुवलयानन्द पृ ५६

कविप्रिया १२।२२

३ कायप्रकाश, पृ ६७

४ अलकारसर्वस्व पृ ११

५ काव्यांश १२४२

कुवलयानन्द पृ ७७

७ वही पृ ७७

८ कविप्रिया १०।२३ २४ २५

मिद्धि का भाग साधनभूत व्यक्ति प्राप्त कर ल।

जहाँ साधन भोगव साधक की सुभ सिद्धि।

अमित नाम तासों कहत जाकी अमित प्रसिद्धि।<sup>१</sup>

स्वरूप का स्पष्ट करने के लिए कवच न एत अनकार क दो उदाहरण दिए हैं जोकि लक्षण स मामत्रस्य तो रखते ही हैं साथ ही उनमें विशेष चमत्कार का पृष्ठ भी है। प्रायः सभी मस्तुत आचार्यों में अनकार का उल्लेख नहीं मिलता।

### पर्यायोक्ति

कवच न पर्यायोक्ति का लक्षण इस प्रकार दिया है

कौनहु एक अदृष्ट त अनही किये जु होइ।

सिद्धि आपने इष्ट की पर्यायोक्ति सोइ।<sup>२</sup>

असक अनुसार जहा अभीष्ट की मिद्धि त्रिना प्रयत्न क ही किसी अदृष्टवग हा जाती है वहा कवच इस अनकार की स्थिति मानत हैं। इस लक्षण के साथ उनका उदाहरण की पूरा संगति भी बठती है। लेकिन कवच की पर्यायोक्ति मम्मट विश्वनाथ आदि आचार्यों की पर्यायोक्ति से पूणत भिन्न ठहरती है।

मस्तुत क सभी आचार्य इस अनकार क विषय में एकमत नहीं है। उन्होंने चाह लक्षण देने में एक ही आचार्यता का प्रयोग भल ही किया ही लेकिन उनका अन्तिम कोण में अनकार स्पष्ट दिखाई देता है। अनकार क निरूपण में आचार्यों में तीन वग दिखाई देते हैं—प्रथम वग भामह और उदभट का है जो 'वनि को अलग स्थान न देने क कारण सभी 'यग्यत्व' का य सो'दय को पर्यायोक्ति क अतगत ही ल आत हैं।<sup>३</sup> दूसरा वग रघुव और विश्वनाथ का है। यद वग प्रस्तुत काय क वाचकत्व क द्वारा प्रस्तुत कारण की यग्यता में पर्यायोक्ति मानता है।<sup>४</sup> तीसरा वग मम्मट और जगन्नाथ का है। यद्यपि भामह उदभट और मम्मट न इस अनकार के जो लक्षण लिए हैं उनमें थोडा सा हाता का अंतर है तथापि दृष्टिकाण की दृष्टि से मम्मट जगन्नाथ आदि का क्षय पर्याप्त 'यापक' है। मम्मट क अनुसार पर्यायोक्ति में चमत्कार कारण काय भाव क वाच्य 'यग्यत्व' में न हाकर उन भगी अथवा कथन के ढग में है जिसका द्वारा वाच्य का पर्य छोड़कर यग्य बात कही जाता है। अन्तिमतरान जगन्नाथ ने अनमतभा का संगह इस प्रकार किया है<sup>५</sup>

१ कविप्रिया, १ १०६

२ वहा १०१२७ ८

३ वहा, १२१०६

४ वही १२१३०

५ काणे नोट्स आन साहित्य-पत्र, ५० २१०

६ अचर्यसंवरण, ५० १३५ १८१, तथा साहित्य-पत्र १०१६१

७ उदभट ४१२ मम्मट १०१७५

८ काणे नोट्स आन साहित्य-पत्र, ५० २१०

९ रसगणपर, ५० ४१०

- १ कारण मात्र स काय की गम्यमानता । कारण-काय प्रस्तुत होना चाहिए ।
- २ काय वाच्य स कारण की गम्यमानता । कारण-काय प्रस्तुत होने चाहिए ।
- ३ कारण काय सम्बन्ध अनावश्यक ही किसी भी सम्बन्ध स एक वणन द्वारा दूसरी वस्तु व्यग्य ।

इस तीसरे रूप का क्षत्र अत्यन्त यापक है । ध्वनि और इस स्थिति में अन्तरमिफ इतना ही है कि ध्वनि में योग्य प्रधान होता है और सौन्दर्य योग्यपरक होता है । जबकि पर्यायोक्ति में भगी या कथन प्रकार में सौन्दर्य होता है तथा व्यग्य गुणीभूत हो जाता है । दण्डी ने पर्यायोक्ति का जो लक्षण प्रस्तुत किया है उससे भी यह स्पष्ट है कि व भी इस यापक अर्थ में ही ग्रहण करते हैं । दण्डी का लक्षण इस प्रकार है

अथमिच्छमनाख्याय साक्षात्तयव सिद्धये ।

अप्रकारांतराख्यान पर्यायोक्ति तदिष्यते ।<sup>१</sup>

उनके अनुसार जहाँ किसी अभीष्ट अर्थ को साक्षात्-वाच्यवाचकरूप-में कहकर प्रकारांतर-भंग्यंतर-में कहा जाए वहाँ पर्यायोक्ति होती है । कलना न होगा कि केगव का लक्षण<sup>१</sup> दण्डी के लक्षण की छार लिए हुए है । साथ ही उनका उदाहरण भी दण्डी के उदाहरण के समान है ।<sup>२</sup> फिर भी उनके लक्षण का भाव दण्डी से नहीं मिलता । वास्तव में केशव ने अमित पर्यायोक्ति समाहित सुसिद्ध प्रसिद्ध एवं विपरीत अलंकारों में काय सिद्धि को ध्यान में रखकर लक्षण निर्माण किया है ।

## युक्त

केशव ने युक्त अलंकार का लक्षण इस प्रकार दिया है

जसो जाको बुद्धि बल कहिज तसे रूप ।

तासो कविकुल कहत ह युक्त बरनि बहु रूप ।

इसके अनुसार जिसका जसा बुद्धिबल और बल है उसी बल के अनुरूप उसका वणन जहाँ हो वहाँ युक्त अलंकार होता है । केगव ने इसका उदाहरण इस प्रकार दिया था—

मदन बदन लेत लाज को समाज दखि

जदपि जगत जव मोहिबे की है छमी ।

कोटि कोटि चन्द्रमा समारि वारि वारि डारो

जाके काज गजराज भाज हू लो सजमी ।

कसोदास सविलास तरे मुख की सुधास

सनियत सही सार आरक्षीन स रमी ।

१ काव्यान्तरा २।२१५

२ कविप्रिया १२।२६

३ कविप्रिया १२।३

४ वहाँ १।३१

मित्र देव छिति दुग दण्ड दल कोण कुल

बन जाक ताके कही कौन बात की कमी !<sup>१</sup>

नाला भगवान्‌गोन की इसपर टिप्पणी है— मुग्ध का वणन जसा युवत उचित है वसा किया गया है। कमल का वणन भी उपयुक्त गाना स चमत्कारा किया गया है।<sup>२</sup>

भामहू और दण्डी स लेकर विश्वनाथ और अण्णय तक क किसी भी आचार्य न उक्त अलंकार का उल्लेख नहीं किया है। स्मृत न आचार्यों न उदात्त नाम क एक अर्थ अलंकार का उल्लेख अवश्य किया है जिसम कवि प्रतिमात्रय एवम-वणन का विधान होता है। कण्व का युक्त उमा कोटि का है।

कण्व क स्वभावाति क गणन का दखन पर<sup>३</sup> तथा युक्त क लक्षण स मिलान पर दिखाई देता है कि दानों की पदावली म बहुत माम्य है। अत दानों क अंतर तथा नीमाओ क समभान म उनभन खडो हो जाती है। कण्व की चाहिए या कि व एम स्थला पर गद्यवृत्ति द्वारा स्पष्टीकरण करत लेकिन ऐसा हुआ नहीं। वम कहिज तस गाज और कहिज तम रूप वाक्यांग म अंतर खाजा जा मवता है। फिर भी कण्व क उदाहरण दोना स्थाना पर उनक दृष्टिकोणा की स्पष्ट करन म समय हैं। कहना न होगा कि ऐस स्थानों पर ठीक ठीक सीमा निर्धारण क लिए उदाहरणों की हा गरण लना अनिवार्य है।

### समाहित

कण्व न समाहित का लक्षण निम्न प्रकार दिया है

होइ न क्यों हैं होति जहें दव जोग तें बाज।

ताहि समाहित नाम यह धरनत कवि सिरताज ॥<sup>४</sup>

इसके अनुसार जहा किसी प्रकार म न होता हुआ काय दवयोग से सम्पन्न हो जाए वहा समाहित अलंकार हाता है। भामहू<sup>५</sup> और दण्डी दानों न इस अलंकार का यहो स्वरूप बताया है तथा नाम भी यही दिया है। लेकिन दय्यक मम्मट, विश्वनाथ आदि परवर्ती आचार्यों न इस समाधि नाम लिया है।<sup>६</sup> उनक लक्षणा का भाव ता वही है जो दण्डी और भामहू क लक्षणा का है। कवल उहान दण्डी क दवयोग क स्थान पर कारणोत्तर गाने रसा है। उन आचार्यों की व्याख्याया स स्पष्ट है कि

१ कविप्रिया टीका ला० भग १२३०

० बदी

३ बही ६१-

४ आ० धरावलास पृ ०५७

५ कविप्रिया १३११

६ भामहू ३१०

७ काव्यांग ०१०६८

८ अलंकारसुंदर, पृ २५, काव्यप्रकाश १०११६२, सा० १० १ १८६



उन्होंने कारणोत्तर से आकस्मिकता का तात्पर्य ग्रहण किया है। दण्डी के समान केगव ने भी दवयोग दाद का प्रयोग किया है। यह कारणान्तर से भी अधिक व्यापक है। उसमें आकस्मिकता का तत्त्व भी समा जाता है। दण्डी के उदाहरण को मम्मट श्यक तथा विन्वनाथ ने अपनाया है।<sup>१</sup> केगव ने भी इसीके आधार पर अपना उदाहरण रचा है।<sup>२</sup> परवर्ती आचार्यों में समाहित के नाम से रसवन् की कोटि का एक अन्य अलंकार प्रचलित हुआ। इस दण्डी भामह और केशव के समाहित से भिन्न समझना चाहिए।

### सुसिद्ध प्रसिद्ध एवं विपरीत

केगव के समाहित में सिद्ध अपने मूल कारण से होती है किन्तु यदा-कदा दव याग से किसी अन्य कारण में भी हो जाती है। समाहित में मूल दृष्टि कायसिद्धि पर है। दवयोग से कायसिद्धि हो तो समाहित होता है। लेकिन सिद्धि को ध्यान में रखकर और भी अलंकारों की स्थापना हो सकती है। इस प्रकार समाहित ने ही सुसिद्ध प्रसिद्ध और विपरीत अलंकारों की प्रेरणा दी प्रतीत होती है। सिद्धि के तीन आधारों पर तीन अलंकार बने—

१ साधन कोई और जुटाए और सिद्धि किसी और को मिले इसीको केशव ने सुसिद्ध अलंकार कहा है

साधि साधि और मर और भोग सिद्धि ।

तासों कहत सुसिद्ध सब जिनके बुद्धि समृद्ध ॥<sup>३</sup>

२ साधन जुटानेवाला एक ही और उसका फल मिलनेको को, इसे केगव ने प्रसिद्ध अलंकार बताया है

साधन साध एक भव भोग सिद्धि अनेक ।

तासों कहत प्रसिद्ध सब केगव सहित विवेक ॥

३ काय साधक का जहा स्वयंकृत साधन भूत पदाय या व्यक्ति ही बाधक बन जाए जस नायक के लिए दूती यहा केगव ने विपरीत अलंकार माना है

कारज साधक को जहाँ साधन बाधक होइ ।

तासों सब विपरीत कहि सहत सयाने लोइ ॥<sup>४</sup>

एन अलंकारों के उदाहरण स्पष्ट एवं समास हैं। संस्कृत के आचार्यों ने इन अलंकारों का उल्लेख नहीं किया है। केगव का यह प्रयास मौनिक तो है लेकिन अधिक महत्त्वपूर्ण नहीं क्योंकि एक तो इनका अन्य अलंकारों में अंतर्भाव दिखाया जा सकता था दूसरे इनमें चमत्कार की भी मात्रा पर्याप्त नहीं है।

१ श्यक पृ २०१ मम्मट पृ० ७५६ विन्वनाथ पृ० १ १८६ श्रुति ।

कविप्रिया १३।

३ बनी १३१४

४ वही १३१७

५ वही १३१६

रूपन

दण्डी ने रूपक का लक्षण "उपमवेति तिरोभूतभेदा रूपकमुच्यते" दिया है। इसी तथ्य को आधार बनाकर केशव ने रूपक का लक्षण यह दिया है

उपमा ही के रूप सों मिल्यौ बरनिए रूप।

ताही सों सब कहत ह केशव रूपक रूप ॥<sup>१</sup>

केशव के अनुसार उपमा के ही ढंग से जब उपमान और उपमेय का मिला हुआ अर्थात् अभेदात्मक वर्णन हो तो रूपक होता है। केशव क और दण्डी के लक्षणों में एक अंतर स्पष्ट है—दण्डी भेद व तिरोधान की बात कहते हैं जबकि केशव स्पष्ट रूप से दोनों का अभेद मानते हैं। अर्जुन और जयदेव ने तो अभेद तथा तद्रूप दोनों ही स्थितियों में रूपक माना है।<sup>२</sup> किंतु इनका अभेद सीमित है। अध्यवसान को उसके (अभेद के) अंतगत उहोंने स्थान नहीं दिया है। कुचलदानन्द की विद्या नाय की टीका में इसकी सीमा के निर्धारण के लिए उत्पत्ति शब्द का प्रयोग किया गया है। इसमें अध्यवसानमूलक प्रतिशयोक्ति का विषय क्षत्र अलग हो जाता है। लेकिन केशव ने व्यापक दृष्टिकोण रखा है। उहोंने अभेद में ससग को ही नहीं अध्यवसान को भी लिया है। यह बात उनके विरुद्ध रूपक के उदाहरण से स्पष्ट हो जाती है। प्रतीत होता है कि केशव रूपकातिशयोक्ति को प्रतिशयोक्ति के भीतर न रखकर रूपक के साथ रखते हैं और इसीके अनुरूप मिल्यौ बरनिए रूप कहकर अपने लक्षण को अभेदमात्र तक व्यापक रखते हैं। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि केशव ने दण्डी के लक्षण को अपनाकर अपने अनुकूल ढाल लिया है। केशव के रूपक के दो उपभोगों का नाम भी दण्डी के ही हैं। फिर भी यह ध्यान रखना आवश्यक है कि रूपक के भेदों में केशव का दृष्टिकोण दण्डी का अध्यानुगामी न होकर स्वतंत्र है।

दण्डी ने रूपक के १७ भेद बताए हैं। ये भेद किसी निश्चित आधार पर न बताए जाकर विभिन्न स्मृतियों में रूपक का प्रदान मात्र ही हैं।<sup>३</sup> वे १७ भेद ये हैं—समस्त व्यस्त, सकल अवयव एकाग्र—युक्तायुक्त विषय सविनोपण विरुद्ध हेतु रूप विनष्ट उपमारूपक व्यतिरेक रूपक आक्षेप रूपक समाधान रूपक सम्यक रूपक तथा अपह नुति रूपक। इन १७ भेदों में से समस्त और व्यस्त तो हिन्दी के काम के नहीं थे। क्योंकि इनका आधार समास था। अवयव और अवयवी को भी परवर्ती आचार्यों ने मान्यता नहीं दी थी। अवयवी को छोड़कर अवयव का रूपण या अवयव का छोड़कर अवयवी का रूपण इनका आधार था। अतः यह सम्यक व सावयव और निव्ययव तथा विवनाय व साग और निरग स भिन्न कोटि का समझना चाहिए।

- १ कान्यान्स २१६
- २ कविप्रिया ११०
- ३ कुचलदानन्द, पृ० १७
- ४ वही पृ० १५
- ५ काव्यान्स २१६

अगा के आरोप और अगा के बकल्पिक आरोप में होनेवाला विषय रूपक भी इसी कोटि का है। एम ही एकाग्र और द्वयग हैं। हतु रूपक में भी हतु बताना समाधान रूपक में समाधान करना श्लिष्टमन्त्रेण उपमा यतिरेक आक्षेप अपह नुति रूपको में इन इन अलकारों का जसा काम होना चाई रूपक का व्यवस्थित भेदीकरण नहीं है। अतः बंगव ने इन सबको छोड़कर बसल गेप रह विरुद्ध रूपक तथा रूपक रूपक को ही अपनाया। रूपक का तीसरा भेद अदभुत रूपक बंगव का निजी कल्पना है। यह बात नहीं है कि दण्डी ही रूपक का भेदीकरण का इस प्रपञ्च में फस रहा, परवर्ती आचार्य भी इससे मुक्त दिखाई नहीं देते। भामह ने तो समस्त वस्तु विषय और एकदगविवर्ति तथा उदभट न समस्त एकदेश मालाश्रो स बसल चार ही भेद किए। मम्मट रम्यक और विश्वनाथ आदि में यह परम्परा पनती हुई दिखाई देती है। उन्हीन साग निरग और परम्परित—तीन मुख्य भेद बताने का बाद अनेक उपभेद भी बताए।<sup>१</sup> अभेद और ताद्रूप्य का आधार पर दो भेद आधिक्य और यूनतम तथा अनुभवस्व का आधार पर भी अप्य आदि न भेद दिखाए हैं। किन्तु अप्य ने स्वयं उद्घ प्रपञ्च कहा है।<sup>२</sup> बंगव की दृष्टि में भी ये प्रपञ्च समझने चाहिए। अब हम बंगव के तीनों रूपकों की आरंभ करते हैं।

### अदभुत रूपक

जहाँ आरोप का साथ उपमेय में उपमान की अपेक्षा कुछ आधिक्य दिखाई दे ऐसी स्थितियों में आचार्य विश्वनाथ ने रूपक का एक भेद अधिकारद्वयगण्य की स्थिति स्वीकार की है। वास्तव में यह स्थिति यतिरेक का क्षेत्र है। इस स्थिति को स्पष्ट करने के लिए विश्वनाथ ने जो उदाहरण प्रस्तुत किया है उसको यतिरेक की स्थिति कहा जा सकता है। प्रो० काण ने इस दिखाया भी है। किन्तु उपमान और उपमेय का गुणों की घट-बढ़ पर ध्यान न देकर यदि उनका अभेद या आरोप पर ध्यान दिया जाए तो वहाँ रूपक की स्थिति ठहरती है। इसी आधार पर आचार्य जगन्नाथ ऐसी स्थितियों में रूपक कहना ही समीचीन ठहराते हैं।<sup>३</sup> बंगव ने इसी आधार पर इस स्वीकार किया है। लेकिन इसका नाम अदभुत दिया है

सदा एकरस वरनिष्ठा और न जाहि समान।

अदभुत रूपक कहत ह तसौ बुद्धि निधान ॥<sup>४</sup>

अभेद को आधार बनाकर उपमेय को अनन्य सामान्य दिखाना ही बंगव के

१ नोटम आन साहित्यरत्न पृ ११८

२ कुवलयानन्द पृ १६

३ भा ८ १।३४

४ नोटम आन साहित्यरत्न पृ १२२

५ रसगणेश्वर पृ० ५।४३६

६ कविप्रिया १३।१५

अनुसार अदभुत रूपक है। इसके लिए कंगव द्वारा चुना गया उदाहरण अपने पूर्वार्द्ध में दण्डी द्वारा निरूपित दिल्लट रूपक से प्रेरित लगता है। लेकिन कंगव ने रूपक के भेदा के लिए दण्डी का आधार नहीं बनाया है। इसीलिए दण्डी के दिल्लट तथा कंगव के अदभुत का पूणत भिन्न मानना चाहिए।

### विरुद्ध रूपक

दण्डी ने अपने विरुद्ध रूपक का आधार विरोधी तत्त्व रखा है। उन्होंने जो उदाहरण प्रस्तुत किया है उसका भाव है 'तुम्हारा मुखचन्द्र न कमला को मलिन करता है, न आकाश में स्थित है वह तो मर प्राणों का हरण करने में ही समर्थ है।' उनका अनुसार इस उदाहरण में आरोपित चन्द्र उचित कार्यों को न करके विरुद्ध कार्यों को करता हुआ दिखाया गया है। इसी कारण महा विरुद्ध रूपक की स्थिति है। कंगव का विरुद्ध रूपक दण्डी के विरुद्ध रूपक से भिन्न है। कंगव ने भी अपने विरुद्ध रूपक का आधार रूप ही विरोधी तत्त्व चुना है। आधार तत्त्व के एक होने पर भी कंगव का भेद दण्डी के भेद का 'यापक' रूप प्रतीत होता है। कारण यह है कि कंगव का विरोध दण्डी के विरोध के समान क्षीण रखा वाला नहीं है बल्कि रूपक के क्षय में पाया जाना वाला सर्वाधिक विरोधी तत्त्व अध्यवसानमूलक है। अध्यवसानमूलक रूप कातिगयोक्ति का दण्डी ने उल्लेख नहीं किया है। लेकिन परवर्तियों ने इस अपनाया है। कंगव ने उस मायता तो दी है लेकिन अतिगयोक्ति के भीतर रखकर नहीं रूपक के भीतर। आधार विरोधी तत्त्व ही हैं किन्तु दण्डी के समान उपमान के गुण या त्रियामा में विरोध नहीं। अपितु आपातत प्रतीत होनेवाला अर्थ में। कंगव ने अध्यवसान के विरोध का ध्यान में रखा है। उन्होंने विरुद्ध रूपक का लक्षण इस प्रकार किया है

जह कहिए अनमिल कछु सुमिल सकत विधि अथ ।

सो विरुद्ध रूपक कहै कसव बुद्धिसमय ॥<sup>१</sup>

इस लक्षण के अनुसार कंगव का विरुद्ध रूपक बड़ा हाता है जहां आपातत अथ अनमिल लिखा है पढ़ किन्तु परिणामत अध्यवसित उपमानों का निबान उन पर अथतगति सुमिल हो जाए। चमत्कार विरोधी तत्त्व में है जोकि इस अनकार का प्रमुख तत्त्व है।

### रूपक रूप

काव्यान्तम दण्डी ने इस अनकार का उदाहरण यह दिया है

मुखपङ्कजरङ्गस्मिन् भ्रूसता नतकी तथ ।

सीता नत करोतीति रम्य रूपकरूपकम् ॥<sup>१</sup>

१ काव्यान्तम १८२-८४

कविप्रिया १।१७

२ काव्यान्तम १८३

धर्यात् हे सुन्दरि तुम्हारे मुखकमल रूपी रग-रस्यल म भ्रूलता रूपी सीता नरय कर रही है। यहा सबप्रथम मुख म कमल का धारोप है तत्पश्चात् रगस्यल का। भ्रूम पहले लता का, फिर भ्रूलता म नतकी का धारोप होन क कारण रूपक रूपक अलंकार कहा गया है। इस उदाहरण से स्पष्ट है कि दण्डी ने यहा धारोप पर धारोप को ही प्रमुख तत्त्व माना है। धारोप की इस परम्परा को ध्यान म रखकर ही परवर्ती आचार्यों ने इस परम्परित नाम दिया है।<sup>१</sup> ऐसा करने म परवर्ती आचार्यों का दृष्टिकोण सगत प्रकीर्त होता है। दण्डी के धारोप म मुख म कमल और भ्रूम लता के धारोप को व्यर्थ कहकर छोडा जा सकता है। तथा दीप भी कहा जा सकता है जबकि परवर्तियों क परम्परित म यह त्रुटि नहीं रह गई है। कविव्यास का लक्षण इस प्रकार है

रूपभाव जहें वरनिए कौनिहु बुद्धि विवेक ।

रूपक रूपक कहत कवि केसवदास अनेक ॥<sup>१</sup>

इसके अनुसार जिस रूपक म रूप भाव का वर्णन हो वहा रूपक रूपक अलंकार होता है। केशव के रूपभाव शब्द का तात्पर्य समझ लेना आवश्यक है। इसका तात्पर्य यह है कि उपमय पर उपमान का धारोप किया जाए। अथवा उपमान द्वारा उपमय को अपने रूप का करना।<sup>१</sup> संस्कृत आचार्यों ने रूप शब्द का प्रयोग पारिभाषिक शब्द के रूप म किया है। केशव का सामान्य लक्षण भी इसी रूप शब्द स बना है।<sup>२</sup> रूपक रूपक का जो उदाहरण दण्डी ने प्रस्तुत किया है कविव्यास भी उसीक आधार पर अपना उदाहरण बनाया है।<sup>३</sup> दण्डी ने आखो म अखाड का धारोप किया है कविव्यास ने भी वसा ही किया है। निमित्तभूत रूपक भी जुटाए गए हैं। अर्थात् निवर्धन परम्परित की भी लगभग यही प्रक्रिया है। केशवदास का उदाहरण दण्डी स अधिक सगत तथा साग है। हा प्रो० अरुण का धारोप परम्परा स्पष्ट नहीं हा सबी इसलिए उहोन कविव्यास क रूपक को सदोप बताया है।

### दीपक

दण्डी ने दीपक अलंकार की स्थिति वहा मानी है जहा जाति त्रिया गुण अथवा द्रव्यवाची एक ही स्थान पर स्थित शब्द के द्वारा समस्त वाक्य का उपकार हो रहा है

१ एकावली पृ २५ अलंकारमन्व, जयरथ पृ ४५

२ कविप्रिया १३।१६

३ अलंकारमन्व पृ ३५ एकावली पृ २१२ वाक्य कना म अलंकार सा १० पृ ११४

४ साहित्यदर्पण १।१२८

५ कविप्रिया १३।१

६ वहा १३।२०

७ साहित्यदर्पण १।१२६ की वृत्ति

८ केशव एक आध्ययन पृ ५

जातित्रिय्यागुणद्रव्यवाचिनश्च वतिना

सववाक्योपकारश्चेत् तदाहुर्वोपक यथा ॥<sup>१</sup>

कैव न दीपक क लिए आघार तो दण्डो का ही लिया है लेकिन ससृत्त के परवर्ती आचायों क विवेचन को हृदयगम करते हुए उसक स्वरूप में थोडा परिवर्तन कर लिया है । कैव क दीपक का लक्षण इस प्रकार है

वाच्य क्रिया गुण द्रव्य वहु बरनाह करि इक ठौर ।

दीपक दीपति कृत ह कसब कवि सिरमौर ॥<sup>२</sup>

इम लक्षण स कैव के अनुसार क्रिया गुण, द्रव्य क पय म किसी एक स्थान पर वाक्यरूप में बणित होने स दीपक की दीप्ति होती है । कैव न दण्डो क जाति गण को छोड दिया है । उन्होंने तो द्रव्य गण स ही जाति और द्रव्य दोनो का ही ग्रथ ग्रहण कर लिया है । वस दण्डो क उगाहरण म स्पष्ट है कि उन्होंने पवन कलापी पुष्पधवा को जातिवाचक तथा विष्णु का द्रव्यवाचक गण कहा है । कैव म दण्डा क इम दृष्टिकोण क समावय न होन का कारण यह कहा जा सकता है कि हिन्दी म वयाकरणिक आघार पर यह भूम म और पारिभाषिक भेद रह नहीं गए हैं । कैव का द्रव्य गण दण्डो की अपमा अधिक व्यापक है । कठोर गण एकत्रवर्ती की अपमा अधिक स्पष्ट है । तकिन दण्डो ने सववाक्योपकार घण का जो प्रयोग किया है वह कैव क लक्षण म नहीं आ पाया है । इम मलकार का नाम भी उसक स्वरूप को स्पष्ट करन म समय है । दीपक मलकार वाक्य म एक स्थान म प्रतिष्ठित होकर सव वाक्य गन कारकों या क्रियाओं को उसी प्रकार प्रकाशित करता है जिस प्रकार घर म रखा हुआ दीपक घर की सब वस्तुघा का ।<sup>३</sup> तने बड भाव का कैव न दो घणों—दीपक दीपति—स ही स्पष्ट करने की चष्टा की है । जबकि इमको स्पष्ट करने क लिए लम्ब विवचन की आवश्यकता थी । फिर भी उगाहरणों को देखन स यह स्पष्ट हो जाता है कि कैव क लक्षण का उन्म्य भी बली रहा है जा दण्डो क लक्षण का था । ताता भगवानदीनजी ने इम लक्षण का ग्रथ कुछ ग्रथ हा किया है तथा तदनुसार ही उगाहरण की सगति भी बिठाई है । तकिन सम्भव है यण दण्डो क लक्षण पर ध्यान न देन क कारण हुआ हो । तना ही नहीं लाना भगवानदीन क ग्रथ को पकडकर हो न कि मूल को देखकर समीपक महोदय भी कैव क लक्षण पर अपनी आलोचना तिल दत है ।<sup>४</sup>

### दीपक के भेद

दीपक क भेदों क घणन क लिए आमह का आघार निम्न है

१ कान्यान्ता २।६७

२ कविप्रिया ५।२१

३ अन्कारमकरव पृ ६१ पञ्चाली, पृ० २५२, रसगंगा , पृ० ३०२

४ कविप्रिया १३।२१

५ कैव क लक्षण १० ५१

आदिमध्यान्तविषय त्रिधा दीपक विद्यते ।<sup>१</sup>

यही आधार उद्धृत ने भी स्वीकार किया है ।<sup>१</sup> दण्डी के अनुसार जाति त्रिया गुण और द्रव्यगत दीपक त्रियाकर एक वाचक पदा की पद्य की प्राप्ति मध्य और अन्त में स्थिति के आधार पर भेदोत्पत्ति किया जा सकता है ।<sup>१</sup> लेकिन रमगमाधरकार इस आधार को बहुत उचित नहीं मानते क्योंकि इस प्रकार तो अनेक भेद बन सकते हैं ।<sup>१</sup> यही समझकर बंगव ने भी यह छोड़ दिया है । उपयुक्त प्रकार के भेदा के अतिरिक्त दण्डी ने मात्रा विरुद्ध एकाय तथा त्रिप्ल चार भेद और बताया है । इन चार में से भी विरुद्ध और त्रिप्ल को तो केवल चमत्कारों के आधार पर अलग अलग भेद बताया गया है । ये परवर्तियों की दृष्टि में सत्त्व और समृष्टि की कोटि में रखे जा सकते हैं । अन्त बंगव ने उन्हें भी ग्रहण नहीं किया । अब बंगव दो भेद मालादीपक और एकायदीपक रखे जाते हैं । दण्डी ने जिस एकाय कहा है उसीको परवर्ती आचार्यों ने क्रियादीपक कहा है । दण्डी के इस भेद में अनेक त्रियाएँ नहीं हैं बल्कि एक ही त्रिया अनेक समानार्थक शब्दों के माध्यम से प्रतिवस्तु पदों के ढंग से लिखाई गई है ।<sup>१</sup> यह रूप में परवर्तियों को मान्य नहीं हुआ । अन्त बंगव ने उसे भी छोड़ दिया । किन्तु इस ढंग के अनेक योगों में एक मध्यस्थ पद का अनेकत्र स्थित शब्दों से त्रियाओं के साथ एक कारकवाला रूप कारक दीपक के नाम से अवश्य चला ।<sup>१</sup> इस भेद के विषय में भी दो प्रकार की आपत्तियाँ उठीं । उनमें एक तो यह है कि इसका लक्षण अलग करना आवश्यक है । यह सामान्य लक्षण से ही गताय है । एकत्रवर्ती पद चाहे कारक हो या क्रिया दीपक काय से दीपक है । इस आपत्ति के उठानेवाला ने भन ही इसमें पृथक् लक्षण न करने का आग्रह किया किन्तु उस मान्यता तो दी ही । बंगव ने भी इस मान्यता दी । उन्होंने ने तो अलग लक्षण दिया न नाम ही दिया । फिर भी उनके उदाहरण यह स्पष्ट करते हैं कि बंगव इस भेद को स्वीकार करते हैं । दूसरा आपत्ति के अनुसार कारक दीपक को दीपक ही नहीं कहा जा सकता । कुछ आचार्यों के द्वारा दीपक में सादृश्य सम्म होना चाहिए । जहाँ ऐसा नहीं होता वह दीपक की स्थिति नहीं होती । किन्तु उस आपत्ति को उठाने हुए भी वे एकत्रस्थ पद का अनेकत्र स्थित शब्दों से सम्बन्ध होने के कारण कारक दीपक को दीपक कहते रहते हैं ।

दण्डी का एक भेद मात्रादीपक ही बंगव के समक्ष रखे जाता है । बंगव ने उसे अपमान्य है । इस भेद की स्थिति के विषय में भी सभी आचार्य एकमत नहीं हैं ।

१ भाष्य १।२५

उद्धृत १।३

२ काव्यान्त १।६७ १

४ रमगमाधर पृ ३ ७

५ काव्यान्त १।२२ २१

६ काव्यप्रकाश १।१५६ मा० ६ १।६६ व्ययक पृ० ६ कुवलय १।७

७ रमगमाधर पृ ३ ४

८ बंगव पृ ३२२ तथा काव्य पृ २६० रमगमाधर पृ० ५

कुछ इसे एक अलग अलंकार मानते हैं, तो कुछ दीपक का एक भेद। मम्मट न इसे दीपक का एक भेद माना है। वहीं उसका विवेचन किया है। रय्यक और विश्वनाथ इस अलग अलंकार मानते हैं और दीपक के साथ इसका विवेचन न करके कारणमाला तथा एकावली के प्रसंगों में इसकी चर्चा करते हैं। मम्मट की दृष्टि दीपक धर्म पर है रय्यक विश्वनाथ की औपम्य पर।<sup>१</sup> जगन्नाथ न इस एकावली का भेद माना है।<sup>२</sup> उन्होंने प्राचीन आचार्यों के प्रति श्रद्धामात्र के कारण इसका विवेचन इसी नाम में किया है। कंगव ने इन दोनों दृष्टिकोणों के समन्वय की चेष्टा की है। उन्होंने उदाहरण के लिए एकावली का उदाहरण प्रस्तुत किया है। मालादीपक के विषय में जयदेव की यह मायता सामने आ चुकी थी कि दीपक और एकावली के मिश्रण से मालादीपक अलंकार बनता है।

दीपकैकावलीयोगामालादीपकमुच्यते।<sup>३</sup>

हम देख चुके हैं कि कंगव एकावली को प्रथम अलंकार नहीं मानते। उनका प्रथम ही एकावली है। भेद सिर्फ नाम का है। अतः मालादीपक के परिचय के लिए एकावली के स्वरूप का परिचय भी आवश्यक है। दीपक का स्वरूप तो ऊपर बताया ही जा चुका है अथवा मालादीपक का लक्षण करने के बाद पद्य सं० २८ के द्वारा कंगव ने एकावली के स्वरूप का परिचय दिया है। तत्पश्चात् १६वें पद्य द्वारा मालादीपक का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इस एकावली के उदाहरण को इस प्रसंग में उदाहृत करने का दुहरा लाभ था। एक तो दीपक एकावली के योग से मालादीपक का स्वरूप समझना और दूसरे मालादीपक का एकावली के षण्ण में माननेवालों के दृष्टिकोण को सामने रखना। और इस अलंकार को दीपक के ही प्रभेद के रूप में दिखाना।

कंगव के अनुसार यों तो दीपक के अनेक भेद हो सकते हैं किन्तु वे उसका दो ही भेद करना उपयुक्त समझते हैं—मणिदीपक और मालादीपक। कहना न होगा कि मणिदीपक नाम की प्रेरणा मालादीपक नाम से मिली होगी। अनेक मणियाँ की गुम्फत अर्थात् जो माला कहने पर एकाकी रत्न के लिए मणि कहना उचित ही है। इसीके आधार पर कंगव ने मात्रतर दीपक को मणिदीपक कह दिया जा उनका अर्थ है।

कंगव ने अर्थ उद्धरण के लिए कुछ सामग्री दण्डी से भी ली है। उदाहरण के लिए कंगव ने मणिदीपक का उदाहरण दण्डी के जातिदीपक के आधार पर बना है।<sup>४</sup> तबिन समग्र यह ताल्य लगाना भूल हमारी कि दण्डी का जातिदीपक और कंगव का मणिदीपक एक ही हैं। कंगव ने सिर्फ सामग्री ही ली है स्वरूप अवश्य भिन्न बनाए

१ अलंकारउपम्य, पृ १७६

२ रम मधुर पृ० ३०८

३ रत्नाकर कुवलयदान्त, मालादीपक

४ कविप्रिया १३।१० २४

५ काव्यागम २।६८



रखा है। उनका मणिदीपक म दण्डी के अर्थ सभी भेद समाप्त हैं। मणिदीपक के दो उदाहरणों म प्रियादीपक तथा वारकदीपक के स्वरूप स्पष्ट हैं।

### प्रहलिका

प्रहलिका अलंकार का लक्षण केगव ने यह दिया है  
 वरनिय वस्तु दुराय जह वीनहुँ एक प्रकार ।  
 तासौ कहत प्रहेलिका कविकुल बुद्धि उदार ॥<sup>१</sup>

जहा किसी प्रकार छिपाकर बात कही जाए वहा प्रहेलिका अलंकार होता है। इस अलंकार को प्राचीन समय म मायता मिलती रही।<sup>२</sup> लेकिन अलंकारवादियों का जार कम हो जान पर तथा रसवाद की प्रतिष्ठा हो जान पर इसका महत्व कम हो गया। वसे यह महत्वपूर्ण अलंकार कभी भी स्वीकार नहीं किया गया। स्वयं आचार्य दण्डी न उसे ऋडा गोष्ठी विनोदो म दूसरो का चक्कर म डालने या बात को गुप्त रखने के लिए इमक प्रयोग की बात कही है।<sup>३</sup> इमीस दण्डी का उसके प्रति दृष्टिकोण स्पष्ट हो जाता है। यह गोष्ठियों का अलंकार है। दण्डी ने इसके अनेकानेक भेदो का उल्लेख किया है। किंतु विश्वनाथ ने तो स्पष्टतः कहा है कि प्रहलिका कोई अलंकार ही नहीं है।<sup>४</sup> दण्डी के प्रभाव तथा दरबार स सम्बन्धित होने के कारण केगव ने इस अलंकार की स्थिति स्वीकार की है लेकिन उसके भेदादि का वर्णन उहान नहीं किया।

### परिवत्त

दण्डी ने अर्थों के विनिमय को परिवत्त कहा है।<sup>५</sup> इस स्पष्ट करने को उहोने जो उदाहरण दिया है उसका भाव है कि हे राजन् तुम्हारे बाहु ने प्रहार देकर गनुओ के अजित यग का हरण कर लिया है। उस उदाहरण स विनिमय का अर्थ स्पष्ट हो जाता है। भामह ने विनिमय जसी किसी बात की चर्चा नहीं की है। उहोने इस अलंकार की स्थिति वहा मानी है जहा एक वस्तु का त्याग करके दूसरी वस्तु का ग्रहण किया जाए। साथ ही व उसम अर्थान्तरयास का गुट भी चाहते हैं।<sup>६</sup> लेकिन उनका उदाहरण उनके लक्षण को स्पष्ट नहीं करता। कारण इस दृष्टि स उनम और दण्डी म कोई अन्तर नहीं है।

विनिमय और आदान प्रदान म मोटा भेद यह है कि एक के लिए किसी अन्य व्यक्ति की अपन्ना होती है जबकि दूसरे के लिए नहीं। विनिमय और आदान प्रदान

१ कविप्रिया १३३०

२ नाटम आन सा द, काण ५ २३

३ काव्यालंकार २।८७

४ व १ ३।१०६

५ मा द १ १६

६ काव्यालंकार २।३५१

७ काव्यप्रकाश २।३५६

८ काव्यालंकार ३।४१ ४०

क इसी भद के कारण परवर्ती आचार्यों म मतभेद उठ खडा हुआ । उहें हम विनिमय-वादी तथा ग्रहण-त्यागवादी नाम दे सकने हैं । प्रथम वग में दण्डी, मम्मट और जगन्नाथ<sup>१</sup> तथा द्वितीय म इय्यक और वामन<sup>२</sup> आन हैं । यद्यपि इय्यक ने भी विनिमय गण का प्रयोग किया है लेकिन उससे ग्रहण-त्याग मात्र का ही अर्थ निकलता है ।<sup>३</sup>

परवर्ती आचार्यों ने इसक तीन प्रकार दिखाए हैं—१ समस्त वस्तु क प्रदान म अर्थ का आदान । २—अधिक क त्याग स यून का आदान । ३—यून क त्याग म अधिक का आदान ।

केव का परिवृत्त कुछ नवीनता लिए हुए है । उहोंने इमक निष्पन्न म दा प्रकार के प्रयत्न किए हैं । (१) नूतन स्वरूप विधान तथा (२) परम्परागत स्वरूप में प्रास्था । उनका तक गायन यह रहा है कि परिवृत्त गण का अर्थ परिवर्तन होता है जमाकि वामन ने किया भी है । केव का लक्षण यह है

और कछु कीज जहाँ उपजि पर कछु ओर ।

तासों परिवृत्त कहत ह केसब कवि सिरमौर ॥

जहा एक काय के करने पर दूसरा काय हो पड वहा परिवृत्त अन्वकार हाता है । उनक उदाहरण इस लक्षण स सामग्र्य रखत हैं । इसम स नेह नहीं कि केव क परिवृत्त का स्वरूप हिंदी का यशास्त्र की अपनी वस्तु होता यदि हिंदी की काव्यशास्त्र-परम्परा संस्कृत की इसी परम्परा का विकसित रूप न होती । केशव का दृष्टिकोण माय नहीं हुआ तो छोड़िए । किंतु महा यह अवश्य देख लीजिए कि केशव न अपने उदाहरण देने के अन्तर संस्कृत क आचार्यों द्वारा माय स्वरूप का कसा सुन्दर निष्पन्न कराया है । एक उदाहरण देखिए—

हाथ गहूँ ब्रजनाय सुभावहि छूटि गई पर घोरजनाई ।

पान भक्ष मुख मन रचौ रुचि आरसी पेरि कहौ यह ठाई ।

परिरभन मोहन सौ मनमोहि दियो सजनी मुखदाई ।

साल गपाल कपोल नख छत तेरे दिये त महा छवि पाई ॥<sup>४</sup>

कृष्ण ने हाथ ग्रहण किया और अपना घय त्याग दिया । इसम रुच्यक-परम्परा की यून क आदान पर उत्तम क त्यागवाली परिवृत्ति है । द्वितीय पक्ति मे असंगति र्गमित है, जिसका प्रस्तुत में कोई प्रसंग नहीं । तीसरी पक्ति म मम्मटीय परम्परा का सम्प्रदान से सम के विनिमय का परिवृत्त है । और चतुर्थ पक्ति म लालगुपाल नखछत देते हैं और महाछवि नायिका की पाते हैं । इसमें भी मम्मटीय परम्परा की यूनदान से उत्तम की प्राप्ति वाली परिवृत्ति है ।

१ काव्यप्रकरा १०।१७२, प्रथम काव्यप्र०, पृ० ६७५ रसगंगाधर, पृ० ४८१

२ काव्यनकारधुत्र ४।३।१६ रसगंगाधर, पृ० ४८०

३ अन्वकारसर्वस्व पृ० १६१ ६२

४ कविमिया ११।३६

५ वही ११।४१

## यमक

केशव ने यमक का निरूपण भी दण्डी के आधार पर प्रस्तुत किया है। प्रक्रिया भी वही है। दण्डी ने अव्ययपद तथा व्ययपद दो भागों में यमकों को बाटा है। जो यमक पद बिना अंतर के होते हैं अव्ययपद कहलाते हैं। सात्तर यमक व्ययपद कह जाते हैं।<sup>१</sup> इनकी स्थिति पद्य के एक-दो-तीन चारों पदों में हो सकती है। प्रत्येक पाद के अन्तिम अक्षर अन्त मध्यात् मध्यादि आद्यन्त रूप में अनेक प्रकार हो सकती है। सरलता तथा कठिनता की दृष्टि से यमक सुकर एवं दुष्कर दो प्रकार के हो सकते हैं।<sup>२</sup> केशव ने इन्हें सुखकर तथा दुःखकर नाम दिए हैं। दण्डी ने यमकों के अनेक प्रकार दिखाए हैं दुष्कर यमकों में भी उन्होंने अनेक उदाहरण एवं प्रकार प्रस्तुत किए हैं। केशव उतने भेद प्रभेदों तक नहीं गए। उन्होंने निम्न यमकों का परिचय दिया है

अव्ययपद—निरन्तर यमक—आदिपद दूसरे चरण का तीसरे चरण का चतुर्थ चरण का आद्यत यमक त्रिपादयमक के ४ प्रकार द्विपादयमक पादानुपादादियमक द्विपादाद्यत यमक उत्तराद्य यमक चतुष्पादादि यमक।

साव्यपेत—सात्तर यमक—द्विपदादि आद्यत चतुष्पादादि दोनों कई प्रकार से इनके अतिरिक्त कई प्रकार के भावृत्तिमूलक यमकों का निरूपण है।

इन सभी भेदों का निरूपण दण्डी में मिलता है। दण्डी ने उनके विविष्ट नाम भी यत्र-तत्र दिए हैं। केशव ने उनके स्वरूप को सीधे सीधे बताते हुए उनका परिचय दिया है। ११ उदाहरण दुष्कर यमकों के प्रस्तुत किए गए हैं। निस्त-देह इनमें प्रसाद गुण का स्थान भी नहीं है। दण्डी के समान अधिक भेद इसमें केशव ने नहीं दिखाए। उदाहरणों में यत्र-तत्र दण्डी की छाया है। उदाहरणों के निर्माण में केशव की कला के दगान होते हैं।

## निष्कर्ष

अब तक हमने केशव के विविष्ट अलंकारों के ऊपर विश्लेषणात्मक एवं तुलनात्मक दृष्टिपात किया है। हमने देखा है कि केशव का अलंकार विवचन पर्याप्त प्रौढ़ है एवं उसकी पृष्ठभूमि में उनका यापक अध्ययन निहित है।

केशव ने प्रमुखतया दण्डी को ही आधार बनाया है। उनके ४ अलंकारों में से निम्न २१ अलंकारों के तो दण्डी ही आधार हैं

१ का यत्र-तत्र दण्डी, परि ३। २ ३ १६ तुलना कीजिए कविप्रिया १५।६५

२ वही ३।२ }—कविप्रिया, १५ तु

३ वही ३।३ }—कविप्रिया १५।१ तु

४ अव्ययपद साव्यपद पुनि यमक बरनि दुहु दन। कविप्रिया १५।६५

सुखकर दुःखकर भेद है सुखकर बरने जानि।”

विभावना हेतु विरोध आक्षेप, आगी प्रेमा श्लेष, सूक्ष्म, लोभ, निदग्ना ऊर्ध्व व्यतिरेक, अपह्नुति सहोक्ति रसवन् समाहित, रूपक प्रहेलिका उपमा यमक । स्वभावोक्ति एव विरोध भी दण्डी के आधार पर इस दृष्टि से कह जा सकता है कि वे समस्त आचार्य-परम्परा के अनुरूप हैं ।

इनमें विरोध प्रेमा और ऊर्ध्व तथा समाहित चार अलंकार तो दण्डी का उद्धरणीय हैं । इन अलंकारों का स्वरूप इन्हीं नामों में परवर्ती साहित्य में मिलकुल बदला हुआ है । किंतु इनमें केशव ने दण्डी का ही दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है । किंतु उनके यह अर्थ नहीं कि केशव ने दण्डी का अनुकरण किया है । उन्होंने विविध अलंकारों के भेदों को तथा उनके स्वरूपों को अपनाते समय किस प्रकार परवर्ती अध्ययन की उपनिषदों को सामने रखा है यह हमें हेतु आक्षेप श्लेष व्यतिरेक रूपक उपमा आदि के अर्थ तथा दण्डी के अर्थ का सामने रखकर देख चुके हैं । रूपक के भेदों में उन्होंने दण्डी के दो नाम अपनाकर भी निजी दृष्टिकोण अपनाया है । उन्होंने दण्डी से स्वतंत्र रहकर भी अनेक भेदों एव नामों की सृष्टि की है अनेक दण्डी के नामों की चेतनाओं में परिवर्तन किए हैं । हम देख चुके हैं कि इन परिवर्तनों में केशव का समभाव-यूष्मा दृष्टिकोण है । विनायक एव व्यतिकरणोक्तियों में परवर्ती उपनिषदों के कारण ही केशव दण्डी के साथ नहीं रहे ।

दण्डी के अतिरिक्त केशव अनेक आचार्यों की धार भी खुली दृष्टि रखते हैं । वक्राक्ति में उन्होंने वक्रोक्ति के आचार्य कुतन की प्रेरणा ली है । आगी में आमह की व्यापकता समाविष्ट की है । विवनायक के अधिकार-व्यंग्य रूपक का अनुत्त नाम से ग्रहण किया है ।

केशव ने अपने अलंकार विवेचन में पर्याप्त स्वतंत्र दृष्टि से काम लिया है । उनका निरूपण में कई प्रकार की मौलिकताएँ दिखाई पड़ती हैं । यद्यपि उन सभी मौलिकताओं का मूल्य एक-सा नहीं है । हम उनकी स्वतंत्र दृष्टियों को इस प्रकार वर्गीकृत कर सकते हैं

(१) कुछ छोटे छोटे अलंकारों की सृष्टि ।

केशव ने अनेक युक्त सुसिद्ध प्रसिद्ध विपरीत अलंकारों की साध्यसिद्धि को ध्यान में रखकर हलचल बांधी हैं ।

(२) कुछ प्रमुख अलंकारों के नूतन अर्थों की सृष्टि ।

केशव ने अपने निजी दृष्टिकोण से तथा अपने आचार्यों के विवेचना से प्रेरणा लेकर व्यवस्था की दृष्टि से कई अलंकारों में नये अर्थ दिए हैं । समाव हेतु अनुत्तयुक्त अर्थांतर-यास-व्यतिरेक अर्थ विपरीतापमा सकीर्णोपमा आदि देख जा सकते हैं ।

(३) कुछ प्राचीन नामों को अर्थयता की दृष्टि से नये अर्थ देने का प्रयास किया गया है ।

उदाहरणस्वरूप अर्थांतर-यास तथा अर्थांतर-यास लिए जा सकते हैं । परिवृत्त में भी यही दृष्टि अपनाई गई है ।

(४) कुछ धनकारों के विषय में सम्मत्त मस्त्रन साहित्यशास्त्र में मन्वया स्वतंत्र दृष्टिकोण अपनाया गया है। प्रथम अध्याय 'तन्माम पर्यायात्ति तथा परिवृत्त इम दृष्टि म ता देम मन्व है। प्रथम तथा अध्याय 'तन्माम म केगव का यह प्रयोग सर्वथा आशास्त्रीय ही जाता है। मन्वृत की परम्परा में वाच्यशास्त्र का रत्न हुए केगव के इस प्रकार के दृष्टिकोण नया

(५) प्रथमनाए जा सकते हैं।

केगव चीन नामों में परिवर्तन।

समाहित का निरूपण किया है। इनके रूप परवता युग 'परिचय परिवर्तित हो चुके हैं। केगव ने दण्डी की विवेकात्ति को विषय तथा प्रथम को प्रमा नाम देकर बनाए रखना चाहा है।

वही प्रकार की छोटी मोटी निजी मायताओं के कारण केगव का यह विवेचन किसी भी आचार्य या परम्परा का अनुकरण नहीं रह गया है।

केगव यत्र तत्र विवेच्य विषय पर विविध कल्पिक मायताएँ भी प्रस्तुत करत हैं। रमबदलकार के निरूपण में ऐसा ही किया गया है। परिवृत्ति के विषय में निजी स्वतंत्र दृष्टिकोण के साथ आचार्य परम्परा से भी परिचित कराया गया है। वे विवेच्य धनकारों का निरूपण ही नहीं करत उनकी परस्पर टकराती रेखाओं पर भी यत्र-तत्र दृष्टि डालत दखे जाते हैं। इस दृष्टि से विरोधाभास का विवेचन उल्लेखनीय है। विरोध के प्रसंग में विभावना का उदाहरण मानादीपक में एकावली का उपस्थापन परिवृत्ति में लक्षण उदाहरण से भिन्न आचार्य सम्मत दो उदाहरण तथा रमबदलकार में विभिन्न स्तरों के रखे हुए कतिपय उदाहरण इस बात के प्रमाण हैं कि केगव का विवेचन परिचयात्मक ही नहीं आलोचनात्मक भी है। उनके निरूपणों के साथ एकवृत्ति गद्य रूप में अपेक्षित है। या तो केगव ने ऐसी टिप्पणी लिखी थी जो 'तुप्त हो चुकी है या फिर वे अपनी गिफ्टा को समझाते समय इस कार्य की मौखिक रूप में ही सम्पन्न करते थे।

सब मिलाकर केगव का अनुकरण विवेचन उनके गभीर शास्त्रीय अध्ययन सूक्ष्म निरूपण प्रतिभा तथा शास्त्रीय मायताओं के यापक परिचय की सूचना आता है। उनके हेर फेर जहाँ भी हैं वहाँ तकयुक्त हैं। यदि वे किसी शास्त्रीय मायता से कुछ हटत दिखाई पड़ते हैं तो सकारण। उनके ऊपर लगाए गए लक्षण तथा आरोप समीक्षक के सङ्कुचित अध्ययन का पता देते हैं। ऐसे समीक्षकों को केशव के प्रति सहानुभूति रखकर घबरे के साथ उन्हें समझने की आवश्यकता है।

## पञ्च प्रकाश छन्द निरूपण

### अध्येय सामग्री

कण्व ने वाङ्मयास्त्र के अतिरिक्त छन्दशास्त्र में भी अपने पाण्डित्य का प्रदर्शन किया है तथा इस ओर से भी भाषा कवियों को परिचित कराने के लिए छन्दमाला की रचना की है।

कण्व ने छन्दशास्त्र के प्रकाण्ड पाण्डित्य का प्रदर्शन रामचन्द्रिका में इस मात्रा तक किया है कि वह कृति आधुनिक आलोचकों की आलोचना का शिकार भी बन गई है। रामचन्द्रिका के अन्त में कण्व प्रयावली राड १ के पृ० ४२१ से ४३० तक एक लक्षणा महित छन्द सूची भी दी गई है। यह सूची भी पुरानी है, पर यह कह सकना कठिन है कि यह कण्वकृत ही है। इसमें रामचन्द्रिका के प्रयुक्त सभी छन्द नहीं हैं अधिकांश ही हैं। साथ ही कतिपय ऐसे भी हैं जो रामचन्द्रिका में नहीं हैं। फिर भी रामचन्द्रिका में प्रयुक्त छन्दों के अधिकांश का रूपात्मक परिचय इस सूची में दिया हुआ है। इस सूची के समस्त छन्द कण्व की 'छन्दमाला' में सम्मिलित नहीं हैं। रामचन्द्रिका के स्वप्रयुक्त समस्त छन्द भी 'छन्दमाला' में नहीं हैं। अतः यही निष्कर्ष निकलता है कि कण्व ने 'छन्दमाला' में भाषा कवियों को छन्दों का परिचय कराने के लिए छन्द का चुनाव स्वतन्त्र रूप से किया है अपनी कृति रामचन्द्रिका की सापेक्षता में नहीं किया।

हम यहाँ केवल 'छन्दमाला' में निरूपित छन्दों को अपने अध्ययन का विषय बना रहे हैं।

### कतिपय सामान्य तथ्य

कण्व के छन्द निरूपण का अध्ययन करने से पूर्व कतिपय तथ्य ऐसे हैं जिनकी ओर हम ध्यान आकृष्ट कराना चाहते हैं। इससे हम अपने अध्ययन में अनावश्यक बाधा से भी बचेंगे और कण्व की समीक्षा भी यथोचित कर सकेंगे। ये तथ्य इस प्रकार हैं

१—कण्व ने जिन छन्दों का निरूपण 'छन्दमाला' में प्रस्तुत किया है उनका अध्ययन में हम व्यर्थ के श्रम की आवश्यकता नहीं है। यह विषय एकदम शास्त्रीय है इसमें केवल गणना और यथास्थान वर्णवि्यास का काम होता है। इस विषय का निरूपण एक सामान्य क्षमता भी किसी आदम श्रम को सामने रखकर सरलता से

कर सकता है। और मामा यत उसमें भूल की गुजाइश नहीं है।

२—किसी आचार्य के रूप निरूपण में यह परमा जा सकता है कि एक विवेचित छद का नाम उसका स्वरूप और लक्षण आस्त्रीय एवं किसी माय आचार्य के निरूपण पर प्रायुक्त है या नहीं। इसमें प्रतिरिक्त यह भी देखा जा सकता है कि इस आचार्य ने किसी छद का मौलिकता निर्माण किया है या नहीं? किन्तु इसका निर्णय कस किया जा सकता है? यह कम निश्चयपूर्वक कहा जा सकता है कि यह छद उस समय का प्रचलित कक्ष में प्रचलित ही नहीं था। वस्तुतः गिटाग्रय के रूप में प्रस्तुत की जानवानी छदमाला में उन्हीं छदों की सम्भावना की जा सकती है जो समकालीन हिंदी कवियों के लिए परिचित रहे हों।

३—यह विशेषतः उत्सलनाय है कि छदों के नामों के विषय में विविध ग्रंथों में एकता नहीं है। छद आस्त्रीय प्रायः नामों में चिपक नहीं रहे छद के रूप की ओर ध्यान रखा है। इसी कारण किसी किसी छद के पांच पांच छे छे नाम मिलते हैं। इस विषय का प्रतिपादन करने की आवश्यकता नहीं छद आस्त्रीय के विद्वान् इससे पूर्णतः परिचित हैं। केगव निरूपित छदों की चर्चा करते समय हम देखेंगे कि छदों के नाम महत्वपूर्ण नहीं हैं। अतः जहाँ नाम बदला हुआ हो वहाँ या तो यह हो सकता है कि केगव ने किसी ऐसे ग्रंथ का सहारा लिया है जिसमें यही नाम प्रचलित था या फिर कोई प्रचलित नामों में से उन्हीं ऐसा नाम चुना है जो अप्रचलित या अल्प प्रचलित होने के कारण नया सा लग या फिर यह समझा जा सकता है कि केगव के समय में उस छद का यही नाम अधिक प्रचलित हो चला था। अतः छद के किसी परिवर्तित नाम को न तो मौलिकता ही कहा जा सकता है न ही आस्त्रीयता।

४—वर्णों की स्थितियों के अनुरूप एक विविष्ट मन्था के छदों के अनेक रूप और भेद हो सकते हैं। उदाहरणस्वरूप १० अक्षर के ही छद में गुरु लघु की स्थितियों के परिवर्तन से छदशास्त्र के हिमाव से १०२४ भेद सम्भव हैं। ११ अक्षर पाद वाले छद के २४८ भेद बन सकते हैं। अतः छदों के समूचे भेदों को कोई एक ग्रंथ प्रस्तुत करने में संशय असंभव है। पिमलसूत्र से लेकर अद्य तक यही सम्भव रहा है कि कतिपय प्रचलित या रुचि के अनुरूप छदों का आचार्य परिचय कराता चला आ रहा है। अतः यह आलोचना दृष्टि छदों के विषय में काम नहीं कर सकती कि अमुक आचार्य ने अमुक छद का निरूपण क्या किया और अमुक का क्या नहीं किया। जिनका निरूपण किया है उनके अग्रयन तक ही सीमित रहना होगा। हाँ उनमें चुनाव के रुचि की सामान्य समीक्षा की जा सकती है।

उन सामान्य तथ्यों के परिचय के साथ अब हम केगव के निरूपण की ओर बढ़ सकते हैं।

### केगव का छद निरूपण

छदमाला के प्रथम खंड में वाणिक छदों का निरूपण हुआ है द्वितीय खंड में मात्रिक छदों का।

उपेक्षित विगलसूत्र तथा उसका टीकाकारा के अनुसार तीन वग होत है—  
गणछन्द मात्राछन्द और अक्षरछन्द । गणछन्द म चतुर्वर्णात्मक मात्रिक गणों की छन्द  
म किसी त्रिगुण स्वान पर निश्चित स्थिति होती है । इस वग का उदाहरण आर्या,  
गीति आदि हैं । मात्राछन्द म समूचे पाद म मात्राओं की संख्या निर्धारित रहती है ।  
चताली चूलिका आदि इसके उदाहरण हैं । वर्णों क गुण त्रिगुण विन्यास की निश्चित स्थिति  
का विचार कर चलनेवाले छन्द अक्षरछन्द कहलाते हैं ।<sup>१</sup> बहुत पीछे आकर गणछन्द  
और मात्राछन्द मिलकर एक हो गए हैं क्योंकि उन दोनों म ही मात्राओं की संख्या  
का विचार रहता था ।

इनम स गणछन्दो की विगलाचार्य ने जाति कहा है, मात्रिक और वार्णिक  
छन्दों का वृत्त ।<sup>२</sup> कशव ने भी उनके लिए पारिभाषिक वृत्त नाम का प्रयोग किया  
है

भाषा तीनहु के सुकीच द्विविध करत कवित्त ।

वनवृत्त है एक और कलावत्त फिर मित ॥<sup>३</sup>

इन वृत्ता क पादों म विन्यस्त वर्णों या मात्राओं की स्थिति चारों म समान रहने  
पर छन्द सम होता है प्रथम तृतीय तथा द्वितीय चतुर्थ समान होने पर अक्षरम और  
परस्पर बमल हो जान पर विपम होता है । कशव ने वार्णिक वृत्तों म केवल समपादीय  
छन्दों का परिचय बताया है किन्तु मात्रिकों म सम और विपम का । अक्षरम का परिचय  
उनम भी नहीं है । अतः अक्षर निरूपण की सीमा व इस प्रकार निर्धारित करत हैं

वनवत्त के सम धरन चारों धरन प्रकास ।

कलावत्त के सम विपम पद करि केसवदास ॥<sup>४</sup>

कशव ने मात्रिक छन्दों का साथ गायामा<sup>५</sup> का भी निरूपण किया है । विगला  
चार्य के समय म गायामा व छन्द थे जिनके लक्षण गायामा म नहीं हो पाए थे किन्तु  
जिनका स्थिति लौकिक वा य म पाई जाती थी । एस अनुक्त छन्दों को उद्धान गायामा  
कहा है । धीरे धीरे विगलवादीन अनुक्त छन्द उक्त बनत गए । किन्तु फिर भी यह वग  
बनाए रखना इसलिए आवश्यक रहा आया कि छन्दशास्त्र स कवियों का प्रयोग सदा  
साग रहा आया धीरे कुछ न कुछ छन्द अनुक्त ही बन रह । कम वग का बनाए रखने  
म कुछ परम्परावादी दृष्टिकोण भी परवर्ती आचार्यों के सामने रहा । किन्तु कशव ने  
गायामा और उसके भेदों को मात्रिक छन्दों म ही मिलाकर निरूपित किया । यह  
उत्तमनीय है कि गायामा छन्दों म मात्रासंख्या ही नियमन की आधार थी । अतः कशव  
का उन्हें इस वग म रखना अक्षरमीचीन नहीं ।

१ आर्या तथा गीति नाम मात्राछन्द मित परम् ।

तरीयमपरच्छन्दरद्वन्द्वेषा तु लौकिकम् ॥

विगलसूत्र की इलाजुष टीका छन्दशास्त्रम्, पृ० ५२

२ 'वृत्तम्' इति तथा इनायुधी वृत्ति ।—छन्दशास्त्रम्, पृ० ७१

३ छन्दमाना, टीका ० ५

४ वदा, ६५ ६



## वाणिक वृत्त

वाणिक वृत्तो का निरूपण वेगव ने छन्दमाला के प्रथम खंड में किया है और इसमें कवन सम वृत्त ही उन्होंने लिए हैं यह हम पीछे कह चुके हैं। इनमें एक से छत्तीस अक्षरों तक के छन्द हैं। पिंगलाचाय ने ६ अक्षरों से कम के छन्दों का उल्लेख नहीं किया किन्तु प्राकृतपिंगलसूत्र में प्रारम्भ एकाक्षरी छन्दों से ही हुआ है। सम्भावना यह है कि इन अत्यंत छोटे छन्दों का विकास संस्कृत की अपेक्षा पहले प्राप्त में ही हुआ होगा। परवर्ती संस्कृत में भी छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में इनका उल्लेख पाया जाता है। छन्दोजरी वृत्तरत्नाकर आदि में इन छन्दों को भी सम्मिलित कर लिया गया है।

प्राचीन या नवीन सभी छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में २६ अक्षर पादों पर जाकर छन्द निरूपण रक जाता है और उससे आगे के छन्दों को दण्डक कहकर निरूपित किया जाता है। पिंगलाचाय ने २६ से आगे के छन्दों को दो वर्गों में बाटा है—दण्डक और प्रचित। दण्डक में एक रगण के तीन-तीन अक्षरों की वृद्धि होती है और वह रगण प्रायः छन्द है। इस जाति के ऋगण वर्धमान सभी छन्द दण्डक जाति के कह गये हैं वेगव को प्रचित कहा गया है।<sup>१</sup> परवर्ती छन्दशास्त्रीय ग्रन्थों में इनके रूप के विषय में कुछ विचार विकसित हुए हैं। साथ ही दण्डको के अनेक नाम और भेदों की भी उदभावना हुई है।

वेगव ने वाणिक वृत्तों में यही परम्परा निभाई है। उन्होंने पहले एक से छत्तीस अक्षरों तक के छन्दों का परिचय देकर उससे आगे के छन्दों को सामान्य नाम दण्डक से अभिहित किया है और उनमें से एक अनगोखर नामक ३२ अक्षर के दण्डक का निरूपण प्रस्तुत किया है।

एक से छत्तीस तक के अक्षरों तक के छन्दों की अक्षर-संख्या के आधार पर जातीय नाम पिंगलग्रन्थों में दिए गए हैं। पिंगलसूत्र में तो ये नाम पञ्चदशरी छन्दों से ही प्रारम्भ होने हैं किन्तु परवर्ती ग्रन्थों में ये नाम एकाक्षरी छन्दों से ही मिलते हैं। छन्दोजरी के आधार पर हम यहां इन जातीय नामों का परिचय प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रतिपाद अक्षर-संख्या	छन्दजाति नाम	प्रतिपाद अक्षर-संख्या	छन्दजाति नाम
१	उक्था <sup>१</sup>	१४	गकरी
२	अत्युक्था	१५	अतिगकरी
३	मध्या	१६	अट्टि

<sup>१</sup> शेष प्रचित — छन्दशास्त्रम् ७। ३६  
अरभ्यैकाक्षरात् पान्दककाक्षरवर्धितम् ।  
पान्दकान्तिष्ठ स्याद्वन्द पन्विशति गन्म् ॥

## छन्द निरूपण

प्रतिपाद अक्षर सख्या	छन्दजाति नाम	प्रतिपाद अक्षर सख्या	छन्दजाति नाम
४	प्रतिष्ठा	१७	प्रत्यष्टि
५	सुप्रतिष्ठा	१८	घति
६	गायत्री	१९	अतिघति
७	उष्णिक्	२०	वृत्ति
८	अनुष्टुप	२१	प्रवृत्ति
९	बृहती	२२	घ्रावृत्ति
१०	पङ्क्ति	२३	विवृत्ति
११	त्रिष्टुप	२४	मसृत्ति
१२	जगती	२५	अतिवृत्ति
१३	अतिजगती	२६	उसृत्ति

२६ म अधिक व दण्डक और प्रचित

दूसरी ओर सोमराजी का लक्षण भी गुद्ध नहीं है। सामराजी का निरूपण पिगलसूत्र तथा वृत्तरत्नाकर म ता नहीं पर छन्दोमजरी छन्दोस्तुम और प्राकृत पगलम म हुआ है। छन्दोमजरी म इसका नाम गोमराजी ही है, प्राकृतपिगलसूत्र म सलणारी या गलनारी है छन्द कोस्तुम म इस सोमराजी गलघारी कहा गया है। पर मवन्न इमका स्वरूप दो यगण वाला बताया गया है

द्विधा सोमराजी ।'

लडावणवद्धो भुप्रगपप्रद्धो ।

पभा पाअ चारी कही सलणारी ।'

किन्तु उक्त छन्दमाना म कगव की सोमराजी का लक्षण द्वियगणात्मक न होकर त्रियगणात्मक त्रिधा गया है। यह द्वियगणात्मक नहीं द्वियगणात्मक होना चाहिए। लिपिभार की सहज भूत का ही यह परिणाम है। अतः इन दोनों का गुद्ध रूप इम प्रकार होना चाहिए

अथ पञ्चरभद—'मालती'

आदि जगन पुनि जगन रचि धरन पदधर जानि ।

अमल मालती छन्द यह कविकुल को सुलदानि ॥

उक्तयुक्ता तथा इत्या प्रनिष्ठान्या सुपूर्विका ।

गायत्र्युष्णिगनुष्टुप्ब बृहती पङ्क्तिरेव च ॥

त्रिष्टुप च जगती इव तथात्रिजगती मता ।

राकरी मादिपूर्वा इत्याष्टयत्यष्टी तथा सृष्ट ॥

धनिरचानिधनिर ॥ तथात्रिष्टुतिररकृति ।

इत्युन्नारदण्डमं म्हा ममरा ॥—दण्डामन्त्री, प्रधान स्तवक १५ १६

१ दण्डामन्त्री, १७० २ ३

२ प्रा० वि० मू २१५३

ल ग ल ल ग न

‘सोमराजी’

यमन दायमय बन पट सोमराजि सो छन्द ।

—न ग ग न ग ग

‘विज्जोहा’

कण्व क अनुसार दो रगण का विज्जोहा छन्द हाता है । पिंगलसूत्र छंदा मजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । प्राकृतपिंगलसूत्र म इसी नाम स इसका स्वरूप बताया गया है

इसक अनुसार एक रगण और एक लघु अर्थात् ग ल ग ल है ।

‘माया’

यह भी सुप्रतिष्ठा जातीय एक पचाक्षरी छन्द है । इसका स्वरूप कण्व क अनुसार समण लघु गुरु है । पिंगलसूत्र प्राकृतपंगलम् तथा वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । किन्तु छन्द कौस्तुभ तथा छन्दोमजरी म इसका निरूपण प्रिया नाम से मिलता है

सलय प्रिया ।<sup>१</sup>

प्राकृतपिंगलसूत्र म प्रिया नाम से एक तीन अक्षर वाल छन्द का निरूपण किया गया है

हे पिए लेखिए । अक्खरे तिण्णि रे ।<sup>२</sup>

माया नाम क लिए कण्व ने किसी अर्थ अर्थ को आधार बनाया है ।

गायत्री—पदच्छर ‘मालती’ और ‘सोमराजी’

कण्व अष्टावली सड १ म प्रकाशित छंदमाला म पडपर क ६ छन्द दिए गए हैं—मालती सोमराजी तथा गकर विज्जोहा मयान और मुखदा । इनमे मानती और सोमराजी क स्वरूप म कुछ गडबडी है ।

कण्व न मानती का गक्षण एक नगण और एक जगण दिया है । सोमराजी का दो जगण । किन्तु दो जगणवान छन्द का नाम सोमराजी कही नहीं दिया गया । पिंगलसूत्र छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इस दो जगण क छन्द का निरूपण दुष्मा ही नहीं है । किन्तु प्राकृतपिंगलसूत्र म इसका निरूपण मालती क नाम स दुष्मा है

धम सरवीअ मणीगुण तीय ।

दन् लहु जत्त स मालइ क्त ॥<sup>३</sup>

वाणीभूषण म इस ही मुमालतिका कहा गया है । अत एव इस निष्प

१ दुष्माजरी सडक २ २

२ पिंगल सू २।१४

३ वरी २।५५

पर पहुचन है कि यहा कुछ भूत अवश्य हुई है चाह वह प्रतिलिपिकारों द्वारा हुइ हो चाह किमी अथ व द्वारा । हमक पहुच जो मालती नाम निया गया है वह इसी छन्द का होना चाहिए ।

यहा हम कगव क निरूपित छन्दों का असग असग ने रह है ।

### उपमा जातीय एकाक्षर 'श्रा'

इसका निरूपण विगलकृत छन्द ग्रास्त्र म नहीं है । प्राकृतविगलमूत्र वृत्तरत्नाकर और छन्दोमजरी म इसका निरूपण है । कगव का लक्षण ग्रास्त्रानुरूप है ।

### अत्युत्था—द्वयक्षर 'नारायण'

विगलकृत छन्द ग्रास्त्र छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका उल्लेख नहीं है । कगव न इसका स्वरूप एक लघु तथा एक दीघ दिया है । लक्षण प्राकृत पि० सू० क अनुरूप है । किन्तु इस वहा मही नाम निया गया है सगो जहों । मही कही ।<sup>१</sup>

### मध्या—त्रयक्षर 'रमण'

विगलकृत छन्द ग्रास्त्र छन्दोमजरी तथा वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । किन्तु इसी नाम और इसी लक्षण क साथ प्राकृतविगलमूत्र म इसका निरूपण हुआ है ।

सगणो रमणो । संहियो कहियो ।<sup>१</sup>

कगव न भी इसका दो लघु एक गुणवाला सगणात्मक लक्षण दिया है ।

### प्रतिष्ठा—चतुरक्षर 'तरणिजा'

विगलमूत्र तथा वृत्तरत्नाकर म इसका उल्लेख नहीं है । छन्दोमजरी म इसका निरूपण सती नाम स है

नगि सती ।<sup>१</sup>

कगव न इसका नाम अथय म लिमा है । लक्षण एक नगण और एक गुरु हा उहान निया है ।

### सुप्रतिष्ठा—पञ्चाक्षर 'मदन'

विगलकृत छन्द ग्रास्त्र छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । यह भी प्राकृत अथय स निया गया प्रनीत हाता है । इसका लक्षण कगव क

१ प्रा० पि० सू० २।८

२ कही

३ छन्दो०, सत० ०, ०

न, ग ल ल ग ल

‘सोमराजी’

यगन द्वापमय वन षट सोमराजि सो छन्द ।

—ल ग ग ल ग ग

‘विज्जोहा’

कण्व क अनुसार दो रगण का विज्जोहा छन्द हाता है । पिगलमूत्र छन्दो मजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । प्राकृतपिगलमूत्र म इसी नाम स इसका स्वरूप बताया गया है

इसक अनुसार एक रगण और एक लघु अर्थात् ग ल ग ल है ।

‘माया’

यह भी सुप्रतिष्ठा जातीय एक पचाक्षरी छन्द है । इसका स्वरूप कण्व क अनुसार सगण लघु गुरु है । पिगलमूत्र प्राकृतपगलम् तथा वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । किन्तु छन्द कौस्तुभ तथा छन्दोमजरी म इसका निरूपण ‘प्रिया’ नाम से मिलता है

सलग प्रिया ।<sup>१</sup>

प्राकृतपिगलमूत्र म प्रिया नाम स एक तीन अक्षर वाल छन्द का निरूपण किया गया है

हे पिए लेक्खिए । अक्खरे तिग्णि रे ।<sup>१</sup>

माया नाम क लिए कण्व ने किसी अन्य ग्रन्थ को आधार बनाया है ।

गायत्री—पदच्छर ‘मालती’ और ‘सोमराजी’

कण्व ग्रन्थावली सङ् १ म प्रकाशित छन्दमाला म पङ्कारक ६ छन्द दिए गए हैं—मालती सोमराजी तथा गकर विज्जोहा मयान और सुखदा । इनम मालती और सोमराजी क स्वरूप म कुछ गड़बड़ी है ।

कण्व न मानती का लक्षण एक नगण और एक जगण दिया है । सोमराजी का दो जगण । किन्तु दो जगणवाने छन्द का नाम सोमराजी कही नहीं दिया गया । पिगलमूत्र छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इस दो जगण क छन्द का निरूपण हुआ ही नहीं है । किन्तु प्राकृतपिगलमूत्र म इसका निरूपण मालती क नाम स हुआ है

धम्म सरवीअ मणीगुण तीय ।

दई लहु अत्त स मानइ क्त ॥<sup>१</sup>

२ णीभूषण म इम ही मुमालतिका क्हा गया है । अत हम इस निष्कर्ष

१ छन्दोमजरी श्लोक १ २

२ कण्व पि मू २ । १४

३ वसि । ५५

पर पहुँचने हैं कि यहाँ कुछ भूल अवश्य हुई है चाहे वह प्रतिलिपिकारों द्वारा हुई हो, चाहे किसी श्रम के द्वारा। इसका पहलू जो मानती नाम दिया गया है वह इसी छात्र का हाता चाहिए।

यहाँ हम बगवत क निरूपित छात्रों का अलग अलग स र्ह हैं।

उक्तया जातीय षकाक्षर 'श्रा'

इसका निरूपण विगल-वृत्त छात्र ग्रास्त्र म नहीं है। प्राकृतविगलमूत्र वृत्त रत्नाकर और छात्रामञ्जरी म इसका निरूपण है। बगवत का लक्षण ग्रास्त्रानुरूप है।

अत्युक्तया—द्वयक्षर 'नारायण'

विगलवृत्त छात्र ग्रास्त्र छात्रामञ्जरी वृत्तरत्नाकर म इसका उल्लेख नहीं है। बगवत न इसका स्वरूप एक लघु तथा एक दीर्घ लिया है। लक्षण प्राकृत पि० मू० क अनुरूप है। किंतु इस बगवत महा नाम लिया गया है  
सगो जहीं। मही बही।<sup>१</sup>

मध्या—त्रयक्षर 'रमण'

विगलवृत्त छात्र ग्रास्त्र छात्रामञ्जरी तथा वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है। किंतु इसी नाम और इसी लक्षण क साथ प्राकृतविगलमूत्र म इसका निरूपण हुआ है।

सगणो रमणो। सहियो बहियो।<sup>२</sup>

बगवत ने भी इसका दो लघु एक गुरुवाला सगणात्मक लक्षण लिया है।

प्रतिष्ठा—चतुरक्षर 'तरणिका'

विगलमूत्र तथा वृत्तरत्नाकर में इसका उल्लेख नहीं है। छात्रामञ्जरी म इसका निरूपण सती नाम से है

नगि सती।<sup>३</sup>

बगवत न इसका नाम अयत्र म लिया है। लक्षण एक लक्षण और एक गुण का उहाँन लिया है।

सुप्रतिष्ठा—पचाक्षर 'मदन'

विगलवृत्त छात्र ग्रास्त्र छात्रामञ्जरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है। यह भी प्राकृत अथ स लिया गया प्रतीत होता है। इसका लक्षण बगवत क

१ प्रा० पि० मू० २।८

२ बही

३ छात्रा०, म० २, ०

अक्षरा जे छत्रा पाअ पाअ टिठआ ।

मत्त पच ददुणा विण्णि जोहा गणा ॥<sup>१</sup>

वाणीभूषण म इस ही विमोहा कहा गया है छ'द कोस्तुम म बल्लरी ।  
क'गव ने प्राकृतपगलम् का नाम अपनाया है ।

‘शकर’

यह भी एक पडक्षरी छ'द है जिसम एक रगण और एक जगण बताया गया है । विगलसूत्र छ'दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका उल्लेख नहीं है । प्राकृत छ'द निरूपक ग्रंथ स आया प्रतीत होता है ।

‘मथान’

क'गव क अनुसार इसका स्वरूप है दो तगण । सस्कृत परम्परा के विगलसूत्र छ'दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है । पर प्राकृतविगलसूत्र म इसका वसी नाम स निरूपण उपलब्ध होता है

कामावधारण अवधरण पाएण ।

मत्ता दहा सुद्ध मथाण सो मुद्ध ॥<sup>२</sup>

‘सुरदा’

विगलसूत्र छ'दोमजरी और वृत्तरत्नाकर आदि सस्कृत परम्परा के सभी ग्रंथो म इस पडक्षरी छ'द का निरूपण है । किन्तु दूसरी और प्राकृतविगलसूत्र म इसका निरूपण नहीं है । उपयुक्त ग्रंथो म इसका निरूपण तनुमध्या नाम से है और स्वरूप है तगण यगण परक । क'गव न भी ग ग ल ल म ग स्वरूप बताया है । पर उहाने नाम इन ग्रंथो का नहीं लिया ।

उष्णिन्—सप्ताक्षर ‘कुमारललिता’

सप्ताक्षर क इस जगण सगण ग स्वरूप वाले छ'द का निरूपण वसी नाम और इसी रूप स विगलसूत्र छ'दोमजरी आदि ग्रंथो म उपलब्ध है ।

कुमारललिता जसो ग ।<sup>३</sup>

कुमारललिता जसगा ।<sup>४</sup>

प्रमाणिका’

छ'दमाला में सात अक्षर क इस छ'द का स्वरूप ग, ल ग ल ग ल ग दिया हुआ है और नाम दिया हुआ है प्रमाणिका । किन्तु इस लक्षण के छ'द का नाम

१ प्रा पि० मू २४८

२ वही २४५

३ छ'द शान्तरम् अ ६, ३

४ छ'दान्तरी २ २ उष्णिक

प्राकृतपिगल म प्रमाणिका नहीं समानिका दिया हुआ है

चारि हार किज्जहीं तिणिण गथ दिज्जहीं ।

सत्त अक्खरा ठिमा सा पमाणिमा पिया ॥<sup>१</sup>

अत प्राकृतपिगलसूत्र की दृष्टि से यह केशव निरूपित प्रमाणिका<sup>१</sup> समानिका होनी चाहिए । लिपिकार की भूल हो सकती है । केगव के पाठ म प्रमाणिका<sup>१</sup> दिया हुआ है जो समानिका क बहुत समीप है

आदि एक गृह सोभिज जगन रगन तिन माह ।

कोनी प्रगट प्रमाणिका सप्तवन कविनाह ॥<sup>२</sup>

छदोमजरी के अनुसार प्रमाणिका<sup>१</sup> और समानिका दोनों ही अष्टाक्षरी छद हैं सप्ताक्षरी नहीं

प्रमाणिका जरी लगी ।<sup>३</sup>

गली रजो समानिका तु ॥

अत केगव का उपयुक्त छद सस्कृत पिगल श्रया की परम्परा का प्रतीत नहीं होता ।

अनुष्टुप—अष्टाक्षर 'मल्लिका'

केगव की मल्लिका का उक्षण है—ग ल ग ल ग, ल, ग ल । इसम उक्त समानिका स एक लघु अधिक है । इसका निरूपण प्राकृतपिगलसूत्र म ठीक इसी नाम और रूप क साथ हुआ है

हारगधयधुरण दिटठअटठअक्खरेण ।

वारहाहि मत जाणि मल्लिआ मुद्धद माणि ॥<sup>४</sup>

यह छन्द सस्कृत पिगल परम्परा का नहीं है । इसका नाम तो छदोमजरी म उपयुक्त समानिका दिया हुआ है

गली रजो समानिका तु ।

'नगस्वरूपिणी'

केगव क अनुसार अष्टाक्षरी नगस्वरूपिणी का स्वरूप है—ल, ग ल ग, ल, ग ल, ग । गुरु लघु क हिसाब [स यह केगव की मल्लिका और छदोमजरी की समानिका का उचटा है ।

अस छदोमजरी म प्रमाणिका नाम स निरूपित किया गया है

प्रमाणिका जरी लगी ।<sup>५</sup>

१ प्रा० पि० सू० ०।६५

२ छन्दमाला पृ० ४३३

३ छन्दो०, स्त० ३, अनुष्टुप् ५

४ वही ६

५ प्रा० पि० सू० २।७१

६ छन्दोमजरी स्त० २, अनु० ५



पिगलसूत्र म भी इस प्रमाणी कहा गया है गिति प्रमाणी अ० ५ सूत्र ७। पर पिगलसूत्र क अनुसार प्रत्यक् अष्टाक्षर छद जो लघु गुरु क रूप म समाप्त होता है प्रमाणी है। प्राकृतपिगलसूत्र म भी 'सका नाम प्रमाणी' ही दिया हुआ है

लहू गर गिरतरा पमाणि अटठ जखरा ।<sup>१</sup>

किन्तु श्रुतबोध म इसका नाम नगस्वरूपिणी ही दिया हुआ है

द्वितुपपठमष्टम गुरु प्रयोजित यदा ।

तदा निवेदयति तां बुधा नगस्वरूपिणीम् ॥<sup>२</sup>

केव ने यहा पिगलसूत्र और प्राकृतपिगलसूत्र दोनो का नाम न अपना कर श्रुतबोध का नाम अपनाया है।

### ‘मदनमोहनी’

केशव के अनुसार मदनमोहनी<sup>३</sup> अष्टाक्षरी का स्वरूप है—तगण जगण ग ल। पिगलसूत्र छदोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है।

### ‘बोधक’

बोधक भी पिगलसूत्र छदोमजरी तथा वृत्तरत्नाकर म निरूपित नहीं है। केव क अनुसार तगण नगण ग ग इसका स्वरूप है।

### ‘तुरगम’

केव के अनुसार तुरगम नामक अष्टाक्षर छद का स्वरूप है—नगण नगण ग ग। संस्कृत परम्परा के उक्त ग्रन्थो म इसका भी उल्लेख नहीं है। केव क अष्टाक्षरी छद प्रमाणी समानी और वितान भेदो क प्रस्तारो म स है।

### वृहती—नवाक्षर ‘नागस्वरूपिणी’

केव की नागस्वरूपिणी का स्वरूप है—जगण रगण जगण। यह उपयुक्त नगस्वरूपिणी म एक लघु अक्षर और बरा दन स बन जाती है।

### ‘तामर’

केव क इस तामर का स्वरूप मगण जगण जगण है और इसका निरूपण प्राकृतपिगलसूत्र म पाया जाता है

जमु आइ हत्य विघ्राण। तह ब पओहर जहण।

पभणइ णाअणरिद। इम माण तोमरछद ॥<sup>४</sup>

१ प्रा पि० सू० १६६

२ सू० बा०

३ प्रा पि० सू० २१ ७

## पणित—दशाक्षर 'हरिणी'

छन्द गाम्त्र छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है। प्राकृतपिणल-सूत्र म इसका नाम सारवती पाया जाता है।<sup>१</sup> इस वही कहीं हारवती भी कहा गया है। इन सबक अनुसार इसका स्वरूप है—तीन भगण एक गुरु।

## 'अमृतगति'

केव के अनुसार अमृतगति का स्वरूप है—नगण, जगण नगण ग। छन्दो-मजरी म एत त्वरितगति कहा गया है। प्राकृतपिणलसूत्र म नाम अमृतगति ही है। इसक अर्थ नाम अमृततिलका अमृतगतिका तथा 'कुलटा भी पाए जात हैं।'<sup>२</sup>

## 'तोमर'

पहल नवाक्षरी छन्दों म एक तोमर का उल्लेख हुआ है। यहा दशाक्षर भेदा म भी नगण सगण सगण ल स्वरूप क एक तोमर का उल्लेख है। इसका निरूपण पिणलसूत्र और उसकी परम्परा के अर्थ म नहीं मिलता। सम्भव है इसका कोई अर्थ नाम केव ने चुना है और लिपिकार की भूल स यह नाम पुनरुक्त हुआ है।

## 'सयुक्ता'

सयुक्ता का स्वरूप है—सगण, जगण जगण ग। प्राकृतपिणलम् में एक सयुक्ता दशाक्षरी का उल्लेख है किंतु उसका स्वरूप वहा सगण, भगण ग ग दिया है। इस अर्थ म कमला भी कहा गया है। अत केव की सयुक्ता का मूल प्राकृतपिणल अर्थ म नही है।

## त्रिष्टुप्—एकादशाक्षर 'अनुकूला'

यह छन्द भगण तगण नगण ग ग स्वरूप का है और इसी नाम और रूप के साथ छन्दोमजरी तथा प्राकृतपिणलम् म पाया जाता है।

## 'मुपणप्रयात'

इसका स्वरूप है—तगण तगण तगण ग ग। इस छन्द का निरूपण छन्दोमजरी और वृत्तरत्नाकर म 'विष्वक्माला' क नाम स पाया जाता है।

विष्वक्माला भवती तगो ग ।<sup>३</sup>

## 'इन्द्रवज्रा, 'उपद्रवज्रा'

य अत्यन्त प्रसिद्ध छन्द हैं और इनक लक्षण प्राय सब अर्थ म पाए जात हैं।

१ पि म् २११।

२ छन्दशास्त्रम्, अंका ५ ११३

३ छं० मं० स्त ० त्रिष्टुप् ८

बगव का निरूपण शास्त्रानुसूल है ।

**जगती—द्वादशाक्षर 'मोतियदाम'**

४ जगण क मोतियदाम नामक छद का उल्लेख छदोमजरी म भी है, प्रावृत्तपिगलसूत्र<sup>१</sup> म भी । बगव का लक्षण निरूपण शास्त्रानुसूल है ।

**'तोटक'**

चार सगण क तोटक का निरूपण उदोमजरी आदि ग्रन्था म इसी नाम स पाया जाता है । बगव का निरूपण शास्त्रीय है ।

**'सुन्दरी', मादक'**

बगव क सुन्दरी का लक्षण ४ भगण का है । इस स्वरूप के छद को छदो मजरी म मोटक नाम दिया गया है

मोटकनाम समस्तभमोरय ।<sup>१</sup>

प्रावृत्तपिगलसूत्र म एक तो द्रतबिलम्बित को ही सुन्दरी कहा गया है दूसरे एक २३ अक्षर क छद का नाम भी सुन्दरी दिया गया है । अतः बगव की यह सुन्दरी उसके अनुरूप नहीं है । इन्हान यह नाम कही अग्रयन स चुना है ।

४ सगण क छद को बगव ने मोदक कहा है । इस स्वरूप के छद को छदामजरी आदि म तोटक कहा गया है । गुरु नद्यु त्रम क उलट देने पर भगण और सगण बनत हैं—भगण ग ल ल सगण ल ल ग । ४ भगण पर मोटक होता है ४ सगण पर ताटक । अतः यहा कुछ लिपिकार की भूल लगनी है । प्रतीत होता है कि बगव ने मोटक को ४ सगण नहीं ४ भगण का ही निरूपित किया होगा । उसके विपरीत ४ सगण क छद को जिसे अग्रयन तोटक कहते हैं सुन्दरी नाम दिया होगा । अतः दोनों क लक्षण छदमाला म इस प्रकार होने चाहिए

चारि सगण को सुन्दरी छद छोटी होय ।

तथा चारि भगण को कीजियत केसव मोदक छद ॥

यह उल्लेखनीय है कि ४ भगण क छद का नाम संस्कृत परम्परा म प्रायः मोटक दिया हुआ है किन्तु प्रावृत्तपिगलसूत्र म इस मोदक अर्थात् मोटक कहा गया है । बगव न यह नाम वहीं म लिया हुआ प्रतीत होता है । तब उनक मोटक का स्वरूप चार सगण का हा ही नहीं मकता जसा कि छपा हुआ है ।<sup>१</sup> पर मोटक का निरूपण इस प्रकार है

तोडअद्य विपरीअ टठविज्जसु मोदह छदह णाम करिज्जसु ।

चारि गणा भगणा सुपसिद्धउ पिगल जपउ कितिहिलुद्धउ ॥

१ प्रावृत्तपिगलसूत्र ॥३३॥ छद शास्त्रम, पृ १३७, टीका

२ छन्दा० सू ७ अगनी १३

३ प्रा पि सू २।४१

## ‘भुजगप्रयात’

चार यगण का यह छात्र अत्यन्त प्रचलित है ।

## ‘तामरस’

न, ज ज यगण का इस छात्र का उल्लस छदोमजरी म इसी रूप म ह ।

## ‘द्रुतविलम्बित’

न, भ, भ, रगण का यह छात्र भी अत्यन्त प्रचलित है ।

## ‘मुमुमविचित्रा’

न य न य गण का इस छात्र का निरूपण छदोमजरी म इसी रूप म उपलब्ध हाता है ।

## ‘चन्द्रमल’

र न भ स गण का रूप छात्र का नाम छत्रोमजरी, वृत्तरत्नाकर श्राप्ति म चन्द्रमल पाया जाता है । स्वरूप यही है । अत्र त्रिपि की मूल प्रतीति होती है ।

चन्द्रयत्न निगदति रनभस ।<sup>१</sup>

## ‘मालती’

बंगव क अनुसार मालती का स्वरूप है—न, ज ज सगण । किन्तु छत्रो मजरी म मालती का लक्षण न ज ज रगण का रूप म दिया हुआ है

भवति नजावय मालती जरी ।<sup>१</sup>

वृत्तरत्नाकर का भी यही लक्षण है । बंगव न जा लक्षण दिया है उसम लिपि की मूल की सम्भावना नहीं की जा सकती

शौक्ल रचि पुनि भगन द्व सधु गुरु अत बनाउ ।

होय मालती छद यह बारह बन प्रभाउ ॥<sup>१</sup>

अत या तो बंगव न किसी ग्रन्थ म इस नाम का छद का उल्लस इसी रूप म पाया है या उन्होंने स्वयं मूल की है । पर इसकी सम्भावना कम हो सकती है । सम्भव यही लगता है कि न ज ज र गण का छद का नाम भी उन्हें वहीं मालती मिला होगा और नमपन का प्रदान का लिए उन्होंने उसी रूप म उस निरूपित किया होगा ।

## ‘वशासनित’

यह छद भी अत्यन्त प्रचलित है । विंगलसूत्र म इस वशास्य कहा गया है छदोमजरी में वशास्यविल ।

१ छत्रो २० २ जगती १

२ बदी, जगती १४

३ छत्रमाना ५० ४३८

## ‘प्रमिताक्षर’

स ज स म स्वरूप क एम छद का निरूपण छदोमजरी वृत्तरत्नाकर आदि म इसी नाम और वसी रूप क साथ उपलभ है ।

## ‘सन्धिणी’

चार रगण क छः सन्धिणी को छदोमजरी वृत्तरत्नाकर आदि म एमी रूप म निरूपित किया गया है ।

## ‘अतिजगती—त्रयोदशाक्षर पञ्जवटिका’

कगव क अनुमार इस छः का स्वरूप है—ग न ल ल ल ल ग ल ल ग ल ल । यह रूप गणों की दृष्टि स इस प्रकार रखा जा सकता है—भ न ज ज स । प्राकृतपगनम् म एस छद को पञ्चावली क नाम स निरूपित किया गया है

सो जण जणमउ सो गुणमतउ

जे कर पर उबआर हसतउ ।

जे पुण पर उअआर बिरुभउउ

ताकजणणिकि णयक्कउ बभउ ॥<sup>१</sup>

पिंगलमूत्र छ दोमजरी वृत्तरत्नाकर प्रथम एसका निरूपण नहीं है । कगव प्रयावली म प्रकाशित छदमाला म एसका स्वरूप गलत छपा हुआ है सम्भव है लिपिकार की भूल हो । वहा लक्षण इस प्रकार है

आदि एक गुरु नगन द्व अत सगन द्व देखि ।

छद मु पकजवाटिका तेरह अक्षर लेलि ॥

यहा गुद्ध पाठ होना चाहिए—

आदि एक गुरु नगन द्व अत भगन द्व देखि ।

कगव न जो अपनी रामचन्द्रिका स उदाहरण चुना है वह भी छःमाला म इस प्रकार अनुद्ध छपा हुआ है

राम चलत नप के जुग लोचन । बारिज मिटे हुआ बारिदमोचन ।<sup>१</sup>

स्वयं रामचन्द्रिका क अनुसार गुद्ध पाठ यों है

राम चलत नप के जुग लोचन । बारि भरित भए बारिद रोचन ।

यहा त्रितीय पाद म भए को कगव न द्विलघु गिना है ए को लघु मानकर । ब्रजभाषा म ए लघु का अनङ्ग प्रयोग पाया जाता है । रामचन्द्रिका म ही एक दूसरे स्थल पर ए का लघु गिनत हुए पकजवाटिका का स्वरूप वसी परिगुद्ध लक्षण के अनुरूप है

१ प्रा० वि० मू १७४६ पृ ४७

२ दत्तमात्रा पृ ४३६

३ वडा

४ रामचन्द्रिका पृ० २ ७

नारि न तजहि मरे भरतारहि । ता सग सहहि धनजय धारहि ।

जो केहु मिसु भरतार जिपावत । ती तेहि कह यह बात मुनावत ॥<sup>१</sup>

रसम कह तहि आदि म ०' को नघु गिना गया है । अतः पञ्जवाटिका का नमन छोपी छन्दमाला म अगुद्ध है अगव का माय लक्षण ह्रस्व ऊपर दे चुक है ।

‘तारक’

तारक का अगवकृत लक्षण चार सगण गौर एक गुरु है । यह भी प्राकृतपिगल मूत्र व अनुसार है

णव मजरि लिज्जिअ चूअह गाछे ।

परिकुल्लिअ वेसु णआ वण आछे ॥<sup>१</sup>

बाणीभूषणकार न भी यही लक्षण लिया है ।<sup>१</sup> पिगलमूत्र छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म इसका निरूपण नहीं है ।

‘कलहस’

कलहस का स्वरूप है—स ज स सगण तथा एक गुरु । छन्दोमजरी म यही नाम रूप स निरूपित है—सजसा सगौ च कथित कलहस ।<sup>१</sup>

इसके अर्थ नाम ‘मजुभाषिणा’ प्रबोधिता मिहनाद तथा नदिनी भी पाए जाते हैं ।<sup>१</sup> यह कलहमी नामक छन्द स भिन्न है । अगव व लक्षण एवं उदाहरण आम्बानुरूप हैं ।

शकरी—चतुदशाक्षर ‘हरिलीला’

रस छन्द का लक्षण पिगलमूत्र प्राकृतपिगलम् छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर म नहीं है । छन्दमाला म इसका स्वरूप रस प्रकार बताया गया है

रण रगन रचि रगन पुनि जगन अ त लघु आनि ।

चौदह अक्षर आदि गुरु हरिलीला उर आनि ॥

रस अनुसार स्वरूप हुआ—ग ग ल ग ग ल ग न, ल ल ग न, न । किन्तु अगव ने जा उदाहरण लिया है वह इसका अनुरूप नहीं है

हा राम हा राम हा जगतनाथ धीर ।

लैकाधिनाथस जानि तुम जो मु धीर ॥<sup>१</sup>

उदाहरण व अनुसार स्वरूप हुआ ग ग ल ग ग, ल ग ल न ल ग ल गल अतः ल गण का पाठ इस प्रकार होना चाहिए

१ हा च, पृ २७६

२ प्राकृतपिगलम् २१४४ पृ ४६५

३ छन्दोमाला पृ १४६

४ छन्दो २ अनिरुपनी ७

५ छन्दो माला, टीका, पृ १५६

६ छन्दो १० ४३६

रगन रगन रचि नगन पुनि रगन अ न सघ आनि ।

तब इसका स्वरूप यह होगा—त त भ ज गण तथा गुरु-लघु । लिपि की भूल हो सकती है ।

‘वसततिलका

यह अति प्रचलित छन्द है । कवच का निरूपण शास्त्रागुक्त है ।

‘मनोरमा

छन्दमाला के अनुसार चार सगण प्रौर दो लघु होन पर मनोरमा छन्द होता है । इसका निरूपण छन्दशास्त्र प्राकृतपिगल छन्दोमञ्जरी वृत्तरत्नाकर म नहीं है । छन्दकोस्तुभ म एक मनोरमा के निरूपण है किन्तु वह एक दशाक्षरी छन्द है । अतः कवच के इस मनोरमा का खोन कहीं अयन प्रथम है ।

अतिशायरी—पचदशाक्षर ‘मालती

छन्दमाला म इसका लक्षण इस रूप म छपा है ।

आदि लघु पुनि तीनि गुरु अत यगन द्व मित्त ।

होइ मालती छन्द यह पद्वह बन निमित्त ॥<sup>१</sup>

एक लघु ३ गुरु २ यगण । य कुल १० अक्षर ही होत हैं जबकि इस १५ अक्षर का कहा गया है । अतः पाठ की भून निश्चित है ।

उदाहरण के अनुसार स्वरूप यह है

अति लघु धनु रेखा नेक लांघी न जाकी ।

खल खर सरधारा क्यो सही तोइन ताकी ॥

सक अनुसार रूप हुआ—लल ललत गगग सगग लगग । यह मालिनी नामक छन्द का स्वरूप है

ननमयययुतेय मालिनी भोगिलीक ।<sup>१</sup>

अतः कवच की मालती संस्कृत ग्रंथों की मालिनी ही है । प्राकृतपगलम की मालती एक द्वात्रिंशदक्षरी चार जगण का छन्द है ।

‘सुप्रिय

चोह लघु प्रौर एक गुरु का छन्द सुप्रिय कहा गया है । पिगलमूत्र म इस चक्रवर्त कहा गया है—चक्रवर्त नो नो स अ ७ ११ । प्राकृतपगलम म इसका नाम गरभ ह (२।१९७) । वृत्तरत्नाकरादि म इस गणिकला कहा गया ह । परवर्ती

१ छ प ४४

२ ४६

३ छन्द स २ अ १०४

काल म इमक नाम बटवने का एक प्रमुख कारण यह रहा है कि चन्द्रावर्ता जसा चार गुरु अक्षरों का नाम वस्तु छन्द के स्वरूप बतान के साथ आ ही नहीं सकता था । परवर्ती लगणकार लक्षण और उच्चारण एक ही साथ दना चाहत थे । कणव न इमका नाम मुप्रिय कहीं अद्यत से लिया है ।

### ‘निशिपालिका’

कणव के अनुसार इसका स्वरूप है—म ज स न, र गण । यही रूप और नाम प्राकृतपगलम् म लिय गम हैं

एक घट तिग्नि सख हित्य परि तिगणा  
पच गुरु दुष्ण लहु अत कर रगणा ।  
एय सहि चदमुहि बीस लहु आणधा  
कववर सप्य भण छन्द जित्तिपासधा ॥<sup>१</sup>

छन्द गान्ध छन्दामजरी, वृत्तरत्नाकर म यह निरूपित नहीं है वृत्तरत्नाकर के टाकाकार द्वारा परिगिष्ट रूप म निरूपित है ।

### ‘चामर’

क्रम गुरु लघु चतन चान गुरु म अत होन वाल इस १५ अक्षर के छन्द का नाम कणव ने ‘चामर’ दिया है जो प्राकृतपगलम् के अनुरूप है । छन्दोमजरीकार ने इमका दूसरा प्रचलित नाम ‘तूणिर’ लिया है । कणव का लक्षण गान्ध्रीय है ।

### ‘अष्टि पौडशाक्षर—‘नराच’

लघु गुरु क्रम से चतन वाल गुरु म अत हान चान १६ अक्षर के इस छन्द का नाम कणव ने नराच दिया है । यह नाम भी प्राकृतपगलम् के अनुरूप है

लहु गुरु गिरत्तरा पमाणिआ अठकतरा ।  
पमाणि दूण विज्जए णराअ सो भणिज्जए ॥<sup>१</sup>

छन्दोमजरीकार ने वस्तुका नाम पचचामर दिया है जिस कणव ने नहीं अपनाया है ।

### ‘मनहरण’

५ भगण और एक गुरु का यह छन्द कणव के अनुसार ‘मनहरण’ है । छन्दोमजरीकार ने इस अक्षरगति कहा है प्राकृतपगलम्कार ने नीन । स्वरूप सवत्र ममान है । घन कणव ने यह नाम कहीं अद्यत से पाया है ।

### ‘मय्यरूपक’

गुरु-लघु क्रम से १६ अक्षर के इस छन्द का नाम भी प्राकृतपगलम् के अनु

१ प्रा वि० मू० २।१६०

२ प्रा वि० २।६८



‘तन्वी’

इसका स्वरूप है—म त ण म भ म न य । छन्दोमजरी म का निरूपण इसी प्रकार है ।

अतिवृत्ति पचविंशत्तर—‘विजया’

पूर्वोक्त माधवी क अत म एक लघु और बड़ा दन म यह बनता है ।

‘मदनमनाहर’

८ सगण एक गुरु क छन्द का नाम मदनमनोहर है ।

‘माननी’

८ सगण और एक लघु क छन्द का नाम माननी है । इसमें मदनमनोहर क अत्य गुरु क स्थान पर लघु होता है ।

उत्कृति छत्रीम अक्षर—‘हार’

८ सगण क एक आदि म और एक अत म लघु जोड़ देने पर कवय के अनुसार यह छन्द बनना है । वस मीरे रागाने पर इसका स्वरूप हुआ—८ सगण और दो लघु ।

दण्डक ३२ अक्षर—‘अनगशेखर’

कवय के अनुसार लघु गुरु क्रम से २ अक्षर का अनगणवर नामक दण्डक जातीय छन्द होता है । वस्तुतः अनगणवर में अक्षरों की संख्या नियत नहीं होती । २६ अक्षरों से अधिक का प्रत्येक छन्द दण्डक है । उन दण्डकों में जिसमें लघु-गुरु क क्रम से रचना है वही अनगणवर दण्डक होता है अक्षर संख्या कम अधिक हो सकती है । छन्दोमन्त्राकार न २२८ अक्षर के ही अनगणवर को दिया है

लघुगहनजिह्वया यदा निवेश्यते तदथ दण्डको भवत्यनगणवर ।<sup>१</sup>

प्रचिता का उल्लेख पिगलमूत्र में तो हुआ है किन्तु परवर्ती अर्थों जैसे छन्दो मजरी में वह निरूपित नहीं है । सम्भवतः यह भेद अप्रचलित हान लगा हो । केशव ने भी प्रचिता की अर्था नहीं की ।

इस प्रकार वाणिक वृत्ता का प्रथम खण्ड समाप्त होता है । इसमें बड़ छंदा का परिचय तो कवय ने कराया है किन्तु छन्दों का स्वरूप यद्यत् ही सरल चुना है । प्रायः किसी एक ही गण को लेकर ये छन्द चलते हैं । इनमें एकाध अक्षर घटा बड़ा दन से दूसरा छन्द बन जाता है । ये स्वरूप कवि और पाठक दोनों के लिए ही समझने में और प्रयोग करने में निस्सन्देह सरल हैं । यही इनकी उपयोगिता है । अथवा विविध पिगल

ग्रन्थो म पाए जान की दृष्टि स ये रूप प्राय अल्प परिचित हैं। इन्हें सरलता की दृष्टि म ही बगव न खोजा है और इस खोज बीन म निस्सन्देह उह श्रम भी करना पडा होगा पर उनकी बद्धता भी इसम स्पष्ट हाती है।

### मात्रिक वृत्त

छन्दमाना क दूसर छन्द म बगव ने मात्रिक वृत्ता का परिचय दिया \*। इस परिचय का मूलाधार ग्रन्थ प्रमुपत प्राकृतपगलम् है।

प्राकृतपगलम् म प्रथम परिच्छन्द म मात्रिक वृत्तों का परिचय है द्वितीय म वाणिक वना का। बगव न पहिल वाणिक लिए हैं पीछे माणिक। कारण स्पष्ट है प्राकृत म मात्रिक वृत्ता की प्रमुपता हा नही थी अनेक छन्द उसक अपन विकसित हुए। हिी क अनेक मात्रिक छन्दा क विकास की परम्परा का इतिहास प्राकृत म ही है। जिन मात्रिक वृत्ता को बशव न चुना है उनके अधिकांश बशव क समय तक हिी की पर्याप्त प्रयुक्त छन्द वन चुक थ। एन छन्दा का निरूपण विगल क छन्द शास्त्रम् म नही था अत छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर आदि म भी नही हुआ। प्राकृतपगलम् म इनका निरूपण मिलता है। वृत्तरत्नाकर क टीकाकार भट्ट नारायण न जिहान अपना समय १६०२ वि० दिया है अपनी टीका म इन प्राकृत छन्दा म से अनेक का परिचय परिशिष्ट रूप म पचम अध्याय म लिया है। उहीन सस्कृत का हिमायत लत हुए कहा है कि सस्कृत ग्रन्थों म गद्य गाथा कहकर विस्तार क डर स विगलानि आचार्यों न इनका निरूपण नहीं किया। ये छन्द प्राकृत म परिदृष्ट होने हैं और प्राकृतपगलम् छन्दशूडामणि आदि ग्रन्थो म इनका निरूपण है। भट्टनारायण न अनेक छन्दा को सस्कृत म निरूपित छन्दा क नामादि स मिनाते हुए इन प्राकृत छन्दा क प्राचीन सस्कृत रूप भी दिखाए है। उदाहरणस्वरूप मह दिखाया गया है कि सस्कृत की आर्या ही प्राकृत की गाथा है उन्गीति ही विगाथा है गीति ही उदगाथा है। पर यह सब छन्दो क विषय म नही दिखाया जा सका।

इम दृष्टि म बगव का महत्व यह है कि उहान प्राकृत छन्दा क निरूपक ग्रन्थो स भी सहायता सबर हिी की छन्दशास्त्र को अपूर्ण बनाने का प्रयास किया। यह कहन की आवश्यकता नहीं कि हिी क्षेत्र म उनका एस दिग्ग का प्रयास पहिला ही था।

बगव क छन्दा का श्रम कहा है जा प्राकृतविगल का है। वहीँ वहीँ प्राकृत विगल क छन्द छाड लिए गए हैं अत बगव द्वारा चुनाव ही किया गया है। छन्दोभग और उद्गाहीनता क विषय म जो दो दाह बगव न कह हैं व प्राकृतपगलम् क दा छन्दों क प्रमुपता हैं पर हैं बडे साफ और परिमार्जित अनुवाद।

१ एनवृत्ता जो सहत नहि तोत्त अधतिल अग।

अथनवृत्ता से जानिया सेसव छन्दोभग ॥'

जम न सहइ वणवृत्ता तिल वृत्ति अदय अदयेण।

तम न सहइ सवणवृत्ता अवदद छन्दोभगेण ॥'

\* छन्दमाना पृ ४४६

० प्रा पं० १।१०

२ भवुध बुधनि म पत्त हों निभुन्त लक्षणहीन ।  
भकुटो अग्र खरगग सिर कटतु तथापि अदीन ॥<sup>१</sup>  
अबह दहाप मउभे पत्र जो पडइ तरलणविहूण ।  
नूजगग लगग खगर्गाहि सीस खुलिअण जाणइ ॥<sup>२</sup>

कवित्व की दृष्टि से भुजाग्र त्रगन पडग स गिर कटन की बात की अपेक्षा भकुटयग्र खडग कहना अधिक कलापूर्ण है ।

यहाँ हम कविवर निरूपित छंदा का अन्तम अलग न रहे हैं । वन सभी छंदा के लक्षण प्राकृतपिणलम् तथा वृत्तरत्नाकर की भट्टनारायणीय टीका से मिलत हैं । अतः सबके निरूपण की आधारभूमि ग्रास्त्रीय है । तब जहाँ जो बात उल्लेखनीय है उन्हीं की चर्चा हम करनी है । उक्तों को ग्रामने सामन रख कर प्रस्तुत करने से हमारे निरूपण का विस्तार अनावश्यक बढ़गा ।

### गाथा'

गाथा सस्कृत आर्या छंद है । उसके प्रथम चरण में १२ त्रितीय में १८ तत्ताय में १२ और चतुर्थ में १५ मानाए होती हैं । इनकी २७ विधाओं का उल्लेख प्राकृतपगनम् और भट्टीय टीका में मिलता है । प्रथम विधा लक्ष्मी है ।

लक्ष्मी नामक भेद में पूर्वार्ध की तीस मात्राया में से २७ गुरु और ३ लघु होने पर गाथा का नाम लक्ष्मी होता है । यदि एक गुरु घट जाए तो मात्रा-महत्त्वा की पूर्ति के लिए स्वाभाविक तौर पर उसके स्थान पर दो लघु बने जाएंगे । तब २६ गुरु और पाँच लघु होंगे । उस गाथा का नाम ऋद्धि होगा । इसी प्रकार एक एक गुरु घटने और उसके स्थान पर दो लघु बने से अततागत्वा सबलघु गाथा बनगी और कुल भेद २७ होंगे ।

कविवर ने वन २७ नामों का उल्लेख किया है । कुछ नाम बदल हुए हैं कुछ के अर्थ बदल हुए हैं । अतः उनके सम्बन्ध में छन्दमाला का छपा पाठ प्रामाणिक नहीं माना जा सकता । सम्भव है लिपिकारों की भूल रही हो । हम यहाँ प्राकृतपगनम् और भट्टीय टीका में लिये नामों एवं उनके अर्थों के साथ कविवर के नामों को प्रस्तुत कर रहे हैं ।

क्रमसं०	कविवर	प्राकृतपगनम्	भट्टीयटीका	गुरु	लघु	योग	अक्षर
१	लक्ष्मी	लक्ष्मी	लक्ष्मी	२७	३	३०	
२	सिद्धि	ऋद्धि	ऋद्धि	२६	५	३१	
३	बुद्धि	बुद्धा	बुद्धि	२५	७	३२	
४	त्रिजा	त्रिजा	त्रिजा	२४	८	३२	
५	विद्या	वित्रा	विद्या	२५	११	३६	

१ छन्दमाला पृ. ४४६

२ प्रा. ६० १११

क्रमसं०	कण्व	प्राकृतपगलम	भट्टीयटीका	गुह	लघु	योग अक्षर
६	क्षमा	क्षमा	क्षमा	२२	१३	३५
७	दही	दहीघ्रा	देही	२१	१५	३६
८	गौरी	गोरी	गोरी	२०	१७	३७
९	घात्री	घाई । राई ।	रात्रि	१९	१९	३८
१०	घूणा	घुण्णा । पुण्णा	पूर्णा	१८	२१	३९
११	छाया	छाया	छाया	१७	२३	४०
१२	काति	काता	काति	१६	२५	४१
१३	महामाया	महामाई	महामाया	१५	२७	४२
१४	कीर्ति	किर्त्ती	कीर्ति	१४	२९	४३
१५	सिद्धा	सिद्धी	सिद्धा	१३	३१	४४
१६	मनोरमा	माणा	माना	१२	३	४५
१७	रामा	रामा	रामा	११	३४	४६
१८	गाहनी	गाहिणि	गाहिनी	१०	३७	४७
१९	विश्व	विगात्र	विश्व	९	३९	४८
२०	वामिता	वासीघ्रा	वामिता	८	४१	४९
२१	गोभा	सोहा	गोभा	७	४३	५०
२२	हरिणी	हरिणी	हरिणी	६	४५	५१
२३	चित्रा	चक्की	चना	५	४७	५२
२४	सारसि	सारना	सारसी	४	४९	५३
२५	कुररी	कुररी	कुररी	३	५१	५४
२६	मिह्री	मिन्नीम	मिह्री	२	५३	५५
२७	हमा	हसीघ्रा	हसी	१	५५	५६

एक प्रकार हम देखते हैं कि कण्व का परिचय गार्वाधारित है। जहां अक्षर है लिपिकार भी भ्रम हो सकती है।

इनमें १३ लघु तक की गायत्र्यां ब्राह्मणी जाति की १४ से २१ लघु तक की क्षत्रियां, २३ से २७ लघु तक की वैश्या तथा २८ लघु तक की शूद्रा जाती हैं।

जिस गायत्र्यां के प्रथम, तृतीय पंचम तथा सप्तम विषम स्थानों में जगण पठ जाना है उस 'गुणिकी' कहा जाता है। यह गायत्र्यां दुष्टा कही गयी है और रचयिता तथा नायक के लिए प्रतिष्ठ माना गया है। कण्व ने इन मायनाओं का भी उल्लेख किया है।

### विग्गाहा'

गायत्र्यां के पूर्वार्द्ध में कुल १० मात्राएं होती हैं उत्तरार्द्ध में २७। यदि एक श्लोक का अक्षर कर पूर्वार्द्ध में २७ और उत्तरार्द्ध में ३० मात्राएं रखी जाएं तो उस छन्द को कण्व और प्राकृतपगलम् के अनुसार विग्गाहा और भट्टनारायण के अनु-

सार विगाथ' कहत हैं। सस्वृत म इस 'उदगीति' कहा गया है।

इन गायाम्रीं के अनेक भेद हो जात हैं। इनका उल्लेख प्राकृतपगलम् म कुछ किया हुआ है। केशव न ग्रन्थ विस्तार क भय की बात कह कर उन्हें छोड़ दिया है।

### दोहा

दोहा का लक्षण है प्रथम पाद म सरह मात्रा दूसरे म ग्यारह। इसी प्रकार तीसरे म १३, चौथ म ११। कुल मिला कर ४८ मात्राएँ।

इसक भी गुरु लघु की घटा बनी म २३ भेद बताए गए हैं जिनका विवरण इस प्रकार है

क्रमसं०	केशव	प्राकृतपगलम्	भट्टीपटीका	गुरु	लघु	योग अक्षर
१	भ्रमर	भमरु	भ्रमर	२२	४	२६
२	भ्रामर	भामरु	भ्रामर	२१	६	२७
३	गरभ	सरहु	शरभ	२०	८	२८
४	श्यन	सधाण	श्येन	१६	१०	२६
५	मडक	मडूय	मडूक	१८	१२	३०
६	मकट	मवकड	मकट	१७	१४	३१
७	करभ	करहु	करभ	१६	१६	३२
८	मराल	नर	नर	१५	१८	३३
९	मनुष्य	मराल	मराल	१४	२०	४
१०	मत्तगजराज	मद्गलु	मदकल	१३	२२	३५
११	पयोहर	पयोहरु	पयोधर	१२	२४	३६
१२	बल	बलु	बल	११	२६	३७
१३	बानर	बाणर	बानर	१०	२८	३८
१४	त्रिकल	तिणिकुन	त्रिकल	९	०	३६
१५	मीन	कच्छ	कच्छप	८	३२	४०
१६	कच्छप	मच्छ	मस्य	७	३४	४१
१७	गादूल	सदून	गादून	६	३६	४२
१८	अहिवर	अहिवर	अहिवर	५	३८	४३
१९	विडान	वधप	वाध	४	४०	४४
२०	बाध	विराडउ	विडान	३	४२	४५
२१	उर	मुणह	वा	२	४४	४६
२२	सप	उदुर	उदुर	१	४६	४७
२३	याल	सप	सप		४८	४८

इस तालिका से स्पष्ट है कि केशव क नामो क श्रम म दो-तीन जगह गड़गड़ी है। मराल—नर मीन—कच्छ, विडाल—बाध, क श्रम भाग पीछे हैं। २१ वें श्रान

नामक भेद को केशव की सूची में हम नहीं पाते उसकी जगह अगले उद्गुर ने ल ली है। सप के साथ उसका पर्यायवाची एक 'यात और अनावश्यक रूप से आ गया है और मध्या पूरी हो गई है। केव के नाम छन्दोवद्ध हैं अत लिपिकार की मूल की सम्भावना कम है। त्रघु गुरु क्रम जो गिनाया है उसमें केवल सप का उल्लेख है, व्याल का नहीं। एक छन्द का पाठ द्रुष्टि भी है। अत लगता है, मूल पाठ किसी प्रकार लिपिकार की दृष्टि में गड़बड़ाया है और उसमें अपनी ओर से महा छन्दों को सुधारने का प्रयत्न किया है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो परिवर्तन का काम केशव द्वारा ही हुआ कहना होगा और उसे अकारण तथा अज्ञान्य मानना होगा।

तिस दोहा के प्रथम-तीसरे तथा द्वितीय चतुर्थ पादों में जगण आ जाता है वह दोहा दोषयुक्त माना जाता है। प्राकृतपिगलकार ने इस 'चाण्डाल गृहस्थिता दोहा' कहा है। केव ने इस विटारिका कहा है। इस नाम का उल्लेख भट्टनारायण ने भी नहीं किया।

### कवित्त

'कवित्त' का निरूपण प्राकृतपिगलम् में केव नाम से तथा भट्टनारायण ने काव्य नाम से किया है। उनके अनुसार आदि और अन्त में एक एक छकल और बीच में तीन चतुष्कल इस प्रकार कुल चौबीस मात्राएँ हानी चाहिए। तृतीय या तो जगण हा था चतुष्कल। केव ने इन श्रुतियों का उल्लेख न कर सीधा २४ मात्राओं के पाठ वाला लक्षण किया है। इस कवित्त के ४५ भेद होने हैं। जातिया दोष आदि बताए गए हैं। केव ने उन सबका उल्लेख नहीं किया।

### चतुष्पदी

प्राकृतपिगलकार और भट्टनारायण के अनुसार क्रम 'इसक नाम चतुष्पद्या और चतुष्पदी हैं। इसमें एक पाद में ७ चतुष्कल तथा अन्त में एक गुरु अत कुल मात्राएँ ३० हाती हैं। चार पादों में १२० मात्राएँ हूँ। किन्तु यह एक छन्द चतुष्पदी नहीं कहलाएगा। एम चार छन्द मिल कर चतुष्पदी कहलाएगा। अत कुल मात्राएँ इसमें ४८ हांगी। किन्तु केव ने इस विस्तार को समाप्त कर उक्त लक्षण के चार पाद वाले छन्द का ही चतुष्पदी कहा है।

सात चतुष्कल को घरन अत एक गुरु जानि ।

एते चारो घरन चौपया छन्द बखानि ॥'

एम तुलसी आदि में प्रचलित चौपाई में भिन्न समझना चाहिए।

### घत्ता

इस उक्त दोनों ग्रंथों में घत्ता कहा गया है घत्ता नहीं। पर हिन्दी में इसका

१ मा० पि १।८४

२ धम्मन्ता १० ४५१

३ धम्मन्ता १ ४५१

सार विगाथ' कहत हैं। सस्कृत म इस 'उदगीति' कहा गया है।

इन गायार्थों के अनेक भेद हो जात हैं। इनका उत्तरव प्राकृतपगलम् म कुठ किया हुआ है। कविवर ने ग्रन्थ विस्तार के भय की बात कह कर उन्हें छोड़ दिया है।

### दोहा

दोहा का लक्षण है प्रथम पाद म तेरह मात्रा दूमरे म ग्यारह। वही प्रकार तीसरे म १३, चौथे म ११। कुल मिला कर ४८ मात्राएँ।

इसके भी गुण लघु की घटा बनी स २३ भेद बताए गए हैं जिनका विवरण वम प्रकार है

क्रमसं०	कविवर	प्राकृतपगलम्	भट्टापटीका	गुण	लघु	याग अक्षर
१	भ्रमर	भमर	भ्रमर	२२	४	२६
२	भ्रामर	भामर	भ्रामर	२१	६	२७
३	गरभ	सरहु	गरभ	२०	८	२८
४	श्यन	सधाण	श्यन	१६	१०	२६
५	मडूक	मडूअ	मडूक	१८	१२	३०
६	मकट	मक्कड	मकट	१७	१४	३१
७	करभ	करहु	करभ	१६	१६	३२
८	मराल	नर	नर	१५	१८	३३
९	मनुष्य	मराल	मराल	१४	२०	४
१०	मत्तगजराज	मगगलु	मदकल	१३	२२	३५
११	पयोहर	पयोहर	पयोधर	१२	२४	३६
१२	बल	बलु	बल	११	२६	३७
१३	बानर	बाणर	बानर	१०	२८	३८
१४	निक्ल	तिणिकुन	निक्ल	९	०	९
१५	मीन	क्छछ	क्छप	८	३२	४०
१६	क्छप	मच्छ	मत्स्य	७	३४	४१
१७	गादूल	सङ्गून	गादूल	६	३६	४२
१८	अहिवर	अहिवर	अहिवर	५	३८	४३
१९	विडान	वध	याध	४	४०	४४
२०	वाघ	विराडड	विडान	३	४२	४५
२१	उदर	सुणह	वा	२	४४	४६
२२	सप	उदुर	उदुर	१	४६	४७
२३	व्याल	सप	सप	०	४८	४८

इम तालिका म स्पष्ट है कि कविवर का नामो का प्रथम म दो-तीन जगह गडबडी है। मराल—नर मीन—क्छ विडाल—वाघ, का प्रथम भाग पीछे हैं। २१ वें श्वान

नामक भेद को केवल की सूची में हम नहीं पाते, उसकी जगह अगले उद्गुर न ल गी है। मय के साथ उसका पर्यायवाची एक व्यास और अनावश्यक रूप से आ गया है और सत्या पूरी हो गई है। केवल के नाम छन्दोबद्ध हैं अतः लिपिकार की भूल की सम्भावना कम है। लघु गुरु श्रम जा गिनाया है उसमें केवल सप का उल्लेख है, व्यास का नहीं। एक छन्द का पाठ श्रुतित भी है। अतः लगता है, मूल पाठ किसी प्रकार लिपिकार की दृष्टि में गड़बड़ाया है और उसमें अपनी ओर से यहाँ छन्दों को सुधारने का प्रयास किया है। यदि ऐसा नहीं हुआ तो परिवर्तन का काम केवल द्वारा ही हुआ कहना होगा और उस प्रकारण तथा अगास्त्रीय मानना होगा।

जिस दाहा के प्रथम-तीसरे तथा द्वितीय चतुष्टय पादों में जगण आ जाता है वह दाहा दोषयुक्त माना जाता है। प्राकृतपिगलकार ने इसे 'चाण्डाल-गृहस्थिता दोहा' कहा है। केवल ने इस विचारिका कहा है 'इस नाम का उल्लेख भट्टनारायण ने भी नहीं किया।

### कवित्त

'कवित्त' का निरूपण प्राकृतपिगलम् में केवल नाम से तथा भट्टनारायण ने 'काव्य' नाम से किया है। उनके अनुसार आदि और अन्त में एक एक छन्द और बीच में तीन चतुष्कल इस प्रकार कुल चौबीस मात्राएँ होनी चाहिए। तृतीय या तो जगण हा था चतुर्धु। केवल ने इन बंदिगो का उल्लेख न कर सीधा २४ मात्राओं के पाद वाला लक्षण किया है। इस कवित्त के ४५ भेद होते हैं। जातियाँ दोष आदि बताए गए हैं। केवल ने उन सबका उल्लेख नहीं किया।

### चतुष्पदी'

प्राकृतपिगलकार और भट्टनारायण के अनुसार प्रथम इसका नाम चतुष्पद्या और चतुष्पदी हैं। इसके एक पाद में ७ चतुष्कल तथा अन्त में एक भुक्त अन्त कृत मात्राएँ १० होती हैं। चारों पादों में १२० मात्राएँ हैं। किन्तु यह एक छन्द 'चतुष्पदी' नहीं कहना चाहिए। ऐसे चार छन्द मिल कर चतुष्पदी कहा जाएगा। अन्त कृत मात्राएँ प्रथम ४८० हानी। किन्तु केवल ने इस विस्तार को समाप्त कर उक्त जगण के चार पादों वाले छन्द को ही चतुष्पदी कहा है।

सात चतुष्कल को चरन अन्त एक गुरु जानि।

एते चारों चरन श्लेषया छन्द वल्लानि ॥'

प्रथम तुलसी आदि में प्रचलित श्लेषाद् में भिन्न समझना चाहिए।

### घत्ता

इस उक्त दोना अन्त में घत्ता कहा गया है घत्ता नहीं। पर श्लेषाद् में ६

१ प्रा० पि० १।८६

२ छन्दोबद्धा ५० ४५१

३ छन्दो, ५ ४५१



लिए घत्ता ही प्रचलित है। मम ७ चतुष्कल और ३ लघु हान हैं। १० १८ १३ मात्राओं पर मम यति होती है। पर कविवर न यति नियम का उल्लंघन नहीं किया।

### नद

प्राकृतपगल और भट्टीय टीका में इस घत्तान् नाम दिया गया है। इसमें एक पङ्कल तीन चतुष्कल एक पञ्चम तथा एक चतुष्कल कुल १ मात्राएँ होती हैं। ११ ७ १३ पर यति होता है। कविवर न कविवर यतिया का उल्लंघन किया है। यतिया का योग से यह पता चल जाता है कि मम कुल १ मात्राएँ होती हैं पर गणों का विचार सामान्य नहीं आता। वस्तुतः कविवर उस आचामल नहीं समझते। मानिए उल्लंघन घत्ता का निरूपण में भी उनका उल्लंघन नहीं किया।

### उल्लाला

१५ और १३ का पादा से उल्लाला छंद बनता है। ममका उल्लाला उक्त दोनों प्रयोगों में भी वही रूप में है।

### पटपद

इस प्राकृतपगलम् में छप्पय कहा गया है। यह कविवर और उल्लाला का संयोग से बनता है। हिन्दी में यही छप्पय का रूप प्रचलित है।

इस छन्द का ७१ भेद गिनाए गए हैं। छप्पय में कविवर और उल्लाला की मिला कर कुल मात्राएँ १५२ होती हैं। मम अधिकतम गुरु वण कविवर में ४४ और उल्लाला में २६ कुल ७० होते हैं तथा दोना का षष्ठ १२ गण रह जाते हैं। इस स्वरूप को मजय नाम दिया गया है। इसमें आगे एक एक गुरु घटन और उमक स्थान पर दा-दा लघु घटन से भेद सत्यापनी है जो कुल मिला कर ७१ तक पहुँचती है। कविवर इन भेदों का नाम तथा उसमें लघु वर्णों की संख्या गिना दी है। गण गुरुओं की सत्यापन समझनी चाहिए। कविवर का नाम और रूप प्राकृतपगलम् और भट्टीय टीका का अनुरूप हैं। कही कही नाम का या मम का कुछ हर फर है। बीच में एक दापति का पाठ भी प्रकाशित छत्तमाना में श्रुति है। जहाँ आते हैं उस वाक्य में आमत समझना चाहिए। प्राकृतपगलम् में य नाम परिच्छेद १ छन्द १२१ १२३ में दिए गए हैं और नारायणी टीका में अध्याय ५ पृ० १५२ ३ पर।

३२ षष्ठ तक विप्र भागे ४० तक क्षत्रिय फिर ४८ तक वश्य और गण छप्पय गूढ कहलाते हैं।

प्राकृतपगलम् में छप्पय का दोषा की भाँति चर्चा है जो मम प्रकार है

पगु—अगुद्ध पत्वाता पग्रह मसुद्धउ पगु अयवा सून पादवाता

गज—गण हीन हीण खाडउ पमणिज्ज

बावता—मात्राधिक्यवाता मत्तगगन वाडलउ

काणा—कनाधा से द्यय मुण्णकन कण्ण मुणिगइ ।

वधिर—भल वणों स रहित भलवज्जिअ तह बहिर,  
 अथ—भलकारहीन अथ भलकार रहिअउ ।  
 मूक—छदकी उट्टवनिवा गूय बुतउ छद उट्टवण  
 दुबल—अथ गूय अत्य विण दुबल कहिअउ ।  
 डर—हठाक्षरो स युक्त डरउ हट्टवरहि, ही ।  
 काण—गुण रहित काणा गुण मउहि रहिअ ।

प्राकृतपगन क इन छापय दोषा म मानवी अगा का समाराप तो है किन्तु इनक पीछ कोई साग यवम्या नहीं है । बगव इमोलिए एस बदल कर अपन ढग स इम रूप म प्रस्तुत करन ३

मत्त अधिक वावरो, मत्त घटि पगु कहिअ ।  
 वधिर ति सबदविच्छद अथ अति अज्ञ मनिअ ।  
 अलकार द्विनु नगन अथ विनु मृतक कहाव ।  
 बालक गनि पुनरुक्ति, यथ अमहीनाहि गाव ।  
 अतिमित्त अमित्त जु पद अपर अथविरोध न आनियो ।  
 दोष सहित रसरहित सब छप्पय पे न बतानियो ॥'

वावला—मायाधिक्य पर । पगु—मात्रा गूनता पर । वधिर—गद विराध पर । नगन—भलकार हीन । मृतक—अथ हीन । बालक—पुनरुक्तिवाला । यथ—अमहीन । इमक अतिरिक्त मिश्रामिश्र गण अथ विरोध रस रहितवा आदि होन पर भा छप्पय दापयुक्त होता है ।

बगव क इन छापय दोषा म एक प्रकार म सागता क निर्वाह का प्रयत्न है जा प्राकृतपगनम् म नहीं है । इम दोष निरूपण क प्रसंग म देख चुक हैं कि बगव न प्राकृतपगलम् क बचित्त दोषों तथा छप्पय दोषा म प्रेरणा लकर ममस्त बाव्य-दापा क निरूपण का साग रूपवात्मक रूप म प्रस्तुत करन का प्रयास किया है । यहा भी उमो प्रकार का एक प्रयास है । वहा और यहा क दाप निरूपण की दृष्टि म साम्य की एक गहरी छाया है । य छायाए छमात्रा क बगव कृत हान की बात का असन्दिग्ध सक्त करनी है ।

### पद्यटिका

इमका निरूपण प्राकृतपगनम् म पञ्चटिका और भट्टीय टीका म भी पञ्चटिका नाम स ही है । बघव का निरूपण तन्मुरूप ही है ।

### अग्लिल

इमका निरूपण भी इहों अथा क अनुरूप है । प्राकृतपगलम् म ११२५ पर अग्लिल और अग्लिलह नाम म तथा भट्टीय टीका म अग्लिलह नाम स इमका निरूपण मिलता है ।

### ‘पादाकुलिक

प्राकृतपगलम् म इसका निरूपण १।१३० पर हुआ है।

### राजसैनी नवपदी

ऊपर के पदपदी छंदो म ५ पाद होत हैं। प्राकृतपगलम् म कनिपय ६ पादा क छंदा का भी उल्लेख हुआ है। भट्टनारायण न भी उनकी चर्चा नवपदी क रूप म की है। इसके ७ भेद निम्न बताए गए हैं

कनभी नन्दा मोहिनी चारसना भद्रा राजसन तालकिती।

कंगव ने इनम स एक राजसनी नवपदी का परिचय करायाह। प्राकृतपगलम् म इसका एक नाम और दिया हुआ है—रड्डा या रडा<sup>१</sup>। इसन पादा म मात्रा-सख्या इस प्रकार है

१-१५ २-१२ ३-१५ ४-११ ५-१५ ६ ७ ८ ९—दोहा चार चरण। कुल मात्राएँ—११६।

### पद्मावती

पद्मावती का निरूपण प्राकृतपगलम् म १।१४४ पर है। भट्टनारायण न भी इसका उल्लेख किया है। कंगव का निरूपण इनक अनुरूप है।

### सोरठा

प्राकृतपगलम् म इसका १।१७१ पर सोरठ्ठा और भट्टीय टीका म सीराष्टा क नाम स अध्याय ५ पृ० १५६ पर निरूपण हुआ है। यह दाह का उलटा रूप है। कंगव का निरूपण उक्त ग्रंथों के अनुरूप है।

### कण्डलिया

प्रा० प म १।१४७ पर तथा भट्टीय टीका म अ० ५ पृ १५७ पर इसका निरूपण है। कंगव का निरूपण तदनु रूप है।

### शप छंद

शप छंद हैं—चंडामणि हाकिंका मधुभार घाभीर हरिगीत त्रिभगी हीर मन्मनोहर और मरहटा। इन सबका आधार भी प्राकृतपगलम् ही है प्रायः इनम म अधिकार का निरूपण भट्टनारायण न भी किया है। कंगव क निरूपण म परिषयात्मक दृष्टि रही है और व इन छंदो क विषय म भदा जातियो आदि क भ्रमल म नहीं पड। प्रायः इन बातों का उल्लेख इन छंदो क विषय में उक्त आधार ग्रंथों में भी नहीं है। हा गणा आदि की विविधता की चर्चा जब कभी अवश्य है।

कगव न प्राग् पूरे पाठ की मात्रा सह्या दकर परिचय को सरल बनान का ही प्रयास किया है। व कुछ ही छ ों क विषय में महा भेद प्रस्ताव में गए हैं।

इस प्रकार कगव क मात्रिक वर्णों के लिए पूणत, श्रीर वाणिक वृत्तों के लिए अगत प्राकतपगतम् ही मुख्य आधार रहा है।

### गण विचार

कगव ने कविप्रिया क तीसर प्रभाव म अगण नामक दोष का निरूपण करत हुए गण मन्त्रधी कतिपय बातों का उल्लेख किया है।

छद दोष—सामायत छदनाप क कारण का व को पगु कहा गया है।

छद विरोधो पगु गनि ।<sup>१</sup>

हम छमाला म निरूपित छप्पय क प्रसंग म देख चुक हैं कि वहा कगव न मात्रा 'यूनता होन पर छप्पय को पगु कहा है

मत्त घटि पगु गनिउज्ज ।<sup>२</sup>

वह कवल छप्पय को दृष्टि स है। कविप्रिया म समूचे काय को ध्यान म रलकर रूपक दृष्टि स छद दोष युक्त काय का पगु नाम दिया गया है। छन्दोप क लिए उहान छन्दोभग गण का प्रयोग करते हुए कहा है कि दश श्रुति क लोग हलका मा भी छन्दोभग नहीं सह सकत

तौलत मुख्य रहे न ज्यो कनक तुलित तिल आधु।

र्यो ही छन्दोभग को सहि न सकत श्रुति साधु ॥<sup>३</sup>

एसी ही बात यतिभग दोष की सकर छदमाला म कही गयी है जिसका आधार प्राकतपगतम् है हम यह देख चुक हैं।

कविप्रिया म छद दाय पगु क प्रसंग म एक अगण नामक दोष की चर्चा की गई है और उसी दोष को बचान क लिए समस्त गण मन्त्रधी विचार स परिचित कराया गया है। गण विचार' उसी प्रसंग म आता है।

गण विचार म कगव न निम्न बातों की चर्चा की है

### गण-सह्या और स्वरूप

म न भ य ज र स त । इनक स्वरूप ।<sup>४</sup>

### गुम और अगुम वग

गुम गण—म न, भ य । अगुम—ज, र त स ।<sup>५</sup>

१ क प्रि ३।७

२ छदनाप ७।३३

३ क प्रि० ३।१०

४ बत्ती ३।१६-२०

५ बत्ती ३।१०-१८

## गण देवता

म—मही न—नाग य—जल भ—चंद्र ज—सूय र—अग्नि म—वात  
त—प्राका ।<sup>१</sup>

## गण जाति

मित्र—म, न । दास—भ य । उदासीन—ज त । गन्तु—र स ।

## गण फलाफल

म—मही सुख । य—नीर धान । र—अग्नि त्रगदाह ।  
ज—सूय सुख गोपण । त—प्राकाग अफल । स—वात दग हानि ।  
भ—चंद्र मगन । न—नाग बुद्धिप्रकाशन ।<sup>१</sup>

## त्रिगुण विचार

मित्र मित्र समृद्धि वधन । मित्र दास युद्ध प्राप्त वा अभाव ।  
मित्र उदास गाय दाप उदय । मित्र गन्तु बधु नाग ।  
दास मित्र काय मिद्धि । दास दास सबवगता । दास उताम घननाग ।  
दास गत्र गार्क । दास मित्र अपवाय ।  
उदास मित्र तुच्छ फल । उताम दास प्रभुता ।  
उदास उदास न फल न अफल । उताम गन्तु सुखहानि ।  
गन्तु मित्र अफल । गत्र दास वनिता नाग ।  
गत्र उदास कुलनाग । गत्र गन्तु नायक नाग ।

## गद्य लघु निरूपण

गुर-सयोगादि विदु युत दीध मात्रिक ।  
उत्तु भवतिष्ठ । दीध भी मुखमुय के माथ लघु रूप म पत्रन पर लघु ।  
मयोग क आदि का भी कभी कभी उच्चारण वग लघु ।<sup>१</sup>

एन समस्त विषया का निरूपण स्त्री रूप म पिगत्रप्रथा म पाया जाता है ।  
प्राकृतपगलम् म भी यह विवक्षत स्त्री रूप म है । अतः कण्ठ न एन शास्त्रीय भाता  
की प्रस्तुत किया है । सम्भवा प्राकृतपगलम् का ही आधार बनाया गया है । प्राकृत  
पगलम् म जिन वाता का अन्तर पन्ना है हम बबल उर्ही का निरूपण और उल्लख  
महा कग्ना चाहत है । अथ मत्र वार्ते शास्त्रानुवृत्त एव बहु निरूपित समभन्ती चाहिए ।

१ क प्रि ३१००-२३

२ वी ३। ४

३ दन्ती ३।०५

४ बट्ट २६ ०० ८ प्र ३

५ बट्टी ३।३०-३३ । ५-३६

इन वाता का निरूपण प्राकृतपगनम् व प्रथम परिच्छेद प्राग्भूम म तथा वृत्तरत्नाकर की भट्टनारायणी टीका म प्रथम अध्याय म देखा जा सकता है ।

गण देवता

कंगव न गण का देवता बाल लिखा है । प्राकृतपगलम् में इस प्रकार निरूपण है

पुहवी जल सिहि पवण गप्रण सूरु अ चदमा नाओ ।

गण जट्ट इट्ट देओ जहसख विगते कहिआ ॥<sup>१</sup>

महा बाल नहीं पवन का उल्लस है । किंतु इसका काल पाठा तर भी मिनता है ।<sup>१</sup>

भट्टनारायण न किसी अनिर्दिष्ट व्यक्ति व आघार पर गण का देवता नाम लिखा है । प्राकृतपगनम् म नाग ही है । कंगव न भी नाग ही लिया है । गण वातें सामान्य हैं ।

निष्कष

कंगव की छदमाला म निरूपित छदा एव तत्सम्बन्धी ग्रन्थ निरूपणा व इस अध्यायन व अनंतर हम निष्कष रूप म कुछ बातें कह सकते हैं

१ कंगव का निरूपण शास्त्रीय ग्रन्थों पर आधारित है । इनम प्राकृतपगनम् और उनकी परम्परा व ग्रन्थों का योगदान प्रमुख ह ।

२ कंगव व छद निरूपण का ध्यत्य त वापक ह । उद्दान प्राय प्रचलित तथा अल्प परिचित अनेक प्रकार व वाणिक मात्रिक छदा को लिया ह, और अधि काग व उदाहरण प्रस्तुत किए हैं ।

३ कंगव न परिचय व लिए सरल छदों का ही प्राय चुनाव ह । बड़ मात्रिक वृत्तों म तो यह बात ध्यत्यत स्पष्ट ह । किसी एक ही गण द्वारा कुछ घटा बना कर उनसे बाल छदा का उद्दान प्राय लिया ह । इनम कवियों और पाठका को मरतता होगी । यही दृष्टि सामने रही ह । उस चुनाव म अनेक अपरिचित छदा भी आय हैं, यद्यपि उनम स अनेक का कंगव ने स्वयं रामचन्द्रिका म प्रयोग किया है ।

४ वाणिक वृत्ता म संस्कृत परम्परा व ग्रन्थों स अनेकत्र नाम गही मिलत । एम स्थितों पर नाम प्राय प्राकृत परम्परा स लिए गए हैं । किंतु ऐम भी अनेक छदा हैं जिनम प्राकृतपगनम् छानि व नामों का भी अनुसरण नहीं ह । ऐसे स्थितों मे कंगव न अल्पपरिचित नामों को लिया ह । एमम अपन को प्रभावगात्री बनाना ही उनका उद्देश्य हो सकता ह ।

५ कहा कही उदाणों म या सगणानुरूप उदाहरणों म प्रकाशित छदमाला व अनुसृत कुछ गठवटी दिगाइ देती ह । ऐसे स्थितों का विरूपण करन पर लिये

१ प्रा० पं० १।३४

२ दण्डि बही पृ० ४

कारो की भूल की महज सम्भावना स्पष्ट होती है। यही वान कतिपय मात्रिक छंदा का भेदा का विषय में कही जा सकती है। कवल छप्पय का भेदा में हर-केर विधिकार का किया हुआ प्रतीत नहीं होता। पर वहा का और भी पाठ गढबड है। हमारी सम्भावना यह है कि किसी परवर्ती व्यक्ति ने लिपि आदि करत हुए पाठ का अनूण पाकर उस अपनी ओर से सुधारन का प्रयास किया है। अथवा वह विषय एक गास्त्रीय पण्डित के लिए त्तना स्पष्ट है कि उसमें अंतर दना कठिन है।

६ कविवर के दृष्टिकोण में कही ता शिक्षा का उद्देश्य स्पष्ट हाता है, तब व सरलता की ओर जाते दिखाई पडत है। कभी व अपनी बहुता प्रदान करना चाहत है और अनावश्यक भेद विस्तार का उल्लेख भी कर दत है। कभी म मोनिकता हीन धन में नवीन या अल्प परिचित नामा आदि को दकर मोनिकता की प्रभवनगीलता प्राप्त करना चाहत है।

७ मोनिकता की भनक कभी अत्यंत सामान्य विषया में दिखाई दे जाती है। जस छप्पय के दोषा को प्राकृतपगलम् की अपक्षा अधिक साग रूप में प्रस्तुत किया गया है। यो कवि के नात उनके निरूपण में कही कही प्राकृतपगलम् से अच्छी सफाई भी मिल जाती है।

८ छंदगास्त्र के इस ग्रंथ का हिंदी वाच्यगास्त्र के क्षेत्र में कविवर द्वारा ही प्रथमावतार हुआ था उस तथ्य को ध्यान में रखकर हम छंदमाला का योगदान महत्वपूर्ण प्रतीत हाता है। व ससृजत ग्रंथ में प्राय निरूपित वार्णिक वृत्ता तक ही नहीं रहे प्राकृत ग्रंथ में निरूपित उन अनक मात्रिक वृत्ता का भी उहाने निरूपण किया जो प्रयोग द्वारा हिंदी के अपने छंद वन चुक थ। उस परिषय को हिंदी में लाना कितना आवश्यक रहा होगा यह उस युग का भाषा कवि ही समझ सकता है।

९ सब भिनकर छन्दमाता का निरूपण शास्त्रीय भूमि पर आधारित निरादृष्टि की सफरना के सहित तथा कविवर की अपनी प्रवृत्तिया की छाप लिए हुए है।

## सप्तम प्रकाश अन्य काव्याग

पिछले प्रकाश में हमने कशव के आचायत्व के सन्दर्भ में उनका ग्रन्थों में निरूपित प्रमुख काव्यागों का अध्ययन किया है। यह विषय कशव ने भी विस्तार के साथ लिखा है। समीक्षात्मक अध्ययन के लिए भी ये विस्तार की अपेक्षा रखते थे। साथ ही काव्यशास्त्र में उनकी अपनी विनिष्ट स्थिति भी है। इन बातों को ध्यान में रखकर उनका अध्ययन हमने स्वतंत्र प्रकाश में अलग अलग रखकर किया है। अब हम यहाँ इस प्रकाश में ऐसे विषयों को लेना चाहते हैं जिनको या तो कशव ने अपना निरूपण में विस्तार नहीं दिया या फिर महत्त्व की दृष्टि से काव्यागों में जिनका स्थान उतना ऊँचा नहीं है। प्रथम श्रेणी के तीन विषय हमारे सामने हैं—दोष निरूपण, घृति निरूपण और चित्रकाव्य निरूपण। उन्हें कशव ने अधिक विस्तार के साथ निरूपित नहीं किया। चित्रकाव्य को इनमें अपनावृत्त फिर भी अधिक अवकाश मिला है। द्वितीय प्रकार का विषय है कविनिष्ठा। कशव के निरूपण में इस विषय से सम्बद्ध बातों का विस्तार एवं अवकाश तो बहुत है पर ससृष्ट काव्यागों के भीतर उसका स्थान उतना महत्त्व का नहीं है जितना पीछे के प्रकाशों में निरूपित काव्यागों का है। अस्तुतः कविनिष्ठा काव्यागों का मूल काव्याग रहा भी नहीं है। कविनिष्ठा से सम्बद्ध विषय जिनका कशव ने निरूपण किया है प्रमुख रूप से हैं—कवि-समय, नगनिग-वर्णन, सत्या नियम, ऋतुवर्णन (वारहमासा) तथा सामान्यालंकार के अंतर्गत निरूपित काव्य के वर्णविषय। इन सब बातों को ही हम इस प्रकाश में अपने अध्ययन का विषय बनाना चाहते हैं। हमारे अध्ययन का प्रथम इस प्रकार रहेगा

क—दोष निरूपण

ख—घृति निरूपण

ग—चित्रकाव्य निरूपण

घ—कविनिष्ठा

१ कवि-समय २ नगनिग ३ सत्यानियम ४ वारहमासा ५ सामान्यालंकार—काव्य के वर्णविषय।

### दोष निरूपण

ससृष्ट काव्यागों में दोष निरूपण किसी न किसी रूप में भारत में है।



चला आ रहा है। हा उसका प्रति दृष्टिमा म अंतर और विकास होता रहा है। दोष का स्वरूप उसका काय गद अथ रस आदि म सम्बन्ध नद उपभेद आदि बातें विविध प्राचार्यों न विविध रूपा म निरूपित की हैं। यहा उन सबका विस्तृत परिचय इसलिए अपेक्षित नहीं है कि कविव्यवस्था न इस विषय म किसी विनिष्ट प्राचाय का अनुसरण नहीं किया है। दोष निरूपण के विषय म उन्होंने अपना निजी दृष्टिकोण प्रस्तुत किया है। यहा कविव्यवस्था के दृष्टिकोण की निजता और उसकी प्रेरणा को समझने क लिए ही प्राचीन दृष्टिकोणों की चर्चा हम अपेक्षित है।

भरत ने १६वें अध्याय म दश काव्यदोषों का निरूपण किया है। य गद और अथ दोषों स सम्बद्ध है रस स नहीं।<sup>१</sup> भामह ने २५ तथा दण्डी ने १० दोषों का निरूपण किया है। इनके दोष भी युग चेतना के अनुरूप गद और अथ के विविध रूपों स सम्बद्ध है कुछ छोटा स भी। वामन ने दोषों को पद पदाथ और वाक्य वाक्याथ स सम्बद्ध करके देखा है। श्लोक की भी यही दृष्टि रही।

आनन्दवदन न सबसे प्रथम दोषों को रस स सम्बद्ध किया। गद और अथ के दोष भी रस को प्रभावित करने के कारण 'दोष' हैं। परवर्ती ध्वनिवाद म यही मान्यता सुप्रतिष्ठित हुई जिसकी पूर्ण पवस्था हम मम्मट म मिलती है।<sup>२</sup> विद्वान्नाथ न भा उसीका अनुगमन किया।

आनन्दवदानी प्राचाय भामह से लेकर ही कतिपय अलंकारदोषों की चर्चा भी करत पाए जात हैं। कतिपय प्राचार्यों न दोषों को गुणाभाव के रूपा म देखत हुए उनका सम्बन्ध गुणों स जोड़ा है। किन्तु इनके विषय म यह ध्यान रखना है कि ये प्राचाय गुणों का सम्बन्ध भी रसा स न जोड़कर गद तथा अथ से जोड़त वाल थे। इन दोषों का गुणाभाव या गुण विषय के रूप म मानना भी गद अथ से ही सम्बद्ध करना या रस स नहीं।

अन्य प्रकार प्राचीन प्राचाय ध्वनिपूर्व युग म दोषों को गद अथ के विविध स्तरों स सम्बद्ध करत हैं आनन्दवदन परम्परा के प्राचाय रस स।

वाक्य को पुरुष रूप म कल्पित करके उसके विविध अंशों को मानवीय अंगों के रूपों म देखने का काम अनेक प्राचाय कर रहे थे। राजनेखर ने ऐसी ही कल्पना की है। मम्मटादि ध्वनिवादी प्राचाय भी गद अथ को काव्यगरीर रस को आत्मा, गुणों का आत्म-गुण अलंकारों का कटक-कुत्तादि और दोषों को काणत्व-सजत्व के रूप म देखत हैं।

कविव्यवस्था के मान्य म सब निरूपण विद्यमान थे। दोषों की एक नम्बो सम्ख्या

१ गूणप्रधानात्प्रथमं विनाशमकथमभिलुताथम्।

दण्डीनेन विम विद्विष शब्देषुन वै रस काव्यगरीरः ॥

—भा सा १६।८८

२ सुन्दर-श्लोक रसरत्नसुन्दर-तन्त्रप्रयाद्वाक्ये।

उन्मत्त-श्लोक म्बु शब्दात्प्रथमं तद्वपि स ॥

—भा प्र० ४०७

स्वीकृत थी। मम्मट ने अलंकार दोषों को निकालकर भी लगभग ६० दोषों को मायता दी थी। सम्भवतः कविवर ने हिन्दी के सामान्य भाषा कवि के लिए इस सब ज्ञान को अनावश्यक और बुरा नमना और काव्य गरीबी की कल्पना के साथ दोषों की योजना करत हुए उनका परिचय नये ढंग से दिया।

### कविवर का दोष निरूपण

कविवर ने दो स्थानों पर दोष निरूपण किया है, एक तो रसिकप्रिया के अंतिम प्रभाव में अन्तरस कहकर रसदोषों का दूसरे कविप्रिया के तृतीय प्रभाव में काव्यदोषों का। रसिकप्रिया का दोष निरूपण केवल रस से सम्बद्ध होने के कारण काव्यदोषों का ही एक अंग है। कविप्रिया के दोष निरूपण के अंत में इसीलिए कविवर ने रसिकप्रिया में विवेचित उपयुक्त रस-दोषों की स्मृति भी लिखी है।

केसव नीरस, विरस अथ दुस्सधान विधातु।

पात्र जु दुष्टादिकन को रसिकप्रिया तें जानु ॥<sup>१</sup>

कविप्रिया में काव्य-दोषों का निरूपण दो वर्गों में बाँटा हुआ है सामान्य और विशेष। पहले कविवर ने सामान्य रूप से काव्यदोषों के गरीबों के रूपों को ध्यान में रखकर दोषों के ५ वर्गों में बाँट दिए हैं।

१—अर्थ का पथ के विरुद्ध वर्णन वाला काव्य अर्थ होता है।

२—अर्थ अर्थ के विरुद्ध अर्थ के वाचक शब्दों के प्रयोग पर अर्थ दोष होता है।

३—पद्य छन्द काव्य के नतन के चरण कहे जाते हैं। छन्ददोष होने पर काव्य पद्य हो जाता है।

४—नग्न भूषण हीन काव्य नग्न होता है। कविवर का भूषण या अलंकार का दृष्टिकोण अत्यन्त व्यापक है यह हम जानते हैं। उसमें वर्णन विषयों का समस्त वात सामान्य तथा अलंकारक विविध अलंकार दोनों ही आते हैं। इन विविधालंकारों में ही समस्त रस रसगत अलंकार के रूप में सम्मिलित हैं। अतः इस नग्न वर्णन के दोषों के दो उपवर्ग हैं अलंकारहीन तथा रसहीन।

५—मत्त अर्थ काव्य काव्य 'मत्तक' कहलाता है।

इन सामान्य दोषों के अन्तर में नमूने के तौर पर कुछ दोष परिचित कराए गए हैं जिन्हें हम विशेष दोष कह सकते हैं। ये सामान्य और विशेष के अन्तर का अन्तर कविवर ने ध्यान नहीं किया किन्तु उनकी निरूपण पद्धति से यही निष्कर्ष निकलता है। विशेष रूप में परिचित कराए गए दोष निम्न १२ हैं—

१—अंगण

२—हीनरस

३—यति भग

४—अप्य

५—अपाथ

६—हीनक्रम

- ७—कणकट्टु                      ६—पुनरक्ति                      ६—देग विरोध  
 १०—बाल विरोध                      ११—लोक-याय विरोध                      १२—आगम विरोध  
 इनके अतिरिक्त रसिकप्रिया म निरूपित ५ रस-दोषों की याद दिलाई गई

है —

- १—प्रत्यनीक                      २—नीरस                      ३—विरम  
 ४—दुस्सघान                      ५—पात्रादुष्ट

कण्व व इन विगिष्ट दोषों को उपयुक्त पाच वर्गों में इस प्रकार रखा जा सकता है

- १—ज घ      पथ विरोधी दोष  
                   देग विरोध बाल विरोध लोक-याय विरोध आगम विरोध  
 २—घघिर      गद विरोधी दोष  
                   हीन भ्रम कणकट्टु गा गी पुनरक्ति  
 ३—पगु      छद विरोधी दोष  
                   अगण (यतिभग)  
 ४—नमन      अन्कार तथा रस विरोधी दोष—  
                   क—हीनान्कार  
                   ख—हीनरस      प्रत्यनीक नीरस, विरम दुस्सघान  
 ५—मत्तय      अथ दोष  
                   यथ अपाय आर्धी पुनरक्ति

कण्व ने यह सम्बन्ध दिखाया नहीं है किन्तु उद्घाटन का कार्य कण्वारी रूपक को लेकर दोषों के वर्गों का नामकरण किया है उसमें उनका बताए दोष वही प्रकार रखा जा सकता है।

वस्तुतः कण्व ने दोषों का परिचय बड़े ही स्थूल और सामान्य ढंग का प्रस्तुत किया है। जिन दोषों को हम विगिष्ट दोष कह रहे हैं उनमें बड़े ही सामान्य बौद्धिक दोषों को परिचित कराया गया है। जिन्हें भी परिचित कराया गया है वे सब के साथ नियत रूप में कण्व के वर्गों में नहीं आते। उदाहरणस्वरूप पुनरक्ति को अन्कार रूप में रखा जाए अथदोष में रखा जाए या गच्छोप में। इन सबमें अथदोष का वर्ग उनमें लिए अधिक ठीक है। किन्तु इन वर्गों का नाम कण्व ने मृत्क दिया है। यह नाम सदा मना अथगुण काय के लिए तो ठीक हो सकता है किन्तु हलन् अथदोषों का हीन अथ जमा वर्ग होना चाहिए था। अतः इन दोषों का परिचय सामान्य दृष्टि में ही समझना चाहिए।

कण्व के इन दोष निरूपण पर हम यहाँ कुछ समीक्षात्मक विचार कर सकते हैं। कण्व ने काव्याशास्त्र का जो अर्थ घघिर पगु नमन और मृत्क के रूप में आन्तरिक वर्गीकरण किया है उस सामान्यतः मिथ्या रूप में ही लिया जा सकता है नियम के रूप में नहीं। इन वर्गों को याय या अघोषिय-सम्बन्धी दोष गच्छोप गच्छोप अन्कार-दोष जिनमें रमण्य भी सम्मिलित है तथा अथदोषों के रूप में

ही श्रमण लना चाहिए। गन्दोपा म पद, पत्ता वाक्य वाक्याण के सभी दोष लन हाण, अथदोषों म सभी प्रकार क अथदोष।

कगव का यह आलंकारिक वर्गीकरण किसी प्राचीन आचार्य म अपने इस रूप म नहीं मिलता। साथ ही परवर्ती हिन्दी आचार्यों म भी अनुगत नहीं हुआ। या देव क दोष निरूपण पर कगव का कुछ प्रभाव दखा जा सकता है मुरति मिथ, श्रीपति और जगतसिंह क प्रथा म कुछ नाम कगवी दोषा क पाए जा सकत हैं किन्तु सामान्यत इम विषय म आचार्यत्व सङ्घटत काव्यास्त्र म निरूपित दोषा की ही स्वीकार करके चला है।

कगव क इस दोष वर्गीकरण क आधार पर उनक कतिपय दृष्टिकोणों पर भी प्रकाश पडता है। एक तो यह कि कगव अलंकार या रम को काव्य की आत्मा न मानकर अथ को काव्य की आत्मा मानत हैं, क्योंकि उन्होंने अथगुण काव्य का ही मूलक कहा है रसगुण या अलंकारगुण का नहीं। दूसरे यह कि नग्न दोष क प्रसंग म भी उन्होंने जो रसा को अलंकारा क भीतर ही रसा है वह उनक इस दृष्टिकोण के ही मेल म है कि रस भी रसवद अलंकार ही है। यह बात उनक दृष्टिकोण स भले ही ठीक हो किन्तु उनक समय तक रसा का जो महत्त्व मिल चुका था, उसके अनुरूप नहीं कही जा सकती। काव्यरसा को रसवद अलंकार कहने का एक कारण यह समझ म आ सकता है कि कगव भक्ति-शृंगार की ही कवन स्वतंत्र 'रसराराज' का स्थान द चुक थ अत उमी परम्परा स प्रभावित होकर उन्होंने काव्यरसा को रसवद अलंकार कहा और यह बात प्राचीन आचार्यों म मेल भी ला गई। किन्तु उम स्वतंत्र भक्ति रम क निरूपित दोषों का भी हीनरस स सम्बद्ध करके नग्न की कोटि म कम रखा जा सकता है। यहा प्रत्यनीक आदि रमदोष केवन भक्ति शृंगार क ही नहीं रहे जात उनका सम्बंध रस सामान्य स मानना हागा। तभी हीनरस' वग स सम्बद्ध कर उन्हें नग्न काव्य कहा जा सकता। अत यह सब मौलिक है पर अधिक युक्त नहीं।

कगव क विगिष्ट दोषा क स्वरूप और नाम भा प्राय उनकी अपनी और स रूप हुए हैं। अथदोष म वि उपमग विपरीतता या विरुद्धता का द्योतक है। श्रमहीन भग्न प्रथम का पयाय है। पुनरुक्त को गन्गन और अथगत दोनों आर निमाना चाहा है। अत यही तथ्य सामन आता है कि कगव ने दोषा का निरूपण आस्त्राय गम्भीरता स नही किया, सामान्यत भाषा कविया की शिक्षा की दृष्टि स ही किया है। इन दोषों क रूप म उन्होंने छंद क गण और यनिया क प्रति सावधान किया है देग कान शास्त्र और ग्राहित्य की परम्पराया क प्रति सावधान किया है तथा रम और अथ क प्रति जागरूक किया है। यम, यमस अधिक इनका उपयोग नहीं है।

किर भी कगव की मौलिकता इस क्षत्र म इन यान म स्वाकार करनी पडती है कि उन्होंने ही सवप्रथम दोषों का भी ध्यापक भूमि पर काव्य-पुरष क आलंकारिक रूपक स जोडा है। यदि प्राचीन आचार्यों क द्वारा निरूपित समस्त दोषा को क अपने

नय वर्गीकरण भ्रष्ट भी कर देत तो उनकी मौलिकता मरत और अनुगम्य हा जाती। गायत्र ऐसा करना उनके लिए कुछ कठिन न था पर व अपने सामान्य गीता के ग्रन्थ में इस ग्रन्थ समभते थे। उनके मामूली दाप चर्चा करते समय रायप्रवीण बड़ी हुई थी उस ध्वारी को भ्रष्ट स वचाना उद्देश्य था गायत्रीय भ्रमल में फसाना नहीं। रायप्रवीण को वे दोष-परिचय करा रह थे, यह बात निम्न गायत्रीय स्पष्ट है

अथ बधिर अरुपणु तजि नग्न मृतक मतिमुद्ध ।  
अथ विरोधी पय को बधिर ति सबदविच्छेद ॥  
छन्दधिराधी पणु गनि नग्न जु भूषणहीन ।  
मृतक कहाव अय विनु केणव सुनहु प्रवीण ॥<sup>१</sup>

इन गायत्रीय प्रवीण को सम्बोधन करती हुई तजि तथा गनि आत्मावाचक त्रिषाण भी ध्यान देने योग्य हैं। अधिकारी की दृष्टि से ही विषय का प्रतिपादन भा सीमित हो जाता करता है।

केणव के निरूपण की पद्धति को ठीक-ठीक न समझ सकने के कारण प० वृष्णगकर गुप्तल का भगीरथ मिश्र प्रो वृष्णचन्द्र वर्मा आदि इनके विद्वानों ने कण्व निरूपण दोषों को महत्वा १८ मानी है। वे अथ बधिर आदि भेदा को भी सामान्य दापों के साथ मिलाकर गिनते हैं। साथ ही प्रायः उन रमिकप्रिया में निरूपित दोषों को भूल जाते हैं जिनका स्मरण कण्व ने प्रभाव के अन्त में किया है। हम भ्रान्त धारणा का निराकरण न हाने के कारण दोषों के विषय में उन गायत्रीयों का आनाचना भी अनावश्यक और अस्मद्भ्रम है।<sup>१</sup> हम निवेदन कर चुके हैं कि कण्व के निरूपण को उनके निरूपण पद्धति पर ध्यान रखकर ही ठीक से समझा जा सकता है।

## वृत्ति विवेचन

अथ कायाद्याम उन्नतनीय विवेचन वृत्तिया का आना है। यद्यपि इनका निरूपण अधिक विस्तार से नहीं किया गया तथापि जा भी मरिप्त निरूपण हुआ है उनका आधार पर ही हम कण्व का दृष्टिकोण समझ सकते हैं तथा उनकी गायत्रीयता को पराग भी कर सकते हैं।

रमिकप्रिया के १५ वें प्रभाव में वृत्तिया का प्रमग आना है। हम उन्नत

१ कविप्रिया प्रभाव ६७

२ वृष्णगकर गुप्तल रमान कण्व की काव्यिकता  
त्रिषाणकण्व का इन्तान का भगीरथ मिश्र पृ ५८ ५  
का इन्तान मद्र अन्तः काण्व एक अर्थान  
वृष्णगकर का कण्व एक अर्थान  
कण्व के अर्थान विवेचन-मन्त्राया मन्त्रद मन्त्र

कशिकी भारती आरभटी और सात्वती इन चार वृत्तिया का वणन किया है।<sup>१</sup> चार दोहो म इनके लक्षण दिए गए हैं और चार छंदो म इनके उदाहरण। ये लक्षण वस्तुत लक्षण नहीं हैं, किस वृत्ति स किस किस रस का सम्बन्ध है, आदि कतिपय बात का सकेत किया गया है। केवल इन लक्षणो पर आश्रित रहकर वक्तियो का स्वरूप नहीं ममभा जा सकता। वास्तविक बात तो यह है कि जिसे समूचे संस्कृत काव्यशास्त्र म फल वृत्ति निरूपण का अच्छा परिचय नहीं है वह केवल की बात को सही दृष्टिकोण क साथ ग्रहण भी नहीं कर सकता। यह स्पष्ट है कि यहां कवय का उद्देश्य वृत्तियो का शास्त्रीय विवेचन करना नहीं है अपितु रस क सदभ म वृत्तिया का उल्लेख करके वह प्रपन रसग्रय को एक साग रूप ही देना चाहते हैं। कवय क निरूपण की ओर आने स पहल हम संस्कृत आचार्यों की प्रमुख मायताओ पर एक विहगम दृष्टि डालना चाहते हैं।

### संस्कृत काव्यशास्त्र मे वृत्ति निरूपण

संस्कृत साहित्य म वृत्ति गण अनेक अर्थो म प्रयुक्त पाया जाता है। साहित्य शास्त्रीय ग्रन्थो म भी कई अर्थो म इस गण का प्रयोग हुआ है। कारिकाओ की वृत्तिया सूत्रो की वक्तिया भी प्रचलित हैं। पाकरण म समासो की वक्तिया की चर्चा आती है इस अर्थ का साहित्य शास्त्र म उपयोग किया गया है। इन अर्थो स हमारा यहां सीधा सम्बन्ध नहीं है। अभिधा लक्षणा आदि गण वृत्तियो को भी गदवृत्ति कहा गया है। इस अर्थ से भी हमारा सम्बन्ध नहीं है। संस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास हम बताता है कि वक्तियो का चर्चा मूलत नाटय क सदभ म प्रारम्भ हुई काय क सदभ म वक्तियो के स्थान पर वृत्तियो की चर्चा प्रारम्भ हुई और परवर्ती काल म आकर धीरे धीरे काव्य म नाटयवक्तिया घुल मिल गई और रूपांतर पा गई।<sup>१</sup> कवय क वृत्ति निरूपण म भी हम वही रूपांतरित वक्तिया पाते हैं।

### नाटयवृत्तिया

नाटयवक्तिया का प्रथम निरूपण हमें अथ कई प्रमुख काव्यागो क समान भरत क नाटयशास्त्र में ही उपलब्ध होता है।<sup>२</sup> य नाटयवृत्तिया ४ हैं—कशिकी भारती सात्वती और आरभटी। नाटय क सदभ में ही इनके विषय में दृष्टिकोण का विकास होना रहता है तथापि भरत को मूल दृष्टि सवया परिवर्तित नहीं हुई।

- १ इति विधि वरन्वो वरत बहु नव रस रमिक विचारि।  
बाधो वृत्ति वचित को कश्चि केसव विधि चारि॥ २ प्रि०, प्र० १४ ४१  
प्रथम कशिकी भागनी आरभटी अनि भाति।  
कश्चि यमव सुम मास्वती चतुर चतुर विधि चारि॥ २ प्रि०, प्र १५ १
- ० दो द्विती आण वृत्ति इन काव्य' 'सम् क मय्म आन अन्कारशास्त्र  
२१० की रा वन् पृ० १००-११३
- १ नाटयशास्त्र अध्याय १०

वृत्ति गान् को इस सन्दर्भ में व्यवहार के अर्थ में ग्रहण किया गया है। घनजय ने अष्टरूपक में नायक के व्यापार की वृत्ति कहा है।<sup>१</sup> यह नायक वस्तुतः मूल अनुकाय पात्र नहीं नाट्य स्थित प्रधान पात्र है इसीके वाचिक भागिक सात्त्विक व्यापारा या चेष्टाया की जिन्हें विशेष दृष्टि से व्यवहार नाम दिया गया है, वृत्ति कहा गया है।<sup>२</sup>

दशरूपककार ने इनके लक्षण इस रूप में दिए हैं—

कणिकी—

तत्र कणिकी ।

सास्वती—

गीतनृत्यविलासाद्यमृदु शृङ्गारचेष्टित ॥<sup>३</sup>

विशोका सास्वती सस्वश्रीयत्यागदयाज्व ।

सतापोत्यापकावस्या साघात्य परिवर्तक ॥

आरभटी—

आरभटी पुन ।

मायेद्रागलसपामक्रोधोदभ्रान्तादिचेष्टित ॥<sup>४</sup>

भारती—

भारती सस्कृतप्रायो वाग्व्यापारी नटाश्रय ॥<sup>५</sup>

यह सामान्यतः नाट्यवृत्तियों के सम्बन्ध में प्रतिनिधि विचारधारा है। या भरत से लेकर वि. वनाथ तक इनके सम्बन्ध में विचारधारा में विकास भी पाया जाता है तथापि मोटे रूप से नाट्य के सन्दर्भ में वृत्तियों की परिचायक विचारधारा के रूप में हम इस स्वीकार कर सकते हैं क्योंकि भरत की मायता का मूल चेतना इस में सुरक्षित रही है।

इन नाट्यवृत्तियों में भारती को वस्तुतः व्यवहार के रूप में नहीं वाग्व्यापार के रूप में स्वीकार किया गया है। भरत ने भारती का लक्षण इस प्रकार किया है—

या वाग्प्रधाना पुष्टप्रयोया

श्रीवजिता सस्कृतपाठयुक्ता ।

स्वनामधयभरत प्रयुक्ता

सा भारती नाम भवेत्तु वृत्ति ॥

इसी कारण हम वृत्ति का सम्बन्ध नाटक के कल्पित वर्णनात्मक अंगों में माना गया है जस प्रराचना कीधी प्रहसन आदि से।<sup>६</sup> इसी वाक्य प्रधानता के

१ अष्टरूपकानिका वृत्तरचनुधा । अरा प्र २ ४७

२ अष्टरूपकानिका वृत्तरचनुधा । अरा प्र २ ४७

—अभिनवभारती आचायक २ अरा २ वा ३ पृ ८३

३ अरा २ ४७

४ अरा २ ४७

५ अरा २ ४७

६ अरा २ ४७

७ अरा २ ४७

कानिका वृत्तरचनुधा । अरा प्र २ ४७

८ अरा २ ४७

९ अरा २ ४७

कारण इस अघवृत्ति न मानकर गत्वृत्ति क रूप म स्वीकार किया गया है ।<sup>1</sup>

अथ तीना वृत्तिया नाटय के इतिवृत्त प्रसंग निरूपण प्रमाण स सम्बद्ध हैं ।  
कणिकी म कोमल भावों और प्रसंगा का समावग है आरभटी म परया का । सात्वती  
की स्थिति बीच की समझनी चाहिए ।

इन वृत्तिया का विणिष्ट विणिष्ट रसा स सम्बन्ध स्वय भरत ने ही निर्धारित  
किया है, जो इस प्रकार है—

- कणिकी—हास्य शृंगार
- सात्वती—वीर, अभुन गात
- आरभटी—रोद्र, भयानक
- भारती—धीमत्स करण

रसा क साथ विशिष्ट वृत्तियो का यह सम्बन्ध निर्धारण स्वय भरत म दृष्टि-  
कोण भेद का मन्त करता है । एक और तो भारती को वाक्प्रधाना वृत्ति कहा गया  
है जिसका अर्थ है कि भारती एक वाक्वृत्ति क रूप म समस्त रसों से सम्बद्ध है  
दूसरी और अर्थ अघवृत्तियों क समान उस भी दा विणिष्ट रसों धीमत्स और शृंगार  
म सम्बद्ध किया गया है ।<sup>2</sup> इस दृष्टिभेद ने परवर्ती युग म भी वृत्तियो के सम्बन्ध म  
दृष्टि भेद का बनाया है । धनजय ने कणिकी को शृंगार से सात्वती को वीर से तथा  
आरभटी को रोद्र और धीमत्स से सम्बद्ध करत हुए भारती को समस्त रसा म  
जोडा है—

शृङ्गारे कणिकी, वीरे सात्वत्यारभटी पुन ।

रसे राद्र च धीमत्से, वृत्ति सयत्र भारती ॥<sup>3</sup>

यह दृष्टिकोण भारता की वाक्प्रधानतावाली माधता के आधार पर ही बन  
मका है विणिष्ट रम-सम्बद्धता क आधार पर नहीं । इसी प्रकार इनकी विणिष्ट रस  
सम्बद्धता भी सवथा एकरूप नहीं रही है । उदाहरणस्वरूप विद्यानाथ इस सम्बन्ध  
का एक प्रकार खत है—

भगवन्मयाग्न विज्ञेयारच वारो-इत्यनागता ॥ ना यशास्य २०१२७

तथा देवै दारूपक प्र० ३, उक्ता ५

१ पद्मिगररतुर्धम् नाथ-वृत्तिरत परा ।

चतुर्थी भारती नाभि वाच्य नाथकलक्षय ॥

करिषीं सात्तरी चावन्निभारभीमिति ।

पठन्त पंचमोवेत्तिमौद्मटा प्रतिमानत ॥—शा , प्र० ७ श्लो० ६० १

रसयोगमात्मा न चादमान निरादत ।

हास्य उद्ग रवदृष्टा करिषीं परिचक्षिता ।

गाथो गाधि विज्ञेया वराभुनगमाश्रया ॥

रोध भयानके रीव विज्ञेयाम्भगी कुं ।

धीमत्स कर्ण रीव भागता सप्रतीतिता ॥—ना० शा , प्र० २० श्लो० ७२ ४

३ ट ४०। ७। ६०

४ प्रमाण-यगोभूषण, पृ० ४३-४५, कालमनारमा म०, स्रम् व सेप्लस ह्यादि, टा०  
रावन्, पृ० १६१



कगिकी—शृंगार करण ।  
 आरभटी—रौं वीभत्स ।  
 सात्वती—धीर भयानक ।  
 भारती—हास्य गान्त अदभुत ।

### कायवत्तिया

पीछे हमने नाट्य के सम्प्रदाय में कगिकी आदि वृत्तियाँ का चर्चा की है ।  
 बाप के सन्दर्भ में इस गान्त का प्रयोग निम्न रूप में हुआ है—

### अनुप्रास जाति

समान वर्णों के मिलास को अनुप्रास कहा जाता है । भामह ने अनुप्रास का  
 लक्षण एवं उदाहरण देकर उसके ग्राम्यानुप्रास और नाटोयानुप्रास दो भेद किए हैं ।  
 इन अनुप्रास भेदों का उनका टीकाकार प्रतीहारेंदुराज ने वृत्ति नाम दिया है—

भामहो हि ग्राम्योपनागरिकावत्तिभेदेन द्विप्रकारमेवानुप्रासं व्याख्यातवान् ।<sup>१</sup>

उदभट ने अनुप्रास के तीन भेद करते हुए एक भेद का नाम ही वृत्त्यनुप्रास  
 रखा है और इसकी परिधि में आने वाली तीन वत्तियाँ की चर्चा की है । परंपरा  
 उपनागरिका और ग्राम्या । पहली में परंपरा वर्णों का बहुत प्रयोग होता है दूसरी में  
 कोमल वर्णों का । तामरी ग्राम्या की स्थिति बीच की है । उदभट की इन वृत्तियों में  
 विगिष्ट वर्णों का बहुत प्रयोग ही अपेक्षित नहीं अपितु उनका अनुप्रासात्मक अर्थान  
 समान वर्णात्मक प्रयोग भी अपेक्षित है क्योंकि ये अनुप्रास के रूप में ही यहाँ स्वीकृत  
 का गई हैं । विगिष्ट वर्ण विगिष्ट रसा की अभिव्यक्ति में सहायक होते हैं यहाँ  
 ध्यान नये पुराने सभी आचाय किसी न किसी रूप में स्वीकार करते हैं । अतः अनुप्रास  
 जातियों का विगिष्ट रसा की अभिव्यक्ति में भी सम्भव है ही । इस प्रकार उदभट  
 के अनुसार तीन वृत्तियाँ हानी हैं—परंपरा उपनागरिका और ग्राम्या । ये वत्तियाँ  
 वर्ण जानिया ही हैं । इस कारण प्रतापारेंदुराज ने भामह और उदभट के आधार पर  
 वत्तियों को रस की अभिव्यक्ति में सहायक वर्णों का व्यवहार विगिष्ट कहा है—

अतस्तावदवत्तयो रसाभिष्यक्त्यनुगुणवर्णव्यवहारार्थिवा प्रथममभिधीयते ।  
 ताच्च तिस्रः परंपरोपनागरिकाग्राम्याःवभेदात् ।<sup>२</sup>

अभिन्नवर्णुषु न भी वत्तियाँ का अनुप्रास जाति के रूप में ही स्वीकार किया  
 है । ये तीनों वृत्तियाँ का युक्ति भी अभी दृष्टि में करते हैं—

वत्तित्तनुप्रासभेदात्स्थितिः ।

१ मनु कल्पद्रुम आचार्य अनेकराज प्रभाकराचार्य १५३

वही पृ १४

२ ध्वन्यालोकभाष्य पृ ४०-४१

३ वही पृ १८१ ध

४ अतस्तनुप्रासजातियां नाभिन्नवर्णवत्तया नाम्येवव्याख्यायते । वही पृ०

मम्मट न भी रम विषयक नियत वण-गत व्यापार का ही वृत्ति कहा है—

वृत्तिनियतवणगतो रसविषयो व्यापार ।<sup>१</sup>

इस प्रकार हम देख सकते हैं कि उदभट म लेकर मम्मट तक पर्या उप-नागरिका और ग्राम्या नाम से तीन प्रकार के वण-व्यवहारों को वृत्ति कहा गया है और उन्हें अनुप्रासजाति के रूप में स्वीकार किया गया है ।

इस चेतना में कुछ विक्रम और परिवर्तन भी लक्षित होता है । आनन्दवधन न के वणव्यवहार के रूप में न लेकर गण-व्यवहार के रूप में स्वीकार किया है—  
“यवहारो हि वृत्तिरित्युच्यते । तत्र रसानुगुण औचित्यवान् वाच्याश्रयो व्यवहारस्ता एता कृत्विषयाद्या वस्तय । वाचकाश्रयाच्च उपनागरिकाद्या ।”

या वाचित् प्रतिष्ठा उपनागरिकाद्या गणतत्त्वाश्रया वस्तयो याश्चाय-तत्त्वाश्रया कृत्विषया ता सम्यक् प्रतिपत्तिपदधीमवतरति ।<sup>१</sup>

वृत्तियों को वण-व्यवहार से गण-व्यवहार की ओर लाने में रीति की विचार धारा का योग है । रीति भी विगिष्ट वर्णों की रचना ही थी किन्तु उस वामन के अनुसार गण रचना के रूप में स्वीकार किया जा चुका था । उन्होंने गुण विगिष्ट पण रचना का रीति कहा था । इस प्रकार उनका रीति से गण तत्त्व जुड़ हुए थे—विगिष्ट वण-संपातक पद और गुण । ये गुण उनकी दृष्टि से तो गण और श्रय के ही घम थे किन्तु ध्वनिवाच की प्रतिष्ठा के माय माय में रस घम के साथ स्वीकार किया जाना लगा । इस विकसित दृष्टिकोण का फल यह हुआ कि धीरे धीरे रीतियों और वृत्तियों को एक ही समझा जाने लगा । वामनादि की वदर्थों, गौड़ी और पाचानी रीतियाँ ही वामन उपनागरिका पर्या और कोमला हैं एसा मम्मट की ही स्वीकृति हमारे सामने है—

माधुमध्यजकथर्णरूपनागरिकोच्यते ।

ओज प्रकाशकस्तु पर्या कोमला पर ॥

केदाचिदेता वदर्थोप्रमुखा रीतयो मता ।

एतास्तिष्ठो वस्तयो वामनादीना मते वदर्थो-गौड़ीया-पाचाल्याद्या रीतय उच्यन्ते ।<sup>२</sup>

इन वृत्तियों को वण-व्यवहार की अपणा गण-व्यवहार के रूप में लाने का श्रय यह था कि इनमें समान वर्णों के प्रयोग की अपेक्षा समान स्थानीय या समान जानीय वर्णों का ही प्रयोग-वाच्य स्वीकार किया जाए ।

इस प्रकार काव्य-वृत्तियों की अनुप्रास जाति मानते हुए वण-व्यवहार के रूप में परिगृहीत किया गया फिर गण-व्यवहार के रूप में देखा गया और अन्त में उह

१ का प्र उ १

२ ध्वन्यालोक वृत्ति ३।३३

३ वही, वृत्ति २।४ तथा—

रसानुगुणवैत यवहारोऽभ्याश्रया ।

औचित्यं न रसो ऽव वस्तयो विविगा श्रित्या ॥ वही ३।३३

४ काव्यालकारमूल

५ ७ व्यंग्यकारा, उ० १ का० ३-४ तथा वृत्ति ।

२—नाट्यवृत्तिया और कायवृत्तिया अलग भ्रम स्वीकार की गई हैं। नाट्यवृत्तिया कणिकी आदि हैं कायवृत्तिया उपनागरिका आदि। पहली अयवृत्तिया व रूप म काय म आइ दूमरी पहल वणवृत्तिया थी पीछे नाट्यवृत्तिया मानी गई। नाट्यशास्त्र म कणिकी आदि की चतना कुछ भिन्न थी काव्य म आकर व रीतिया व मल म समझी गई।

३—कणिकी आदि तथा उपनागरिका आदि म काय म आकर समान तत्वो पर ध्यान दिया गया जस रम गुण समास विगिष्ट वण आदि। तथापि कणिकी आदि को रीतिया का पयाय नहीं बनाया जा सका। पर तना तो स्वीकार करना हा पनेगा कि कणिकी आदि व विषय म रीतिया की धारणा का यथामाध्य स्वपान का दृष्टिकोण रहा। यह एक प्रकार स वृत्ति और जाति का सामञ्जस्य था। यहा वृत्ति स हमारा तात्पर्य नाट्यवृत्ति से है तथा जाति स अनुप्रास तथा समास की जातिया स।

४—कणिकी आदि वृत्तियो व सम्बन्ध म काव्य-समीक्षा म आकर विगिष्ट रम सम्बद्धता वानी भरत की दृष्टि सामने रहो।

इन निष्कर्षों की छाया म अब हम केगव व वृत्ति निरूपण को समझन का प्रयास करेंगे और उसका सही मूल्यांकन कर सकेंगे।

### केगव का वृत्ति निरूपण

केगव ने रमिकप्रिया म अपना वृत्ति निरूपण इन श्लो म प्रस्तुत किया है —

इहि विधि बरयो बरन बहु नव रस रतिक विचारि ।

बाधो वृत्ति कवित्त की कहि केसव विधि चारि ॥

प्रथम कणिकी भारती आरभटी भनि भाति ।

कहि केसव सुभ सात्वती अतुर अतुर विधि जाति ॥

परिपे केसवदाम जह कहन हास तिगार ।

सरल बरन सुभ भाव जह सो कसिकी विचार ॥

वरनिय जामे बीर रस रसमय अद्भुत हास ।

कहि केसव सुभ अय जह सो भारती प्रकास ॥

कसव जाम रीद्र रस भय बीभरसहि जान ।

आरभटी आरम्भ यह पद पद जमक बलान ॥

अद्भुत बीर तिगार रस समरस बरनि समान ।

मुनरहि समुभ्त भाव जिहि सो सात्वती मुजान ॥'

केगव व रम निरूपण म हम निम्न निष्कर्ष निकाल सकत हैं—

१ केगव ने चार ही वृत्तिया मानी हैं। व हैं—कणिकी भारती आरभटी और सात्वती।

२ इन वृत्तियों का उद्धान नाट्यवृत्तियों के रूप में नहीं काव्यवृत्तियाँ के रूप में ही स्वीकार किया है जसा कि उन्होंने स्वयं सक्त किया है— वार्धो वृत्ति कवित्त की । कवित्त की अर्थान् अथ काव्य की । हम देख चुके हैं कि कविकी आदि वृत्तियाँ भूत नाट्यवृत्तियाँ थीं काव्य वृत्तियाँ के रूप में नामन के वही रहकर भी स्वल्पन ज्यो की त्यों नहीं रही । कविव म भी य काव्यवृत्तियों के रूप में ही आई है अतः उनका मूल रूप नहीं विकसित रूप ही आना उचित है । यहाँ भारती और सात्वती भी कविकी और आरभटी के समान ही प्रयुक्त हुई हैं न कि अंतर के साथ जना कि नाट्य के मदन में होता था । वहाँ भारती का नाट्यवृत्ति के रूप में लिया जाता था ।<sup>१</sup>

३ कविव के रूप निरूपण में आनन्दवचन का सामञ्जस्य भनकता है आनन्द वचन न नाट्यवृत्ति और अनुप्रास जातियाँ का अर्थ-व्यवहार और नाट्य व्यवहार के रूप में समान किया था । यह सामञ्जस्य, जसा कि हम निरूपित कर चुके हैं वृत्ति और जाति का सामञ्जस्य था । कविव न भी वृत्ति और जाति के सामञ्जस्य की और इन दोनों नामों का एक साथ ही प्रयोग करने हुए सक्त किया है—

वांघी वृत्ति कवित्त की कहि कसब विधि चारि ।

प्रथम कविकी भारती आरभटी भनि भांति ।

कहि कसब सुभ सात्वती चतुर चतुर विधि जाति ॥<sup>१</sup>

आनन्दवचन न कविकी आदि को रसानुगुण अथवृत्ति के रूप में लिया और अनुप्रास जातियाँ का नाट्य-व्यवहार के रूप में । परवर्ती आचार्यों न नाट्यवृत्तियाँ का वर्धो आदि रीतियों से एकाकार किया, और वृत्तियों के नाम पर उर्होका प्रमुखतया चवा की । उन्होंने प्रायः कविकी आदि का सम्प्रथ अथ काव्य की चर्चा में नहीं किया । इसका यही अर्थ है कि उन्होंने नाट्यवृत्तियाँ में ही अथवृत्तियाँ के तत्त्वा का समाविष्ट करते हुए उर्हो ही अथवृत्तियों का स्थानापन्न बना लिया । इसमें एक प्रकार में आनन्दवचन का विभाजन रखा चुन हीनी है । कविव न इसमें विपरीत दूसरा दृष्टिकोण अपनाया । जो अथवृत्तियों की कुछ उपनामों प्रतीत हान गयी थी उन उर्होके वृत्तियाँ के रूप में अपना उपनामिका या गौडी वदभो आदि नाम न कर कविकी आदि नाम लेन हुए पूरा करना चाहा । इन नामों के अपनान का एक कारण यह भी हो सकता है कि कविव रसिकप्रिया में अनक रम-सम्बन्धी मायताओं में भी अरत और नाट्यशास्त्रीय परम्परा के आचार्यों से प्रेरणा न रह स । अतः अकार और रीति आदि का व नामनादि की दृष्टि में स्वीकार कर रहे थे । अतः अम के सम्प्रथ म अम के मूल आषाय भरत की मायता के अनुरूप ही भरत की वृत्तियाँ को लिया जाए । किन्तु उर्होके भरत की दृष्टि से नहीं आनन्दवचन का सामञ्जस्यवात्तनी दृष्टि से स्वीकार किया । अतः प्रकार अथ ममवात्तनी गस्कृत आचार्यों से कुछ भिन्न रूप में कविव न वृत्तियों के रूप में कविकी आदि का स्वीकार किया जिसमें अथ

१ डा० रावन् के उक्त श्लोक के आधार पर

२ रसिकप्रिया

वृत्ति और ग दवृत्ति दोना का सामञ्जस्य या नाम नाटकीय अथवृत्तिया क ही थ ।

४ कण्व ने इन वृत्तिया क निरूपण में रसानुगुण गद व्यवहार और रमा नुगुण अथ व्यवहार दोना स सम्बद्ध उपकरणों का उपयोग किया है । व एक ओर जहा कणिकी में सुभ भाव और भारती में सुभ अथ दी चचा करत हैं वहा दूसरी ओर कणिकी में सरल बरन' और आरभटी में पद पद जमक की । सात्वती में ता प्रसाद गुण का समावेश अपेक्षित माना गया है— सुनतहि समुभत भाव जिहि ना सात्वता मुजान । इस प्रकार उभय पक्षीय तत्त्वा को समाविष्ट करते हुए कण्व वृत्ति और जाति दोना क सामञ्जस्य को अभीष्ट समभत हैं । किन्तु उल्लेखनीय यह है कि उन सभी तत्त्वा को किसी समान व्यवस्था के आधार पर सभी वृत्तिया क प्रसंग में एक रूपता क साथ निरूपित नहीं किया गया । उदाहरणस्वरूप वर्णों की चचा कवल कणिकी क प्रसंग में है अथवा क प्रसंग में नहीं । अथर्ववृत्ति रूप प्रसाद गुण की चचा कवल सात्वती क प्रसंग में है जय कि कणिकी क प्रसंग में माधुय और आरभटी क प्रसंग में आजस की चर्चा की जा सकती थी । अत अथर्वव्यवहार और गद-व्यवहार दोनो पक्षो क तत्त्वा की चर्चा कवन चर्चा ही रह गई है ।

५ कण्व ने इन वृत्तियो क सम्बन्ध में उन रमा का उल्लेख किया है जिनकी स्थिति इन वृत्तिया में हाती है । वृत्तिया की विगिष्ट रस सम्बद्धता की चर्चा हमें भरत में ही मिल जाती है यह हम दख चुक ह । हम यह भी जान चुक है कि इस रूप में भारती वृत्ति भी कणिकी आदि क समान अथ वृत्ति ही प्रतीत हाती है कवल वाग्म्यापार नहीं रह जाती । कण्व ने इन वृत्तिया क प्रसंग में विगिष्ट रसों का जा उल्लेख किया है वह किसी आचार्य स ज्या का ल्यो लिया गया प्रतीत नहीं होता । अत हम कण्व की वृत्तिया की विगिष्ट रस सम्बद्धता पर महा पृथक से विचार करना चाहेंग ।

### वृत्तिया की विगिष्ट रस-सम्बद्धता

कण्व क अनुसार यह सम्बन्ध इस प्रकार है—

कणिकी—करण हास्य शृंगार ।

भारती—वीर अद्भुत हास्य ।

आरभटी—रीत्य भय, वीर्यम ।

सात्वती—अद्भुत वीर शृंगार गान ।

पीछ क विवेचन म हम यह दख चुक हैं कि संस्कृत आचार्यों म इस विषय म एकमतता नहीं पाद जाती । हम भरत और विद्यानाथ की विगिष्ट रस-सम्बद्धता को उदाहरणरूप म दख चुक हैं । यहा हम कुछ विगिष्ट आचार्यों की तुलना म कण्व का मतता को रखना चाहेंग—

वसि कनिष्ठी हास्य	भरत <sup>१</sup> घनजय घनिक <sup>१</sup> शृगार शृगार	रामचन्द्र-गुणचन्द्र <sup>१</sup> हास्य, शृगार	विद्यानाथ <sup>१</sup> शृगार, करुण	केगव शृगार हास्य करुण
सात्वती वीर गान्त	अद्भुत वीर	रौद्र, वार गान्त, अद्भुत	वार भयानक	अद्भुत, वीर, शृगार गान्त
भारती वीभत्स, करुण	समस्त रस	समस्त रस	हास्य गान्त, वीर, अद्भुत	अद्भुत हास्य
धारमती रौद्र भयानक	रौद्र, वीभत्स	रौद्रादि दीप्त रस	रौद्र वीभत्स	रौद्र भय वाग्दत्त

यहाँ केगव की मायता का हमने विद्वनाथप्रसाद मिश्र द्वारा सम्पादित कश्च-अथावला खण्ड १ म लिय गया पाठा के अनुसार प्रस्तुत किया है। किन्तु सात्वती के लिय दिया गया पीछे उल्लेखित पाठ हम युक्ति युक्त प्रतीत नहीं होता यद्यपि यह पाठ भी कम पुराना नहीं है। यह पाठ इस प्रकार है—

अद्भुत वार शृगार रस समस्त बरनि समान।

मुनर्ताह सप्रभत भाव जिहि तो सात्त्विकी मुजान ॥<sup>१</sup>

रसिकप्रिया के प्राचीनतम टीकाकार सरदार कवि न भी इसी पाठ को प्रमुक्तता दी है।<sup>१</sup> इस के अनुसार सात्वती का सम्बंध अद्भुत, वीर शृगार और गान्त इन चार रसों से जुड़ता है। हम न अभी भरत घनजय, रामचन्द्र और विद्या

- १ हास्य इन्द्रावदुला कैशिकी परिचयिता। सात्वती चापि विद्येया वीराद्भुतरामाश्रया ॥ रौद्रे भयानके चैत्र विद्येया-रमटी पुन। वीभत्से करुण चैत्र भारती सम्प्रकीर्तिता ॥ ना शा०, अ २०, रत्ने ७ ८
- २ शृङ्गार कैशिकी वीर सात्वत-धारमती पुन। रसे रौद्रे च वीभत्से वसि सुवच मारसी ॥ ६० ५०, प्र० २ ६२
- ३ प्रभाषरद्वयराभूषण, बालमनोगना म० पृ ५३-५४।
- ४ कैशिकी हास्य चारनाट्यननमिन्मिका। नाट्य-द्वय, स० डा० जगेन्द्र, पृ० २८० सात्वती मन्वगगाभिनेय कम मानसुम्। साववा धय-सुन्दर पैय-रौद्रवीररामाद्भुतम् ॥ वनी पृ० २८५ प्राय सरसूतनि शारमात्या काचि भारती। वनी पृ० २७५ चारमटपुन-रौद्र-द्वयमन्वीररामावला। वनी, पृ २८८ टीका रत्न। रोगाथ औदय्यवगर्हितम्। वनी वसि पृ २८८ ३
- ५ वरावमपथला पृ० ३१।
- ६ रसिकप्रिया वैशेरेवरेत स० १३८८ स०, सागर कवियेका पृ० ६५

नाथ की मायताए प्रस्तुत की हैं। इन म स काई आचाय शृंगार को सात्वती की परिधि म नही रखना चाहता। शृंगार क लिए कवल कगिकी वृत्ति ही स्वीकार की गई है। सरदार कवि न एक दूसरे पाठ का और उल्लेख किया है जो इस प्रकार है—

अदभुत हरो वीर रस, समरस धरनि समान ।

सुनतीह समुभूत भाव मन, सो सात्वकी प्रमान ॥<sup>१</sup>

“स पाठ क अनुसार सात्वती का सम्बन्ध अदभुत रौद्र वीर और गान्त इन चार रसो क साथ है। इसम शृंगार क स्थान पर रौद्र को लिया गया है। रौद्र को भरत न तो नही किंतु रामचन्द्र न नाट्य-दपण म सात्वती क सद्भ म स्वीकार किया है। उ होन इस पाठ म आय रौद्र वीर गान्त और अदभुत चारो ही रसो को सात्वती म माना है। अत यह पाठ ही वेगव ग्रन्थावली क पाठ से अधिक समीचीन प्रतीत हाता है। इस प्रकार वेगव क अनुसार सात्वती क अतगत रौद्र वीर गान्त और अदभुत य चार रस मान जाने चाहिए।

पीछे लिय हुए चित्र से यह स्पष्ट हो जाता है कि ससृष्ट क आचाय विगिष्ट रम सम्बद्धता क विषय म कोइ एकरूप परम्परा स्थापित नहीं करते। अत वेगव का भी इस विषय म स्वतन्त्र दृष्टिकोण अपनाव की पूरी गुजाइग थी जिसका उद्देश्य पूरा उपयोग किया है। अत हम यहा उनक निजी दृष्टिकोण को तथा उमक कारण को समझने का प्रयास करेंगे।

हम यह दख चुक हैं कि वेगव न इन कगिकी आदि वृत्तियो को नाट्य-वृत्तियो के रूप म नही अपितु काय-वृत्तिया क रूप म ग्रहण किया है। अत कगिकी आदि अय-वृत्तियो क रूप म तथा गद-जाति रूपा उपनागरिका आदि या कहिए उनके स्थानापन्न रूप म स्वीकृत बदर्भी आदि वृत्ति रीतिया गद वृत्तियो के रूप म स्वीकृत हू है जसा कि आनन्दवधन का दृष्टिकोण था। यदि इन सब का सम्बन्ध परस्पर स्थापित किया जाय ता कुछ इस प्रकार रखा जा सकेगा

१ उपनागरिका	कौमला	प्रोता	परुया
२ बदर्भी	लाटो	पाचाली	गोडी
३ कगिकी	भारती	सात्वती	भारभटी

यह सम्बन्ध अधिक वचानिक नहीं है किंतु इस निभाने की धोर आचार्यों न प्रमाण किया है। आज अनुग्राम जातिया क १२ भेद करत हैं और इह समता सौकुमार्य आदि गुणों म तथा भारती आदि वृत्तिया म खपान की बात कहत हैं—  
गमना सौकुमार्यादियु गणय भारतीश्रुतिय वृत्तियु ययाययमन्तर्भावोऽङ्गतय ।<sup>२</sup>

अथ आचार्यों म ना एम प्रयास की भलक मिल सकती है।<sup>३</sup> इस प्रयास म सफलता एक दूरी तक या स्वाकार की जा सकती है।<sup>४</sup> एम दृष्टिकोण की धुरी है रीति

१ रसिक प्रयास ३३१३३३३३ १६८८ म० मन्तरकवि टीका १ १८५ ।

२ मन् कन्नेम अथ अनकारशास्त्र १ १८६

३ कवि १ १८८ १६

सम्बन्धी दृष्टि । शीतियो म एक और बदर्भी है, जो कोमलतम वृत्ति है दूसरी और दूसर तिर पर गौडी है जिसम चरम कठोरता है । इसी प्रकार उपनागरिका और परपा वृत्तियो की स्थिति थी । यही विरोधता कगिकी और प्रारभटो म प्राप्त होती है । वस इन दो तिरों की कोमलतम और कठोरतम रेखाभा को लेकर बीच की स्थितिया को बीच में रखन के प्रयास किय गय । ता कोमलतम और कठोरतम तिरों की स्थिति तो ठीक रही किन्तु बीच की चीजो को अधिक बज्ञानिक रूप म नहीं रखा जा सका । उदाहरण स्वरूप विश्वनाथ क समय तक भी यह नहीं कहा जा सका कि लाटी और पाचाली में कस वण क्या गुण, किस मात्रा तक समास आदि होने चाहिए । व केवल बदर्भी और गौडी की ही स्थिति माफ साफ कह सक । पाचाली को इन दानो के बीच का तथा लाटी को बदर्भी और पाचाला क बीच की रीति बता कर सतोप कर लिया गया ।<sup>१</sup> यही स्थिति उपनागरिका और परपा क बीच की स्थितियो की हुई । अत उनक मल में कगिकी आदि वृत्तिया को रखते समय भी दो तिरों की वृत्तिया को तो ठीक प्रकार स रखा जा सका किन्तु बीच की स्थितिमा में बज्ञानिक रूप नहीं लाया जा सका । भोज और विद्यानाथ जतना ही दृष्टिकोण अधिक से अधिक द पाय कि कोमलतम कगिकी और कठोरतम प्रारभटो के बीच में भारती और सात्वती पडती हैं । भारती में प्रौढि क साथ कोमलता की मात्रा कुछ अधिक है अत वह कगिकी के अधिक समीप पडती है सात्वती में प्रौढता कुछ और बड जाती है अत वह प्रारभटो की ओर भुंती हुई है ।<sup>२</sup> ऊर परस्पर सम्बद्ध स्थिति इसी दृष्टि को ध्यान में रख कर निर्धारित की जा सकी है । केशव में भी हम यही दृष्टि पात है । उनका कोमलता से कठोरता की प्रारभ यही है—कश्चिकी भारती सात्वती, प्रारभटो ।

कगिकी क अतगत कशव ने तीन रसा को रखा है—शृ गार हास्य और करुण । हम दवत हैं कि भरत और धनजय इस वृत्ति में शृ गार और हास्य को ही लत हैं कश्चिकी का नहीं । उनकी दृष्टि स करुण का स्थान भारती है । पर ज्या ज्या नाटय वृत्तिया काव्य वृत्तिया बनती जानी हैं तथा उह उपनागरिका या बदर्भी आदि क मल में बिठाला जाता है त्यो त्यो भरत का दृष्टिकोण अस्वाकाय होता जाता है । शतिया की दृष्टि स करुण की अभिव्यक्ति कोमलतम साधनों म स्वीकार की गयी है ।<sup>३</sup> उम बदर्भी रीति और मधुर व्यजनो स योग्य माना गया है । अत उमकी कोमलतम स्थिति को ध्यान में रखकर उमका सम्बन्ध भारती स नहीं कगिकी स ही होना चाहिए । भरत की नाटयवृत्ति में कगिकी में विलास और लालित्य की मात्रा अधिक ज्ञान क कारण करुण को कगिकी में नहीं रखा जा सकता था । किन्तु काव्य वृत्तियों क रूप में स्वीकृत हा जान पर करुण का स्थान कगिकी क माथ ही होना

१ —वर्षे शर्पे पुनइया ।

समन्तवचपत्ता कः पाचालिका मना ॥

सानी तु शक्तिर्भीषाचा योर तरा स्थिता । सा० ६०, परि० ६ मू० ५५

२ मन् क शैलम् अफ अलकारराय ५० १६० १

३ करुण विप्रभम्भे तच्छान्त चातिशयान्वितम् । का० प्र०, उ० ८, सू ६१



चाहिए। वेगव ने वसी दृष्टि से करण की कणिकी व माय सम्बद्ध किया है। हम बल्लती हुई दृष्टि का प्रभाव अथ आचार्यों पर भी देखा जा सकता है। विद्यानाथ ने भी कणिकी के साथ ही करण को रखा है।

वेगव ने कई रसों को दो-दो वक्तियों से सम्बद्ध किया है। एसा अथ्य भरत आदि आचार्यों ने नहीं किया। उनक अनुमार यह सम्बद्ध इस प्रकार है—

शृगार	कणिकी।
हास्य	कणिकी भारती।
करण	कणिकी।
वीर	भारती सात्वती।
अभुत	भारती सात्वती।
रीर	सात्वती आरभती।
गान्त	सात्वती।
भय	आरभती।
वीभ्रत	आरभती।

यहा हम देखत हैं कि वेगव शृगार करण गान्त भयानक और वीभ्रत इन ५ रसा को तो बवल एक ही एक वक्ति से सम्बद्ध मानत हैं किन्तु हास्य वीर अभुत और रीर इन चार को दो-दो वक्तियों से। इस प्रकार रसों की दृष्टि से दो बग बन जात हैं।

शृगार कोमलतम भावों में से है। उसका सम्बद्ध बदर्भी रीति और कणिकी वक्ति से सवमाय रहा है। वेगव ने भी उस ज्यो का त्यो स्वीकार किया है।

करण व सम्बद्ध में हम पीछे देख चुक हैं कि भरत ने इस भारती में रखा था किन्तु काव्य वक्तिया की दृष्टि से हमका सम्बद्ध कणिकी से हा हाना चाहिए था। बदर्भी रीति का भी यही आग्रह था। विद्यानाथ भी हम स्वीकार कर चुकें थे अत वेगव ने उस ठीक हा कणिकी व माय सम्बद्ध किया।

गान्त का सम्बद्ध भरत ने सात्वती वक्ति से ही जोडा है। यद्यपि यह माना जाता है कि भरत के निरूपण में मूल रूपमें गान्त का समावग नहीं था किन्तु यह समावग अभिनव से बल्ल पहिन हो चुका था सम्भवत उद्भूट द्वारा। वेगव के सामने शान्त व सम्बद्ध में दो वानें उठा हागी—क्या भरत का अनुमरण करते हुए गान्त की सात्वती वक्ति में रखा जाय ? या फिर ध्वनिवात्पिया व अनुमार गान्त का सम्बद्ध माधुय गुण और बदर्भी रीति से दग्य कर उस कणिकी में ही रखा जाय ? सम्मटादि ने गान्त में माधुय का शृगार और करण में भी अधिक माना है। इस हिमाय से उन कणिका व माय निमादा जाना चाहिए। इन दो विचार धाराओं में से वेगव भरत का ही अनुमरण करत है। वे गान्त का सम्बद्ध सात्वती से ही मानत है। गगता है रमिक वेगव का निर्वे में वह मधुगता स्वाकाय न थी जा अभिनव परम्परा व

गातिवादी देख चुक थे। उसमें जगत् के प्रति एक हलकी जुगुप्सा या घणा की भावना भी मिली रहती है। अतः ऋग्वेद न गान्त को सात्त्वती में ही रखना उचित समझा। सात्त्वती में ऋग्वेद की कोमलता नहीं वह प्रारभटी क समीप की वृत्ति मानी गयी है। पर उसमें प्रारभटी की बसी बठोरता भी नहीं। ऋग्वेद क अनुमार उसमें भोजस की अपेक्षा प्रमाद की मात्रा अधिक है। प्रसाद के कारण निर्वेद की व्यञ्जना में बाधा नहीं हागा। अतः ऋग्वेद का यह दृष्टिकोण अयुक्तियुक्त नहीं। किन्तु यहा एक बात ध्यान देने की है। ऋग्वेद न राम या गान्त रस को दो रूपों में स्वीकार किया है। एक तो स्वतंत्र निर्वेदमूलक गान्त। दूसरा शृंगार में अतभूत गान्त। रसिकप्रिया में इस अतभूत गान्त की दृष्टि ही प्रधान है यह रम विवचन में हम देख चुक हैं। अतः ऋग्वेद को चाहिए यह था कि व शांत का सम्बन्ध भी दो वृत्तियों से जाहल, ऋग्वेद की ओर सात्त्वती से। शृंगार में अतभूत शांत ऋग्वेद की म रहता है और स्वतंत्र सात्त्वती में। किन्तु ऋग्वेद न ऐसा नहीं किया। सात्त्वती से सम्बद्ध गान्त को निर्वेदमूलक स्वतंत्र शांत ही नमभना चाहिए।

भय को भरत ने भी प्रारभटी के साथ रखा है ऋग्वेद न भी। विद्वनाय ने सम्भवतः उसमें कम पर्यता पाई है और उस सात्त्वता क साथ सम्बद्ध किया है। किन्तु ऋग्वेद उस विषय में भरत क अनुयायी हैं। भय की स्थिति की पर्यता को कम स्वीकार नहीं किया जा सकता। अतः ऋग्वेद का दृष्टिकोण शास्त्रसम्मत भी है सकमम्मत भी।

बीभत्स को भरत ने भारती वृत्ति क साथ रखा है। किन्तु भरत का यह दृष्टिकोण परवर्ती युग म स्वाकृत नहीं रहा। बीभत्स के चित्रण म कवियों ने नाटकों तक म लम्बे लम्बे समासों एव भोजस्वी भाषा का प्रयोग किया है। भवभूति इसके निष्पन्न हैं। उसका सम्बन्ध गोडो रीति और पर्या वृत्ति से जुड़ गया है। अतः धनञ्जय और विद्यानाथ आदि बीभत्स को भारती क साथ न रख कर प्रारभटी क साथ ही रखने हैं। ऋग्वेद न भा बीभत्स को प्रारभटी क साथ ही रखा है। वस्तुतः काव्य वृत्ति क रूप म आकर तथा रीतियों के धामन-सामने रखा जा कर भारती का ऋग्वेद की क निकट की वृत्ति स्वीकार की जा चुकी है, अतः ऋग्वेद बीभत्स को उसक साथ नहीं रम सकत। यहा ऋग्वेद विकसित दृष्टिकोण का उपयोग करते हैं।

हास्य का भरत न ऋग्वेद की क साथ रखा है ऋग्वेद न इसके लिए दो वृत्तियाँ स्वीकार की हैं— ऋग्वेद की ओर भारती। इसका भी एक कारण है। नाट्य-वृत्ति क रूप म ऋग्वेद की म जिस हास्य का समावेश है वह वस्तुतः स्वतंत्र हास्य नहीं है। शृंगार क अतभूत नम क भेदों क रूप म यह हास्य आता है। ऋग्वेद का शृंगार नममय है। नम की हास्य-नम, शृंगार हास्य नम तथा सम्य हास्य-नम क रूप म स्वीकार करके फिर ओर कई उपभेद किए गए हैं। यह हास्य स्वतंत्र हास्य नहीं है। भरत धनञ्जय और रामचन्द्र क साथ में वस्तुतः यही हास्य ऋग्वेद की म परिगणित है।

काव्याचार्यों का स्वतंत्र हास्य उसमें कुछ नीची वृत्ति भारती में है जसा कि विद्यानाय ने रखा है। कंगव काय परक दृष्टिकोण के अनुरूप हास्य को भारती में स्वीकार करते हैं। इस प्रकार कंगव रसिकप्रिया व उद्दय व अनुरूप तो शृंगार व अगभूत हास्य के लिए कंगिकी का क्षेत्र स्वीकार करते हैं तथा स्वतंत्र हास्य के लिए भारती का। इस प्रकार उनका अनुसार हास्य का सम्बन्ध दो वृत्तियों से है।

दूसरा रस वीर है जिस भारती और सात्वती इन दो वृत्तियाँ सम्बद्ध किया गया है। वीर में रौद्र की सी पर्यता अपक्षित नहीं सम्भवी जाती अतः उस भरत आदि सभा आचाय सात्वती के ही अंतर्गत रखते हैं। किंतु कंगव सात्वती की अपेक्षा कुछ कोमल भारती वृत्ति से भी उसका सम्बन्ध स्वीकार करते हैं। इसका यही अर्थ है कि ये कोमल किंतु प्रीति सामग्री से भी उत्साह की व्यंजना स्वीकार करते हैं। आचार्यों का चाह यह दृष्टि स्वीकार न रही हो किंतु का ये इसका औचित्य स्वीकार करता है। तुलसी के गीतावली के अनेक पद हैं जो कोमल वर्णान्ति सामग्री के रहते हुए भी उत्साह की अच्छी व्यंजना प्रस्तुत करते हैं। अतः उत्साह को भारती से अभिप्रेत मानना युक्तियुक्त ही है। साथ ही कंगव ने वीर को शृंगार व अग व रूप में भी दिखाया है। इसके लिए भी कंगिकी की समीचीन वृत्ति भारती ही अधिक उपयुक्त है।

इसी प्रकार अद्भुत को भी कंगव ने भारती और सात्वती से सम्बद्ध माना है। अद्भुत को भरत और रामचन्द्र गुणचन्द्र ने कवन सात्वती के साथ ही सम्बद्ध किया है। किंतु काय में वस्तु स्थिति यह है कि शृंगार के अंतर्गत भी नायक नायिका के सौम्य व अद्भुत के चमत्कार का समावेश रहना है। अतः स्वतंत्र अद्भुत के लिए सात्वती का क्षेत्र स्वीकार करने हुए भी शृंगार के अग अद्भुत के लिए कंगिकी के निकट की भारती वृत्ति ही स्वीकार की जानी चाहिए अतः अद्भुत के निकट की सात्वती नहीं। साथ ही कंगव ने अद्भुत को रसिकप्रिया में शृंगार के अग्ररूप में ही प्रस्तुत किया है अतः उसका स्थान ठीक भारती के बिना हो नहीं सकता। यही कारण है कि कंगव ने अद्भुत के लिए भारती और सात्वती दो वृत्तियाँ स्वीकार कीं।

चौथा रस रौद्र है जो कि दो वृत्तियाँ के साथ स्वीकार किया गया है। कंगव रौद्र में सात्वती और अतः अद्भुत दोनों वृत्तियाँ मानते हैं। संस्कृत के अर्थ में भी आचाय रौद्र का अर्थ व गीता रीति पर्याय वृत्ति और सात्वती से ही जोड़ते हैं। भरत और धनजय भी कवन अतः अद्भुत में ही उस सम्बद्ध करते हैं। रामचन्द्र-गुणचन्द्र ने रौद्र को सात्वती और अतः अद्भुत दोनों में सम्बद्ध किया है। रीतिवादी की रस धारणा में रस विकार का एक कारण गणवाक्य का प्रभाव भी हो सकता है अर्थात् यह स्वीकार किया जाना कि रसमात्र मन्त्र रसापयोगी है। रौद्र की अभिव्यक्ति अोजस और प्रमाद दाना की परिधि में घटा जाता है। कंगव के लिए एक कारण और हो सकता है। उन्होंने रौद्र को शृंगार के अग्ररूप में प्रस्तुत करने हुए यह अर्थ रूप में प्रस्तुत किया है यत् हम रस विवेचन में देखेंगे। शृंगार के अग्ररूप रौद्र में उनकी रस्यता का अद्भुत अर्थ है कि रसमात्र अतः अद्भुत में अर्थात् रस है। अतः रौद्र के लिए कंगव मा वृत्ति और अतः अद्भुत दोनों वृत्तियाँ स्वीकार करते हैं। अतः ध्यान रखना चाहिए कि कंगव के अनुसार

सात्वती का मूल आधार प्रसाद गुण है जिस ओजोमिश्रित प्रसाद समझना चाहिए ।

यहा एक प्रश्न उठना स्वाभाविक है यदि अतर्भाववाद की आवश्यकताओं के अनुरूप कविवर हास्य और अभूत और रोद के लिए दो दो वक्तिया स्वीकार कर सकते हैं तो अथ रसा के लिए क्यों नहीं ? कविवर न शृंगार कवण गात भय और बीभत्स के लिए केवल एक ही वक्ति स्वीकार की है ।

यह आक्षेप हलका नहीं है । फिर भी इस सवथा इसी रूप में मगत स्वीकार नहीं किया जा सकता । शृंगार का उसका कोमलतम पद से हटाने का प्रश्न ही नहीं उठता । कवण चाह स्वतंत्र हो चाह शृंगार का अंग उभक लिए कविकी का ही एक अंग है । नेप गान्त भय और बीभत्स के विषय में एक आक्षेप का स्वीकार किया जा सकता है । अतर्भूत गात का मन्वय कविकी में भा होना चाहिए था हम यह आवश्यकता पीछे अनुभव कर चुके हैं । अतर्भूत भय और बीभत्स के लिए या प्रसाद भयी शली में यक्त भय और बीभत्स के लिए भी आरंभटी के साथ ही सात्वती वक्ति भी स्वीकार की जा सकती थी । किंतु कविवर न ऐसा नहीं किया । इससे उनका निरूपण में कुछ कमी अवश्य आ जाती है ।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव का वक्ति विवचन गास्त्र और विचारा की मौलिक आधार भूमि पर प्रतिष्ठित है । उसके सम्बन्ध में निम्नवत् निकासते हुए हम निम्न बातें कह सकते हैं—

१ कविवर ने अपने वक्ति विवचन में कविकी आदि नाट्य वक्तिया को अपना कर भी उन्हें काव्य वक्तियों के रूप में स्वीकार किया है । उनका गात-वक्तिया से सामंजस्य करत हुए गात वक्तिया के मन में ही उठाने का प्रयास किया है । ऐसे प्रयास उनके समकालीन युग में भी चल रहे थे ।

२ कविवर न गास्त्र की मापताया का विवक के साथ अपनाया है । वे ग्रहण करते समय प्राचीन और नवीन दोनों उपलब्धियों को उपयागिता की दृष्टि से देखते हैं कवन अर्थात् की दृष्टि से नहीं । कविवर गास्त्र और विकास दोनों की चेतनाया के प्रति पूर्ण जागरूक हैं ।

३ अथ आचाय जरा विविक्त रस-सम्बद्धता में एक रस को किसी एक ही वक्ति से सम्बद्ध किया है कविवर न ४ रसों को दो-दो वक्तियों से सम्बद्ध किया है । यह सम्बन्ध निर्धारण तर्क युक्त एवं मौलिक है । यदि गान्त भय और बीभत्स का भी दो वक्तियों से सम्बद्ध किया जाता तो उनका विवचन इस दृष्टि से पूर्ण हो सकता था ।

४ कविवर का वक्ति का रस में सम्बन्ध निर्धारण उनके द्वारा म्यापित सभी रसों के शृंगार में अतर्भाव में प्रभावित है ।

५ कविवर का यह निरूपण सन्निहित हीन है भी उनका व्यापक शास्त्र ज्ञान मौलिक विचार स्पष्ट व चपल शक्ति एवं व्यापक दृष्टिकान का सबत दता है ।

उदाहरणों का सामंजस्य

अथ तब हमने कविवर के वक्ति निरूपण के शास्त्रीय पक्ष की चर्चा की । अब

हम यहा उनक द्वारा प्रस्तुत इन वक्तियो के उदाहरणो एव उनकी सहायता के साथ सामजस्य की चर्चा करना चाहत हैं । केगव ने इनक निम्न उदाहरण दिये हैं—  
कश्मिरी—

मिलिबे कौं एक मिली मिली फिरें दूतिकानि  
मिलि मन हो मन बिलास बिलसति हैं ।  
बोलिबे कौं एक बोल बोल मुनिबे कौं एक  
बोलि बोलि तोरथनि वतनि बसति हैं ।  
देखिबे को फिरें एक देवता सो दौरि दौरि  
देवता मनाइ दिन दान मनसति हैं ।  
कीज पहा परम को इहि रूप मेरो माइ  
ये तो मेरे काह जू के नामहि हसति हैं ॥<sup>१</sup>

भारती—

पाननि कनक पत्र चक्र चमकत घाट  
धुजा भलमुली भलकत अति मुखदाइ ।  
केसव छवीली छत्र सोसफल सारथी सो  
केसरि की आड अधिरथिक रची बनाइ ।  
नीकोई नकीय समनीकी नकमोती नाक  
एक ही बिलोकनि गुपाल तो गये बिकाइ ।  
लोचन बिसाल भाल जरित जराऊ टीकी  
मानो बडयो मीनन के रथ मनमयराइ ॥<sup>१</sup>

साथती—

केसवदास लाल लाल भातिन क अभिलाष  
बारि व री बाबरी न बारि हियौ होरी सो ।  
राधा हरि केरी प्रीति सब त अधिक जानि  
रति रतिनाथ हू म देखौ रति थोरी सो ।  
तिन मह भद न भवानि हू प पारयो जाइ  
भनत मे भारती की भारती है थोरी सो ।  
एक गति एक मति एक प्राण एक मन  
देखिबे कौं देह द्व हैं नानि की जोरी सो ॥<sup>१</sup>

आरभटी—

घरि घन घन घोरत सजस उजल कजल की रुचि राच ।  
पूने फिर इन स नभ पाइक सावन की पहनी तियि पाच ।

१ कजल ३ ५० ३

बहि ५ ३

३ कथा ५ ३१

चोह कुषा तडिता तडप डरथ वनिता कहि केसव साच ।

जाति मनो अजरमण बिना अज ऊपर कालकुटुबिनि नाच ॥<sup>१</sup>

इन उदाहरणा स गक वात स्पष्ट है । केगव न य उदाहरण रसिकप्रिया के उद्देश्य एव निरूपण-शाली के अनुरूप शृंगार के ही प्रस्तुत किये हैं । इनम जो अथ भावों का केशव की दृष्टि स कहिए, रसा का समावग हुआ भी है वह शृंगार के अग मूल रसो का ही है स्वतंत्र रसों का नहीं । अत इन सब की रीति सामान, गदावली एव वण योजना शृंगारारोपित सामग्री की छाया स मुक्त नहीं हो सकी है । आरभटी म भी समासी का अभाव है । केवल वर्णात्मक यमक या सयुक्त वर्णों के प्रयोग तक ही सीमित रहा गया है । अपने रस विवचन म जिस पद्धति स केगव ने अथ अगात्मक रसों क उदाहरण प्रस्तुत किए हैं उसी प्रकार यहा भी हुआ है । उदाहरण स्वरूप रोद की वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं, वियोग क अतमूल अभिव्यजना या अलंकार क रूप म ही हुई है । भारती क उदाहरण म भी वीर रस काम क युद्ध रसिक रूप क रूपक के रूप म ही आया है । इसी प्रकार कवि की उदाहरण म भी हास्य शृंगार का अग एव वाच्य कोटि म हो कर आया है ।

इम प्रकार इन उदाहरणा का सामजस्य केशव के अपने विंगप दृष्टिकोण और पद्धति के अनुरूप है । उस पद्धति एव दृष्टि को ध्यान म रख कर यह नि सकोच कहा जा सकता है कि उनकी ग्रास्त्रीयता अपरिसृत है एव निरूपण सफल है ।

### चित्रकाव्य

कविप्रिया के १६वें प्रभाव में दण्डी के ही आधार पर कतिपय चित्र रूपों का निरूपण केगव ने किया है । कुछ चित्र रूप अथत्र स भी अपनाये गय हैं ।

चित्र का बड़ा टेड़ा जजाल है । चित्र सागर म सयान भा डूब जाते हैं । यह रस हीन काव्य है । इसम यति-गण सम्य-धी तथा अच-अधिरादि का य-दोषो का विचार नहीं किया जाता ।<sup>१</sup> इनका उद्देश्य कुतूहलात्मक चमत्कार पदा करना होता है ।

केगव न चित्रकाव्य क अतगत तीन प्रकार क रूप अपनाये हैं । कुछ यमकों क प्रकार हैं कुछ प्रहेलिकाओं क रूप हैं तथा कुछ विनेप प्रकार क वच हैं । अधि काग सामग्री का आधार दण्डी हैं । सभी क रूप ग्रास्त्र-दृष्टि स ठीक हैं ।

केगव ने निम्न चित्रा का निरूपण किया है—

#### १ निरोपक

इममें ओप्यत वर्णों का प्रयोग नहीं हाना । दण्डी न चतु स्यानीय, त्रिस्यानीय, सिष्यानीय तथा एकस्यानीय चित्रा का उल्लेख किया है ।<sup>२</sup> केगव न केवल चतु स्यानीय को ही दियाया है ।

१ परास म , पृ० ६० १

२ कविप्रिया १६।१२ ३

३ कालाग्रा ३।८८ ८६, ६ ६१

४ कविप्रिया १६।५ ६

हम यहाँ उनके द्वारा प्रस्तुत इन वक्तियों के उदाहरणों एवं उनकी लक्षणों के साथ सामंजस्य की चर्चा करना चाहते हैं। कण्व ने इनके निम्न उदाहरण दिये हैं—

कश्मिकी—

मिलिबे कौं एक मिली मिली फिरें दूतिकानि  
मिलि मन ही मन बिलास बिलसति हैं ।  
बोलिबे कौं एक बोल बोलिबे कौं एक  
बोनि बोलि तीरथनि वतनि बसति हैं ।  
देखिबे को फिरें एक देवता सो दोरि दोरि  
देवता भनाइ दिन दान मनसति हैं ।  
कौज कहा करम को इहि रूप मेरी माइ  
दे तो मेरे काह जू के नामहि हसति हैं ॥<sup>१</sup>

भारती—

वाननि कनक पत्र चक्र चमकत घाए  
धुआ भल्लमुली भल्लवत बलि सुखदाइ ।  
केसव छबीलौ छत्र तीसफूल सारथी सो  
केसरि की आड अधिरथिक रची बनाइ ।  
नोकौई नकौब समनोकौ नकमोती नाक  
एक ही बिनोकनि गुपान ती गये बिकाइ ।  
लोचन बिसाल भाल जरित जराऊ टीकौ  
मानौ घटपौ मीनन के रथ मनमथराइ ॥<sup>२</sup>

सावती—

केसवदास लाल लाल भातिन क अभिलाष  
बारि द रो बारि न बारि हियौ होरी सो ।  
राधा हरि करी प्रीति सब त अधिक जानि  
रति रतिनाथ हू म देखौ रति थोरी सो ।  
तिन मह भद न भवानि हूँ प पारसो जाइ  
भनत मे भारती की भारती है थोरी सो ।  
एक मति एक मति एक प्राण एक मन  
देखिबे को देह दू हैं मननि को जोरी सो ॥<sup>३</sup>

आरभटी—

घरि घन घन घोरत सान उजल कजल की दधि राच ।  
फूज फिर इन स नम पाए सावन की पहनी तियि पाच ।

१ कण्व अं ५ ६

२ बडा ५ ६

३ बडा ५ ६१

घोड़ कुषा तडिता तडप डरप यनिता कहि बेसव साच ।  
जानि मनी वजरमण बिना व्रज ऊपर बालकुटुबिनि नाच ॥<sup>१</sup>

इन उदाहरणों से एक बात स्पष्ट है। कविवर्य नये उदाहरण रसिकप्रिया के उद्देश्य एवं निरूपण शली के अनुरूप शृंगार के ही प्रस्तुत किये हैं। इनमें जो अर्थ भावों या शब्दों की दृष्टि से कहिए, रसा का समावेश हुआ भी है वह शृंगार के अर्थ भूत रसों का ही है, स्वतंत्र रसों का नहीं। अतः इन सब की रीति सामान्य, गण्यवली एवं वण योजना शृंगारापेक्षित सामग्री की छाया से मुक्त नहीं हो सकी है। धारमटी में भी समाश्रय का अभाव है। केवल वर्णात्मक यमक या सयुक्त वर्णों के प्रयोग तक ही सीमित रहा गया है। अपने रस विवेचन में जिस पद्धति से कविवर्य नये अर्थ अर्थात्क रसों के उदाहरण प्रस्तुत किए हैं उसी प्रकार यहाँ भी हुआ है। उदाहरण-स्वरूप रस की वास्तविक अभिव्यक्ति नहीं, वियोग के अन्तर्भूत अभिव्यञ्जना या अलंकार के रूप में ही हुई है। भारतीय के उदाहरण में भी वीर रस काम के युद्ध रसिक रूप के रूपक के रूप में ही आया है। इसी प्रकार कविवर्य उदाहरण में भी हास्य शृंगार का अर्थ एवं वाच्य कोटि में ही रखा गया है।

इस प्रकार इन उदाहरणों का सामान्य अर्थ के अर्थ विचार दृष्टिकोण और पद्धति के अनुरूप है। उक्त पद्धति एवं दृष्टि को ध्यान में रख कर यह निम्नोक्त कहा जा सकता है कि उनकी ग्राह्यता अपरिचित है एवं निरूपण मन्द है।

### चित्रकाव्य

कविप्रिया के १६वें प्रभाव में दण्डी के ही आधार पर कविप्रिया चित्र रूपों का निरूपण कविवर्य ने किया है। कुछ चित्र रूप अर्थ में भी अर्थनायक हैं।

चित्र का बड़ा टेढ़ा जजाल है। चित्र सागर में मयान भी शूद्र जात है। यह रस हीन काव्य है। इसमें यति-गण सम्बन्धी तथा अर्थ-व्यथिराति का-व्य-गणों का विचार नहीं किया जाता।<sup>१</sup> इनका उद्देश्य सुनूहलात्मक चमत्कार पना करना है।

कविवर्य नये चित्रकाव्य के अन्तर्गत तीन प्रकार के रूप अर्थनायक हैं। कुछ रसों के प्रकार हैं कुछ प्रहेलिकाओं के रूप हैं तथा कुछ विचार प्रकार के रूप हैं।<sup>२</sup> इसका सामान्य अर्थ आधार दण्डी है। सभी के रूप सामान्य-दृष्टि में गण्य हैं।

कविवर्य नये चित्रों का निरूपण किया है—

#### १ निरोपक

इसमें अर्थपूर्ण वर्णों का प्रयोग नहीं होता। अर्थ नये अर्थ-व्यथिराति का-व्य-गणों, अर्थ-व्यथिराति तथा एकस्यानीय चित्रों का उल्लेख किया है।<sup>३</sup> कविवर्य नये अर्थ-व्यथिराति का-व्य-गणों को ही दिया गया है।

१ कविवर्य अ०, पृ १०१

२ कविप्रिया १६।१२३

३ काव्याग ३।८८ पं ६ ११

४ कविप्रिया १६।५६



## २ मात्रा रहित

इसमें बंगव न कवन प्रकारमात्रिक का उदाहरण दिया है।<sup>१</sup> दण्डी ने चार स उकर एक मात्रा तक क चित्र दिवाए हैं।<sup>१</sup>

## ३ एकादि गद

इसमें बंगव ने एक दो तथा तीन वर्णों से बने गणों का प्रयोग लिखाया है।<sup>१</sup> दण्डी ने ४ ३ २ १ वर्णों के पद्यों के चित्र प्रस्तुत किये हैं। किंतु बंगव और दण्डी के इस रूप में अंतर है। दण्डी किन्ती विगिष्ट वर्णों को सम्पूर्ण पद्य में प्रयुक्त करत हैं जबकि बंगव किन्ती भी वर्णों की निश्चित संख्या तक ही सीमित रहते हैं।<sup>१</sup> या तो बंगव के उदाहरणों में कुछ न कुछ चित्रात्मकता है किंतु दण्डी के रूपों की भी नहीं।

## ४ षड्विंशतिरादि एकाक्षरात्

इसमें बंगव ने एस विभिन्न २६ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं जिनमें २६ से लेकर १ ही वर्ण तक का प्रयोग हुआ है।<sup>१</sup> दण्डी ने एस चित्र भेद का उल्लेख नहीं किया। दण्डी के वर्ण-सम्बन्धी चित्रों का सम्बन्ध वर्णों की संख्या के साथ निश्चित रूप से है। बंगव के वर्ण चित्र कवल वर्ण-संख्या पर आधारित हैं।

## ५ बहिराक्षरात् अक्षराक्षरात् गुप्तोत्तरी एकाक्षरोत्तरी व्यस्त तमस्तोत्तरी अपस्त गतागतोत्तरी शासनोत्तरी प्रश्नोत्तरी।

य नष्ट प्रहेलिकाओं से ग्रहण किये गए हैं। इन प्रहेलिका रूपों में निस्सन्देह चित्रता की प्रधानता है। दण्डी ने प्रहेलिका के १६ निर्दोष तथा १४ सदोष भेदों का उल्लेख किया है।<sup>१</sup> वराह मिहिर के अनेक भेद मानते हैं। उन्होंने इन नामों की प्रहेलिकाओं का निरूपण तो नहीं किया किंतु

१ कवप्रया १६। ७८

२ कावप्रया ३। ८४ ८१ ८६ ८७

३ कवप्रया १६। ६१ ११ १२ १३

४ कावप्रया ३। ६२ ६ ६४ ६५

५ अक्षरानुसन्धेय प्रहेलिका—ब्रह्मना नन्दना एतन्नामना ब्रह्मनाम्नि । काव्या ३। ६

बंगव—अक्षर भूयः कश्चिन्नामना एतन्नाम्नि ।

नामनामना कश्चिन्नामना एतन्नाम्नि ॥ काव १६। १२

६ कावप्रया ६। १४ ६

७ कावप्रया १। ४३ ६७

८ कावप्रया ३। ६२ ६ ६४ ६५

९ प्रहेलिकाभेद । अक्षरानुसन्धेय ॥ ३। १६

सूचनात्मक सवत अवश्य दिया है। काव ने इन्हें अथत्र स ग्रहण किया है।

६ गतागत—गतागत एकाय  
गतागत अनेकाय,  
गतागत चतुष्पदी  
त्रिपदी प्रतिलोम

य भद यमक पादों व आगतन तथा आनुलोम्य प्रातिलोम्य म वनत हैं। अनुलोम प्रतिलोम व स्थान पर काव न गतागत गद का प्रयोग किया है। य चित्रभट्ट दण्डी पर आगत हैं। दण्डी न इस जाति व यमक चित्रा व अनक प्रकार लिखाय हैं। काव न बहुत यो ही लिय है।

७ सवतोभट्ट चत्रवध कमल  
वध धनुष व ध पयत व ध  
सवतोमुख हारवध, डमरु-  
वध मन्त्रीगतिवध

काव न इन ६ वर्धों व उदाहरण लिय हैं। इनक निरूपण यत्र तत्र विभिन्न काव्या म भी मिलत हैं। दण्डी न सवतोभट्ट का उल्लेख किया है। य वध वर्णों की विगिष्ट स्थितियों व द्वारा रचे जात हैं।

### कविगिषा

कविगिषा वस्तुत काव्यशास्त्र का मूल अग नहीं है पर मस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास इस बात का साक्षी है कि यह अग उसन प्रारम्भिक युग स ही उमन साथ सलग रहा है और अग चल कर आकलयकतानुरूप प्रमुख रूप स भी विकसित होता रहा है। फलत हम कई एस अ य उपल ग होन हैं जो प्रमुखत कविगिषा व ही कह जा सकत हैं।

काव्यशास्त्र व कर् उद्ग्या म न तीन प्रमुय हैं एक तो स्वय काव्य चिकीषु कवि को काव्य रचना विधि की गिषा दना दूसर पाठक मामाजिक का काव्यास्वादन की योग्यता एव कुत्रता दना तीसर समानोचक को काव्य ममीषा करन व तिए मान-दण दना। इन उपयोगितावाणी उद्ग्या व अनिरिक्त काव्यशास्त्र एक शास्त्र या विज्ञान व नात भी कवल ज्ञान की खातिर काय तत्त्वा का स्वरूपविवक करता है। यह पिछना काय परोभत ही उपयोगितावात् व भीतर आता है।

कवि पात्र व और समानोचक न त्रिय जब काव्यशास्त्र सिद्धातों नियमा और रूपा का परिचय प्रस्तुत करता है तव वह गिषाकत्व व अधिक ममीप होता है। विगतत हम नर म काव्यशास्त्र का विकास अण्य माहित्य व कनात्मक स्वरूप व विकसित हो जान पर ही सामन आता है। मस्कृत काव्यशास्त्र का इतिहास इस बात

१ इति प्रविक्रमाणा लक्षणाभिर्निर्दिता ।

विश्व-सागरादेवा भागा प्रनासरात् ॥

वही, इ । अन्तिम पद्य

काव्यशास्त्र लक्ष्मी ३। ७३, ७४, ७५, ७६

२ कविगिषा १६। ३८ ७६

४ कविप्रिया १६। ७७ ८६

का साक्षी है।

भारतीय काव्यशास्त्र के उपलब्ध आदिम ग्रंथ भारत के नाट्यशास्त्र का मूल स्वर नटक लिए नाट्य कला की शिक्षा का है। काव्य से सम्बद्ध भामहादि के प्रारम्भिक ग्रंथों में भी इस स्वर की कमी नहीं है।

कालिदासोत्तर सस्कृत काव्य में कृत्रिमता और कला-पक्ष का विकास उत्तरोत्तर बढ़ता गया है। इनमें जो कला पक्ष के पोषक साधन अपनाये गये हैं वे इस बात के प्रमाण हैं कि उनके रचयिताओं के सामने कोई न कोई ग्रंथ अवश्य ऐसे था जो इन चमत्कारी साधनों की शिक्षा कवियों को देत थे। भामहू और दण्डी के ग्रंथ प्रमुखतया उन विषयों का परिचय कराते हैं जो एक कवि को काव्य रचना में सहायक होते हैं। जैसे अलंकार दोष चित्र-काव्य के विविध रूप रचना की गलियाँ आदि।

अस प्रकार काव्यशास्त्र का उदय अथवा साहित्य के कलात्मक स्वरूप के अधिकाधिक विवसित होते जाने के कारण कविशिक्षा की एक सम्मुखीन आवश्यकता के पक्षस्वरूप होता है जो कभी-कभी आत्म निरीक्षण और आत्म-स्वरूप विश्लेषण के रूप में साथ ही दूसरा पक्ष भी मिला रहता है। आत्म-दवधन के ग्रंथ और उसके उपरांत के ग्रंथों में आत्म विश्लेषण वाला चिंतन पक्ष बढ़ता जाता है कविशिक्षा का स्वर उतना सबल नहीं रह जाता।

अतः यह कह सकना अत्यंत कठिन है कि भारतीय काव्यशास्त्र में कविशिक्षा के अंग को कब से प्रारम्भ माना जाय और इसके मूल उदभावकत्व का अर्थ किस दिया जाय। जतना ही कहा जा सकता है कि प्रारम्भिक काल से ही यह उद्देश्य के रूप में पुनः मिता रहा है अथवा साहित्य की कला प्रवणता का परिचय देने के लिए पद्य काव्य के शास्त्र को जन्म देने में इसने भारी काम किया है। पर जतना ही होता है भी कवि शिक्षा का स्वरूप अधिक नहीं उभरा और सब मिला कर प्रारम्भिक ग्रंथों का रूप शास्त्र के अनुरूप ही रहा है।

भारत के टीकाकारों द्वारा रस की निरन्तर आत्मपक्षीय व्याख्याएँ एवं आत्म-दवधन तथा परवर्ती ध्वनिवादियों के द्वारा किये गये आत्मपक्षीय विश्लेषणों के फलस्वरूप काव्यशास्त्र का रूप शिक्षा की अपेक्षा विज्ञान की ओर मुड़ता दिखाई देता है। काव्यशास्त्र के इस मध्य युग के ग्रंथ सीधे कविशिक्षा से सम्बन्ध रखनेवाली बातों का उल्लेख बहुत हलके ढंग से करते हैं या नहीं भी करते। और इस प्रकार कविशिक्षा एक उपरिष्ठ प्रायः काव्यांग ही जाता है। किन्तु काव्य में कलावादी धारा समाप्त नहीं होती। मस्कृत अथवा अंग्रेजी और उसकी अनुवर्तिनी दार्शनिकों में यह कलावादी धारा के रूप में विकसित रहता है। राजदरबार और दूर सामाजिक जनों चमत्कारी कवि का पापण एक मात्रा में करते ही रहते हैं। अतः व्युत्पत्ति निमित्त कवियों की शिक्षा और धम्माम में महार सफलता के अवसर युग में बने रहते हैं। और यही कारण काव्यशास्त्र के प्रमुख ग्रंथों के आत्म प्रधान हो जाने पर भी शिक्षा काव्यांग की आवश्यकता समाप्त नहीं होना।

संस्कृत काव्यशास्त्र व अनेक प्रतिभांगानी व यकार एन युगीन आवश्यकताओं की धानी दत्त रहे और गिना प्रमुख ग्रंथों का निमाण करत रह है । आज व सब ग्रंथ हमें उपलब्ध नहीं पर हम उनकी एक परम्परा का उपयुक्त आवश्यकता व अनुसूच अनुमान कर सकत हैं । फिर भी कुछ उल्लेखनीय कृतिया उपलब्ध हैं । कुछ व नाम ही मिलते हैं कृतिया नहीं । यहा हम कविगिना म मन्वद्ध आचार्यों का उल्लेख कर रहे हैं । एन आचार्यों व भामह दण्डी आदि की कोटि व आचार्य नहीं हैं जिनक ग्रंथों व कविगिना का उद्देश्य गीण रूप म घुला मिला है । इनमें उत्तर युग व वे अलकारवादी या गृहारवादी और नायिकाभेद निरूपक आचार्य भी सम्मिलित नहीं है जिनका प्रमुख उद्देश्य अलकार शृंगार और नायिकाभेद व गिना ग्रंथ तयार करना था । संस्कृत काव्यशास्त्र व उत्तर युग म एत पिछली कोटि व छान्-मोट आचार्यों की सम्ख्या भी कम नहीं है । हम यहा ववल उन आचार्यों की खचा करना चाहत हैं जो काव्यशास्त्रीय ग्रंथों की बधी बधाई परम्परा म ही निरूपित विषयों की न खबर कविगिना व भीतर ध्यान वाले अथ सामाय विषयों का निरूपण करत हैं ।

### राजशेखर

राजशेखर का समय डा० एम० व० ड व अनुसार दगवी शनी है । कविगिना पर स्वतंत्र रूप स लिगी गयी उनकी पुस्तक अपन ढग की आगुगी अक्ली और सब प्रथम पुस्तक है । काव्यमीमासा म राजशेखर न अनेक एम विषया का निरूपण कवित्वमयी कल्पना व साथ किया है जिनका निरूपण अथ काव्यशास्त्रीय ग्रंथों म नहीं मिलता । दशम अध्याय स भाग ता काव्यमीमासा का स्वरूप मुख्यत कविगिनामय हो जाता है । काव्य व विषय, एक कवि द्वारा दूमरे कवि की सामग्री व हरण व कलात्मक उपाय एव रूप कवि-ममय जिनम देग काल और प्रकृति की विनेपताओं का ध्यान रखा गया है दग विभाग काल विभाग जिनम प्रकृति और अनुसूचों व अनुसूच विनेपताओं को स्पान विगप व स-दम म ध्यान रखा गया है, आदि धाने भीधी कविगिना व स्वतंत्र काव्याग स सम्बद्ध हैं । इन बाता म स अनेक वामन, धान-दवधन आदि प्राचीन आचार्यों व ग्रंथा म भी निरूपित हैं । किन्तु राजशेखर न उहें एक व्यवस्थित काव्याग निरूपण व भीतर रख कर प्रस्तुत किया है । राजशेखर का कविगिना व स्वतंत्र काव्याग का प्रथम आचार्य कहा जा सकता है ।

### शेखर

शेखर गता क उलगाय म अवस्थित आचार्य शेखर व श्रीचित्त विचार खचा और कविगिनामरण नामक ग्रंथों म कविगिना व तत्त्व बडे मृक्षर रूप म प्राप्त हात है । यद्यपि शेखर काव्यशास्त्राय ममभ्याओं व आत्मिक पण पर भी पूण दृष्टि रखत हैं फिर यह पण भा पर्या-उ प्रमुख है ।

## जयमगल

१३वीं शती के अन्त में आचाय जयमगल की कविगिज्ञा नामक कृति का उल्लेख मिलता है। श्रम्य का नाम ही उसका विषय का निरूपक है। कृति उपलब्ध नहीं है।

## अरिसिंह और अमरचंद्र

१३वीं शती के मध्य में श्वेताम्बर जन आचार्यों अरिसिंह और अमरचंद्र की सम्मिलित कृति काव्यकल्पलता वृत्ति एक उल्लेखनीय कृति है। मूल श्रम्य का नाम 'कवित्तरहस्य या काव्यकल्पलता' है जिसका एक अंग की पूर्ति अमरचंद्र ने की थी। साथ ही अमरचंद्र ने कविगिज्ञावृत्ति का नाम से इस पर अपनी टीका भी लिखी थी। इस कृति में नौसिखिए कवियों के लिए गिज्ञा की प्रचुर सामग्री है। छन्द और अलंकार के परिचय के साथ यह कृति विविध प्रकार के श्रम्य चातुय प्रहलिका श्लेष अनुप्रास चित्र आदि कविसमय तथा श्रम्य प्रकार के वण्य विषयो एवं वणन विधियों की सूचना इसमें निहित है। पंचम प्रतान में काव्य के अनेक वणनात्मक विषयों का परिचय है जिनमें राजा मात्रा राजकुमार, सना युद्ध आसुट आदि के साथ-साथ नगर उपवन सरिता तडाग आदि की भी चर्चा है। अंतिम प्रतान में उपमय भूत विविध अंगों के लिए नाना उपमानों की तालिकाएँ दी गई हैं।

काव्यकल्पलतावृत्ति कविगिज्ञा का एक बड़ा प्रभावशाली श्रम्य रही है परवर्ती कई आचार्यों ने उस आधार बनाया है।

## देवश्वर

१३वीं शती के अन्त में अमरचंद्र से लगभग ५० वर्ष बाद आचाय देवश्वर ने कविकल्पलता नामक श्रम्य की रचना की। यह श्रम्य उपयुक्त काव्यकल्पलता वृत्ति में निरूपित अमरचंद्र की वाता की ही आधार बनाकर चला है।<sup>१</sup>

## राघवचैतन्य

राघवचैतन्य का नाम से एक कविकल्पलता का उल्लेख मिलता है<sup>२</sup> जिसका आधार सम्भवतः देवश्वर की कविकल्पलता है। यह रचनाएँ अमरचंद्र की परम्परा के नरतय का सूचना देती हैं।

## गंगादाम

छान्दोग्यी के अन्त में आचाय गंगादाम के द्वारा एक कविगिज्ञा की रचना का भी उल्लेख मिलता है।<sup>३</sup>

१ म. इ. प. शि. म. प. म. क. ड, भा. २ पृ० २८६

२ बदा भा. १, पृ० २६५

३ बदा भा. १ पृ. २६०

### केशवमिश्र

अरिसिंह अमरचंद्र की कृति का 'यकल्पलतावत्ति' क उपरांत कवमिश्र क 'अलकारगोखर' का नाम महत्त्व की दृष्टि से उल्लेखनीय है। यह महत्त्व इसलिए नहीं कि एमम विहीं विगिष्ट भौतिक बातों की चर्चा हो अपितु इस दृष्टि से कि काय चिकीपुत्रा क लिए यह ग्रंथ भी विगपत अध्यय रहा है।

'अलकारगोखर' म या अपने पूर्वाचार्यों क आधार पर काव्यशास्त्र क आधारभूत अगों उपागों की भी चर्चा है पर अमरचंद्र की परम्परा की गिशा सामग्री भी प्रचुर मात्रा म प्रस्तुत की गयी है। का यकल्पलतावत्ति से कवमिश्र ने पर्याप्त सामग्री ली है। वण्य विषया से सम्बद्ध अनेक चीजों की तालिकाएँ हैं। इनमें से कई 'का यकल्पलता वत्ति' मे से भी ह कई उमकी तालिकाओं से पूरा मल नहीं भी खाती हैं। अतः अनुमान किया जा सकता है कि इसी परम्परा क अथ भी ग्रंथ रहे होंग जिनका आधार कवमिश्र ने रिया है। १ वीं मरीचि म उपमा क प्रसंग में नाना अगोपमान चौदहवीं मरीचि में राज लक्षण पन्हवीं में कवि-समय १६वीं में राज वग की तथा ऋतु सम्बन्धिनी सामग्री सत्रहवीं मरीचि म वर्णों क आधार पर विभिन्न वर्ण्य पत्रार्थों की तालिकाएँ, अठारहवीं में एक से एक सहस्र तक की सख्या वाल पदाथ अन्ति क निरूपण इस दृष्टि से विगेष उल्लेखनीय ह।

कवमिश्र के इस ग्रंथ की रचना १६वीं गती क उत्तरार्ध म हुई थी।

### केशव और कविशिक्षा

इस प्रकार हम रसत हैं कि आचार्य कव क सामन काव्यशास्त्र क एक विकसित अग क रूप म काव्यशास्त्रीय गिशा-ग्रंथा की परम्परा विद्यमान थी। गिशा ग्रंथों का उद्देश्य विषय की बहुत गहराई म जाना नहीं था। ये एम विषया का निरूपण प्रस्तुत करते हैं जा काव्यशास्त्र के परम्परा भूक्त विषय नहीं हैं तथा सामान्य कोटि क कवियों क निय विविध प्रकार की हनकी तालिकाएँ प्रस्तुत करत है और युत्पत्ति और अम्यास के बल पर कवि बनाने का माग सामने रखत है। इनका मूल्याकन और महत्त्व भी इसी दृष्टि से है न कि काव्यशास्त्र की मूल प्रकृत चतना को सामने रख कर।

कव क सामन भा कविगिशा का गुणीन आवश्यकता थी। हिंदी का काव्य प्रतिभा क प्रकृत क्षत्र म युत्पत्ति क क्षत्र की ओर वृत्त चला था। राव्यात्रय एव जन रचि शास्त्र-कवियों का सम्मान दे रह थे। हिंदी म अनेक काव्यविकीप इस क्षत्र की गिशा की अपेक्षा रखत थे। मसूरत क काव्यशास्त्रीय ग्रंथों म अथगाहन करन की क्षमता उन म नहीं हिंदा म कोई अछा ग्रंथ एम कोटि का था नहीं। कव ने एत ही अनेक भाषा-कवियों की आवश्यकता पूर्ति क लिए ससृत काव्यशास्त्र म निरूपित मसूरत शिक्षा-सामग्री को टटोला और उस अनेकी दृष्टि से सजो कर कवि प्रिया और अदमाला क रूप म प्रस्तुत किया। कविप्रिया की रायप्रवीण एम ही

भाषाकवियों की प्रतीक एवं प्रतिनिधि है।

कंगव की शिक्षा सम्बन्धी सामग्री का आधार ग्रन्थ दोनों ही प्रकार का है। भामह दण्डी आदि प्राचीन अलंकारवादियों तथा अलंकार-नायिकाभेद शृंगार व विविध नवीन आचार्यों के ग्रन्थों का सहारा लेते हुए उन्होंने अलंकार चित्र-काव्य दोष छन्द आदि का परिचय दिया। रस विषयक उपलब्धियों का आधार पर रस नायिकाभेद आदि विषयों का निरूपण में भी गौण रूप से यह शिक्षक रूप घुला मिला रहा। किन्तु इन गौण रूपों के अतिरिक्त उन्होंने उन शिक्षा विषय से सम्बद्ध बातों का निरूपण भी किया जो काव्यशास्त्र के प्रकृत क्षेत्र से कुछ अलग सी चली आ रही थीं और परम्परावादी काव्यशास्त्रीय ग्रन्थ जिनकी चर्चा नहीं किया करते थे। ऐसी चर्चाओं के लिए केशव ने संस्कृत के उपयुक्त काव्यकल्पलतावृत्ति और अलंकारालंकार आदि ग्रन्थों को ही आधार बनाया है।

किन्तु कंगव के द्वारा इस समस्त सामग्री का निरूपण और प्रस्तुत करने में एक विशेषता है। उन्होंने समस्त निरूपणों को दृष्टिकोण की एकसूत्रता में बाधने का प्रयास किया है। इसके लिए उन्होंने प्राचीन आचार्यों के अनुरूप अलंकारत्व की एक-यापक दृष्टि से अपनाकर वष्य एवं वणन गली दोनों पक्षों को उनमें समाहित किया है और अलंकारों के दो बग बनाय हैं—सामान्य और विशेष। सामान्यालंकारों के अंतर्गत उन्होंने चार बग बना कर संस्कृत के उक्त शिक्षा ग्रन्थों में निरूपित विविध वष्य विषयों को अंतर्भूत कर लिया है। दृष्टिकोण की यह एकसूत्रता प्रायः संस्कृत के उक्त शिक्षाप्रधान ग्रन्थों में नहीं मिलती।

अब हम यहां कंगव की कविशिक्षा सम्बन्धी प्रमुख बातों का एक संक्षिप्त परिचय प्रस्तुत करना चाहेंगे। इसके लिए हमारे सामने उनके आचार्यत्व सम्बन्धी तीनों ही ग्रन्थ हैं।

### कवि-समय

कंगव ने अनेक कवि समयों का एक कवि नियमों का कवि रीतियों के नाम से निरूपण किया है। यह निरूपण कविप्रिया व चतुर्थ प्रभाव में आता है।

कवि-सम्प्रदाय में परम्परा से स्वीकृत इन बातों की चर्चा कंगवमिश्र ने अपने अलंकारालंकार की १५वीं मरीचि में इस प्रकार का है

असतोऽपि निबन्धेन सतामप्यनिबन्धनात्।

नियमस्य पुरस्कारात् सम्प्रदायस्त्रिधा कवे ॥<sup>१</sup>

कवि-सम्प्रदाय का तीन रूप है सत् अर्थान् ताक में उपलब्ध वस्तुओं का काव्य में वर्णन न करना ताक में अर्थान् भी अर्थों का काव्य में वर्णन करना जिन्होंने विविध बन्धुओं का विविध दण्ड-कान्त-व्यक्ति के साथ ही सम्बद्ध कर नियम का साथ देना करना। कंगव ने भी कविप्रिया व चतुर्थ प्रभाव में वही तीन बातों को निरूपित है

साची वात न बरनहीं, भूठी बरननि बानि ।

एकनि बरनत नियम करि कवि-मत विविध बतानि ॥<sup>१</sup>

यहा काव न उक्ति को समत्वात्पूण बनान के लिए केवमिश्र क सत् और असत् को साचा और न्ठी कह कर अनूक्ति किया है । केवमिश्र न एष विषया की सूचिमा कुछ लम्बी दी है । अलकाराखर के अतिरिक्त अथ ग्रंथों में भा एन निरूपण हुआ करत थ । आचार्य काव केवमिश्र के निरूपण में स कुछ चार्जे लकर विषय का परिचय करा देत है मब के उदाहरण कहन स अथ ग्रंथ विस्तार का मय है । इम उपयोगितावादी दृष्टिकोण को काव न अपन सामन रखा है

सबके कहत उदाहरन बाड़ अथ अपार ।

बहू बहू ताते कह्यो कविकुल चतुर विचार ॥

काव न जिन बातों को लिया है व केवमिश्र की तालिका के प्रारम्भिक नो श्लोकों में वर्णित है । प्रत्येक मांगर म रत्ना का वणन मामाय स सरोवरा में भी हसों की चर्चा तमम की मूनता मुष्टिग्राह्यता सूचीभेद्यता चद्रिका की अजनि-अय मूनता की चर्चा काव न की है । इनके उदाहरण भी पद्या में स्थि ह ।

नियमों की काव की सूची कुछ लम्बी है फिर भी उननी लम्बी नहीं जितनी उनके आधार अथ केवमिश्र क अलकाराखर म है । फिर भी काव न अपनी निरूक्ति बातों के लिए आधार-ग्रंथों म स चयन किया है । मन्थ पर हा चन्त का वणन हिमालय पर ही भूजवन का देवताओं के अग-वणन का अम चरणों स तथा मानुषा का मिर न प्रारम्भ करता कुन्बपुष्पा को ही मन्त्र और गणितार्थों का ही निल-ज दिखाना आदि अनेक बाता को केव न लिखाया है । यहा इन मब बातों का उ-नख करना गणना करना उनक मून अर्थों क तथा मन्वृत अर्थों क मून ग-या का प्रस्तुत करना हम अपेक्षित भी नहीं और आवश्यक भी नहीं है । इन वणनों कव निरूपणों क विषय म यही समझना चाहिए कि कविगिणा स सम्बद्ध अथा म इम प्रकार की चर्चा हीनी चली आ रही थी । केव न भी उनका उसी परम्परा म निरूपित किया है ।

नगणित वणन

कावमिश्र ने अलकारखर में उपमाकार क प्रमणा म नारी क अर्थों क अनेक उपमान देने हुए नख गिणनिरूपण किया है । यह वणन पयाप्त विस्तृत है और कवि-पमताकार तथा गोवधन के आधार पर बनाया गया है माय ही अर्थों का आधार भी है । नारी क वणन क विषय म केवमिश्र कहते हैं

अ-साम्भ्रज-बाम-गिरीय विद्युत्तारा-कनक-नना थ ।

दमनक-कासनयष्टी दीप सबरेभियोंदिव अर्था ॥<sup>२</sup>

१ कविप्रिया ४।४

२ कही ४।८

३ अलकारखर, मरीचि १३, श्लो० १



कविप्रिया म कविवर ने भी १५ वें प्रभाव म उपमासकार के निरूपण प्रसंग म ही एन बातो की चर्चा की है । कशव के गद छायानुवाद भर हैं

चन्द्रकला उडु दामिनी कनकसलाका देखि ।

दोपसिला ओपधिलता माला धाता लेखि ॥<sup>१</sup>

पर कविवर ने अपने निरूपण मे एक विरोधता की है । उन्होंने इस विषय को परमानन्द भगवान् कृष्ण की आनन्द गति राधा क साथ सम्बद्ध कर दिया है ।<sup>२</sup> अतः उनका नखगिख वणन मानुषी योषित् का नहीं दवी योषित् का वणन हो जाता है । फलतः कविवर ने अग वणन चरणो से प्रारम्भ किया है जबकि केवविमिश्र क अलकारोत्तर म यह वणन गिर स प्रारम्भ होता था और उसम शृंगार के अन्तगत आने वाले एस विषय का भक्ति क्षत्र से कोई सम्बन्ध न था । कविवर ने इस प्रसंग म कवियों को सलाह दी है कि वे राधा को अष्टदेवता मान कर नख गिख वणन म प्रवृत्त हों कम स कम कविवर की अपनी आस्था इसी रूप म है

जग के देवी देव के श्रीहरि देव बलानि ।

तिन हरि की श्रीराधिका इष्ट-देवता जानि ॥<sup>३</sup>

कविवर अलकारोत्तर म वर्णित अगो या उनके उपमानों तक ही बंध कर नहीं रहे अपित भी उन्होंने कुछ लिया है । कवि परम्परा स परिवर्तित हान क नात तथा स्वयं एस क्षत्र क समय कवि होने क नात भी इस विषय पर वे बहुत कुछ स्वयं भी कह सकते थे । केवविमिश्र ने इन अगो का उल्लेख किया है तनु-व्यति कच गलाट कपोल मुख नासिका कण्ठ नेत्र ओष्ठ रद वाणी बाहु कर, नख उरोज नाभि वनी पृष्ठ अधन नितम्ब ऊरु अंगुष्ठ नख कटाक्ष हास्य श्वास नूपुरध्वनि । इन अतिरिक्त कविकल्पलताकार जिह्व थीपाद का अनुयायी कहा गया है तथा गोवधन क अनुसार कतिपय और बातो का भी उल्लेख किया गया है । केवविमिश्र की एन तालिकाओं म अनिवायत अगो तक ही निरूपण सीमित नहीं है हास्य और नूपुरध्वनि जसी चीजें भी हैं । कविप्रिया म कविवर ने अगो एन का वणन रखा है यावक एव यावकयुक्त चरण अगुली नूपुर जहरी, ऊरु नितम्ब कटि रोमराजी कुच मुज करभूषण नखानुलिमुञ्जिका महगीयुक्त हाथ श्रीवा श्रीवा भूषण, पीठ चिबुक अघर दगन हाम, मुखवाम मुखराग रसना वाणी कपोल नासिका नखमोती साचन अजन भ्रुदुग कण गुटिला निलार अलक मुखमण्डल गिर वणी बेंदी गिराभयण वसन अगदीप्ति गति और सम्पूर्ण मूर्ति । कविवर की यह तालिका बताती है कि उन्होंने अपने का अलकारोत्तर या किसी अन्य एक अन्य तक सीमित नहीं रखा अपितु प्रसंग धान पर सब और स सामग्री जुटा कर विषय को पूणता प्रदान का है । इसीलिए वे अपने विषय को नखगिख-वणन का एक साग नाम दे सके हैं

१ कविप्रिया म १६ पृष्ठ ११

२ इ वेमल परमानन्द की आनन्द-मक्ति किशो धरनि ।

आशर रूप मय धरन का राधा प्रकथा धरनि ॥ कवि वि १५।१३

३ कविप्रिया म १५ पृष्ठ ४

जो अलंकार गैतर आदि में नहीं है।

### सरया निरूपण

काव्य में ११ वें प्रभाव में 'गणनालंकार' के अंतर्गत एक स लेखक दस मध्या तक कथाओं का उल्लेख किया है। उदाहरण-स्वरूप आत्मा रवि चंद्र शुक्र-चक्षु गणेश-दत्त का एक ही माना जाता है। नन्ही के तट राम के पुत्र पक्ष खड्ग की धारें नय द्विजा के जन्म चरण भुजाए प्रशिवनीबुमार सलनी के डक सप की जिह्वाए धयन गजन्त चुकरड (हुमूही) के मुह कशागिमा—इनकी मध्या दो माना जाती है। इसी प्रकार काव्य में दश तक की सरया बाल पदार्थों की उल्लेखिए की है।

### ऋतुवर्णन (वारहमासा)

काव्य में कविप्रिया के दशम प्रभाव में आक्षेप अलंकार के अनेक रूपों का निरूपण किया है। इनमें एक रूप है गिशाधप। इसका प्रसंग में उन्होंने एक वारहमासा' उदाहरण किया है।

वारहमास का भीष्मा सम्बन्ध काव्यशास्त्र में नहीं है न ही गिशाधप अलंकार में है। वह काव्य के कवि रूप में अधिक सम्बद्ध है। इस कवि रूप को हम कवि गिशा के रूप में भी स्वीकार कर सकते हैं। क्योंकि कविगिशा कविप्रिया का एक सामान्य उद्देश्य रही है, अतः इस वारहमास का उदाहरणरूप में प्रस्तुतीकरण भी भाषा-कवियों के लिए गिशा के रूप में भी समझा जा सकता है। इसी अनुसंधान से हम कविगिशा के अन्तर्गत उमकी चर्चा कर रहे हैं।

यह वारहमासा विद्योग वर्णन के रूप में नहीं है जसा कि प्रायः हिन्दी के वारहमासे पाय जाते हैं। नायक नायिका में विद्युत् होकर विदेग जाना चाहता है। इस विद्योग भय के प्रसंग में फिर भी इसका सम्बन्ध अवश्य है। नायिका प्रत्येक मास में तत्तत्कालीन ऋतु-पदार्थों की उद्दीपनता सामने लाकर तथा अथ व्यजनापूर्ण ढंगों में नायक के विद्येग-भयन को रोक देती है। इसीलिए इस वारहमास को गिशा-धप के अंतर्गत रखा गया है। यहाँ एक उदाहरण पर्याप्त होगा

फूलो सतिवा सलित तरुनितर फले सदबर।

फूलो सरिता सुभग, सरस फूले सब सरधर।

फूलो कामिनि कामरूप करि कतन पूजहि।

मुक सारो कुल हसति फूलि कोबिल बल कुजहि।

बहि बसव एतो फूल मह सुल न पूजहि साइए।

विष प्रापु घलन की बा घली चित्त न घत घलाइए ॥'

इसी पद्यों पर विभिन्न ऋतुओं की उद्दीपन सामग्री द्वारा प्रत्येक मास में

१ कविप्रिया, प्र० १०, गिशाधप के विविध उदाहरण

नायक व विदग्ध-गमन को रोकने या आक्षिप्त करने का प्रयास किया गया है। वणन चत्र स प्रारम्भ होकर फाल्गुन पर समाप्त होता है।

कविवर ने अनकारणोत्तर में भी उस प्रकार की तालिकाएँ दी हैं जिनमें एक स लेकर १६ तक तथा अठारह बीस सौ और एक सहस्र सख्या तक क पद्या गिनाए गए हैं। सम्भवत वहाँ १७ और १७ सख्या क पदायों का उल्लेख करने वाली पत्तियाँ लिपिकारों का असावधानी से कभी च्युत हो गई है। कविवर क उल्लेख स स्पष्ट है कि इस प्रकार की चर्चा उठोने ही नहीं की अपितु वह कविशिक्षा क भीतर एक परम्परा बन चुकी है

उदाहरणमेतेषां प्रसिद्धत्वान्न न लक्ष्यते।

प्रवृत्ते केवल पाया मादगा कायवत्तमनि ॥<sup>१</sup>

पर कविवर ने इस वणन को गणनालकार नहीं कहा है उठोने इसे सख्या-नियम नाम देकर कवि नियमों क अन्तगत रखा है और 'सख्यानियममरीचि क नाम स अलग एक मरीचि में उनका वणन किया है। पर कविवर ने विणिष्णालकारों क भीतर इस विषय को अनुगणना अलकार कहा है।

अनुगणना सो कहत हैं जिनके बुद्धि प्रकास।<sup>१</sup>

नियम या अलकार कहे जाने क लिए किसी विणिष्णता या चुनाव का आधार होना चाहिए। अत उस कोटि में व ही पदाय रखना उचित रहता जो काय में एक विणिष्ण परम्परा क रूप में निश्चित सख्या में मान जाते है या लोक में जिनका सख्या किसी विणिष्ण मायता क अनुरूप स्वीकृत है। उदाहरणस्वरूप गणना क दान या पुत्र की दृष्टि की बात ली जा सकती है। इस प्रकार की वस्तुओं को नियम भी कहा जा सकता है और कविवर क व्यापक दृष्टिकोण के अनुरूप अलकारों का। कविवर की तालिकाओं में प्राय ऐसी ही वस्तुएँ सबलित हैं जिनक विषय में कुछ न कुछ उल्लेख विणिष्णता प्रचलित है। पर कविवर ने कविप्रिया की तालिकाओं में अत्यन्त सामान्य और सब प्रचलित वस्तुएँ भी परिगणित कर ली हैं जिनक विषय में नियमत्व या अलकारत्व स्वीकार नहीं किया जा सकता। उदाहरणस्वरूप दो सख्या वाल पदायों में करा नेत्रा और भुजाया को गिनना लिया जा सकता है। पर कविवर की तालिकाओं में भी कुछ न कुछ ऐसी सामग्रि सम्मिलित है। जस दण सख्या में दण अनुलिया का लिया है दो सख्या में भुजाया की बात उठोने भी कही है। अत यह कभी परम्परागत दृष्टिकोण की ही समझनी चाहिए।

### सामान्यालकार

हम पीछे कह चुके हैं कि कविवर ने अलकार क विषय में अत्यन्त प्राचीन दृष्टिकोण अपना कर उसकी परिधि में काव्य क वष्य विषयों को भी समेट लिया है। इसक चार उदाहरण बनाय गए हैं वण वष्य भूथी राजथी। इन चार उपवर्गों

१ मरिचि १० पृ ३३

२ कविप्रिया प्र ११।१

म उहाने सस्कृत के कविशिक्षा के विविध ग्रन्थो म निरूपित विविध वण्य विषयो की सामग्री को संयोजित करके समाहित किया है। अतः १६वीं १७वीं शती के आलोचना के विकसित युग म अलंकार का प्राचीन अर्थ लेना चाहे उपयुक्त न रह गया हो किंतु कविशिक्षा के विविध विषयो की काव्यशास्त्र की मूल समस्याओं के साथ समझस रूप म वर्णित कर सकने का एक सफल माग केशव के द्वारा अवश्य प्रस्तुत कर दिया गया है। अलंकारशेखर आदि सस्कृत के कविशिक्षा के ग्रन्थ इन बातों की चर्चा प्रायः बिखरे और अप्रयत्न रूप मे करते हैं।

### वर्णालंकार

वर्णालंकार के भीतर केशव ने श्वेत पीत कृष्ण, अरुण धूसर नील एव मिश्रित इन ७ वर्णों की वस्तुओं को वर्णन के लिए काव्य विषयो के रूप म वर्णित किया है। यह वर्णन कविप्रिया के पंचम प्रभाव म आता है। केरावमिश्र ने अलंकार शेखर की सत्रहवीं मरीचि म इस विषय का निरूपण नियमों के अंतर्गत रख कर किया है

श्वेताश्चन्द्रादयो शेषा नीला श्रीकेश्यादयः ।

गोणास्तु क्षत्रधर्माद्या पीता दीपशिखादयः ।

धूसरा रणमूल्याद्या ज्ञातव्या काव्यवत्तमनि ॥<sup>१</sup>

काव्य माग की इन वण्य वस्तुओं को काव्य ने पर्याप्त विस्तार क साथ प्रस्तुत किया है। ये केरावमिश्र की तालिकाएँ भी छोटी नहीं हैं किंतु काव्यकल्पलतावृत्ति क व सक्षिप्त रूप ही हैं।

### वर्णालंकार

वर्णालंकारों क भीतर आकर और गुणा का आधार लेकर वण्य वस्तुओं की वर्गीकृत किया गया है। वर्णालंकारों म पदार्थों का वर्गीकरण वर्णों के आधार पर था।

### भूश्री और राजश्री

काव्य ने प्रकृत और राज-जीवन सम्बन्धी विषयों को अलग अलग दो उपवर्गों म रख कर सामान्यालंकार क भीतर नियोजित किया है। भूश्री म देव, नगर वन, वाग गिरि आश्रम मरिता ताल रवि शक्ति सागर, समस्त ऋतुएँ रख गए हैं। रायत्री म राजा रानी राजसुत पुरोहित दलपति, दूत, मंत्री, मन्त्र प्रयाण, गय हय, सग्राम घासेट जलप्रोहा, विरह स्वयंवर सुरत आदि को रखा गया है। इस प्रकार दोनों क भीतर प्राकृत एव राज-जीवन की सामग्री अलग अलग वर्गीकृत है। फिर इन प्रत्येक की विविध विभागतियों क अनुरूप उनका निरूपण और उदाहरणों

द्वारा स्पष्टीकरण है।

अमरवन्द्य और देवेन्द्र का साधारण सेकर बनने वाले साधारण कवियों न भी अपने अलंकारों में मीमांसकों की भाँति मर्यादा का उल्लंघन किया है। पर उन्होंने एक तो इस का शारीरिक महत्त्व भी विषयों के साधारण रसा है। दूसरे प्रकृति और राज जीवन के विषयों को अमर अमर कर दिया जाता ही शक्ति दिया है। ये दोनों बातें ही उपलब्ध नहीं। अन्य विषयों को अविश्वसाय का विषय कहना वाच्य विषयों की अनिर्दिष्ट सीमा निर्धारित कर देना है। अनेक ही साहित्य की परम्परा किमी काल में अपने को अनुचित कर सं पर साधारण का काम उनकी सीमा विषय के रूप में निर्धारित करना उपयुक्त नहीं। अतः न उक्त सामान्यतः के भीतर वाच्य विषयों के रूप में सामान्य रसा है। दूसरी ओर राज जीवन और साधारण उपादानों के मिलते हुए रहने से वाच्य विषयों के साधारण में कार्य दृष्टिकोण की स्पष्टता नहीं रह जाती। अतः न इन कवियों को परिभाषित किया है। अमरवन्द्य के वाच्य विषय हम रूप में निर्धारित हैं।

वाच्य राजा देवी के देवो ग्राम पुरी सरित् ।  
सरौ अरयोद्याताप्रियाणरनवाजिन ।  
हस्त्यश्वशयवतवो विद्याहोय स्वदशर ।  
सुरापुण्याभ्यसभोग द्विनेपमृगयाधमा ।  
ब्रह्मा ऋतुष्यसाधी धातुय तानिसारिदा ॥<sup>१</sup>

संग्रह इसी प्रकार के विषय और इसी प्रकार के निरूपण विवरणों के साथ कहावतों के कविप्रिया में वर्णित किया है।

इस प्रकार हम देखते हैं कि साधारण काव्य के कवियों के साधारण में निरूपित उक्त क्षेत्र के प्रमुख विषयों को साधारण कवियों के सामने प्रस्तुत किया है। इस प्रस्तुतीकरण में अथवा इस बात का है कि निरूपण कितनी सफाई में किया गया है और दृष्टिकोण की सफाई कितनी है। काव्य के निरूपण के विषय में हम यही कह सकते हैं कि वह कविगिष्ठा के प्रयोग पर आधारित एक सच्ची चली जाती हुई परम्परा की कटी के रूप में तथा कविगिष्ठा की युगीन आवश्यकता को पूरा करने के लिए है साथ ही कविगिष्ठा के विषय वाच्य-शास्त्र के मूल विषयों से कट कट से अलग ही अलग संस्कृत प्रयोगों में निरूपित लिखाई पड़ते हैं। काव्य ने अलंकार की व्यापक परिधि के भीतर उन सब को बाध कर विषय निरूपण की एकसूत्रता ही नहीं स्थापित की अपितु कविगिष्ठा की वाच्यशास्त्र में एक समझ और प्रकृत अर्थ बनाने का प्रयत्न किया है। इस प्रयास में काव्य को उनके दृष्टिकोण के अनुरूप पूरा सफलता मिली है। फिर भी उस सफलता का अनुगमन नहीं हुआ। उसका कारण काव्य के निरूपण की साधारणता या कमी नहीं है अपितु वह गया बीना (भाउट घाक डट) दृष्टिकोण है जिस अपना कर उन्होंने अलंकार को इतने व्यापक अर्थ में लिया है।

ग्रन्थ को प्रमुख आचार्यों की श्रेणी में रखवाने वाले सभी आचार्य ग्रन्थ में माय सिद्धान्त की परिधि का विस्तार कर ग्रन्थ काव्याग को उसमें समेटने का काम बहुत पुराने समय से करते चले आ रहे हैं। प्राचीन अलंकारवादी आचार्यों ने अलंकार और रीति की परिधिमा इस दृष्टि से विस्तृत की थी। ध्वनिवाद ने वसा ही दृष्टि कोण सामने रखा। उनकी देखा गैली अभिनव जस आचार्यों ने रसवाद की परिधि का विस्तार किया था। कुतल न वचोक्ति की परिधि में सब कुछ समेट कर दिखाया था। शेषग्रन्थ न वही काम औचित्य की परिधि को विस्तृत कर करने का प्रयास किया था। आचार्य वेगव न भी अलंकार की यापक परिधि स्वीकार कर अलंकार रस नायिकाभेद और कविगिशा सब को उसमें समेटने का प्रयास किया। रमिकप्रिया में दृष्टिकोण की कुछ मित्रता रखने के कारण इस परिधि का प्रयोग नहीं किया गया पर कविप्रिया में यह दृष्टिकोण छाया रहा। और अलंकार की व्यापक परिधि के भीतर कवि गिशा को भी उहाने समाहित किया।

इसके अतिरिक्त परम्परागत काव्यशास्त्र के ग्रन्थों में निम्नलिखित विविध काव्यागों को वेगव ने ग्रन्थ में एक गिशाक आचार्य के नाते परिचित कराया है। इनमें अलंकार चित्र-काव्य यमक छन्द विषयक बातें और छन्दमात्रा का छन्द निरूपण विषयक उल्लेखनीय हैं। सम्बद्ध स्थलों पर हम इन विषयों की चर्चा कर चुके हैं। यहाँ तक विषय में यही उल्लेख करना है कि इनके निरूपण में वेगव का मूल दृष्टिकोण परिचयात्मक रहता है और मूल स्वर एक गिशाक का। या व यत्र तत्र मौलिकता स्तान और प्रभावशील बनने का प्रयास भी करते हैं साथ ही उनके वक्तव्या के पीछे बहुत प्राचीन पाण्डित्य की झलक स्पष्ट हो जाती है तथापि इन निरूपणों का गिशात्मक स्वरूप ही सर्वोपरि रहता है। इसी कारण कविप्रिया और छन्दमाला को प्रमुख रूप से तथा रमिकप्रिया को गौण रूप से कविगिशा के ग्रन्थों के रूप में ही ग्रन्थ बनना चाहिए। पर वेगव के ये गिशा-ग्रन्थ स्वतंत्र गिशा-ग्रन्थ नहीं हैं काव्यशास्त्र की प्रचुर परम्परा के माध्यम से समकालीन रूप में ग्रन्थित की गई कविगिशा के ग्रन्थ हैं। युग के हितों काव्यशास्त्र और अधिकारी भाषा-कविता की आवश्यकताओं को ध्यान में रख कर वेगव के इस काव्य या मूल्य भी कम नहीं है।

## अष्टम प्रकाश केशव का आदान प्रदान

### आदान

विद्वान् प्रकाश म ह्य देव पुत्र है कि केशव का आद्यायत्य सम्पूर्ण सम्पूर्ण काव्यशास्त्र की विस्तृत गृहभूमि पर आद्यायत्य है। उन्हा। अतः आद्यायत्य सम्पूर्ण की प्रथा म सस्मृत क प्राचीनतम आद्यायत्य स सत्कर अतो समय तक क आद्यायत्य की सामग्री का उपयोग किया है। यही कारण है कि रसिकप्रिया कविप्रिया तथा छन्दोमात्रा म प्राचीन काव्यशास्त्रीय ग्रन्थों का प्रभाव स्पष्ट दिखाई देता है। ह्य विद्वान् प्रकाश म अन्त ग्रन्थों की सामग्री क आदान एव उपयोग का स्वरूप देव-ममक पुत्र है। प्रत्येक विषय का सत्कर उस आदान एव प्रभाव का यहा ध्यान करना अत्र पुन रक्ति ही होगी।

सामग्री क चयन एव निरूपण म तो य प्रथम केशव क आधार रहे ही है। कहीं कहीं केशव म उनस भावसाम्य भी पाया जाता है। रसिकप्रिया कविप्रिया और छन्दमाला म भावसाम्य क बहुत स स्पष्ट दिखाए जा सकत है। परन्तु हम यहा आदान क प्रसंग म उसी भावसाम्य क कुछ निम्नान प्रस्तुत करना चाहते हैं।

विस्तारभय क कारण नाच कतिपय उद्धरण देकर ही हम अपने अपने को स्पष्ट करने का प्रयत्न करेंगे।

### रसिकप्रिया

रसिकप्रिया की रचना म केशव पर पडे प्रभाव क प्रधान स्रोत भरतवृत्त नाट्यशास्त्र म्मटकृत काव्यप्रकाश विश्वनाथकृत साहित्यदर्पण भोज नरकृत सरस्वतीकुण्डकठाभरण गिरभूपाल कृत रसाणवमुधाकर कल्याणमल्लकृत अनगरग वात्स्यायन का कामसूत्र आदि है। यही उक्त ग्रन्थो स कतिपय उद्धरण देकर तथा रसिकप्रिया से उनका भावसाम्य दिखाकर केशव क इस क्षेत्र क आदान को समझा जा सकता है।

### नाट्यशास्त्र

भरत क नाट्यशास्त्र म रस की परिभाषा इस प्रकार दी गई है—

विभावानुभावव्यभिचारिसयोगाद्रसनिष्पत्तिः ।<sup>१</sup>

रसिकप्रिया म कगव ने रस की जो परिभाषा दी है वह नाटयशास्त्र की परिभाषा से साम्य रखती है । केशव ने लिखा है—

मिलि विभाव अनुभाव पुनि, सचारी सुभनूप ।

व्यग कर थिर भाव जो, सोई रस सुखरूप ॥<sup>२</sup>

रस की परिभाषा के साथ साथ स्थायीभाव के भेदों के निरूपण में भी दोनों आचार्यों में साम्य दिखाई देता है । नाटयशास्त्र में दिए गए स्थायी भाव ये हैं—

रतिर्हासश्च शोकश्च क्रोधोत्साहो भय तथा ।

जुगुप्सा विस्मयश्चेति स्थायीभावाः प्रकीर्तिताः ॥<sup>३</sup>

रसिकप्रिया में वर्णित स्थायीभाव नीचे के छंद में देखे जा सकते हैं—

रति हासी अरु शोक पुनि शोष उछाह सुजान ।

भय निन्दा विस्मय सदा स्थायीभाव प्रमान ॥<sup>४</sup>

### काव्यप्रकाश और साहित्यदण्ड

मम्मट ने अपने काव्यप्रकाश एवं विश्वनाथ ने अपने साहित्यदण्ड में रस की परिभाषाएँ भरतमुनि से मिली हैं । काव्यप्रकाश में रस की परिभाषा इस प्रकार है—

विभाषा अनुभावाश्च कथ्यन्ते व्यभिचारिणः ।

व्यक्तं स तद्विभावाद्यं स्थायीभावो रसः स्मृतः ॥<sup>५</sup>

साहित्यदण्ड में रस की परिभाषा निम्न है—

विभाषेनानुभावनं व्यक्तं सचारिणा तथा ।

रसतामेति रत्यादि स्थायीभावः सचेतसामः ॥<sup>६</sup>

इन परिभाषाओं से स्पष्ट है कि उनमें केवल शब्दों का ही भेद है । केशव की रस की परिभाषा हम ऊपर देख चुके हैं । उस देखने से ऐसा लगता है कि उन्होंने मम्मट और विश्वनाथ के मतों से अवश्य सहायता ली है ।

नायक-नायिका भेद वर्णन में भी केशव पर विश्वनाथ के प्रभाव को देखा जा सकता है । रसिकप्रिया में नायक के लिए जिन गुणों की मायता मिली है वे सभी विश्वनाथ के वर्णन से मिल सकते हैं—

१ नाटयशास्त्र छंदा अध्याय ३२वें श्लोक की वृत्ति

२ रसिकप्रिया छन्द २

३ नाटयशास्त्र छंदा अध्याय श्लोक १८

४ रसिकप्रिया ६।६

५ काव्यप्रकाश, चतुर्थ उच्छ्वस में श्लोक २८

६ साहित्यदण्ड तृतीय परिच्छेद ३६ वा



कंगव १ वागवगजरा का सान देते समय उनका स्त्री स्वरभाव को व्यक्त किया है—

घासावसावजा होई गी कटि कंगव सनिनाग ।

चित्तव रति गूट द्वार रणों चिप भावन की भाग ॥<sup>१</sup>

इस उदाहरणों में यह स्पष्ट है कि निगमनाम में कंगव पर्याप्त प्रभावित के ओर उद्धान घण्टा घाव सगणों में रसायनमुपाकर क सगणों में साम्य रगा है ।

### अनगरग

रतिकप्रिया क प्रणयन में अनगरग क प्रभाव की नायिकाभूषणन में देना जा सकता है । यदि यह कहा जाए कि कंगव क नायिकाभूषणन का मुख्य आधार यही प्रय है तो अत्युक्ति न होगी । अनगरग में चि चित्रिणी का चार प्रकार—प, मिनी चित्रिणी दामिनी तथा हस्तिनी—ता कंगव १ स्वीकार किया ही है उनका सान भी अनगरग क आधार पर लिए है । कंगवमस्तन की चित्रिणी नायिका का सगण कंगव की उसी नायिका क लक्षण में सुलभ है—

तवगी गजगामिनी अपसवृष सगीतनिपाविता  
नो हस्त्या न महत्तराय मुहृणा मध्ये मपूरस्वना ।  
पीनधोनि पयोधरा सुतसिते जप वहती कने  
कामाम्भो मधुगन्धघोष्टमपिता सुब्धो ननाहस्त्यता ।  
कामागारमसाटलोभतहित मध्ये मृदु प्रापयो  
बिधत्पुल्लसित घ धनुसमयो रयम्बनाडप सदा ।  
मृद्धीश्यामल कुतलाय जलजप्रीयोपभोगे रता  
चित्रा चित्तमतो रतेरत्परुचिका शयांगना चित्रिणी ॥<sup>२</sup>

अनलोको में चित्रिणी नायिका की तवगी गजगामिनी सुकृणा सगीत निपाविता आदि लक्षणों में युक्त बताया गया है । साथ ही काम प्रीडाभा में उसकी रचि की भी स्पष्ट किया गया है । कंगव न भी चित्रिणी नायिका क लक्षण वणन करन में इसी भाव को यक्त किया है—

नृत्य गीत कविता दक्ष अचल चित्त चल हृष्टि ।  
बहिरति रति अति सुरत जल सुख सुगन्ध की सृष्टि ॥  
विरत लोभ तन भदनगह भावत सकल सुबात ।  
मित्र चित्र प्रिय चित्रिणी जानहु केसवदात ॥<sup>३</sup>

इसके अतिरिक्त कंगव ने रतिकप्रिया क दूती वणन को भी अनगरग क दूती वणन क आधार पर ही प्रस्तुत किया है । साम्य की परखने क लिए नीचे क उद्धरण पर्याप्त होंगे —

१ रतिकप्रिया ७।१०

२ अनगरग श्लोक १३ १४ पृ० ४

३ रतिकप्रिया ३।५ ६

अनगरग—

माताकारबपू सखी च विधवा घात्री नटी शिल्पिनी ।  
सरधो प्रतिगेहका च रजकी दासी च सम्बन्धिनी ॥  
वाला प्रव्रजिता च भिक्षुवनिता तत्रस्य विक्रोत्तिका ।  
नायाकारवपू विदाघपुरय प्रप्या इमा दूतिका ॥<sup>१</sup>

रसिकप्रिया—

घाइजनी नाइन नटी प्रकट परोसिनि नारि ।  
मालिनि बरइति शिल्पिनी चुरिहोरिनी सुनारि ॥  
रामजनी सयासिनी पट्ट पट्टवा को चाल ।  
केसव नायक नायिका सखी करहि सब काल ॥<sup>२</sup>

उक्त उद्धरणों में अन्तर केवल इतना ही है कि केगव ने इन्हें नायक-नायिका की सखी का नाम दिया है जबकि अनगरग में इन्हें दूती कहा गया है ।

कामसूत्र

रसिकप्रिया का नायिकाभेद वणन पर वात्स्यायन के कामसूत्र के प्रभाव को का भी देता जा सकता है । अगम्या नायिका का वणन करते समय वात्स्यायन ने कुण्डिनी उन्मत्ता पतिता सबम रहस्य प्रगट कर देने वाली वृद्धा प्रतिश्वेतवणा, गिप्य की स्त्री तथा मित्रभार्या आदि को इस श्रेणी में रखा है—

अगम्यास्त्वैबता कुण्डिन्युन्मत्ता पतिता भिन्नरहस्यप्रकाशा ।  
प्रायिनी गतप्राययोवना प्रतिश्वेतातिशृण्णा दुग्धा सम्बन्धिनी ।  
सखी प्रव्रजिता सम्बन्धि सखिभारियराजवाराच ॥<sup>३</sup>

केगव ने इसी को आधार बनाकर अगम्या का वणन इस प्रकार किया है—

तजि जननी सम्बन्ध को जानि मित्र द्विजराज ।  
राक्षि लेह दुग्ध भूख तें ताकी तिमरें भाग ॥  
अधिक बरन अष अग धरि अत्यजजन को नारि ।  
तजि विधवा अट्-पूजिता रमियहु रसिकविचारि ॥

इस सम्बन्ध में यह बात ध्यान दिलाई देती है कि केगव ने कामसूत्र की कुछ अगम्याओं को छोड़ दिया है और कुछ के क्षेत्र को विस्तार दे दिया है फिर भी यह निश्चित है कि केगव के नायिका भेद का आधार कामसूत्र भी है । कामसूत्र के दूती वणन को भी केगव ने ध्यान से परमा है और उनमें से भी कुछ को ग्रहण किया है । उनकी घाइ जनी नाइन नटी आदि दूतियां कामसूत्र की विधवा दासी भिन्नारिण तथा

१ अनगरग धन् ५३

२ रसिकप्रिया १२१ ०

३ कामसूत्रकारिका, रनांक ४३ पृ० ६७

४ रसिकप्रिया ७१३ ४४

गित्पिन स तुलनीय है।<sup>१</sup>

इन प्रथा व घतिरिक्त कुछ धीरे भी ऐसे प्रथ देने जा सकत है जिनके कुछ स्थलों को आचार्य बनाकर बसव व रसिकप्रिया व प्रणया व गित सामग्री जुड़ी है। लेकिन इसका तात्पर्य यह बताना नहीं है कि कवय ने गवय उा आचार्य प्रथा में भाव साम्य रखा है। रसिकप्रिया में बहुत से स्थल ऐसे हैं जहाँ कवय ने उन प्रथा का समझ कर अपने ढंग से विवेचना किया है। ऐसे स्थल भी अनेक हैं जहाँ बसव ने प्राचीन आचार्यों से भिन्न दृष्टिकोण रखा है। रग तथा नादिकाभक्त व प्रवणना में भी, इस पर विस्तार से विचार हो चुका है। रसिकप्रिया व कुछ वणन ऐसे हैं जो मग्युत व आचार्यों व प्रथा में सिगारि हो गही देने से कवय व आचार्य व सा ती हैं। रग एक दा प्रणया पर यहा दृष्टिपात कर सता अनुमित न हागा।

नादिका भक्त वणन में बसव व नादक नादिका व प्रथम मिला स्यात वणन में मौलिकता का प्रदर्शन किया है। उहाँन प्रथम मिला में व लिए इन स्थानों को उपयुक्त माना है—

जनों सहेली धाड़ घर मूने घर नितिघार ।

अति भय उस्तय ध्याधि मिसा पोते मुखा विहार ॥

इन ठोरनि हो होत है प्रथम मिसन सतार ।

केसव राजा रक् की रधि राते करतार ॥

प्रथम मिलन व इन स्थलों एवं मिसों का किसी भी संस्कृताचार्य की रचना में उल्लेख नहीं मिलता। इसी प्रकार सही जन कम वणन में मनाना और उर हना देना कवय की निजी सूझ है—

गिशा विनय मनाइयो मिलियो करि सिगार ।

भुक्ति अरु देइ उराहनो, यह तिनके व्योहार ॥<sup>२</sup>

इसके अतिरिक्त मध्या, धीराधीरा प्रींग अधीरा आदि नामिकाओं का भाव तथा वियोग शृंगार आदि व वणन भा इस क्षेत्र में कवय की मौलिकता व व्यक्तक हैं।

## कविप्रिया

कविप्रिया की रचना करन में कवय ने जयदेव कृत चन्द्रालोक, वेदारभट्ट कृत वृत्तरत्नाकर दण्डीकृत कायादाग रम्यककृत अलवारसूत्र केशवमिश्रकृत अलकार शंकर अमरचन्द्रकृत काव्यकल्पलतावृत्ति प्राकृतपगनम् तथा भक्त हरिकृत नीति शतक से कुछ न कुछ ग्रहण किया है। कविप्रिया में अनेक स्थलों पर उन प्रथों के वणनों से भावसाम्य दिखाई देता है। नीचे इन प्रथों से कविप्रिया के भावसाम्य के कतिपय उदाहरण उपस्थित किए जाते हैं :

१ कामसूत्र श्लोक ३२ पृष्ठ २८

२ रसिकप्रिया ५।२४ २५

३ वही १३।

### चन्द्रालोक

चन्द्रालोकवार जयदेव शायद मम्मट के प्रलवारों के विषय में पुन बर्णापि वाल कथन से प्रभावित थे । उन्होंने वाक्य में प्रलवारों के स्थान को व्यक्त करत हुए लिखा है—

अङ्गीकरोति य काय गार्हार्थावनलङ्कृती ।  
असौ न मयते कस्मादनुष्णमनलङ्कृती ॥<sup>१</sup>

बेगव भी प्रलवारों के विषय में कुछ इसी प्रकार का मत रखत थे । काय में प्रलवारों के स्थान के विषय में उद्धान लिखा है—

जदपि मुजाति सुलच्छती सुवरन सरस सुवत्त ।  
भूपन विवु न विराजहो क्विता वनिता मित्त ॥<sup>२</sup>

किंतु उनका ऐसा कहने में विगिष्ट दृष्टिकोण भी था जिस हम यथास्थान स्पष्ट कर चुके हैं ।

### वृत्तरत्नाकर

कविप्रिया में बेगव ने जहाँ दोषवर्णन और गण भगण पर विचार किया है वहाँ उन्होंने शुभ और अशुभ गणा का उल्लेख करत हुए सभी गणों के लक्षण उषु और गुरु के अनुसार निर्दिष्ट किये हैं । उनका यह सम्पूर्ण वर्णन वृत्त रत्नाकर पर आधारित है । वृत्त रत्नाकर में सभी गणा के देवता, मन्त्री फल तथा उनकी गन्तुता प्राप्ति पर पूरा प्रकाश डाला गया है—

सो भूमिस्त्रिगुरु श्रिय विभति यो वृद्धिजन चादिसो  
रोऽग्निमध्यलघुविनागमनिलो देगाटन सोऽत्यग ।  
सो ह्योमातलघुधनापहरण जो को रज मध्यगो,  
अच्छन्दो यग उज्वल मुल्लगुर्नो नाग आपुस्त्रिल ।  
अनो मित्रे भयो भृत्याबुदासीनी जती स्मती ।  
रसावरी नीचसती श्रेयावेती मनोपिभि ॥<sup>३</sup>

इसके अनुसार भगण का देवता, पृथ्वी यगण का जल, तगण का आकाश भगण का चन्द्र और सगण का वायु कहा गया है । भगण और नगण मित्र तथा रगण भगण को अशु बतलाने के साथ-साथ भगण का फल लक्ष्मी तगण का धन हानि प्राप्ति बातों का वर्णन हुआ है । बेगव ने इसी ग्रंथ के भाव को इस प्रकार व्यक्त किया है ।

मही देवता भगन की नाग नगन को लेलि ।  
जस जिय जानहु यगन को चन्द्र भगन को लेलि ।  
भगन नगन को मित्र गन भगन यगन भनि दास ।  
उदासीन जत जानिये र स रिपु बेसवदास ॥

१ चन्द्रालोक ११८

२ कविप्रिया ५११

३ वृत्तरत्नाकर, पृ० ३१

भूमि भूरि गुण देय मीर हित आनन्दकारो ।  
 भागि प्रंग विग बहै गुर गुण सोने भारी ॥  
 बगव घपस अजास नाम जिस देग उदाते ।  
 मगन चन्द अजेर नाग बहु बधि प्रदाने ॥<sup>१</sup>

का-यादरा

कविप्रिया का दोष प्रकरण काव्यादाग म प्रभाविण है । अथ दाव व मगन दत समय दोना आचार्यों में भावसाम्य ही नहीं भावसाम्य भी सिगार देता है ।

का-यादरा

एकवाक्ये प्रथमे वा पूर्वापरपरार्हतम् ।  
 विद्वद्भाषतया व्यपमिति दोष नु पठ्यते ॥<sup>२</sup>

कविप्रिया

एक कवित्त प्रथम म अथ विरोध जु होइ ।  
 पूरव पर अनमित्त सदा व्यप कहें सब को ॥<sup>३</sup>

वेशव व दोष लक्षणों की दृष्टि से काव्यादाग से समानता रगत हुए भी एकाव स्थल पर नाम की दृष्टि से भिन्नता भी रगने हैं । यथा काव्यादाग के कला विगध को वेशव ने नीक विरोध का नाम दिया है । फिर भी यह कहा जा सकता है कि कविप्रिया के दोष प्रकरण पर काव्यादाग का प्रभाव है । इमरु प्रतिरिक्त अनक अनकारा व नगणो म भी दोनों प्रथों म भावसाम्य दसा जा सकता है । यहा विरोधाभास एव यतिरक की सेवर उनक लक्षणो व साम्य को स्पष्ट किया जाता है । दडो ने विराधा भास वहा माना है जहा विरोधी पदायों अथवा वस्तुधों का मसग तिसलाया जाता है ।

विद्वदानां पदार्थानां यत्र ससंगव्ययनम् ।

विशेषदशनापञ्च स विरोध स्मृतो यथा ॥

वेशव ने भी यही भाव निम्न दोहे में व्यक्त किया है—

वेशवदास विरोधमथ रविपत बचन बिचारि ।

सासों कहत विरोध सब कवि कुल मुबुडि मुधारि ॥<sup>४</sup>

काव्यादाग म व्यतिरेक का लक्षण इस प्रकार दिया गया है—

ग-दोषात्ते प्रतीतेर्वा सावुश्मवस्तुनोदयो ।

तत्र यवभेदकयन व्यतिरेक स कथ्यते ॥<sup>५</sup>

१ कविप्रिया ३१२२ २४ २५

२ का-यादरा पृ १६

३ कविप्रिया ३१४२

४ काव्यादाग, श्लोक ३२३ पृ २६५

५ कविप्रिया ३१२१

६ काव्यादाग श्लोक १८ पृ १८७

कविप्रिया म इसी लक्षण को इस प्रकार यक्त किया गया है—  
तामहि जानिय भव कछु होय जु वस्तु समान ।  
सो व्यतिरेक मुभाति द्व जुबित सहज परमान ॥<sup>१</sup>

### अलंकारसूत्र

रम्यक वृत्त अलंकारसूत्र का प्रभाव कविप्रिया पर यत्र तत्र अलंकारों के वणनो म दिखाई देता है । विरोधाभास, विरोध विभावना तथा व्रम आदि अलंकारों के वणन म कंगव पर उक्त ग्रथ के प्रभाव को देखा जा सकता है । विरोधाभास का उल्लस ऊपर दही के प्रसंग म हो चुका है । यहा विभावना और व्रम पर विचार करके रम्यक व कंगव पर पडे प्रभाव को स्पष्ट करने की चेष्टा करेंगे ।

रम्यक ने विभावना का लक्षण देत हुए लिखा है कि जहा विना कारण के ही काय हो जाता है वहा विभावनालंकार होता है—

कारणाभावे कायस्योत्पत्तिविभावना ।<sup>२</sup>

कंगव ने भी यही भाव यक्त किया है—

कारज जो बिनु कारनहि उदो होत जेहि ठौर ।<sup>३</sup>

केशव ने जिस व्रमालंकार का नाम दिया है वही रम्यक का एकावली अलंकार है । दोनो के लक्षणा म भावसाम्य है लेकिन कंगव ने वड कौगल के साथ नाम म परिवर्तन कर दिया है । अलंकारसूत्र म एकावली का उदाहरण यह है—

न तजल यन सुचारु पङ्कजम,  
न पङ्कज तव यदलीनघटपदम ।  
न घटपदोऽसौ न जुगुञ्ज य कलम  
न गुञ्जित तन जहार यमन ॥<sup>४</sup>

कंगव के व्रमालंकार का उदाहरण इसस पूण मेल खाता है—

धिरु मगल धिन गुनहि, गुनड धिरु सुनत न रीभय ।  
रीभकु धिरु बिनु मौज मौज धिरु देजु खिरुभय ॥<sup>५</sup>

### अलंकारशेखर

धाचाय कंगव कविप्रिया म कुछ स्थलो पर अलंकारशेखर स प्रभावित दिखाई नन है । कविप्रिया का ध्यात्रम वणन अलंकारशेखर स प्रभावित है ।

- १ कविप्रिया ११।७८
- २ अलंकारसूत्र ५० १३८
- ३ कविप्रिया ६ ११
- ४ अलंकारसूत्र, ५० १६४
- ५ कविप्रिया ११।२

अलंकारशेखर—

आश्रमे तिथिपूजेन विश्वासो हित्वागतता ।  
यत्नधूमो मुनिसुता व्रसेको बल्लक द्रुमा ॥<sup>१</sup>

कविप्रिया—

होम धूम जुत धरनिय श्रद्धा घोष मुनि वास ।  
सिंहादिक मग मोर अहि इभ सुभ धर विनास ॥<sup>१</sup>

कंगव मिश्र न आश्रम वणन क लिए सहज वर विनाग की प्रवृत्ति तथा यत्न धूम के वणन की बात कही है । आचाय कंगव ने भी आश्रम-वणन म इसी तन्म्य की ओर संकेत किया है ।

राज्यध्री वणन के प्रसंग म आचाय कंगव ने एक स्थान पर लिखा है—

सची स्वयंवर रक्षिय मडल मध्व बनाय ।  
रूप पराश्रम बस गुन धरनिय राजा राय ॥<sup>१</sup>

उनका यह छंद अलंकारशेखर के स्वयंवर प्रकरण क निम्न श्लोक के आधार पर लिखा गया है—

स्वयंवरे गचीरक्षा मध्वमडपसजना ।  
राजपुत्री नपाकारावयचेष्टाप्रकाशनम ॥

इसी प्रकार आचाय कंगव द्वारा विरहवणन म चिंता के उल्लेख की अलंकारशेखर क इसी भाव क वणन स तुलना की जा सकती है—

कविप्रिया—

स्वास निसा चिंता बढ़, हृदन परे ख बात ।  
कारे पीरे होत कूस, ताते सीरे गात ॥<sup>१</sup>

अलंकारशेखर—

विरहे ताप निश्वासश्चिंता मोत कृपाङ्गता ।  
अध्वगम्या बध्यजागर निशिरोध्मता ॥<sup>१</sup>

ऊपर के इन कतिपय उदाहरणों से स्पष्ट है कि आचाय कंगव कविप्रिया क अनक वणनों म कंगवमिश्र स प्रभावित हुए हैं ।

काव्यकल्पलतावृत्ति

कविप्रिया पर अमरचंद्र वृत काव्यकल्पलतावृत्ति का प्रभाव भी अनक स्थलों पर स्पष्ट दिखाई देना है । काव्यकल्पलतावृत्ति का स्वयंवर वणन वाला श्लोक

१ कविप्रिया ६

२ कविप्रिया ७।१

३ कविप्रिया ८।४४

४ अलंकारशेखर, पृ ५६

५ कविप्रिया ८।३८

६ अलंकारशेखर पृ० ६

तो अलकाराखर स पूणत मिलता है केवल सज्जना क स्थान पर सज्जता' शब्द का भेद है । अलकाराखर के इस श्लोक से आचार्य केगव क छंद का साम्य हम ऊपर लिखा ही आए हैं । सूर्योदय वणन क लिए अमरचंद्र ने जिन जिन वस्तुओं क वणन को आवश्यक बताया है वे अरुणता, रविमणि, कमल पथिक तारावली आदि हैं । साथ ही उहाने सूर्योदय से आनंदित तथा दुखी होने वाले जीवों एव पदार्थों की कवि-सम्मत सूची भी दी है—

सूर्ये अरुणता रविमणिचक्राम्बुजपथिकलोचनप्रीति ।

तीरदुदोपकौपथिधूक्तमश्वोरकुमुकुलटाति ॥<sup>१</sup>

आचार्य केगव उक्त श्लोक से पूण भावसाम्य रखत हैं—

सूर उदयते अरुणता पथ पावनता होइ,

गल धद ध्वनि मुनि करें पथ लग सब कोइ ।

कोक कोकनद सो कहत दुख कुमलय कुलटानि,

तारा औपथिदोप ससि धूक घोर तम हानि ॥<sup>२</sup>

स्थिरवस्तु वणन एव देगवणन के अतगत अमरचंद्र ने जिन जिन बातों को वणन करने की बात कही है केगव ने भी उही को गिनाया है । नीचे क उदाहरण से यह बात स्पष्ट हो जाएगी ।

स्थिरवस्तुवणन—

अमरचंद्र—

स्थिराणि पृथ्वी गली धर्माधर्मो सता मन ।

सतो गल रणे घोर प्रतिपन्न महात्मनाम ॥<sup>३</sup>

केगव—

सतो समर भट सत मन धम अधम निमित्त ।

जहा जहाँ ये धरनिये केसव निश्चल चित्त ॥<sup>४</sup>

देशवणन

अमरचंद्र—

देने यहूलनिद्रध्यपण्यघाघकरोदभवा ।

दुग्धामजनाधिष्यनदीमातकतादय ॥<sup>५</sup>

१ काम्यकल्पतरुवृत्ति सूर्योदयवणन, पृ १४८

२ कविप्रिया ७।२० ०३

३ काम्यकल्पतरुवृत्ति, प्रदान ४, रतवक ४ पृ० १४०

४ कविप्रिया ६।२३

५ श्लोक ६२ पृष्ठ २५



कंशव—

रतन खानि पशु पक्ष बसु धसन सुगन्ध सुवेग ।

नदी नगर गढ़ बरनिधे भाषाभूषण देग ॥<sup>१</sup>

सत्य को भूठे रूप में वणन करने वाले छन्द भी दोनो [ग्रथों में ग्रन्थभूत भाव-  
साम्य रखते हैं । अमरचन्द्र ने लिखा है—

बसते मातृतीपुष्य फल पुष्य च चन्दने ।

अशोके च फल नयोत्सना ध्वाते कृष्णायपक्षयो ॥<sup>१</sup>

कंगव का दोहा इस प्रकार है—

पेसबदास प्रदाग सब घदन के फल फल ।

कृष्णपक्ष की जोह ज्यों सुक्ल पक्ष तम तूल ॥

ऊपर के वणन से स्पष्ट है कि आचार्य कंगव कल्पनतावृत्ति से भली भाँति  
प्रभावित थे । वे अनक स्थान पर उक्त ग्रथ से भावसाम्य ही नहीं भावानुवाद अथवा  
भाषानुवाद भी रखते हुए लिखाई देते हैं ।

प्राकृतपैगलम्

कविप्रिया के दोष प्रकरण को प्रस्तुत करने में कंगव ने प्राकृतपगलम् का भी  
आधार लिया है । प्राकृतपगलम् में छप्पय के दोषों की चर्चा हुई है जो इस प्रकार है—

पगु—अगुद्ध पदवाला

पद्मह असुद्ध उ पगु । अथवा यून पादवाला ।

खज—गणहीन

हीन खोउ पमणिज्जइ ।

बावला—मात्राधिक्यवाला

मतग्गन बाउलउ

काणा—कलाओं से ज्ञाय

सुण्ण कल कण्ण सुणिज्जण ।

बधिर—भल वणों से रहिन

भलवज्जिउ तह बहिर ।

अध—अनकार होन

अध असकार रहिअउ

मूक—छद की उदचनिकागूय

बुलउ छण उटटवण ।

दुबल—अधगूय

अत्य विणु दुगउ बहिअउ ।

डेर—हठाक्षरों से युक्त

डेरउ हटठखरहि होइ ।

काणगुण रहित

काणा गुण सव्वहि रहिअ ।

एन छप्पय दोषों में मानवी अंगों का समावेश हुआ है । कंगव ने इन छन्द  
दोषों में प्रेरणा लेकर समस्त काव्यदोषों को निरूपण करने का सागरूपवाचक रूप  
में प्रयत्न किया है । कंगव ने पाँच काव्यदोष बताये हैं और उनमें स्वरूप की भी स्पष्ट  
किया है—

अध बधिर अउ पग तज्जि नग्न मूतक भनिमुद्ध ।

अध विरोधी पय की बधिर सो सबद विरुद्ध ॥

१ कविप्रिया ७।२

२ काव्यज्ञानसंग्रह पृ १७

३ कविप्रिया ४।५

छन्द विरोधी पगु गनि, नग्न छु भूपन हीन ।

मृतक कहाव अथ विनु केगव मुनहु प्रयोन ॥<sup>१</sup>

केगव के दोष—अथ, वधिर पगु नग्न और मृतक हैं। काव्यपथ के विरुद्ध बणन करने से अथ दोष होता है। गन्दविरोधी वधिर छदभगवाला पगु अलवार हीन नग्न एव अथहीन काव्य मृतक होता है। यहा काव्य को पुष्प मानकर उमक दोषों के अग का निरूपण सागरूपकात्मक रूप में हुआ है। केगव न प्राकृतपगलम् में दिए छन्दोपा को आधार के रूप में ता ग्रहण किया है लेकिन उसमें भी मौलिकता दिखाई है। प्राकृतपगलम् का वाणा ही केगव का अथ है और प्राकृतपगलम् का अथ केगव का नग्न तथा प्राकृतपगलम् का दुबल वंशव का मृतक है। नेप दोनों दोषों में समानता है।

इस स्पष्ट है कि कविप्रिया के काव्यदोष प्रकरण के लिए केगव प्राकृत पगलम् के छन्दोपाओं से प्रभावित हुए हैं और उहाने उन्हें कुछ अविनयवस्थित रूप में बणन किया है।

### नीतिशतक

पीछे लिखा जा चुका है कि केगव ने कविभेद बणन करने समय उत्तम मध्यम और अधम तीन प्रकार के कवियों का उल्लेख किया है। उनका यह विभाजन मनु हरि के नीतिशतक के उस श्लोक के आधार पर हुआ प्रतीत होता है जिसमें उन्होंने मनुष्यों को तीन श्रेणियों—मज्जन सामान्य एवं राक्षस बताई हैं। नीतिशतक का श्लोक यह है—

एके सत्पुरुषा पराधघटका स्वाय परिशय्यये,  
सामान्यास्तु परायमुद्यमभूत स्वार्थाविरोधेन ये ।  
तस्मो मानवराक्षसा परहित स्वार्थाय निघ्नन्ति ये,  
मे निघ्नन्ति निरयक परहित ते के न जानीमहे ॥<sup>१</sup>

आचार्य केगव ने इसी भाव को हम प्रकार व्यक्त किया है—

हैं अति उत्तम ते पुरुषारथ जे परमारथ के पय सोहें,  
केगवदास अनुत्तम ते नर सतत स्वारथ सजुत जोह ।  
स्वारथ हू परमारथ भोग न मध्यम सोगनि के मन मोह,  
भारत पारथ मति कह्यो, परमारथ स्वारथ हीन ते को हूँ ॥<sup>१</sup>

ऊपर मसृष्ट के प्राचीन आचार्यों के काव्यशास्त्र सम्बन्धी ग्रन्थों से केगव की कविप्रिया के साम्य को स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है। हम विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि केगव ने कविप्रिया की रचना में उन आचार्यों में बहुत कुछ लिया है। वहीं उनमें मसृष्ट ग्रन्थों में भाषा का भी साम्य है वहीं भाषानुवाद है तथा

१ कविप्रिया २१६ ७

२ नीतिशतक, श्लोक ७४, पृ० १०१

३ कविप्रिया ४१३

कहों भावानुवाद स ही सतोप किया है। ऊपर देया जा चुका है कि भावानुवाद के स्थल ही अधिक हैं। लेकिन हमका यह तात्पर्य वदापि नहीं है कि सम्पूर्ण कविप्रिया सस्कृत के ग्रथों का अनुवादमात्र है केशव ने स्थान स्थान पर अपनी मौलिकता का भी परिचय दिया है। उनके प्रेम, प्रसिद्ध मुप्रसिद्ध एवं प्रहलिका अलंकार नवीन हैं। सस्कृत ग्रथा म उनका सधान प्राप्त नहीं होता। साथ ही कुछ अलंकार ऐसे भी हैं जिनका हिन्दी म सबप्रथम वर्णन केशव न ही किया है। ऐसे अलंकारा म गणना एवं आणिय आनि अलंकार आत हैं। इन सभी अलंकारा को स्पष्ट करन क लिए केशव न जो लक्षण उदाहरण प्रस्तुत किय हैं उनसे उनका मनन चिन्तन एवं आचार्यत्व स्पष्ट व्यजित हाता है।

### छन्दमाला

जसा कि पीछे कहा जा चका है छन्दमाला के निर्माण म केशव न मौलिकता का दावा कम ही किया है। इस ग्रथ क निरूपण म केशव का उद्देश्य गिशा का ही रहा है इसलिए उहान प्राचीन पिगन के ग्रथा स सामग्री लेकर उस कविया की सहायता क लिए सरल ढंग स निरूपित कर दिया है। छन्दमाला म छन्दों का निरूपण पूणत गार्तीय ग्रथों के आधार पर हुआ है। वार्णिक वृत्ता क निरूपण क लिए पिगलमूत्र छन्दकोस्तुभ छन्दोमजरी वृत्तरत्नाकर का तथा मात्रिक छन्द क लिए पूणत प्राकृतपगलम् का आश्रय ग्रहण किया गया है। वार्णिक छन्दा क निरूपण म केशव ने अधिक बौगल दिखाया है। उहाने एक स लेकर छन्दोस अक्षरा तक क छन्दों क निरूपण क लिए प्राय सभी प्राचीन ग्रथा को टटोना है और जहा भी उसका लक्षण मित्त है वही स देने की चेष्टा की है। सस्कृत क पिगल ग्रथो म स किसी एक म उन सब छन्दा क लक्षण नहीं मित्त। साथ ही कुछ छन्दा क लक्षणा क लिए प्राकृत छन्दा क निरूपक ग्रथों का आश्रय ग्रहण किया है। इस प्रकार सामग्री के गार्त्रानुकूल हान पर भा केशव न अपनी छन्दमाला म जो एक पूणता ला दी है उससे उसका महत्त्व बत बत गया है।

मात्रिक छन्दों क निरूपण का मूनाधार तो प्राकृतपगलम् ही है। छन्दमाला क मात्रिक छन्दा का क्रम भी प्राकृतपगलम् के अनुसार ही प्राप्त होता है। फिर भी केशव न हम ग्रथ क सभा छन्दा का उत्तल नही किया बीच बीच म कुछ छन्द छोड िय गए हैं। गायद इनका कारण यही हा कि केशव न उसको अनुपयोगी ठहरा िया हो। छन्द दाया पर दिचार करत समय केशव न प्राकृतपगलम् का ही दृष्टि म रसा है। छन्दोमग तथा लक्षणहीनता क केशव न जो छन्द दिय है क प्राकृत पगलम् क छन्दा क अनुवाद हैं—

### छन्दोभग

छन्दमाला—

कनक तुला जो सहत नहि तोलत अथ तिल अथ ।  
अथन तुला तें जानियो केसव छन्दोभग ॥<sup>१</sup>

प्राकृतपगलम्—

जेमण सहइ कण अतुला तिन तुलहि अद अदधेण ।  
तेमण सहइ सवण तुला अथ छद छन्दोभगेण ॥<sup>२</sup>

### लक्षणहानता

छन्दमाला—

अवध वृधन म पड़त ही निष्कृत लक्षण हीन ।  
भकुटी अथ खरग सिर कटलु तथापि अबीन ॥<sup>३</sup>

प्राकृतपगलम्—

अबह बुहाण मज्जे कव्य जो पणइ सबखण विहूण ।  
भूअण सण खरगहि ससि खुसिअण ण जालेइ ॥<sup>४</sup>

कविप्रिया म छन्दोप मुक्त काव्य को 'पगु' नाम दिया गया है और छन्दोभग का छन्दोभग नाम देकर निराला है—

तोलत तुल्य रहे न ज्यों कनक तुलित तिल आपु ।  
र्यों ही छन्दोभग की सहि न सकत खुति सापु ॥<sup>५</sup>

कहना न होगा कि यह भी प्राकृतपगलम् का आधार पर ही लिखा गया है और छन्दमाला के छन्दोभग का प्रथम म छन्द स पूण माम्य रखना है ।

मात्रिक छन्दों का निरूपण के लिए कण्व ने वृत्तरत्नाकर की भट्ट नारायणी टीका को भी अपनाया है । उनके सभी छंदा का लक्षण उक्त दोना प्रयोगों से मिलते हैं । कुछ छन्दों का नामों तथा भेदों में कण्व ने इन दोनों प्रयोगों से भिन्नता लिखाई है । उदाहरण के लिए नाम भेद का रूप में कवित्त तथा भेद भिन्नता का रूप में गाथा को लेकर इस पर विचार करेंगे ।

कण्व ने जिस छन्द को कवित्त कहा है उस प्राकृतपगलम् में कव्य तथा भट्ट नारायणी टीका में काव्य की मना दी गई है । वही उसका जो लक्षण दिए है कण्व ने उद्धरण करने का उद्योग में गोपी वात लिख दी है कि उसका प्रत्येक पाद में २४ मात्राएँ होती हैं । प्राकृतपगलम् में वर्णित समक भन्ता को भी कण्व ने छाट दिया है । गाथा छन्द का प्राचीन आचार्यों ने प्रलय कण का मानकर उस न वर्णिक में स्थान दिया

१ छन्दमाला पृ० ४४०

२ प्राकृतपगलम् ११०

३ छन्दमाला, पृ० ४४६

४ प्राकृतपगलम् १११

कविप्रिया ११०

श्रीर न मात्रिक म । लेकिन वेगव ने उस मात्रिक क अतगत ही रखा । गाथा क भनों का वणन करत समय वेगव ने प्राकृतपगलम् भट्ट नारायणी टीका स नाम श्रीर त्रम म कुछ अंतर भी रखा है । लेकिन यह अंतर गास्त्रीय दृष्टि स अगुद है हमने छदमाला के प्रकरण म दिखाया है कि वेगव स एसी भूल नभव नहीं थी । यह अंतर लिपि की भूल से हुआ प्रतीत होता है । छदमाला क प्रकरण म यह दिखाया जा चुका है कि वाणिक वृत्ता क कतिपय नामो म सस्कृत परम्परा क आधार ग्रथो स जो भद मिलता है वह भी वम कारण स है कि वेगव ने वह नाम किमी प्राकृत क पिंगल ग्रथ के आधार पर दे दिया है । गायद उहोंने ऐसा इसलिए किया है कि नवीन या अप परिचित नाम देने से छदगास्त्र क क्षत्र म भी कुछ मौलिकता प्रदर्शित कर सकें ।

ऊपर कुछ ऐस स्थला को दिखान की चेष्टा की गई ह जहा वेगव न गास्त्रीय ग्रथो स भिन्नता प्रदर्शित की है । ऐसा इसलिए किया गया है कि छदमाता का छद निरूपण गास्त्रीय ग्रथो पर ही आधारित है इसलिए उसम भिन्नता प्रदर्शित करने का अवकाश ही नहीं है । छदों का निरूपण करने म वेगव का दृष्टिकोण यापक रहा है । उहोंने प्रचलित श्रीर कम प्रचलित सभी छदा को लिया है । कहीं-कहीं उहान आधार ग्रथो स भी अधिक सुंदर ढग स वणन किया है । उदाहरण क लिए छप्पय क दोषों का निरूपण करत समय प्राकृतपगलम् से भी भागे बग गए हैं ।

वेगव द्वारा मात्रिक छदो का निरूपण यह यकन करता है कि उहोंने प्राकृत पंगलम् क उन छदा को वणन क लिए ग्रहण किया जो हिंदी के कवियों द्वारा अपना लिय गए थ । उपयोगिता की दृष्टि स यह कम महत्वपूर्ण नहीं है । उहाने प्राकृत छदो क निरूपक ग्रथा स सहायता कर हिंदी के छदगास्त्र को सर्वाङ्गपूर्ण बनाने की सफल चेष्टा की है ।

### वेशव श्रीर परवर्ती आचाय प्रभाव प्रदान

वेगव को हिन्दी के प्रथम व्यवस्थित आचाय होने का गौरव प्राप्त है ।<sup>१</sup> पर वेगव को रीतिकालीन आचायत्व का प्रवक्तक मानने म इतिहासकारो को आपत्ति है । इसक दो कारण बताए जात हैं । एक तो वेगव श्रीर चित्तामणि क बीच ऐसी कडिया नहीं हैं जो वेगव को रीतिकाल का निरवच्छिन्न परम्परा स जोड़ सकें दूसरे वेगव का अनुकरण अनुसरण परवर्ती आचार्यों न ही किया ।<sup>२</sup> पहल कारण क निराकरण क

१ डा भगारथ मिश्र क सवप्रथम आचाय ह तिनोंने प्रधानतया काव्यशास्त्र पर लिखा । अपन समय में श्रीर सम्पूर्ण रालकाल भग में कराव का स्थान एक आचाय की दृष्टि से महत्वपूर्ण रहा है । हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास पृ ४६

आचाय रामचन्द्र गुप्त इसमें म ह नहा कि काव्य रीति का सम्यक समावेश पल्लवदल आचाय वेगव न हो किया है । हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ २१

२ आनन्दकरा आचाय केशव न ब्रजभाषा में समस्त काव्यशास्त्र को सुलभ बना देने का श्रावणरा किया था । हिन्दी अलंकारमाहिन्य पृ ५ भाति ।

३ आचाय रामचन्द्र गुप्त हिन्दी रानि ग्रथो को अष्टाह परम्परा चिन्तामणि त्रिपाठी से बनी । अरु रानिकाल का अरम्भ उहां से मानना चाहिए । हिन्दी साहित्य का इतिहास पृ २२

लिए कशव और चिंतामणि के बीच के साहित्य की दोष अपेक्षित है। पर दूसरा कारण बहुत ही साधारणीकृत विश्वास पर आधारित है। विद्वान प्रचलित मन में सांगोघन करने के लिए तत्पर हो रहे हैं। डा० मत्स्यदेव चौधरी का कथन द्रष्टव्य है— 'यह अलग प्रश्न है कि अगले ५० वर्षों तक काव्यशास्त्र की परम्परा में प्रायः अवरोध ही बना रहा और आगे चलकर चिंतामणि से लेकर प्रतापसाहि तक पूरे दो सौ वर्षों तक जिन काव्यशास्त्रीय ग्रंथों का निर्माण पूरे वेग से हुआ व कविवर्य के आत्म पर निर्मित नहीं हुए फिर भी अनेक प्रमुख आचार्यों ने कविवर्य के ग्रंथों से महत्प्रशंसा व्यक्त की है।' आगे चलकर लेखक ने अपने मत को कुछ विशिष्ट आचार्यों का नाम लेकर पुष्ट किया है— दास आदि रीतिकालीन आचार्यों ने उनकी गणना प्राचीन आचार्यों के साथ बड़े सम्मान पूर्वक की है। देव राम जी उपाध्याय गंगापुर ने इनके अलंकार प्रकरण से पदुमनदास और शिवप्रसाद कवीश्वर ने इनके कवि शिक्षा प्रकरण से देव सोमनाथ जानकाप्रसाद ने इनके नायक नायिका भेद प्रकरण से तथा राम जी उपाध्याय गंगापुर ने इनके दोष प्रकरण से कुछ प्रसंग ग्रहण किए हैं इस अनुकरण का प्रमुख कारण है कशव का हिन्दी के आचार्य-कर्म में सर्व प्रथम अग्रणी होना, दूसरे गद्य में हिन्दी काव्य सरणि को भक्ति पथ की ओर मोड़ देना। चिंतामणि ने अपने आधारभूत संस्कृत ग्रंथों के साथ रसिकप्रिया को भी सूची में जोड़ा है। देव तो उन्हें एक अनुकरणीय आचार्य के रूप में देखते थे। डा० नगेन्द्र के शब्दों में रीतिकाल के कवियों में कविवर्यदास कि ही अग्रणी में देव के आदर्श थे। रीति विवचन में उन्होंने किस प्रकार कशव की महत्ता को मुक्त कण्ठ से स्वीकृत करते हुए उनके प्रभाव को ग्रहण किया है उसका साग विवेचन प्रयत्न किया जा चुका है। कविवर्य को उन्होंने स्पष्ट गद्य में अनुकरणीय महाकवि माना है। उनके काव्य पर भी कविवर्य का प्रभाव निश्चित रूप से लक्षित होता है। देव के अनेक छंदों पर कविवर्य के छंदों की छाया है।' इस प्रकार उस सामान्य कथन से कि कविवर्य का अनुगमन किसी रीतिकालीन आचार्य ने नहीं किया आज का प्रबुद्ध गीष्म समालोचक सहमत नहीं हो सकता। कविवर्य का सामान्य प्रभाव और विविष्ट प्रदान पर विचार करने के लिए आगे प्रबुद्ध मामग्री उपलब्ध है।

सामान्य दृष्टि से कविवर्य के सभी परवर्ती आचार्य श्रेणी मान जा सकते हैं। कविवर्य के पूर्व का हिन्दी काव्यशास्त्रीय सूत्र या तो भक्ति में विनीत मिलता है, या इनका भीना मित्रता है जो आगे कोई परम्परा बनाने में सक्षम नहीं हो सकता। कविवर्य ने भवप्रथम सांगोघन विवचन का मार्ग प्रशस्त किया। गुड काव्यशास्त्रीय या कवि शिक्षात्मक उद्देश्य से वे आचार्य कर्म में सलग्न हुए। उन्होंने संस्कृत काव्य से चर्चित युवकों के लिए काव्यशास्त्र लिखा। उनमें जाने अनजान अनक कविशा या कवि आचार्यों ने प्रेरणा और सामग्री ग्रहण की। परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों ने

१ हिन्दी साहित्य का बहुरूप इतिहास पृष्ठ भाग ५

२ वही, पृ० ३१२

३ देव और उनकी कविता, पृ० २५४

कवि शिक्षा को दिना म विनाश प्रयत्न नहीं किया। उनका भुवाव कला की ओर या काय रस का शास्त्रीय पद्धति से रसास्वाद का ओर रहा। इस प्रकार कविवर्य ने ब्रज भाषा के क्षेत्र में आचार्यत्व का माग का निर्माण किया; परवर्ती आचार्यों का उपजीव्य स्रोत चाहें कविवर्य से भिन्न हो पर माग निर्देशन और दिना का सकल कविवर्य ने ही किया। यह वह तथ्य है जिस प्रायः सभी इतिहासकार स्वीकार करते हैं।

जिस प्रकार भामह से पूर्व संस्कृत कायशास्त्र की स्वतंत्र सत्ता नहीं थी यह नाटयशास्त्र के विनाश बट वृष्ण की कबल एक गाथा थी। भामह ने नाटयशास्त्रीय स्रोत की काव्यशास्त्रीय सामग्री का चयन और संयोजन किया और इस नाटयशास्त्र से एक स्वतंत्र सत्ता प्रदान की। इसीलिए संस्कृत कायशास्त्र के पितामह के रूप में भामह प्रतिष्ठित हैं। लगभग इसी प्रकार का प्रयत्न कविवर्य का था। भक्ति की व्यापक भूमिका से सम्बद्ध कायशास्त्र को कविवर्य ने स्वतंत्र सत्ता प्रदान की। कविवर्य के पूर्व जो कुछ पुष्ट प्रयत्न हुए थे उनको भी कविवर्य ने नियोजित किया। इस दृष्टि से कविवर्य को हिंदी के काव्यशास्त्र की परम्परा में वही स्थान प्राप्त है जो संस्कृत में भामह को। भक्ति में भी विरोध नहीं समझीता करके ही कविवर्य चले। राम तथा कृष्ण दाना को ही कविवर्य ने ग्रहण किया। इस समझीने के मूल में भी आचार्यत्व का ही उद्देश्य निहित है। आचार्यत्व के साथ उदाहरण-योजना भी अनिवार्यतः सलग्न रहनी है। माथ ही राम अलंकार निरूपण के लिए लक्ष्य सामग्री भी चाहिए थी। लक्ष्य साहित्य यदि हिंदी के पास उस समय था तो भक्ति साहित्य ही था। युग की रुचि और प्रवृत्ति की दृष्टि से भक्ति पूर्व का हिंदी साहित्य लक्ष्य नहीं बन सकता था। जिस प्रकार भामह ने सामान्य रूप से और दण्डी ने विशेष रूप से वृत्ति वक्त्यग संधि सध्यग आदि नाटय तत्त्वा का संज्ञेय कर अलंकारादि काव्यांगों का निरूपण किया उसी प्रकार कविवर्य ने भी भक्ति पक्षीय सामग्री का पुनः चयन करके उनमें नक्षत्र शास्त्रीय दिना का उद्घाटन किया। राम और कृष्ण के वृत्तों और प्रवर्तना को उदाहरण के रूप में जुटा कर कविवर्य ने लक्ष्य नक्षत्र परम्परा को एक सुनिश्चित और उपयुक्त आधार प्रदान किया।

## राम-पुराण

संस्कृत के कायशास्त्र में एक 'कायपुराण' की भांती आचार्य करते रहे। काव्यपुराण की कल्पना हिंदी के आचार्यों में भी चलती रही।<sup>१</sup> पर कविवर्य ने इस

१. दण्डी ने शरीर तावत्पिच्छाधरवर्षाद्विज्ञा पत्रावली करके काव्यपुराण के शरीर की सूचना दी। राम ने शरीररत्ना काव्यग्य कहकर उक्त आचार्य की रचना का आनन्दबोधने ने ध्वनि रत्ना काव्यग्य कहा। विश्वनाथ ने काय रत्ना मरु काव्यम् कहा। हिंदी के आचार्यों में भी काव्यपुराण के रूप का परंपरा चलती रही। चिन्मय ने राम और अथ के काव्यपुराण का शरीर राम का उल्लास वाचि (आचार्य) श्लेषादि गुणों की शीघ्रता गुणों के सागर राम रूप आचार्य के धर्म काव्यपुराणों को इतिहास शास्त्रकारक धर्म गीत का उल्लास स्वभाव और वृत्ति के उल्लास की वृत्त मना।

काव्यपुरुष को हिंदी काव्यशास्त्र के लिए विगिष्ट रूप में ग्रहण नहीं किया, वस उनका समस्त लक्षण साहित्य काव्यपुरुष के विविधागो का ही निरूपण करता है। कंगव ने भक्ति-गत लक्ष्य साहित्य को ध्यान में रखते हुए, नव रस-संस्थान रस गट कृष्ण की विराट कल्पना की। कृष्ण के आश्चय सुंदर और लीला बविध्य से युक्त व्यक्तित्व में कंगव को एक काव्यशास्त्रीय विराट पुरुष के दान हुए—

कहि केगव सेबहु रसिक जन ।

नवरस में अजरज नित ॥<sup>१</sup>

हिंदी में इस रसाश्रय का आविष्कार पहले पहल केशव ने किया। यद्यपि बंगाली वष्णव आचार्यों और भक्त कवियों ने इस रस पुरुष को माधुर्याधिष्ठान कहा था पर नवरसमय अजरज की कल्पना केशव की अपनी है। रस पुरुष-कल्पना ने शृंगार के रसरजत्व को नवीन दिशा और नई सिद्धि प्रदान की। वास्तव में केशव का रस पुरुष भी शृंगारावतार ही है। पर उमका 'रसरज की दृष्टि से नवीन संस्करण किया गया। यह रसपुरुष केशव के समस्त आचायत्व में व्याप्त है। केशव के कृष्णमय आचायत्व का सामान्य प्रभाव रीतिकाल के सभी आचार्यों पर माना जा सकता है। इस प्रकार कंगव ने राधा कृष्ण का काव्यशास्त्रीय अर्थ विस्तार करके, परवर्ती आचार्यों के लिए लक्ष्य साहित्य निश्चित कर दिया। साथ ही उदाहरण रचना का माग भी प्रगस्त कर दिया।

राधा-कृष्ण को इस रूप में ग्रहण करने के सम्बन्ध में कंगव सांगक भी थे क्योंकि गहि न जाइ रसना काहू की कहे जाहि जोई सुभू। पर केशव ने सभी से समा याचना करके अपनी लक्ष्य-पूर्ति को प्रमुख रखा।<sup>२</sup> राधा माधव को स्पष्ट रूप से काव्यशास्त्र से सम्बद्ध करके कंगव ने जो परम्परा स्थापित की वह आग के आचार्यों को भी स्वीकार्य रही। देव ने राधा-कृष्ण भावना को काव्यशास्त्रीय उद्गम

देव ने भी काव्यपुरुष की चर्चा की है—

सुख नीव निदि अरथ मन रममय सुखस सरीर ।

चलन बहै जुग धन गति भतकार गम्भार ॥

राधरसायन

सोमनाथ ने काव्यपुरुष का एक रूपक दो लिया है—

व्यय प्राण अरु अंग मव, मरु अथ पहवानि ।

दोष गुन अह अलकृति, दूषनानि उरानि ॥

रसपीयूषनिधि ७३

भिरतारीशान का काव्य पुरुष यह है—

रस कविता को अंग भूषण है भूषण सकल ।

गुन मरुप और रंग दूषन करे बुरूपना ॥

कान्यनिगय ११२

१ रसिक प्रिया ११२

२ राधारमय के कहे यथाविधि हाथ ।

शिवाइ केशवनाम की छन्दियो कवि कविराय ॥



प्रयोग किया है आत्मपति भालमनाथ आदि ।

बंगव ने रीतिकालीन भाषा-कवियों के लिए साहित्यिक भाषा का जो आदान रखा भिलारीदास ने सिद्धांत रूप में तथा अग्र कवियों ने व्यवहार रूप में उस स्वीकार किया । भिलारीदास ने छ भाषाओं का मिश्रण को आदान बताया ।<sup>१</sup> हमम ब्रज नागधी सस्कृत यवन पारसी तथा नागभाषा का मिश्रण रहता था ।

ऊपर परवर्ती आचार्यों पर बंगव के सामान्य प्रभाव की चर्चा की गई है । सक्षम में यह प्रभाव उस पृष्ठभूमि का है जिसका निर्माण बंगव ने हिन्दी के आचायत्व के लिए किया । आचायत्व के विविष्ट क्षेत्रों में भी कुछ परवर्ती आचार्यों ने बंगव को अनुकरणीय माना और उन पर बंगव का ऋण स्पष्ट लिखलाई भी देता है । अब तक बंगव के विविष्ट प्रदान को सामान्य तुलनात्मक दृष्टिकोण से देखने की चेष्टा की गई है । डा किरणचंद्र गर्मा ने बंगव तथा हिन्दी के परवर्ती आचार्यों की एक के अंतर्गत वही तुलनात्मक गली से बंगव के प्रदान को आदान की चेष्टा की है । उन्होंने शास्त्रीय पक्षों के विस्तार और निरूपण पद्धति की तुलना की है । इस तुलना में कोई विविष्ट निष्कर्ष नहीं निकाले जा सकते क्योंकि यह समानता बंगव के परवर्ती आचार्यों पर उनके ऋण को ही स्पष्ट नहीं करती उनकी स्रोतगत समानता की ओर भी संकेत करती है । प्रस्तुत प्रबंध के लेखक ने भी बंगव का आदान प्रदान<sup>२</sup> के अंतर्गत इसी प्रकार का विवरण प्रस्तुत किया है । यहां इन विवरणों की उद्धरणों द्वारा विस्तार की आवश्यकता नहीं है । आचायत्व के विभिन्न क्षेत्रों में उनके विविष्ट प्रदान को ही यहां स्पष्ट करने की चेष्टा की गई है । इसमें केवल उन्हीं अंगों पर विचार किया गया है जहां बंगव का प्रदान स्पष्ट और अतक्य है । अब तक बंगव की अग्र आचार्यों से अतिरिक्त रूप से तुलना की गई है । नीचे आचायत्व के क्षेत्र की दृष्टि से विचार किया है जिससे विविष्ट क्षेत्र में बंगव के प्रदान की परम्परा भी स्पष्ट हो जाए ।

### रस-क्षेत्र

रस निरूपण में बंगव की तीन प्रमुख प्रवृत्तियाँ दिखलाई देती हैं । सभी रसों का शृंगार में अंतर्भाव करने की पद्धति द्वारा शृंगार के रसराजत्व की प्रतिष्ठा नायिका भंग तथा विविष्ट काम प्रकरणा का संयोग करके शृंगार की विस्तृत तथा वृत्तियों के अनुसार रसों का वर्गीकरण ।

### शृंगार का रसराजत्व

शृंगार के रसराजत्व के सम्बंध में बंगव की दो धारणाएँ थीं । सभी रसों

१ ब्रज भाषा में निम्न अक्षर नया यवन भाषा में ।

सुदूर पारसी से निम्न पद विधि बहुत स्थिति ॥

२ बराहामु जीवनी कथा और इतिवृत्त, पृ ४३६-४४२

३ बंगव और उनकी साहित्य पृ० ३६३ ३७

का इसमें अतर्भाव हो सकता है<sup>१</sup> तथा ब्रजराज का चरित्र नवरसमय है।<sup>२</sup> इनमें से प्रथम कल्प की दीधवालीन परम्परा ससृष्ट काव्य गायत्र क क्षत्र म उपलब्ध होती है। दूसरी कल्पना बेगव की अपनी है। इस कल्पना को पूण बनान के लिए सखी समाज को भी वशव न ग्रहण किया।<sup>३</sup> इस प्रकार कृष्णगाथा की भक्ति सामग्री को काव्यगायत्रीय शृङ्गार की ओर बेगव ने उन्मुख किया।

शृङ्गार को सर्वोत्कृष्ट कहने की परम्परा तो भरत से ही चली आ रही है। भरत ने इस ससार व सभी पवित्र त्रिगुद्ध और उज्वल को शृङ्गार रस से उपमा दी है। रदट ने इसकी गायकता बतलाते हुए शृङ्गारहीन काव्य को अधम माना।<sup>४</sup> आनन्दवदन व अनुसार शृङ्गार ही सर्वाधिक मधुर और परमाह्लादक रस है।<sup>५</sup> पर इन आचार्यों ने सभी रसों का मूल शृङ्गार में मान कर उसके रसराजत्व की प्रति ठा नहीं की। इसलिए वशव को विचारधारा का विशेष सम्बन्ध इन आचार्यों की परम्परा में नहीं माना जा सकता। पर बेगव पर सामान्य प्रभाव इसका भी था।

शृङ्गार की श्रुति सम्बन्धित दूसरी परम्परा भाजराज और अग्निपुराण की है। भोजन रस की सजा बवल शृङ्गार को प्रदान की है। इसका अतिरिक्त सी तथाकथित 'रस भाव की कोटि में आता है। भोजन ने रस को एक कोटि 'प्रेमन्' मानी है। बवि वणपूरन सभी रसों का 'प्रेमन्' में अतर्भाव माना है।<sup>६</sup> अग्निपुराण की पद्धति भी ऐसी ही है। रति का रूप यह है अहकार अभिमान रति। यही सवारी आदि व सयोग से शृङ्गार में परिणत। अपन अपन स्थायीभावा से पुष्ट और जाग्रत हास्यादि रस रति या शृङ्गार के भेद मात्र हैं।<sup>७</sup> इससे स्पष्ट होता है कि बेगव की रस-सम्बन्धी मूल विचारधारा का उत्पन्न इसी परम्परा में है। वशव के पश्चात् भी यह परम्परा बेगव व अनुकरण पर चली। दवन भा सभी रसों का मूल शृङ्गार ही कहा है।

मूल कहत नव रस सुकवि सबल मूल तिगार।<sup>८</sup>

देव के अतिरिक्त सोमनाथ ने भी बेगवसे प्रभाव ग्रहण करके शृङ्गार के रसराजत्व की घोषणा की।

- १ नवहू रस को भाव बहु निज निज विचार।  
सबको बेशकाम हरि नाशक है शृङ्गार ॥ रसिकप्रिया १।१६
- २ कहि बेशव ने बहु रसिक जन नवरस में मन्तरान निज। बड़ी १।७
- ३ राधा हरि बन्धा हरण बरनो मखी समाज ॥ बड़ी १।१७
- ४ बक्ति चिन्ताके सुचि मध्य दरानीय वा लच्छद्वारेयानुमीयते। ना० शा० ६।४५
- ५ भवान विरममेवानेन हीन हि काम्यम्। काव्यालंकार १।४३८
- ६ शृङ्गार एव मधुर पर प्रह्लादो रस। ध्व-यालोक २७
- ७ आम्नामिनु दरारसान् सुधियो बय तु।  
शृङ्गारमव रसनाद्रमामनाम ॥ शृङ्गारप्रकाश
- ८ कम्म-जनि निम-जनि प्रेम्यस्यरहरसत्वत।  
सर्वे रमारच मावारच तरणा इव वारिषी ॥ अर्नकारकीर्तुम
- ९ अग्निपुराण ३३।१-८
- १० भावविभास १

नवरस को पति सरस अति रस सिंगार पहिचानि ।<sup>१</sup>

यहा भी कंगव का प्रभाव प्रान्त सधस्वीकृत है ।<sup>१</sup> डा० नगद्व न भी उन सबको एक ही परम्परा म माना है ।<sup>१</sup> देव और मोमनाथ पर कंगव का विगिष्ट प्रभाव स्पष्ट है । इ होने सस्वृत क मूल स्रोता स सम्भवत एस दृष्टि का नर्ण लिया । कंगव का अनुकरण करक ही उन दोनो न ही शृङ्गार को सर्वाधिक विस्तृति प्रान्त की है । इस रसरजत्व की परम्परा न एक और रूप आग चलकर ग्रहण किया है । कुछ आचार्यों न सभी रसा पर न लिखकर बवल शृङ्गार पर भी लक्षण ग्रथ लिखे । एम परम्परा म ही मतिराम का रसरज' देव का भवानी विताम सोमनाथ का शृङ्गार गिरोमणि प्रभृति ग्रथ विगप रूप म आत है । कंगव की रसिकप्रिया म यद्यपि सभी रसो का निरूपण है पर मूलत यह भी शृङ्गार निरूपक ग्रथ ही कहा जा सकता है । क्याकि १६ प्रकाशो म स १३ प्रकाशो म बवल शृङ्गार का निरूपण है । अर रसो का विवरण बवल चौदहवें प्रकाशो म दकर इग आचाय न सतोपलाभ किया है । गेप दो म रसदोष और वृत्तिया का निरूपण है । एस प्रकार बवल शृङ्गार का निरूपण करने वाल आचाय कंगव क शृङ्गार विस्तार और उसक रसरजत्व को रसिक-प्रिया म देखकर ही स्वतंत्र ग्रथा म शृङ्गार निरूपण करने की और प्रवृत्त हुए । इम परम्परा का भी मूल ग्रथ रसिकप्रिया का ही मानना चाहिए ।

### रसा का परस्पर सम्बन्ध

रसा के परस्पर सम्बन्ध को भी कंगव न स्पष्ट करने का चेष्टा की है । सभी रसो का शृङ्गारपरक वर्णन कंगव का अपना निजी प्रयोग माना जा सकता है । उनकी रणा रूपगोस्वामी स मिली हा सकती है । देव न भी सभी रसो का शृङ्गारपरक रूप लिया है ।<sup>१</sup> कंगव के अनुमार मुखर रस चार हैं बीभत्स शृङ्गार वीर और रोम । शांत क अतिरिक्त गप रसा की एनी चार रसों स उत्पत्ति होती है ।

भय उपज बीभत्स त अरु शृंगार ते हास ।

देगव द्रद्भुत घोर तें करणा कोप प्रकास ॥<sup>१</sup>

१ रसभाष्यनिधि ८।१

२ कंगव के समय स चनी आ रहा दिना रीतिमालीन परम्परा के पालननाथ में उन्होंने शृङ्गार का स्वरूप क लिया है ।

डा मयदेव चौरी दिनी रानि परम्परा क प्रमुन आचाय पृ २१८

३ शृङ्गार का प्रधानता देने वाला यह निद्वान मस्कृत रसरज म बतन पुराना है । भानराज न अपना पूरा शक्ति लगाकर इसका प्रत्यक्ष किया है । दिनी में म देव म पूव कंगव विनामणि और मतिराम आर इसको रणा कर चुके थ । एव श्री डाकी कविता पृ १४६

४ एम अर्थाका मूनी दखर सि । नासित्व का शृङ्गार विगस पण्ड भग पृ० २८७

५ कंगव अ देव एनी ने ही दहा चप्ता का है कि सभी रसा क शृङ्गारपरक बलन विण नए । एतु व बुगी तरह अमकन हुए हैं । डा नगद्व की पृ १४६

६ रसिकप्रिया १६।१३

इस प्रकार का उत्पादक उत्पाद्य रस सम्बन्ध भरत ने भी स्वीकार किया था।<sup>१</sup> केशव के पश्चात् देव ने इस रस सम्बन्ध परंपरा को अपनाया। कई स्थला पर देव न केगव म बीज ग्रहण करके उनका पल्लवन किया है। रसों का परस्पर सम्बन्ध बताने की प्रेरणा केगव से लेकर देव ने इस क्षेत्र का कुछ विकास किया। केगव द्वारा निर्दिष्ट मुख्य रसों में से देव ने बीभत्स और रौद्र को छोड़ दिया और शान्त को जोड़कर सख्या तीन कर दी और एक-एक से दो-दो रसों की उत्पत्ति बतला कर रसों के परस्पर सम्बन्ध की धारणा का पल्लवन किया। देव ने यह क्रम इस प्रकार निश्चित किया—

शृंगार—हास्य      वीर—रौद्र      शांत—भद्रभुत  
भय                      करुण              बीभत्स

यह क्रम केगव की धारणा से बिल्कुल साम्य नहीं रखता। यह धारणा देव की अपनी हो सकती है अथवा किसी अन्य स्रोत से, पर केगव का प्रदान यहाँ सिद्ध नहीं होता।

इस सम्बन्ध में रसों के परस्पर सम्बन्ध की स्थापना इस प्रकार की गई है मुख्य रस केवल चार हैं शृंगार रौद्र वीर और बीभत्स। शांत के अतिरिक्त सभी रस इन्हीं चार रसों से उत्पन्न होते हैं। शृंगार से हास्य रौद्र से करुण वीर से भद्रभुत और बीभत्स से भयानक।<sup>२</sup> यह स्थापना अंतरंग केगव के अनुसार ही है। यहाँ केगव का प्रमाण स्पष्ट स्वीकार करना चाहिए। साथ ही केगव के नायक है सिंगार सूत्र को पकड़कर भी देव ने विस्तार किया और सभी रसों का सम्बन्ध शृंगार से स्थापित करके उसका सम्राजत्व स्पष्ट कर दिया। केगव ने अपने सूत्र का विस्तार नहीं किया था। देव ने विस्तार की पद्धति यह रखी। पहले तीन रस मुख्य माने। फिर शांत और वीर का भी समावेश शृंगार में कर लिया गया। इस प्रकार एक ही मूल रस शृंगार रह जाता है। यहाँ केगव न केवल बीज दान किया। देव ने उसका पोषण-

- १ शृङ्गारादि मयेद्वास्यो रौद्रान्च करणो रसः ।  
वीराञ्चैवाद्भुतः पत्तिर्बीभत्सो भयानकः ॥ नाट्यशास्त्र ६।३६
- २ शोभि मुख्य नो हू रमनि द्वे-द्वै प्रथमनि लोने ।  
प्रथम मुख्य तिन तिनपु मे त्पुत्र तेदि अधान ॥  
हास्य भय क सिंगार सग रौद्र करुण रग वीर ।  
भद्रभुत भरु बीभत्स सग, शान्त, वरत धीर ॥ भवानीविलास
- ३ शान्त हास्य सिंगार के करुण रौद्र ते जानु ।  
वीरजनि भद्रभुत कहे बीभत्स ते भयानु ॥ शब्दरमायन
- ४ ती संयोग वियोग जेत् शृंगार दुविध कहु ।  
हास्य, वीर भद्रभुत संयोग के, सग अग लहु ।  
भरु करुना रौद्र भयान मये तीनों वियोग अग ।  
रस बीभत्स क शान्त शान्त त्पुत्र इपुन रग ।  
यद् सूत्रम रीति ज्ञानत रसिक जिनने अनुभव मव रसनि ।  
नकह सुभाव माननि मदिन रहन मध्य शृंगार तनि ॥ शब्दसादा

पल्लवन किया। इसके अनुसार शृगार के सयोग पक्ष म हास्य वीर और भ्रदमुत का सम्बन्ध जोडा गया और वियोग म रीद्र करण और भयानक का भ्रतर्भाव किया गया। बीभत्स और गात दोनो से ही सम्बद्ध हो सकते हैं। इस योजना म एक सीमा तक बेशव के शृगारेतर रसो क उदाहरण सहायक हुए होये।

### प्रच्छन्न और प्रकाश

इस क्षेत्र मे बेगव की एक और विशेषता शृगार के प्रच्छन्न एव प्रकाश भेद मानने की है। बेगव ने इन भेदो को सम्भवतः भोजन ग्रहण किया था। देव न बेगव ने इस विभेद को ग्रहण किया। पहल देव न शृगार को सयोग और वियोग म विभाजित करके इनको प्रच्छन्न और प्रकाश माना है—

द्व प्रकार सिगार रस है सभोग वियोग।

सो प्रच्छन्न प्रकाश करि कहत चारि विधि लोग ॥

प्रच्छन्न और प्रकाश भेदो क लक्षण भी दोनो आचार्यों म समान ही हैं। परन्तु अन्तर है कि बेगव ने इस भेद पर विशेष बल दिया है और इसका लक्षण निरूपण भी कुछ अधिक विस्तार क साथ किया है। देव न इस निरूपण को कुछ चलता सा कर दिया है। बेगव क अनुसार प्रच्छन्न सयोग वह है जिस प्रिया प्रियतम तथा अतरंग गखी के प्रतिरिक्त कोई नही जानता है और प्रकाश सयोग को सभी अपने मन म जानते रहते हैं। देव ने माधारणतः कह दिया है कि जो विलास गुप्त रहता है वह प्रच्छन्न और जिसे सब जानते हैं वह प्रकाश कहलाता है। केवल प्रच्छन्न के निरूपण म यह अन्तर है कि उसमें सखी का नाम नही दिया गया। हो सकता है बेशव की दृष्टि पर उन राधावादी सप्रदायों का प्रभाव रहा हो जहा सखिया सभी विलास रहस्यो म परिचिता ही नहीं उनम सहायिका भी मानी जाती थी। इस भेद निरूपण मे देव निश्चित रूप से बेगव क शृणी हैं। देव क पश्चात् प्रच्छन्न और प्रकाश भेदों का व्यापक प्रयोग श्री कृष्णदेव अरुपि ने अपने शृगाररसमाधुरी नामक ग्रन्थ मे किया है। इस ग्रन्थ क द्वितीय स्वाद म नायक क चार भेदों क प्रच्छन्न और प्रकाश दो भेद किए हैं। तृतीय स्वाद म चतुर्विध दगन क भी प्रच्छन्न और प्रकाश दो रूपों का वर्णन किया गया है। चष्टाद्यो को भी प्रच्छन्न और प्रकाश दो रूपों में वर्गीकृत किया गया है।

१ सो प्रच्छन्न सयोग अरु कहें वियोग प्रमान।

जाने वीउ प्रिया कि सखि होहि जुनि नहि समान ॥ रसिकप्रिया १।२५

२ सो प्रकाश सयोग अरु कहें प्रकाश वियोग।

अपने-अपने विल में जानें प्रियरे लाग ॥ बरी १।२५

३ देव की प्रच्छन्न मा को दुरो विलास।

जानहि जाका मुकल जन बरनै ताहि प्रकाम ॥ मावविलास

४ हा नगरे देव और उनकी कविता पृ १५

५ १० दिनी माहिन्य का बृहत् इति नाम कठ भग ५० ३१३ पर इसका विवरण।

## रम और वृत्तिया

रस रस में केगव की एक और विशेषता वृत्तियों के अनुसार रसों का वर्गीकरण है। सङ्घटन में नाट्यशास्त्र तथा काव्यशास्त्र दोनों ही परम्पराओं में वृत्ति निरूपण मिलता है।<sup>१</sup> हिन्दी के अधिकांश परवर्ती प्राचार्यों ने इस पक्ष को छोड़ दिया था। इसका कारण यह हो सकता है कि वृत्तियों का प्रमुख क्षेत्र नाट्य ही था। केगव ने चार वृत्तियाँ पर विचार किया है। कौशिकी (कौशिकी) भारती आरभगी सात्विकी (सात्विकी)।<sup>२</sup> केगव के पश्चात् मिलारोदास ने इस प्रकरण को केगव से ग्रहण किया। देव ने भी वृत्तियों का निरूपण किया है। देव का आधार भी रसिक-प्रिया ही है देव के आगम रसायन का वृत्ति रम प्रथम रसिकप्रिया की भाँति ही है कवन एक अन्तर है कि सात्विकी के आगम देव ने शृंगार के स्थान पर राग माना है।<sup>३</sup>

केगव—

प्रदभुन धार शृंगार रस, सपरस वरणि समान ।  
सुनतहि समुभ्त भाय जिहि, सो सात्विकी मुजान ॥<sup>४</sup>

रव—

धोर, रोद्र अदभुन भई जहाँ सांत सवित्त ।  
रूप, शोध, अचरज, छमा, प्रकट सात्विकी वृत्ति ॥<sup>५</sup>

आगम केगव के समान ही है। देव के पश्चात् मिलारोदास ने रस माराग में वृत्ति रम सम्बन्ध प्रथम को ग्रहण किया है। पर दास ने भारती वृत्ति को छोड़कर दोष तीन ही वृत्तियों का निरूपण किया है। यद्यपि उनका वृत्ति निरूपण केगव से पूर्णतः ग्रहण किया हुआ नहीं है फिर भी केगव का दास को आगम प्रदान स्पष्ट है। दास और केगव दोनों का कौशिकी निरूपण अक्षरों में समान है—

क—

बहिण केगवदास जहँ बहना हास शृंगार ।  
सरस वरण गुभ भाव, जहँ सो कौशिकी विचार ॥<sup>६</sup>

स—

सुभाविनि युत कौशिकी बहना हास, सिंगार ।<sup>७</sup>

१ इन परम्परा में भरत (नाट्यशास्त्र २२।६५, ६६) धननय (दशरूपक २।६२), रामचन्द्र गुणचन्द्र (नाट्यशास्त्र १५२ १५८) विश्वनाथ (साहित्यशास्त्र ६।१२२) शाहदालनय (भावप्रकाश, भावप्रकाश भाग्य स सीरीज पृ १२) तथा शिंगभूपाल आते हैं।

२ रसिकप्रिया १५।१ २, ३ ३ ८

३ प्रथम कौशिकी भारती आगमि मनि भाँति ।

कवि केगव गुम सात्विकी चतुर चतुर विधि जानि ॥ रसिकप्रिया १५।१

४ केगव ने शृंगार का सम्बन्ध कौशिकी और सात्विकी दोनों से माना है, हो सकता है देव ने रम पुनरावृत्ति को दूर करने के लिए ही सात्विकी में शृंगार के स्थान पर रोद्र कर लिया हो।

५ रसिकप्रिया

६ शास्त्रमायन

७ रसिकप्रिया

८ रसमागारा ५१५

एक विशेष बात यह है कि दोनों ही आचार्यों ने 'बंगिकी' का स्थान पर 'कौंगिकी' अशुद्ध रूप लिखा है।

आरभटी का अन्तगत भी दोना आचार्यों ने रीद्र वीर बीभत्स को सम्मिलित किया है।<sup>१</sup> सात्वती में कशव ने अदभुत वीर शृंगार और शान्त को रखा है।<sup>२</sup> पर दास ने इन चारों का अतिरिक्त हास्य को भी इसमें सम्मिलित किया है। यहाँ एक विशेष बात यह है कि दास ने दो दोहों में रस वृत्ति सम्बन्ध को स्पष्ट किया है। प्रथम दोहे की प्रथम पक्ति में कौशिकी का दूसरे दोहे की प्रथम पक्ति में आरभटी का तथा प्रथम तथा द्वितीय दोहे की द्वितीय पक्तियों में सात्विकी का निरूपण है। प्रथम दोहे की द्वितीय पक्ति में इसका अन्तगत वीर हास्य और शृंगार बताया गए हैं तथा द्वितीय दोहे की द्वितीय पक्ति में भिखारीदास ने उन्हीं चार रसों को सम्मिलित किया है जिनको बंगव ने लिया है अदभुत वीर शृंगार और शान्त।<sup>३</sup> सात्विकी का इस प्रकार का बिखरे हुए निरूपण का रहस्य समझ में नहीं आता। पर बंगव का साम्य अवश्य स्थापित किया जा सकता है। संस्कृत आचार्यों से दास का अन्तना साम्य नहीं है जितना कशव से। इस दृष्टि से दास को बंगव का वृत्ति निरूपण में श्रेणी कहा जाना अनुचित नहीं है। नीचे की तालिका से यह बात स्पष्ट हो जाती है —

वृत्ति	भरत	धनञ्जय	रामचन्द्र	गुणचन्द्र	केशव	दास
कौशिकी	शृंगार	शृंगार	शृंगार	हास्य	करण	करण
	हास्य				शृंगार	शृंगार
					हास्य	हास्य
सात्वती	रीद्र वीर	वीर	रीद्र वीर	अदभुत	अदभुत	वीर हास्य
	अदभुत		शान्त		वीर	शृंगार
					शृंगार	अदभुत
					शान्त	शान्त
आरभटी	भय बीभत्स	रीद्र	वीर	रीद्र	रीद्र, भय	रीद्र भय
					बीभत्स	बीभत्स
भारती	करण	सर्व रस	सर्व रस		वीर अदभुत	
	अदभुत				हास्य	

इसके आधारे पर कौंगिकी और आरभटी के निरूपण में बंगव का प्रदान

१ क—कशव जाते रीद्र रस भय बीभत्स जान।

आरभटी आरम्भ यह पश्यत जमक बरान ॥ रसिकप्रिया १५६

२—भय विभक्त कर रीद्र रस आरभटी उर आनि। रससागरा ५५६

३ रसिकप्रिया १५६

४ वीर हास्य शृंगार विनी सात्विकीति निरुधरि।

अदभुत वीर शृंगार युत शान्त सात्विकीति जनि ॥ रससागरा ५५५-५५६

५ जो मकना है कि यह निरूपण 'भारती' का स्थानान्तरण है जिसे भिखारीदास ने छोड़ दिया है। यह मानने से 'भारती' का अर्थ देने की बात भी एक भूल का कारण मानी जा सकती है।

स्पष्ट है। सात्त्वती पर पहले विचार किया जा चुका है। साथ ही हास्य तो शृगार के साथ स्वतः सम्बद्ध है ही।<sup>१</sup>

दास क पश्चात् कृष्णभट्ट देवश्रुति ने अपने शृगाररस भाधुरी' के पदद्वयें स्वाद म बंगव क अनुसार वस्तियों तथा उनम भ्रान्त वाले रसों का निरूपण किया है। इस प्रकार बंगव क प्रदान की परम्परा उस क्षेत्र म अविच्छिन्न और दीर्घ रही। वय भाचार्यों ने प्रायः इस प्रकरण को छोड़ दिया।

### नायिका भेद

नायिका भेद प्रकरण की मूल रूपरेखा प्रायः सभी भाचार्यों म समान रही है। बंगव क तथा परवर्ती भाचार्यों द्वारा प्रस्तुत निरूपण और उनके परस्पर साम्य और बपय्य पर पीछे विचार किया जा चुका है। बंगव की दृष्टि भक्ति स प्रभावित रही। परवर्ती भाचार्यों म नायिकाशस्त्रीय दृष्टि प्रधान होती गई। भाष्य भावना वाले कृष्ण भक्ति सप्रदाया म 'सखियों का महत्त्वपूर्ण स्थान था। वशव के विचार भी सखी क प्रति ऐसे ही प्रतीत होने हैं। देव ने 'भावविज्ञान म सखी के स्थान पर दूसरी शक्ति रखा है। इस प्रकार बंगव की मूल दृष्टि परवर्ती भाचार्यों स भिन्न हो गई। इतक अतिरिक्त बंगव ने भानुदत्त का अनुकरण नहीं किया। फिर भी परवर्ती भाचार्यों ने बंगव स प्रेरणा और पद्धति ग्रहण की।

चिन्तामणि और मतिराम पर तो विशेष प्रभाव दृष्टिगत नहीं होता। पर देव बंगव के पर्याप्त श्रुति दिखलाई देते हैं। मूल ढांचे म समानता तो है पर कुछ अंतर भी है। उदाहरण के लिए जिस देव ने रस क क्षेत्र म प्रच्छन्न और प्रकाश भेदों को स्वीकार किया उन्हीं ने नायिका निरूपण म इन भेदों को त्याग दिया। कुछ अंतर इसलिए भी है कि देव ने इस प्रकरण का कुछ मौलिक विस्तार भी किया। पर इस मौलिक विस्तार म बंगव का प्रेरणादान अवश्य ही स्वीकार करना चाहिए। वशव ने देव और वय क अनुसार नायिकाभेद का सकल किया था—

इहि विधि नायक नायिका धरनों सहित विवेक।

देव काल वय साजते बंगव जानि अनेक॥<sup>१</sup>

वशव ने यह कथन नायिका भेद का उपसंहार करते हुए किया है। इसका तात्पर्य यह है कि देव-काल के अनुसार विस्तार करना बंगव के मस्तिष्के म था पर

१ दा० मत्स्येय चौधरी के अनुसार कैराली और आरमटी श्रुतियों में उन (दास) पर वेशव का प्रभाव स्पष्ट है। सात्त्वती के साथ रसने वेशव-सम्मत तीनों रसों—अनुभूत, वीर, शृगार के अतिरिक्त हास्य और शान्त रस और जोड़ दिए हैं। हास्य तो शृगार के साथ स्वतः सम्बद्ध है ही।

हिन्दी शक्ति परंपरा क प्रमुख भाचार्य पृ० ३५५

सम्बद्ध दा० चौधरी ने वेशव के सात्त्वती निरूपण दाहे में प्रयुक्त 'समरस' को सात्त्वती नहीं माना है। इसलिए उन्होंने वेशव और दास के निरूपण में दो रसों—शान्त, हास्य का अन्तर माना है।

२ किरणचन्द्र शर्मा केशवकास जीवनी, कला और कृतित्व पृ० ४००

३ रसिकविद्या ७।४०



वे कर नहीं पाए। देव ने केगव के इस कथन से प्रेरणा लेकर देग व अनुसार नायि काओ का निरूपण किया और अय नायिकाओं की वय सरणिया को स्पष्ट किया। यह केगव का प्रेरणा प्रदान है। इसके साथ ही काल गण भी देव न केगव स ग्रहण किया है। यह अय आचार्यों के द्वारा प्रयुक्त अवस्था का ही पर्याय है।

केगव ने मुग्धा के केवल चार भेद माने हैं नवल वधू नव यौवना नवल अनया लजा प्रायरति। देव ने इनमें वयस सधि को जोड़ कर सख्या पाँच कर दी। इससे पहले यह सन्देह होता है कि देव ने केगव से इन रूपा को नहीं लिया। धनजय विश्वनाथ ने भी पाँच ही भेद माने हैं। अतः देव का स्रोत वहीं वही है। पर डा० नगद्व न देव पर यहाँ भी केशव का ऋण स्वीकार किया है। उम्मा कारण यह है कि नवल वधू नाम प्रायः संस्कृत व आचार्यों का भाग्य नहीं रहा। केगव न इस भेद को माना है और देव ने भी। केगव के द्वारा उपेक्षित वय सधि को देव ने परम्परा व आग्रह स ग्रहण किया है।

मध्या और प्रोढा के अवातर भेद देव ने इस प्रकार दिए हैं

मध्या	प्रोढा
रूपयौवना	लघापति
प्रकटमनोजा	रतिकोविदा
प्रगल्भवचना	आनातनायका
विचित्रसुरता	मविभ्रमा

बिल्कुल ये ही भेद प्रभेद केगव ने रसिकप्रिया में दिए हैं। संस्कृत आचार्यों का नाम आदि में जो परिवर्तन केगव ने किया वह देव ने स्वीकार किया है। डा० नगद्व का मत यहाँ द्रष्टव्य है

उपयुक्त विभेद भी देव ने प्रायः ज्यो क त्यो केगव ने छोड़ा परिवर्तन कर विश्वनाथ से लिए हैं और विश्वनाथ का आधार यहाँ भी धनजय ही है। देव ने उन्हें सीधे विश्वनाथ से नहीं ग्रहण किया इसका प्रमाण यह है कि इनके अम अथवा नाम आदि में जो परिवर्तन हुए हैं वे पहले केगव में मिलते हैं। अतएव उनका दायित्व अथवा अय केगव को ही दिया जानगा।<sup>१</sup>

१ मध्यप्रेशवधू मगधवधू कौरालवधू पालवधू उज्जलवधू कलिंगवधू कामरुवधू वग वधू विन्ध्यवनवधू माणववधू भाभीरवधू विराटवधू, कुकन(काकण)वधू केरलवधू, द्राविणवधू सैनगवधू करनाटकवधू विषयवधू गुजरातवधू भारवाणवधू आदि भेद हैं। देरामे का मकेत-केशव ने रसिकप्रिया में पहले ही उल्लिखित किया है। डा० नगद्व देव और उनकी कविता, पृ १५४

२ डा० नगद्व देव और उनकी कविता पृ० १५२ १५३

३ देव न यह मत भी विस्तार काल क्रमानुसार माना है। यहाँ 'काल' शब्द विस्तारणीय है। काल का प्रयोग देव में पूर्व केशव ने भी किया है। वही पृ १५४

४ धनजय में विश्वनाथ ने, विश्वनाथ से केशव ने और केशव से देव ने ग्रहण किया है। वही पृ १५२

५ देव और उनकी कविता पृ १५२

केशव क नायिका भेद की एक और विशेषता जाति के अनुसार पद्मिनी चित्रिणी शक्तिनी हस्तिनी नायिकाओं की स्वीकृति है। देव ने जाति पर आधारित इन चतुर्विध वर्गीकरण को माना है।<sup>१</sup> संस्कृत के प्राय सभी आचार्यों ने इनको नायिका-भेद विधान में स्थान नहीं दिया। देव क परचात् भी कुछ आचार्यों ने इस वर्गीकरण को माना है। चिन्तामणि ने स्वयं तो इस भेद निरूपण को स्वीकार नहीं किया, पर प्रकवर साहिब विरचित शृंगारमञ्जरी की हिन्दी छाया में ये आई हैं। सोमनाथ ने भी पद्मिनी आदि का लक्षण निरूपण किया है।<sup>२</sup> इनके लक्षण निरूपण की वगैरे क साथ तुलना पहले की जा चुकी है। भिलारीदाम ने रस साराण में यद्यपि अत्यन्त मर्यादित लक्षण निरूपण किया है पर इन कामगास्त्रीय नायिकाओं का ग्रहण अवश्य किया है—

भई पदम सौगध सो अग जाकी वही पद्मिनी नाइका बन कीज ।  
रती राग चित्रोपमा चित्रिनी है, सब भद तो कोक सो जाति लीज ।  
वहै गलिनी हस्तिनी नाम जो है सो सो ग्राम्य नारी वही म गनीज ।  
इहैं शुभ्र शोभा भई काय के बीच केहू नहीं यरनि बो धित कीज ॥

भक्त की पक्ति में संक्षिप्त रूप में इनके वर्णन करने का कारण भी निश्चित है। भिलारीदास के अतिरिक्त कुछ सामान्य आचार्यों ने भी पद्मिनी आदि भेदों का निरूपण किया है। कृष्णमठ देवकृष्ण ने अपने शृंगारममाधुर्य नामक ग्रन्थ में इन नायिकाओं का निरूपण केशव की रसिकप्रिया क आधार पर किया है।<sup>३</sup> शिवनाथ ने भी इनको स्वीकार किया है। चन्द्रदास वृत्त शृंगारमाग्य में भी इनका विवरण मिलता है।<sup>४</sup> यह परम्परा गिरधरदास तक चली आई है। भारत-द्वारा मर्यादित तथा खग विलास प्रेम बाकीपुर से प्रकाशित 'रसस्तोत्र' में पद्मिनी आदि का निरूपण है। इस प्रकार जो परम्परा संस्कृत काव्यशास्त्र में अत्यन्त विविध और नगण्य सी रही उस परम्परा को केशव ने बल दिया, जिसके आधार पर शिष्टी में उसकी परम्परा चलती रही। विग्रह रूप में शृंगार प्रदान मरण ग्रन्थों में यह काम-गास्त्रीय नायिका भेद मान्य रहा।

## रसदोष

केशव ने पांच धनरस माने हैं प्रत्यनीक नीरस विरस शृंगारान तथा पात्रादुष्ट। यद्यपि देव की रसदोष-वर्णना केशव में पूरा मान्य नहीं रखी, पर

१ पद्मिनी-चित्रिणी जातिप्रिया, भवन मुन्वी आदि। सुगलविलास

२ रसरीतुविधि ८१३ १५, १७, १६

३ शृंगारममाधुरी तृतीय स्कंध

४ रसवर्ण, तृतीय रहस्य, दिन्दी साहित्य का इतिहास अष्टभाग, पृ० ६०६

५ दिन्दी साहित्य का इतिहास अष्टभाग पृ० ४२५ ६ रसिकप्रिया १६१

७ सरस निरस सम्मुख विमुक्त १३-पर निष्ठ पक्षिचरि।

भीः अमोत वगैरे चित्र, उचित, शुक्ति कल्पानि ॥ शब्दमादन

इहीं नामों से सस्कृत में भी इनका स्त्रोत खोजना कठिन है। फिर भी वेगव से प्रेरणा और प्रभाव दोनों ही देव ने ग्रहण किए हैं।<sup>१</sup> डा० नगेंद्र जी ने इस प्रभाव की चर्चा नहीं की है। उनके अनुसार नीरस व भेदों का संकेत ग्रहण वेगव न रस-तरंगिणी से किया।<sup>२</sup> जगतसिंह ने अपने ग्रंथ साहित्यसुधाविधि व दोष प्रकरण में रमिकप्रिया में निदिष्ट दोषों का निरूपण किया है। नीरस विरस दुस्वघान पात्रादुष्ट।<sup>३</sup> कुमारमणि शास्त्री ने अपने रसिकरसाल व नवें उल्लास में कुछ दोषों व उदाहरण केशव से ग्रहण किए हैं। कृष्णभट्ट देवश्रष्टि ने भी वेगव द्वारा निदिष्ट प्रत्यनीक नीरस विरस दुस्वघान पात्रादुष्ट नामक दोषों का निरूपण किया है।<sup>४</sup> रस-दोषों की कल्पना में वेगव ने अपनी मौलिकता का पुट देकर एक परम्परा चलाई थी उसका निर्वाह कुछ परवर्ती रीतिकानीन कवियों ने किया है। रस निरूपक आचार्य तो अवश्य ही केशव के रस प्रकरण से प्रभावित रहे।

### दूती सखी प्रकरण

वेगव ने केवल सखी शब्द का प्रयोग किया है। जब राधाकृष्ण को शृंगारालबन रूप में ग्रहण किया गया तब सखी समाज ने भी वेगव को आकर्षित किया। कृष्णभक्ति गाला व राधापरक सम्प्रदायों में सखी तत्त्व प्रमुख हो गया था। वेगव को निश्चित ही इन भक्ति सम्प्रदायों से प्रेरणा मिली। राधा कृष्ण व प्रणय माग की वाधाघातों को दूर करना ही इस सखीसमाज का कार्य था।<sup>५</sup> यहाँ तक की कृष्णभक्ति-गाला में सखीसम्प्रदाय भी चल पड़ा जिनके अनुयायी सखीभाव से श्लेषामना करते थे। दूती सखी प्रकरण का अत्यधिक विस्तार रूपगोस्वामी ने भी किया था। पर इन्होंने दूती और सखी दोनों के भेदोपभेद का परिगणन किया। वेगव ने केवल सखी गीतों को ही ग्रहण किया है। सस्कृत काव्यशास्त्र में बहुधा दूती और सखी को पृथक् मानकर इनके स्वरूप और नाम निरूपित किए गए हैं। भरत ने केवल दूती का ही निरूपण किया है।<sup>६</sup> केशव ने इन दोनों परम्पराओं से

१ दिव्यी माहिय का कृत इतिहास, पृष्ठ भाग पृ ३३७

२ इस प्रयोग के अधिकार का संकेत रस तरङ्गिणी से ही लिया गया है। पर तु देव उसे स्पष्ट रूप से ग्रहण भी नहीं कर पाये उनका विवेचन तो दूर रहा। देव और उनकी कविता पृ १४७

३ साहय्य सुधाविधि तृतीय तरंग। इन्होंने जगतसिंह ने सौ दोषों का निरूपण किया है।

ये सन दाम मुख्य हैं इन्हीं के अन्तरभूत में और दाप जानिबो।

इन्हीं में रमिकप्रिया और कवि प्रिया के दोषों को सम्मिलित किया गया है।

४ दिव्यी माहिय का कृत इतिहास पृष्ठ भाग पृ ३४५

५ शृंगारमनाधुरी पृ ६ वा शब्द

६ राजा हरि वाषा हरण, बरना सखीसमाज। —रमिकप्रिया ११।१६

७ कालान नीलमणि सप्तम अध्याय

८ ना शब्द २४। १६ १६२। कामराजकीय ग्रन्थों में भी 'दूती' का ही उल्लेख है।

पृथक अकेली सखी का निरूपण करने की परम्परा चलाई। कृष्णभक्ति सम्प्रदायो में गोपीभाव और सखीभाव दोनों थे। प्रथम में कृष्ण के साथ विहार करने की अलौकिक प्रासक्ति रहती थी। दूसरे भाव में केवल युगल-सरकार की रासरीला के सम्पादन का प्रयत्न कुञ्ज रघ्नो से राधाकृष्ण रतिलीला का दशन तथा सुरतो-परान्त युगल सरकार की सेवा ही रहते थे। कंगव ने इसी दूसरे भाव का अपनाया। यही नायक नायिका निरूपण का उपयुक्त भी था। कंगव की सखी सम्बन्धी उक्त धारणा भक्तिकालीन सखीभाव में साम्य रखती है। पर कंगव के उपरांत केवल सखी निरूपण की पद्धति नहीं बली। देव ने यद्यपि निरूपण रसिकप्रिया के आधार पर ही किया है पर उन्होंने 'दूती' नाम ही रखा है। चिन्तामणि ने तो इनका निरूपण ही नहीं किया। सोमनाथ ने सखी दूती को स्वीकार करके दाना का पृथक कव्य कर्म का निरूपण किया है।<sup>१</sup> भिलारीदास ने इस प्रकरण को कुछ विस्तार में तो दिया है पर सखी दूती परम्परा को ही स्वीकार किया है।<sup>२</sup> पर कृष्णभट्ट देव ऋषि ने कंगव की पद्धति में एक पूरे अध्याय में सखियों का वर्णन किया है।<sup>३</sup> आगे व अध्याय में दूती निरूपण पृथक रूप में किया है। पर सखी निरूपण में ये कंगव का निश्चित रूप में ऋणी हैं। गिबनाथ ने भी केवल सखीभेद ही प्रस्तुत किया है। हम विवेचन में यही निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि कंगव का सखी गान आगे भी बला पर परम्परा प्रबल नहीं रही। इसका कारण साहित्यशास्त्र और काम शास्त्र का सघन प्रभाव और भक्तिदृष्टि का उत्तरोत्तर क्षीण होता जाना माना जा सकता है।

जहां तक सखियों की जातियों का प्रश्न है कंगव ने अधिकांश निम्न जातियों से उनको संबद्ध माना है।<sup>४</sup> परवर्ती आचार्यों में दा परम्पराएँ मिलती हैं। एक तो उन आचार्यों से संबन्धित है जिन्होंने दूतियों के कर्म का ही निरूपण विशेष रूप से किया है।<sup>५</sup>

१ रसपीयूषनिधि १२।१०, २१

२ भिलारीदास ने सखी सङ्घरी नाम दिए हैं—

निय प्रिय को दिनकारिणी अन्तर्वनिनि दाइ ।

और विन्ध्या सङ्घरी, सखी कडावे साइ ॥—रसमारांग २१४

यह परम्परा केराव में मिलती है ।

३ शृंगाररममापुरी बारहवां द्वा

४ रसभक्ति, आठवां द्वा

५ भरत ने भी निम्न जातियों की दुनियों का ही उल्लेख किया है।—ना० रा २५।४ १०

६ सामनाथ ने सखी के कर्म तथा दूती के कर्म का निरूपण 'रसपीयूषनिधि' (१०।१, २१) में किया है। इस परम्परा से संबंधित आचार्यों में रसमञ्जरी के आधार पर पता दिया है। विरहनाथ ने भी इन सखियों का उल्लेख किया है (साहित्यदर्पण, परि ६० ३) कामधुन (१५।४) तथा अर्जुनरत्न में भी कंगव के समान ही सूची दी गई है। नायारत्न की परम्परा में भरत के पदवाच्य अन्वय ने भी पत्नी की दूतियाँ मानी हैं। (नारायण)

दूसरी परम्परा बेगव-द्वारा प्रवर्तित कही जा सकती है। इस परम्परा के आचार्यों ने बेगव की भाति निम्नवर्गीय दूतियों की सूची भी दी है और उनका कतव्य काम का भी निरूपण किया है। नीचे की तालिका से परवर्ती आचार्यों का बेगव का प्रमाण स्पष्ट हो जाता है।

केशव की सखी	देव <sup>१</sup>	कृष्णभट्ट देवऋषि <sup>२</sup>	भिलारीदास <sup>३</sup>
धाय	धाय	धाय	घाई
जनी	—	जनी	—
दासी	—	—	—
नाइन	नाइन	नाइन	नाइन
नटी	नटी	नटिनी	नटी
पडोमिन	—	परोसिन	परोमिन
मालिन	मालिन	मालिन	मालिनि
वरइन	—	वरइन	—
(तमोलिन)			
गिल्पिनी	गिल्पिनी	गिल्पिन	—
चुडिहारिन	—	चुग्गिहरिन	चुरिहेरिन
सुनारिन	—	सुनारिन	सुन रिन
रामजनी	—	रामजनी	रामजनी
(गुसाइन)			
सयासिनी	सयासिनी	सयासिनी	सयामिनी
पटवा की स्त्री	—	पटविन	पटइन

इस प्रकार बेगव हिंदी में सखीदूती निरूपण की एक प्रणाली का प्रवर्तक कहें जा सकते हैं। इनका सम्बन्ध संस्कृत का भरत धनजय विश्वनाथ और कामशास्त्रीय ग्रंथों से है। हिंदी के कुछ बेगव परवर्ती आचार्यों ने बेगव से प्रेरणा या सामग्री लेकर इस परम्परा को आगे बढ़ाया और कुछ ने भानुदत्त आदि की पद्धति को ग्रहण किया। बेगववाली परम्परा में उनके तीन आचार्यों का प्रतिरिक्त तोष भी आते हैं। अतः इस शास्त्र में बेगव का प्रभाव प्रमाण स्पष्ट है।

बेगव न सखियों का मातृ काम माने हैं शिक्षा देना श्रुतगार करना विनय करना मनाना भुक्त्वा मिसाना तथा उपासम्भ दत्ता। संस्कृत में दा परम्पराएँ काम सबध में थीं एक तो समस्त दूत कामों का उत्प्रेषण करनेवाली।<sup>४</sup> दूसरी दूती

१ मन्विलान का अनुसार। द्युत् ११४ ११५

२ गाररममाधुरी, १० वैश्या का अनुसार

३ राममाराग का आगर पर १८६ २१३

४ डा. मन्वव चौधरी हिंदी रीति-परम्परा के प्रमुख आचार्य

५ इनमें मातृ और काम्ययन आते हैं।

श्रीर सखी व पृथक कर्मों का उल्लेख करनेवाली परम्परा ।<sup>१</sup> हिन्दी में प्रथम परम्परा का प्रवर्तन केगव ने किया तथा दूसरी परम्परा में मतिराम सोमनाथ जस आचाय आते हैं । केगव की परम्परा में देव आते हैं । पर इनका निरूपण केशव से पूरा साम्य नहीं रखता । देव श्रीर केगव की तुलनात्मक तालिका यह है

केगव—	गिशा देना	शृगार करना	विनय करना	मनाना	भुक्तना	उपालम्भ	मिलाना
देव—	उपदेग देना	आभूषण	—	—	—	पति को	प्रिया
		पहनाना				उपालम्भ	स
							मिलाप

देव व अथ सखीकर्म इस प्रकार हैं विनोदपूरा वातचीत से प्रसन्न करना वियोगावस्था में डांस बधाना । इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि देव परम्परा की दृष्टि में केगव क श्रेणी हैं । भानुदत्त की परंपरा क चतुर्विध कर्मों का ही इहोंन उल्लेख नहीं किया ।

भिलारीदास ने भी भानुदत्त क माग का अवलंबन नहीं किया । भिलारीदास श्रीर केगव द्वारा निरूपित सखी कर्म निरूपण की तुलनात्मक तालिका यह है

केगव—	गिशा देना	विनय करना,	मनाना	मिलाना	शृगार करना	भुक्तना	उत्साहना
दाम <sup>१</sup> —	गिशा	विनय मान	—	मडन	—	उपालम्भ	
				प्रवर्जन			

उक्त कर्मों के अतिरिक्त दास ने इन कर्मों का परिगणन श्रीर किया है सदशन निन्दा परिहास पत्रिका देना स्तुति दिदुगा तथा विरह निवदन । पर परम्परा के अनुसार दाम भी उस क्षेत्र में केगव की परम्परा में आते हैं । एक तो भानुमिश्र की भाति सखी के चार कर्मों का ही निरूपण दास ने नहीं किया । दूसरे दूती श्रीर सखी व बीच विभाजक रेखा नहीं खींची । यह पद्धति केगव से ली गई है । सामग्री विस्तार अथ सारों से भी हुआ है ।

### दपति-चेष्टा मिलन-मथान शृगार की विस्तृति

केगव ने शृगार रस की पूरा प्रतिष्ठा के लिए उसके साथ कुछ कामगाम्भीय विस्तृति सन्तन कर दी है । दपति चेष्टा प्रकरण इमी प्रयत्न के अन्तगत आता है ।<sup>२</sup> कामगाम्भीय की परम्परा में इसकी धारा प्रबल नहीं रही । पर केगव ने इन चेष्टाओं का वगण 'रतिवप्रिया' क पाचवे प्रकाण में किया है । रतिबाल के परवर्ती प्रमुख आचार्यों

१ इस परम्परा का प्रतिनिधिक भानुदत्त करते हैं ।

२ शृगारनित्य के आधार पर । २१४ २१६ रसभारती २३१, २३२

३ नादिका के अनुसार प्रकट करने वाली पद्यों का निरूपण साहित्यमग कामसूत्र तथा भाग १ जैसे कामगाम्भीय ग्रन्थों में मिलता है ।

४ रसिकप्रिया ५१२, ६ ७

क्योंकि केगव द्वारा उल्लिखित प्रणति और प्रसंगविध्वंस क स्थान पर इहोंने नति और रसांतर गणों का प्रयोग विश्वनाथ क आधार पर किया है।<sup>१</sup> पर इस प्रकरण को ग्रहण करने की प्ररणा सम्भवत कशव से मिली है। मतिराम ने फिर इस प्रकरण को छोड़ दिया। देव ने इस प्रकरण को सम्भवत कगव क अनुसार ही नियोजित किया<sup>२</sup> क्योंकि दोनो आचार्यों का निरूपण समान है। दास न फिर मान माचन को छोड़ दिया। पदमाकर न भी इनका उल्लेख नहीं किया। इस प्रकार कगव का ऋण इस क्षत्र म मुख्यत कृष्णदेव पर माना जा सकता है। कृष्णभट्ट देवऋषि न कगव द्वारा प्रयुक्त गणवली को ग्रहण किया है।<sup>३</sup> सामोपाय दामोपाय भदापाय प्रणति उपमा प्रसंग विध्वंस दडोपाय। इसम केगव क दडोपाय सम्बन्धी विचार को भी इहोने ग्रहण किया है। पर इसका उल्लेख अवश्य मिलता है। य भी केगव क ऋणी हैं। पर परवर्ती आचार्यों ने इस प्रसंग की मौलिक विस्तृति को कगव से नहीं लिया।

### रसावयव

#### भाव

केगव ने रसिकप्रिया क छठे प्रकाग म भावादि रसावयवो का विस्तृत और स्वच्छन्द विवेचन किया है। उहोने भाव की परिभाषा यह दी है मन की जो बात मुख नेत्र तथा वचनो से प्रकट होती है वह भाव है। यह लक्षण सभी सस्कृत आचार्यों से विलक्षण है।

कगव भावा के पात्र प्रकार भी स्वीकृत करते हैं विभाव अनुभाव, स्थायीभाव सात्त्विक व्यभिचारी।<sup>४</sup> सिद्धांतत यह भाव निरूपण अधिकाश आचार्यों न स्वीकार किया है। मतिराम ने केवल अभिव्यक्ति के उपकरणो को सख्या बढ़ा दी है

लोचन वचन, प्रसाद मनुहास भाव घति मोद।

इनते प्रगटत भाव रति बरनहि मुकवि विनोद ॥<sup>५</sup>

सिद्धांतत कगव और मतिराम म कोई अंतर नहीं है। देव ने भी केगव के अनुसार स्थायीभाव, विभाव अनुभाव सात्त्विकभाव तथा सचारियों को भाव' के अन्तगत माना है

१ कविवचनकल्पतरु ६।६७-७

२ किरणचन्द्रराम केरावणस जावनी, कला और कृतिच, पृ० ४६२

३ गृगररममाधुरी १ का स्व

४ रसिकप्रिया ६।१

५ वही ६।६

६ रसरात्र ६ ३१

व्यक्ति भाव अनुभाव अथवा सात्त्विकी भाव ।

सचारी और हाव में रस कारक पदभाव ॥<sup>१</sup>

कुलपति मिश्र ने भाव का स्वरूप यों प्रस्तुत किया है

हियो रहै जब लगि रहै सब वृत्ति को भूप ।

निश्चल इच्छा वासना भाव भावना रूप ॥<sup>२</sup>

कुलपति मिश्र ने भाव के भेदों को एक सामान्य संगोपन के साथ ग्रहण किया है पर भाव के कविव्यक्ति निर्णय लक्षण को नहीं अपनाया । मतिराम ने भी इसका परिवर्द्धित रूप ही प्रस्तुत किया था । कुलपति ने भावों के चार प्रकार माने हैं विभाव अनुभाव सचारीभाव तथा स्थायीभाव ।<sup>३</sup> उन्होंने कविव्यक्ति को यहाँ छोड़ दिया है । पर इतना निश्चय है कि कुलपति मिश्र के सामने भाव निरूपण के समय कविव्यक्ति का आदान था ।<sup>४</sup> कुलपति के समान ही सोमनाथ ने भी भाव के चार भेद गिनाए हैं स्थायी सचारी विभाव, अनुभाव । सात्त्विक को उन्होंने अनुभाव के अंतर्गत रखा है ।<sup>५</sup> देव ने एक और संगोपन किया था इन चारों में प्रथम दो आंतरभाव माने गए और अंतिम दो गौरीरभाव ।<sup>६</sup> सोमनाथ ने भी इसी संगोपन को स्वीकार किया । प्रतापसाहि ने भी सो चारों प्रकार कवि कह आये हैं लिखकर भाव के चतुर्विध भेद को स्वीकार किया है ।<sup>७</sup> इस प्रकार निष्कर्षतः यह कहा जा सकता है कि कविव्यक्ति का पूणतः अनुकरण तो आगे के आचार्यों ने नहीं किया पर भाव निरूपण पद्धति के परिवर्द्धित और संगोपित रूप परवर्ती आचार्यों में मिलते हैं ।

### रसाभिव्यक्ति के उपकरण

कविव्यक्ति ने रसाभिव्यक्ति निरूपण में भरत-सूत्र के व्याख्याता अभिनवगुप्त को अपनाया है उन्होंने विभाव अनुभाव और सचारी के संयोग से रस को व्यक्त माना है

मित्त विभाय अनुभाव पुनि सचारी सु अनूप ।

व्यग कर धिर भाव जो, सोई रसु सुख रूप ॥<sup>८</sup>

चित्तामणि ने भी अभिनवगुप्त के आधार पर ही रसाभिव्यक्ति के सम्बन्ध में

१ भवानीविनायक, भारत जीवन प्रेम कारी सन् १८६३ पृ० ३ ख० १५

रमाहरय ३।१० तथा वृत्ति ।

३ डॉ० सरस्वती चौधरी हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख अध्याय, पृ ३१

४ एक स्वरूप निर्धारित करते समय कुलपति के सामने कविव्यक्ति की रसिकप्रिया है जिसमें वे हिन्दू भाव के भेदों को तो एक संगोपन के साथ अपना लिया है पर भाव के लक्षण को नहीं अपनाया । वही पृ ३०

५ रसदीप्तिनिधि १।११ १२, श्री गार विनायक १।६, ७

६ दश संगोपन भानुमिश्र के अनुसार है ।

७ भाव सत्त्व विधि दर में आने । अंतर्गत एक सार्वभौमिक मानौ ॥ रसदीप्तिनिधि १।६

८ कान्यविनायक ३।२५

९ रसिकप्रिया १।२



घपना मत दिया है।

थाई सामाजिक हिय बसत वासना रूप।

व्यक्त विभावादि कनि मिलि रस हृद्य मिलत अनुप ॥<sup>१</sup>

देव ने व्यंग्य या पक्ष णन्द का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने रसनिष्पत्ति का निरूपण इस प्रकार किया है—विभाव अनुभाव और सचारियो द्वारा स्थायीभाव की पूण वासना ही रस है। यह निरूपण परम्परा से कुछ भिन्न पड़ता है। सोमनाथ ने फिर वही अभिनवगुप्त वाली धारणा ग्रहण की और व्यंग्य णन्द का प्रयोग करते हुए रसाभिव्यक्ति की प्रक्रिया का उल्लेख किया

जह विभाव-अनुभाव अरु सहित सचारी भाव।

यग्य कियो धिर भाव इहि सो रस रूप बताव ॥<sup>२</sup>

मिखारोदास ने भी निरूपण लगभग ऐसा ही किया है

जह विभाव, अनुभाव धिर चर भावन को ज्ञान।

एक ठौर ही पाइये सो रस रूप प्रमान ॥

यहां उन्होंने 'यग्य णन्द' का प्रयोग नहीं किया। केवल उपकरणों के संयोग की बात कही है। पर फिर भी अभिव्यक्ति का भाव प्रवश्य निहित है। निष्कपत यह कहा जा सकता है कि भरत का प्रसिद्ध रससूत्र रीतिकाल के प्रत्येक आचार्य के मस्तिष्क में रहा। चार व्याख्याकारों में से अभिनवगुप्त की व्याख्या को मम्मट ने उद्धृत किया। वेगव ने भी उसी व्याख्या को घपनाया। वेगव के परवर्ती आचार्यों ने भी यह पद्धति ग्रहण की। ऐसा ही सकता है कि उन्होंने इस पद्धति को मम्मट से ही लिया हो।

### विभाव

वेगव की दृष्टि में विभावों से ही अनेक रस उत्पन्न होते हैं और ये विभाव दो प्रकार के होते हैं आलम्बन और उद्दीपन।<sup>३</sup> इस प्रकार वेगव ने विभाव और रस में कारण काय या उत्पादक उत्पाद्य सम्बन्ध माना है। वेगव ने यह भी स्पष्ट किया है कि रस मनन है और उसका आधार ही आलम्बन विभाव है। जो सामग्री उसे उद्दीपित करती है वह उद्दीपन के अंतर्गत आती है।<sup>४</sup> वेगव का लक्षण निरूपण तत्त्वतः विश्वनाथ से भिन्न नहीं है पर वेगव का निजीपन भी इस निरूपण के साथ

१ कविकल्पद्रुम ५।२।६६

२ वा विभाव अनुभाव अरु विमचारिनु करि दोन।

धिति को पूरन वासना सुकवि कहन रस साह ॥ भावविनाम

३ शृंगारविधाम ३।३५

४ रसनामिका ४४४

५ रसिकप्रिया ६।३ ४

६ त्रिभुवन अक्षयवर्मा ने आलम्बन जान।

विनाय लीपति हान है ते उद्दीपन बगान ॥ वही ६।२

७ भावविनाम ३।६५

मन्त्र है। चित्तमणि न स्थायीभावों का विभाव स वाय-वारण मन्त्र यही माना है।<sup>1</sup> वगव को भानि दव न विभाव और रम म उत्पान्क उत्पाद्य सम्बन्ध हा माना है रम अक्षुर घाट विभाव रस क उपजावन। (गण रमायन) कुनपति मिथ्र न विभावों का स्थायीभाव का प्रकट करनवाता माना है—

जिनत जिनको नगत प्रगटत है यिर भाव ।

तई नित्य कवित्त म पावहि नाम विभाय ॥<sup>2</sup>

स्थायीभाव का निवाम आलम्बन विभाव म रहता है और जो नामको उस स्मृति-वय म जानी <sup>3</sup> वह उद्दीपन व अतगत आती है—

जे निवास यिर भाय क त आलम्बन जानि ।

मुधि भाव जिनके लखे त उद्दीप वसानि ॥<sup>4</sup>

कुनपति मिथ्र का विभाव लक्षण वगव-मम्मत् लक्षण व अनुकरण पर ही है।<sup>5</sup> प्राग्मन और उद्दीपन का लक्षण वगव स इतना माम्य नहीं रमता। सोमनाथ 7 भी विभाव को रमोत्पान्क माना है—

जिहि तें उपजतु है जहा जिही क चाई भाव ।

तासों कहत विभाव सब समुन्नि, रसिक कवि राय ॥<sup>6</sup>

शृंगारविनाम म वगव द्वारा प्रयुक्त प्रकटत गण का ही प्रयोग सोमनाथ ने किया है—

प्रगटत थायो भाव हैं चिनय जिनतें मित्र ।

ते कवित्त अर नृत्य म जानि विभाव विचित्र ॥<sup>7</sup>

दास न विभाव को कारण माना है कारण जानि विभाव। इस प्रकार ज 1 तक विभाव क रूप और उसक द्विविध वर्गीकरण का प्रश्न है। लगभग आचार्यों म समानता है। अंतर जो भी भिन्नता है वह विन्वनाथ और मम्मट क स्रोत का भवन्मन करन व कारण है। वगव न मम्मवत विन्वनाथ की परम्परा को अपनाया और उनके परवर्ती आचार्यों म स अधिकारा न विन्वनाथ का ही अपना आधार बनाया है।

वगव न आलवन के अतगत जिन वस्तुओं का माना है<sup>8</sup> व प्राय ससृष्ट के

1 धार हतु नग भाय नो कवित्त मय्य सुविभाव । बहियुलकटाभरण ५।२।६७ ६८ रमरहस्य ३।११

2 वग ३।१

3 दा० मय्यव बोधी हिन्दी रानि परम्परा व प्रसुय आचार्य, पृ ३०

4 उपपाठनिर्घ १।१३

5 शृंगारविनाम १।८

6 काव्यनिर्णय ५।८ २

7 मुक तापक नविक रूप, नानि अर लघुलघुन सविग कोकिल की कूक वमन्य शतु, पृष्ठ वन दन भनर-मुनर वावा, जलवारयुक्त स्रोत निम्न कमल, धनक, भैंरी का शब्द चिह्न मन्त्र शान्त, आकारा रमणीय मन्त्र न क सुगंधित गूद, पान-व्याप मुनर वराभूषा न्य तथा बोला कानि का वान्त । रमिरप्रिया ६।६

सभी आचार्यों के द्वारा उद्दीपन में परिगणित की गई हैं। सम्भवतः एम. सामन्त का आचार्य गिगभूपाल का चतुर्विध उद्दीपन निरूपण है। पर भूपाल ने भी एनको अलबन नहीं कहा। वंशव न यहा कुछ मौलिकता का परिचय देते हुए आलवन के अतगत कुछ उद्दीपक वस्तुओं को रच दिया है। प्रायः सभी परवर्ती आचार्यों ने इस मौलिक परम्परा को छोड़ दिया। आलवन विभाव के अतगत नायक-नायिका निरूपण की परम्परा तो पुरानी है। उसको कविवर्य ने तथा परवर्ती आचार्यों ने भी अपनाया। पर ऊपर से जितनी नवीन बात कविवर्य की लगती है उतनी है नहीं। गिगभूपाल ने उद्दीपनों के चार भेद माने हैं— नायक-नायिका के गुण चष्टा अलकृति और तटस्थ उद्दीपन।<sup>१</sup> विद्यानाथ ने भी शृंगारतिलक में उद्धरण देते हुए उद्दीपन के चार विभाग किए हैं— आलवन के गुण उसकी चष्टाए अलकृति और तटस्थ।<sup>२</sup> विद्यानाथ ने 'नम से पथम तीनों भेदों को एक तथा चौथे को दूसरा रूप मानकर उद्दीपन के दो भेद किए हैं।<sup>३</sup> कविवर्य ने चष्टा को छोड़कर सभी को आलवन बता दिया है। पर कविवर्य से पथ भी ऐसी परम्परा रही हो सकती है। उनका तब इस प्रकार का रहा होगा— आलवन के गुण गुणी नायक नायिका से भिन्न नहीं हो सकते। साथ ही अलकृति भी आलवन निरपेक्ष होकर रस क्षेत्र में अपनी सत्ता नहीं बनाए रख सकती। अतः इसका विचार आलवन के साथ किया जाना चाहिए। पर तटस्थ उद्दीपनों के अतगत अज्ञान वाले चन्द्र उद्यान आदि को भी अज्ञान मानने का तब समझ में नहीं आता। चष्टाओं (भवलोकन आलाप आलिंगन लखदान रददान चुम्बन मदन और स्पृश) को कविवर्य ने भी उद्दीपन माना है। वस्तुतः शृंगार क्षेत्र में ये चष्टाए उद्दीपक कही जा सकती हैं। एनको अनुभावा में भी रखा जा सकता था। पर कविवर्य का यह उद्दीपन मानना नितान्त अनुपयुक्त नहीं दीखता।

कविवर्य के पञ्चात् यह धारणा अधिक तो नहीं पर आंगिक रूप में अवश्य चली। चिन्तामणि ने उद्दीपन पर विस्तृत रूप से विचार किया है।<sup>४</sup> गुण और अलकृति को उद्दीपन ही उद्दीपन नहीं माना। इनकी धारणा को डा० सत्यनन्द चौधरी ने इस प्रकार स्पष्ट किया है।<sup>५</sup> आलवन के रूप यौवन आदि गुण आलवन से पृथक् नहीं माने जा सकते इन गुणों के बिना काव्य के अज्ञान विभाव की भना सत्ता ही क्या? इसी प्रकार अज्ञान के नूपुर आदि बाह्य शृंगार भी आलवन के ही रूप हैं।<sup>६</sup> यहा तब कविवर्य और चिन्तामणि का तब समान ही है। पर तटस्थ उद्दीपन को चिन्तामणि ने अज्ञान ही उद्दीपन ही माना है—

१ रमण-शुभाकर (निवेदन १९१६) पृ. ३ श्लोक १६२

२ प्रतापस्यराभूषण

३ सा. इत्यमर ११३२

४ रमिकप्रया ३१३२

५ कविकल्पलता ५१३१-५०

६ चिन्तामणि परम्परा के प्रमुख भाग्य, पृ. २८६

जे तटस्थ उन कहे हैं चद बागइन आदि ।  
त उद्दीपन कहि सक है यह बात अनादि ॥<sup>१</sup>

कण्व और चित्तामणि म दूसरा अन्तर यह है कि हाव भावादि चेष्टामों का अन्तभाव चिन्तामणि क अनुभाव अनुभाव म किया जा सकता है । इस प्रकार चिन्तामणि निदिचित रूप म कण्व की परम्परा म आते हैं पर उन्होंने अनुभाव न करके अपन स्वतंत्र तक भी रख है । चिन्तामणि की तटस्थ उद्दीपनों सम्बन्धी धारणा तो तत्कालगत दीवना है पर चष्टाओं को अनुभावों म रखना युक्ति-युक्त नहीं है । इन पर हम महा विस्तार स विचार नहीं करना । हमारा निष्कप यह है कि इन क्षेत्र म चित्तामणि का कण्व न एक परम्परा का दान अवश्य किया जिसका प्रबल रूप संहृत क काव्याचार्यों में नहीं मिलता ।

आग क आचार्यों न तटस्थ उद्दीपनों का उद्दीपन ही माना है । महा उन्होंने कण्व का नहीं चित्तामणि का अनुकरण किया है । सामनाथ न प्राकृतिक उपकरणों को उद्दीपन हाकहा है ।<sup>२</sup> मिलारादाम न भी प्राकृतिक उद्दीपन मान हैं ।<sup>३</sup> पर अिखारीदास का ध्यान भी विभाव क आलवन पक्ष क विस्तार की ओर आर्कषित हुआ था । उनक अनुकार शृंगार विभावों की सीमा तो निर्धारित की जा सकती है पर अय रसों क विभावों की सीमा का निराकरण सम्भव नहीं है ।

जानो नायक-नायिका रस शृंगार विभाव ।  
चद, मुमन ससि दूतिका रागादि को बनाव ॥  
ओरनि वे न विभाव मे प्रगटि कह एह साज ।  
सबक नर विभाव हैं शीरों हैं बहु साज ॥

यहा कण्वगत वाली परम्परा का आग्रह तो नहीं है पर विभाव की अनिश्चितता की ओर उनका भी ध्यान गया । इस प्रकार विभाव निरूपण क क्षेत्र म कण्व न एक स्वतंत्र परम्परा चलाई । उसका पूणत नहीं तो अगत कुछ आचार्यों न पानन भी किया ।

अनुभाव क निरूपण में कण्व ने रुचि नहीं ली । आलम्बन और उद्दीपन क अनुकरण को अनुभाव कह लिया गया है ।<sup>४</sup> यह लक्षण अस्पष्ट भी है और संहृत क किमी आचार्य म नहीं मिलता । परवर्ती आचार्यों न भी इन परम्परा को कण्व स ग्रहण नहीं किया ।

सात्त्विकभावों को कण्व ने पृथक रूप स लिया है । कण्व न सात्त्विकभाव म भी संहृत आचार्यों की भांति आठ हो माने हैं ।<sup>५</sup> पर कण्व के प्रभाव क स्थान

१ कविकल्पलोक ८।३।५१

२ रसयानुष निधि ७।२५

३ काव्य निरूपण ४।१

४ वही ४।१० २१

५ रसिकप्रिया ६।८

६ रसम्भ, रस, रसनिधि, रस, रस, रस, रस और प्रभाव ।

पर सस्कृत के आचार्यों ने प्रलय का उल्लेख किया है। चिन्तामणि न प्रलाप क स्थान पर अवलीन नाम दिया है। मतिराम ने जम्भा जोड़ कर मात्स्विकभावा की मर्यादा नही कर दी है। पर कगव क प्रलाप को उहान नही माना। दव न भी प्रलय का ही उल्लेख किया है। दास न भी यही किया। कगव न प्रलाप का न लक्षण या है और न उदाहरण। अत एव स उच्य म विचार करना सम्भव नहीं है।

कगव न ३४ सचारियो का उल्लेख किया है। प्रचलित सस्या म उहानि आधि को और जोड़ दिया है। सस्कृत क आचार्यों न इम स्वीकार नही किया है। दूसरा अंतर यह है कि कगव न अमय अवहित्या अमूया मुक्ति वित्तक और आम के स्थान पर क्रमग कोह विवा निदा स्वप्न आग तक और भय गता का प्रयोग किया है। हिन्दी आचार्यों न बहुधा कगव का अनुकरण नही किया। चिन्तामणि न सस्कृत क आचार्यों का माग ही ग्रहण किया है। दव न कगव की भाति ३४ सचारा तो माने हैं। पर ३४ वा सचारी उहोने छल माना है। आधि नही। दव न कगव की उक्त गतावली को भी ग्रहण नही किया। इसी प्रकार कगव की परम्परा का दाम न भी ग्रहण नही किया। इम क्षेत्र म कगव का प्रदान कुछ भी नही माना जा सकता।

कगव न हावो क निरूपण म भी मौलिकता बरती है। उनका लक्षण निरूपण सस्कृत क किसी प्रमुख आचार्यों स नहीं मिलता। उहोने १२ हाव मान मान हैं हेला नीला अनित मद विभ्रम विहिन विलास किलकिचित् विरिप्त (विच्छिन्ति) विदाक मोटाएन कुट्टमित और बोध। साथ ही उनका यह भी कहना है कि एनक अनिरिक्त भी हाव हैं। चिन्तामणि ने १८ हाव मान है। इनक निरूपण आदि कगव स नही मिलते। कगव स भि न दव न हावा को भावो का ही भट माना है। भिलागास न १ हावो का ही उल्लेख किया है। आग चलकर हला तथा विभ्रम का भी सम्मिलित किया है। कगव क मद और बोध को दाम न नही लिया। इम प्रकार कगव का प्रदान एम क्षेत्र म भी न क बराबर है।

### रमिकप्रिया रूप-दान

रम क क्षेत्र म कगव की परम्परा का आधिक रूप स पावन परवर्ती आचार्यों

- १ स्वे तम रामाच कटि, प्रति सुरभग ५ नार। कविकुलकपनर  
मरान दृष्ट ३१४
- ३ मराना वनाम
- ४ रमिकप्रिया दृष्ट ६
- ५ रमिकप्रिया दृष्ट १३ १४
- ६ अपमानात्क करन की क न दिया दृष्टाव।  
दृष्ट उल्लेख अन्त कपन मदर्शन दृष्ट भाव ॥ भावति त स
- ७ रमिकप्रिया दृष्ट ११६
- ८ रमिकप्रिया दृष्ट १६-१७

न किया। यह ऊपर क विवेचन से स्पष्ट हो जाता है। रसिकप्रिया का जा कृति रूप है उसका अनुकरण भी कुछ परवर्ती आचार्यों ने किया। कविप्रिया और रसिक प्रिया में कवय ने सोलह 'प्रभाव या प्रकाश' रखे हैं। १६ अध्यायो में प्रथम योजना माभिप्राय दीखता है। कवय क मस्तिष्क में सोलह शृंगारो की कल्पना थी और कविता क शृंगार की लिखी हुई पुस्तकें १६ प्रकाशा में होनी चाहिए यह उनका दृष्टिकोण दीखता है।

कृष्णभट्ट देवश्रुति ने रसिकप्रिया क रूप को ग्रहण किया। वही सोलह श्रयायो की योजना और लगभग वही विषय विभाजन प्रणाती उनके शृंगाररस माधुरी नामक प्रथम मिलती है। इसी प्रकार गिदनायकृत रसवृष्टि भी रसिक प्रिया का गती पर है। सोलह अध्याय तो हैं पर विषय विभाजन कुछ भिन्न है। वम विषय का वणन रसिकप्रिया क आधार पर ही है। नीचे रसिकप्रिया की योजना क माय इन दो ग्रथों की योजना की तुलना दी गई है।

	रसिकप्रिया	शृंगाररसमाधुरी	रसवृष्टि
प्रथम प्रकाश	मगलाचरण वस्तु निर्देश शृंगार रस	शृंगार भेद	मगलाचरण परिचय
द्वितीय प्रकाश	नायक लक्षण	नायक भेद	नायक भेद
तृतीय प्रकाश	नायिका जाति वणन	नायिका भेद	नायिका भेद
चतुर्थ प्रकाश	दगन वणन	दगन वणन	स्वकीया नायिका
पाचवा प्रकाश	दपति चट्टा	दूती वणन	परकीया
छठा प्रकाश	हाव भाव लक्षण	हाव भाव	मान
सातवा प्रकाश	अष्ट नायिका	नायिका क भेद	मान मोचन
आठवा प्रकाश	विप्रलम्ब शृंगार	विप्रलम्ब	सखी भेद
नवा प्रकाश	मान लक्षण	मान	चार दगन
दशवा प्रकाश	मान मोचन	मान मोचन	मिलन
ग्यारहवा प्रकाश	करण प्रवास, विरह	करण प्रवास	अष्टनायिका
बारहवा प्रकाश	सखी वणन	सखी वणन	विप्रलम्ब शृंगार दम दगान
तेरहवा प्रकाश	सखीजन कर्म	दूती कर्म	हाव

१ कविप्रिया केरल की कविता को शृंगार। कविप्रिया ३।०

२ अन्य (शृंगाररसमाधुरी) केरलनाम की कविप्रिया के आधार पर है—  
दिल्ली साहित्य का बहुरूप प्रतिष्ठान पृष्ठ भाग ५ ३६५

३ वही पृ० ४०५

४ प्रकाश के रूप पर शृंगाररसमाधुरी में रसिक और रसवृष्टि में रसिक शब्द का प्रयोग।

	रसिकप्रिया	शृगाररसमाधुरी	रसवष्टि
चीन्हा प्रकाश	अय रस	अय रस	नखगिख अगमोन्य
पद्महा प्रकाश	वृत्ति वणन	वृत्तिया	वस्त्राभूषण
सालहा प्रकाश	रसदोष	रसदोष	नव रमों का वणन

उक्त तालिका से यह स्पष्ट होना है कि शृगाररसमाधुरी तो रसिकप्रिया का एक परिवर्ती संस्करण ही है। केवल एक अंतर है। कृष्णमट्ट देवकृष्ण ने दम्पति चेष्टा को छाड़ दिया है और कविव से भिन्न दूती प्रसंग को समाविष्ट कर लिया है। रसवष्टिकार ने १६ अध्यायवाली योजना को तो अपनाया है। विषय व विस्तार को कम कर दिया है। कविव व दम्पति चेष्टा सखी जन व वृत्ति और दोष के प्रकरणों का विवनाथ न छोड़ दिया है। गेय प्रकरणा का अतिरिक्त अध्यायों में विस्तार कर दिया गया है। नखगिख और वस्त्राभूषण जस नवीन प्रकरण जाड़ लिए गए हैं।

### निष्पत्त

रस क्षेत्र में कविव के प्रदान के कई रूप हैं। एक तो उन्होंने परम्परा का दान किया जिसमें राधा-कृष्ण की उदाहरण प्रणाली का पुष्ट रूप में ग्रहण करना तथा शृगार व प्रामुख्य की पद्धति सम्मिलित हैं। जहाँ तक शृगाररस का विस्तृति आदि का प्रश्न है कविव का प्रदान स्पष्ट है। नायिकाभेद में कविव का अनुकरण किया गया। कविव का प्रेरणादान भी मिलता है। देव ने कविव से प्रेरणा लेकर जातिगत नायिका भेद का पल्लवन किया। रस दोष और वृत्तिया जस पारिभाषिक पक्षों को भी कुछ आचायकों ने ग्रहण किया। रसावयवों के निरूपण विस्तार आदि में कविव का अनुकरण बहुत कम किया गया। इसलिए यह कहना कि कविव का प्रदान परिवर्ती आचायकों पर गूँथ है एक सामान्य कथनमात्र है। यहाँ तक कि रसिकप्रिया के रूप का भी ग्रहण किया गया। कविव और वितामणि के बीच के लक्षण साहित्य और अप्रकाशित साहित्य के प्रकाश में ध्यान पर कविव का प्रदान और भी सघन दिखलाई पड़ सकता है।

### अलंकार-क्षेत्र

कविवर्यम हिन्दी क्षेत्र के प्रथम अलंकार निरूपक आचायक है।<sup>१</sup> इससे सामान्य परम्परान्त तो स्पष्ट हो जाता है। साथ ही कविव की विनिष्ट परम्परा के चिह्न भी मिलते हैं। कविव की परम्परा के कुछ चिह्न घाग पदुमनदास की काव्यमञ्जरी (म १७४१) गुप्तीन पाठ्य के बाग मनोहर (स० १८६०) और वनीप्रवीन के नानारावप्रकाश (म० १८७ के आसपास) में मिललाई पड़ते हैं।<sup>२</sup> इस प्रकार एक परम्परा का आरम्भ कविव से हिन्दी में होता है। समस्त रीतिकालीन साहित्य में

१ डॉ. अन्वयिका विद्या साहित्य का बङ्ग इतिहास १९४३ भाग १ ४४३

२ वही १० ४४३

अलंकारिकता की प्रवृत्ति स्पष्ट रूप से परिलक्षित होती है। कविप्रिया का विषय अलंकार निरूपण मात्र करना नहीं है कविशिक्षा है। कविशिक्षा के उद्देश्य को लेकर चलने वाले भी कुछ आचार्य हुए जिन्होंने केगव से प्रेरणा ग्रहण की परन्तु अधिकांश आचार्यों ने अलंकार या काव्यशास्त्र का ही प्रणयन किया। कुछ मतिराम और भूपण जैसे आचार्य भी हुए जिन्होंने लक्षण निरूपण में विषय रुचि नहीं दिखाई। इनका उद्देश्य अलंकार के 'याज्ञ' से बंध्य विषय का उदाहरण में प्रस्तुत करना था। दूसरे वे आचार्य थे जो वस्तुतः अलंकार निरूपण के उद्देश्य से ही काम में प्रवृत्त हुए। कदाच इसी परम्परा के गिरोमणि आचार्य थे। केगव ने कवियोग प्रार्थी किशोर किशोरिया के लिए कविशिक्षा ग्रन्थ लिखा—

समुझे बाला बालकृष्ण बचन पय अगाध।

कविप्रिया केगव करी, छनिया कवि अंपराध ॥<sup>१</sup>

यह उद्देश्य केवल कवि शिक्षक आचार्य का ही हो सकता है। सोमनाथ निम्बार्कीदास शक्ति का भी यही उद्देश्य दिखलाई पड़ता है।

### उदाहरण परम्परा

केगव ने अलंकारों के निरूपण के साथ एक नवीन उदाहरण परम्परा स्थापित की। रसिकप्रिया में केगव ने राधा राधा रमण को उदाहरणों का विषय बनाया। कहने की आवश्यकता नहीं कि सभी परवर्ती आचार्यों ने रस निरूपण में इस परम्परा का पालन किया। अलंकार निरूपण के लिए केगव ने न केवल राधा-कृष्ण का लिया और न केवल शृंगाररस को। कविप्रिया में उदाहरणों का वैविध्य मित्रता है। राम कृष्ण, सीता राधा गिब पावती तथा अन्य पौराणिक देवता तो उदाहरणों में हैं ही। 'चन्द्रजेत' बीरबन' राजा अमरसिंह औरछानरेग' प्रबीणराय' शंकर वृद्धा कामसना व'या' राजा चन्द्रमन' दूलहराम' जस राजपुरुषो और व'याप्रा को भी उदाहरणों में केगव ने स्थान दिया है। सामान्य लोग जस घोरबल के द्वारपान' चन्द्र और पतिराम सुनार' को भी केगव के उदाहरणों में स्थान मिला है। नीति-वचन' और राजनाति' से सम्बन्धित उदाहरणों की रचना भी केगव ने की

१ कविप्रिया ३१

२ बदा ४१०० १११२३, १११०८ १११२८ १४१२४

३ बदा ६१०७

४ बदा ६१०६ १११३० ३१ ३०, ३३

५ बदा ०१४ ०१४

६ बदा ०१६ १११८२, १४१८८

७ बदा ०१३० = बदा ६११७ ६ बदा १११ ५ १ बदा १११३८ ११ बदा १११०८

१२ बदा १११३० १३ बदा ६१२६ १२११३

१४ कविप्रिया ६११६ २२ ४ ३४ १११२, ३ ४, ०६ ७, १११५, ६, ३८

१५ बदा ८१७, १४, १६, २१



है। साथ ही शृंगार<sup>१</sup> और नायिकाभोग<sup>२</sup> को भी नहीं छोड़ा गया है। शृंगार व माधव भोग रमो व आलवनादि को भी उदाहरणों के विषय के रूप में लिया गया है। कहीं कहीं पर 'यग्य किया गया है' वहाँ वराग्य को और दृष्टि है वहाँ प्रकृति चित्रण मिलता है<sup>३</sup> कहीं आस्तिकता उमड़ पड़ी है<sup>४</sup> इस प्रकार कविवर न अलंकार निरूपण के क्षेत्र में उदाहरणों के विविध की परम्परा प्रवर्तित की। रीतिकालीन साहित्य की सभी काव्य प्रवृत्तियों का स्पष्ट कविवर न विविधियाँ के उदाहरणों में किया है। आश्रयदाता की प्रशंसा भी आगई है नीति वराग्य की भावना भी मिलता है और नायिका शृंगार के भी चित्रण हैं। केवल के परवर्ती अलंकार निरूपक आचार्यों की इस दृष्टि से तीन घाटाएँ मिलती हैं एक तो राधा कृष्ण सम्बन्धी और शृंगार परक उदाहरण देने वाले आचार्य दूसरे सीताराम के उदाहरणों तथा भक्ति वराग्य वाले उदाहरण देने वाले आचार्य तथा तीसरे आश्रयदाता या भय प्राकृतियों के उदाहरणों की संयोजना करने वाले आचार्य। केवल में इन तीनों का ही मिश्रण मिलता है। प्रथम कोटि में देव मतिराम रसिकगोविन्द (रसिकगोविन्द आनन्दधन के कर्ता) खान नाम सर्वांग निरूपक आचार्य आते हैं। गोप कवि न रामचन्द्र भूषण तथा रामचन्द्राभरण नामक ग्रंथों में रामचरित्र से सम्बन्धित उदाहरण लिए हैं। दूसरे में शृंगार और कृष्ण के साथ राम के भी उदाहरण दिए हैं। राम रूप के तुलसीभूषण में तुलसीकृत उदाहरण लिए हैं। गोप कवि न भी राम पर ही उदाहरण रचना की है। संवादास न रघुनाथअलंकार में उदाहरणों योजना के लिए राम वृत्त का हाँ लिया है।<sup>५</sup> य आचार्य द्वितीय कोटि में आते हैं। तीसरी कोटि में भूषण प्रमुख रूप में आते हैं। गिवाजी के वक्त को उन्होंने गिवराजभूषण के उदाहरणों के लिए चुना। रत्न कवि न पतहभूषण नामक ग्रंथ की रचना की। य गणवान के राजा जनहाह के आश्रय में रहते थे। इनके उदाहरणों में राजा की स्तुति के छन्द ही विषय रूप से लिए गए हैं। इन्होंने कविवर की भाँति आश्रयदाता में सम्बद्ध शीतलर वा नी स्तुति की है। इन्होंने अलंकाररूपण में भूषण की भाँति आश्रयदाता की ही प्रशंसा की है।<sup>६</sup> पनेप्रकाश में राम नीता भी आते हैं। इस प्रकार कविवर की भाँति आश्रयदाताओं का उल्लेख करने वाले या उन पर उदाहरणों की रचना करने वाले आचार्य भी हुए। शृंगार रम के अतिरिक्त भय रमो के उदाहरण भी कविवर न कवि प्रिया में लिए हैं। मान कवि के उदाहरणों में शृंगार के साथ माधव वीर भयानक आदि

१ कविप्रिया १७ ३६ ८१८२ ८१४७

का ६१४६ ४६ ६१ ६१४४ १११७१ ७८ ७६ ८ १ १२१ १३१२० ४ १४८  
१ १० १६ ०

३ कवि ६१४४ ४ कवि ६१४६ ५ कवि ६१४६ ६ कवि ११६४ १३१४

७ हा० मंगल्य निध-द्वितीया काव्यरत्न का इतिहास पृ ११५

८ राम अक्षिणी तुम राम तुम दयपाल राम तुम लक्ष के विराध दिन ही अहै।

कविप्रियाकटाभरण अलंकार रूपक का उदाहरण

१ द्वितीया काव्यरत्न का इतिहास काठ भाग पृ ४ ६

२ कविवर का माधव शृंगारसहित मंगल प्रकाशन मन्दिरी अजीत भूषिका पृ १३

बठोर रमो को भी समान स्थान मिला है।<sup>१</sup> इस विवरण से यह निष्कप निकाला जा सकता है बंगव व परवर्ती आचार्यों म स अनकारा व नवल शृंगारपरक उदाहरण सजान वाल आचार्य बंगव की परम्परा म नहीं आत । एन आचार्यों की मरुषा कम है । अधिकांग आचार्यों न अलकार निरूपण व क्षत्र म उदाहरण वविध्य की परम्परा को ही ग्रहण किया जिमका प्रवतन हिंदी म बंगव न किया । अधिकांग ने बंगव की मिश्रित उदाहरण परम्परा को ही लिया प्रागस्ति कृष्णगधा (शृंगार) रामसीता, भक्ति वराग्य । बंगव म उदाहरणों का वविध्य सभी आचार्यों स अधिव मिलता है ।

### अलकार के महत्त्व की घोषणा

बंगव न अलकार को काय का अनिवाय अंग घोषित किया भूषण विनु न विराजई कविता वनिता मित्त । साथ ही अननकृत्त काय म उ हान नग्नदोष माना है—

एव विरोधी पगु गनि, नगन जा भूषण हीन ।<sup>१</sup>

इस प्रकार वनिता व उपमानस और दोष निघारण व द्वारा बंगव न अलकारो का महत्त्व घोषित किया । 'सवतसिह का भाषाभूषण' भी अलकार सम्प्रदाय का अग्र्य है चाह बंगव व समान उहाने उक्ति न की हा । याकूब खान रसभूषण म बंगव के गाय स्वर मिलात हूए यह उक्ति की है—

अलकार द्विनु नायिका सोभित होइ न घान ।

अलकार जुत नायिका, या तें कहीं बजानि ॥<sup>२</sup>

ज्मोलिए इहौन नायिका और अलकार का साथ साथ विवेचन किया है । दूल्ह की उक्ति भी बंगव व समान ही है—

घरन घरन लच्छन ललित रचि रीभे वरतार ।

बिन भूषण नहिं भूपई कविता वनिता धार ॥

रामसिंह न भी अपन अलकारदपण म लगभग यही बात कही है—

कविता अह वनितान को अलकार छवि देत ।<sup>३</sup>

यह परम्परा पूणत लोवप्रिय नहीं हुइ । इनका सम्बन्ध भामह आदि अलकार आदियों स था ।<sup>४</sup> पर कुछ परवर्ती आचार्यों ने रग ध्वनि वाणियों की मायता को ही ग्रहण किया अलकार रम व उकारक घम हैं । चित्तमणि न गन्ताय रूप काव्य

१ द्विनी माह व का २६२ इतिहास पृ ४७२

२ कविप्रिया

३ द्विनी माह व का २६२ इतिहास पाठ भाग पृ ४७६ पर उद्धृत

४ कविप्रिया भाग २

५ अलकार रूप

६ भामह ने रमती व उपमान स हा वह कथन किया था न कान्तिनि निभू व विमानि वनितामुगम् । कान्तावकार ११७ ११८

गरीर को सुगोभित करने उपकरण अलंकार मान है ।' यही धारणा कुलपति मिथ की थी ।' भिल्लारीदास न भी यहाँ बात कही है ।' इन उक्तियों पर अलंकारवादियों का नहीं रस ध्वनि समर्थक मम्मट का प्रभाव स्पष्ट है । निष्कपत यह कहा जा सकता है कि यद्यपि परवर्ती आचार्यों ने कविवर्य की धारणा का ग्रहण नहीं किया प्रमुख तथापि कुछ आचार्य ऐसे ध्वन्य दृष्टि जिनके कविवर्य की भाँति अलंकार को काव्य का अविवाय अंग माना है ।

### अलंकारों की सरया

अलंकारों की संख्या में वृद्धि होती रही है । पर कविवर्य ने उनकी संख्या को प्राचीन आचार्यों की भाँति ही रखा है ।' कविवर्य के विनिष्ट अलंकारों की सूची इस प्रकार है—

१६वा प्रभाव—स्वभावोक्ति विभावना हेतु विरोध विगप उत्प्रेक्षा	५
१७वा प्रभाव—आक्षेप	१
१८वा प्रभाव—क्रम गणना आगिप प्रेम श्लेष सूक्ष्म लज निदग्ना उज रसवत अघातरयास यतिरेक अपह्लासि	१३
१९वा प्रभाव—उक्ति (वक्राक्ति अयाक्ति व्यधिकरणोक्ति विगपोक्ति सहोक्ति) व्याजस्तुति व्याजनिदा अमित पर्यायोक्ति मुक्त	६
२०वा प्रभाव—समाहित सुसिद्ध प्रसिद्ध विपरीत रूपक दीपक परिवृत्त प्रहेनिका	८
२१वा प्रभाव—उपमा	१
२२वा प्रभाव—यमक	१
२३वा प्रभाव—वित्र	१
कुल योग—	७

१ अलंकार ज्यों पुरष को द्वारा एक मन आनि ।

प्रसापम आत्तिक कविन अलंकार ज्यों मानि ॥ कविमुलक- नर २१४

व्यंग भाव भाँकी कविन शब्द अत्र है दृष्ट ।

दुग् दुग् भूषण भूषणी दुपरा टपरा ०६ ॥ रसमहस्य १।३४

२ अनुपम उपमाति न शब्दावतकार ।

कपर ने भूषित करें अमर तन का द्वार ॥ काव्यनिर्णय १६।६५

४ इति शब्द न इति शब्द अनुपमापमात्य । काव्यप्रकाश ८।६७

५ नामक—४ (३ का निरमल तथा एक का निरस्कार) । १ (आगत) —२७

रसक—४ (यमक तथा चित्र) । १ (आवृत्ति-आपक) —३७

वदन्त—४३ (अनुपम) (पुनरुक्तव्य-आम) —३७

वराव—

—७

यदि उक्ति क भेदा की जोड़ लिया जाय तो सख्या ४० हो जाती है। इनका स्रोत और वंशव की मौलिकता की दृष्टि से वर्गीकरण इस प्रकार किया जा सकता है—

- १ दण्डी क अनुरूप— विभावना, आंगीय प्रयोक्ति सहाक्ति यमक रसवत् ऊज और समाहित।
- २ दण्डी क प्राय अनुरूप—स्वभावोक्ति युक्त विरोध उत्प्रेक्षा आक्षेप, श्लेष रूपक व्यतिरेक अपह्लाति हेतु सूक्ष्म लज याजस्तुति याजनि दा और चित्र।
- ३ दण्डी से भिन्न— त्रय, पर्यायोक्ति परिवृत्त प्रेम अर्थात्तरयास विगोवित दीपक निदग्ना।
- ४ नवीन अलकार— गणना वक्रोक्ति व्यधिकरणोक्ति अमित विपरीत सुसिद्ध प्रसिद्ध और विनेय।

अलकारों की सख्या की दृष्टि से कवय क प्रदान क सम्बन्ध में निष्केप निकालन क लिए नीचे प्रमुख आचार्यों से कवय क अलकारों का तुलनात्मक तालिकाए दी गई हैं—

दाम ने रसवत् अलकारों का एक वर्ग माना है। हममें उन्होंने इन अलकारों को सम्मिलित किया है प्रेयस ऊजस्वि समाहित भावमघिवत् भावोदयवत् भावगबलवत्। इनमें तीन कवय क समान हैं। प्रतापसाहि न भी प्रयस्वत् अलकार रसवत् क साथ माना है। इस वंशव की परम्परा में विगेय रूप से देव दास और प्रतापसाहि आते हैं। पदमाकर न पदमाभरण क पञ्चदशालकार प्रकरण में सात रमालकारों का निरूपण किया है। इनमें से रगवत्, ऊजस्वित तथा समाहित कवय क समान हैं। दोनों क लक्षणों में साम्य नहीं। प्रल्लिका की दण्डी न अलकारों में स्वीकृत किया है पर साहित्यदपणकार न इनको रम में बाधक मान कर इसका निराकरण कर लिया।<sup>१</sup> दण्डी के द्वारा निदिष्ट आंगी का कवय न विस्तृत कर दिया। पर इसका अलकारत्व सिद्ध ही है।

(क) दण्डी के अनुरूप अलकारों की तुलनात्मक तालिका

कवय	चित्तमणि	मनिराम	कुसुमपति	देव	सोमनाथ	दास	प्रतापसाहि	१६७
विभावना	+	+	+	+	+	+	+	१
आंगीय	×	×	+					
अयोक्ति	अप्रस्तुतप्र०	अप्र०	अप्र०	अप्र०	अप्र०	अप्र०	अप्र०	१७५
सहाक्ति	+	+	+	+	+	+	+	
यमक	+	×	+	+	+	+	+	

१ दण्डी ने इसका नाम अप्रस्तुतप्रकाश किया है।

२ साहित्यदपण १।६६६।

बेशव	चित्तामणि	मतिराम	कुलपति	देव	सोमनाथ	दास	प्रतापसाहि	पदमाकर
रमवत	×	×	×	+	×	+	+	+
ऊज	×	×	×	+	×	+	×	×
समाहित	×	×	×	+	×	+	×	+
ग्रहणिका								
उपमा	+	+	+	+	+	+	+	+

उपयुक्त तालिका से यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि आगीय रमवत् ऊजस्वी और समाहित अलकारों को अग्रिकाण परवर्ती आचार्यों ने ग्रहण नहीं किया। बवल देव पर बंगव का ऋण माना जा सकता है। देव ने बंगव क आदेश पर इन अलकारों का भी निरूपण किया है। भावविलास म अलकारों की मस्या भी ३६ है और सभी अलकार कविप्रिया के विणिष्टालकारों क समक्ष हैं। पर आरसायन म देव को भी मस्या वृद्धि का मोह हुआ और उक्त ३६ अलकारों क अतिरिक्त ४२ अलकारों का और समावेश कर दिया। जसवत्सिंह जम अलकारवादी आचार्य ने भी रमवत्वादि अलकारों का छोड़ दिया। इस प्रकार शुद्ध अलकार-साम्प्रदायिक दृष्टिकोण से बंगव के परवर्ती आचार्यों ने ग्रहण नहीं किया। प्रतापसाहि ने भी रमवत् अलकारों का ग्रहण किया है। साथ ही एक प्रेयस्वत् अलकार भी ग्रहण माना है जो प्राचीन अलकारवादियों क अनुसार ही है। भिलारीदास ने भी इस रमवत्वादि क सहित कहकर रमवत् अलकारों को अपने अलकारों म सम्मिलित किया है।<sup>१</sup>

(८) दण्डी के प्राय अनुरूप अलकारों की तुलनात्मक तालिका

बेशव	चित्तामणि	मतिराम	कुलपति	देव	सोमनाथ	दास	प्रतापसाहि	पदमाकर
१	२	३	४	५	६	७	८	९
स्वभावोक्ति	+	×	+	+	+	+	+	+
युक्त	×	×	×	×	×	×	×	+
विरोध	+	×	×	+	×	+	×	+
उत्प्रेषण	+	+	+	+	+	+	×	+
आप	+	+	+	+	+	+	×	+
अप	+	+	+	+	+	+	×	+
अप	+	+	+	+	+	+	+	+
व्यतिरेक	+	+	+	+	+	+	×	+
अप	+	+	+	+	+	+	+	+
दण्ड	×	+	×	+	+	+	×	+
अप	+	+	×	+	+	+	+	+

<sup>१</sup> रमवत् अलकार, त्रिभुजा मस्या आसना न एक माना है।

१	२	३	४	५	६	७	८	९
लग	+	+	×	+	+	-	+	+
राजमुनि	+	+	+	+	+	+	+	+
राजनिगा	×	+	×	×	+	×	+	+
विश्व	+	+	+	+	+	+	×	+
याग	१५	११	११	६	१३	१३	७	१५

इस तालिका में स्पष्ट होता है कि अधिकांश परवर्ती आचार्यों से कण्व का सम्बन्ध है। सबसे अधिक साम्य देव सोमनाथ और दास से है। देव ने तो निश्चित रूप से कण्व का अनुकरण किया है। कण्व के मूल स्रोत प्राचीन आचार्यों का भी देव ने उल्लेख किया है।<sup>१</sup> इसी (भामहृ लण्डी कण्व) परम्परा में देव आते हैं। दास ने अलवारा की सबसे अधिक सख्या (१०८) मानी है। अतः विषय विस्तार में उनका नामन मभी मसृत आचार्यों तथा अपन से पूव के हिंदी आचार्यों की पद्धतिया रही होंगी। इसीलिए जहाँ रसवदादि अलकारों की स्वीकृति न उह के कण्व के सम्मुख रख लिया या वहाँ उक्त तालिका में उनकी कण्व से अधिक समानता स्पष्ट हो रही है। सोमनाथ ने भी अलकार प्रकरण का विस्तार किया है। वहीने भी १०८ अलकारों का निरूपण किया है। इस प्रकार यह निष्कर्ष निकाला जा सकता है कि देव तो कण्व के परम्परा के अनुसार ऋणों हैं और सोमनाथ और दास ने अपनी विस्तार प्रियता के कारण कण्व की पद्धति या उनके स्रोतों से सामग्री ला होंगी। युक्त अलकार को किसी भी आचार्य ने ग्रहण नहीं किया। इसका कारण यह हो सकता है कि इस अलकार का नाम उहीं के स्वभावोक्ति से मिल जाता है।

युक्त                      जसो जाको रूप बन कहिये ताही रूप।  
 ताको कविकुल मुक्त कहि, बरगत विविध सरूप ॥<sup>१</sup>  
 स्वभावाविन            जाको जसो रूप गुण कहिये ताही साज।  
 तासों जानि स्वभाव सब कहि बरगत कविराज ॥

अतः इसका पृथक् रूप से निरूपण करना अनावश्यक हो जाता है। परवर्ती आचार्यों ने सम्भवतः इसीलिए इसका ग्रहण नहीं किया।

### (ग) दण्डी से भिन्न अलवारा की तुलनात्मक तालिका

कण्व	चित्तमणि	मतिराम	भुलपति	देव	सोमनाथ	प्रतापसाहि	पदमाकर	दास
जम	ययामरुय	यथा०	यथा०	+	एकावली		यथा०	एका०यथा०
पर्यावाति	+	+	+	+	+	+	+	
परिधृत	+	+		+	+		+	+
प्रेम				+		प्रेमस्वन्	प्रेय०	प्रेय०

१ अलकार सुत्र उनका भी है देव कहते हैं—  
 दे है पुराणि मुनि मन्त्रि में पाए। —भाषिण्य  
 २ कवि १।३१

केव	चिन्तामणि	मतिराम	कुलपति	देव	सोमनाथ	प्रतापसाहि	पद्माकर	दास
अर्थांतरयास	+	+	+	+	+		+	+
विगणित	+	+	+	+	+		+	+
दीपक	+	+	+	+	+	+	+	+
निष्पत्ता	+	+	+	+	+		+	+

इस तालिका का एक तो निष्कप यह है कि केव द्वारा निदिष्ट क्रम और क्रम अलंकार परवर्ती आचार्यों ने छोड़ ही लिए। बवल दव न केव की भांति इनका भी निरूपण किया है। गण अलंकारों का निरूपण सभी आचार्यों ने प्रायः किया है। पर प्रधानतया देव को ही स्पष्ट प्रमाणित किया जा सकता है। जहां केव ने दण्डी की पद्धति से पृथक् निरूपण किया है वहां परवर्ती आचार्यों से उनका सबसे अधिक साम्य परिलक्षित होता है। (क) और (ख) तालिकाओं में साम्य इस प्रकार मुनि चिन्तन और नियमित नहीं है। इस सूची में से क्रम अलंकार को मम्मट रम्यक विचित्रनाथ व एकावली के समकक्ष माना जा सकता है। केव के क्रम का उदाहरण इनके उदाहरण से मिल जाता है। भामह दण्डी मम्मट के यथामस्य को वामन ने क्रम नाम से निरूपित किया है।<sup>१</sup> यह भामह और दण्डी का प्रयत्न ही है। इसका उल्लेख पहली तालिका के साथ हो चुका है। प्रतापसाहि भिखारीदास दव तथा पद्माकर ने इस नाम से केव का निरूपण किया है।

### (घ) नवीन अलंकारों की तुलनात्मक तालिका

केव	चिन्तामणि	मतिराम	कुलपति	देव	सोमनाथ	दास	प्रतापसाहि	पद्माकर
गणना								
वक्राकृति	×	×	×	+	+	+		+
अधिकरणोक्ति	असंगति	असंगति	असंगति	असंगति	असंगति	असंगति	असंगति	असंगति
असंगति								
विपरीत								
सुमिद								
प्रमिद								
विगण	+	+	+	+	+	+		+

इस तालिका में स्पष्ट होता है कि बवल वक्रोक्ति और विगण ही परवर्ती आचार्यों ने ग्रहण किए हैं। इनकी परम्परा केव से काफी पुरानी है। अन्य अलंकारों में अधिकरणोक्ति को असंगति के समकक्ष रखा जा सकता है।<sup>१</sup> यदि लक्षण को

१ अनेपायमनना क्रमन्वय क्रम । काव्यालंकारमूर्तवति

केव का लक्षण औरदि में बीज प्रणय अरदि को गुण दाप । कविप्रिया द्वारा मम्मट—मिनशासदास्यन काव्यकरणभूतयो ।

दुगणद्वयवयवया सा ग्यासुगति ॥ काव्यप्रवारा असंगति लक्षण

असंगति—अधिकरणोक्ति । अलंकारसूत्र, असंगति लक्षण

लकर तुलना की जाय तो असंगति का निरूपण सभी परवर्ती आचार्यों ने किया है। पर व्यधिकरणोक्ति नाम किसी ने भी ग्रहण नहीं किया। यह भी बात नहीं हाता कि कविवर ने इस नाम को किस श्रोत से ग्रहण किया। जहाँ तक 'गणना' का प्रश्न है, हम भी सस्कृत के किसी आचार्य ने अलंकार रूप में स्वीकार नहीं किया। वास्तव में यह त्रिगुणालंकार के रूप में रहकर वस्तु वर्णन साधन गया है। इसमें प्रत्येक सख्या से सूचित विशिष्ट नामावली ही गिनाई गई है। अतः परवर्ती कवियों द्वारा हमको भी ग्रहण करना कठिन था। कविवर के अमित अलंकार का श्रोत भी अज्ञात ही है। सस्कृत में इसकी परम्परा का अभाव का कारण परवर्ती आचार्यों ने इस भी ग्रहण नहीं किया। सुसिद्ध प्रसिद्ध और विपरीत अलंकारों की परम्परा भी सस्कृत के आचार्यों में नहीं मिलती। परवर्ती आचार्यों ने भी इनका निरूपण नहीं किया। इस प्रकार कविवर का द्वारा निर्दिष्ट नितान्त नवीन अलंकारों को किसी भी परवर्ती आचार्य ने ग्रहण नहीं किया।

इस विवेचन में यह निष्कर्ष निकाले जा सकते हैं कविवर के रसवदादि अलंकारों को अधिकांश परवर्ती आचार्यों ने स्वीकार नहीं किया। इसका कारण यह है कि रस भावादि, रस त्रिगुणियों के अनुसार अलंकार हैं अलंकार नहीं। रीतिकान्त के अधिकांश आचार्य इनकी विचारधारा से प्रभावित रहे। साथ ही रस त्रिया में बाधक समझा जाने वाला प्रहेलिका अलंकार भी किसी को भाग्य नहीं हुआ। जनराज ने अवश्य ही अपने कवितारसविनोद के बाइसवें विनोद में प्रहेलिका का विस्तृत विवेचन किया है। इस प्रकार अथ छोटे मोटे अज्ञात आचार्यों ने भी इसको ग्रहण किया हो तो आश्चर्य नहीं। श्रम और युक्त का समाहार क्रमशः एकवली या यथासंख्य तथा स्वभावोक्ति में हो जाता है। इसलिए परवर्ती आचार्यों ने इनका पृथक् निरूपण करना अनावश्यक समझा। आशिय का सदिग्ध अलंकारत्व इसकी स्वीकृति में बाधक हुआ। कविवर ने जिन अलंकारों की मौलिक उदभावना की उनमें से व्यधिकरणोक्ति अमित विपरीत और विशेष तो नाम भेद से सस्कृत ग्रंथों में मिल जाते हैं। जस व्यधिकरणोक्ति का समाहार असंगति में हो जाता है। गणना में अलंकारत्व की अपा वस्तु ही विशेष है। सुसिद्ध प्रसिद्ध दो नवीन अलंकार हैं। पर सस्कृत में इनकी परम्परा नहीं मिलती। इसीलिए परवर्ती आचार्यों को यह प्राप्त नहीं हुए।

अलंकार निरूपण की पद्धति

## २ अलंकारों का वर्गीकरण

कविवर ने सभी अलंकारों को पहले सामान्य और विशिष्ट वर्गों में विभाजित किया है। त्रिगुणालंकारों को उर्ध्वोत्पत्त अलंकार और अर्धोत्पत्त अलंकार के रूप में विभाजित नहीं किया। प्रसिद्ध परवर्ती आचार्यों ने सामान्य विशिष्ट वर्गीकरण को स्वीकार नहीं

विरचनाय—काव्यकारणोर्मिनिर्णयनम् । सा इत्यर्थः, असंगति सद्यः ।

१ हिन्दी साहित्य का इतिहास, षष्ठ भाग पृ० ३६५



किया। उनमें से कुछ ने गदानकार अर्थात्कार वाला त्रिविध वर्गीकरण किया और कुछ ने उभयालकार जोड़कर त्रिमूर्ती विभाजन किया है। उभयविध वर्गीकरण करने वाले आचार्यों में चित्तामणि सोमनाथ और प्रतापनाथि आत हैं। कुलपति मिश्र ने यह द्विविध वर्गीकरण करके पुनरुक्तवदाभास का गार्थालकार (उभयानकार) के अंतर्गत रखा है।<sup>१</sup> यह पद्धति साहित्यदशक से मिलती है। पद्याकर ने पद्याभरण में त्रिमूर्ती ही वर्गीकरण रखा है पर एक भिन्न प्रकार से। अर्थात्कार प्रकरण पंचदशालकार प्रकरण तथा ससृष्टि सकर प्रकरण। अर्थात्कार प्रकरण में कगव की भांति गान और अथ से संबंधित एक मिली जुली सूची दी है। दास ने गान और अथ के आधार पर अनेकारों का वर्गीकरण किया है। पर पीछे अथानकारों को १२ वर्गों में विभाजित किया है। कगव का भांति मिली जुली सूचीया मतिराम ने ललितलाम में तथा दव ने भाव विलास में दी है। इस प्रकार कगव की परम्परा का अनुसरण करने वाले कुछ परवर्ती आचार्यों ने गान और अथ के आधार पर अनेकारों का वर्गीकरण नहीं किया।

## २ सामान्य और विशिष्ट अलकार

सामान्यालकार के भेद को उत्तम प्रमुख आचार्यों ने मायता प्रदान नहीं की। पर कुछ आचार्यों ने कविप्रिया से प्रेरणा लेकर एम भेद को भी स्वीकार किया है। पदुमनदास ने काव्यमजरी के चौथे अध्याय का नाम वणरत्नमामायालकारवर्णन रखा है। यह असादिग्ध है कि यह नाम उन्होंने कगव का कविप्रिया से लिया है।<sup>१</sup> एम अध्याय की सामग्री भी कविप्रिया से मिलती जुलती है। अतः पदुमनदास कगव का अन्वय ही ऋणी है। ह सक्ता है रीतिकान्तान अथों की भावी गोप्य कगव के प्रज्ञान को और भी स्पष्ट कर दे।

## ३ मृदु अलकारों के उपभेद विस्तार

कगव में कुछ अनेकारों के अवातर भेद भी प्रस्तुत किए हैं। विभावना के प्रथम और तृतीय भक्त कगव में दण्डी और भास्कर के समान दिए हैं। हेतु के भी कगव में दो भेद माने हैं अभाव हेतु और अभाव हेतु।<sup>१</sup> कगव के अनुसार आत के १२ भेद हैं। एम विरचन में कविप्रिया का दमवा प्रभाव पग गया है। गगना में एक से दस तक की संख्या में संबंधित वस्तुओं को गिनाया गया है। गार्थालकार का भी कगव में अधिक विस्तार किया है। तप के कगव में सात

१ अथ गार्थालकार पुनरुक्तवदाभास संग्रह—

अथ ५२ पुनरुक्त ६३ व पुनरुक्तन मय।

मा पुनरुक्तव भास ६ शब्द अथ न दाय ॥ रत्नरहस्य ७ ६२

द्वि-सादव कावद-इ-म ५२ भाग १ ६२

३ हेतु हेतु ६ म- वरन्त मव कावतान ।

कमवगुप्त प्रकम ६८ वरनि मगन प्रभाव ॥ कविप्रिया ६१५

भ्रू किए हैं अभिन्नपद भिन्नपद, अभिन्नप्रिया भिन्नप्रिया विरुद्धकमा नियम और विराधी। रमवत् क अतगत नव रस आ जात हैं। अथात्तरयास क कवय न चार भेद किए हैं। युक्त अयुक्त अयुक्तायुक्त (अयुक्त-युक्त) और युक्त अयुक्त।<sup>१</sup> व्यतिरेक कवय क अनुमार दो प्रकार का होता है उक्ति व्यतिरेक और सहज व्यतिरेक। उक्ति क इन्होंने वक्रोक्ति अयाक्ति अधिकरणोक्ति विरोधोक्ति और सहाक्ति पाच भेद माने हैं।<sup>२</sup> कवय न रूपक क तीन ही भेद माने हैं। अन्भूत रूपक विरुद्ध रूपक रूपक रूपक।<sup>३</sup> दीपक क दो भेद मणि तथा मालादीपक का निरूपण कवय न किया है। बस उन्होंने यह भी स्वीकार किया है कि दीपक क अनक भेद सम्भव है।<sup>४</sup> उपमा का विस्तार ममस्त १४ वें प्रभाव का आच्छादित कर रहा है। कवय न इसके २२ भेद किए हैं सगयोपमा हनुपमा अभूतोपमा अदभूतोपमा विक्रियोपमा, माहोपमा नियमोपमा अतिगयोपमा उत्प्रेक्षितोपमा ललापमा घर्मोपमा निणयोपमा असभावितोपमा विराधोपमा मालापमा दूषणोपमा भूषणोपमा गुणाधिकोपमा नागणिकोपमा परस्परोपमा, मकौणोपमा तथा विपरीतोपमा। पन्द्रहवें प्रभाव म उन्होंने यमक का विस्तार किया है। पञ्च इसक अयपन और सव्यपत भेद किए गए हैं। फिर इनक रूपांतर लिए गए हैं। आग सुखकर दुःखकर दो भेद मिलत हैं। मालहवें प्रभाव म चित्रालकार का विस्तार है। कवय न इस अलकार क पूर्व-युगीन विस्तार का परिचय लिया है। एसा प्रतीत हाता ह कि कवय न आक्षय इनप उपमा यमक और चित्र क विस्तार म विगप रुचि नी है। आक्षय का भी पयाप्त विस्तार किया गया है।

परवर्ती आचार्यों म स कुठ ने इन विस्तार मरगिया को ग्रहण किया है और कुछ न नहा। चित्तामणि ने इनप का विस्तार कवय क समान नहीं किया। इसी प्रकार यमक का विस्तार भी इन्होंने प्राय छा छो लिया है। चित्रालकार क सम्बन्ध म चित्तामणि न भी कवय की भांति उक्ति को है—

चित्रालकृत बहुते विधि वरनत सुकवि अनादि।

चित्रालकारा की तुलनायमक तालिका अत म दी गई है। चित्तामणि न कवय की भांति उपमा का भी विस्तार नहीं किया। उपमा क श्रौती और आर्यो तथा अनक पूर्णोपमा और तुप्तोपमा दो गो भेद कर दिए गए हैं। इस प्रकार उपमा का विस्तार भी इन्होंने विगप नहीं किया। मालोपमा का दानो ही आचार्यों न निरूपण किया है। पर चित्तामणि न उष पृथक न माना है। कवय न दीपक क दो भेद मणि और

१ कविप्रिया ११।२७

२ वहाँ १२वा प्रभाव

३ दीपक रूप अनक क म वरनो है रूप।

मणि माला मलि उा कइ यमक अक कवि भूय ॥ वग २। ३

दरही न इनके १० भूय दिए हैं।

४ कवय नियम म्मु में बृहत् परम चित्र।

ताम बृहत् क वणे, वरनत हो मनि मिति ॥ १६।१

माला किए हैं। चिन्तामणि न इन दोनों को दो पृथक् अलंकारों के रूप में ग्रहण किया है। अर्थात्तरयाम के ४ भेद चिन्तामणि न छोड़ दिए हैं।

मतिराम ने यमक के विस्तार का ही नहीं यमक को ही छोड़ दिया है। इन्होंने चित्र के वचन का ही भेद माना है।<sup>१</sup> मतिराम न उपमा के विस्तार का छोड़ दिया है और इसके पूर्णोपमा और तुल्योपमा दो भेद किए हैं।<sup>२</sup> मालोपमा का इन्होंने पृथक् अलंकार माना है। इन्होंने रूपक का कविवर्य से अधिक विस्तार किया है। कविवर्य से भी न मतिराम न अपह्लाति के और उत्प्रेरणा के निदानों के हटु तथा विभावना के अधिक भेद प्रभेद किए हैं। कविवर्य द्वारा निर्दिष्ट यतिरक श्लेष आक्षेप दापक अर्थात्तरयाम के भेद प्रभेद और विस्तार को मतिराम न छोड़ दिया है। साथ ही मानादीपक का कविवर्य न दीपक का उपभेद माना है पर मतिराम न मणिदीपक को छोड़ते हुए माना का अलग अलंकार माना है। कविवर्य न सहायित्व का उक्ति का भेद माना है मतिराम न इस पृथक् अलंकार माना है। कुछ अलंकारों के निरूपण और परिभाषा में दोनों आचार्यों में साम्य भी मिलता है पर इसके आधार पर प्रत्येक प्रभाव सम्प्रदाय निष्कप नहीं निकाला जा सकता।

कुलपति मिश्र न कविवर्य के उप यमक चित्र आक्षेप के भेदापभेदा और विस्तार को छोड़ दिया है। वक्रावृत्ति के भेद कुलपति ने किए हैं कविवर्य न नहीं। उत्प्रेरणा आठ भेद कविवर्य से भिन्न हैं। कविवर्य और कुलपति मिश्र तथा कविवर्य से अलंकारों का उल्लेख साम्य है स्वभावोक्ति विभावना आक्षेप विरोधाभास व्यतिरेक सूक्ष्म अपह्लाति विगोपाक्ति याजस्तुति तथा रूपक।<sup>३</sup> कविवर्य के उपमा के विस्तार का चिन्तामणि और मतिराम का भावित कुलपति न भी छोड़ दिया है। इन्होंने कवल श्रुती आर्षो पूणा तथा तुल्योपमा का उल्लेख किया है। मानोपमा को कुलपति न भी पृथक् अलंकार माना है। कुलपति के अतिमान सदृश और अनचय (अनवय) का अलंकार भाव कविवर्य की मोहापमा सगयोपमा और अतिगयोपमा में ही जाता है। दोनों के लक्षण भी समान हैं। कविवर्य के रूपक भेदा के स्थान पर इन्होंने साग निरय तथा अय अवानर भेद किए हैं। कविवर्य से अधिक कुलपति न व्यतिरेक के २४ भेदों का उल्लेख किया है। मानादीपक का इन्होंने भी स्वतंत्र अलंकार माना है। कुलपति द्वारा निर्दिष्ट अर्थात्तरयाम के भेद कविवर्य से भिन्न हैं।

द्वय न उपमा का विस्तार न अधिक किया है पर यह भेद विस्तार कविवर्य की गली पर नहीं है। वय मानोपमा को द्वय न उपमा का ही एक भेद माना है स्वतंत्र नहीं। पर कविवर्य के उपमा में। म द्वय ने चार भेदों को ग्रहण किया है सर्वाणोपमा नियमोपमा मानोपमा तथा अनुभवोपमा। जहाँ तक लक्षण और उदाहरणों का प्रश्न

१ अलंकारशास्त्रे ४ ३५३

२ कवी ४३ ४६

३ इनके उदाहरणों के लक्षण—किरणचन्द्र शर्मा कविवर्य की कविता और कुलपति

है दोनों व नियमोपमा तथा असमवोपमा म साम्य है और मालोपमा और सकीर्णोपमा परस्पर नहीं मिलत। देव की उपमोपमा तथा सदेहापमा बंगव की क्रम परस्परोंपमा तथा संगोपमा ही हैं। देव का अवय अलकार बंगव की अतिशयोपमा ही है। देव व भ्रम अलकार का बंगव का मोहोपमा म बहुत कुछ साम्य है। बंगव ने सदह को छोड़ दिया है और सग्य को उपमा म सम्मिलित किया है। देव ने बंगवोक्त रूपक व भ्रम का छोड़कर अपन निजी भेदा का निरूपण किया है। वक्रोक्ति और अयोक्ति का देव न पृथक अलकार माना है। बंगव ने इनका निरूपण उक्ति के भेदों व रूप म किया है। देव न इनप व भेद प्रभेद को छोड़ दिया है। यतिरेक, आक्षेप-नीपक अथात्तर यास, हेतु क विस्तार भेद का देव न छोड़ दिया है। निदाना के भेद दत्र न किता हैं बंगव न नहीं। गालकारा म दोना ही यमक और चित्र को मानत हैं। पर देव न यमक व भेद विस्तार को छोड़ दिया है। वस सामायत देव ने यमक व अनक भेदों की स्थिति मानी है।<sup>१</sup> चित्र अलकारों के सम्बन्ध म आगे विचार किया गया है। दाना व लक्षणा म भी कुछ साम्य मिलता है।<sup>२</sup>

दास न मालोपमा को पृथक अलकार न मान कर उपमा के अंतगत ही माना है। दाना आचार्यों का उपमा लक्षण प्रायः समान है पर भेद प्रभेद दोनों के भिन्न हैं। वम दास न भा उपमा का अत्यधिक विस्तार किया है। दास न मातोपमा व भा चार भन् किए हैं। उपमा क भेदा म नाम भेद और लक्षण साम्य भी मिलता है। य भन् इन प्रकार हैं बंगव अतिशयोपमा दास अवयव बंगव परस्परोंपमा दास उपमोपमा बंगव गयोपमा दास स देह बंगव माहोपमा दास भ्रम। बंगव का रूपोपमा वा दास व प्रतीत से साम्य है। बंगव द्वारा निर्दिष्ट उपमा व नेप भेदा का दास व अलकारा म साम्य नहीं है। उत्प्रेक्षा का जितना विस्तार दास न किया था उतना बंगव न नहीं और न बंगव न अपह्लाति क भेद प्रभेद ही किए हैं। यतिरेक व बंगव न दो ही भेद किए हैं और दास न चार। रूपक का विस्तार भी दाना आचार्यों का नहीं मिलता।<sup>३</sup> अय अलकारों क आघार पर कुछ और भेद किए हैं। उनम एक रूपक रूपक भा है। समक निरूपण म दास और बंगव म पर्याप्त साम्य है। दास ने कबल इसका उदाहरण ही दिया है—पर बंगव व लक्षण इस पर घटित होत हैं। इस प्रकार अय अलकारों पर आधारित रूपक व भेदोपभेद की प्रेरणा सम्भवत दास की बंगव स मिली है। सम्भव है इहान सामग्री दण्डी म और प्रेरणा बंगव म ली है। भिन्नोपमा के चतुषुष्य व अलकारों म स कबल विषय बंगव स मिलता है। पर दाना का लक्षण भिन्न है। दोनों का निरूपित आक्षेप का लक्षण भी भिन्न है। बंगव न इसका विस्तार दास स वहीं अधिक किया है। अयोक्ति का संगण दानों

१ म गमक करि यमक व बलन भेद भानि। शम्भरमायन

२ भिन्न अलकारों क लक्षणा में साम्य मिलता है व द है—यथाकिं अतिरेक उत्प्रेक्षा, अय-द्वि-रूपक अथावस्तुति, नि-दास्तुति विराधामास रसवत् मृदम समान्ति आदि।

३ म न निरुत, परम्प रत परिणाम तथा मयस्त विषयक माने हैं। वराव न लीन हा भन्मान-  
२—अरमुत रूपक, विरुद रूपक और रूपक रूपक।

आचार्यों का मिलता है।<sup>१</sup> कगव की पर्यायोक्ति दास क प्रथम प्रहृषण से मिलती है। दास न विरुद्ध क नो भद किए हैं कगव न इनको छोड़ दिया है। कगव न विभावना क दो भद मान हैं दास न छ। लश अलकार का लक्षण दोना न भि न दिया है। परिवृत्त अलकारो क लक्षण तो दोना क भि न है पर तास क विपादन अलकार का लक्षण कगव क परिवृत्त क लक्षण से मिलता है

कगव का परिवृत्त—

जहा करत कछु और ही उपज परति कछु और।

तासों परिवृत्त जानिये कगव कवि सिरमौर ॥

दास का विपादन—

सो विपाद चित चाहते उरटी कछु ह्य जाइ।<sup>२</sup>

सहोक्ति का लक्षण भी परस्पर नहीं मिलता। कगव द्वारा निरिष्ट हतु क भदो को दास न छोड़ दिया है। कगव न दीपक क दो हा भद निरूपित किए है। दास ने मणिदीपक को तो छोड़ दिया है पर इहोमं दापक क पाच भद अयावृत्ति पयार्थावृत्ति देहरी यापरक और मानादीपक किए हैं। कगव न कहा था कि दीपक क अनक भद हो सकत हैं। हो सकता है कि एक विस्तार की प्रेरणा कगव से ही इनको मिली हो। गालकार का जो विस्तार दास न किया है वह कगव न नहीं किया था।

उक्त विवेचन से सहज ही यह निष्कप निकाला जा सकता है कि कगव न अलकार का जो भद प्रथम विस्तार किया था वह अधिकांश परवर्ती आचार्यों न नहीं अपनाया। कगव ने मयम अधिक विस्तार इन अलकारो का किया था आक्षप (पूरा दसवा प्रभाव) श्लेष (७ भद) उपमा (पूरा १४ वा प्रभाव २२ भद) यमक (पूरा १५ वा प्रभाव) तथा चित्राकार (पूरा १६ वा प्रभाव)। परवर्ती आचार्यों न इनक भद विस्तार में रुचि नहीं ली। उपमा का विस्तार कम होने का कारण यह भी रहा कि कगव न जिन अलकारो को उपमा भद माना था उनको परवनिया ने स्वतंत्र अलकार बना दिया—

कगव

परवर्ती आचार्य

मोहोपमा

श्रानि या श्रम

मगयोपमा

संज्ञ

अतिगायापमा

अनवय

मालापमा

मात्रोपमा स्वतंत्र अलकार<sup>३</sup>

१ पत्रा—अराड प्रति नु कगविये कछु और की वन। क प्रि १। ६। दास—अय व ल और क के और नि—निर डारि। कागवगय

२ मि १३ ३६

३ कगवगय

४ उपमा कुल न के लदा नाम न मन्त्र अलकार स्वीकार किया।

५ पद इनका उल्लेख हा बुझा है सक गांभो तिवनोपमा मालापमा अयभरापमा।

दव और दाम ने बगव क परस्परपेमा भट का नाम ही बदल लिया—उपम यापमा । दव न बगव क चार उमा भटा की अवश्य अपनाया<sup>१</sup> चाहे लक्षणा म पूण साम्य घन्ति न हुआ हा । बगव न जिन अयोक्ति और वत्रोक्ति का उक्ति का भट माना था व भी आग व आचार्यों न स्वतंत्र अलकार बना लिए । मानादीपक बगव की भाति दीपक का भद न मानवर पीछे क आचार्यों न स्वतंत्र अलकार बना लिया । हमम बगव का विस्तार कुछ प्रभावित हुआ ।

इमम अनिरिक्त कुछ अलकारा का बगव न जिन पद्धति म विस्तार किया था उन पद्धतिया को छाड़ लिया गया । जम रूपक क नवान भद प्रभेद परवर्ती आचार्यों न किए । हम प्रकार विभावना यमक श्लेष आदि का विस्तार भी भिन प्रकार म हान लगा । हम प्रकार बगव क विस्तार माग दा भा ग्रहण नहीं किया ।<sup>१</sup>

विस्तार भट की दिगा भी बदल गई । आग व आचार्यों न रूपक अपह्नुति व्यतिरिक्त उत्पत्त्या निदगना आदि क न विस्तार म विषय हचि नी । चित्रानकार<sup>२</sup> क क्षत्र म भी हचि घटती गई । फिर ना हमक नदा पर बगव का प्रभाव अवश्य रहा । आग इम पर विचार किया जा रहा है ।

### चित्रालकार—कविशिक्षा का भाग

बगव न चित्रानकार की न स्तुति की और न भत्मना की ? काव्य म हमक म्यान क विषय म के मौन रह । माथ ही इनस युक्त काव्य की काटि क विषय म भा उहान कुछ नहीं किया । पर हम मौन का तात्पर्य समथन नहीं हा मक्ता । आनन्दवधन क अनुमार व्यग्य रहित का चित्रकाव्य की सजा दी गई है ।<sup>३</sup> मम्मट अव्यय दीक्षित आदि कुछ आचार्यों न चित्रकाव्य को गान्तकार और अर्थात्कार का पर्याय माना । आनन्दवधन न चित्रकाव्य का गान्त और अर्थ क बचिष्य पर आधारित धृति नहा था । माथ ही उहोंने चित्रकाव्य का अथम काव्य कहा है ।<sup>४</sup> इम कथन का परिपालन पीछे भी हाता रहा । बगव क हम सम्बन्ध म मौन की यहा पृष्ठाभूमि है । इनका विरोध करते हुए व अनकारकाव्य ( चित्रकाव्य ) का समथन भा न कर मक

१ नाम न हम उपमा का ही भट माना । पर कुछ आचार्यों न हम पूरक कर लिया ।

२ मम्मवन बराव के यमक श्लेष और चित्र का विस्तार परवर्ती आचार्यों न इमुनिण ग्रन्थ नगा किया कि इनक निवाचन में चित्रक अधिक उमर कर आता है । फलत चनधृति की आर ध्यान आर्क्षपन को आता है और समाकष गौरव हा जाता है । कुल्पनि मिश्र न हम बात का स्पष्ट भी कर लिया है—

आक चित्र अरु श्लेष में रम को नाहि दुलाम ।

याने याके स्वय ही राने म प्रकाम ॥ रमरहस्य ७।४४

केगव के परवर्ती आचार्यों पर रम और र्वनि सिद्ध नी का विचार प्रभाव है ।

३ अन्त्याका ३।४

४ काव्यकारा ३।४

५ १३ पंलाक ३।४२ ( वृत्तिभाग )

६ बदी ३।४३ ( वृत्ति )

श्रीरत्नकारादियों से संबद्ध होते हुए वे इसका सम्पन्न भी न कर सके। चित्रात्मणि ने केवल एक मौन के द्वितीय पक्ष का मुखर बनाते हुए चित्रवाच्य को प्रथम कहा—

गद्य चित्र इत ए सद्य, अधम कवित्त पहिचानि ।

जेते हैं ध्वनि हीन तैं अथ चित्र सो मानि ॥<sup>१</sup>

इसमें आनन्दवधन के मत की गज है। कुतपति ने भी कुछ ऐसी ही बात कही है—

शब्द अथ है चित्र जह यम्यन, अवर सुगई ।

कुतपति ने गणालकार का गद्यचित्र श्री अद्यालवारो का अथचित्र कहा है।<sup>२</sup> दास ने भी चित्रवाच्य को अवर वाच्य नाम दिया है—

अवर हेतुय हि कबले अलकार निर्याहु ।

कवि पडित गनि लेत हैं अवर वाच्य म ताहु ॥

इस प्रकार चित्रवाच्य का खण्डन रीतिकाल के प्रमुख आचार्यों ने किया और ध्वनिवादियों के मत का समर्थन किया। पर इताने चित्र अलकार का निरूपण भी किया है। कविवर ने इसका निरूपण यदि विस्तार से किया है तो भिखागीदास ने भी इसका कम विस्तार नहीं किया।

आनन्दवधन ने चित्रवाच्य को अथम वाच्य भी क्यों स्वीकार किया? क्या नहीं कह दिया कि यह वाच्य ही नहीं है। इसका कारण तो सकता है कि यथाथ प्रतिभा से हीन कवियों के लिए अस्मिता का ही माग्य बच रहता है। चित्रवाच्य अस्मिता साध्य है। उनको ध्यान में रख कर ही सम्भवतः इस वाच्य के अन्तर्गत स्वीकार कर लिया गया। परवर्ती आचार्यों ने कविशिक्षा की दृष्टि से चित्र का निरूपण किया। कविवर के सम्मुख भी कविशिक्षा आचार्य हान के कारण यही अर्थों मार्थी कवि वगैरे का आग्रह रहा होगा। परवर्ती आचार्यों ने अलकार विषय की पूर्णता के लिए ऐसी परम्परा को प्रवृत्त किया।

कविवर से पूर्व ही कविशिक्षा के इस भाग का पर्याप्त विकास हो चुका था। इस विस्तार का कविवर ने समुद्र के समान बताया है। इसमें अर्द्ध अर्द्ध गीत खाते हैं। कविवर अत्यन्त विनय के साथ कहते हैं कि मैं उस समुद्र की एक बूद का ही वर्णन करता हूँ—

केगव चित्र समुद्र म बूडत परम विचित्र ।

ताक बूदक के कण धरनत हों सुनि मित्र ॥<sup>३</sup>

सदस्य पहले कविवर ने चित्राचार्यों के सम्बन्ध में सामान्य नियम सूचनाएँ दी हैं। चित्राचार्यों में विमग्य अनुस्वार यनिभग्य रमहीनता बधिर अथ तथा गण अगण

१ कविकल्पतरु । ६

२ रसगङ्गाधर । १६

३ बहो ७१

४ क. अनियुक्त ८१५ ७१ भा

५ क. अन्या ३१११ अर्द्ध के कव्यशास्त्र में इसका विकास दाता रहा। भाज के सम्बन्ध में अर्द्धा ६ तक आ पहुँची है।

का विचार नहीं किया जाता। कुछ ध्वनि परिवर्तन सम्बन्धी नियम भी मिलते हैं। इनमें दीर्घ अक्षर को लघु 'व' को 'ध' या 'व' को 'व' तथा 'ज' को 'घ' या 'य' को 'ज' माना जा सकता है। फिर भी दापादि सवचने की भरसक चट्टा करनी चाहिए। केशव वं परवर्ती आचार्यों ने चित्र अनुकार के विस्तार को स्वीकार किया है। कुलपति मिश्र ने भी सम्यक् पूर्वकालीन विस्तार को स्वीकार किया है। पर स्वयं इस विस्तार में मप्रयाम बच हैं। भिलारीदास ने इसका बहुत विस्तार स्वयं किया है। इन्होंने कवय को भाति चित्रकाय वं सम्प्रथम कुछ सामान्य नियमों की सूचना दी है। इसमें परमहीनता का लोप नहीं लगाया जा सकता वन्व तथा ण्य और अनुस्वार वं सम्प्रथम उनका द्वाग निर्दिष्ट नियम कवय वं समान ही है—

चमत्कार होनाथ को व्हा दोष क्तु नाहि ।

व व ज य वरमना णिये चित्रकाय भएक ॥

अद्भुत चन्द्र को जनि करो छूट लग धिवेक ।

डा० नारायणराम खन्ना ने इन नियमों को कागिराज का चित्र चद्रिका के आधार पर माना है। पर कवय वं नियमों में य नियम अधिक समीप है। अतः कवय का प्रभाव माना ही अधिक युक्तिसंगत दिखनाइ देता है। माय ही कवय वं पञ्चात सबम अधिक विस्तृत चित्र निरूपण भी भिलारीदास ने किया है।

कवय न चित्रालकार वं ये भन्नेपभेद किए हैं निराच्छ रचना अमात्रिक रचना (सभी अक्षरों में पर आधारित होने हैं) ण्य रचना तथा फिर एक एक वर्ण पटत हुए एक अक्षर तक की अक्षर रचना। आधा एकाक्षर प्रतिपत्ताक्षर युगलपत् (एक अक्षर), बहिरालपिका अन्तर्लपिका मूढोत्तर एवानेकोत्तर गतागत। इनमें अक्षर प्रकार वं चित्रों की संरचना होती है। इनमें से कवय न वं चित्रों का वर्णन किया है। गोमूत्रिकाचक्र कपाटबंध अश्वगति चक्र गतागत चतुपदी द्विपदी त्रिपदी चरणगुप्त चक्रबंध, कमलबंध सवतोभद्र (कामधेनु) पवत, बंध सवतामृत हरिबंध हारबंध कमलबंध मन्त्रिगति डमरबंध। अधिकांश आचार्यों ने चित्रों का चलता सा निरूपण किया है। चित्तामणि ने खडगबंध कपाटबंध कमलबंध अश्व-

१ अथ ऊप्य वि विद्युत् पति रमहीन अपार ।

बहिर अक्षरान् अग्नौ को गन्धिव न नग्न विचार ॥ कविप्रिया १६१०

२ कशाव विष्य क्वचित् मे इनके दाप न ण्य ।

अक्षर मध्ये पात्रा वन जय एका लाग ॥ कविप्रिया १६१३

३ कथा ण्य द्वा अमभग र्था वरना विष्य क्वचित् । वही १६१४

४ चित्तामणि विद्यावर्तिन बहूत विधि वरना मुकुटि अनादि । कवितुलकान्तक

५ रमरक्ष्य इ एतदन प्रम इलाहाबा सुवर् १६१४ वि , १ ७३ ६ ७ ४० ४१

६ काव्यनिगम २१०

७ चित्र चिन्ता क अनुकार अद्भुत अनुस्वार तथा इनमें युक्त अथवा रहित अक्षर एक समान माने जाते हैं। र, ल, उ। स, प, र। व। अ। य। इन वर्णों के अक्षर समान गिन जाते हैं। लघु और दीर्घ के उच्चारण का भी दाप नहीं माना जाता। इसमें प्रतीत होता है कि दाप का मान चिन्ता चिन्ता के आधार पर है।—आचार्य भिलारीराम पृ ३२६



गति गोमूत्रिकावध कामधेनु सवतोभद्र का उल्लेख किया है। इनमें स प्रथम क अनिर्दिष्ट सभी वर्णव क समान हैं। चिन्तामणि न बबरा उदाहरण प्रस्तुत किए हैं लक्षण नहीं। मतिराम ने भी वर्णव क चित्र निरूपण स मामग्री ली थी।<sup>१</sup> वम मतिराम न वर्णव क समस्त चित्र विस्तार को छोड़ दिया है। वहाँ नवल दो ही भेदा प्रथम तथा द्वितीय चित्रण क और उदाहरण दिए हैं। सभी प्रकार कुत्रपति मिश्र न कवल तीन चित्रा का ही निरूपण किया है। खड्गवध गामूत्रिकाचित्र और कामधेनु।<sup>२</sup> सोमनाथ न वम प्रथम म कुछ अधिक चित्रा को सम्मिलित किया है। मित्रगति अर्धव गति कपायवध त्रिपद हारवध चक्रवध गतागति चित्र और चरमगुप्त। य सभी वर्णव क समान हैं। कवन मित्रगति इसी नाम स वर्णव म नहीं मिलता। साथ ही वर्णव की भाँति वहाँ भी वमक अर्थ भेदों की सम्भावना की और सक्त किया है। चाह तो और हू होय त्रिविधकी पवीनता सा।

भित्तारीदास न वस अक्षरकार का हिंदी म अभूतपूर्व विस्तार किया। वसम व पचित्रा आकारचित्रा (रेखाचित्रा) गति की कलायाजिया को सम्मिलित किया जाता था। वाकोवाक्य गुणोत्तर प्रश्नोत्तर जमे तीन अक्षरकार भी इसम सम्मिलित हो गए थ। वर्णव और दाम के सम्मुख सम्भवत भाज आदि आचार्यों का यह समस्त विस्तार था। वर्णव की भाँति वहाँ भी वसकी भूमना नदी की है। साथ ही वर्णव की अपक्षा यह विवेचना इन्होंने की कि वनका वर्गीकरण कर दिया।

## १ प्रश्नात्तर

अतर्थापिका वहिर्लापिका गुप्तोत्तर अस्त समस्त एकानेकोत्तर नागपास त्रमयस्त नमस्त कमनवध और शृखला। इनमें स नागपास त्रमयस्त समस्त और शृखला क अनिर्दिष्ट सभी का निरूपण वर्णव न भी किया है। वनका चमत्कार प्रश्न और उत्तर की विविध योगनामों पर निभर है।

## २ पाठांतर चित्र

वनका चमत्कार वर्णों को युक्त या परिवर्तित करके पाठ करने म है। वर्णव का चरणगुप्त वमक अतगत आ सकता है।

### वाणीचित्र

भित्तारीदास न वमक पाच भेद माने हैं। निगोष् अक्षर निरोष्ठाक्षर अजिह्व (एक हा उच्चारण स्थानाव वर्णों का प्रयोग) नियमित वण (कवन एक ही व्यंजन का

१ चित्र में वर्णव की संभावना और लक्षणा में मामाचर्य नमधनसिंह का प्रवाद उपलब्ध है।—हिन्दी म वर्णव का उदाहरण इति म पृष्ठ भाग पृ ४४६

२ अक्षरचित्राव ३२ ३२३

३ रम्यदृश्य २ ७३ पृष्ठ ४ ६१

प्रयोग) इनमें स तिरोष्ठ अमत्त<sup>१</sup> (अमात्रिक) का बंगव ने भी निरूपण किया है। युगल-  
प एक अक्षर दास के नियमित षण व समकम है।<sup>२</sup> इस प्रकार बंगव का विस्तार  
यहां भी अधिक कम नहीं है।

#### ४ लेखनी चित्र

अमत्त दाम ने लग कमल, ककण डमरु चंद्र, धनुष हार, मुरज छत्र, पवत,  
वग तथा कपाट।<sup>३</sup> इनमें म कमल, ककण डमरु, धनुष हार, पवत तथा कपाट बंगव  
के समान हैं।<sup>४</sup> इनके अतिरिक्त दाम ने अथ भदोपभेदा के उदाहरण भी दिए हैं।  
जग—गत मन, त्रिपदी भ्रमिपति अक्षवगति सवतामुख तथा कामधेनु। ये सभी बंगव  
न भी दिए हैं। इस प्रकार बंगव और दास में चित्रालंकार प्रकरण में पर्याप्त साम्य है।

#### निरूपण

बंगव के समान दाम ने भी चित्र का बहुत विस्तार किया है। वस बंगव की  
अपना दास के विस्तार का मीमांसे दूर तक जाती है। पर सम्भवत दाम ने प्रेरणा  
बंगव से ली होगी। सामग्री के लिए बंगव और दाम दोनों ही भोज के सरस्वती कटा  
भरण के श्रुणी प्रतीत होत हैं। अथ प्राचार्यों ने विस्तार तो इतना नहीं किया है।  
जिन चित्रालंकारों का उल्लेख उन्होंने किया है उनमें स अधिकांश अक्षर स मिल जात  
हैं। अतिराम की निरूपण गली बंगव से अधिक प्रभावित है। देव के चित्रालंकार भी  
अक्षर स प्रभावित हैं। देव ने प्रहेलिका को भी इसका अंतगत माना है जब कि बंगव  
ने उस स्वतंत्र अलंकार माना है। बंगव में भिन्न देव ने भी कुछ और चित्रभेद दिए  
हैं। बंगव का परम्परा-दान तो यहाँ स्पष्ट है ही।

#### दास निरूपण

बंगव ने रसिकप्रिया में पाव दास का विवरण दिया है प्रत्येक नीरस  
विद्युत् दुसपान तथा पात्रादुत्।<sup>५</sup> इनका तुलनात्मक विवरण पीछे रम प्रकरण में किया  
जा चुका है। रसिकप्रिया में कुन मितार अठारह दास स्वीकृत किए हैं। इनमें न पाव  
ता बंगव के मौखिक दास हैं अथ अधिर, पगु नभन तथा भृतक।<sup>६</sup> गेप तेरह दास ये

- १ एक रसर जल वरगिय अमृत रूप अक्षर।  
कल्पि माया रदिन जह मित्र रिथ आमण ॥ क प्रि० १६।३
- २ इनका उदाहरण पंगव ने यह दिया है—  
केवा केवा कोठ का काव ककि का काठ।  
काठ कूठ कोठी कठी कुवे केवा काठ ॥ क० प्रि० १६।४२
- ३ गी कमल ककण डमरु चन्द्र गग धनु हार।  
मुग्न छत्र युत कप व, परत वृज भिवा ॥ कान्दनिष्ठ २१
- ४ गूगथ रित्र प्रकणथ चित्र, वरापरम विथ आति।
- ५ रसिकप्रिया १६।१
- ६ रसिकप्रिया ३।७८

हैं अगन हानरस यति भग यथ अपाय हानत्रम कणकटु पुनरुक्ति, देगविरोध कायविरोध वायविराध तथा आगमविरोध ।<sup>१</sup> दोष प्रकरण का भी रीतिकाल में पर्याप्त विराम हुआ । कविव न मम्मवत दाप मम्मघी सामग्रा क त्रिण आचार्य दण्डी और कविव मित्र म सहायता नो है ।<sup>२</sup> दूमरी परम्परा मम्मट विश्वनाथ आदि की भी थी । परवर्ती आचार्यों न यद्यपि दानो ही परम्पराआ स सामग्री मचयन किया है फिर प्रमुखता त्मगी परम्परा की रही है । कविव न रसदोषा का क्रिया न किमी रूप म परवर्ती आचार्यों म न कुछ न ग्रहण किया ।

कुमारमणि गान्धी न दाप प्रकरण म कविव न कुछ उदाहरण प्रस्तुत किए हैं ।<sup>३</sup> हमम गत ज्ञाना है कविव का अ यदन म दृष्टि म किया जाता था । जगतमिह न का य दापा का विस्तार मवम अधिक किया है । २ होन सो दोषा का उल्लख किया है—

ये गत दोष मुख्य हैं, इन्हीं क अ तभूत मे जीर दोष जानिबो ।

अ गानोक और मम्मट का आघार इत आचार्य न ग्रन्थ किया है । पर इहान कविव तारा निरूपित दोषो का भी उल्लख किया है । अय यधिर नगन प्रत्यनीक गीरम विरु दुमधान पागादु न विरथ ( यथ) दगविरोध माय—आगमविराध ता कविप्रिया और रमिकप्रिया म गहात है । आचार्य भिव्वारीदाम न भी हम प्रकरण का पया न विकास किया है । यह ता नहा कहा जा सकना कि हम विस्तार म दाम न कविव का प्रान ग्रहण किया है पर कुछ दाप समान अवश्य हैं । दाम और कविव कणकटु दोष क त्रिण का भाव समान ही है—

कविव—दहत न नीको लागई सो कहिये कटकण । कविप्रिया

दास— दानन को जो कट लम दास सो श्रतिकट सटि । शायनिणय

पर हम प्रकार की समानताआ स कुछ निश्चि न निष्कप निकानता कटिन है । अतन यगी कया जा सकता है कि प्रमुख परवर्ती आचार्यों न मम्मट या चणालाक का ही मरारा लिया है । कुछ जगतमिह जस आचार्यों न अपन विस्तार म कविव म भी श्रण लिया है ।

### कविगिणा मामायालवार

कविव न वष्य विषया तथा उनको भूपित करने वान उपकरणो को अलवार नाम हा लिया है । प्रथम मामाय अलवार नाम म अमिहित है । वस्तुत का य म वर्णित गान वान कुछ मामा य विषय है जिनका पान अश्यामार्थी कवियो या बाल-कवियो का आवयक हाता है । कविव का य प्रकरण कविगिणा क अ तगत आता है ।

१ क वप्रिया ३११/ १७

२ । सुगना—नद—दिना म इ व पर मगहन मा दव्य का प्रभाव

३ र मक मय कण्ड उल्लान

४ म । र मक मय कण्ड उल्लान म—इत प्रकरण का आधर न गालाक है ।

५ क । मक मय कण्ड उल्लान म—इत प्रकरण का आधर न गालाक है ।

कविप्रिया का उद्देश्य हा कविगिशा है। काव्य शास्त्र या अलंकार मात्र नहीं। यही कशव क आचायत्व का वशिष्ठ्य है।<sup>१</sup> परवर्ती रीतिकानीन आचार्यों ने सामान्यालंकार को बहुधा स्वीकार नहीं किया। पर दो एक आचाय ऐस अवश्य हैं जिहोन कविगिशा सभ्य धी सामग्री से सबधिन सामान्यालंकार को माना है।

पद्मनदास न अपनी काव्यमञ्जरी क चौथे अध्याय का नाम वणकरत्न सामान्यालंकारवणन रखा है। यह गान्द निश्चित ही कशव की कविप्रिया स लिया गया है कशकि इस प्रकरण म वर्णित सामग्री का संस्कृत म किसी ने अलंकार नाम नहीं दिया। पाचवा अध्याय वणकरत्न नाम स दिया गया है। उसकी सामग्री की प्रेरणा भी कशव क गणना अलंकार म मिली है। कविप्रिया क गणना अलंकार क अतमत कशव न १ से १ तक की संख्या सूचक पदार्थों की सूचिया दी है। पद्मनदास न एक स सोलह तक सरशाषा तथा दूर संख्याओं वाल पदार्थों की सूची प्रस्तुत की है। सातवें अध्याय म कशव की कविप्रिया के छठ प्रभाव (वण्य वणन) की सामग्री है। इस प्रकार सामग्री का निरूपण प्राय कविप्रिया क आधार पर ही किया गया है। केवल क पश्चात कविगिशा क क्षेत्र म पद्मनदास का ही प्रयाम है।<sup>२</sup>

नीचे इन दोनों आचार्यों की इस सामग्री की तुलनात्मक सूची प्रस्तुत है—

केवल	पद्मनदास <sup>३</sup> काव्य श्री भवण
राजा	राजा
रानी	रानी
राजसुत	
पुराहित	
दलपति	
दूत	
मन्त्री	
मन्त्र	
प्रदाण	प्रदाण
हृय	घोटव
गज	गज
सप्राप्त	सप्राप्त
आघेट	आघेट

१ हा भाष्यप्रकाश हिन्दी साहित्य का वृहत् संशोधन १९७७ भाग ५ ४४३

२ इन ग्रन्थ का प्रमुख विरचयता द कविगिशा का सर्वप्रकार निरूपण। हिन्दी आचार्यों में सबप्रधान यह प्रयाम केशव न किया था। इन गिशा न दूसरा प्रय म सम्भवत नन्हा का है। केशव के अनुग इन मन्त्र में केशव निम्न भवतः प्राप्ति संस्तुताचार्यों का आशय था। इधर पद्मनदास न समस्त केशव को कविप्रिया से भा मशायत सी है।—हिन्दी साहित्य का वृहत् संशोधन १९७७ भाग ५ ३२७

३ बाब्यारत्नी चतुर्थ अध्याय के आधार पर

केगव	पदुमनदास राज्य श्री भूषण
जलकति	जनकति <sup>१</sup>
विरह	
स्वयवर	स्वयवर <sup>२</sup>
मुरत	सभोग <sup>३</sup>

इस सूची का विस्तार पदुमनदास न कम किया है। उतन सामान्याकार की जो सूची रखी है उसका कई प्रकरण कगव की अथ सूचियों में है। नीचे भूमि श्री वणन की सूची का तुलनात्मक रूप प्रस्तुत है—

केगव	पदुमनदास
दग	ग
नगर	नगर <sup>४</sup>
वन	
बाग	उद्यान <sup>५</sup>
गिरि	गिरि
आश्रम	
सरिता	नदी
रवि	सूर्योदय <sup>६</sup>
गणि	चंद्रोदय <sup>७</sup>
सागर	सिंधु <sup>८</sup>
पटश्रुतु	पटश्रुतु <sup>९</sup>

इस सूची में कगव का प्रमाण अधिक भूत रहा है। केवल वन और आश्रम को पदुमनदास न छोड़ दिया है। कविप्रिया व छठ प्रभाव में केगव ने वर्णालकार का निरूपण किया है।<sup>१०</sup> पदुमनदास न इस सामग्री को भी अविकारित ग्रहण किया है। नीचे की तालिका देखिए—

केगव	पदुमनदास <sup>१</sup>
सम्पूर्ण	
भावन	
कुम्भिल	कुम्भिल
त्रिकाण	त्रिकाण
सुवृत्त	

१ २ ३ इनका उल्लेख वक्त अन्य बरगरेन नामक पाचवें अध्याय में हुआ है।

४ ५ इनका काव्यनिराकार न सामान्याकार नामक चौथे अध्याय में ही किया है।

६ इसका उल्लेख काव्यनिराकार के पंचम अध्याय में है।

७-८ इनका काव्यनिराकार कानुध अध्याय में प्रस्तुत किया गया है।

९ १० कविप्रिया व। ६

११ इन कानुधों का विवरण काव्यनिराकार के सातवें अध्याय में किया गया है।

केगव	पदुमनदास
तीक्ष्ण	
गुरु	
कीमल	कीमल
कठोर	कठोर
निश्चल	निश्चल
चंचल	चंचल
मुखद	मुखद
दुःख	दुःख
मदगति	मदगति
गीतल	गीतल
तप्त	तप्त
मुरूप	सुंदर
क्रूरस्वर	
मुस्वर	
मधुर	मधुर
अवल	
बलिष्ठ	
सत्य	माच
भूठ	भूठ
मडल	मडल
जाति	
सत्यागति	सत्यागति
दानी	

वर्णन में समानता भी मिलती है और वषट् भी । उदाहरण के लिए बगव का सग्राम वर्णन देखिए—

सना, स्वन, सनाह रज साहस गस्त्रप्रहार ।  
 अग भग सघट्ट भट अघक बघ अपार ॥२६॥  
 बगव वरणहु युद्ध में योगिनी गणयुत रत्न ।  
 भूमि भवानक दधिरमय सरवर सरित समुत् ॥३०॥

पदुमनदास न जा सूची दी है वह हमम विस्तृत है । इनके वस्तुतः उसमें बगव से साम्य रखती हैं । पदुमनदास की सूची यह है—

युद्ध धम धल दरनिधे बधा तोष अघात ।  
 पूरि धूप गीतल नदी सर मडप निघात ॥  
 भग पताका चमर रथ, करि कर धनुष बिष्टि ।  
 सूरि नारि सूरट वर सुर मुमनस की बिष्टि ॥

भूमि भयानक भूतमय योगिनिगण को गान ।

काय कक जबुक सिवा लोयनि मे लपटात ॥

इस सूचा का कुछ चीजा का साम्य कविवर की सूची से है । चवर पताका आदि का वणन कविवर ने संग्राम के उत्साहरण में किया है—

चवर पताका बग्गी बडवा जनल सम ।

रोगरिपु जामवत कविवर विचारया है ॥

इस प्रकार कविवर की कविता का की परम्परा में पदुमन्याम आत है । हो सका है कविप्रिया की गली पर अथवा यथा की रचना भी इस युग में हुई है और वे सभी कही मगहानया में छुप पड है । पर इस दिशा में कविवर का प्रदान का स्पष्ट चिह्न अवश्य मिलता है ।

### काय-सम्बन्धी विचार

ऊपर के विवेचन में कविवर के प्रदान की मात्रा धारा स्पष्ट हो जाती है । कविवर की कल्पना में जो काव्यस्वरूप था वह पूर्ण प्रतीत होता है । रामचन्द्रिका और वीर मिहृदेवचरित्र में कविवर ने काय के आवश्यक तत्व यथावत हैं कोमलता सुन्दर छन्द अलंकार तथा मनमोहकता । मनमोहकता रस की ओर सबत करता है । वरमिहृदेवचरित्र में भी उद्दान रस का महत्त्वपूर्ण स्थान काव्य में माना है ।<sup>१</sup> इसका बिना कविताओं का मन कविता में नहीं रमता ।<sup>२</sup> इस स्वरूप के साथ कविवर ने दोष त्याग की बात बने बने से कही है ।

राजत रच न दोषयुत कविता यतिता मित्र ।

इस प्रकार कविवर ने अन्वय का ग्रहण और दोष त्याग पर विशेष बल दिया है । प्रायः सभी परवर्ती आचार्यों ने रस का काय का अनिवाय अंग माना है । इसका सम्बन्ध में उद्धरण देना पिट्ट-पण्ये ही होगा । अनेक आचार्यों ने अलंकार की अनिवायता भी स्वाकार की है यह बात अलंकार वाच्य प्रकरण में ऊपर देखी जा चुकी है । कविवर की भांति दोष त्याग की बात भी कई परवर्ती आचार्यों ने बलपूर्वक कही है । चिन्तामणि ने गुण अन्वयकार साहित्य और दोष साहित्य की भायता को स्वीकार किया है ।<sup>३</sup> सोम

१ क मन् शम्भु निवन्त मुवत्त । अलंकारनय माह्वन चित्त ।

काय सुपदनि सामा गन् । अनर कादुपारा कवि कह ॥

रामचन्द्रिका प्र ३१ दृष्ट २। तथा वीरमिहृदेवचरित्र, पृ १३४

२ का विन दोष न साम्भय लाचन लाल विमाल ।

त्य ही कशर मकल कवि विनु वणाने मसान ॥ कविप्रिया १।१३

३ काय रचि सु व सावि पाय क न मय्य क वत्त ।

कविवर स्थान मुदान का मुनन हाय वम वित्त ॥ वही १।१४

४ कविप्रिया ३।१

५ मन्वयकार महान् काय रचित जो डाड ।

काय सुपदनि सामा गन् कविप्रिया विदुष सुव को ॥ कविप्रियाकव्यनर १।७

नाथ न कशव क अलकार पिगल और दोपराहित्य की श्रयो वा ध्यान म रखकर काव्य स्वरूप की स्थापना की है ।<sup>१</sup> इस प्रकार सोमनाथ की परिभाषा कविवर अधिक समाप है । भिव्वारीदास न निरूता है कि वा यपुष्प के गरीर को दोप कुट्टप बना दत हैं ।<sup>२</sup> प्रतापमाहि ने भी दाप साहित्य की चर्चा की है ।<sup>३</sup> उन आचार्यों न सभवत मम्मट क अदोषा वा अनुकरण करत हुए दोप क सम्प्र ध म सामाय कथन कर दिया है । पर कविवर न दोप क साहित्य पर जितना बल दिया है उतना इनक कथना म नही—

बदक हाला परत ज्यो गया जल अपवित्र ।

पर कुछ ऐसे भी कविवर क परवर्ती आचार्य हुए जिहान वसी बल क साथ दाप वा विरोध किया । पदुमनदास स अपनी काव्यमजरी म कुठ क छीटा क समान दापों को बतलाकर दोपराहित्य क बल को यक्त किया है—

ते दूषण लघु जीन गनि देहु कवित्त निवास ।

ऐस सुदर देह मे कुठ छोट त नासु ॥<sup>४</sup>

जगतसिंह ने दाप का निरूपण करत हुए क्ता है कि इसस गान और श्रय की सुदरता नष्ट हा जाती है । इसम भी मून भाव कविवर और पदुमननाम जसा ही है ।

ग द अथ सुदरता जो हरि लत ।

ताहि दोष करि जानी सुकवि सचेत ॥

अम प्रकार कशव की वा य स्वरूप सम्बन्धी मायताआ की परम्परा आग भी चली । महा प्ररणा और परम्परा सम्बन्धी प्रदान स्पष्ट है ।

१ सुमुन पत्तारथ दाप विनु पिगल मन अविन्द ।

भूपन तुन कविकम जा सा कवित्त कडि मुद । रमधीदूषनिधि ७३२

२ रम कवता को अग भूषण है भूषण सक्ष ।

गुन मरूप भी रग दूषण कर कुरूपता ॥ कान्यदिलय १११३

३ काव्य वचाम १।५-८

४ साहित्यमुषानिधि, दसवीं पत्र



## नमः प्रकाश

### उपसंहार

विगत प्रकाशो मः हम अपनी याजना के अनुसार ऋग्वेद के आचार्यत्व की सीमा में आन वाल विविध विषया तथा काव्याधी का अध्ययन कर चुके हैं। प्रस्तुत अन्तिम प्रकाश में दो बातों का विवेचन करते हुए इस प्रबंध के अध्ययन को समाप्त करना है। ये दो बातें हैं

१—काव्याशास्त्रीय सम्प्रदायों के साथ ऋग्वेद के सम्बन्ध का निरूपण।

२—ऋग्वेद के आचार्यत्व का मूल्यांकन।

इस प्रकार हम इस प्रकाश में संहृत का शास्त्र के विविध सम्प्रदायों के साथ ऋग्वेद के सम्बन्ध का निरूपण करते हुए तथा उनमें परिवर्तों आचार्यों पर उनके प्रभाव का ध्यान में रखते हुए उनका काव्य का मूल्यांकन करना चाहते हैं। इस काव्य में हम अनेक के विषय अपने अध्ययन को ही आधार बना सकते हैं।

अब हम इसी योजना के अनुसार उपयुक्त दोनों विषयों की ओर श्रम विचार करेंगे।

### काव्याशास्त्रीय सम्प्रदाय एवं केशव

#### सम्बन्ध जिनासा

आचार्य ऋग्वेद एक युग सन्धि के आचार्य हैं। संहृत काव्याशास्त्र का युग एक प्रकार में समाप्त प्रायः था। संहृत काव्याशास्त्र की परम्परा में अन्तिम महान आचार्य पण्डितराज जगन्नाथ माने जाते हैं जिनका समय ऋग्वेद के कुछ ही वर्षों बाद है। यों संहृत काव्याशास्त्र की परम्परा में आन तक भी कुछ न कुछ जुड़ता चला जा रहा है तथापि ऋग्वेद से पूर्व उनका महत्तम परिनिष्पन्न हो चुका था। और इस धर्म में ही हम कह सकते हैं कि संहृत काव्याशास्त्र का युग पूरा था। दूसरी ओर शिवा के काव्याशास्त्र का युग जन्म में रहा था। ऋग्वेद से पूर्व के हिन्दी आचार्यों के उल्लेख नाम के हैं—शम मुनिमान कृपाराम मोहनलाल मिश्र गोप बरनग रत्न बनम मिश्र। ये नाम बताते हैं कि शिवा अथवा काव्याशास्त्र निमाण बन के दिग्गज कुछ जग चुके थे पर उनका काव्याशास्त्र का रूप अत्यन्त मामाद्य आदि एवं प्रारम्भिक था। ऋग्वेद का उल्लेख ही काव्याशास्त्रीय युग-सन्धि में हुआ।

शिवा के उक्त युग के काव्याशास्त्र निमाण के लिए जो भा आधार सामग्री थी वह सब संहृत में था। उक्त समय तक संहृत काव्याशास्त्र का निमाण और प्रतिष्ठा

वाय समाप्त ही नहीं हो चुका था वह बाल की खाल खींचन बाल पाण्डित्य के हाथा सन कर सामान्य जिज्ञासु के लिए दुम्ह और सवमामाय के लिए अनुपयोगी हाता चला जा रहा था। एसी अवस्था में युगीन साहित्य की आवश्यकता के अनुसंधान के लिए वायागो के ऊपर सरन और परिचयात्मक छोटे छोटे ग्रंथ बनन लग थ। इन वायागो में शृगाररस तत्तगत नायिकाभेद एवं प्रलकारा के ग्रंथ ही उत्तमखनीय रूप में उभर। १४वीं शती से १७वीं शती तक बनन बान ग्रंथों में एम ही ग्रंथों की सख्या प्रमुख है।

इस प्रकार केवल के समय तक संस्कृत वायशास्त्र के विविध सम्प्रदाय अपनी विविध उपलब्धियों और विकसित-परिवर्तित मायताओं के माथ बन चुके थ। केवल न अपने आचायत्व-सम्बन्धी ग्रंथों के निमाण में इस समूची सामग्री का उपयोग में लिया।

यहां एक जिज्ञासा उठना स्वाभाविक है। केवल न संस्कृत के किस वायशास्त्रीय सम्प्रदाय की उपलब्धियों को किस मात्रा में किस रूप में और किस प्रकार अपनाया के किस सम्प्रदाय से कितन प्रभावित हैं किसमें कितना नन हैं कितना उनकी मायताओं में परिवर्तन करते हैं कितना उन भाग बनाते हैं? संस्कृत वायशास्त्र के विविध सम्प्रदायों के साथ केवल के एम सम्बन्ध का निरूपण करना हा प्रस्तुत प्रकार में हमारा लक्ष्य है।

### संस्कृत के वायशास्त्रीय सम्प्रदाय

संस्कृत के वायशास्त्रीय सिद्धांतों का ध्यान में रखकर वायशास्त्र के ऐतिहासिक ग्रंथ प्रमुखतया ५ सम्प्रदायों की चर्चा करते हैं। ये सम्प्रदाय हैं—रम अन्वकार शीति ध्वनि एवं वक्रात्ति। यह श्रम यहां इन सम्प्रदायों की प्रतिष्ठा के वातक्रम को ध्यान में रख कर है।

उनमें वक्रात्ति वस्तुतः एक सम्प्रदाय नहीं, क्योंकि किसी सिद्धांत का 'सम्प्रदाय' कह सकन के लिए उसमें कुछ न कुछ अनुयायी चाहिए। किन्तु वक्रात्ति वाद का यह दुनाय्य रहा कि उसमें अनुयायी आचार्यों की कोई परम्परा नहीं चल सकी। श्रम कारण उस सम्प्रदाय नहीं कहा जा सकता। फिर भी श्रमके प्रतिष्ठापक आचाय कुतल का विवचन के उपलक्षण स्वयं अपना में श्रमना महत्वपूर्ण है कि अपना महत्ता के वन पर वह श्रम सम्प्रदाय प्रतिष्ठापक आचार्यों की वाटि में ही वक्रात्ति वाद का रमवाकर उस एक सम्प्रदाय के रूप में गिनन के लिए आलोचना का वाध्य करता है। हम भी श्रमो अनुरोध के कारण दहा वक्रात्ति को एक सम्प्रदाय के रूप में परिगणित कर रहे हैं।

यहां हम उपयुक्त श्रम से ही प्रत्येक सम्प्रदाय के माथ केवल के सम्बन्ध का चर्चा करेंगे।

### रम सम्प्रदाय एवं केवल

रम-सम्प्रदाय का ऐतिहासिक आचाय भरत के नाट्यशास्त्र से प्रारम्भ होता है।

यद्यपि नाट्यशास्त्र में ही रस विषय में एकाधिक प्राचीन आचार्यों की मायताएँ उल्लेखित हैं तथापि किसी अन्य पूर्ववर्ती ग्रन्थ की उपलब्धि में हानि के कारण भरत का ही आदिम आचार्य माना जाता है। भरत ने रस पर नाट्य की अपेक्षा में विचार किया है। उस युग में रस को नाट्य रस के रूप में ही देखा जाता था।

काव्य के मद्देन में रस पर विचार भाग्य और दण्ड से प्राग्भूत हुआ है। यह युग काव्याचार्यों की दृष्टि से अनकारवाद का युग था अतः इसमें रस का भी सम्यक् अनकार के रूप में देखा जाता रहा और उस काव्य की आत्मा का स्थान नहीं मिल सकता।

शाब्दिकी गती के मध्य ध्वनि सिद्धांत की प्रतिष्ठान काव्यालोचन के मान्यता में भारी परिवर्तन प्रारम्भ किया। इस सिद्धांत का जड़ पक्कत पक्कत दो मी वष युग का है। इस बीच में नाट्यशास्त्र के विविध टीकाकारों द्वारा रस के स्वरूप पर विचार मान रहे और अतः अभिनवगुप्त द्वारा उस का यथार्थिक की आत्मानुभूति के रूप में निर्धारित किया गया। ध्वनिवाद की दृष्टि से रस काव्य का सर्वोत्कृष्ट तत्त्व है। अभिनव में रसवाद और ध्वनिवाद दोनों का दृष्टि से एकाकार हो गए।

ध्वनिवाद की दृष्टि से काव्य की आत्मा ध्वनि है। अतः रस सम्यक् ही हो सकता है। काव्य के यथार्थ का विविध स्थितियों के आधार पर तीन भेद माने हैं— उत्तम मध्यम अधम। उत्तम काव्य में यथार्थ काव्य तथा यथार्थ आत्मा सभी अर्थों में प्रधानीभूत हो कर आता है। यह प्रधानीभूत यथार्थ तीन प्रकार का होता है—वस्तु ध्वनि अनकार ध्वनि एक रस ध्वनि। अतः वस्तु अनकार और रस ताना ही रूप का यथार्थ समानतया उत्तम काव्य की कोटि में आता है ज्ञातकि ये सब में भी रस उत्तम अधिक हृद्यमयी है।

अभिनव ने ध्वनिवाद की इस दृष्टि में एक परिवर्तन ज्ञान का प्रयान किया। उन्होंने ध्वनिवाद की समस्त उपलब्धियों का स्वाकार करके हुए भी अपनी आख्यायिका द्वारा यह सिद्ध किया कि यस्तु ध्वनि और अनकार ध्वनि के स्थानों में भी अतिम आ वाद्य रस ध्वनि ही होती है। अतः रस ही का वास्तव तत्त्व है। अभिनव के अनंतर ध्वनिवाद का परम्परा में रस की यही महत्त्वपूर्ण स्थिति अगुण्य रही है और एक प्रकार में रस और ध्वनि का प्रान्त मित्रा हुआ चला है।

ध्वनि प्रकृत का युग में और उत्तम पहलू से अनकारवाद के युग में भी रस का स्थान एक क्षण न्यूनतम है। अनकारवादी आचार्य रस को श्लेषार्यों के नातर समझते तो रस शिष्टु काव्य में उत्तम मत्ता और उपायता पर रक्षा के बने ना देते रहे। भाग्य दण्ड तथा अन्य अनकारवादी आचार्यों में यह क्षण स्पष्ट रूप में निवृत्त है। ध्वनि सिद्धांत का उद्भावना के अनंतर अनकार आचार्य ध्वनिवाद के विरोध में खड़े हुए। अन्ततः ध्वनि ध्वनि ध्वनि और गुणन के नाम से ही रस का उद्भावना है। शिष्टु में काव्य ध्वनि राधा हो रहा है। रस का नाथ यथार्थ नाना समझने करने रहे और उत्तम महत्त्व का प्रतिष्ठा करते रहे। वस्तुतः रस ध्वनिवादी नहीं।

किसी एक रस को ही महत्त्व देकर अग्रे को उसका ही प्रोदभामन कहने वाला भी समय समय पर होत रहे। भवभूति ने करण को ही अग्रे रस कहा। स्वयं अभिनव गुप्त न गात को अग्रे होने का शय दिया या शृंगार की व्यापकता को भी उद्दाने स्वाकार किया है। भोज ने शृंगार को ही एक रस प्रतिपादित किया।

इधर कृष्ण भक्ति व क्षत्र म मधुर का महत्त्व बढ़ता गया। उसकी महत्ता म दा निक और का शास्त्रीय समयन भी दूढ गये और अत म गोस्वामी आचार्यों गारा कायशास्त्रीय मानदण्डो का उपयोग करत हुए व्यापक भूमि पर भक्तिरम की प्रतिष्ठा की जिमम सर्वोच्च स्थान मधुररस को मिला जो शृंगार का ही भक्ति क्षत्रीय रूप था।

प्राकृत और अपभ्रंश व बीच स चली आती हुई परम्परा म शृंगार का महत्त्व बढ़ता आ रहा था नायिकाभेद साहित्य और साहित्य शास्त्र दोनो ही क्षत्री म पनप रहा था। भक्ति क्षत्रीय रमिकता न लौकिक क्षत्र में उस पूणत पनपन का और ततिक साहम प्रदान किया और अनेक ग्रंथ शृंगार और नायिकाभेद पर लिख गए। उस परिविकसित नायिका भेद का गौडीय आचार्यों न अपन मधुररम व भीतर पूरतौर पर समटन का उदयन किया।

तो कंगव व समय तक रम-मम्प्रदाय की यह स्थिति हो चुकी थी। एक और कुछ आचार्य ध्वनिदान की परम्परा म रम को रस वनि कहत हुए वस्तु वनि और अलवार ध्वनि क समबक्ष रखत रह और काय की आत्मा रस को नहीं ध्वनि को कहते थ। दूमरी और अभिनव की परम्परा म रस को ही काव्यात्मा कहन वाले आचार्य थ। उनकी दृष्टि म अय ध्वनिया वमतिए आकषक थी कि पायतिक रूप म उनम रस का सम्बध था। तीनरो और अलवारवाद व पुरान तत्त्व पुन मिर उग रह थ और अलवार की महता को काय म पुन प्रतिष्ठा देना चाहत थ। य रम का उम प्रकार तो नगण्य बना नही सकत थ निम प्रकार अलवारवाद व प्रथम चरण म वह रह चुका था। फिर भी सरन काव्य का अनिवायत सालकार दयन की हिमायत व करत थ। यदि दानों म स एक छाटना हा तो भन ही रस छूट जाए पर अनवार नहीं। चौथी और रमवाद की परम्परा म ही अय रमा का छोट कवल एक शृंगार व रमराजत्व की स्वीकृति वाल आचार्य भी थ। शृंगार को महत्ता देन व रूप म ही नायिकाभेद का एक सामान्य धम अनावयक रूप स बन गया था। यहा शृंगार भक्ति व क्षत्र म उठ कर और भी व्यापक हो गया था और शास्त्रीय विदचन का विषय बन गया था। रम-मम्प्रदाय व य विकास और विविध रम कंगव व मिनत गुन गृधठ व रूप म थ।

हम कंगव व रम विदचन का अध्ययन कर चुक हैं। उम अध्ययन न आधार पर हम रम मम्प्रदाय और कंगव व सम्बध को यहा सगलना न निम्नित कर सकन है।

कंगव की रम दृष्टि कइ और व प्रभावों न प्रभावित है भरत परम्परा की उपनिषदा अभिनव का प्रतिभक्तिवाद शृंगार एव नायिकाभेद की और अग्रर

ज्ञान वाली रचिया और गोस्वामी आचार्यों की उपनिधियों के साथ साथ प्राचीन अलंकारवादी आचार्यों के दृष्टिकोण—य सब प्रभाव उनमें मिश्रित और समन्वित रूप में सामन प्राप्त है ।

काव्य में रस की महत्ता और उपादयना बंगव का पूणत स्वाकृत है

ज्यों बिनु डीठि न गोभिज लोचन लोल बिसाल ।

त्यो ही केव सकल कवि समनु बानी न रसाल ॥<sup>१</sup>

हम रस के विषय में उनका दो दृष्टिकोण है एक तो कृष्ण विषयक शृंगार के विषय में दूसरे सामान्य का यरसो के विषय में ।

जहां तक कृष्ण शृंगार का सम्बन्ध है वह मधुरवादियों के समान उस एक रमराज कहते हैं उस ही एकमात्र अंगी रस मानते हैं और अन्य समस्त रसों को उसके अंग रूप में प्रतिपादित करते हैं । रसिकप्रिया वही प्रयास का प्रतिफलन है और उस दृष्टि से लिख गये सरम काव्य का उद्देश्य भी मूलतः कृष्णाराधन है

साते रुचि सों मोचि पचि कीज सरस बचित्त ।

केव स्याम मुजान कौ मुनत होव वम चित्त ॥<sup>२</sup>

यह हरि शृंगार ही एकमात्र रस है कृष्णतर लौकिक विषयों में सम्बद्ध रस रसवदनकार है जिसका विवरण निरूपण कविप्रिया का विषय है । भक्ति शृंगार के रूप में प्रस्तुत रमराज शृंगार में नायिकाभेद अपनी पूण विस्तृति के साथ समाहित है ।

काव्य रमा के रूप में बंगव का शृंगार के साथ अथवा रमों की स्वतंत्र महत्ता स्वीकृत है । वही रमा को मायता देते हैं । किन्तु रस का यरसो का अलंकार वाली प्राचीन आचार्यों के समान ही रस न कहकर रसवदनकार कहते हैं ।

रस-सामग्री के विषय में वह वही विभी प्राचीन मायता का पकड़ते हैं वही किन्ना विरहित और नवीन मायता का । अतः स्थला पर अपने प्रतिपाद की आवश्यकता अपने निजी दृष्टिकोण और वहां वही किसी आचार्य के प्रभाव से परम्परागत मायताओं में हर पर भी स्वीकृत करते हैं । अतः बंगव एक रस सम्प्रदायी नगरे जान । उनका मायताओं में अध्ययन की आवश्यकता और निजीपन है । परम्परा भुक्तता के पूणत न ज्ञान के कारण वे अनुगम्य नहीं बन सके । फिर भी रसिकप्रिया के कवियों के वचन पर एक कवि के नाम और आचायत्व के उल पर एक आचार्य के नाम रगवाले और रस सम्प्रदाय में उनका महत्ता रगाव है । वे उनका एक अरने रस का विकसित बढे हैं ।

काव्य रमों के रूप में रमा का रसवदनकार कृत हुए बंगव सभी रमों की स्वतंत्र महत्ता स्वीकार करते हैं हम यह दम घुंते हैं । किन्तु हमने दाप निरूपण के प्रयोग में यह भा दिया है कि बंगव रस का काव्य की आत्मा मान कर नहीं चलते

<sup>१</sup> रसिकप्रिया १।१३

बही १।१४

त्रिगुण प्रथ को ही कायात्मा मानते हैं। रम की कमी पर उनका अनुभार नग्न होता है पर प्रथ की कमी पर मृतक। यह दृष्टिकोण उह पूण रसवादा या पूण ध्वनिवादी नहीं रहने दना और अलकारवादियों क निकट ला दता है।

### अलकार सम्प्रदाय और केशव

अलकार सम्प्रदाय क सम्बन्ध म कुठ चर्चाए प्रासंगिक रूप स हम अभी कर चुके हैं। हम अलकारवाद को काल क युग तक तीन मोटे भाग म बांट सकते हैं। एक ध्वनिवाद की स्थापना स पूर्व का प्राचीन अलकारवाद का युग दूसरा ध्वनिवाद की दृष्टि म अलकारवाद का युग तीसरा अलकारवाद क पुनरुद्धार का युग। पहला युग चौथी गती मे नवम गती तक चलता है जिसम मध्यावी भामह दण्डी, उभयतः वामन आदि आचार्य आते हैं। दूसरा युग नवम गती स ध्वनिवाद की परम्परा क साथ रहता है। तीसरा १४वीं गती म पुनर्जाग्रत हा कर काल के समय तक आता है और हिंदी क रीतिकाल की एक पर्याप्त दूरी तक अनुशासित करता है।

अलकारवाद क इस पिछले पुनरुद्धार युग क दृष्टिकोण बहुत-सा बातों म अपने प्राचीन युगीन आचार्यों क मूल म होत हुए भी पूणत उसी रूप म नहीं है। कारण स्पष्ट है। प्राचीनकाल के आचार्य काव्य सिद्धांतों की मूल चेतनाआम स अलकार की स्पष्ट पररेखाओं स अवरिचित थ। पर व समय क खोजी थे और जा कुछ कह रहे थ वह उनकी ईमानदारी थी पूर्वाग्रह नहीं था। किन्तु इस नवीन पुनरुद्धार काल क अलकारवादी आचार्यों क विषय म यह बात ज्या की र्यों नहीं कही जा सकती। उनका सामन रस सम्प्रदाय और ध्वनि सम्प्रदाय की समस्त उपलब्धियां स्पष्ट फली हुई रहीं थीं। अतः अब व इन की मूल चेतनाआम और गान्धर्व सिद्धांतों क विशुद्ध होकर जिस बात को कह रहे थ वह पूर्वाग्रह-ग्रस्त थी उनम पाणिन्य प्राचिन की तलक अधिक थी सिद्धांत मूल्य की खोज कम।

किन्तु इस युग क अलकारवादियां न अलकारों क क्षम म उत्तरेखनीय काय प्रस्तुत किए हैं। अलकारों की दारीकी म छान-बान करते हुए उनका नय-नय रूप और नामों का निमाण इस युग म हुआ और अलकार क्षम को स्थापकता मिली। अलकारों का प्रतीकात्मक द्वारा उनका गान्धर्व सगण और रूप विवेचन हुए। इस प्रयास की क्षम प्रतिष्ठा हम पठितराज जगन्नाथ क अलकार निरूपण म मिलती है। पण्डित-राज जगन्नाथ का काम एक प्रकार म गान्धर्व बन लकर वागी हुए अलकारवाद की किन्तु एक शर ध्वनि क शंभ म बिगा देने का था। किन्तु उनका अलकार निरूपण अपने पूर्ववर्ती स क्षम को चिन्तनाओं और उपलब्धियों का अछान-बाना इतिहास प्रस्तुत करता है।

अलकारवाद क इस विकसित इतिहास म अलकारों क विषय म अलकार दृष्टि काण बन गया। एक एक अलकार क विषय म आदि स लकर बनमान तक दृष्टि दीगन पर अलकार मत मामन दीगन लग। ध्वनिवादी आचार्यों का योग अलकार क विषय म दृष्टिकोण क कारण से ही महत्व का रहे गया, रूपविवेचन म व अधिक

प्रामाणिक प्रतीत नहीं होत। यह अभाव पण्डितराज क द्वारा पूण हुआ था। किंतु पण्डित कंगव क लिए तो यह काय बाद का था और नग नाथ परवर्ती हिंदी क सामान्य आचार्यों क लिए दुर्लभ। अतः सामान्य लोगों क लिए ता अन्तकारवाद क नवीन युग क आचार्य प्रायः अग्रम्य रह कंगव जस लोगा क लिए नवीन ही नहीं प्राचीन भी सामन रह।

कंगव के अन्तकार विवचन क अध्ययन क आधार पर हम यहा हम सम्प्रदाय म उनका सम्बन्ध स्थिर कर सकत हैं।

जहा तक अलकार सम्बन्धा दृष्टिकोण का प्रश्न है तीन प्रमुख बातें कंगव को प्राचीन अन्तकारवादी आचार्यों क निकट रखती ह। एक तो यह कि उ होन अन्तकार का अन्तः सापक अथ म निया है कि जिनका परिधि म अलकाय और अलकार दोनों गा जात हैं। नवीन अलकारवादी यह दृष्टि छोड चुक थ। दूसर यह कि उ होन हम को रसवत् अन्तकार क रूप म देखा है। यद्यपि हम दृष्टिकोण क कारण उनका एक काम और सध गया है। व अपने निरूपण म कृष्ण शृंगार को हम और का य रमो का रसवत् कटकर अलग कर सक हैं और गास्वामी आचार्यों क अनुसूच बात कह सक हैं। पर अलकारवाद की दृष्टि म यही कहा जाएगा कि कंगव न प्राचीन अलकारवादिओ क समान रस को भी एक अन्तकार क रूप म लखा है। तीसरी बात यह कि उनक अन्तकारा म अन्तक क लक्षण प्राचीन अलकारवादिओ क समान प्रायः दृष्टी क अनुसूच हैं।

फिर भी कंगव आग्रह पूर्वक या आलस मूढ कर प्राचीन अन्तकारवात् क अनुयायी नहीं रह। उन्होंने जहा ठीक समझा है वही उसका अनुमरण किया है। अथवा जहा तक सम्मत नगा है एक स अधिक मत भी सामन रख उनम म चुनाव भी किया है अन्तमत्त हान पर हर फेर भी किया है और वही नवीन और अपना निजी दृष्टिकोण भी प्रस्तुत किया है। अन्तक जगहो पर उ न नवीनतम समीक्षा पर दृष्टि ली है हमका भा पना हम बस जाता है। साथ ही कभी कभी उह उपयोगितावादी दृष्टि काण न भा प्रभावित किया है और मभा जगह उनक हर-फेर ग्राह्य और स्वीकार्य नहीं रह गत। पर यत् श्रुतग की बात है।

ता कंगव का सम्बन्ध अन्तकारवाद क पूर इतिहास स है। प्राचीन युग म अधिक लगाव हान नए भी उसका जागरूक परिग्रहण है। उसम हर फेर भी तक और उपमाग्नि का दृष्टि म किया गया है। कंगव का अनुमान रसवात् की अपेक्षा अन्तकारवात् का भार अधिक है क्योंकि रसवात् म उन्होंने एक मामित दृष्टि म काम किया है रसवात् उनक काम का अन्तः व्यापक क्षेत्र का काम नहीं कर सकता। पर अलकारवात् उन स्विकार करण कि कंगव न उम उमक व्यापक रूप म लखा है और उम अपना कुल अन्त का प्रयाम किया है। उनकी चीज अनुकूलणीय नहीं बना उसका कारण गिरफ्तार पण्डितका उल्लेख परम्परा म हटना तथा गानानता म गंगव का अधिक होना है।

## रति सम्प्रदाय और केशवदास

रति-सम्प्रदाय के प्रतिष्ठापक आचार्य वामन कह जाते हैं। उ होन रतिरात्मा कायम्य कहकर काय की आत्मा का रति क रूप म स्वीकार किया था। यह रति गुण विनिष्ट पदा की रचना थी। उ हान वदर्भी गोडी और पाचाली क रूप म तीन काय रतिया निर्धारित की और उनम दग द गुणा तथा दग अथ गुणा को सम्बद्ध किया।

रति सम्प्रदाय क आधारभूत तत्त्व इस प्रकार गुण और विनिष्ट पद-योजना था। य तत्त्व भामह और दण्डी म भी स्वीकृत थ। दण्डी ने तो गुणा और पद रचना क आधार पर माग क नाम स एन रति तत्त्वा पर विचार प्रस्तुत किए थ। एन तत्त्वा को एक समन्वित सूत्र म बाधकर कायारात्मा क रूप म प्रस्तुत कर एक सिद्धांत का स्वरूप वामन ने प्रदान किया।

रति सम्प्रदाय के अनुगामी आचार्य वामन क अनंतर हुए इस बात क प्रमाण परवर्ती ग्रंथा म रति वामनीया जम उल्लेखों क साथ मिलते हैं। वस इसी िगा म का र और महत्त्वपूर्ण ग्रंथ फिर नहीं लिखा गया जा ठीक अथ म सम्प्रदाय का प्रतिष्ठापन करता हो।

वस्तुन इसके एक सम्प्रदाय क रूप म अथि क आग न चन मवन का कारण इसका दुर्गमता न थी। वामन क आस पास ही आनन्दवदन द्वारा ध्वनि सम्प्रदाय की प्रतिष्ठापना हुई। आनन्दवदन न जटा अथ कायागी को रस की सापेक्षता म निरूपण करते हुए रस और ध्वनि का अर्थ बनाया वहा रति क तत्त्वा का भी विवचन कर गम और ध्वनि म समन्वित किया। उहान रति क आधार तत्त्व गुणों को तीन महया म निर्धारित कर रमा क गुणा क रूप म स्थिर किया और रतिया को पद सघटना क रूप म निरूपित कर काय गरीर की अर्थ सस्था क रूप म निर्धारित किया। यहा दृष्टिकोण मम्मट म गुम्हिर हाकर परवर्ती युग क लिए आनत होकर स्वीकरणाय बन गया। इस प्रकार अन गन वामन की उपनिषदा कुछ परिवर्तित हाकर और कुछ विकसित हाकर व्यापक ध्वनि सिद्धान्त म अन्तर्भूत हो गए। काव क समय तक यह सदा ही चुका था।

कावारा रति सम्प्रदाय क अनुगमन का ता इस प्रकार प्रान ही नहीं उठता पर रति सम्प्रदाय क आधारभूत तत्त्वा का ध्वनि सम्प्रदाय ारा स्वीकृत दृष्टि क अनुरूप ही य अर्थन अथा म निरूपण कर सकत थ। उहाय यह भी नहीं किया।

काव न कतिपय काव्य रीतियों का उत्तम कविप्रिया म किया है। किन्तु वहा रति ार रति सम्प्रदाय क प्रचलित अर्थ म नहीं है। वहा उहोंने इस दृष्टि का कवि-समय क अर्थ म प्रयुक्त किया है और एनक अन्तगत कतिपय कवि प्रमिद्धिया का ही परिचय कराया है।

काव न गुणों की खचा नहीं की जिम करना अपेक्षित था। यह बात भी नहीं कि उगका प्रसंग उनक सामन नहीं आया था। उहोंने रमिकप्रिया क १५ वें प्रभाव



म वृत्तियों का निरूपण किया है। इन वृत्तियों में गुणों का प्रसंग और सम्बन्ध निरूपित किया जा सकता था। बस सात्वती वृत्ति का निरूपण में सुनतहि समुक्त<sup>१</sup> भव जिहि सो सात्वती बखान<sup>२</sup> कहा है जिसके आधार पर प्रसाद गुण की ओर ध्यान न जाया जा सकता है। अथ किमी गुण के स्वरूप की आर सक्त भी नहीं किया गया।

हमने वृत्ति विवेचन के प्रसंग में देखा है कि काव्यशास्त्र के विकसित युग में रीतियाँ और वृत्तियाँ घुन मिल गई हैं। उन घुले मिल दृष्टिकोणों में एक दृष्टिकोण को कुछ अपनी दृष्टि से अपनाते हुए कविवर्य ने वृत्ति विवेचन किया है। कविवर्य की वृत्तियाँ रीति सम्प्रदाय की रीतियाँ नहीं हैं नामतः भरत प्रतिपादित नाट्य वृत्तियाँ हैं। किन्तु हमने यह भी देखा है कि इन नाट्य वृत्तियों का निरूपण शुद्ध नाट्य परक दृष्टि से नहीं हुआ है अपितु काव्य-वृत्तियों की दृष्टि से हुआ है जिनका ढंग कुछ-कुछ रीति निरूपण का सा है। इससे अधिक रीतियाँ के साथ कविवर्य का सम्बन्ध नहीं जोड़ा जा सकता।

रीतियाँ में वर्णों की प्रकृति के साथ विविध सम्बन्ध का उल्लेख रहा करता है। कविवर्य ने वर्णों के विवेचन को भी अपना विषय नहीं बनाया। कविवर्य की वृत्ति का निरूपण में मरन वरन सुभ भाव जह<sup>३</sup> कहते हुए मरन वर्णों की ओर सक्त किया गया है। अथ वृत्तियाँ में वर्ण सम्बन्ध भी नहीं दिखाया गया।

### ध्वनि-सम्प्रदाय और केशवदास

हम चर्चा कर चुके हैं कि ध्वनि सम्प्रदाय की स्थापना आनन्दवदन के नागरी गीतों में ध्वन्यानुक की रचना के रूप में हुई थी। ध्वनि सिद्धांत के प्रारम्भ में कविपय विरोध रहे किन्तु अभिनव के द्वारा उसका सबल समर्थन और मम्मट द्वारा उसकी सुप्रवस्थित रूपरक्षा प्रतिष्ठित कर दिए जाने पर यह सिद्धांत सुस्थिर हो गया। कविवर्य के समय तक यह सम्प्रदाय अपनी सर्वोच्च महत्ता एक सुप्रतिष्ठा प्राप्त कर चुका था। इस विरोध में अब कवन पुनरुद्धारण के प्रयत्नगीत अलंकारवाचियों का स्वर जब-कभी मने मुनाई पड़ जाता था।

ध्वनि-सम्प्रदाय की दृष्टि से हम देख चुके हैं कि काव्य की आत्मा ध्वनि है जो कवन रम ध्वनि नहीं है। उत्तम काव्य ध्वनि के तीन समकरी भेद हैं अलंकार ध्वनि वाचु ध्वनि और रम ध्वनि। अतः रम को सर्वोत्कृष्ट स्वीकार करते हुए भी मत्र में अलग स्थान नहीं दिया गया। रमवाणी उस उमक अनुसृत मत्रम उत्कृष्ट और मूक स्थान देने के प्रयत्नमा रहे। रम अंतर को छाड रमवाच और "वनिवाच" घुन मित कर एवाकार हा गए हैं।

कविवर्य ने ध्वनि-सम्प्रदाय के मूल विचारों में से भाषिणा अथ उपाय का विवेचन निरूपण नहीं किया। भाषा के निरूपण में उन्होंने अथ हीन वाच्य को मृत्क कृकर या अथ का का आत्मा स्वीकार किया है वह अथ अयम्याय हा है एमा स्पष्ट उल्लेख

१ रत्नकाले पदार्था प्रभव इत्येव

२ बहो इत्येव

कुछ नहीं है। पर इतना निश्चित है कि उनकी दृष्टि में यह 'प्रिय' उनका प्रिय अलंकारों और काव्य रसा से भी ऊपर का है। तभी वह काव्यात्मा है।

कविवर चित्र काव्य को काव्य भेद के रूप में स्वीकृति दी है। उन्होंने उसकी प्रशंसा नहीं की। इसमें तात्पर्य यह निकलता है कि वे उस प्रथम काव्य का काव्य मानते हैं। रसवादी चित्र काव्य को काव्य कहने के लिए सहजतयार नहीं होते जसा कि विश्वनाथ ने उसका काव्यत्व का तिरस्कार किया है। चित्र को या तो अलंकारवादी काव्य कह सकते हैं या ध्वनिवादी। कविवर द्वारा चित्र काव्य की स्वीकृति कुछ ध्वनिवाद के भी अनुरूप बड़ी जा सकती है।

कविवर का आचार्यत्व में यजना का निरूपण नहीं किन्तु उनका काव्योदाहरणों में यजना की भागी क्षमता पाई जाती है। उनके उदाहरणों में अधिकांश कवित्व की मात्रा उत्कृष्ट है और यह उत्कृष्टता प्रायः यजना पर आश्रित है। दण्डी के कवित्व में भी यजना की मात्रा पर्याप्त रूप से निहित है। किन्तु दण्डी की आचार्य चयना ध्वनि सिद्धांत की स्थापना में पूर्ववर्ती होने के कारण जागरूकतया यह नहीं जानता कि उसका काव्य में यजना निहित है। यह तो उनकी कवि प्रतिभा की सहज अभिव्यक्ति ही कही जा सकती है। किन्तु कविवर काव्य में यजना की जो मात्रा निहित है उससे कविवर इस युग में भी अपरिचित रहें हैं। यह कम विश्वसनीय बात ही होगी। इस प्रकार कविवर के कवित्व का ही हम ध्वनि-सम्प्रदाय की मायताओं से सम्बंध जोड़ सकते हैं उनका आचार्यत्व का नहीं।

### वक्रोक्ति सम्प्रदाय और कविवर

रीति ध्वनि के समान ही वक्रोक्तिवाद की उपसंघियों की चर्चा भी कविवर ने नहीं की। उन्होंने वक्रोक्ति को एक विशिष्टालंकार के रूप में ही स्वीकार किया है।

फिर भी हम कविवर की वक्रोक्ति के विवेचन करते समय दंग चुके हैं कि उनकी वक्रोक्ति अलंकारवादी आचार्यों की श्लेष या वाक्य वक्रोक्तिवाली वक्रोक्ति नहीं वह वक्रोक्ति की यथार्थ भंगी अंगिति के ही अधिक समीप है। उनका लक्षण इस प्रकार है

कविवर सूषो धातु में वरनिय टेटो भाव।

वक्र उक्ति तासों कहें जे प्रवीन कविराय ॥<sup>१</sup>

यह वक्रोक्ति अपने गार्हस्थ्य प्रथम वक्र उक्ति के अधिक समीप है। वक्रोक्ति की वक्रोक्ति भी इसी टेटपन की क्षमता के कारण वक्रोक्ति है। हम यह भी दख चुके हैं कि कविवर के वक्रोक्ति के उदाहरणों में पर्याप्त वक्रता एवं विदग्धता है। अतः यह कहा जा सकता है कि इस अलंकार के निरूपण में कविवर ने वक्रोक्ति के आचार्य कुतल को ही प्रमाण माना है और अलंकारवादी या ध्वनिवादी आचार्यों का परम्परा रूढ़ अनुगमन नहीं किया। इसमें प्रथम वक्रोक्ति का सम्मान मध्यकालीन आचार्यों ने किया भी नहीं यह हम कह सकते हैं। अतः भी कविवर ने किया है।

१ कविप्रिया शब्दवा प्रभाव, पृष्ठ ३

## निष्पत्ति

इस प्रकार हम देखते हैं कि कविवर का मन्त्र का पद्यत्व व ५ सम्प्रदाया म न कविवर का सम्प्रदाया व साथ उल्लेखनीय सम्बन्ध है। व सम्प्रदाय है रम सम्प्रदाय और अलकार सम्प्रदाय। पहलू का निर्वाह रमिकप्रिया म है रमर का कविप्रिया म। दानो व निवाह म कविवर न अपनी मौलिकता बतौ है जिसम उह पयाप्त सफाता मिली है। व इन सम्प्रदायो व हूत अनुयायी नहीं रह इनकी ममत्ता परंपरा को उ होन अपनी आच म दस परस कर जिस तक-सम्मत या उपयायी समझा - अपनाया है। दोना म कविवर का सम्बन्ध किमम अधिक है यह कह सकना कठिन है। उनका कवित्व भा रगम अधिक निर्णायक नहीं हो सकता। उनको 'रामकविका का कवित्व अलकारवाद के अधिक निकट है रमिकप्रिया का रमवाद के अधिक निकट। दानो व हा विषय म उहान प्राचीनतर मा यतायो को अधिकान्न अपनाया है। गय सम्प्रदायो स उनका सम्बन्ध नगण्य है।

## सूयाकन

अब तक हम कविवर के आचार्यत्व के विस्तृत क्षेत्र का पयानोचनात्मक अध्ययन कर चुके हैं और यह स्थिति म आ चुक है कि कविपय संबद्ध तथ्या व सभ म उनका काय का मही सूयाकन कर सकें। यह कवन की आचार्यकता नती कि सता सूयाकन के लिए एक सता और स्वयं प्रतिबोध भी अपक्षित है।

चाह आचार्य कविवराम हा चाह रिदा रीतिकान का कोई अन्य आचार्य कवि इन आचार्यत्व की ममूचा साधना सरणि अपना प्रवृत्ति और प्रवृत्ति दानो म पूर्ववर्ती सम्प्रदाय का पद्यत्व व साधना स्वरूप म बतनी भि न है कि कभा कभा स साधना के विषय परिप्रेक्ष्य म हम आचार्यत्व के अभिधान व अभिहित करन म भी विविधा उठ सकती है। वस्तुतः आचार्य ग द व शत ही पाठक के मन म हा प्रकार के समृत्त आचार्यों का साधना पद्धतिया खड़ी हो जाना है एक है भरत नामह दडी वामन कुन्त आनन्दवन प्रभृति मौलिक उभावक आचार्यों की साधना पद्धति दूमरी है सम्प्रदाय विवनाय पण्डितराज जग नाथ प्रभृति आचार्यों का साधना पद्धति। इन दानो म न किसी एक म भी रीतिकान के समूह आचार्यत्व का अतर्भाव नहा हो पाता।

समृत्त का पद्यत्व और रिती के रीतिकान के आचार्यों का साधना पद्धतियों का पायक्य कवन मौलिक उभावना अथवा आचार्यत्व के अभाव तक हा परिमित नहीं है। हमकी अन्य आच मूचा सीमा भी परिमित ही नहीं है। समृत्त के उद्युक्त आचार्यत्व का हम साधना के प्रवृत्ति के विपरीत के अनुरूप तथ्य म तथ्य निमाण का आच अभिमत हा तथ्यि हो के रीतिकान का तथ्य म तथ्य का आच। एक म ममूचा के सम्प्रदाय म ममूचा के निधारण का तथ्य रहा दूमर म तथ्य का सम्प्रदाय म ममूचा का आचार्यत्व के प्रवृत्त का। दया कारण है कि रीतिकान का प्राय प्रत्येक

आचार्य मूलतः कवि और उदाहृत लक्ष्या का प्रणेतृ भी है। शीघ्र ही वे काव्य-मरोत्र की परम्परा अपवाद स्वरूप ही है। उन्होंने दोष प्रकरण में कवि के काव्य से उदाहरण प्रस्तुत किया है। सस्कृत में एक विपरीत आचार्य दण्डी राजगिरर पण्डितराज जगन्नाथ आदि आचार्यों के कवि रूप एक ही अत्यंत विरल हैं दूसरे उदाहरणों के मनियाजन में इनका उपयोग यदा कदा हुआ है।

वस्तुतः अविचारित रमणीय और सुविचारित मुख्य अथवा काव्य और गान्धर्व की युगपत् साधना में दाना की समतोल स्थिति बनाय रखना महज नही है—विशेषकर एक के आग्रह पर दूसरे के निर्माण की स्थिति में। रीतिकान का आचार्यत्व अपना इस सीमा से पूणत आत्रात है। कविताम जिस एकाध का छोड़ कर्यों का कवित्व जितना उभरा है आचार्यत्व उतना ही दया दवा सा है।

सीधा सा प्रश्न जो जिज्ञासा की ऊपरा मतह में ही उठ खड़ा होता है यह है कि क्या रीतिकाल के ये साधक अपनी उभय साधनाओं की अतः प्रवृत्तियों और एक-दूसरे के विरोधों में अवगत नहीं थे? यदि थे तो उन्होंने एक तरह का माय क्या अपनाया? एक प्रश्न के समुचित उत्तर के लिए उम वातावरण और चतना गत उन परिस्थितियों का स्वरूप शोध आवश्यक है जिनमें समूचा साधना सास न रही थी। परिस्थिति गत नृत्तिया का यदि ठीक ठीक ग्रहण कर लिया जाय तो उनके सभ में समोजित नय और तान का स्वरूप भी अपने पूण वणिष्टय के साथ स्त स्पष्ट हुआ जाय। रीतिकान के आचार्यत्व के मूल्यांकन की यहा पृष्ठभूमि है।

हिन्दी का रीतिकान दरवारी सभ्यता का काल है। इस तो दरवारी सभ्यता और इसकी छाया में प्रबलित साहित्य-साधना भारतवर्ष के लिए अपरिचित और नई नयी रही है फिर भी एक काल जसी दरवारी सभ्यता में भारतभूमि का सगाव पहला बार देवन को मिला। यह दरवारी सभ्यता मुस्लिम सभ्यता की देन थी। नस्कृति के चार अध्याय में दिनकरजी ने ठीक ही लिखा है कि जीवन का ऐहिक चिन्तकण प्रेम की अत्यधिक भावुकता और सुख का ऐहिक रूप मुस्लिम सभ्यता की विशेषताएँ हैं।<sup>१</sup> मुगल काल का विशेषतः अकबर और शाहजहाँ के काल का एक सभ्यता का चरमोत्कर्ष कान कहा जा सकता है। भारत जम घनघाय घाड़ूण रूप पर आधिपत्य स्थापित हान में मुस्लिम सभ्यता की ऐहिक परिणति के लिए जो श्रुत समोम मिला वह इतिहास का अविस्मरणीय परिच्छेद है। जीवन के प्रत्येक क्षण में वभव और विनास के ऐहिक और ऐहिक रूप में मनुष्य जीवन की हर रंग और सम्भावना को घरनी पर मानार लटा कर लिया। परमाकर में 'गुनुगुनी मिलम श्व में तारा सी तरनि ताम टापी भिनभिन भी हाति मरीनी मूनिग माय सम्भावनाएँ नहीं हैं ऐहिक विलास की वास्तविकताएँ हैं और स्तूल घाटुनिदा हैं। टियलाइट घाउ मुगलम में परभविन ने एक दरवारी सभ्यता के वभव और विनास का जो चित्र अंकित किया है वह एक ही रूपरमादा और मामल वलाकनों का समभन के लिए दर्शाया है।

१. अद्वैत के चार अध्याय

यह दरबारी सम्बन्धता केवल मुगल दरबारों तक ही सीमित न रही सम्पूर्ण समृद्ध बग तक—चाहे वह हिंदू राजा हो या नवाब मसजिददार हो जागीरदार हो राजकर्मचारी हो या उच्चवर्गीय कलाकार—पूरे तौर पर परिचायित हो गई थी। सब की श्रांति अनुकरण अनुगमन के निमित्त वहीं दरबारी की ओर सतृप्त बिछी रहती थीं। गरी स्थिति में सामान्य जनरति का भी कुछ न कुछ आश्रित होना सहज सम्भावित है।

दरबारी सम्बन्धता के इस वातावरण के आश्रय में काव्य प्रणयन कला-कृति का विलाम-नामश्री अधिक समझा गया और यह स्वाभाविक भी था। इस काल में काव्य रसिक अथवा सहृदय की परिभाषा ही भिन्न भूमि पर अवतरित हो चुकी थी। काव्य रसिक का तात्पर्य कुछ बदल चुका था। हृदय सवादा या चित्त सवाद का भोवना अभि नवगुप्त के रसिक या सहृदय ही इस काल में वास्तविकता का नागरिक स भी घोटा अधिक भोग लिप्सु बनकर परवर्ती कोक्याम्त्रो का नागरो उस बन गए थे। इन नागरों की रति के अनुरूप ही सामग्री प्रस्तुत करना कला की सबसे बड़ी मायकता थी। यही कारण है कि काव्य कला और मगीत तीनों का स्वरूप निर्माण में नम युग प्रवृत्ति का प्रतिबिम्ब दिखाई देते हैं।

यह तो रहा विषयगत भाग का संभरण। विषय का प्रस्तुत करने की प्रक्रिया में जो नसी प्रभाव का प्रतिबन्धन आवश्यक था। काव्य में इस प्रभाव के प्रतिध्वनन की तीन मात्रा भूमियां थीं। पहली तो यह कि दरबार का परिवेप में काव्य पाठ्य का म अरु अधिक था। आश्रयताया के मनोरजनाथ कवि को केवल काव्य सुनाना ही नहीं था प्रतियागिताओं में विजयी होना और सम्मानित होना भी आवश्यक था। परिणामतः काव्य में काव्य और वाग्दण्य पर अधिक बल दिया जा रहा था। कवि गोपिका में प्रभावोत्पात्क उपादानों का रूप में समक और चित्रकाव्य अपनाय का उद्देश्य ही पट था। यह दूसरी बात थी जिसका अन्तगन वभव का प्रत्यानाय और आभिजातीय तत्व की अनुगमन के लिए अलकरण का चाकचक्य दिखाना अपरिहाय या अलकरण की यह प्रत्यक्षता मुगल गली की चित्रकला में साफ साफ देखी जा सकती है। अलकरण प्रियता यहां तक की कि मजिद और मजारों तक की वास्तुकला में सम अग्रणी नहीं था। औरगजब की मांगी का प्रयास क्षणिक बंध बनकर रह गया। तीसरा सम्बन्ध भूमि या फारमा काव्य की प्रतिष्ठिता की। फारसी काव्य का मिजाजी की जिस नाम कारिफ बाहू बाहू वाली गली में सम्पन्न था हिंदी काव्य को अभी क्या तक पतना था। बिना समक दरबारों में अपनी प्रतिष्ठा को अग्रण बनाय रचना ही की कवियों के लिए आमान नहीं था। इन तीनों काल के कवि आचार्यों द्वारा निमित्त रिया-काव्याम्त्र का स्वरूप भी वहीं बग गत युगीन आवश्यकताओं के अनुरूप रला।

कंगव रानिजान और भक्तिजान का मधि-युग का आचाय है। उनका युग में रानिजान का उदयन प्रवृत्तिया और आवश्यकताएं उभर कर उपर आ चुकी थीं भल हा ओर न बन पाए थीं। माय हा भक्तिजातीय प्रवृत्तिया और आवश्यकताएं तिरोहित में नहीं रह थीं। कृष्ण भक्ति साहित्य की एक सम्बन्धी परम्परा रसिक भक्ति का साहित्य

की प्रचुर मात्रा व साथ उपस्थित हो चुकी थी। इस भक्ति-साधना का मूल रूप ही लौकिक उन्मुखतम शृंगार को आध्यात्मिक रूप देना था। बड़-बड़ साधक मत्त और भक्त हम वार को करन प्राण बढ थ और अनक पडित आचार्य दगनगाम्त्र और कायगाम्त्र को उपलब्धियों व साथ उकी पीठ पर थ। गोस्वामी आचार्यों द्वारा काव्य-गाम्त्र की भाषा म भी रमिक साहित्य व रसवाद की प्रतिष्ठा हा चुकी थी। इस प्रकार काय व मामन रसिक भक्ति का साहित्य उसका दगन और उसका कायगाम्त्र सभी कुछ विद्यमान था। लौकिक शृंगार कला और भक्ति का किस प्रकार सम्बन्ध न कवल भक्त-परम्पराभा द्वारा अपितु हिन्दू राज दरबार म भी किया जा रहा था इसका मत्त हम काय व निरूपण म ही मिल जाता है। जहा इन्द्रबर्षिहजी व दरवार भ कता और लौकिक शृंगार की साधिका पातुरें थीं बहा नवरगराय भी एक पातुर थी जा नवरमो को नवधा भक्ति म योजित किया करती थी

नरी किनरी आसुरी सुरी रहति सिर नाइ ।

नवरस नवधा भगति सौं नोजति नवरगरा ॥<sup>१</sup>

इस युग का लिखा हुआ निम्नलिखित दाहा जन-जीवन की स्थिति का सही प्रकन करता है

मनुस रूप होइ अवतरयो तीन वस्तु यो जाग ।

इ य उपाजन हरिभजन अह भागिनि को भोग ॥

काय व समय म भक्तिकालीन मयूरा भक्ति रीतिकालीन लौकिक रूप प्राप्त करन लग गई थी। काय और स्वर पुरान अव्यय चन रह थ आत्मा बदलन लग गई थी। इसी कारण काय क काया शृंगार म भक्त का आवग हम नहीं मिल पाता। पर रीतिकाल की सौ क्षमा याचना स भी हीन उ मुक्तता नहीं है।

काय भक्ति और रीति कायों की प्रवृत्तिया की युग संधि पर ही नहीं खड थ परिणु सस्त्रुन और हिन्दु का यगाम्त्र की युग-संधि पर भी खड थ। उनक नामन हिन्दी का एक एमा कायगाम्त्र बनान की आवश्यकता भी मूत रूप म खडी थी जा भाषा कविमों और वनमान काय व 'रमिक भावका व उपयोग का हा सक। नियम रूप काय जय त्रिविध निदमों की ररिसीमाभा म अपन का बाध लता है तो अपन को जीवन और प्रगमिन रखने व िण अपन पाठक का भी अपनी सीमाभा म परिचित करा कर स्वानुरूप बनाना आवश्यक समझता है। कायकालीन काय की यह आव-यकता भी हिन्दी व कायगाम्त्र व निर्माण का प्ररणा द रही थी। इन आवश्यकताभा म म रमिक भक्ति व साथ सम्बन्ध की आवश्यकता धीर धीरे कम जाती गई काय काय यकताए परवर्ती रीतिकालीन आचार्यों व मामन ज्या की त्या बनी रहीं। परवर्ती रीतिकाल अपनी पनित नतिकता को राधा वृष्ण व नामों व पवित्र आवरण म छिपाय रहन का प्रयास काव्य क्षेत्र म ही करता रहा आचार्यक व क्षेत्र म उम उमकी आव-यकता न रहा। इस दृष्टि स काय व आचार्यक का स्वरूप अपन परवर्तिका की

अपना कुछ भिन्न है।

कविवर्य का आचार्यत्व कुछ और दृष्टियाँ से भी अपने परवर्ती रीतिकान्त के आचार्यों से भिन्न है। रीतिकालीन आचार्यत्व का प्रमुख रूप दो ढंग का है। एक तो सम्यक्त्व के लक्षण ग्रन्थों में से प्रसिद्धि प्राप्त परवर्ती ग्रन्थों के अनुवदन के रूप में दूसरे दरवाजे भाग के अनुरूप कवि और पाठक के लिए उपयोगिता की दृष्टि से सम्यक्त्व आचार्यों के निरूपणों में से प्रग्रह त्याग या काट छाट कर ग्रहण के रूप में। उस युग के आचार्यत्व की मौलिकता यहाँ तक सीमित थी। सभी दृष्टिकोण की कमी पर उक्त कान्त के प्रायः मौलिकता पूरे आचार्य कवि भिखारीदास अपने काल के गण्यमान्य आचार्य थे। पर कविवर्य के प्रातिभक्तित्व एवं पाण्डित्य में कबल एक प्रकार की ही अच्छी मौलिकता नहीं है।

कविवर्य के आचार्यत्व में शिक्षकत्व निरूपकत्व और समवयात्मक उद्भावक व नीला तत्वों का योग रहता है। अपने प्रातिभक्तित्व व प्रकाशन का आग्रह भी उनका आचार्यत्व में कम नहीं रहता पर कविवर्य के अग्रयन परम्परा के मूल में चलते चलते ही कभी कभी नए सी दाखने वाली बात कहने का मोह रखने हुए भी कविवर्य अपने दार अपने स्वतंत्र मनन चिन्तन का भी आश्रय लेते दिखाई पड़ते हैं। हम यहाँ उनके आत्मवन्दन निरूपण जस विषयों की याचिका कर सकते हैं। कविवर्य — आचार्यत्व के मौलिक और चिन्तक पत्र को समझने के लिए हम उस विषय पर यहाँ एक बार पुनः दृष्टि डाल सकते हैं।

कविवर्य ने आत्मवन्दन की परिधि में नायकता तथैव सामग्री ही नहीं प्रकृति और विनायक-नायक तथा मगीन नृत्य आदि सभी का किया है। परम्पराभक्त आचार्यत्व का अर्थ यह दाख पूरा है क्योंकि उसमें उद्दीपन के रूप में स्वीकृत पत्राय भी मित्राणि मिल गये हैं। पर कविवर्य ने अपने विविध दृष्टिकोणों को यथा प्रस्तुत किया है। उनका अर्थ में अपने दाख काम जिन पत्रायों का आश्रय लेकर प्रादुर्भूत होता है व सब शृंगार व आत्मवन्दन हैं। दूसरी ओर राम नामाद्य के लिए भी यही बात कही जा सकती है। राम जिन पत्रायों का आश्रय लेकर प्रादुर्भूत होता है व सब आत्मवन्दन हैं। अपने चिन्तन और ज्ञान समझने उपादान समझने के रूप में राम के आत्मवन्दन ही मकान हैं।

कविवर्य का एक मान्यता का दाख दृष्टियों में समझने किया जा सकता है। भारतीय समझने का दाख है कि स्वयं आचार्य भरत ने आत्मवन्दन उद्दीपन का वर्गीकरण नहीं किया। व उन्मत्तविष उपादानों को राम का विभाव मानते हैं। दूसरे यह कि मना राम निकल घगगन पर हम यह पाते हैं कि प्रकृति और जलित कान्त के उपादान हमारे मन में भी उद्दीपन का क्षमता रखते हैं कबल उद्दीपन का ही काम नहीं करते। भरत ने भी यही दृष्टि — विभाव का मित्राणि कर प्रस्तुत किया है। इस प्रकार कविवर्य की मान्यता नए परम्पराभक्त आचार्यत्व के अनुरूप नहीं होकर उक्त हम तब तक अपने अपने विविध दृष्टिकोणों का परिचयक तथा अपने भरताजित पाते हैं।

इस प्रकार राम का दाख है कि कविवर्य का आचार्यत्व सामान्य परम्परानुयायी नहीं है जब परम्परा में हटना है तब नए दाख में यहाँ होता है। उक्तका यह हटना

कुछ मानी रखता है वह तब युक्त कहा जा सकता है। पर वृत्ति और विवचन व अभाव व वह समर्पित नहीं हो पाता। अतः सामा य पाठक और परम्परा बद्ध अत्यन्त व लिए दुःशास्त्र होता है। प्रायः रम विवचन व तथा अलंकार विवेचन व अथ तत्र पर्याप्त रूप म एम स्थान हम मिल हैं। अत्र क स्व चिन्तन और मौलिकता का यही रूप है। साथ म गिणक का दृष्टिकोण उनक निरूपण को विस्तृत नहीं हान दता। अतः अत्र क आचायत्व की यही प्रमुख पद्धति है जा अथ परम्परावाणी परदर्ती आचार्यों म मि न है। इसक ग्रहण करने व लिए तीन बातों की नितात आवश्यकता है एक पूण सहानु भूति का दूसरे का यशास्त्र क यापक तथा गम्भीर अध्ययन की तीसरे पूर्वग्रहमुक्त हाकर रूत परम्परा म उठकर भी विषय की अज्ञानिकता का स्वीकार कर सकन की। अतः लिए अत्र क ल गणा क एक एक गण का ही समझना आवश्यक नहीं है अपितु जग पद्य की भाषा की समझता से अज्ञानों की स्पष्ट विवृति न हो पाई हा वहां उपाहरणा व वध्य के सादभ म भी उनक अभीष्ट वक्तव्य का समझन परखन की आवश्यकता है।

अत्र क तीन लक्षण प्राथ ह—रमिकप्रिया कविप्रिया और छन्दमाला। इन तीनों म आचायत्व की तीन दिशाया म उनका प्रमुख प्रविभा का सामा य मित्रता है। कविप्रिया म गिणक रूप की प्रमुखता व साथ विविध मतान्तरा व उपस्थापन और सामा य हर फेर क नियोजना की मौलिकता है। छन्दमाला म गिणक रूप की ही प्रमुखता है पर प्राचीनता और आधुनिकता क मेल व साथ हिन्दी की युगान आदर्य कता की अत्र भी दृष्टि है साथ ही अत्र छन्द प्रयात्ता रूप की मूल एकनिष्ठता भी है। रमिकप्रिया म गिणक रूप गीत है प्रमुख है पाण्डित्यपूण एवं निता चिन्तन और दृष्टिकोण पर आघत कितु गाम्भीय भूमि पर प्रतिष्ठित मौलिकता की आस्वरता। इन दृष्टि म रमिकप्रिया अत्र क आचायत्व की ही न। सपूण रीतिनात व आचायत्व की अथवा या भी कठिण हिन्दी व प्राचीन कायगात्र की एक महत्त्वपूण एवं अनु प गाय उपनति है। रमिकप्रिया व आचायत्व क तान आया म गाम्भीय परम्परा का उपवृहण अत्र विषय व लिए अत्र गाम्भीय मायनाया की नवीन आस्था और प्रायः समस्त अक्षरों की आहृतिया म साभिप्राय परिवर्तन-परिवर्धन करत हुए अथन युग व लिए गायत न्य स्वरूप का निमाण। इन तीनों आधामों का रमिकप्रिया म अथ रमा र गृहार म अतभाव की प्रतिपा म परता जा सकता है। विरोधी रमों को अथ बनाने म उ हाने अत्यन्त आवश्यकता करती है। उ दोन अथक लिए विविध पद्धतिया अथनाह हैं। कभी लक्षणा म हलवा मोट स्वीकार किया है हा कभी क्विणी नाय की अचारी या अथकी स्थिति म अथनाया है। पर अत्रापना इन निरूपण की महत्ता है कि एक अत्र ता उनक अथन भाव की आवश्यकता पूण करत है दूसरी अत्र रम-आमाय क परम्परा युक्त निरूपण व विपरीत भी नहीं होत। उनको गाम्भीय पृष्ठभूमि मुरात रहती है अत्र ही गाम्भीय कुछ अत्र माग म हट हुए प्रमाण हा। अथम का अथ बता म तो उहान अथायी का ही अथ रूप म ग्रहण कर एक अथा अथाय नी रिया है। इनका ही नहीं, रमिकप्रिया व प्रतिपाद्य क अनुभव उहाने भाव विभावाति



की नई परिभाषाएँ भी दी हैं। इन परिभाषाओं में एक और गाम्भीर्य परम्परा का सामंजस्य है तो दूसरी ओर मौनिक उपस्थापनाएँ भी हैं।

कविप्रिया में शिक्षक आचाय का रूप प्रधान है, यह हम कह चुके हैं। यहाँ कविता क्या है और कस की जाती है का रूप तो है पर क्या और क्याकर की वृत्ति की वृत्ति का प्रयास नहीं है। एक सामान्य भाषा कवि के परिचय का उद्देश्य यहाँ प्रायः प्रमुख रहता है। विंगिलालकारों के निरूपण में अथवा एकाधिक गाम्भीर्य मायताओं की ओर उदाहरणों के माध्यम में सकता है पर यह भी परिचयाय ही है। प्रायः कगव प्राचीन अलंकारवादियों पर आधन होकर चले हैं किन्तु इस अनुधावन में उदाहरण प्रत्येक निरूपण या ग्रहण त्याग में अपने परिवर्तन की मांग के अनुरूप तथा अपनी सामर्थ्य के अनुसार अलंकारों की कुम्भटिका में से एक सरल और प्रगल्भ मांग के अधान का यथामभव प्रयास किया है।

कगव ने प्राचीन अलंकारवादियों के समान वण्य विषय और वणन गली दाना की अन्वय की परिधि में समटा है। पर प्राचीन अन्वयवादी और कगव के इस समान काय में एक अन्तर है। प्राचीन अन्वयवादी का दृष्टिकोण इस विषय में हमें निम्न परिमित नहीं था कि उम इनके अन्तर का ज्ञान ही नहीं था। पर कगव के सामने तो ध्वनिवाद की नवी परम्परा और कुतन की स्थापनाएँ थी जो अन्वय और अन्वय के बीच एक सुस्पष्ट रेखा खींच चुकी थी। अन्तः कगव ने जो यह प्राचीन दृष्टिकोण अपनाया वह समझ बूझ कर अपनी आवयकता पूर्ति के लिए। कगव ने प्राचीन अन्वयवादियों की दो मूल दृष्टियाँ अपनाई हैं। एक है वण्य विषयों को भी अन्वय कहकर चतना दूसरी है का यरमो का भी रसवद अलंकार कहना। पर दाना है उनके निरूपण और दृष्टिकोण की विंगिलता के कारण हुई हैं प्राचीन के अधानुकरण के कारण नहीं।

कविगीता के काय का सम्पन्न करने के लिए कगव ससृष्ट कविगीता के अन्वय में वणित वण्य विषयों को अपने भाषाकवि के परिचित कराना चाहते थे। यह उनकी आवयकता थी। पर मूल ससृष्ट अन्वय में इन विषयों का निरूपण अन्तः अन्त और विन्तरत्न में था। अन्वयगत में कगवमिथ के निरूपण की चचा हमें बत चुके हैं। कगवमिथ किसी बात का तो नियम कहकर प्रस्तुत करते हैं किन्ती का यों न स्वतन्त्र। उनका सामर्थ्य में उपयुक्त वर्गीकरण का भी अभाव है। कगव वग विषयों का व्यवस्था करना चाहते हैं। अन्तः अलंकार गगन का पहलू तो व्यापक अर्थ में ग्रहण कर वण्य विषयों का सामान्यकारों के रूप में एकमूर्तित करते हैं। फिर उनका उदाहरण देना पत है। कगवमिथ के विषयों का भूमी और राजमी के रूप में स्पष्ट वर्गीकरण करना हमें दृष्टिकोण का प्रमाण है। निरूपण की सफाई और व्यवस्था का आचायक एक प्रमुख काय है विंगिलालकारों के आचायक में तो यह बहुत ही अपरिचित होता है। सामान्यकारों और विंगिलालकारों के अन्वयकरण एवं वर्गीकरण में यह अभाव है हमें इसे स्वीकार करना पड़ेगा। अन्तः अन्वय की उक्त व्यापकता के अन्वय ग्रहण करना कगव के आचायक का आवयकता थी प्राचीन का एकमात्र अधानु

करण नहीं ।

कायरसों को रसवदलकार कहता भी उनके निरूपण की विगिष्टता की एक आवश्यकता थी । रसिकप्रिया उनका वास्तविक रस ग्रन्थ है । पर उसमें व शृंगार की रसरजता का ही उद्देश्य लेकर नहीं चल था उस शृंगार को हरि शृंगार भी बनाये रखना चाहते थे । परिणामतः उन्होंने केवल कृष्ण शृंगार का ही रस कहा जो भक्ति शृंगार का समकक्ष गौडीय आचार्यों के अनुरूप था । इस मान्यता का एक बार स्वाकृत कर लेने पर उन गौडीय आचार्यों का यह दृष्टिकोण भी स्वीकार्य हो जाता है कि कायरस भक्ति शृंगार का समकक्ष नहीं है । उन्होंने यह रसाभासों की कोटि में ल जाकर पटक दिया है । कदाचि उह यह स्थान तो देना नहीं चाहते थे । वह काय शास्त्र की परम्परा को कभी भी ग्राह्य न माना । पर भक्ति शृंगार का एकमात्र रस वाल दृष्टिकोण का अनुरूप इस कायरसों को रस कोटि से हटाना अप्रतिष्ठ था ही । एक लिए उह यह महज हल भिन्न गया कि व उह प्राचीन अलकारवादियों का समान रसवदलकार कहकर अलकार की कोटि में रख दें । व अलकार को पर्याप्त व्यापक रूप में एक बार स्वीकार कर हो चुके थे अतः ऐसा करने में कोई बाधा भी न थी । अतः रसों का रसवदलकार कहना भी उनके निरूपण की आवश्यकता था जा वही समझ दारी का साथ निवाही गई थी । यह भी प्राचीनों का अध्यानुकरण मात्र नहीं था ।

पर इस निरूपण का दाना पक्षो का दुर्भाग्य यही था कि व वार्ते उनके युग में ही आउट ऑफ डेट हो चुकी थी और परित्यक्त मान्यताओं का हा वाचक शक्ति में प्रस्तुत होने का कारण विचार-साक्ष्य उपजा सकती थी । यही तब हुआ और यही आज भी हा रहा है । वही कारण कदाचि व निरूपण परवर्ती आचार्यत्व के अनुसरणीय नहीं हो सक । पर इनसे कदाचि महत्त्व एवं आचार्यत्व की स्पष्ट रक्षा हमारे सामने आवश्यक प्रतीत है । कविप्रिया का शिक्षक आचार्यत्व की सीमित परिधि में नियोजक का मौलिक प्रयास की ही गुजाइश थी, जो उसमें पूरी तौर पर है । जो छोटे मोटे टुकड़े हैं, या विवक्षा के रूपांतर हैं व इतने महत्त्वपूर्ण नहीं हैं ।

कविप्रिया में दोष निरूपण का प्रयोग में भी हम कदाचि की मौलिक योजना का दान होते हैं । शास्त्रीय जजाल से वचन की एक शिक्षक की मरलता और अतः कारिक रूप का साथ दोषों के वर्गीकरण की व्यवस्थापरक मौलिकता, य दान वार्ते हम यहां मिलती हैं । प्राकृतपद्यम् के निरूपण में कतिपय विगिष्ट छन्दों में दोष निरूपण का लिए बाधे हुए दारीर रूपकों से प्रेरणा लेकर कदाचि न समस्त काय-दाया को ही दारीर रूप का साथ निभा कर प्रस्तुत कर दिया ।

कदाचि का आचार्यत्व की तासरा माना है छन्दमाता । इसमें उनके आचार्यत्व का रूप प्रमुखतया शिक्षक का ही है जिसका अनुरूप उन्होंने केवल छन्द-परिचय ही नहीं कराया अपितु लम्बे छन्दों का व रूप ही प्रायः चन है जो मरलतम हो सकत है । एक विगिष्ट गणवाच छन्द में श्रुतता प्राप्त कर लेने पर पाठक उन्नी जाति का गणा की मर्यादा ध्यान हुए अर्थ बड़े छन्दों में भी सफलता पा सकत है यह उक्त स्वानुभव पर आधारित बात थी । कला-शास्त्र का लिए गितनी गिता एक पाठन को अर्पित होनी है, उमकी

दृष्टि से भी सरल छोटी का ही चुनाव अपेक्षित था। केशव ने इस आवश्यकता एवं वस्तुस्थिति का ध्यान रखा है।

साथ ही कवि ने यह भी ध्यान रखा है कि उनकी छन्द-परिचय हिन्दी की आवश्यकता के अनुरूप रहे। इसी कारण उन्होंने संस्कृत व वाणिक वृत्तों के साथ ही उन मात्रिक वृत्तों का भी विस्तार से परिचय कराया है जो प्राकृत और अपभ्रंश की परम्परा में सही होते हुए उनके समय तक हिन्दी के अपने छन्द बन चुके थे। जिस प्रकार केशव ने कविप्रिया की रचना द्वारा हिन्दी की आवश्यकताओं के अनुरूप हिन्दी के प्रारम्भिक काव्यशास्त्र के निर्माण का प्रयास किया था उसी प्रकार उन्होंने हिन्दी के अपने प्रारम्भिक छन्दशास्त्र के निर्माण की ओर भी ध्यान दिया था। अतः हम देखते हैं कि उनके शिक्षक रूप में युगीन आवश्यकता को समझने की भी पूर्ण शक्ति विद्यमान थी। छन्दमाना के छोड़ने का निरूपण इस बात का प्रमाण है कि केशव अपने समय तक बन सके हुए प्राकृत के समस्त छोटे बड़े उपलब्ध विंगल ग्रन्थों से परिचित थे। उन्होंने अनेक छन्द ऐसे दिए हैं जिनका चुनाव तो उन्होंने सरलता की दृष्टि से किया है परन्तु छन्दशास्त्रीय संस्कृत या प्राकृत के प्रमुख ग्रन्थों में प्रचलित नहीं हैं। तब उनके विषय में यही कहा जा सकता है कि या तो वे केशव को अपने युग में उपलब्ध किन्हीं ग्रन्थों या मंत्रों में मिले होंगे या फिर उन्होंने उन सरल रूपों को चुन कर उनके स्वयं नामकरण भी किये होंगे। यदि ऐसा हुआ है तो इस क्षेत्र में उनकी मौलिकता भी हमें स्वीकार करनी होगी।

इस प्रकार हम देखते हैं कि केशव के आचार्यत्व में उदभावनाकार व्याख्याकार शिक्षक और समन्वयकार सभी रूपों का यथोचित सामंजस्य है। समन्वयकारिणी वृत्ति ने शिक्षक के रूप का जितना सफल बनाया है उतना ही प्रौढ और मौलिक भी। यदि इस समन्वयकार रूप के साथ उनके उदभावनाकार और व्याख्याकार रूपों का योग न रहता तो केशव भी रीतिवालों के अर्थ आचार्यों से किसी भी रूप में ऊपर न उठ पाते। इन रूपों के समन्वय के कारण ही केशव कवि शिक्षक भी हैं, और आचार्य भी। यह दूसरी बात है कि उदभावनाकार और व्याख्याकार का वह रूप उनमें नहीं है जो पूर्ववर्ती संस्कृत काव्यशास्त्र के अन्तर्गत अभिनवगुप्त कुतल आदि में परिलक्षित होता है। और दा भाषाओं के काव्यशास्त्रों की संधि के उभय युग में केशव से उस आचार्यत्व की अपेक्षा भी नहीं थी। विचार कर तब जबकि गम्भीर अध्ययन के व्यवसायियों के लिए संस्कृत के मूल ग्रन्थों का गौरव अपनी ही सम्पत्ति के रूप में सदा उन्मुक्त था। केशव के आचार्यत्व का मूल्यवान् उनका प्रतिपाद्य ग्रन्थों के अधिकारों की सापेक्षता में करना चाहिए।

यह हम प्रथम में दावा करें और उत्तरदायी हैं। पता ही यह कि किसीक कृतित्व की मौलिकता केवल प्रपूर्व वस्तु के निर्माण में ही नहीं है। वह कृतिकार भी अपूर्व वस्तु का मौलिक निर्माण ही क्या जायगा जो पूर्व निर्मित वस्तु के आलोचक में अपनी कृति के कर्म के कुछ रमाणों के भी नया जीवित व्यक्ति के भर देना है। मूल्य वस्तु का भाव है और न केवल वस्तु के अनुसंधान उभय प्राण प्रनिष्ठापित करने का भी है। यहाँ

हम घान दवधन की उस कारिका की ओर अपने पाठकों का ध्यान आकृष्ट करना चाहते हैं जिममें व कहते हैं कि पूव स प्रतिष्ठापित वस्तुएँ भी रससम्पन्न होने पर नवीन अथवा मौलिक ही हो जाती हैं ।<sup>१</sup>

केशव क आचायत्व में पूवप्रतिष्ठापित मायताओं की सफल नियोजना की मौलिकता हम पूरी मात्रा में मिलती है ।

दूसरी बात यह है कि किसी व्यक्ति अथवा उसके निरूपित विषय का परवर्तियों द्वारा किया हुआ अनुगमन उसकी गुणता की सच्ची बसोटी नहीं है । कुतल क काय की महत्ता आज हमारे सामने खुलती जा रही है । पर उसका कितना अनुगमन हुआ ? क्या इस अनुगमन क अभाव में कुतल की स्थापनाएँ ही मूल्यहीन हैं केशव क महत्त्व का अवमूल्यन करने के लिए प्रायः यह दुहराया जाता है कि परवर्ती रीतिकाल में उनकी परम्परा नहीं चल पाई । पर यदि ऐसी लोगों से कोई पूछे कि क्या तुलसी की परम्परा चल पाई है ? क्या परम्परा क न चल सकने से तुलसी क महत्त्व में कुछ अंतर आया है ? अतः हम इस कसौटी को जो गलत परिणाम देता है छोड़ना पड़ेगा ।

अतः में इस शोध प्रबंध के निणय वाक्य क रूप में हम यह कह सकते हैं कि केशव क आचायत्व का स्थान आधुनिक काल से पूव क समस्त हिंदी आचायत्व में विगिष्ट और श्रेष्ठ है । रीतिकाल के समस्त आचायत्व में केवल केशव में ही सराहनीय मौलिकता पाई जाती है । उनकी मायताओं को उनकी भाषा की अस्पष्टता और परम्परा-पालन की कमी क कारण उनके अभीष्ट रूप में समझ सकने में अल्पाधोत समीक्षक को कठिनाई हाती है और वह अपनी असमर्थता से उत्पन्न हीन-भाव की प्रतिक्रिया स्वल्प केशव क आचायत्व को लाछित कर उसके अवमूल्यन करता है । केशव का स्थान काव्य रस साहित्यिक शृंगार और भक्ति शृंगार के मन्वय की स्थापना की ध्यान में रखकर सत्कृत क कतिपय उत्कृष्टनीय आचार्यों के साथ लिया जा सकता है । हिंदी में उनका आचायत्व क परिमार्जित अध्ययन तथा उनका अर्थों की स्वस्थ टीका-व्याख्याओं की महती आवश्यकता है जिमसे समालोचना-क्षेत्र में पूर्वाग्रहों पर आधारित भ्रमा का निराकरण हो सक और केशव क साथ उचित जाय हो सक ।

○ ○ ○

<sup>१</sup> १५६ पृष्ठि केशव काल्प रससम्पन्नम् ।

मते - । इयमानि मधुनाम इव इमा ॥ स्वप्नानोक्त ४१४

परिशिष्ट—?

## सहायक ग्रन्थसूची

१ हिन्दी

प्रथ	लेखक
✓भाचाय कण्ठदास	डा० हीरालाल दीक्षित
भाचाय भिखारीदास	नारायणदास खन्ना
भार्या सप्तगती	
अनवार मजूपा	सदाशिव लक्ष्मीधर कत्र
कविकुलकल्पतरु	चिंतामणि
कविकुलकण्ठाभरण	चिंतामणि
कविप्रिया	भाचाय कण्ठदास
कवीर	डा० हजारिप्रसाद द्विवेदी
कवीर प्रयावली	डा० श्यामसुन्दरनाथ (स०)
कवीर सतवानी	
काष्ठाभरण	पद्मनदास
काव्यनिषय	भिखारीदास
काव्यविनास	प्रतापसाहि
कुशलविनास	दव
✓ कण्ठ घोर उनका माहिण	डा० विजयपालसिंह
✓ कण्ठ एक अर्धयन	श्री कृष्णचन्द्र वर्मा
कण्ठ एक अर्धयन	श्री सरनामसिंह अरुण
कण्ठ की काव्यकला	रामचन्द्र गुवल रसान
कण्ठ प्रयावनी	प० विन्नायप्रसाद मिश्र (स०)
कण्ठनाम जावनी कला घोर कृतित्व	
छान्ता	डा० किरणचन्द्र गमा
छान्ता प्रयावनी	भाचाय कण्ठनाम
तुलना प्रयावनी	भाचाय रामचन्द्र गुवल (स०)
दण्डनाम का बानी	भाचाय रामचन्द्र गुवल (स०)

देव और उनकी कविता	डा० नगेन्द्र
पृथ्वीराजराजा का भाषा	डा० नामवरसिंह
प्राकृत और उमका साहित्य	डा० हरदव बाहरी
प्राचीन भारतीय परम्परा और इतिहास	डा० रागव राघव
फते प्रकाश	गुरवीरसिंह (स०)
भारतवर्ष का सांस्कृतिक इतिहास	हरिदत्त वदानकार
भवानीविलास	दव
भावविनाम	देव
मिश्रबभुविनोद	
रसगगाधर का शास्त्रीय अध्ययन	डा० प्रमस्वरूप गुप्त
रसपोषुपनिधि	सोमनाथ
रसमञ्जरी	नन्ददास
रसग्रहम्भ	कुलपति
रसराज	मतिराम
रसराज	रामजी मिश्र
रसकृष्टि	गिबनाथ
रसमाराग	भिम्वारीदाम
रसविलास	दव
रसिकप्रिया	आचार्य कणवदास
राधावल्लभ संप्रदाय सिद्धांत और अध्ययन	डा० विजयन्द्र स्नातक
रामचंद्रिका	नाला भगवान्तीन (स०)
रीतिकानीन कविता की प्रेम व्यञ्जना	डा० बच्चनसिंह
रसमञ्जरी	नन्ददास
रसितलनाम	मतिराम
विद्यापतिपदावली	रामकृष्ण बनीपुरी (स०)
वीरसिंहवचरित	आचार्य कणवदास
ब्रजभाषा साहित्य का नायिका भ	प्रभुपान मीतन
शास्त्रमापन	दव
शृंगारनिधम	भिसागोशम
शृंगारमञ्जरी	धरवरगाह
शृंगारममाधुरी	भन्वदव
सकृष्टि क चार अध्याय	रामधारीसिंह शिन्कर
सरष्टा धानोचना	यनदव उपाध्याय
सिद्धसाहित्य	धमकीर भारती
सूर पूव ब्रजभाषा और उमका साहित्य	गिबप्रनासिंह

सूरसागर प्रथम खंड	का० ना० प्र० तभा
हिततरंगिणी	कृपाराम
हि नौ अलकार साहित्य	डा० श्रीमूप्रकाश
हिंदी काय म शृंगार परम्परा और बिहारी	डा० गणपतिचन्द्र गुप्त
हिंदी काय परम्परा	
हिंदी का यगास्त्र का इतिहास	डा० भगीरथ मिश्र
हिंदी कुवलयानन्द	भोलानगर व्यास (म०)
हिंदी रीति परंपरा के प्रमुख आचाय	डा० सत्यदेव चौधरी
हिंदी साहित्य का बृहद इतिहास छठा भाग	डा० नगेन्द्र (स०)
हिंदी साहित्य पर संस्कृत का प्रभाव	सरनामसिंह अरण्य
हिंदी साहित्य में नारी भावना	डा० उषा पाण्डेय

## २ संस्कृत

अभिनवभारती	अभिनवगुप्त
अभिनानाङ्कुतलम्	कालिदास
अमरकोश	
अथर्व	
अनगरग	जयदेव विद्यालकार (स )
अलकारकोस्तुभ	
अनकारचन्द्रिका	
अलकारमवस्व	
अष्टाध्यायी	पाणिनि
अष्टागहृत्	
इगावास्योपनिषद्	
उत्तरानामनि	जीवगोस्वामा
उत्तररामचरित	भवभूति
ऋग्वेद	
एकावली	
एतरेयानिषद्	
एतरेय ब्राह्मण	
कठानिषद्	
कनूरमन्त्र	राजगुरु
कामसूत्र	वात्स्यायन
कामसूत्र	

काव्यप्रकाश	मम्मट (वामन की टीका)
काव्यप्रकाश	' (श्री० विश्वेश्वर की टीका)
काव्यादश	दण्डी
काव्यालंकार	भामह
काव्यालंकार	छन्द
काव्यालंकारसूत्र	वामन
कुमारसम्भव	कालिदास
कुवलयानन्द	अप्पयदीक्षित
गीतगोविन्द	जयदेव
चन्द्रालोक	जयदेव
चतुर्थचरितामृत	
छन्दोमञ्जरी	
छांदोग्य उपनिषद्	
जमिनिमूत्र	
तकभाषा	
तत्तिरीय ब्राह्मण	
तत्तिरीय उपनिषद्	
दशरूपक	धनजय
दशरूपकावलोक	धनिक
द्वयोपनिषद्	
ध्वन्यालोक	अनन्दवधन
नाममाला	हृषीकेश
नामनिगानुशासनम्	
नाटयदर्पण	डा० नगेन्द्र (स०)
नाटयशास्त्र	भरत
निश्क	यास्क
निघण्टु	
नीतिगतक	भट्ट हरि
पञ्चगायक	
पिंगलमूत्र	(हृलायुष टीका)
प्रतापरुणीय	विद्यानाथ
प्राकृतपिंगलमूत्र	
प्राकृतपिंगलम्	
सूक्तारण्यकोपनिषद्	
याज्ञिकनोरमा	
अथर्ववेदगीतोपनिषद्	सांख्यभाष्य



भवसंतरणोपनिषद्	
भाव प्रकाशन	
भक्तिरसामृतसिंधु	रूपगोस्वामी
मनुस्मृति	
महाभारत	
मालविकाग्निमित्र	कालिदास
मुडकोपनिषद्	
मघदूत	कालिदास
योगीभूषण	
रघवण	कालिदास
रतिरहस्य	
रसगगाधर	पण्डितराज जगन्नाथ
रसपीयूषनिधि	सोमनाथ
रसाणवसुधाकर	निगभूपाल
रामपूवतापनी उपनिषद्	
ध्याग्यायकोमृती	प्रतापसाहि
वत्तरत्नाकर	
गतपथ बाह्यण	
वाक्यपनीय	मनू हरि
शृंगारप्रकाश	भाज (राघवन सम्पादित)
शृंगारविलास	सोमनाथ
श्यामदशमस्कन्धगीता	
युगमततद्वसमीसा	भगीरथ भा
सरस्वतीकण्ठाभरण	भाज
साहित्यरक्षण	विन्वनाथ
हमरनापिका	मीतनाथ

### ३ हस्तलिखित ग्रन्थ

कविप्रियात्रय	
कविप्रियाभरण	
कविप्रियासंग्रह	मूरति मिश्र
काव्यशास्त्राणि	
जारावरप्रकाश	
रमदासकविता	
संस्कृतकविता	

## ४ पत्र पत्रिकाए

खोज रिपोर्ट १९००, १९०३, १९१७

१९१९, १९२६ १९२८

जे० बी० ग्रार० एम०

इण्डियन एण्टिकेरी

दी पूना ओरियण्टलिस्ट

का० ना० प्र० समा

वा० ५ भा०२ एच० सी० चन्पर

वा० ५

## List of English Books

Book	Author
A History of Maithili Literature—Part I	Jaikant Misra
An Introduction to the post Chaitanya Sahajya Cult	Manindra Mohan Bose
History of Classical Sanskrit Literature	Shri Krishnamachariar— Madras 1937
History of Indian Literature	Winternitz
History of Sanskrit Poetics	Dr P V Kane
Notes on Sahitya Darpan	
Some Concepts of Alankara Shastra	Dr V Raghvan
Sources of Indian Tradition	R N Dandekar New York
Studies in the History of Sanskrit Poetics	S K Day
The Number of Rasas	Dr V Raghvan
The Position of Women in the Hindu Civilization	Dr Altekar 1938
The Theories of Rasa and Dhvani	Dr V Raghvan
The Significance of Prefixes in Sanskrit Philosophical Terminology	Mr Betty Heimann
Sanskrit English Dictionary	Apte
The Sanskrit Language	T Burrow
Sanskrit English Dictionary	Monier Williams
Roots Verb Forms and Primary Deri- vatives of the Sanskrit Language	William Dwight Whitney
History of Ancient Sanskrit Literature	Max Muller
Critical Studies in the Phonetic Obser-	

vations of Indian Grammarians  
 Citations in Shabar Bhashya  
 Methods for Literary Criticism  
 India in the Time of Patanjali  
 A Critical Study of Shri Harsha's  
 Naishadhiya Charit  
 Muslim Patronage and Contribution  
 to Sanskrit Learning  
 Vedic Index

Siddheshwar Verma  
 Damodar and Vishnu Garge  
 C M Gaylay  
 Braj Nath Puri  
 Dr Arunodaya Natvar Lal  
 Jain  
 J B Chaudhary  
 Max Muller Keith

पारशिष्ट—२

नामानुक्रमणिका

- वरगाह—४४, ४८ १६२ १६३ २०३, २१० २११ ४०७
- यदीक्षित—३४ ३६, ४० ४३ ४६ ४७, ४८ ४९ ६० ६२ ६६ ७३ ७८,  
२५१ २५४ २५८ ७६०, २८३ २८६ २९१ २९२ ३०१ ४ ७
- नवमुप्त—३४, ५७, ३८, ४०, ४१ ६५ ६६ ७१ ७४, १४३ १४४ १४६  
१४७ १५२, १६१ १६२ १६५ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७०  
१७१, १७३ १७४ १९० २७६ २७७ ३५६ ५७५ ४१६ ४५० ४५१,  
४६० ४६६
- रचद्र—३८ १२२ १३० १३२ ३६६ ३६७ ३६४ ५८२ ५८६ ३८७ ३८८
- सिंह—५६६ ५६७
- कर—१६६
- दवघन—२६ ५४ ३७ ४१ ६६, ६७ १८३ १८४ १८६ २४४ २७२,  
२७६, २७७ २७९ ३३८ ३४७ ३४८, ३४९ ३५१ ३५४ ३६४ ३६५  
३६४ ३६६ ४३७, ४३८ ४५५ ४५६ ४५८ ४६६ ४६७
- ० ए० दाडेकर—१६३
- मट—२६ ३४ ४० ४१ ४८ ७७ १२१ १२२ १४३ २५२ २७४ २७६  
२७९ २८० २८७ २९२ २९६ ३४६ ३४७ ३५६ ४२६
- पाठेय (डा०)—१६८
- ० क० ड—४१ ६६ १५० ३६६ ३६७
- मृप्रकाश (डा०)—६० ६२ ६४ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ३६२ ४२२ ४४३
- कोक पंडित—६६
- ० श्री० की०—५३ ५७
- त्यायन—२३ २४ २५ ६०
- निदास—२६ ५४ ६७ ११० १६३ १६७ ३६४ ३६५, ३६६ ७६८
- रमचंद्रधर्मा (डा०) १०४ १०५ १६५ २०४ २१६ २२२ २५६ २३७ ७८७  
५६८ ४०५ ४१४ ४३४
- सहोत्र—२४ २५ ३२
- सक—३० ३४ ३७ ४२ १०७

वचनमिह (डा०)—६५ ६७ ६८ ७०

बलदेव उपाध्याय—४२

बेटी हेमन—१७, १८ २५

ब्रजनाथ पुरी—३२

मगीरथ मिश्र (डा०)—२६ ३१ ३५, ६१ ६४ ६५ ७४ ७५ ८१ १४५ ३४२  
३६२, ४२४

भटटनायक— ७ ४० ४५०

भटटनारायण—३७ ३२५, ३२७ ५०६ ३३२, ३३३

भटट लोह्लट—४०

भरतमुनि—२८ ३१ ३ ३४ ३५ ४२ ४५, ४७ ४८ ७०, ७१ ७२ ७३, ७४,  
७७ ६४ १४४ १४६ १४८ १५६, १५७ १५६ १६० १६१ १६२, १६३  
१६४ १६५ १६६ १६७ १६८ १६९ १७१ १७२ १७३ १७४ १७५  
१७६ १७७ १७८ १७९ १८० १८१ १८२ १८४ १८८ १८९ १९० १९२  
१९ १९८ २११ २१८ २३२ २३४ २३५ २५६ २३७ २३८ २३९ २४१  
२७७ ३३८ ३४३ ३४४ ३४५ ३५१ ३५२ ३५३ ३५४ ३५५ ३५६ ३५७  
३५८ ३६४ ३७६ ३७७ ३७८, ३७९ ३८३ ३८६ ४०१ ४०३ ४०४  
४०८ ६०६ ४१० ४१६ ४४१ ४४६ ४५५ ४५८ ४६२

भरतमिह उपाध्याय—३४ ३५

भृगुहरि—१७ ० ६७ ३८२ ३८६

भवभूति—१४५ ५७ ४५१

मानुत्त— ४ ६ ४७ ४३ ४४ ४६ ४७ ४८ ५४ ६८ ७० ७२ ७३ १६५  
२०१ २ ४ २०६ २ ८ २१२ २१३ २१४ २१५ २१६ २१७ २१८ २२२  
२२ २२४ २२५ २२६ २२७ २२८ २३० २३१ २ २ २३३ २३४  
२ ५ २ ६ २ ७ २ ८ २३६ २४० २४१ २४२ २४३ २४४ ४०५  
४१० ६११

मानुमिथ—१८२ १८ २१२ २१५ २१७ २१८ ४११ ६१३

भामह—२८ ० ६ ७ ६० ४६ ६८ १० १८ ५६ ७१ ७३ ७४  
७७ ६५ १२१ १२२ २४६ २५० २५१ २५४ २५८ २६१ २६२ २६४  
२६५ २६६ २७० २७१ २७६ २७७ २८० २८३ २८७ २८८ २९०  
२९२ २९५ २९८ ० ५ ८ ३४६ ५ ४ ३६५ ६८ ५६६  
४६६ ४७५ ६५६ ६६८ ६५ ६५८

मिमाराणम—५ ५८ ६१ ६५ ६६ ६८ ७३ ७५ ७६ ८८ १३६ २०६ २०८  
२१७ २१८ २२ २६ २७ २८३ २९ ३६ ६८ ४ ३ ४०४  
६ ४ ४ ७ ६०८ ६१० ६११ ६१२, ६१६ ६१६ ६१७ ६१८ ६२० ४२३  
६ ६७ ६८ ६९ ६ ६ २ ६५ ४ ६ ६ ८ ४ ८ ४६०  
६६१ ४६२ ६६३ ४ १ ४ २

भूपण—५५ ५८ ६० ७४ ७७, ७९, ८८ १३५ ४२३, ४२४

मोज—१० ३४ ४४, ४८ ५३ ५६ ५७ ६७ ७१ ७३, १२१ १३० १४६ १४७,  
१६२ २०१ २०५ २०६ २१२, २१७ २१८ २२० २३५, २३६, २४१,  
२५० २५१ २५२ ३४६ ३५५, ३७६ ३७८ ३७९ ३९६ ४०० ४०२  
४१० ४२२ ४४० ४४१

मोलाशकर व्यास (दा०)—४३ ४८

मतिराम—५५ ६० ६३ ७२ ७३ ७४ ७५ ७६ ८०, ८८ १३६, २०१ २०६  
२०८ २२६ २२७ २२९ २३६, २४० २४२ ३६६, ६०० ६०५, ४११  
४१२ ४१४ ४१५ ४२० ४२३ ४२४ ४२७ ४२८, ४२९, ४३० ४३२  
४३३ ४४४ ४४० ४४१

मम्मट—३४ ३८ ३९ ४१ ४२ ४५ ४८, ७३ ७४ ७६ ६५ १०७ १५६  
१७३, १७४ १७५ १७६ १८३, १८६ २०६, २१२, २१३ २१५ २१६ २१७  
२१८ २२३ २२४ २४८ २५१, २/२ २५३ २५८, २६० २६१ २६२,  
२६८ २७० २७२ २७४ २७६ २७७ २८४ २८५, २८६ २८७, २८९,  
२९० २९२, २९७ २९९ ३०१ ३०५, ३३६ ३४७, ३५६ ३७६, ३७७  
४१६ ४१७ ४३० ४३७ ४४२ ४४६ ४५५ ४५६ ४५८

महिम मट्ट—४५०

मिश्रवधु—८० ६५

मेघावी—३४ ४५३

भक्त मूलर—२२ २७

भोनियर विलियम्स (सर)—१८ २३

भास्क—१७ ३३ ३५ ४६

रमागकर दुक्कल रसाल—७६

रसलीन—६० ७२ २१५ २१६ २१८ २२५ २३१

रहीम—५२ ७६ ८४ २०२ ४४८

रागेय राघव—१६५

राजसागर—२७ ३० ३४ ३८ ६० ४५ ५३ ६६ ३३८ ४५६

रामचद्र गुणचद्र—४२ ४८ १६५ १५५ १५४ ३५७ १५८ ३६५

रामचद्र दुक्कल (घाषाय)—६५ ७६ ७८ १०८ ३०१, ३६२ ४०३, ४०४

रामघारी सिंह निम्बर—१६७, ४५६

राहुल साहित्यायन—१० ५१ ६७

रुट्ट—२६ ५४ ६० ४१ ४४ ४८ ६७ ७० १०७ १६२ २१२ २१७ २२६,  
२३२ २३३ २५० २५१ २५२ २५५ २६० ३०५ ३६६

रुम्पक—२० ३४ ३६ ४१ ४८ ६७ २१८ २६५ २६६ २७० २७२ २७६,  
२७६, २७७ २८० २८४ २८६ २८७ २८९ २९०, २९१ २९२ २९६,  
२९७ २९९ ३०२ ३०५ ४०३

रूपगोस्वामी—३४ ३६ ४३ ४४ ४६ ४७ ४८ ५२ ८५ १४७ १४६ १५०  
 १६३ १६६ २०० २०६ २ ७ २०८, २०६, २१० २१३ २१७ २५६  
 २६० २६ २६४ २६५ २६६ ४०८

लाला भगवानदीन—१०२ १०६ १२३ २६० २८६ २६५ ०१

लील्लट—१४४ १६५ १६७

घररुचि—०५

वाग्मट्ट—४० १६५

वात्स्यायन—२८ ६६ ७ २१० ५२१ २२२ ७६ ५८१

वामन—०६ ५४ ५७ ४१ ४० ४८ १ ७ १२० १६ १६४ २०३ २०७  
 ५५८ ०४८ ०५२ २६१ २६४ २६८ ०८४ ०६६ ३३८ ३४७ ५१  
 ६५ ८४ ४१ ४५५ ४५८

विटरनीतज्ज—२२

विजयपानसिंह (डा०)—१५०

विजय \* स्नातक (डा )—२००

विद्यानाथ—४५ ६६ ७८ १६ २४० ५४५ ५२ ५२ ५५५ ५५६ ०५७  
 ५८ ४१८

विद्यापति—५ ५० १६६ २०५

विश्वनाथ— ० ६ ८ ८ ४२ ६५ ४८ ७० ७३ ७४ ७६ १४४ १५६  
 १ ० १६ १६४ १७१ १७३ १७४ १७५ १७७ १७६ १८० १८३  
 १८५ १८८ १९२ १९५ २ १ २ ६ २०५ २०६ २ ७ २०८ २१०  
 १ ५१ २१५ २१ २१७ २२२ २२५ २२४ २२५ २२६ २२७  
 २२८ २२९ २३ २३१ २ ० २३३ २३४ २३६ २३७ २३८ २३९  
 ६ ६१ ०५१ २५४ २५८ ०५६ २६० २६५ २६८ २७० २७२  
 ०७४ ५७६ २८० २८४ २८५ २८७ २८६ २८० २८१ २८२  
 ०८७ २८८ १ ३०३ ५५८ ३४४ ३४६ ५५ ५५७ ३७६ ५७७  
 ७८ ८६ ६० ४० ४१० ४१२ ४१३ ४१४ ४१७ ४१८ ४२१  
 ६ १ ६४२ ६५७ ६५८

विश्वनाथप्रमाण मिश्र—१०० १ ४ १३४ २३६ २५७ ३५३

विश्वर (भाषाय)—५८ २८ ३१ ४० ४१ ४२ ४५ ४७ ७

विनियम टवाण्टि ज्ञे—१८

वा एत माण्ट—१७ १८ १६ ०१

वा गान्धर्व—१६ १ ४३ ५४५ ५४६ ३४८ ३४६ ३५१

वृत्त (भा०)—६१

वृत्त (भा )—१६७

वृत्त— ७ ६० १६५

वृत्त—०५ ०६ ४२

गारुडतन्त्र—३४ ४२ १६२ ४०३

गिण्डमूपा—१६३ २०४ २०५ २०६ २०८ २१० २१ २१६ २२० २२५  
२३० २३५ २३६ २६०, २५२ २७६ ३७६ ८० ४०२ ४१ ४१७

शिवप्रसादसिंह (डा०)—६७

सत्यदेव चौधरी (डा०)—१३०, १६२, २११, २३३, २६३, ४०० ४०५ ४१०,  
४१५ ४१७, ४१८ ४४२

सत्यद्व (डा०)—८०, ८१

सरदार कवि—७१, ६८ १०१ १०३ १७० ३५३ २५४

सरनामसिंह अरण—२५६ २५६ २६७ २६८ २६९ २७० २८८ २९४ ४४२  
४४५

सिद्धेश्वर वमा—२०

सुरति मिश्र—५६ ७६ ८० १०१ १०३, ३४१

सनापति—८१

सोमनाथ—७२ ७६ ६८ १३६ २०६ २११ २१२ २१५ २१७ २१८ २१९  
२२१ २२२, २२३ २२४ २२६ २२८ २२८, २४२ २४३ ६२ ३६५  
३६६, ४०० ४०७ ४०८ ४०९ ४११ ४१५ ४१६ ४१७ ४१९ ४२२  
४२७ ४२८ ४२९ ४२० ४३० ४४० ४४६ ४४७

हजारीप्रसाद द्विवेदी (डा०)—५० ५६ १०८ १६८

हरदेव बाहरी (डा०)—१६७

हरियप्पा—२६

हीरानाल दीक्षित (डा०)—१०४ २०४ २२६ २५२ २५४ २५५ २५६ २६०  
२६३ २७१ २७५

हेमचन्द्र—३५ ५६ ४० ६७ १६३

## नामानुक्रमणिका

अग्निपुराण—१६३, २५० ६६

अनगरण—२१० २१६ ७६ २८० ३०१ ४११

अभिमानशास्त्र—४० ४१ १६७

अभिनवभारती— ७ ४५ १४३ १४६ १५७ १६३ १६५ १६६ १५७ १ ८  
१६६ १७१ १७५, ३४४

अमरकोष—२० २३

अमरकोष—४१ ६६

अलङ्कारकोश—४६ ३६६

अलङ्कारप्रज्ञा—५८ ७३ २५१



मलकारोत्तर—६६ १२२ १८६ २६६ ३६७ ३६८ ३६९ ३७० ३७१ ३७२  
७३ ७४ ३८२ ४८५ ३८६ ३८७

मलकारसवस्व—१८४ २५१ २५३ २५५ २५८ २५९ २६० २६३ २६५ २६६  
२६८ २७२ २७६ २७८ २७९ २८० २८४ २८६ २८७ २८९ २९४ २९५  
२९७ २९९

मलकारसूत्र—२५६ ३८२ ३८५

अष्टाध्यायी—१७ ३३

आचाय केगवदास—२३६ २५२ २५४ २५५ २५६ २६० २६३ २७१ २७५  
२८६

उत्तरीलमणि—४३ ४६ ४७ १४८ १४९ १५० १६३ १६६ २०० २०६,  
२०७ २०८ २०९ २१२ २१७ ४०८

उत्तररामचरित—४१ १४५

एकावली—२६४ २६५ २६७

बबीर ग्रथावली—१६८

बपूरमजरी—१६७

बला कल्पना और साहित्य—८१

बबिकुलकठामरण—५८ ७३ ७५ ७७ ३६५ ४१६ ४१७ ४२४ ४२५

बबिकुलकल्पतरु—२०६ २०९ २१२ २१४ २१६ २१७ २२३ २२६ २३२,  
२ ८ २४० ४६४ ४१४ ४१८ ४१९ ४२० ४२६ ४३८ ४३९ ४४६

बबिप्रिया—४१ ५१ ५६ ६१ ६४ ७५ ७६ ८२ ८८ ८९ ९० ९५ ९८ ९९  
१ २ १०५ १०६ १०७ १२१ १२२ १२३ १३० १३१ १३३ १३४  
१ ५ १ ६ १ ७ १४२ १४४ १५३ १५४ १८६ १८९ २४६ २४७  
४५० २५१ २५५ २५६ २५७ २५८ २६ २६३ २६६ २६९ २७०  
७१ २७२ २७५ २७४ २७५ २७६ २७७ २७८ २८१ २८२ २८३  
२८४ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९० २९१ २९२ २९३ २९४  
२९७ २९८ २९९ ३०० ३०१ ३०२ ३०३ ३०४ ३०५ ३०६ ३०७ ३०८  
६२ २६३ ६८ ४६९ ७० ४७१ ४७२ ३७३ ३७४ ३७५ ३७६  
८२ ८३ ८४ ८५ ८६ ३८८ ३८९ ३९० ३९१ ३९६ ३९७  
४०८ ४०९ ४१ ४०४ ४२५ ४२८ ४२९ ४३० ४३२ ४३३ ४३६  
४ ८ ४ ९ ४४१ ४४२ ४४३ ४४४ ४४६ ४५५ ४५७ ४५८, ४६१  
४६३ ४६४ ४६५ ४६६

बाबरी—४१

बाबमूत्र—१८ ७० ६४ १० १६ १६४ २०३ २०६ २०७ २१० २२०  
१ १ २२२ १८८ २ ६ २४० २४१ २४५ ४७६ ३८१ ३८२ ४०८  
६०६ ४११

बाबमूत्रमजरी—१२२ १ ० १३२ २६६ ४६६ ३६७ ३६८ ३७३ ३८२,

३८६ ३८७ ३८८

काव्यनिर्णय—५८ ६१ ७३ २६५ ४१७ ४१८ ४२६ ४ ६ ४२८ ४ ६ ४४१  
४४७काव्यप्रकाश—२८ २९ ३१ ४० ६१ ४० ७४ ७७ १०७ १५९ १७५ १७७  
१७८ २५४ २५८ २६१ २६२ २६५ २७७ २८६ २८५ २८८ २८९  
२९६ २९८ २९९ ३ ८ ४७ २५५ ५६ ७६ ३७७ ४० ४ ०  
४२७

काव्यमीमांसा—२७ ३० ३४ ३८ ४० ५३ १६५

काव्यरसायन—५७, ७३

काव्यविलास—४१५ ४४७

काव्यादाग—२८ २९ ३७ ६ २५० २५२ २५ २५५ २५७ २५८ २६१  
२६२ २६५ २६६ २६७ २७० २७१ २७२, २७३ २७४ २७५ २७६  
२८० २८२ २८४ २८५ २८६ २८८ २८९ २९१ २९४ २९५ २९६  
२९७ २९८, ३०० ०२ ३६१, २६२ ८२ ८४

काव्यानुशासन—१४ २५ ४०

काव्यालंकार (मामह)—२९ १० १४ ७ ४६ ५८ २५० २५२ २५८ २६२  
२६४ २६८ २७०, २७१ २८० २८८ ४२५काव्यालंकार (छन्द)—२९ ४ ४० ६७ १६२ २१२ २१७ २२६ २२३ २५०  
२६६

काव्यालंकारसारमग्रह—२८

काव्यालंकारसूत्र—२९ ७ ६ ४१ ४६ ५८ २६१ २६४ २६६ ४७

कुमारसम्भव—४१ १६७

कुवलयानन्द—४ ४८ ६० ६९ ७४ ७८ २५२ २५४ २५७ २५८ २६० २६१  
२६२ २६६ २६१ २६२ २६६ २६७

केगव एक साध्ययन—२५६ २५९ २६६ २ ८ २७० २७२ २६४ २६५ ३४०

केगव श्रीरत्नका माहिस्य—४२ ७१ ६१ १७१ ८८

केगव श्री काव्यकला—२४०

केगव प्रयावली—६० ६ ६४, १०० १०५ १२४ १ ७ १ ६ १६५ २०४  
२ ७ २०८ २१२ २१६ २१७ २१८ २१९ २२१ २२२ २२ २२४  
२२५, २ ७ २२८, २२८ २२० २ १ २३० २ १० ३१८ २५  
१४४ २६०, ३६१केगवदास जीवनी कला श्रीरत्नकृत—१६५ २०१ २०४ २१६ २२२ २ ८ २३७  
३६७ २६८ ४०५ ४१४ ४ ४

गीतगोविन्द—४० १६६

षट्शतिका—४३ ४८ ७४, ७८, २६७ २८२ ८३ ४४०

षट्शतिकासूत्र—१६६

छन्दमाला—६१ ६६ ६७ ६८ १०४ १०५ १३१ १३७ ३०५ ३०६ ५०७  
 ३०८ १० ५१२ ३१ ३१६ ३१७ ३१८ ३१९ ३२० ३२५ ३२६ ३२९  
 ३३० ३५१ ३३३ ३५५ ३३६, ३६७, ५७५ ३७६ ६० ५६७ ५५३  
 ४६५ ४६६

छन्द कीस्तुभ—५०६ ३१० ३१२ ५२० ३६०

छन्दोऽनुगासन—५५ ४० ६७

छन्दामजरी—१ ७ ३०८ ३०९ ३१० ३११ ३१२ ५१३ ३१४ ३१५ ३१६  
 ५१७ ५१८ ५१९ ३२० ३२१ ३२२, ३२३ ३२४ ३२५ ३६६ ३६०

छन्दोऽधोपनिषत्—२६ ५७ ३१

जगद्धिनोत्—५७ १०६

जहागीरजसचन्द्रिका—६७

जायसी प्रयावली—२१६

तुलसी प्रयावली—१६८

तत्तिरीयोपनिषत्—२० २१ १६६ २००

दण्डपत्र—६७ ७० १५८ १६५ १७१ १७३ १७५ १७७ १७९ १८३ २०५  
 २०७ २०८ २१५ २१६ २२२ २२६ २ २ २३६ २३९ २४० २४१  
 ३४४ ३४५ ५३ ३५७ ४०३ ४०६

दण्डपत्रकावलाक—१५८ १५९

द्वय श्रीर उन्नी कविता—३६३ ४०२, ४०६ ४०८

ध्वयालोक—२६ ३८ ६७ १८० १८३ १८६ २७७ २७९ ३४८ ३६६ ४ ७

ध्वयालोक त्रीचन—४६ ५४७

नाटयनपण—४२ १६३ ५३ ३५४ ४०३

नाटयगाम्त्र—२८ ४ ५ ७० ७४ ६४ १४३ १४६ १४८ १५६ १५७  
 १६१ १६ १६८ १६५ १६६ १७१ १७३ १७४ १७५ १७६ १७९  
 १८० १८२ १८ १८८ १९० १९२ १९३ १९६ २१२ २१८ २३३  
 २ ४ २ ६ २ ८ २८१ २७७ ३३८, ३४३ ५४४ ३४५ ३५३ ३७६,  
 ७७ ८८ ६१ ४०३ ६०८ ६०९ ४४६ ४५०

नाममाला—५५

नामलिङ्गानुगासन—

निरुक्त—१७ १ ४

नपथकाय—४७ ६५ ६७

पदाभरण—५८ ६४

पानि माहित का इतिहास—६ ५

विष्णुसूत्र—०६ ०७ ०८ १० ११ १२ १४ ३१५ ३१७ ५१८,  
 १८ २०

विष्णुसूत्रागमूपा—८ ७८ २१८ २६० ४५ ३५३

प्रमनराधव—८१

प्राकृत घोर उमका माहित्य—१६७

प्राकृतपद्यम्—१/ ६७ ६८ १ ७, ३१० २१० १५ ३१८ २१८ २०० ३२१  
०५, ००६ ००७, २०८ ००८ १ ० ३१ ०२ ३ ३०५ ३३५  
०२६ ०८० ०८८ २८८ ८०, ८१ ३६० ४६५

प्राचीन भाग्यनीम फुरपरा और अविहास—१८५

वृहत्कषामजरी—४०

भक्तिरसामृतसिंधु—४३, ४६, ४७ १६७, १४८ १४८, १५०

भक्तानां विहास—५७ ६११ ०१८ ४०० ४०१, ४१३, ४२०

भावप्रकाश— ४ ४२, ४०३ -

भावविन्यास—५८ ७४, ७७, १०८ ३८६ ०१८ ४०२ ४०५, ४१० ४१५ ४१  
, ४२० ६०३ ४२२ ,

भाष्यभूषण—४२, ५८ ६० ७३ ०११ ४०१

महाभारत—२७

महाभाष्य—०४ ०५ ००

मिनागरा—००

मिश्रवधु विनो—५५ ६४

मुण्डकोपनिषद्—०० ०६

मृच्छकटिक—४१

मघदून—४२ १६७

रमिकप्रिया—६१, ७१ ७५ ८८ ६३ ६४ ८६ ८८ ६८ १०० १०१, १ २  
१०५ १०८ १०८ ११०, ११५ ११६ ११७ ११८ १२० १२१, १२२  
१३१ १३७ १४२ १४ १४४ १४५, १५१ १५२ १५० १५४ १५५  
१५६ १६० १६२ १६५ १६८ १६९ १७० १७३ १७४ १७६ १७८  
१७९, १८१ १८२, १८३ १८४ १८५ १८६ १८७ १८८ १८९ १९० १९४  
२०१ २०२ २०३ २१० २१२ २१४ २२० २२४ २३७ २३८ २३९  
२४० २४१ २४२ २४३ २४४ २४५ ०४६ २४७ २७९ ३२८ २४०  
३४२ ३४३, ३४०, ३४१ ३४० ३४४ ३५८ ३७५ ३७६ ३७७ ३७८  
३७९, ३८० ३८१ ३८२, ८३ ३८५ ३८६ ३८९ ४०० ४०२ ४०३  
४०४ ४०५ ४ ६ ४०७ ४०८ ४११ ४१२ ४१३ ४१४ ४१५ ४१६  
४१७ ४१८ ४१९ ४२० ४२१ ४२२ ४२३ ४४१ ४४२ ४४६ ४५२,  
४५५ ४१६ ४५८ ४६१, ४६५

रामचरितम्—३०५ ०१८ ३१६ ४४६ ६५८

रघुवत—४१ १६४

रत्नकीवनी—६७

रत्नरहस्य—८४, २१० २२०

शिवराजभूषण—५८ ६० ७३

शिवसिंह सरोज—५५

सादेगरासक—६७

सस्कृत झालोचना—४२

सस्कृत के चार अध्याय—१६७ ४५६

सरस्वतीवण्ठाभरण—३० ४८ ५८ ६७ २०४, २०५ २१७ २३५ २३६ २३९  
२४० २४१ २५२

साहित्यदपण—३० ४२ ४३ ४८ ७० ७४ ७८, १४५ १५६ १६४ १७१  
१७३ १७४ १७७ १७६ १८० १८५ १६२ २०४ २०५ २०६, २०८  
२१२ २१४ २१६ २१८ २२३ २२७ २२८ २३० २३१ २३२ २३३  
२३४ २३५ २३६ २३७ २३८ २३९ २४० २४१ २५३ २५४ २५८  
२५६ २६३ २६५ २७२ २८५ २८६ २८७ २८८ २८९ २९४ २९६  
२९८ ३४६ ३५५ ३७६ ३७७ ३७८ ४०३ ४०६ ४११ ४१६ ४१८  
४२७ ४३० ४३२ ४३८

साहित्य मीमासा—३०

सिद्ध साहित्य—१६८

सुर पूर्व ब्रजभाषा और उसका साहित्य—६७

हरिभक्ति रसामृत—१५० १५१ १५४

हितनरगिणी—५२ ६६ ७२ १०६ २०२ २१४ २१७ २२४ २३६

हिन्दी अक्षर साहित्य—६० ६२ ७३ ७४ ७५ ७६ ७७ ७८ ३६२

हिन्दी काव्यधारा—५० ५१ ६७

हिन्दी काव्य म शृंगार परम्परा और बिहारी—१०६ १६६

हिन्दी काव्यशास्त्र का इतिहास—२६ ३१ ३५ ४६ ४८ ६१ ६४ ६५ ७४ ७५  
७६ ८१ ८२ ८३ १४५ ३४२ ३६२

हिन्दी रीति परम्परा के प्रमुख आचार्य—१६२ २११ २३३ ४०५ ४१० ४१५  
४१७ ६१८

हिन्दी साहित्य का इतिहास—६५ ७४ ७६ ८१ ३६२

हिन्दी साहित्य का बहुल इतिहास—३५ ४६ ५६ ५७ ६४ ६५ ७२ ७४ ७५  
७६ ८० १ ६ २०२ ४६३ ४०० ४०२ ४०७ ४०८ ४१२ ४२१ ४२२  
४२४ ४ ५ ४ ० ४४० ४४२ ४४३

हिन्दी साहित्य की भूमिका—५०

हिन्दी साहित्य पर संस्कृत साहित्य का प्रभाव—४४२

हिन्दी साहित्य में नारी भावना—१६८

